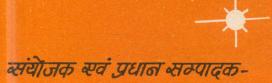


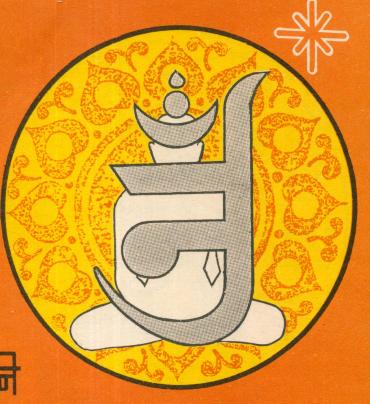
स्व. पूज्य गुरुदेव

श्री जोरावरमल जी महाराज

की समृति में आयोजित



युवाचार्य श्रीमधुकर मुनि



प्रगापनास्त्र



(मूल-अनुवाद-विवेचन-टिप्पण-परिशिष्ट-युक्त)

ॐ अईं

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक-१६

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री जोरावरमलजी महाराज की पुण्यस्मृति में आयोजित]

[श्री श्यामार्यवाचक-संकलित चतुर्थ उपांग]

प्रज्ञापनासूत्र

[प्रथम खण्ड : पद १ से ९ तक]

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद-विवेचन-टिप्पण युक्त]

प्रेरणा उपप्रवर्तक शासनसेवी स्व. स्वामी श्री ब्रजलालजी महाराज

आद्य संयोजक — प्रधान सम्पादक

स्व. युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

अनुवादक—विवेचक—सम्पादक

श्री ज्ञानमुनि जी महाराज

[स्व. जैनधर्मदिवाकर, आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज के सुशिष्य]

सह-सम्पादक

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

श्री आगम प्रकाशन समिति,

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क १६

निर्देशन साध्वी श्री उमरावकुंवर जी म. सा. 'अर्चना'

सम्पादक मण्डल अनुयोग प्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल' आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री श्री रतनमुनि

> सम्प्रेरक मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'

> > संशोधन देवकुमार जैन

तृतीय संस्करण : वीर निर्वाण सं० २५२७, वि० सं० २०५८, आसौज अक्टूबर, २००१

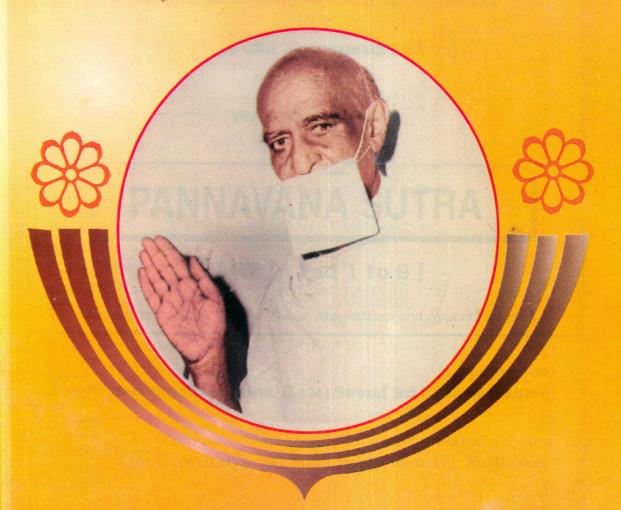
प्रकाशक श्री आगमप्रकाशन समिति ब्रज मधुकर स्मृति भवन पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)- ३०५९०१ दूरभाष : ५००८७

> मुद्रक श्रीमती विमलेश जैन अजन्ता पेपर कन्वर्टर्स लक्ष्मी चौक, अजमेर - ३०५००१

कम्प्यूटराइज्ड टाइप सैटिंग श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स आदर्श नगर, अजमेर - ३०५००२

मूल्य: १५५) रुपये

युवाचार्यं श्री सहिवन्य सुनीजी स.सा.



५ महामंत्र ५

णमो अरिहंताणं, णमो सिध्ढाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोएसव्व साहूणं, एसो पंच णमोक्कारो' सव्वपावपणासणो ॥ मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥

Published on the Holy Remembrance occasion of Rev. Guru Shri Joravarmalji Maharaj

FOURTH UPANGA

PANNAVANA SUTRA

[PART I : Pad 1 to 9]

[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc.]

to ignial Text, finial version, Notes, Annotations and Appendices etc.]
Inspiring Soul
Up-Pravartaka Shasansevi (Late) Swami Sri Brijlalji Maharaj
Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'
Translator & Annotator
Shri Jnan Muni
Sub-Editor
Shrichand Surana 'Saras'
Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti, Beawar (Raj.)

Jinagam Granthmala Publication No. 16

Direction
Sadhwi Shri Umrav Kunwarji 'Archana'

Board of Editors

Anuyoga-Pravartaka Muni Sri Kanhaiyalalji 'Kamal'

Acharya Sri Devendramuni Shastri

Sri Ratan Muni

Promotor **Muni Sri Vinayakumar 'Bhima'**

Corrections and Supervision **Dev Kumar Jain**

Third Edition
Vir-Nirvana Samvat 2526
Vikram Samvat 2057, Bhadrapad
August, 2001.

Publishers

Sri Agam Prakashan Samiti, Brij- Madhukar Smriti-Bhawan, Piplia Bazar, Beawar (Raj.) - 305901 Phone: 50087

Printers

Smt. Vimlesh Jain Ajanta Paper Converters Laxmi Chowk, Ajmer - 305001

Laser Type Setting by : Srinivasa Printographics Ajmer - 305002

Price : Rs. 155/=

समर्पण

जिन्होंने जैनागमों पर हिन्दी भाषा में टीकाएँ लिखकर तथा आगम-सम्पादन की आधुनिक शैली का प्रथम प्रवर्तन कर महान ऐतिहासिक श्रुत-सेवा की, उन परमश्रद्धेय आगम-रहस्यविज्ञ जैनधर्म-दिवाकर श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज की पावन स्मृति में उन्हीं के जन्म शताब्दी वर्ष के पावन-प्रसंग पर सविनय सभक्ति समर्पित

— मधुकर मुनि

[प्रथम संस्करण से]

प्रकाशकीय

सर्वतोभद्र स्वर्गीय युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म. के मानस में एक विचार समुत्पन्न हुआ था कि अर्थ-गंभीर आगमों का शुद्ध मूलपाठ हिन्दी भाषा में अनुदित एवं सम्बन्धित विवेचन सहित संस्करण प्रकाशित हो, जिससे जन साधारण एवं जैन सिद्धान्तों के जिज्ञासु जैन वाङ्मय का अध्ययन कर सकें।

विचार साकार हुआ। श्री आगम प्रकाशन समिति के माध्यम से आगम ग्रन्थों का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। यथाक्रम जैसे-जैसे ग्रन्थों का प्रकाशन होता गया तो पाठकों की संख्या में अनुमान से भी अधिक वृद्धि हुई। अत: द्वितीय संस्करण के ग्रन्थों के अनुपलब्ध होते जाने पर भी आगमबत्तीसी के समस्त ग्रंथों की मांग बढ़ती गई। इसकी पूर्ति के लिये अध्यात्मयोगिनी मालवज्योति साध्वी श्री उमरावकुंवरजी म. ''अर्चना'' के निर्देशन में तृतीय संस्करण प्रकाशित करने का निर्णय किया।

निर्णय के अनुसार अप्राप्त होते जा रहे ग्रन्थों को प्रकाशित करने का कार्य चालू है। इसी क्रम में प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम खण्ड का प्रकाशन किया जा रहा है। शेष दो खण्ड एवं अन्य ग्रन्थ भी मुद्रणाधीन हैं।

प्रज्ञापना सूत्र का अनुवाद एवं संपादन जैनभूषण पं. र. मुनि श्री ज्ञानमुनिजी म. ने किया है। आपने ग्रन्थ के अर्थगंभीर अंशों को सरल भाषा में स्पष्ट करके श्रुतसेवा का अपूर्व लाभ लिया है। एतदर्थ समिति उनका अभिनंदन करती है।

अंत में सिमिति की ओर से हम अपने सभी सहयोगियों का हार्दिक आभार मानते हैं।

सागरमल बैताला अध्यक्ष रत<mark>नचंद मोदी</mark> कार्यवाहक अध्यक्ष सरदारमल चौरड़िया महामन्त्री ज्ञानचन्द विनायिकया मंत्री

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

कार्यकारिणी समिति

			•
अध्यक्ष	:	श्री सागरमल जी बैताला	इन्दौर
कार्याध्यक्ष	:	श्री रतनचन्दजी मोदी	ब्यावर
उपाध्यक्ष	:	श्री धनराजजी विनायकिया	ब्यावर
		श्री भंवरलालजी गोठी	चैन्नई
		श्री हुक्मीचन्दजी पारख	जोधपुर
		श्री दुलीचन्दजी चोरडिया	चैन्नई
		श्री जसराजजी पारख	दुर्ग
महामन्त्री	:	श्री सरदारमलजी चोरडिया	चैन्नई
मन्त्री	:	श्री ज्ञानचन्दजी विनायकिया	ब्या वर
		श्री ज्ञानराज जी मूथा	पाली
सहमन्त्री	:	श्री प्रकाशचन्दजी चौपड़ा	ब्यावर
कोषाध्यक्ष	:	श्री जंवरीलाल जी शिशोदिया	ब्यावर
		श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरडिया	चैन्नई
परामर्शदाता	:	श्री माणकचन्द जी संचेती	जोधपुर
		श्री रीखब चंद जी लोढ़ा	चैन्नई
सदस्य	:	श्री एस. सायरमलजी चौरड़िया	चैन्नई
		श्री मूलचन्दजी सुराणा	नागौर
		श्री मोतीचन्दजी चोरडिया	चैन्नई
		श्री अमरचन्दजी मोदी	ब्यावर ्
		श्री किशनलालजी बैताला	चैन्नई
		श्री जतनराज जी मेहता	मेड़ता सिटी
		श्री देवराजजी चोरडिया	चैन्नई
		श्री गौतमचन्दजी चोरडिया	चैन्नई
		श्री सुमेरमलजी मेड़तिया	जोधपुर

श्री प्रकाश चंद जी चौरड़िया

श्री प्रदीप चंद जी चौरड़िया

चैन्नई

चैन्नई

प्रथम संस्करण के विशिष्ट अर्थ-सहयोगी

श्रीमान् सेठ एस. सायरचंदजी चोरडिया, मद्रास

(जीवन परिचय)

धर्मनिष्ठ समाजसेवी चोरिडया परिवार के कारण प्रसिद्ध नोखा (चांदावतों का, जिला नागौर, राजस्थान) आपका जन्मस्थान है। आपका जन्म सं.१९८४ वि. आषाढ़ कृष्णा १३ को स्वर्गीय श्रीमान् सिमरथमलजी चोरिडया की धर्मपत्नी स्व. श्रीमती गट्टूबाई की कुक्षि से हुआ है। आपका बाल्यकाल ग्राम में बीता। साधारण शिक्षण के बाद आपकी शिक्षा आगरा में सम्पन्न हुई और वहीं अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीमान् रतनचंदजी चोरिडया की देखरेख में व्यापार-व्यवसाय प्रारम्भ किया। अपनी प्रतिभा और कुशलता से व्यापारिक क्षेत्र में अच्छी प्रतिष्ठा उपार्जित की।

तत्पश्चात् आपने सं. २००८ में दक्षिण भारत के प्रमुख व्यवसाय केन्द्र मद्रास में फाइनेन्स का कार्य प्रारम्भ किया। आज तो वहां के इने-गिने फाइनेन्स व्यवसाइयों में से आप एक हैं।

आपकी तरह ही धार्मिक सामाजिक कार्यों में सोत्साह सहयोग देने वाले युवक आपके सुपुत्र श्री किशोरचंद जी भी उदीयमान व्यवसायियों में गणनीय माने जाते हैं।

व्यावसायिक क्षेत्र में जैसे-जैसे ख्याति फैलती गई, वैसे-वैसे आपने धार्मिक और सामाजिक कार्यों में तन-मन-धन से योग देने की कीर्ति भी उपार्जित की है। शुभ कार्यों में सदैव अर्जित अर्थ को विनियोजित करते रहते हैं। संग्रह नहीं अपितु संविभाग करने की दृष्टि से मद्रास जैसे महानगर की प्रत्येक जनोपयोगी

प्रवृत्ति से आप संबद्ध हैं। अनेक सार्वजनिक संस्थाओं को एक साथ पुष्कल अर्थ प्रदान कर आपने स्थायी बना दिया है।

आप मद्रास एवं अन्य स्थानों की जैन संस्थाओं से किसी न किसी रूप से संबन्धित हैं। अध्यक्ष, मंत्री आदि आदि अधिकारी होने के साथ ऐसी भी संस्थायें हैं, जिनके प्रबन्ध मंडल के सदस्य न होते हुए भी प्रमुख संचालक हैं। कितपय संस्थाओं के नाम, जिनके साथ आपका निकटतम सम्बन्ध है, इस प्रकार हैं-

श्री एस. एस.जैन एज्यूकेशन सोसायटी, मद्रास
श्री राजस्थानी एसोशियेशन, मद्रास
श्री राजस्थानी श्वे. स्था. जैन सेवासंघ, मद्रास
श्री वर्धमान सेवासमिति, नोखा
श्री भगवान् महावीर अहिंसा– प्रचार –संघ
स्वामीजी श्री हजारीमलजी म. जैन ट्रस्ट ,नोखा

सदैव संत-सितयां जी की सेवा करना भी आपके जीवन का ध्येय है। आपकी धर्मपत्नी भी धर्मश्रद्धा की प्रतिमूर्ति एवं तपस्विनी हैं।

आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री रतनचंदजी और बादलचंदजी भी धार्मिक वृत्ति के हैं। वे भी प्रत्येक सत्कार्य में अपना सहयोग प्रदान करते हैं।

आपका परिवार स्वामीजी श्री व्रजलालजी म. सा., पूज्य युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी म.सा. 'मधुकर' का अन्यन्य भक्त है। आपने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में श्री आगमप्रकाशन समिति को अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है। एतदर्थ समिति आपकी आभारी है एवं अपेक्षा रखती है कि भविष्य में भी समिति को आपका अपूर्व सहयोग मिलता रहेगा।

मंत्री श्री आगम-प्रकाशन-समिति, ब्यावर

आदिवचन

विश्व के जिन दार्शनिकों—दृष्टाओं/चिन्तकों ने ''आत्मसत्ता'' पर चिन्तन किया है, या आत्म-साक्षात्कार किया है, उन्होंने पर-हितार्थ आत्म-विकास के साधनों तथा पद्धतियों पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। आत्मा तथा तत्सम्बन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन आज आगम/पिटक/वेद/उपनिषद् आदि विभिन्न नामों से विश्रुत है।

जैनदर्शन की यह धारणा है कि आत्मा के विकारों—राग-द्वेष आदि को साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है और विकार जब पूर्णत: निरस्त हो जाते हैं तो आत्मा की शक्तियाँ ज्ञान/सुख/वीर्य आदि सम्पूर्ण रूप में उद्घाटित, उद्भासित हो जाती हैं। शक्तियों का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है और सर्वज्ञ/आप्त-पुरुष की वाणी वचन/कथन प्ररूपणा —''आगम'' के नाम से अभिहित होती है। आगम अर्थात् तत्त्वज्ञान, आत्म-ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/आप्तवचन।

सामान्यतः सर्वज्ञ के वचनों/वाणी का संकलन नहीं किया जाता, वह बिखरे सुमनों की तरह होती है, परन्तु विशिष्ट अतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, संघीय जीवन पद्धित में धर्म-साधना को स्थापित करते हैं, वे धर्मप्रवर्तक/अरिहंत या तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकर देव की जनकल्याणकारिणी वाणी को उन्हीं के अतिशय सम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर संकलित कर ''आगम'' या शास्त्र का रूप देते हैं अर्थात् जिन-वचनरूप सुमनों की मुक्त वृष्टि जब मालारूप में ग्रथित होती है तो वह ''आगम'' का रूप धारण करती है। वही आगम अर्थात् जिन-प्रवचन आज हम सब के लिए आत्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत है।

''आगम'' को प्राचीनतम भाषा में ''गणिपिटक'' कहा जाता था। अरिहंतों के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र— द्वादशांग में समाहित होते हैं और द्वादशांग के आचारांग-सूत्रकृतांग आदि अंग-उपांग आदि अनेक भेदोपभेद विकसित हुए हैं। इस द्वादशांगी का अध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक और उपादेय माना गया है। द्वादशांगी में भी बारहवाँ अंग विशाल एवं समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका अध्ययन बहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एवं श्रुतसम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिये सामान्यतः एकादशांग का अध्ययन साधकों के लिए विहित हुआ तथा इसी ओर सबकी गित/मित रही।

जब लिखने की परम्परा नहीं थी, लिखने के साधनों का विकास भी अल्पतम था, तब आगमों/शास्त्रों/को स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा से कंठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवतः इसीलिए आगम ज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया और इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दों का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष बाद तक आगमों का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही आधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य, गुरु परम्परा का विच्छेद, दुष्काल-प्रभाव आदि अनेक कारणों से धीरे-धीरे आगमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणों के लिये यह जहाँ चिन्ता का विषय था, वहाँ चिन्तन की तत्परता एवं जागरूकता को चुनौती भी थी, वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के संरक्षण

हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणों का एक सम्मेलन बुलाया और स्मृति-दोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को सुरक्षित एवं संजोकर रखने का आह्वान किया। सर्व-सम्मित से आगमों को लिपि-बद्ध किया गया।

जिनवाणी को पुस्तकारूढ़ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुत: आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिए एक अवर्णनीय उपकार सिद्ध हुआ। संस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरिनर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) में आचार्य श्री देविद्धिंगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ। वैसे जैन आगमों की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी; पर लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास था। आज प्राप्त जैन सूत्रों का अन्तिम स्वरूप-संस्कार इसी वाचना में सम्पन्न किया गया था।

पुस्तकारूढ़ होने के बाद आगमों का स्वरूप मूल रूप में तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोष, श्रमण-संघों के आन्तरिक मतभेद, स्मृतिदुर्बलता, प्रमाद एवं भारतभूमि पर बाहरी आक्रमणों के कारण विपुल ज्ञान भण्डारों का विध्वंस आदि अनेकानेक कारणों से आगम ज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एवं विलुप्त होने से नहीं रुकी। आगमों के अनेक महत्त्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए। परिपक्व भाषाज्ञान के अभाव में, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नहीं होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते। इस प्रकार अनेक कारणों से आगम की पावन धारा संकुचित होती गई।

विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी में वीर लोंकाशाह ने इस दिशा में क्रांतिकारी प्रयत्न किया। आगमों के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुन: चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद उसमें भी व्यवधान उपस्थित हो गये। साम्प्रदायिक-विद्वेष, सैद्धांतिक विग्रह तथा लिपिकारों का अत्यल्प ज्ञान आगमों की उपलब्धि तथा उसके सम्यक् अर्थबोध में बहुत बड़ा विघ्न बन गया। आगम-अभ्यासियों को शुद्ध प्रतियां मिलना भी दुर्लभ हो गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठकों को कुछ सुविधा प्राप्त हुई। धीरे-धीरे विद्वत्-प्रयासों से आगमों की प्राचीन चूिणयां, निर्युक्तियां, टीकायें आदि प्रकाश में आईं और उनके आधार पर आगमों का स्पष्ट-सुगम भावबोध सरल भाषा में प्रकाशित हुआ। इससे आगम स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासु जनों को सुविधा हुई। फलत: आगमों के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढ़ी है। मेरा अनुभव है, आज पहले से कहीं अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ी है, जनता में आगमों के प्रति आकर्षण व रुचि जागृत हो रही है। इस रुचि-जागरण में अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानों तथा भारतीय जैनेतर विद्वानों की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते हैं।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताब्दी से व्यवस्थित चल रहा है। इस महनीय श्रुत-सेवा में अनेक समर्थ श्रमणों, पुरुषार्थी विद्वानों का योगदान रहा है। उनकी सेवायें नींव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हों, पर विस्मरणीय तो कदापि नहीं, स्पष्ट व पर्याप्त उल्लेखों के अभाव में हम अधिक विस्तृत रूप में उनका उल्लेख करने में असमर्थ हैं, पर विनीत व कृतज्ञ तो हैं ही। फिर भी स्थानकवासी जैन

परम्परा के कुछ विशिष्ट-आगम श्रुत-सेवी मुनिवरों का नामोल्लेख अवश्य करना चाहूँगा।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमों — ३२ सूत्रों का प्राकृत से खड़ी बोली में अनुवाद किया था। उन्होंने अकेले ही बत्तीस सूत्रों का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष व १५ दिन में पूर्ण कर एक अद्भुत कार्य किया। उनकी दृढ़ लगनशीलता, साहस एवं आगम ज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वत: परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय में प्रकाशित भी हो गये।

इससे आगम पठन बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी, तेरापंथी समाज तो विशेष उपकृत हुआ। गुरुदेव श्री जोरावरमलंजी महाराज का संकल्प

में जब प्रात: स्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमलजी म. के सान्निध्य में आगमों का अध्ययन अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलांक की टीकाओं से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्हीं के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेव श्री ने कई बार अनुभव किया — यद्यपि यह संस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी हैं, अब तक उपलब्ध संस्करणों में प्राय: शुद्ध भी हैं, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठों में व वृत्ति में कहीं-कहीं अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिये दुरूह तो हैं ही। चूंकि गुरुदेव श्री स्वयं आगमों के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हें आगमों के अनेक गूढार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्त व तर्क-प्रवण थी, अत: वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमों का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्य ज्ञान वाले श्रमण-श्रमणी एवं जिज्ञासुजन लाभ उठा सकें। उनके मन की यह तड़प कई बार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थितियों के कारण उनका यह स्वप्त- संकल्प साकार नहीं हो सका, फिर भी मेरे मन में प्रेरणा बनकर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल में आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज, श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य जैनधर्मदिवाकर आचार्य श्री आत्माराम जी म., विद्वद्रत्ल श्री घासीलाल जी म. आदि मनीषी मुनिवरों ने जैन आगमों की हिन्दी, संस्कृत, गुजराती आदि में सुन्दर विस्तृत टीकायें लिखकर या अपने तत्त्वावधान में लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान् श्रमण परमश्रुतसेवी स्व. मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम सम्पादन की दिशा में बहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानों ने उसे बहुत ही सराहा। किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उसमें व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदिप आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान में आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्चकोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान में तेरापंथ सम्प्रदाय में आचार्य श्री तुलसी एवं युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व में आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए हैं उन्हें देखकर विद्वानों को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठ- निर्णय में काफी मतभेद की गुंजाइश है। तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालाल जी म. ''कमल'' आगमों की वक्तव्यता को अनुयोगों में वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमों में उनकी कार्यशैली की विशदता एवं मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान् पं. श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, विश्रुत-मनीषी श्री दलसुखभाई मालविणया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमों के आधुनिक सम्पादन की दिशा में स्वयं भी कार्य कर रहे हैं तथा अनेक

विद्वानों का मार्गदर्शन कर रहे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब कार्य-शैली पर विहंगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन में एक संकल्प उठा। आज प्राय: सभी विद्वानों की कार्यशैली काफी भिन्नता लिये हुए है। कहीं आगमों का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है, कहीं आगमों की विशाल व्याख्यायें की जा रही हैं। एक पाठक के लिये दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को तो सरलतापूर्वक आगम ज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ मध्यम मार्ग का अनुसरण आवश्यक है। आगमों का एक ऐसा संस्करण होना चाहिये जो सरल हो, सुबोध हो, संक्षिप्त और प्रामाणिक हो। मेरे स्वर्गीय गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य में रखकर मैंने ५-६ वर्ष पूर्व इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की थी, सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि. सं. २०३६ वैशाख शुक्ला दशमी, भगवान् महावीर कैवल्यदिवस को यह दृढ़ निश्चय घोषित कर दिया और आगम बत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ भी। इस साहसिक निर्णय में गुरुभ्राता शासनसेवी स्वामी श्री ब्रजलाल जी म. की प्रेरणा/प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन मेरा प्रमुख सम्बल बना है। साथ ही अनेक मुनिवरों तथा सद्-गृहस्थों का भक्ति-भाव भरा सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका नामोल्लेख किये बिना मन सन्तुष्ट नहीं होगा। आगम-अनुयोग शैली के सम्पादक मुनि श्री कन्हैयालालजी म. 'कमल', प्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी म. शास्त्री, आचार्य श्री आत्मारामजी म. के प्रशिष्य भंडारी श्री पदमचन्दजी म. एवं प्रवचनभूषण श्री अमरमुनिजी, विद्वद्रत्न श्री ज्ञानमुनिजी म.; स्व. विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकुँवरजी म. की सुशिष्याएँ महासती दिव्यप्रभाजी एम.ए.पी-एच.डी., महासती मुक्तिप्रभाजी तथा विदुषी महासती श्री उमरावकुंवरजी म. 'अर्चना', विश्रुत विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया, सुख्यात विद्वान् पं. श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल, स्व. पं. श्री हीरालालजी शास्त्री, डा. छगनलाल जी शास्त्री एवं श्रीचन्द जी सुराणा "सरस" आदि मनीषियों का सहयोग आगम सम्पादन के इस दुरूह कार्य को सरल बना सका है। इन सभी के प्रति मन आदर व कृतज्ञ भावना से अभिभूत है। इसी के साथ सेवा-सहयोग की दृष्टि से सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार एवं महेन्द्रमुनि कां साहचर्य-सहयोग, महासती श्री कानकुंवरजी, महासती श्री झणकारकुंवरजी का सेवाभाव सदा प्रेरणा देता रहा है। इस प्रसंग पर इस कार्य के प्रेरणास्रोत स्व. श्रावक चिमनसिंहजी लोढा, स्व. श्री पुखराजजी सिसोदिया का स्मरण भी सहज रूप में हो आता है, जिनके अथक प्रेरणा-प्रयत्नों से आगम समिति अपने कार्य में इतनी शीघ्र सफल हो रही है। दो वर्ष के इस अल्पकाल में ही दस आगम ग्रन्थों का मुद्रण तथा करीब १५-२० आगमों का अनुवाद-सम्पादन हो जाना हमारे सब सहयोगियों की गहरी लगन का द्योतक है।

मुझे सुदृढ़ विश्वास है कि परम श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री हजारीमल जी महाराज आदि तपोपूत आत्माओं के शुभाशीर्वाद से तथा हमारे श्रमणसंघ के भाग्यशाली नेता राष्ट्र-संत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म. आदि मुनिजनों के सद्भाव-सहकार के बल पर यह संकल्पित जिनवाणी का सम्पादन-प्रकाशन कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

इसी शुभाशा के साथ -----

—मुनि मिश्रीमल ''मधुकर'' (युवाचार्य)

आचार्यसम्राट् श्री आत्मारामजी महाराज

[जीवन और साधना की एक संक्षिप्त झाँकी]

हजारों जीव प्रतिक्षण जन्म लेते हैं और मनुष्य का शरीर धारण करके इस धरातल पर अवतिरत होते रहते हैं, परन्तु, सबकी जयन्तियाँ नहीं मनाई जातीं। ना ही सबको श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। आदर उन्हीं को सम्प्राप्त होता है जो अपने लिए नहीं, समाज के लिए जीते हैं। जन-जीवन के उत्थान, निर्माण एवं कल्याण के लिए जो अपनी समस्त जीवन-शक्तियां समर्पित कर देते हैं। वे स्वयं जहां आत्म-कल्याण में जागरूक रहते हैं, वहां वे दूसरों की हित-साधना का भी पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं।

आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज उन महापुरुषों में से एक थे जिनका जीवन सदा लोकोपकारी जीवन रहा है। जीवन के ७८ वर्षों तक वे अहिंसा, संयम और तप के दीप जगाते रहे। इनकी जीवन सरिता जिधर से गुजर गई वहीं पर एक अद्भुत सुषमा छा गई। आज भी उनकी वाणी तथा साहित्य जन-जीवन के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम दे रहे हैं।

जन्मकाल

आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज वि. सं. १९३९ भादों सुदी द्वादशी को पंजाब-प्रान्तीय राहों के प्रसिद्ध व्यापारी सेठ मंशारामजी चोपड़ा के घर पैदा हुए। माताजी का नाम परमेश्वरी देवी था। सोने जैसे सुन्दर लाल को पाकर माता-पिता फूले नहीं समा रहे थे। पुण्यवान सन्तित भी जन्म-जन्मान्तर के पुण्य से ही प्राप्त हुआ करती है।

संकट की घड़ियाँ

आचार्य श्री का बचपन बड़ा ही संकटमय रहा। असातावेदनीय कर्म के प्रहारों ने इन्हें बुरी तरह से परेशान कर दिया था। दो वर्ष की स्वल्प आयु में आपकी माताजी का स्वर्गवास हो गया। आठ वर्ष की आयु में पिता परलोकवासी हो गए। मात्र एक दादी थी जिसकी देख-रेख में आपका शैशवकाल गुजर रहा था। दो वर्षों के अनन्तर उनका भी देहांत हो गया। इस तरह आचार्य देव का बचपन संकटों की भीषणता ने पूरी तरह से आक्रांत कर लिया था। कर्म बड़े बलवान होते हैं। इनसे कौन बच सकता है ?

संयम-साधना की राह पर

माता-पिता और दादी के वियोन ने आचार्य-देव के मानस को संसार से बिल्कुल उपरत कर दिया था। संसार की अनित्यता साकार हो कर आपके सामने नाचने लगी थी। फलत: आत्म-साधना और प्रभु-भक्ति का महापथ ही आपको सिच्चदानन्ददायी अनुभव हुआ था। अन्त में ११ वर्ष की स्वल्प आयु में आप सम्वत् १९५१ को बनूड में महामिहम गुरुदेव पूज्य श्री स्वामी शालिगरामजी महाराज के चरणों में दीक्षित हो गए।

साहित्यसेवा

आपका शास्त्र-स्वाध्याय बड़ा ही व्यापक और तलस्पर्शी था। जैन शास्त्रों के महासागर में कौनसा मोती कहां पड़ा है, यह आपके ज्ञान-नेत्रों से ओझल नहीं था। आपके शास्त्रीय वैदुष्य की विलक्षता के कारण ही जैन समाज ने आपको पंजाब सम्प्रदाय के उपाध्याय पद से विभूषित किया। आपने ६० के लगभग ग्रन्थ लिखे, बड़े-बड़े शास्त्रों का भाषानुवाद किया। 'तत्त्वार्थसूत्र जैनागम-समन्वय' आप की अपूर्व रचना है। जर्मन, फ्रांस, अमरीका तथा कनाड़ा के विद्वानों ने भी इस रचना का हार्दिक अभिनन्दन किया था। जैन, बौद्ध और वैदिक शास्त्रों के आप अधिकारी विद्वान् थे। आपकी साहित्य-सेवा जैन-जगत् के साहित्य-गगन पर सूर्य की तरह सदा चमचमाती रहेगी।

सहिष्णुता के महासागर

वीरता, धीरता तथा सिहष्णुता के आपश्री महासागर थे। भयंकर से भयंकर संकटकाल में भी आपको किसी ने परेशान नहीं देखा। एक बार लुधियाना में आप की जांघ की हड्डी टूट गयी, उसके तीन टुकड़े हो गये। लुधियाना के क्रिश्चियन हॉस्पीटल में डा. वर्जन ने आपका ऑपरेशन किया। ऑपरेशन-काल में आपको बेहोश नहीं किया गया था, तथापि आप इतने शांत और गम्भीर रहे कि डॉ. वर्जन दंग रहे गये। बरबस उनकी जबान से निकला कि ईसा की शान्ति की कहानियाँ सुना करते थे, परन्तु इस महापुरुष के जीवन में उस शान्ति के साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ।

जीवन के संध्याकाल में आपको कैंसर के रोग ने आक्रान्त कर लिया था। तथापि आप सदा शान्त रहते थे। भयंकर वेदना होने पर भी आपके चेहरे पर कभी उदासीनता या व्याकुलता नहीं देखी। लुधियाना जैन बिरादरी के लोग जब डॉक्टर को लाए और डॉक्टर ने जब पूछा—महाराज, आप को क्या तकलीफ है? तब आप ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया। आप बोले—डाक्टर साहब! मुझे तो कोई तकलीफ नहीं, जो लोग आप को लाए हैं, उनको आवश्य तकलीफ है। उनका ध्यान करें। महाराजश्री जी की सिहष्णुता देखकर सभी लोग विस्मित हो रहे थे और कह रहे थे कि कैंसर-जैसे भयंकर रोग के होने पर भी गुरुदेव बिल्कुल शांत हैं,जैसे कोई बात ही नहीं है।

प्रधानाचार्य पद

वि. सं. २००३ लुधियाना में आप पंजाब के स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के आचार्य बनाए गए और वि. सं. २००९ में सादड़ी में आपको श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के प्रधानाचार्य पद से विभूषित किया गया। सचमुच आपका वैदुष्यपूर्ण व्यक्तित्व यत्र, तत्र और सर्वत्र ही प्रतिष्ठा प्राप्त करता रहा है। क्या जैन, क्या अजैन, सभी आपकी आचार तथा विचार सम्बन्धी गरिमा की महिमा को गाते नहीं थकते थे। आज भी लोग जब आपके अगाध शास्त्रीय ज्ञान की चर्चा करते है तो श्रद्धा से झूम उठते हैं।

सफल प्रवचनकार

आचार्य-प्रवर अपने युग के एक सफल प्रवक्ता एवं प्रवचनकार रहे हैं। शास्त्रीय तथ्य एवं सत्य ही आपके प्रवचनों का आधार होते थे। उनसे हृदयस्पर्शी ठोस तत्त्व श्रोता को प्राप्त होता था। पं. जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, श्री प्रतापेंसिंह कैरो, श्री भीमसेन सच्चर प्रभूति राष्ट्र के महान् नेताओं ने भी आपके प्रवचनों का लाभ लिया था। सचमुच आपकी वाणी में निराला माधुर्य था, सरलता इतनी कि साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी उसे अच्छी तरह समझ लेता था। आपके मंगलमय उपेदश आज भी जनजीवन को नवजागरण का सन्देश दे रहे हैं।

आत्म शताब्दी वर्ष

वि. सं. २०३९ आपका जन्म शताब्दी वर्ष है। यह पावन वर्ष है। ऐतिहासिक है। यह वर्ष विशेषरूप से पूज्य गुरुदेव के चरणों में श्रद्धासुमन समर्पित करने का है।

स्व. गुरुदेव की जीवन की महान्तम उपलब्धि थी—जैन आगम साहित्य का विद्वानों तथा सर्वसाधारण के लिए उपयोगी संस्करण। यही उनकी हार्दिक भावना थी कि जैनआगमज्ञान का यथार्थ प्रसार हो, जन-जन के हाथों में आत्मज्ञान की मूल्यवान् म्णियां पहुँचें। गुरुदेव श्री की इसी भावना को साकार रूप देने हेतु मैंने प्रज्ञापना सूत्र का अनुवाद-विवेचन करने का दायित्व लिया है। अपने श्रद्धेय गुरुदेव के प्रति यही मेरी श्रद्धाञ्जलि है।

— ज्ञान मुनि प्रथम संस्करण से 1

सम्पादकीय

[प्रथम संस्करण से]

नामकरण

'पण्णवण्णा' अथवा 'प्रज्ञापना', ^१ जैन आगमसाहित्य का चतुर्थ उपांग है। प्रस्तुत उपांग के संकलियता श्री श्यामाचार्य ने इसका नाम^२ 'अध्ययन' दिया है, जो इसका सामान्य नाम है, इसका विशिष्ट और प्रचित्त नाम 'प्रज्ञापना' है। आचार्यश्री ने स्वयं 'प्रज्ञापना' का परिचय देते हुए कहा है—चूंकि भगवान् महावीर ने सर्वभावों की प्रज्ञापना (प्ररूपणा) उपदिष्ट की है; उसी प्रकार मैं भी (प्रज्ञापना) करने वाला हूँ। अतएव इसका विशेष नाम प्रज्ञापना है। 'उत्तराध्ययनसूत्र' की भांति प्रस्तुत आगम का पूर्ण और सार्थक नाम भी 'प्रज्ञापनाध्ययन' हो सकता है।

प्रज्ञापना-शब्द का उल्लेख

श्रमण भगवान् महावीर द्वारा दी गई देशनाओं का वास्तिवक नाम 'पन्नवेति', परूवेति' आदि क्रियाओं के आधार पर 'प्रज्ञापना' या 'प्ररूपणा' है। उन्हीं देशनाओं का आधार लेकर प्रस्तुत उपांग की रचना होने से इसका नाम 'प्रज्ञापना' रखा हो, ऐसा ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त इसी उपांग में तथा अन्य अंगशास्त्रों में यत्र–तत्र प्रश्नोत्तरों में, अतिदेश में, तथा संवादों में 'पण्णत्ते, पण्णत्तं पण्णत्ता" आदि शब्दों का अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। भगवतीसूत्र में आर्यस्कन्धक के प्रश्नों का समाधान करते हुए स्वयं भगवान् महावीर ने कहा है–एवं खलु मए खंधया! इन सब पर से भगवान महावीर के उपदेशों के लिए 'प्रज्ञापना' शब्द का प्रयोग स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

प्रज्ञापना की महत्ता और विशेषता

सम्पूर्ण जैन-आगमसाहित्य में जो स्थान पंचम अंगुशास्त्र-भगवती व्याख्याप्रज्ञप्ति का है, वही उपांगशास्त्रों

१. 'नन्दीसूत्र' अंगवाह्यसूची

२. अञ्झयणिमणं चित्तं—प्रज्ञापना. गा. ३

उवदंसिया भगवया पण्णवणा सव्वभावाणं......
 जह विण्णयं भगवया अहमिव तह वण्णइस्सामि॥ — प्रज्ञापना, गाथा २-३

४. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति पत्र १ (ख) भगवती. श. १६ उ. ६

५. यथा-'कित ण भंते! किरियाओ पण्णत्ताओं' — प्रज्ञापना पद २२, सू. १५६७ इत्यादि सूत्रों में यत्रतत्र 'पण्णत्ते, पण्णत्तं या पण्णत्ता-पण्णत्ताओ' पद मिलते हैं।

६. भगवतीसूत्र २।१।९०

में प्रज्ञापना का है। बिल्क भगवतीसूत्र में यत्र-तत्र अनेक स्थलों में 'जहा पण्णवणाए' कह कर प्रज्ञापनासूत्र के १, २, ५, ६, ११, १५, १७, २४, २५, २६, और २७ वें पद से प्रस्तुत विषय की पूर्ति करने हेतु सूचना दी गई है यह प्रज्ञापना की विशेषता है। इसके अतिरिक्त प्रज्ञापना उपांग होने पर भी भगवती आदि का सूचन इसमें क्वचित् ही किया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रज्ञापना में जिन विषयों की चर्चा की गई है, उन विषयों का इसमें सांगोपांग वर्णन है। इस पर से प्रज्ञपनासूत्र की गहनता और व्यापक सिद्धान्त-प्ररूपणा स्पष्टत: परिलक्षित होती है। '

इसके अतिरिक्त पंचम अंगशास्त्र व्याख्याप्रज्ञित का 'भगवती' विशेषण है। इसी प्रकार प्रस्तुत उपांगशास्त्र के प्रत्येक पद की समाप्ति पर 'पण्णवणाए भगवईए' कह कर प्रज्ञापना के लिए भी भगवती विशेषण प्रयुक्त किया गया है। यह विशेषण 'प्रज्ञापना' की महत्ता का सूचक है। कहा जाता है कि भगवान् महावीर के पश्चात् २३ वें पट्टधर भगवान् आर्यश्याम पूर्वश्रुत में निष्णात थे। १० उन्होंने प्रज्ञापना की रचना में अपनी विशिष्ट कलाकुशलता प्रदर्शित की, जिसके कारण अंग और उपांग में उन विषयों की विशेष जानकारी के लिए 'प्रज्ञापना' के अवलोकन का सूचन किया गया है।

प्रज्ञापना का अर्थ

'प्रज्ञापना' क्या है? इसके उत्तर में स्वयं शास्त्रकार ने बताया है—'जीव और अजीव के सम्बन्ध में जो प्ररूपणा है, वह 'प्रज्ञापना' है।^{११}

प्रस्तुत आगम के प्रसिद्ध वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि के अनुसार 'प्रज्ञापना' शब्द के प्रारम्भ में जो 'प्र' उपसर्ग है, वह भगवान् महावीर के उपदेश की विशेषता सूचित करता है। 'रे अर्थात्—जीव, अजीव आदि तत्वों का जो सूक्ष्म विश्लेषण सर्वज्ञ भगवान् महावीर ने किया है, उतना सूक्ष्म विश्लेषण उस युग के किन्ही अन्यतीर्थिक धर्माचार्यों के उपदेश में उपलब्ध नहीं होता।

प्रज्ञापना का आधार

आचार्य मलयगिरि ने इस आगम को समवायांगसूत्र का उपांग^{१३} बताया है। उसका कारण यह प्रतीत

७. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भा. २, पृ. ८४

८. जैन आगम-साहित्य, मनन और मीमांसा पू. २३०-२३१

९. 'पण्णवणासुत्त' भा. २ प्रस्तावना

१०. (क) जैन-आगमसाहित्य मनन और मीमांसा पृ. २३१

⁽ख) प्रज्ञापना. मलय वृत्ति, पत्रांक ७२, ४७, ३८५

⁽ग) सर्वेषामि प्रावचनिकसूरीणां मतानि भगवान् आर्यश्याम उपदिष्टवान्-प्रज्ञापना, पृ. ३८५

११. पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) पृ. १

१२. प्रज्ञापना, मलयवृत्ति पत्रांक १-२

१३. इदं च समवायाख्यस्य चतुर्थांगस्योपांगम् तदुक्तार्थप्रतिपादनात् ।—प्रज्ञापना. म. वृत्ति प. १

होता है कि समवायांग में जीव, अजीव आदि तत्त्वों का मुख्यरूप से निरूपण है और प्रज्ञापना में भी जीव, अजीव आदि तत्त्वों से सम्बन्धित वर्णन है। अत: इसे समवायांग का उपांग मानने में भी कोई आपत्ति नहीं है।

प्रज्ञापनासूत्र के संकलियता श्री श्यामाचार्य ने प्रज्ञापना को दृष्टिवाद का निष्कर्ष^{१४} बताया है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि दृष्टिवाद के विस्तृत वर्णन में से सारभूत वर्णन प्रज्ञापना में लिया गया है। दृष्टिवाद आज हमारे सामने उपलब्ध नहीं है, किन्तु सम्भव है, दृष्टिवाद में दृष्टिदर्शन से सम्बन्धित वर्णन हो, तथापि इतना तो कहा जा सकता है कि प्रज्ञापना में वर्णित विषयवस्तु का ज्ञानप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद आदि के साथ मेल खाता है। १५ षट्खण्डागम और प्रज्ञापना दोनों का विषय प्राय: मिलता जुलता है। षट्खण्डागम की धवलाटीका में षट्खण्डागम का सम्बन्ध अग्रायणीपूर्व के साथ जोड़ा गया है। १६ अत: प्रज्ञापना का सम्बन्ध भी अग्रायणीपूर्व के साथ संगत हो सकता है।

विषयवस्तु की गहनता एवं दुरूहता

दृष्टिवाद एवं पूर्वों का विषय कितना गहन और दुरूह है, यह जैनागम के अभ्यासी विद्वान् जानते हैं। उन्हीं में से साररूप में उद्धृत करना अथवा भगवान् महावीर द्वारा उपिदृष्ट सर्वभावों की प्रज्ञापना के सदृश प्रज्ञापना करना कितना कठिन और दुरूह है, यह अनुमान लगाया जा सकता है।

इस पर से प्रज्ञापनासूत्र की विषयवस्तु की गहनता एवं दुरूहता का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है। यद्यपि प्रज्ञापनासूत्र की विषयबद्ध संकलना करने में और उसे छत्तीस पदों में विभक्त करने में श्री श्यामाचार्य ने बहुत ही कुशलता का परिचय दिया है, तथापि कहीं-कहीं भंगजाल इतना जटिल है अथवा विषयवस्तु की प्ररूपणा इतनी गूढ है कि पाठक जरा-सा असावधान-युक्त रहा कि वह विषयवस्तु के तथ्य-सत्य से दूर चला जाएगा, और वस्तुतत्व को नहीं पकड़ सकेगा।

प्रज्ञापना के छत्तीस पदों में से कई पद बहुत ही विस्तृत हैं, और कई पद अत्यन्त संक्षिप्त हैं। ये छत्तीस पद एक प्रकार से छत्तीस प्रतिपाद्य विषय के प्रकरण हैं, ^{१७} जिनके लिए प्रत्येक प्रकरण के अन्त में पदशब्द का प्रयोग किया गया है।

रचनाशैली

प्रस्तुत सम्पूर्ण उपांगशास्त्र की रचना प्रश्नोत्तरशैली में हुई है। प्रारम्भ से ८१ वें सूत्र तक प्रश्नकर्ता और

१४. अञ्झयणमिणं चित्तं सुयरयणं दिट्टिवायणीसंदं। —प्रज्ञापना. गा. ३

१५. पण्णवणासुत्तं भा. २, प्रस्तावना प्. ९

१६. षठ्खण्डागम १, प्रस्तावना पू ७२

१७. 'पदं प्रकरणमर्थाधिकार, इति पर्यायाङ—प्रज्ञाापना. म. वृत्ति, पत्र ६

१८. पण्णवणासुत्तं भा. २, प्रस्तावना पृ. १०-११

उत्तरदाता का कोई परिचय नहीं मिलता। इसके पश्चात् गणधर गौतम और भगवान् महावीर के प्रश्नोत्तररूप में वर्णन किया गया है। कहीं-कहीं बीच बीच में सामान्य प्रश्नोत्तर हैं।

जिस प्रकार प्रारम्भ में समग्रशास्त्र की अधिकारगाथाएँ दी गई हैं, उसी प्रकार कितने ही पदों के प्रारम्भ में विषय-संग्रहणी गाथाएँ भी प्रस्तुत की गई हैं। जैसे ३, १८, २० एवं २३ वें पद के प्रारम्भ और उपसंहार में गाथाएँ दी गई हैं, इसी प्रकार १० वें पद के अन्त में १८ और ग्रन्थ के मध्य में, यथावश्यक गाथाएँ दी गई है, इसमें प्रक्षित गाथाओं को छोड़कर कुल २३१ गाथाएँ हैं और शेष गद्यपाठ है। प्रज्ञापनासूत्र में जो संग्रहणी गाथाएँ हैं, उनके रचियता कौन हैं? इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता। प्रस्तुत सम्पूर्ण आगम का श्लोकप्रमाण ७८८७ है। १९९

इसमें कहीं-कहीं सूत्रपाठ बहुत लम्बे-लम्बे हैं, कहीं अतिदेश युक्त अतिसंक्षिप्त हैं। कहीं-कहीं एक ही विषय की पुनरावृत्ति भी हुई है। प्राय: क्रमबद्ध संकलना है, परन्तु कहीं-कहीं व्युत्क्रम से भी संकलना की गई है।

प्रज्ञापना के समग्र पदों का विषय जैन सिद्धान्त से सम्मत है। भगवतीसूत्र में जैसे कई उद्देशकों या प्रकरणों के प्रारम्भ में कहीं-कहीं अन्यतीर्थिकमत देकर तदनन्तर स्वसिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है, वैसे प्रस्तुत प्रज्ञापनासूत्र में नहीं दिया गया है। इसमें सर्वत्र प्राय: प्रश्नोत्तरशैली में स्वसिद्धान्तविषयक प्रश्न एवं उत्तर अंकित किये गये हैं।

आचार्यश्री मलयगिरि ने प्रज्ञापना में प्ररूपित विषयों का सम्बन्ध जीव, अजीव आदि सात तत्वों के निरूपण के साथ इस प्रकार संयोजित किया है-

१-२ जीव-अजीव = पद १, ३, ५, १० और १३ में

३ आस्रव = पद १६ और २२ में

४ बन्ध = पद२३में

५-६-७ संवर, निर्जरा और मोक्ष = पद ३६ में

इन पदों के सिवाय शेष पदों में कहीं-कहीं किसी न किसी तत्त्व का निरूपण है। आचार्य मलयगिरि ने जैन दृष्टि से द्रव्य का समावेश प्रथम पद में, क्षेत्र का द्वितीय पद में, काल का चतुर्थ पद में और भाव का शेष पदों में समावेश किया है। २० इस ग्रन्थ में विषयों का निरूपण पहले लक्षण बनाकर नहीं किया गया, अपितु विभाग-उपविभाग द्वारा बताया गया है। अतः यह ग्रन्थ विभाग-प्रधान है। लक्षणप्रधान नहीं। २१

प्रज्ञापना—उपांग आर्य श्यामाचार्य की संकलना है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इसमें अंकित

१९. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १ पृ. ४४६

२०. प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्रांक ५

२१. पण्णवणासुत्तं भा. २, प्रस्तावना पृ. १३

सभी बातें उन्होंने स्वयं विचार करके प्रस्तुत की हैं। उनका प्रयोजन तो श्रुतपरम्परा में से तथ्यों का संग्रह करना और उनकी संकलना अमुक प्रकार से करना था। जैसे—प्रथम पद में जीव के जो भेद बताए हैं, उन्हों भेदों को लेकर द्वितीय 'स्थान' आदि द्वारों को घटित करके प्रस्तुत नहीं किया बल्कि स्थान आदि द्वारों का जो विचार जिन विविध रूपों में पूर्वाचार्यों द्वारा प्रस्तुत उनके समक्ष विद्यमान था, उन्होंने उन-उन द्वारों एवं पदों में उन-उन विचारों का संग्रह एवं संकलन किया। इसलिए यह कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न काल में जो विचार किया, और परम्परा से श्यामाचार्य को जो प्राप्त हुआ, उसे उन्होंने संगृहीत-संकलित किया। इस दृष्टि से विचार करें तो प्रज्ञापना उस काल की विचार-परम्परा का व्यवस्थित संग्रह है। यही कारण है कि जब आगम लिपिबद्ध किये गये, तब उस-उस विषय की समग्र विचारणा के लिए प्रज्ञापनासूत्र का अतिदेश किया गया।

जैनागमों के मुख्य दो विषय हैं—जीव और कर्म। एक विचारणा जीव को केन्द्र में रखकर उसके अनेक विषयों की—(जैसे कि उसके कितने प्रकार हैं, वे कहाँ-कहाँ रहते हैं ? उनका आयुष्य कितना है? वे मर कर कहाँ-कहाँ जाते हैं ? कहाँ-कहाँ से किस गित या योनि में आते हैं ? उनकी इन्द्रियाँ कितनी ? वेद कितने ? ज्ञान कितने ? उनके कर्म कौन-कौन से बंधते हैं? आदि) की जाती है। दूसरी विचारणा कर्म को केन्द्र में रख कर की जाती है। जैसे कि-कर्म कितने प्रकार के हैं ? विविध प्रकार के जीवों के विकास और ह्यास में उनका कितना हिस्सा है? आदि। वि

प्रज्ञापना में प्रथम प्रकार से विचारणा की गई है।

प्रस्तुत सम्पादन

स्थानकवासी जैनसमाज जागरूक रह कर आगमों एवं जैनसिद्धान्तों के प्रति पूर्ण श्रद्धाशील रहा है। समय-समय पर आगमों के गूढ़भावों को समझाने के लिए स्थानकवासी समाज के अनेक आगमवेत्ताओं ने अपने युग की भाषा में उनका अनुवाद एवं विवेचन किया है। जिस समय टब्बा युग आया, उस समय आचार्य श्री धर्मसिंहजी ने सत्ताईस आगमों पर बालावबोध टब्बे लिखे, जो मूलस्पर्शी एवं शब्दार्थ को स्पष्ट करने वाले हैं। अनुवादयुग में शास्त्रोद्धारक आर्चायश्री अमोलकऋषिजी म. ने बत्तीस आगमों का हिन्दी-अनुवाद किया। पूज्य गुरुदेव श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य जैनधर्मदिवाकर श्रीआत्मारामजी महाराज ने अनेक आगमों का हिन्दी-अनुवाद एवं विस्तृत व्याख्या लिखी। तत्पश्चात् पूज्य श्री घासीलालजी महाराज ने संस्कृत में विस्तृत टीका हिन्दी-गुजराती-अनुवादसिंहत लिखी। और भी अनेक स्थलों से आगम-साहित्य प्रकाशित हुआ। किन्तु जनसाधारण को तथा वर्तमान-तर्कप्रधानयुग की जनता को सन्तुष्ट कर सके, ऐसे न अतिविस्तृत और न अतिसंक्षिस संस्करण की मांग निरन्तर बनी रही।

अत: आगममर्मज्ञ बहुश्रुत विद्वान् श्रमणसंघ के युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर' के प्रधान

२२. पण्णवणासुत्तं भा. प्रस्तावना, पृ. २०-२१

सम्पादन-निर्देशन में तथा पं. कन्हैयालालजी म. 'कमल', पं. देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री, श्री रतनमुनिजी म. एवं पं. शोभाचन्द्रजी भारित्ल जैसे विद्वद्वर्य सम्पादकमण्डल के तत्त्वावधान में प्रज्ञापनासूत्र का प्रस्तुत अभिनव संस्करण अनुवादित एवं सम्पादित किया गया है।

प्रज्ञापनासूत्र के इस संस्करण की यह विशेषता है कि इसमें श्री महावीर जैन विद्यालय बम्बई से प्रकाशित 'पण्णवणासुत' के शुद्ध मूलपाठ का अनुसरण किया गया है। इससे यह लाभ हुआ कि सूत्र संख्या छत्तीस पदों की क्रमशः दी गई है। प्रत्येक सूत्र में प्रश्न को अलग पंक्ति में रखा गया है, उत्तर अलग पंक्ति में। तथा प्रत्येक प्रकरण के शीर्षक—उपशीर्षक पृथक्—पृथक् दिये गए हैं, जिससे पाठक को प्रतिपाद्य विषय को ग्रहण करने में आसानी रहे। प्रत्येक परिच्छेद का मूलपाठ देने के पश्चात् सूत्र—संख्या के क्रम से उसका भाववाही अनुवाद दिया गया है। जहां कठिन शब्द हैं या मूल में संक्षिप्त शब्द हैं, वहां कोष्टक में उनका सरल अर्थ तथा पूरा भावार्थ भी दिया गया है, तािक पाठक को पिछले स्थलों को टटोलना न पड़े। शब्दार्थ के पश्चात् विवेच्यस्थलों का विवेचन दिया गया है। विवेचन प्रायः आचार्य मलयगिर रचित वृत्ति को ध्यान में रखकर किया गया है। वृत्ति का पूरा का पूरा अनुसरण नहीं किया गया है। जहां वृत्ति में अतिविस्तार है, या प्रासंगिक विषय से हट कर चर्चा की गई है, वहाँ उसे छोड़ दिया गया है। मूल के शब्दार्थ में जो बात स्पष्ट हो गई है या स्पष्ट है, उसका विवेचन में पिष्टपेषण नहीं किया गया है। जहां मूलपाठ अतिविस्तृत एवं पुनरक्त है, वहां विवेचन में उसका निष्कर्षमात्र दे दिया गया है। कहीं—कहीं मूलपाठ में उक्त विषयवस्तु को विवेचन में युक्ति—हेतुपूर्वक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। विवेचन में प्रतिपादित विषय एवं उद्धृत प्रमाणों के सन्दर्भस्थलों का उल्लेख टिप्पण में कर दिया गया है। कहीं—कहीं तत्त्वार्थसूत्र, जीवाभिगम, भगवती, कर्मग्रन्थ आदि तथा बौद्ध एवं वैदिक ग्रन्थों के तुलनात्मक टिप्पण भी दिए गए हैं।

प्रत्येक पद के प्रारम्भ में प्राथमिक अर्थ देकर पद में प्रतिपादित समस्त विषयों की समीक्षा की गई है, जिससे पाठक को समग्र पद का हार्द मालूम हो सके। पुरुक्ति से बचने के लिए जहाँ 'जाव' 'जहा' 'एवं' आदि आगमिक पाठों के संक्षेपसूचक शब्द हैं, उनका स्पष्टीकरण प्राय: शब्दार्थ में ही दे दिया गया है। कहीं-कहीं मूलपाठ के नीचे टिप्पण में स्पष्टीकरण कर दिया गया है। प्रज्ञापना विशालकाय शास्त्र होने से हमने इसे तीन खण्डों में विभाजित कर दिया है। अन्त में, तीन परिशिष्ट देने का विचार है। एक परिशिष्ट में सन्दर्भ-ग्रन्थों की सूची, दूसरे परिशिष्ट में विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों की सूची और तीसरे में स्थलविशेष की सूची होगी।

कृतज्ञता-प्रकाश

प्रस्तुत सम्पादन में मूलपाठ के निर्धारण एवं प्राथमिक-लेखन में आगम प्रभाकर स्व. पुण्यविजयजी म., पं. दलसुखभाई मालविणया एवं पं. अमृतलाल मोहनलाल भोजक द्वारा सम्पादित पण्णवणासुत्तं, भाग १-२ का उपयोग किया गया है तथा अर्थ एवं विवेचन में प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति एवं प्रमेयबोधिनी टीका का प्राय: अनुसरण किया गया है। इसकी प्रति उपलब्ध कराने में सौजन्यमूर्ति श्री कृष्णचन्द्राचार्यजी (पंचकूला) का सहयोग स्मरणीय रहेगा। एतदर्थ उनके प्रति हम आभारी हैं। इसके अतिरिक्त अनेक आगमों जैन-बौद्ध ग्रन्थों, पत्रवणासूत्र के थोकड़ों आदि से सहायता ली गई है, उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना हमारा कर्तव्य है।

हम यहाँ प्रसंगवश श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य जैनागमरत्नाकर स्व. गुरुदेव पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज का पुण्यस्मरण किये बिना नहीं रह सकते, जो आजीवन आगमोद्धार के पुनीत कार्य में संलग्न रहे थे और अन्तिम समय में भी उनके आगम-निष्ठापूर्ण हृदयोद्गार थे- 'मेरे पीछे भी श्रमणसंघीय आचार्यश्री, युवाचार्यश्री इस भगीरथ श्रुतसेवा को चलाते रहें, यही मेरी परमकृपालु शासनदेव से मंगलमयी हार्दिक प्रार्थना है।'

उनके ही द्वारा परिष्कृत आगमोद्धार के पुण्यपथ पर चल कर श्रमणसंघीय युवाचार्य पंडितरत्न मिश्रीमलजी म. सा. के नेतृत्व में हमने प्रज्ञापना जैसे दुरूह एवं गहन आगम के सम्पादन का कार्य हाथ में लिया। इस सम्पादनकार्य में मै अपने सहयोगिजनों को कैसे विस्मृत कर सकता हूँ।

आगमतत्त्वमनीषी प्रवचनप्रभाकर श्री सुमेरमुनिजी, विद्वद्वर्य पं. रत्न मुनिश्री नेमिचन्द्रजी के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने निष्ठापूर्वक इस आगमकार्य के सम्पादन में सहयोग दिया है। आगममर्मज्ञ पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल एवं संपादनकलाविशारद साहित्यमहारथी श्रीचन्दजी सुराना की श्रुतसेवाओं को कैसे भुलाया जा सकता है? जिन्होंने इस शास्त्रराज को संशोधित-परिष्कृत करके मुद्रित करने तक का दायित्व सफलतापूर्वक निभाया है। साथ ही, मैं अपने ज्ञात-अज्ञात सहयोगियों का हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय-समय पर योग्य परामर्श देकर मुझे उत्साहित किया है।

अपने सम्पादन के विषय में क्या कहूँ ? जैसा भी जितना भी अच्छे से अच्छा बन सकता था 'यावद्बुद्धिबलोदयम्' प्रज्ञापना का सम्पादन करने का मैंने प्रयत्न किया है। मैं दावा तो नहीं करता सर्वज्ञ महापुरुषों के पुनीत सिद्धांत-रहस्यों को खोलने का! मुझ जैसे अल्पज्ञ की भी आखिर एक सीमा है। फिर भी मुझे सात्त्विक सन्तोष अवश्य है कि आगमों के सुधी पाठकों को तथा शोधकर्त्ताओं को इस सम्पादन से अवश्य सन्तोष होगा।

- ज्ञान मुनि

जैनस्थानक

बनूड

प्रस्तावना

प्रज्ञापना : एक समीक्षात्मक अध्ययन

(प्रथम संस्करण से)

भारतवर्ष अध्यात्म की भूमि है। यहाँ के प्रत्येक कण-कण में अध्यात्म का सुरीला संगीत है। प्रत्येक अणु-अणु में तत्त्व-दर्शन का मधुर रस है। यहाँ की पावन पुण्य धरा ने ऐसे नर-रत्नों का प्रसव किया है जो धर्म और अध्यात्म के मूर्त रूप हैं। उनके हृदय की प्रत्येक धड़कन अध्यात्म की धड़कन है। उनके प्रशस्त और निर्मल चिन्तन ने जीव और जगत् को, आत्मा और परमात्मा को, धर्म और दर्शन को समझने का विमल और विशुद्ध दृष्टिकोण प्रदान किया।

चौबीस तीर्थंकरों ने इस अध्यात्मप्रधान पुण्य-भूमि पर जन्म लिया। उन्हें वैदिकपरम्परा के अवतारों की तरह पुन: पुन: जन्म ग्रहण कर जन-जन का उत्थान करना अभीष्ट नहीं था, और न तथागत बुद्ध की तरह बोधिसत्वों के माध्यम से पुन: पुन: जन्म लेकर जन-जीवन में अभिनव चेतना का संचार करना ही मान्य था। अवतारवाद में उनका विश्वास नहीं था, उत्तारवाद ही उन्हें पसन्द था।

जैनपरम्परा में तीर्थंकरों का स्थान सर्वोपिर है। नमस्कार महामंत्र में सिद्धों से पूर्व तीर्थंकरों — अरिहंतों को नमस्कार किया गया है। तीर्थंकर सूर्य की भाँति तेजस्वी होते हैं—'आइच्चेसु अहियं पभासयरा।' वे अपनी ज्ञान-राशियों से विश्व की आत्मा को आलोकित करते हैं। वे अपने युग के प्रबल प्रतिनिधि होते हैं। चन्द्र की तरह वे सौम्य होते हैं। मानवता के परम प्रस्थापक होते हैं। वे साक्षात् द्रष्टा, ज्ञाता तथा आत्मिनर्भर होते हैं। वे केवलज्ञान एवं केवलदर्शन उत्पन्न होने के पश्चात् उपदेश देते हैं। उनका उपदेश अनुभूत सत्य पर आधृत होता है। उनके उपदेश और व्यवस्था किसी परम्परा से आबद्ध नहीं होती।

वर्तमान अवसर्पिणी काल में इस पावन धरा पर प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुए। उनके बाद बावीस तीर्थंकर हुए, फिर चौबीसवें तीर्थंकर महावीर हुए। सभी तीर्थंकरों की सर्वतंत्र-स्वतंत्र परम्पराएँ थीं और सर्वतंत्र-स्वतंत्र उनका शासन था। श्रमण भगवान् महावीर के समय भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के हजारों श्रमण थे। जब वे महावीर के संघ में प्रविष्ट हुए तो उन्होंने भगवान् पार्श्वनाथ की चातुर्याम साधना-पद्धित का परित्याग किया और पंच महाव्रत-साधना-पद्धित को स्वीकार किया। इससे यह स्पष्ट है कि प्रत्येक

१. 'धम्मतित्थयरे जिणे'—समवायांग-१/२

२. नन्दीसूत्र, पट्टावली---१/१८-१९

३. उत्तराध्ययन---२३/२३

तीर्थंकर का विराट् व्यक्तित्व और कृतित्व किसी तीर्थंकर विशेष की परम्परा के साथ आबद्ध नहीं होता, यद्यपि मौलिक आचारव्यवस्था एवं तत्त्वदर्शन सनातन है, त्रिकाल में एकरूप रहता है, क्योंकि सत्य शाश्वत है।

वर्तमान जैन शासन श्रमण भगवान् महावीर से सम्बन्धित है। भगवान् महावीर के संघ की संचालन विधि सुव्यवस्थित थी। उनके संघ में ग्यारह गणधर, नौ गण तथा सात व्यवस्थापद थे। संघ की शिक्षा, दीक्षा आदि में सातों पदाधिकारियों का अपूर्व योगदान था। आचार्य संघ का संचालन करते थे। उपाध्याय सूत्र की वाचना देते थे। स्थिवर श्रमणों को संयम-साधना में स्थिर करते। प्रवर्तक आचार्य द्वारा निर्दिष्ट प्रवृत्तियों का संघ में प्रवर्तन करते। गणी लघु श्रमणों के समूह का कुशल नेतृत्व करते। गणधर श्रमणों की दिनचर्या का ध्यान रखते और गणावच्छेदक अन्तरंग व्यवस्था करते। इस तरह सभी शासन की श्रीवृद्धि में जुटे रहते थे। भगवान् महावीर के शासन में प्रतिभासम्पन्न, तेजस्वी, वचस्वी, मनस्वी, यशस्वी श्रमण थे। श्रमण भगवान् महावीर ने भव्य जीवों के उद्बोधनार्थ अर्थागम प्रदान किया। गणधरों ने अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा से उसको गूंथ कर सूत्रागम का रूप दिया। आचायों ने उस श्रुत-सम्पदा का संरक्षण किया। गणधरों द्वारा रचित अंगागम-निधि का आलम्बन लेकर उपांगों की रचना हुई। उपांगों में चतुर्थ उपांग का नाम 'प्रज्ञापना' है।

बौद्ध साहित्य में प्रज्ञा के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा है। वहाँ पर 'पञ्ज' और 'पञ्जा' शब्द अनेक बार व्यवहृत हुए हैं। बौद्ध पाली साहित्य में 'पञ्जाती' नामक एक ग्रन्थ भी है, जिसमें विविध प्रकार के पुद्गल अर्थात् पुरुष के अनेक प्रकार के भेदों का निरूपण है। उनमें पञ्जित यानी प्रज्ञित और प्रज्ञापना नाम का तात्पर्य एक सदृश है। आचार्य पतंजिल ने 'ऋतंभरा प्रज्ञा'' तथा 'तज्जयात्प्रज्ञालोकः ' प्रभृति सूत्रों में प्रज्ञा का उल्लेख किया है। भगवद्गीता में स्थितप्रज्ञ की चर्चा करते हुए 'तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता'' शब्द का प्रयोग किया है। जैन आगम साहित्य में भी अनेक स्थलों पर 'प्रज्ञा' शब्द प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण के रूप में —आचारांग सूत्र के दूसरे अध्ययन में पच्चीसवें, छब्बीसवें सूत्र में 'प्रज्ञान' शब्द प्राप्त है और अन्य स्थलों पर सूत्रकृतांग में श्रमण भगवान महावीर की संस्तुति करते हुए प्रज्ञ', आशुप्रज्ञ', भूतिप्रज्ञ'', तथा अन्य स्थलों पर महाप्रज्ञ'' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। भगवान् महावीर को प्रज्ञा का अक्षय सागर कहा है। ' उत्तराध्ययनसूत्र में

४. (क) भगवतो महावीरस्स नव गणा होत्था - ठाणं-९/३, सूत्र- ६८०

⁽ख) आयरितेति वा, उवज्झातेति वा, पावतीति वा, थेरेति वा, गणीति वा, गणधरेति वा, गणावच्छेदेति वा! — ठाणं-३/३, सूत्र १७७

५. पातंजलयोगदर्शन, समाधिपाद सूत्र ४८

६. पातंजलयोगदर्शन, विभूतिपाद सूत्र ५

७. श्रीमद् भगवद्गीता, अ २-५७, ५८, ६१, ६८

८. सूत्रकृतांग, प्रज्ञ ६/४, १५, १/७/८; १/१४/२९;२/१/६६; २/६/६

९. सूत्रकृतांग, आशुप्रज्ञ. ६/७/२५; १/५/२; १/१४/४; २२; २/५/१; २/६/१८

१०. सूत्रकृतांग ६/१५/१८

११. सूत्रकृतांग, महाप्रज्ञ १/११/१३,३८!

१२. सूत्रकृतांग १/६/८

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के केशीकुमार श्रमण गणधर गौतम से पूछते हैं—हे मेधाविन्! हम एक ही उद्देश्य को लेकर प्रवृत्त हुए हैं तो फिर इस (आचार) भेद का क्या कारण है? इन दो प्रकार के धर्मों में आपको विप्रत्यय नहीं होता ? गौतम ने कहा—धर्म तत्त्व का निर्णय प्रज्ञा से करना चाहिए। १३ केशीकुमार श्रमण ने गणधर गौतम की प्रज्ञा को पुन:पुन: साधुवाद दिया। १४ आचारचूला में यह स्पष्ट लिखा है—समाधिस्थ श्रमण की प्रज्ञा बढ़ती है। १५ आचार्य यतिवृषभ ने 'तिलोयपन्नन्ति' ग्रन्थ में १६ श्रमणों की लिब्धयों का वर्णन करते हुए एक लिब्ध का नाम 'प्रज्ञाश्रमण' दिया है। प्रज्ञाश्रमण लिब्ध जिस मुनि को प्राप्त होती है, वह मुनि सम्पूर्ण श्रुत का तलस्पर्शी अध्येता बन जाता है। प्रज्ञाश्रमण का वर्णन है। १७ किलकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने प्रज्ञाश्रमण की व्याख्या की है। १८ आचार्य वीरसेन ने प्रज्ञाश्रमण को वन्दन किया है और साथ ही उन्हें जिन भी कहा है। १९ आचार्य अकलंक ने भी प्रज्ञाश्रमण का वर्णन किया है। २०

अब चिन्तनीय यह है कि प्रज्ञा शब्द का प्रयोग विभिन्न ग्रन्थों में विभिन्न स्थलों पर हुआ है। विभिन्न कोशकारों ने प्रज्ञा को ही बुद्धि कहा है। वह बुद्धि का पर्यायवाची माना गया है और एकार्थक भी! किन्तु चिन्तन करने पर सूर्य के प्रकाश की भाँति यह स्पष्ट होता है कि दोनों शब्दों की एकार्थता स्थूलदृष्टि से ही है। कोशकार ने जिन शब्दों को पर्यायवाची कहा है, वे शब्द वस्तुत: पर्यायवाची नहीं होते। समिभरूढनय की दृष्टि से भी शब्द पर्यायवाची नहीं है। प्रत्येक शब्द का अपना पृथक् अर्थ वाच्य होता है। प्रज्ञा शब्द का भी अपने आप में एक विशिष्ट अर्थ है। बुद्धि शब्द स्थूल और भौतिक जगत् से सम्बन्धित है। पर प्रज्ञा शब्द बुद्धि से बहुत ऊपर उठा हुआ है। बहिरंग ज्ञान के अर्थ में बुद्धि शब्द का प्रयोग हुआ है तो अन्तरंग जगत् की बुद्धि प्रज्ञा है। प्रज्ञा अतीन्द्रिय जगत् का ज्ञान है। वह आन्तरिक चेतना का आलोक है। 'प्रज्ञा' किसी ग्रन्थ के अध्ययन से उपलब्ध नहीं होती। वह तो संयम और साधना से उपलब्ध होती है। प्रज्ञा को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) इन्द्रियसंबद्ध प्रज्ञा और (२) इन्द्रियातीत प्रज्ञा। आचार्य वीरसेन ने प्रज्ञा और ज्ञान का भेद प्रतिपादित करते हुए लिखा है—गुरु के उपदेश से निरपेक्ष ज्ञान की हेतुभूत चैतन्यशक्ति प्रज्ञा है ज्ञान उसका कार्य है। इससे यह स्पष्ट है कि चेतना का शास्त्रनिरपेक्ष विकास प्रज्ञा है। प्रज्ञा शास्त्रीय ज्ञान से उपलब्ध नहीं होती, अपितु आन्तरिक विकास से उपलब्ध होती है। प्रज्ञा इन्द्रियज्ञान से प्राप्त प्रत्यों का विवेक करने वाली बुद्धि से परे का ज्ञान है। पातंजलयोग–दर्शन में प्रज्ञा पर विस्तार से प्राप्त प्रत्यों का विवेक करने वाली बुद्धि से परे का ज्ञान है। पातंजलयोग–दर्शन में प्रज्ञा पर विस्तार से

१३. उत्तराध्ययनसूत्र, अध्ययन २३, गाथा २५

१४. उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन — २३, गाथा, २८, ३४,३९,४४, ४९, ५४,५९, ६४, ६९, ७४, ७९, ८५

१५. आयारचूला, २६/५

१६. धवला ९/४; १; १८/८४/२

१७. मंत्रराजरहस्य, श्लोक ५२२

१८. योगशास्त्र, स्वोपज्ञवृत्ति, सूरिमंत्रकल्पसमुच्चय भाग २, पृष्ठ. ३६५

१९. षट्खण्डागम, चतुर्थ वेदना खण्ड, धवला ९, लब्धि स्वरूप का वर्णन।

२०. तत्त्वार्थ राजवार्तिक, सूत्र ३६

चिन्तन करते हुए उसकी मर्यादायें तथा उसके क्रमिक विकास की सीमायें बताई हैं। प्रज्ञा की सात भूमिकाएँ भी बताई हैं। जितना संयम का विकास होता है, उतनी ही प्रज्ञा निर्मल होती है। संक्षेप में सारांश यह है कि विशिष्ट ज्ञान प्रज्ञा है।

प्रज्ञापना में जीव और अजीव का गहराई से निरूपण होने के करण इस आगम का नाम 'प्रज्ञापना' रखा गया है। भगवती, रहें आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, रहें आवश्यकचूर्णि, रहें महावीरचिरयं, रहें तिष्ठिशलाका—पुरुषचिरित्र, रेहें में श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा छद्मस्थ अवस्था में महास्वप्न में देखने का उल्लेख है। उन स्वप्नों में तृतीय स्वप्न यह था—एक रंग-बिरंगा पुंस्कोंकिल उनके सामने समुपस्थित था। उस स्वप्न का फल था—वे विविध ज्ञानमय द्वादशांग श्रुत की प्रज्ञापना करेंगे। इसमें 'प्रज्ञापयित' और 'प्ररूपयित' इन क्रियाओं से यह स्पष्ट है कि भगवान् का उपदेश प्रज्ञापना—प्ररूपणा है। उस उपदेश को मूल आधार बनाकर प्रस्तुत आगम की रचना की गई है, इसिलए इसका नाम 'प्रज्ञापना' रखा गया। प्रस्तुत आगम के रचिता श्यामाचार्य ने इसका सामान्य नाम 'अध्ययन' दिया है रहें और विशेष नाम 'प्रज्ञापना' दिया है। उनका अभिमत है—भगवान् महावीर ने सर्वभावों की प्रज्ञापना की है। उसी प्रकार में भी यहाँ सर्वभावों की प्रज्ञापना करने वाला हूँ। अतः इस आगम का विशेष नाम 'प्रज्ञापना' है। रिष्ठ उत्तराध्ययन की तरह प्रस्तुत आगम का पूर्ण नाम भी 'प्रज्ञापनाध्ययन' यह हो सकता है।

प्रज्ञापना सूत्र में एक ही अध्ययन है, जबिक उत्तराध्ययन में छत्तीस अध्ययन हैं। प्रज्ञापना के प्रत्येक पद के अन्त में 'पन्नवणाए भगवईए' यह पाठ मिलता है, इसीलिए यह स्पष्ट है कि अंग साहित्य में जो स्थान भगवती (व्याख्याप्रज्ञिति) का है, वही स्थान उपांगों में 'प्रज्ञापना' का है। अंगसाहित्य में जहाँ-तहाँ भगवान् ने यह कहा इस प्रकार के वाक्य उपलब्ध होते हैं। यहाँ पर 'पण्णत्तं' शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत आगम में भी प्रज्ञापना शब्द का प्राधान्य है, सम्भवत: इसीलिए श्यामाचार्य ने इसका नाम प्रज्ञापना रखा है। भगवती सूत्र में आर्यस्कन्धक का वर्णन है। वहां पर स्वयं भगवान् महावीर ने कहा है—'एवं खलु मए खन्धया! चउित्वहे लोए पण्णत्ते''। १८ इसी तरह आचारांग आदि आगमों में अनेक स्थलों पर भगवान् के उपदेश के लिए प्रज्ञापना शब्द का प्रयोग हुआ है। आचार्य मलयिगिर के अभिमतानुसार प्रज्ञापना में जो 'प्र' उपसर्ग है, वह भगवान् महावीर के उपदेश की विशेषता को सूचित करता है। भगवान् महावीर के समय

२१. भगवती १६/६/५७०

२२. आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, पृष्ठ. २७०

२३. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ. २७५

२४. महावीरचरियं ५/१५५

२५. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र १०/३/१४६२

२६. ''अञ्झयणमिणं चित्तं''—प्रज्ञापना गा. ३

२७. ''उवदंसिया भगवया पण्णवया सव्व भावाणं। जह विण्णयं भगवया अहमवि तह वण्णइस्सामि — प्रज्ञापना गा. २-३

२८. भगवतीसूत्र, २/१/९०,

में श्रमण परम्परा के अन्य पाँच सम्प्रदाय विद्यमान थे। १९ उनमें से कुछ ऐसे थे जिनके अनुयायियों की संख्या महावीर के संघ से भी अधिक थी। उन पाँच सम्प्रदायों का नेतृत्व क्रमश: पूरण काश्यप, मंखली गोशालक, अजित केशकम्बल, पकुध कात्यायन और संजय बेलिट्टिपुत्र कर रहे थे। परिस्थितियों के वात्याचक्र से वे पाँचों सम्प्रदाय काल के गर्भ में विलीन हो गये। वर्तमान में उनका अस्तित्व इतर साहित्य में ही उपलब्ध होता है। तथागत बुद्ध की धारा विदेशों तक प्रवाहित हुई और भारत में लगभग विच्छिन्न हो गई थी। यदि हम उन सभी धर्माचायों के दार्शनिक पहलुओं पर चिन्तन करें तो स्पष्ट होगा कि भगवान् महावीर ने जीव, अजीव प्रभृति तत्त्वों का जो सूक्ष्म विश्लेषण किया है, वैसा सूक्ष्म विश्लेषण उस युग के अन्य कोई भी धर्माचार्य नहीं कर सके। यहाँ तक कि तथागत बुद्ध तो अव्याकृत कहकर आत्मा परमात्मा आदि प्रश्नों को टालने का ही प्रयास करते रहे। ३०

प्रज्ञापना के भाषापद में ''पन्नवणी'' एक भाषा का प्रकार बताया है। उसकी व्याख्या करते हुए आचार्य मलयिगिर ने लिखा है—''जिस प्रकार से वस्तु व्यवस्थित हो, उसी प्रकार उसका कथन जिस भाषा के द्वारा किया जाय, वह भाषा 'प्रज्ञापनी' है। ३१ प्रज्ञापना का यह सामान्य अर्थ है। तात्पर्य यह है कि जिसमें किसी प्रकार के धार्मिक विधि-निषेध का नहीं अपितु सिर्फ वस्तुस्वरूप का ही निरूपण होता है, वह 'प्रज्ञापनी' भाषा है। ३२

आचार्य मलयगिरि का यह अभिमत है कि प्रज्ञापना समवाय का उपांग है। ३३ पर निश्चित रूप से यह नंहीं कहा जा सकता कि प्रज्ञापना का सम्बन्ध समवाय के साथ कब जोड़ा गया ? प्रज्ञापना के रचियता आचार्य श्याम का अभिमत है कि उन्होंने प्रज्ञापना को दृष्टिवाद से लिया है। ३४ पर हमारे सामने इस समय दृष्टिवाद उपलब्ध नहीं है, अत: स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रज्ञापना में पूर्वसाहित्य से कौन सी सामग्री ली है? तथापि यह सुनिश्चित है कि ज्ञानप्रवाद, आत्मप्रवाद और कर्मप्रवाद के साथ इसके वस्तु-निरूपण का मेल बैठता है। ३५

प्रज्ञापना और दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ षट्खण्डागम का विषय प्राय: समान है। आचार्य वीरसेन ने अपनी धवला टीका में षट्खण्डागम का सम्बन्ध अग्रायणी पूर्व के साथ जोड़ा है। ३६ अत: हम भी प्रज्ञापना का सम्बन्ध अग्रायणी पूर्व के साथ जोड़ सकते हैं।

(दिव्यावदान, १२/१४३/१४४)

२९. तेन खलु समयेन राजगृहे नगरे षट् पूर्णाद्याः शास्तारोऽसर्वज्ञाः सर्वज्ञमानिनः प्रतिवसंतिस्म । तद्यथा—पूरणकाश्यपो, मश्करीगोशलिपुत्र, संजयी वैरद्वीपुत्रोऽजितः केशकम्बलः , ककुदः कत्यायनो, निग्रंथो ज्ञातपुत्रः।''

३०. मिलिन्द प्रश्न --- २/२५ से ३३, पृष्ठ ४१ से ५२

३१. 'प्रज्ञापनी-प्रज्ञाप्यतेऽर्थोऽनयेति प्रज्ञापनी''—प्रज्ञापना, पत्र २४९

३२. यथावस्थितार्थाभिधानादियं प्रज्ञापनी ॥ — प्रज्ञापना, पत्र २४९

३३. इयं च समवायख्यस्य चतुर्थाङ्गस्योपांगम् तदुक्तार्थप्रतिपादनात्। — प्रज्ञापना टीका पत्र १

३४. अज्ञयणिमणं चित्तं सुयरयणं दिद्विवायणीसंद। जह विण्णयं भगवया अहमवि तद वणइस्सामि॥ ॥ गा०३॥

३५. पण्णवणासुतं—प्रस्तावना मुनि पुण्यविजयजी, पृ०९

३६. षट्खण्डागम, पु० १, प्रस्तावना, पृष्ठ ७२

टीकाकार आचार्य मलयगिरि की दृष्टि से समवायांग में जो वर्णन है, उसी का विस्तार प्रज्ञापना में हुआ है। अतः प्रज्ञापना समवायांग का उपांग है। पर स्वयं शास्त्रकार ने इसका सम्बन्ध दृष्टिवाद से बताया है। अतः यही मानना उचित प्रतीत होता है कि इसका सम्बन्ध समवायांग की अपेक्षा दृष्टिवाद से अधिक है। किन्तु दृष्टिवाद में मुख्य रूप से दृष्टि (दर्शन) का ही वर्णन था। समवायांग में भी मुख्य रूप से जीव, अजीव आदि तत्त्वों का निरूपण है और प्रज्ञापना में भी यही निरूपण है, अतः प्रज्ञापना को समवायांग का उपांग मानने में भी किसी प्रकार की बाधा नहीं है।

प्रज्ञापना में छत्तीस विषयों का निर्देश है, इसलिए इसके छत्तीस प्रकरण हैं। प्रकरण को इसमें 'पद' नाम दिया है। प्रत्येक प्रकरण के अन्त में प्रतिपाद्य विषयं के साथ पद शब्द व्यवहृत हुआ है। आचार्य मलयगिरि पद की व्याख्या करते हुये लिखते हैं—'पदं प्रकरणमर्थाधिकार: इति पर्याया:'^{३७}, अत: यहाँ पद का अर्थ प्रकरण^{३८} और अर्थाधिकार समझना चाहिए।

रचना-शैली

प्रज्ञापना की रचना प्रश्नोत्तर के रूप में हुई है। प्रथम सूत्र से लेकर इक्यासीवें सूत्र तक प्रश्नकर्ता कौन है और उत्तरदाता कौन है? इस सम्बन्ध में कोई भी सूचना नहीं है। केवल प्रश्न और उत्तर हैं। इसके पश्चात् बयासीवें सूत्र में श्रमण भगवान् महावीर और गणधर गौतम का संवाद है। तेरासीवें सूत्र से लेकर बानवै (९२) सूत्र तक सामान्य प्रश्नोत्तर हैं। तेरानवें सूत्र में गणधर गौतम और महावीर के प्रश्नोत्तर, उसके पश्चात् चौरानवै सूत्र से लेकर एक सौ सेतालीसवें सूत्र तक सामान्य प्रश्नोत्तर हैं। उसके पश्चात् एक सौ अड़तालीस से लेकर दो सौ ग्यारह तक अर्थात् सम्पूर्ण द्वितीय पद में; तृतीय पद के सूत्र दो सौ पच्चीस से दो सौ पचहत्तर तक और सूत्र तीन सौ पच्चीस, तीन सौ तीस से तीन सौ तैतीस तक व चतुर्थ पद से लेकर शेष सभी पदों के सूत्रों में गौतम गणधर और भगवान् महावीर के प्रश्नोत्तर दिये हैं। केवल उनके प्रारम्भ, मध्य और अन्त में आने वाली गाथा और एक हजार छियासी में वे प्रश्नोत्तर नहीं हैं। हैं

जिस प्रकार प्रारम्भ में सम्पूर्ण ग्रन्थ की अधिकार गाथाएँ आई हैं, उसी प्रकार कितने ही पदों के प्रारम्भ में भी विषय निर्देशक गाथाएँ हैं। उदाहरण के रूप में —तीसरे, अठारहवें, बीसवें और तेईसवें पदों के प्रारम्भ और उपसंहार में गाथाएँ हैं। इसी प्रकार दसवें पद के अन्त में, ग्रन्थ के मध्य में और जहाँ आवश्यकता हुई, वहाँ भी गाथाएँ दी गई हैं। इस प्रम्पूर्ण आगम का श्लोकप्रमाण सात हजार आठ सौ सत्तासी है। इसमें प्रक्षित गाथाओं को छोड़कर कुल दो सौ बत्तीस गाथाएँ हैं और शेष गद्य भाग हैं। इस आगम में जो संग्रहणी गाथाएँ हैं, उनके रचियता कौन हैं? यह कहना किठन है। प्रज्ञापना के छत्तीस पदों में से प्रथम पद में जीव के दो भेद —संसारी और सिद्ध बताये हैं। उसके बाद इन्द्रियों के क्रम के अनुसार एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक में सभी संसारी जीवों का समावेश करके निरूपण किया है। यहाँ जीव के भेदों का नियामक

३७. प्रज्ञापना टीका, पत्र ६

३८. सूत्रसमूह: प्रकरणम्। — न्यायवार्तिक, पृ० १

३९. पण्णवणासुत्तं, द्वितीय भाग (प्रकाशक—श्री महावीर जैन विद्यालय) प्रस्तावना, पृष्ठ १०-११.

तत्त्व इन्द्रियों की क्रमशः वृद्धि बतलाया है। दूसरे पद में जीवों की स्थानभेद से विचारणा की गई है। इसका क्रम भी प्रथम पद की भाँति इन्द्रियप्रधान ही है। जैसे—वहाँ एकेन्द्रिय कहा, वैसे ही यहां पृथ्वीकाय, अप्काय आदि कायों को लेकर भेदों का निरूपण किया गया है। तृतीय पद से लेकर शेष पदों में जीवों का विभाजन, गित, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, लेश्या, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, संयत, उपयोग, आहार, भाषक, परित्त, पर्याप्त, सूक्ष्म, संज्ञी, भव, अस्तिकाय, चरम, जीव, क्षेत्र, बंध इन सभी दृष्टियों से किया गया है। उनके अल्पबहुत्व का भी विचार किया गया है। अर्थात् प्रज्ञापना में तृतीय पद के पश्चात् के पदों में कुछ अपवादों के को छोड़कर सर्वत्र नारक से लेकर चौबीस दण्डकों में विभाजित जीवों की विचारणा की गई है।

विषय विभाग

आचार्य मलयगिरि ने प्रज्ञापना सूत्र में आई हुई दूसरी गाथा की व्याख्या करते हुए विषय-विभाग का सम्बन्ध जीव, अजीव आदि सात तत्त्वों के निरूपण के साथ इस प्रकार संयोजित किया है—

१-२. जीव-अजीव पद ---१, ३, ५, १० और १३ 🔀 🕊 ५ पद

अस्रव पद — १६, २२
 = २ पद

४. बन्धपद --- २३ = १ पद

५-७. संवर, निर्जरा और मोक्ष पद ---३६ = १पद

शेष पदों में क्वचित् जीवादि तत्त्वों में से यथायोग्य किसी तत्त्व का निरूपण है।

जैन दृष्टि से सभी तत्त्वों का समन्वय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में किया गया है। अत: आचार्य मलयगिरि ने द्रव्य का समावेश प्रथम पद में, क्षेत्र का द्वितीय में, काल का चतुर्थ पद में और भाव का शेष पदों में समावेश किया है।

प्रज्ञापना का भगवती विशेषण

पाँचवें अंग का नाम व्याख्याप्रज्ञित है और उसका विशेषण 'भगवती' है। प्रज्ञापना को भी 'भगवती' विशेषण दिया गया है, जबिक अन्य किसी भी आगम के साथ यह विशेषण नहीं लगाया गया है। यह विशेषण प्रज्ञापना की महत्ता—विशेषता का प्रतीक है। भगवती में प्रज्ञापना सूत्र के एक दो, पाँच, छह, ग्यारह, पन्द्रह, सत्तरह, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस पदों के अनुसार विषय की पूर्ति करने की सूचना है। यहाँ पर यह ज्ञातव्य है कि प्रज्ञापना उपांग होने पर भी भगवती आदि का सूचन नहीं किया गया है। इसके विपरीत भगवती में प्रज्ञापना का सूचन है। इसका मूल कारण यह है कि प्रज्ञापना में जिन विषयों की चर्चाएं की गई हैं, उन विषयों का उसमें सांगोपांग वर्णन है।

महायान बौद्धों में 'प्रज्ञापारिमता' ग्रन्थ का अत्यधिक महत्त्व है। अतः अष्टसाहिसका प्रज्ञापारिमता का भी अपरनाम 'भगवती' मिलता है।^{४१}

४०. इस अपवाद के लिए देखिए, पद- १३, १८, २१.

४१. शिक्षा समुच्चय, पृ० १०४-११२, २००

प्रज्ञापना के रचयिता

प्रज्ञापना के मुल में कहीं पर भी उसके रचियता के नाम का निर्देश नहीं है। उसके प्रारम्भ में मंगल के पश्चात् दो गाथाएँ हैं। उनकी व्याख्या आचार्य हरिभद्र और आचार्य मलयगिरि दोनों ने की है। किन्तु वे उन गाथाओं को प्रक्षिप्त मानते हैं। उन गाथाओं में स्पष्ट उल्लेख है—यह श्यामाचार्य की रचना है। आचार्य मलयगिरि ने श्यामाचार्य के लिए 'भगवान्' विशेषण का प्रयोग किया है। ^{४२} आर्य श्याम वाचक वंश के थे। वे पूर्वश्रुत में निष्णात थे। उन्होंने प्रज्ञापना की रचना में विशिष्ट कला प्रदर्शित की जिसके कारण अंग और उपांग में उन विषयों की चर्चा के लिए प्रज्ञापना देखने का सूचन किया है। नन्दी-स्थविरावली में सुधर्मा से लेकर क्रमश: आचार्यों की परम्परा का उल्लेख है। उसमें ग्यारहवाँ नाम 'वन्दिमो हारियं च सामज्जं' है। हारित गोत्रीय आर्य बलिस्सह के शिष्य आर्य स्वाति थे। आर्य स्वाति भी हारित गोत्रीय परिवार के थे। आचार्य श्याम आर्य स्वाति के शिष्य थे।^{४३} किन्तु प्रज्ञापना की प्रारम्भिक प्रक्षिप्त गाथा में आर्य श्याम को वाचक वंश का बताया है और साथ ही तेवीसवें पट्ट पर भी बताया है। आचार्य मलयगिरि ने भी उनको तेवीसवीं आचार्यपरम्परा पर माना है। किन्तु सुधर्मा से लेकर श्यामाचार्य तक उन्होंने नाम नहीं दिये हैं। पट्टाविलयों के अध्ययन से यह भी परिज्ञात होता है कि कालकाचार्य नाम के तीन आचार्य हुए हैं। एक का वीर निर्वाण ३७६ में स्वर्गवास हुआ था। ४४ द्वितीय गर्दभिल्ल को नष्ट करने वाले कालकाचार्य हुए हैं। उनका समय वीरनिर्वाण ४५६ है। ४५ तृतीय कालकाचार्य, जिन्होंने संवत्सरी महापर्व पंचमी के स्थान पर चतुर्थी को मनाया था, उनका समय वीरनिर्वाण ९९३ है। ४६ इन तीन कालकाचार्यों में प्रथम कालकाचार्य 'श्यामाचार्य' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये अपने युग के महा-प्रभावक आचार्य थे। उनका जन्म वीरनिर्वाण २८० (विक्रम पूर्व १९०) है। संसार से विरक्त होकर वीरनिर्वाण ३०० (विक्रम पूर्व १७०) में उन्होंने श्रमण दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा ग्रहण के समय उनकी अवस्था बीस वर्ष की थी। अपनी महान योग्यता के आधार पर वीरनिर्वाण ३३५ (विक्रमपूर्व १३५) में उन्हें युग-प्रधानाचार्य के पद से विभूषित किया गया था। ४७

इन तीन कालकाचार्यों में प्रथम कालकाचार्य ने, जिन्हें श्यामाचार्य भी कहते हैं, प्रज्ञापना जैसे विशालकाय सूत्र की रचना कर अपने विशद वैदुष्य का परिचय दिया था।^{४८} अनुयोग की दृष्टि से प्रज्ञापना द्रव्यानुप्रयोग

४२. (क) भगवान् आर्यश्यामोऽपि इत्थमेव सूत्रं रचयित, (टीका, पत्र ७२) (ख) भगवान् आर्यश्यामपठित (टीका, पत्र ४७)

⁽ग) सर्वेषामि प्रावचिनकसूरीणां मतानि भगवान्, आर्यश्याम उपदिष्टवान् (टीका, पत्र ३८५)

⁽घ) भगवदार्यश्यामप्रतिपत्तौ (टीका, पत्र-३८५)

४३. हारियगोत्तं साइं च, वंदिमो हारियं च सामञ्जं॥ २६॥ (नन्दी स्थविरावली)

४४. (क) आद्याः प्रज्ञापनाकृत् इन्द्रस्य अग्रे निगोद-विचारवक्ता श्यामाचार्यपरनामा। स तु वीरात् ३७६ वर्षेर्जातः।

⁽ख) धर्मसागरीय पट्टावली के अनुसार-एक कालक जो वीरनिर्वाण ३७६ में मृत्यु को प्राप्त हुए।

४५. 'पन्नवणासुत्तं' — पुण्यविजयजी म. प्रस्तावना पृष्ठ २२

४६. (क) पृथ्वीचन्द्रसूरि विरचित कल्पसूत्र टिप्पणक, सूत्र ३९१ की व्याख्या। (ख) कल्पसूत्र की विविध टीकाएँ।

४७. सिरिवीराओ गएसु, पणतीसिहएसु तिसय (३३५) वरिसेसु। पढमो कालगसूरी, जाओ सामञ्जनामुत्ति॥ ५५॥ (रत्नसंचय प्रकरण, पत्रांक ३२)

४८. निज्जूढा जेण तया पन्नवणा सव्वभावपन्नवणा। तेवीसइमो पुरिसो पवरो सो जयइ सामज्जो॥ १८८॥

के अन्तर्गत है। प्रज्ञापना को समग्र श्रमण-संघ ने आगम के रूप में स्वीकार किया। यह आचार्य श्याम की निर्मल नीति और हार्दिक विश्वास का द्योतक है। उनका नाम श्याम था पर विशुद्ध चारित्र की आराधना से वे अत्यन्त समुज्ज्वल पर्याय के धनी थे। पट्टाविलयों में उनका तेवीसवां स्थान पट्ट-परम्परा में नहीं है। अन्तिम कालकाचार्य प्रज्ञापना के कर्त्ता नहीं हैं, क्योंकि नन्दीसूत्र, जो वीरनिर्वाण ९९३ के पहले रचित है, उसमें प्रज्ञापना को आगम-सूची में स्थान दिया है। अत: अब चिन्तन करना है कि प्रथम और द्वितीय कालकाचार्य में से कौन प्रज्ञापना के रचिता हैं ? डॉ. उमाकान्त का अभिमत है कि यदि दोनों कालकाचार्यों को एक माना जाये तो ग्यारहवें पाट पर जिन श्यामाचार्य का उल्लेख है, वे और गर्दिभिल्ल राजा को नष्ट करने वाले कालकाचार्य ये दोनों एक सिद्ध होते हैं। पट्टावली में जहाँ उन्हें भिन्न-भिन्न गिना है, वहाँ भी एक की तिथि वीर-संवत् ३७६ है और दूसरे की तिथि वीर-संवत् ४५३ है। वैसे देखें तो इनमें ७७ वर्ष का अन्तर है। इसलिए चाहे जिसने प्रज्ञापना की रचना की हो, प्रथम या द्वितीय दोनों एक ही हों तो भी विक्रम के पूर्व होने वाले कालकाचार्य (श्यामाचार्य) थे, इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

परम्परा की दृष्टि से आचार्य श्याम की अधिक प्रसिद्धि निगोद-व्याख्याता के रूप में रही है। एक बार भगवान् सीमंधर से महाविदेह क्षेत्र में शक्रेन्द्र ने सूक्ष्मिनिगोद की विशिष्ट व्याख्या सुनी। उन्होंने जिज्ञासा प्रस्तुत की—क्या भगवन्! भरतक्षेत्र में भी निगोद सम्बन्धी इस प्रकार की व्याख्या करने वाले कोई श्रमण, आचार्य और उपाध्याय हैं? भगवान् सीमंधर ने आचार्य श्याम का नाम प्रस्तुत किया। वृद्ध ब्राह्मण के रूप में शक्रेन्द्र आचार्य श्याम के पास आये। आचार्य के ज्ञानबल का परीक्षण करने के लिए उन्होंने अपना हाथ उनके सामने किया। हस्तरेखा के आधार पर आचार्य श्याम ने देखा— वृद्ध ब्राह्मण की आयु पल्योपम से भी अधिक है। उनकी गम्भीर दृष्टि उन पर उठी और कहा—तुम मानव नहीं अपितु शक्रेन्द्र हो। शक्रेन्द्र को आचार्य श्याम के प्रस्तुत उत्तर से संतोष प्राप्त हुआ। उन्होंने निगोद के सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासा रखी। आचार्य श्याम ने निगोद का सूक्ष्म विवेचन और विश्लेषण कर शक्रेन्द्र को आश्चर्याभिभूत कर दिया। शक्रेन्द्र ने कहा—जैसा मैंने भगवान् सीमंधर से निगोद का विवेचन सुना, वैसा ही विवेचन आपके मुखारविन्द से सुनकर मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ। देव की अद्भुत रूपसम्पदा को देखकर कोई शिष्य निदान न कर ले, इस दृष्टि से भिक्षाचर्या में प्रवृत्त मुनिमण्डल के आगमन से पहले ही शक्रेन्द्र श्यामाचार्य की प्रशंसा करता हुआ जाने के लिए उद्यत हो गया।

ज्ञान के साथ अहं न आये, यह असम्भव है। महाबली, विशिष्ट साधक बाहुबली और कामविजेजा आर्य स्थूलभद्र में भी अहंकार आ गया था, वैसे ही श्यामाचार्य भी अहंकार से ग्रसित हो गये। उन्होंने कहा—तुम्हारे आगमन के बाद मेरे शिष्य बिना किसी सांकेतिक चिह्न के आधार किस प्रकार जान पायेंगे? आचार्यदेव के संकेत से शक्रेन्द्र ने उपाश्रय का द्वार पूर्वाभिमुख से पश्चिमाभिमुख कर दिया। जब आचार्य श्याम के शिष्य भिक्षा लेकर लौटे तो द्वार को विपरीत दिशा में देखकर विस्मित हुए। इन्द्र के आगमन की प्रस्तुत घटना प्रभावकचरित में कालकसूरि प्रबन्ध में आचार्य कालक के साथ दी है। विशेषावश्यकभाष्य, आवश्यकचूर्णि प्रभृत्ति ग्रन्थों में आर्य रिक्षित के साथ यह घटना दी गई है।

परम्परा की दृष्टि से निगोद की व्याख्या करने वाले कालक और श्याम ये दोनों एक ही आचार्य हैं, क्योंिक कालक और श्याम ये दोनों शब्द एकार्थक हैं। परम्परा की दृष्टि से वीरनिर्वाण ३३५ में वे युगप्रधान आचार्य हुए और ३७६ काल तक जीवित रहे। यदि प्रज्ञापना उन्हीं कालकाचार्य की रचना है तो वीरनिर्वाण ३३५ से ३७६ के मध्य की रचना है। आधुनिक अनुसंधान से यह सिद्ध है कि निर्युक्ति के पश्चात् प्रज्ञापना की रचना हुई है। नन्दीसूत्र में जो आगम-सूची दी गई है, उसमें प्रज्ञापना का उल्लेख है। नन्दीसूत्र विक्रम संवत् ५२३ के पूर्व की रचना है। अतः इसके साथ प्रज्ञापना के उक्त समय का विरोध नहीं है।

प्रज्ञापना और षट्खण्डागम : एक तुलना

आगमप्रभाकर पुण्यविजयजी म. एवं पं. दलसुख मालविणया ने 'पन्नवणासुत्तं' ग्रन्थ की प्रस्तावना में प्रज्ञापनासूत्र और षट्खण्डागम की विस्तृत तुलना दी है। हम यहाँ उसी का संक्षेप में सारांश अपनी दृष्टि से प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रज्ञापना श्वेताम्बरपरम्परा का आगम है तो षट्खण्डागम दिगम्बरपरम्परा का आगम है। प्रज्ञापना के रचियता दशपूर्वधर श्यामाचार्य हैं तो षट्खण्डागम के रचियता आचार्य पुष्पदन्त और आचार्य भूतबिल हैं। दिगम्बर विद्वान् षट्खण्डागम की रचना का काल विक्रम की प्रथम शताब्दी मानते हैं। यह ग्रन्थ छह खण्डों में विभक्त होने से 'षट्खण्डागम' के रूप में विश्रुत है। ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है कि पुष्पदन्त और भूतबिल से पूर्व श्यामाचार्य हुए थे। अत: प्रज्ञापना षट्खण्डागम से बहुत पहले की रचना है।

दोनों ही आगमों का मूल स्रोत दृष्टिवाद है। ^{४९} दोनों ही आगमों का विषय जीव और कर्म का सैद्धान्तिक दृष्टि से विश्लेषण करना है। दोनों में अल्पबहुत्व का जो वर्णन है, उसमें अत्यधिक समानता है, जिसे महादण्डक कहा गया है। ^{५०} दोनों में गित-आगित प्रकरण में तीर्थंकर, बलदेव एवं वासुदेव के पदों की प्राप्ति के उल्लेख की समानता वस्तुत: प्रेक्षणीय है। ^{५१} दोनों में अवगाहना, अन्तर आदि अनेक विषयों का समान रूप से

- ४९. (क) अञ्झयणिमणंचित्तं सुयरयणं दिट्टीवायणीसंदं। जह विण्णयं भगवया, अहमवि तह वण्णइस्सामि॥ — प्रज्ञापनासूत्र, पृष्ठ १, गा. ३
 - (ख) अग्रायणीयपूर्वस्थित-पंचमवस्तुगतचतुर्थमहाकर्मप्राभृतकज्ञ:सूरिर्धरसेननामाऽभूत्॥ १०४॥ कर्मप्रकृतिप्राभृतमुपसंहार्येव षड्भिरिह खण्डै: ॥ १३४॥ ——श्रुतावतार-इन्द्रनन्दीकृत
 - (ग) भूतबलि-भयवदा जिणवालिदपासे दिट्ठविसदिसुत्तेण अप्पाउओति अवगयजिणवालिदेण महाकम्मपयिङ-पाहुङस्स वोच्छेदो होहदि त्ति समुप्पण्णबुद्धिणा पुणो दव्वपमाणाणुगममादिं काऊण गंथरयणा कदा।
 - -- षट्खण्डागम, जीवट्टाण, भाग १, पृष्ठ ७१
- ५०. अह भंते! सव्वजीवप्पबहुं महादंडयं वण्णइस्सामि सव्वत्थोवा गब्भक्कंतिया मणुस्सा....सजोगी विसेसाहिया ९६, संसारत्था विसेसाहिया ९८, सव्वजीवा विसेसाहिया ९८। —प्रज्ञापनासूत्र-३३४ तुलना करें—
 - 'एत्तो सळ्जीवेसु महादंडओ कादव्वो भवदि सळ्वत्थोवा मणुस्सपञ्जत्ता गब्भवक्कंतिया ... णिगोद-जीवा विसेसाहिया। — षट्खण्डागम, पुस्तक ७
- ५१. प्रज्ञापनासूत्र, सू० १४४ से ६५. तुलना करें- षट्खण्डागम, पुस्तक ६. सू. ११६-२२०

प्रतिपादन किया गया है। प्रज्ञापना में छत्तीस पद हैं, उनमें से २३ वें, २७ वें, ३५ वें पद में क्रमश: प्रकृतिपद, कर्मपद, कर्मबंधवेदपद, कर्मवेदबंधपद, कर्मवेदवेदकपद और वेदनापद ये छह नाम हैं। षट्खण्डागम के टीकाकार वीरसेन ने षट्खण्डागम के जीवस्थान, क्षुद्रकबंध, बंधस्वामित्व, वेदना, वर्गणा और महाबंध ये छह नाम दिये हैं। प्रज्ञापना के उपर्युक्त पदों में जिन तथ्यों की चर्चाएं की गई हैं, उन्हीं तथ्यों की चर्चाएं षट्खण्डागम में भी की गई हैं।

दोनों ही आगमों में गित आदि मार्गणास्थानों की दृष्टि से जीवों के अल्पबहुत्व पर चिन्तन किया गया है। प्रज्ञापना में अल्पबहुत्व की मार्गणाओं के छब्बीस द्वार हैं, जिनमें जीव और अजीव इन दोनों पर विचार किया गया है। षट्खण्डागम में चौदह गुणस्थानों से सम्बन्धित गित आदि मार्गणाओं को दृष्टि में रखते हुए जीवों के अल्पबहुत्व पर विचार किया गया है। प्रज्ञापना में अल्पबहुत्व की मार्गणाओं के छब्बीस द्वार हैं तो षट्खण्डागम में चौदह हैं। किन्तु दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि षट्खण्डागम में विर्णत चौदह मार्गणा द्वार प्रज्ञापना में वर्णित छब्बीस द्वारों में चौदह के साथ पूर्ण रूप से मिलते हैं। जैसा कि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है :—

प्रज्ञापना ^{५२}	षट्खण्डागम ^{५३}
१. दिशा	
२. गति	१. गति
३. इन्द्रिय	२. इन्द्रिय
४. काय	३. काय
५. योग	४. योग
६. वेद	५. वेद
७. कषाय	६. कषाय
८. लेश्या	१०. लेश्या
९. सम्यक्त्व	१२. सम्यक्त्व
१०. ज्ञान	७. ज्ञान
११. दर्शन	९. दर्शन
१२. संयम	८. संयम
१३. उपयोग	
१४. आहार	१४. आहारक

५२. दिसि गित इंदिय काए जोगे वेदे कसाय लेस्सा य। सम्मत्त णाण दंसण संजम उवओग आहारे॥ भासग परित्त पञ्जत सुहुम सण्णी भवत्थिए चरिमे। जीवे य खेत बन्धे पोग्गल महदंडए चेव॥

^{—-}पन्नवणा. ३, बहुवत्तव्वपयं सूत्र २१२. गा. १८, १८१

५३. षट्खण्डागम, पुस्तक ७, पृ. ५२०

प्रज्ञापना ^{५२}	षट्खण्डागम ^{५३}
१५. भाषक	
१६. परित	
१७. पर्याप्त	
१८. सूक्ष्म	
१९. संज्ञी	१३. संज्ञी
२०. भव	११. भव्य
२१. अस्तिकाय	
२२. चरिम	
२३. जीव	
२४. क्षेत्र	
२५. बंध	
२६. पुद्गल	<u> </u>

जैसे प्रज्ञापनासूत्र के बहुवक्तव्यता नामक तृतीय पद में गित, प्रभृति मार्गणास्थानों की दृष्टि से छब्बीस द्वारों के अल्पबहुत्व पर चिन्तन करने के पश्चात् प्रस्तुत प्रकरण के अन्त में 'अह भंते सव्वजीवप्पबहुं महा-दण्डयं वत्तइस्सामि'' कहा है, वैसे ही षट्खण्डागम में भी चौदह गुणस्थानों में गित आदि चौदह मार्गणास्थानों द्वारा जीवों के अल्पबहुत्व पर चिन्तन करने के पश्चात् प्रस्तुत प्रकरण के अन्त में महादण्डक का उल्लेख किया है। भेष

प्रज्ञापना में जीव को केन्द्र मानकर निरूपण किया गया है तो षट्खण्डागम में कर्म को केन्द्र मानकर विश्लेषण किया गया है, किन्तु खुद्दाबंध (क्षुद्रकबंध) नामक द्वितीय खण्ड में जीवबंधेन का विचार चौदह मार्गणास्थानों के द्वारा किया गया है, जिसकी शैली प्रज्ञापना से अत्यधिक मिलती जुलती है।

प्रज्ञापना ^{५५} की अनेक गाथाएँ षट्खण्डागम में ^{५६} कुछ शब्दों के हेरफेर के साथ मिलती हैं। यहाँ तक कि आवश्यकिनर्युक्ति और विशेषावश्यक की गाथाओं से भी मिलती हैं।

५४. षट्खण्डागम, पुस्तक ७, पृ. ७४५

५५. समयं वक्कंताणं, समयं तेसिं सरीर निळ्वती। समयं आणुग्गहणं, समयं ऊसास—नीसासे॥ एक्कस्स उ जं गहणं, बहूण साहारणाणं तं चेव। जं बहुयाणं गहणं समासओ तं पि एगस्स॥ साहारणमाहारो, साहारणमाणुपाण गहणं च। साहारणजीवाणं, साहारणलक्खणं एयं॥ —प्रज्ञापना, गा० ९७-१०१

५६. तुलना करें---

साहारणमाहारो, साहारणमाणपाणगहणं च। साहारणजीवाणं, साहारणलक्खणं भणिदं। एयस्स अगुग्गहणं बहूणसाहारणाणमेयस्स। एयस्स जं बहूणं समासदो तं पि होदि एयस्स॥ आवश्यकनिर्युक्ति—गा० ३१ से और विशेषावश्यकभाष्य गा० ६०४ से तुलना करें — षट्खण्डागम—पुस्तक १३, गाथा सूत्र ४ से ९, १२, १३, १५, १६

इसी प्रकार प्रज्ञापना और षट्खण्डागम इन दोनों का प्रतिपाद्य विषय एक है, दोनों का मूल स्रोत भी एक है। तथापि भिन्न-भिन्न लेखक होने से दोनों के निरूपण की शैली पृथक्-पृथक् रही है। कहीं-कहीं पर तो षट्खण्डागम से भी प्रज्ञापना का निरूपण अधिक व्यवस्थित रूप से हुआ है। मेरा यहाँ पर यह तात्पर्य नहीं है कि षट्खण्डागम के लेखक आचार्य पृष्पदन्त और आचार्य भूतबिल ने प्रज्ञापना की नकल की है, पर यह पूर्ण-सत्य-तथ्य है कि प्रज्ञापना की रचना षट्खण्डागम से पहले हुए थी। अत: उसका प्रभाव षट्खण्डागम् के रचनाकार पर अवश्य ही पड़ा होगा।

जीवाजीवाभिगम और प्रज्ञापना

जीवाजीवाभिगम तृतीय उपांग है और प्रज्ञापना चतुर्थ उपांग है। ये दोनों आगम अंगबाह्य होने से स्थिवरकृत हैं। जीवाजीवाभिगम स्थानांग अंग का उपांग है तो प्रज्ञापना, समवायांग का। जीवाजीवाभिगम और प्रज्ञापना इन दोनों ही आगमों में जीव और अजीव के विविध स्वरूपों का निरूपण किया गया है। इन दोनों में प्रथम अजीव का निरूपण करने के पश्चात् जीव का निरूपण किया गया है। दोनों ही आगमों में मुख्य अन्तर यह है कि जीवाजीवाभिगम, स्थानांग का उपांग होने से उसमें एक से लेकर दश भेदों का निरूपण है। दश तक का निरूपण दोनों में प्राय: समान सा है। प्रज्ञापना में वह क्रम आगे बढ़ता है। प्रश्न यह है कि प्रज्ञापना और जीवाजीवाभिगम इन दोनों आगमों में ऐतिहासिक दृष्टि से पहले किसका निर्माण हुआ? जीवाजीवाभिगम में अनेक स्थलों पर प्रज्ञापना के पदों का उल्लेख किया है। उदाहरण के रूप में भ्ष्य स्थां —४, ५, १३, १५, २०, ३५, ३६, ३८, ४१, ८६, ९१, १००, १०६, ११३, ११७, ११८, १२०, १२१, १२२ इनके अतिरिक्त राजप्रश्नीयसूत्र का उल्लेख भी सूत्र — १०९, ११० में हुआ है और औपपातिकसूत्र का उल्लेख सूत्र १११ में हुआ है। इन सूत्रों के उल्लेख से यह जिज्ञासा सहज रूप से हो सकती है कि इन आगमों के नाम वल्लभीवाचना के समय सुविधा की दृष्टि से उसमें रखे गये हैं या स्वयं आगम रचिता स्थिवर भगवान् ने रखे हैं? यदि लेखक ने ही रखे हैं तो जीवाजीवाभिगम की रचना प्रज्ञापना के बाद की होनी चाहिए।

उत्तर में निवेदन है कि जीवाजीवाभिगम आगम की रचनाशैली इस प्रकार की है कि उसमें क्रमशः जीव के भेदों का निरूपण है। उन भेदों में जीव की स्थिति, अन्तर, अल्पबहुत्व आदि का वर्णन है। सम्पूर्ण आगम दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम विभाग में अजीव और संसारी जीवों के भेदों का वर्णन हैं, तो दूसरे विभाग में सम्पूर्ण संसारी और सिद्ध जीवों का निरूपण है। एक भेद से लेकर दश भेदों तक का उसमें निरूपण हुआ है। किन्तु प्रज्ञापना में विषयभेद के साथ निरूपण करने की पद्धित भी पृथक् है और वह छत्तीस पदों में निरूपित है। किन्तु केवल प्रथम पद में ही जीव और अजीव का भेद किया गया है। अन्य शेष पदों में जीवों का स्थान, अल्पबहुत्व, स्थिति आदि का क्रमशः वर्णन है। एक ही स्थान पर जीवों की स्थिति आदि का वर्णन प्राप्त है। पर जीवाजीवाभिगम में उन सभी विषयों की चर्चा एक साथ नहीं है। जीवाजीवाभिगम से प्रज्ञापना में वस्तुविचार का आधिक्य भी रहा हुआ है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रज्ञापना की

५७. देखिए, सूत्र संख्या के लिए जीवाभिगम, देवचंद-लालभाई द्वारा प्रकाशित ई.० सन् १९१९ की आवृत्ति

रचना से पूर्व जीवाजीवाभिगम की रचना हुई है। अब रहा प्रज्ञापना के नाम का उल्लेख जीवाजीवाभिगम में हुआ है, उसका समाधान यही है कि प्रज्ञापना में उन विषयों की चर्चा विस्तार से हुई है। इसी कारण से प्रज्ञापना का उल्लेख भगवती आदि अंग-साहित्य में भी हुआ है और यह उल्लेख आगमलेखन के युग का है।

आगम प्रभावक पुण्यविजयजी म. का यह भी मन्तव्य है कि जैसे आचारांग, सूत्रकृतांग आदि प्राचीन आगमों में मंगलाचरण नहीं है वैसे ही जीवाजीवाभिगम में भी मंगलाचरण नहीं है। इसलिए उसकी रचना प्रज्ञापना से पहले की है। प्रज्ञापना के प्रारम्भ में मंगलाचरण किया गया है। इसलिए वह जीवाजीवाभिगम से बाद की रचना है। ६०

मंगलाचरण : एक चिन्तन

मंगलाचरण आगमयुग में नहीं था। आगमकार अपने अभिधेय के साथ ही आगम का प्रारम्भ करते थे। आगम स्वयं मंगलस्वरूप होने के कारण उसमें मंगलवाक्य अनिवार्य नहीं माना गया। आचार्य वीरसेन और आचार्य जिनसेन ने कषायपाहुड की जयधवला टीका में लिखा है—आगम में मंगलवाक्य का नियम नहीं है। क्योंकि परमागम में ध्यान को केन्द्रित करने के नियम से मंगल का फल सम्प्राप्त हो जाता है। है यही कारण है कि आचार्य गुणधर ने अपने कषायपाहुड ग्रन्थ में मंगलाचरण नहीं किया। है

द्वादशांगी में केवल भगवतीसूत्र को छोड़कर अन्य किसी भी आगम के प्रारम्भ में मंगलवाक्य नहीं है। वैसे ही उपांग में प्रज्ञापना के प्रारम्भ में मंगलगाथाएँ आई हैं। उन गाथाओं में सर्वप्रथम सिद्ध को नमस्कार किया गया है। उसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार किया है। प्रज्ञापना की प्राचीनतम जितनी भी हस्तिलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, उन सभी प्रतियों में पंचनमस्कार महामंत्र है। प्रज्ञापना के टीकाकार आचार्य हरिभद्र और आचार्य मलयगिरि ने पंचनमस्कार महामंत्र की व्याख्या नहीं की है। इस कारण आगमप्रभावक पुण्यविजयजी म. प. दलसुखभाई मालविणया आदि का अभिमत है कि प्रज्ञापना के निर्माण के समय नमस्कारमहामंत्र उसमें नहीं था। किन्तु लिपिकर्त्ताओं ने प्रारम्भ में उसे संस्थापित किया हो। षट्खण्डागम में भी आचार्य वीरसेन के अभिमतानुसार पंचनमस्कार महामंत्र का निर्देश है।

प्रज्ञापना में प्रथम सिद्ध को नमस्कार कर उसके पश्चात् अरिहंत को नमस्कार किया है, जबिक पंच-नमस्कार महामंत्र में प्रथम अरिहंत को नमस्कार है और उसके पश्चात् सिद्ध को। उत्तराध्ययन आदि आगम साहित्य में यह स्पष्ट उल्लेख है कि तीर्थंकर दीक्षा ग्रहण करते समय सिद्धों को नमस्कार करते हैं। इस दृष्टि से जैन परम्परा में प्रथम सिद्धों को नमस्कार करने की परम्परा प्रारम्भ हुई। तीर्थंकर अर्थात् अरिहंत प्रत्यक्ष उपकारी होने से पंचनमस्कार महामंत्र में उन्हें प्रथम स्थान दिया गया है। ई.पूर्व महाराज खारवेल, जो किलंगाधिपति थे, उन्होंने जो शिलालेख उट्टंकित करवाये, उनमें प्रथम अरिहंत को नमस्कार किया गया है और उसके बाद सिद्ध को।

६०. देखिए, पन्नवणासुत्तं, भाग २, प्रका. महावीर जैन विद्यालय बम्बई प्रस्तावना पृष्ठ १४-१५

६१. एत्थ पुण णियमो णित्थ, परमागमुवजोगम्मि णियमेण मंगलफलोवलंभादो। —कसायपाहुड, भाग १, गाथा १, पृष्ठ ९.

६२. एदस्थ अत्थविसेसस्स जणावणट्टं गुणहरभट्टारएण गंथस्सादीए ण मंगलं कयं। —कसायपाहुङ, भाग १, गाथा १, पृष्ठ ९.

मूर्धन्य मनीषियों का यह अभिमत है कि जब तक तीर्थ की संस्थापना नहीं हो जाती, तब तक सिद्धों को नमस्कार किया जाता है और जब तीर्थ की स्थापना हो जाती है, सिन्निकट के उपकारी होने से प्रथम अरिहंत को और उसके पश्चात् सिद्धों को नमस्कार करने की प्रथा प्रारम्भ हुई होगी। प्राचीनतम ग्रन्थों में मंगलाचरण की यह पद्धित प्राप्त होती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि निश्चित रूप से ऐसा ही क्रम रहा हो। वन्दन का जहाँ तक प्रश्न है, वह साधक की भावना पर अवलम्बित है। तीर्थंकरों के अभाव में तीर्थंकर-परम्परा का प्रबल प्रतिनिधत्व करने वाले आचार्य और उपध्याय हैं, अतः वे भी वन्दनीय माने गये और आचार्य, उपाध्याय पद के अधिकारी साधु हैं, इसिलए वे भी पांचवें पद में नमस्कार के रूप में स्वीकृत हुए हों। पंचपरमेष्ठीनमस्कार महामंत्र का निर्माण किसने किया? यह प्रश्न सर्वप्रथम आवश्यकिनर्युक्ति में समुपस्थित किया गया है। उत्तर में निर्युक्तिकार भद्रबाहु ने यह समाधान किया कि पंचपरमेष्ठीनमस्कार महामंत्र सामायिक का ही एक अंग है। अतः सर्वप्रथम पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार कर सामायिक करना चाहिए। विश्व नमस्कारमहामंत्र उतना ही पुराना है, जितना सामायिकसूत्र। सामायिक के अर्थकर्त्ता तीर्थंकर हैं और सूत्रकर्त्ता गणधर हैं। इसिलए नमस्कारमहामंत्र के भी अर्थकर्त्ता तीर्थंकर हैं और उसके सूत्रकर्त्ता गणधर हैं।

द्वितीय प्रश्न यह है कि पंचनमस्कार यह आवश्यक का ही एक अंश है या यह अंश दूसरे स्थान से इसमें स्थापित किया गया है? इस प्रश्न का उत्तर भी जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य में स्पष्ट रूप से दिया है कि आचार्य देववाचक ने नन्दीसूत्र में पंचनमस्कार महामंत्र को पृथक् श्रुतस्कंध के रूप में नहीं गिना है।

तथापि यह स्पष्ट है कि यह सूत्र है और प्रथम मंगल भी है, इसीलिए नमस्कारमहामंत्र केवल आवश्यकसूत्र का ही अंश नहीं है, किन्तु सर्वश्रुत का आदिमंगल रूप भी है। किसी भी श्रुत का पाठ ग्रहण करते समय नमस्कार करना आवश्यक है। आचार्य भद्रबाहु ने नमस्कारमहामंत्र की उत्पत्ति, अनुत्पत्ति की गहराई से चर्चा विविध नयों की दृष्टि से की है। १५ आचार्य जिनभद्र ने तो अपने विस्तृत भाष्य में दार्शनिक दृष्टि से शब्द की नित्य-अनित्यता की चर्चा कर नयदृष्टि से उस पर चिन्तन किया है। इस महामंत्र के रचयिता अज्ञात हैं। एक प्राचीन आचार्य ने तो स्पष्ट रूप से लिखा है—

''आगे चौबीसी हुई अनन्ती, होसी बार अनन्त! नवकार तणी कोई आदि न जाने, यूँ भाख्यो भगवन्त!!''

महानिशीथ, जिसके उद्धारक हरिभद्र माने जाते हैं, उसमें महामंत्र के उद्धारक आर्य वजस्वामी माने गये हैं, और आचार्य हरिभद्र के बाद होने वाले धवला टीकाकार वीरसेन आचार्य की दृष्टि से नमस्कार के कर्त्ता आचार्य पुष्पदन्त हैं।^{६६} आचार्य पुष्पदन्त का अस्तित्वकाल वीरनिर्वाण की सातवीं शताब्दी (ई. पहली

सामाइयंगमेव य जं सो सेसं अतो वोच्छं॥ —आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १०२७.

६३. कयपंचनमोक्कारो करेइ सामाइयंति सोऽभिहितो।

६४. (क) विशेषावश्यकभाष्य, गाथा १५४४

⁽ख) आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ८९, ९०

६५. (क) आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ६४४ से ६४६

⁽ख) विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ३३३५ से ३३३८ तक

६६. षट्खण्डागम, धवला टीका, भाग, १ पृष्ठ ४१ तथा भाग २, प्रस्तावना पृष्ठ ३३ से ४१

शताब्दी) है। हम पूर्व ही बता चुके हैं कि खारबेल का शिलालेख, जो ई. पूर्व १५२ का है, उसमें ''नमो अरहंताण, नमो सव्वसिद्धाणं,'' ये पद प्राप्त होते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि नमस्कारमहामंत्र का अस्तित्व आचार्य पुष्पदन्त से बहुत पहले था। श्वेताम्बर-परम्परा की दृष्टि से नमस्कारमहामंत्र के रचयिता तीर्थंकर और गणधर हैं। जैसा कि आवश्यकनिर्युक्ति से स्पष्ट है।

अस्तिकाय : एक चिन्तन

प्रज्ञापना के प्रथम पद में ही जीव और अजीव के भेद और प्रभेद बताकर फिर उन भेद और प्रभेदों की चर्चाएँ अगले पदों में की हैं। प्रथम पद में अजीव के सम्बन्ध में विस्तार से निरूपण है। अजीव का निरूपण रूपी और अरूपी और इन दो भेदों में करके रूपी में पुद्गल द्रव्य का निरूपण किया है और अरूपी में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि के रूप में अजीव द्रव्य का वर्णन किया गया है। किन्तु प्रस्तुत आगम में इन भेदों का वर्णन करते समय अस्तिकाय शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु उनके स्थान पर द्रव्य, तत्त्व और पदार्थ शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है जो आगमों की प्राचीनता का प्रतीक है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन तीनों को देश और प्रदेश इन भेदों में विभक्त किया है। किन्तु अस्तिकाय शब्द का अर्थ कहीं पर भी मूल आगम में नहीं दिया गया है। अद्धा–समय के साथ अस्तिकाय शब्द व्यवहत नहीं हुआ है। इससे धर्मास्तिकाय आदि के साथ अद्धा समय का जो अन्तर है, वह स्पष्ट होता है। प्रस्तुत आगम में जीव के साथ अस्तिकाय शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जीव के प्रदेश नहीं हैं, क्योंकि प्रज्ञापना के पांचवें पद में जीव के प्रदेशों पर चिन्तन किया गया है। प्रथम पद में जिनको अजीव और जीव के मौलिक भेद कहे हैं, उन्हें ही पांचवें पद में जीवपर्याय और अजीवपर्याय कहा है। तेरहवें पद में उन्हों को परिणाम नाम से प्रतिपादित किया है।

अजीव के अरूपी और रूपी ये दो भेद बताकर धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और अद्धा समय इन चार को अरूपी अजीव के अन्तर्गत लिया गया है। धर्म, अधर्म और आकाश के स्कन्ध, देश और प्रदेश ये प्रत्येक के विभाग किये गये हैं। यहाँ पर देश का अर्थ धर्मास्तिकाय आदि का बुद्धि के द्वारा किल्पत दो तीन आदि प्रदेशात्मक विभाग है और प्रदेश का अर्थ धर्मास्तिकाय आदि का बुद्धिकिल्पत प्रकृष्ट देश जिसका पुन: विभाग न हो सके, निर्विभाग विभाग प्रदेश है। धर्मास्तिकाय आदि के समग्र प्रदेश का समूह स्कंध है। 'अद्धा' काल को कहते हैं, अद्धारूप समय अद्धासमय है। वर्तमान काल का एक ही समय 'सत्' होता है। अतीत और अनागत के समय या तो नष्ट हो चुके होते हैं, या उत्पन्न नहीं हुए होते हैं। अतः काल में देश-प्रदेशों के संघात की कल्पना नहीं है। असंख्यातसमय आदि की समृहरूप आविलका की कल्पना व्यावहारिक है।

रूपी अजीव के अन्तर्गत् पुद्गल को लिया गया है। उसके स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश और परमाणु पुद्गल ये चार प्रकार हैं। पुद्गल वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थानयुक्त होता है। पांच वर्ण के सौ भेद, दो गंध के छियालीस भेद, पांच रस के सौ भेद, आठ स्पर्श के एक सौ चौरासी भेद, पांच संस्थान के सौ भेद, इस तरह रूपी अजीव के पांच सौ तीस भेद और अरूपी अजीव के दस भेद का निरूपण हुआ है।

व्युत्पित्त की दृष्टि से अस्तिकाय शब्द 'अस्ति' और 'काय' इन दो शब्दों के मेल से निर्मित हुआ है। अस्ति का अर्थ है 'सत्ता' अथवा 'अस्तित्व' है और काय का अर्थ यहाँ पर शरीररूप अस्तिवान् के रूप में नहीं हुआ है। क्योंकि पंचास्तिकाय में पुद्गल के अतिरिक्त शेष अमूर्त हैं, अतः यहाँ काय का लाक्षणिक अर्थ है—जो अवयवी द्रव्य हैं, वे अस्तिकाय हैं और जो निरवयव द्रव्य है, वह अनस्तिकाय है। अपर शब्दों में यों कह सकते हैं जिसमें विभिन्न अंश या हिस्से हैं, वह अस्तिकाय है। यहाँ यह सहज जिज्ञासा हो सकती है कि अखण्ड द्रव्यों में अंश या अवयव की कल्पना करना कहाँ तक तर्कसंगत है? क्योंकि धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों एक एक हैं, अविभाज्य और अखण्ड हैं। अतः उनके अवयवी होने का तात्पर्य क्या है? कायत्व का अर्थ 'सावयवत्व' यदि हम मानते हैं तो एक समस्या यह उपस्थित होती है कि परमाणु तो अविभाज्य, निरंश और निरवयव है तो क्या वह अस्तिकाय नहीं है? परमाणु पुद्गल का ही एक विभाग है और फिर भी उसे अस्तिकाय माना है। इन सभी प्रश्नों पर जैन मनीषियों ने चिन्तन किया है। उन्होंने उन सभी प्रश्नों का समाधान भी किया है। यह सत्य है कि धर्म, अधर्म और आकाश अविभाज्य और अखण्ड द्रव्य हैं, पर क्षेत्र की दृष्टि से वे लोकव्यापी हैं। इसिलए क्षेत्र की अपेक्षा से सावयवत्व की अवधारणा या विभाग की कल्पना वैचारिक स्तर पर की गई है। परमाणु स्वयं में निरंश, अविभाज्य और निरवयव है पर परमाणु स्वयं कायरूप नहीं है, पर जब वह परमाणु स्कन्ध का रूप धारण करता है तो वह कायत्व सावयवत्व को धारण कर लेता है। इसिलए परमाणु में भी कायत्व का सद्भाव माना है।

अस्तिकाय और अनस्तिकाय इस प्रकार के वर्गीकरण का एक आधार बहुप्रदेशत्व भी माना गया है। जो बहुप्रदेशत्व द्रव्य हैं, वे अस्तिकाय हैं और एक प्रदेशी द्रव्य अनस्तिकाय हैं। यहाँ भी यह सहज जिज्ञासा हो सकती है कि धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य स्वद्रव्य की अपेक्षा से तो एकप्रदेशी हैं, चूँिक वे अखण्ड हैं। सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र ने इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए स्पष्ट लिखा है कि —धर्म, अधर्म और आकाश में बहुप्रदेशत्व द्रव्य की अपेक्षा से नहीं है अपितु क्षेत्र की अपेक्षा से है। १६ क्षेत्र की दृष्टि से भी धर्म और अधर्म को असंख्यप्रदेशी कहा है और आकाश को अनन्त प्रदेशी कहा है। इसलिए उपचार से उनमें कायत्व की अवधारणा की गई है। पुद्गल परमाणु की अपेक्षा से नहीं, किन्तु स्कन्ध की अपेक्षा से बहुप्रदेशी है और अस्तिकाय भी बहुप्रदेशत्व की दृष्टि से है। परमाणु स्वयं पुद्गल का एक अंश है। यहाँ पर कायत्व का अर्थ विस्तारयुक्त होता है। विस्तार की प्रस्तुत अवधारणा क्षेत्र की अवधारणा पर अवलम्बित है। जो द्रव्य विस्तार रहित हैं वे अनस्तिकाय हैं। विस्तार से यहाँ तात्पर्य है —जो द्रव्य जितने–जितने क्षेत्र को अवगाहन करता है, वही उसका विस्तार है।

एक जिज्ञासा यह भी हो सकती है कि कालद्रव्य लोकव्यापी है, फिर उसे अस्तिकाय क्यों नहीं माना गया? उत्तर यह है कि कालाणु लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर स्थित है। किन्तु हरएक कालाणु अपने-आप में स्वतंत्र है। स्निग्धता और रूक्षतागुण के अभाव में उनमें बंध नहीं होता, अत: वे परस्पर निरपेक्ष रहते हैं।

६७. यावन्मात्रं आकाशं अविभागि पुद्गलावष्टब्थम् । तं खलु प्रदेशं जानीहि सर्वाणुस्थानदानार्हम् ॥ — द्रव्यसंग्रह संस्कृत छाया २७

बंध न होने से उनके स्कन्ध नहीं बनते। स्कन्ध के अभाव में प्रदेश-प्रचयत्व की कल्पना भी नहीं हो सकती। कालद्रव्य में स्वरूप और उपचार—इन दोनों ही प्रकार से प्रदेशप्रचय की कल्पना नहीं हो सकती।

आकाशद्रव्य सभी द्रव्यों को अवगाहन देता है। यदि आकाशद्रव्य विस्तृत नहीं होगा तो वह अन्य द्रव्यों को स्थान नहीं दे सकेगा। उसके अभाव में अन्य द्रव्य रह नहीं सकेंगे। धर्मद्रव्य गति का माध्यम है। वह उतने ही क्षेत्र में विस्तृत और व्याप्त है, जिसमें गित सम्भव है। यदि गित का माध्यम स्वयं विस्तृत नहीं है तो उसमें गित किस प्रकार सम्भव हो सकती है? उदाहरण के रूप में — जितने क्षेत्र में जल होगा, उतने ही क्षेत्र में मछली की गति सम्भव है। वैसे ही धर्मद्रव्य का प्रसार जिस क्षेत्र में होगा, उस क्षेत्र में पुदुगल और जीव की गति सम्भव होगी, इसलिए धर्मद्रव्य को लोक तक विस्तृत माना है। यही स्थिति अधर्मद्रव्य की भी है। अधर्म द्रव्य के कारण ही परमाणु स्कन्ध के रूप में बनते हैं। स्कन्ध के रूप में परमाणुओं को संगठित रखने का कार्य अधर्मद्रव्य का है। आत्मा के असंख्यात प्रदेश हैं। उन असंख्यात प्रदेशों को शरीर तक सीमित रखने का कार्य अधर्मद्रव्य है। विश्व की जो व्यवस्था पद्धति है, उसको सव्यवस्थित रखने में अधर्मद्रव्य का महत्त्वपूर्ण हाथ है, इसलिए अधर्मद्रव्य को भी लोकव्यापी माना है। अधर्मद्रव्य के अभाव में परमाण छितर-बितर हो जायेंगे। उनकी किसी भी प्रकार की रचना सम्भव नहीं होगी। जहाँ-जहाँ पर गित का माध्यम है, वंहाँ-वहाँ पर स्थिति का माध्यम भी आवश्यक है, जो गित का नियंत्रण करता है। विश्व की गित को और विश्व को संतुलित बनाये रखने के लिए अधर्मद्रव्य को लोकव्यापी माना है। इसलिए उसे अस्तिकाय में स्थान दिया है। पुद्गलद्रव्य में भी विस्तार है। वह परमाणु से स्कन्ध के रूप में परिवर्तित होता है। परमाणु में स्निग्धता और रूक्षता गुण रहे हुए हैं, जिनके कारण वह स्कन्धरचना करने में सक्षम है। इसीलिए उपचार से उसमें कायत्व रहा हुआ है। पुद्गलद्रव्य के कारण ही विश्व में मूर्तता है। यदि पुद्गल न हो तो मूर्त विश्व की सम्भावना ही नष्ट हो जाये। जीवद्रव्य भी विस्तारयुक्त है। शरीर के विस्तार की तरह आत्मा का भी विस्तार होता है। केवलिसमुद्घात के समय आत्मा के असंख्यात प्रदेश सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं। इसीलिए उसे अस्तिकाय में स्थान दिया है। हम यह पूर्व में बता चुके हैं कि काल के अणु स्निग्धता और रूक्षतागुण के अभाव में स्कन्ध या संघात रूप नहीं बनते। हम अनादि भूत से लेकर अनन्त भविष्य तक का अनुभव तो करते हैं, किन्तु उनमें कायत्व का आरोपण नहीं किया जा सकता। काल का लक्षण वर्तना केवल वर्तमान में ही है। वर्तमान केवल एक समय का है, जो बहुत ही सूक्ष्म है। इसलिए काल में प्रदेशप्रचय नहीं मान सकते और प्रदेशप्रचय के अभाव में वह अस्तिकाय नहीं है।

यहाँ पर यह भी स्मरण रखना होगा सभी द्रव्यों का विस्तारक्षेत्र समान नहीं है। आकाशद्रव्य लोक और अलोक दोनों में है। धर्म और अधर्म द्रव्य केवल लोक तक सीमित हैं। पुद्गल और जीव का विस्तार क्षेत्र एक सदृश नहीं है। पुद्गलिपण्ड का जितना आकार होगा, उतना ही उसका विस्तार होगा। जीव भी जितना शरीर विस्तृत होगा, उतना ही वह आकार को ग्रहण करेगा। उदाहरण के रूप में एक चींटी में भी आत्मा के असंख्यप्रदेश हैं तो एक हाथी में भी। उससे स्पष्ट है कि सभी अस्तिकायों का विस्तारक्षेत्र समान नहीं है।

भगवतीसूत्र में^{६८} प्रदेशदृष्टि से अल्पबहुत्व को लेकर सुन्दर वर्णन है। वहाँ पर यह प्रतिपादित किया

६८. भगवतीसूत्र —१३/५८

गया है कि अन्य द्रव्यों की अपेक्षा धर्म और अधर्म द्रव्य सबसे न्यून हैं। वे असंख्यप्रदेशी हैं और लोकाकाश तक सीमित हैं। धर्म और अधर्मद्रव्य की अपेक्षा जीवद्रव्य के प्रदेश अनन्तगुणा अधिक हैं, कारण यह है कि धर्म और अधर्म द्रव्य एक-एक ही हैं, परन्तु जीवद्रव्य अनन्त हैं और हर एक जीवद्रव्य के असंख्यात प्रदेश हैं। जीवद्रव्य के प्रदेशों की अपेक्षा पुद्गलद्रव्य के प्रदेश अनन्तगुणा अधिक हैं, क्योंकि प्रत्येक जीव के एक-एक आत्मप्रदेश पर अनन्तानन्त कर्मों की वर्गणायें हैं, जो पुद्गल हैं। पुद्गल की अपेक्षा भी काल के प्रदेश अनन्तगुणा अधिक हैं, क्योंकि प्रत्येक जीव और पुद्गल की वर्तमान, भूत और भविष्य की अपेक्षा अनन्त पर्यायें हैं। कालद्रव्य की अपेक्षा भी आकाशद्रव्य के प्रदेशों की संख्या सबसे अधिक है। अन्य सभी द्रव्य लोक तक ही सीमित हैं, जबिक आकाशद्रव्य लोक और अलोक दोनों में स्थित है।

प्रश्न यह उद्बुद्ध हो सकता है कि लोक्प्रकाश असंख्यातप्रदेशी है। उस असंख्यातप्रदेशी लोकाकाश में अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु किस प्रकार समा सकते हैं? एक आकाशप्रदेश में एक पुद्गलपरमाणु ही रह सकता है तो असंख्यातप्रदेशी लोकाकाश में असंख्य पुद्गलपरमाणु ही रह सकते हैं ?

उत्तर में निवेदन है कि एक आकाश प्रदेश में अनन्त परमाणु रहें, उसमें किसी भी प्रकार की बाधा नहीं है। क्योंकि परमाणु और परमाणुस्कन्ध में विशिष्ट अवगाहन शक्ति रही हुई है। यहां पर अवगाहन शक्ति का अर्थ है—दूसरों को अपने में समाहित करने की क्षमता। जैसे—आकाश द्रव्य अपने अवगाहन गुण के कारण अन्य द्रव्यों को स्थान देता है, वैसे ही परमाणु और स्कन्ध भी अपनी अवगाहनशक्ति के कारण अन्य परमाणुओं और स्कन्धों को अपने में स्थान देते हैं। यथा—एक आवास में विद्युत का एक बल्व अपना आलोक प्रसारित कर रहा है, उस आवास में अन्य हजार बल्व लगा दिये जायें तो उनका भी प्रकाश उस आवास में समाहित हो जायेगा। इसी प्रकार शब्दध्विन को भी ले सकते हैं। जैन दृष्टि से एक आकाशप्रदेश में अनन्तानन्त ध्विनयाँ रही हुई हैं। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि प्रकाश और ध्विन पौद्गिलक होने से मूर्त हैं। जब मूर्त में भी एक ही आकाशप्रदेश में अनन्त परमाणु के स्कन्ध रह सकते हैं तो अमूर्त के लिए तो प्रश्न नहीं । चाहे पुद्गलिपण्ड कितना भी घनीभूत क्यों न हो, उसमें दूसरे अन्य अनन्त परमाणु और पुद्गलिपण्डों को अपने में अवगाहन देने की शक्ति रही हुई है। बहुत कुछ यह सम्भव है कि परमाणु के उत्कृष्ट आकार की दृष्टि से यह बताया गया है कि एक आकाशप्रदेश एक परमाणु के आकार का है। गित की दृष्टि से जघन्य गित एक परमाणु के काल की है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो एक परमाणु जितने काल में एक आकाश प्रदेश से दूसरे आकाश प्रदेश में पहुँचता है, वह एक समय है, जो काल का सबसे छोटा विभाग है। उत्कृष्ट गित की दृष्टि से एक परमाणु एक समय में चौदह राजू लोक की यात्रा कर लेता है।

आधुनिक युग में विज्ञान ने अत्यधिक प्रगित की है। उसकी अपूर्व प्रगित विज्ञों को चमत्कृत कर रही है। विज्ञान ने भी दिक् (स्पेस्), काल (Time) और पुद्गल (Matter) इन तीन तत्त्वों को विश्व का मूल आधार माना है। इन तीन तत्त्वों के बिना विश्व की संरचना सम्भव नहीं। आइन्सटीन ने सापेक्षवाद के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि दिक् और काल ये गितसापेक्ष हैं। गितसहायक द्रव्य, जिसे धर्मद्रव्य कहा गया है; विज्ञान ने उसे 'ईथर' कहा है। आधुनिक अनुसंधान के पश्चात् ईथर का स्वरूप भी बहुत कुछ परिवर्तित हो चुका है। अब ईथर भौतिक नहीं, अभौतिक तत्त्व बन गया है, जो धर्मद्रव्य की अवधारणा

के अत्यधिक सिन्तिकट है। पुद्गल तो विश्व का मूल आधार है ही, भले ही वैज्ञानिक उसे स्वतंत्र द्रव्य न मानते हों किन्तु वैज्ञानिक धीरे-धीरे नित्य नूतन अन्वेषणा कर रहे हैं। सम्भव है निकट भविष्य में पुद्गल और जीव का स्वतंत्र अस्तित्व मान्य करें।

सिद्ध: एक चिन्तन

प्रज्ञापना के प्रथम पद में अजीवप्रज्ञापना के पश्चात् जीवप्रज्ञापना के सम्बन्ध में चिन्तन किया है। जीव के संसारी और सिद्ध ये मुख्य भेद किये हैं। जो जीते हैं, प्राणों को धारण करते हैं वे जीव हैं। प्राण के द्रव्यप्राण और भावप्राण ये दो प्रकार हैं। पांच इन्द्रियाँ, मनोबल, वचनबल और कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयुष्य, ये दस द्रव्यप्राण हैं। ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य ये चार भावप्राण हैं। संसारी जीव द्रव्य और भाव प्राणों से युक्त होता है और सिद्ध जीव केवल भावप्राणों से युक्त होते हैं।

नरक, तिर्यंच , मनुष्य और देव इन चार गितयों में पिरभ्रमण करने वाले संसारसमापन्न हैं। वे संसारवर्ती जीव हैं। जो संसारपिरभ्रमण से रहित हैं, वे असंसारसमापन्न—सिद्ध जीव हैं। वे जन्म-मरण रूप समस्त दु:खों से मुक्त होकर सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं। सिद्धों के पन्द्रह भेद यहाँ पर प्रतिपादित किये गये हैं। ये पन्द्रह भेद समय, लिंग, वेश, पिरिस्थित आदि दृष्टि से किये गये हैं।

तीर्थ की संस्थापना के पश्चात् जो जीव सिद्ध होते हैं, वे 'तीर्थसिद्ध' हैं। तीर्थ की संस्थापना के पूर्व या तीर्थ का विच्छेद होने के पश्चात् जो जीव सिद्ध होते हैं वे 'अतीर्थसिद्ध' हैं। जैसे भगवान् ऋषभदेव के तीर्थ की स्थापना के पूर्व ही माता मरुदेवी सिद्ध हुई। मरुदेवी माता का सिद्धिगमन तीर्थ की स्थापना के पूर्व हुआ था। दो तीर्थंकरों के अन्तराल काल में यदि शासन का विच्छेद हो जाय और ऐसे समय में कोई जीव जातिस्मरण आदि विशिष्ट ज्ञान से सिद्ध होते हैं तो वे 'तीर्थंव्यवच्छेद' सिद्ध कहलाते हैं। ये दोनों प्रकार के सिद्ध अतीर्थंसिद्ध की परिगणना में आते हैं। जो तीर्थंकर होकर सिद्ध होते हैं, वे 'तीर्थंकरसिद्ध' कहलाते हैं। सामान्य केवली 'अतीर्थंकरसिद्ध' कहलाते हैं। संसार की निस्सारता को समझ कर बिना उपदेश के जो स्वयं ही संबुद्ध होकर सिद्ध होते हैं वे 'स्वयंबुद्धसिद्ध'। नन्दीचूर्णि में तीर्थंकर और तीर्थंकरभिन्न ये दोनों प्रकार के स्वयंबुद्ध बताये हैं। यहाँ पर स्वयंबुद्ध से तीर्थंकरभिन्न स्वयंबुद्ध ग्रहण किये गए हैं। "

जो वृषभ वृक्ष बादल प्रभृति किसी भी बाह्य निमित्तकारण से प्रबुद्ध होकर सिद्ध होते हैं वे 'प्रत्येक-बुद्धसिद्ध हैं।' प्रत्येकबुद्ध समूहगच्छ में नहीं रहते। वे नियमत: एकाकी ही विचरण करते हैं। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि स्वयंबुद्ध और प्रत्येकबुद्ध दोनों को परोपदेश की आवश्यकता नहीं होती, तथापि दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि स्वयंबुद्ध में जातिस्मरण आदि का ज्ञान होता है जबिक प्रत्येकबुद्ध बाह्य निमित्त से प्रबुद्ध होता है। जो बोधप्राप्त आचार्य के द्वारा बोधित होकर सिद्ध होते हैं, वे 'बुद्धबोधितसिद्ध' हैं। स्त्रीलिंग में सिद्ध होने वाली भव्यात्माएँ 'स्त्रीलिंगसिद्ध' कहलाती हैं।

श्वेताम्बर साहित्य में स्त्री का निर्वाण माना है, जबकि दिगम्बरपरम्परा के ग्रन्थों में स्त्री के निर्वाण का

६९. प्रज्ञापनासूत्र, मलयगिरि वृत्ति

७०. ते दुविहा सयंबुद्धा--तित्थयरा तित्थयरवइरित्ता य, इह वइरित्तेहिं अहिगारो। ---नन्दी अध्ययनचूर्णि

निषेध किया है। दिगम्बरपरम्परा मान्य षट्खण्डागम में मनुष्य-स्त्रियों के गुणस्थान के सम्बन्ध में चिन्तन करते हुए लिखा है कि ''मनुष्यस्त्रियों सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि संयतासंयत और संयत गुणस्थानों में नियम से पर्याप्त होती हैं। १९ इसमें 'संजत' शब्द को सम्पादकों ने टिप्पण में दिया है, जिसका सारांश यह है कि मनुष्य स्त्री को 'संयत' गुणस्थान हो सकता है और संयत गुणस्थान होने पर स्त्री मोक्ष में जा सकती है। प्रस्तुत प्रश्न को लेकर दिगम्बर समाज में प्रबल विरोध का वातावरण समुत्पन्न हुआ, तब ग्रन्थ के सम्पादक डॉ. हीरालालजी जैन आदि ने पुन: उसका स्पष्टीकरण षट्खण्डागम के तृतीय भाग की प्रस्तावना में किया, किन्तु जब विज्ञों ने मूडबिद्री [कर्नाटक] में षट्खण्डागम की मूल प्रति देखी तो उसमें भी 'संजद' शब्द मिला है।

वट्टकरेस्वामिविरचित मूलाचार में आर्यिकाओं के आचार का विश्लेषण करते हुए कहा है — जो साधु अथवा आर्यिका इस प्रकार आचरण करते हैं, वे जगत में पूजा, यश व सुख को पाकर मोक्ष को पाते हैं। १९ इसमें भी आर्यिकाओं के मोक्ष में जाने का उल्लेख है, यद्यपि यह स्पष्ट नहीं है कि वे उसी भव में मोक्ष प्राप्त करती हैं अथवा तत्पश्चात् के भव में। बाद के दिगम्बर आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में और प्राचीन ग्रन्थों की टीकाओं में स्पष्ट रूप से स्त्रीनिर्वाण का निषेध किया है।

जो पुरुष शरीर से सिद्ध होते हैं, वे 'पुरुषिलंग सिद्ध' हैं। नपुंसक शरीर से सिद्ध होते हैं, वे 'नपुंसकिलंग सिद्ध' हैं जो तीर्थकर प्रितपिदित श्रमण पर्याय में सिद्ध होते हैं वे 'स्विलंगिसिद्ध' हैं। परिव्राजक आदि के वेष सें होने वाले 'अन्यिलंगिसिद्ध' हैं। जो गृहस्थ के वेष में सिद्ध होते हैं, वे 'गृहिलिंगिसिद्ध' हैं। एक समय में अकेले ही सिद्ध होने वाले 'एकिसिद्ध' हैं। एक ही समय में एक से अधिक सिद्ध होने वाले 'अनेकिसिद्ध' हैं। सिद्ध के इन पन्द्रह भेदों के अतिरिक्त अन्य प्रकार से भी सिद्धों के भेद प्रस्तुत किए हैं।

सिद्धों के जो पन्द्रह प्रकार प्रतिपादित किये हैं, वे सभी तीर्थसिद्ध और अतीर्थसिद्ध इन दो प्रकारों में समाविष्ट हो जाते हैं। विस्तार से निरूपण करने का मूल आशय सिद्ध बनने के पूर्व उस जीव की क्या स्थिति थी, यह बतलाना है। प्रज्ञापना के टीकाकार ने भी इसे स्वीकार किया है।

जिस प्रकार जैन आगम साहित्य में सिद्धों के प्रकार बताये हैं, वैसे ही बौद्ध आगम में स्थिवरवाद की दृष्टि से बोधि के तीन प्रकार बताये हैं — सावकबोधि [श्रावकबोध], पच्चेकबोधि, [प्रत्येकबोधि], सम्मासबोधि [सम्यक् संबोधि]। श्रावकबोधि उपासक को अन्य के उपदेश से जो बोधि प्राप्त होती है, उसे श्रावकबोधि कहा है। श्रावकसम्बद्ध भी अन्य को उपदेश देने का अधिकारी है। अ

जैन दृष्टि से प्रत्येकबोधि को अन्य के उपदेश की आवश्यकता नहीं होती, वैसे ही पच्चेकबोधि को भी दूसरे के उपदेश की जरूरत नहीं होती। उसका जीवन दूसरों के लिए आदर्श होता है।

७१. सम्मामिच्छाइट्टि असंजदसम्माइट्टि संजादासंजद (अत्र संजद इति पाठशेष: प्रतिभाति)—ट्टाणे णियमा पज्जितयओ। — षट्खण्डागम भाग १ सूत्र ९३ पृ. ३३२ , प्रका. सेठ लक्ष्मीचन्द शिताबराय जैन साहित्योद्धारक फंड कार्यालय, अमरावती (बरार), सन् १९३९

७२. ते जगपुज्जं कित्तिं सुहं च लद्भूण सिज्झंति —मूलाचार ४/१९६, पृ. १६८

७४. विनयपिटकः; महावग्ग १/२१

सम्मासबोधि स्वयं के प्रबल प्रयास से बोधि प्राप्त करता है और अन्य व्यक्तियों को भी वह बोधि प्रदान कर सकता है। उसकी तुलना तीर्थंकर से की जा सकती है।^{७५}

आर्य और अनार्यः एक विश्लेषण

सिद्धों के भेद-प्रभेदों की चर्चा करने के पश्चात् संसारी जीवों के विविध भेद बतलाये हैं। इन भेद-प्रभेदों का मूल आधार इन्द्रियाँ हैं। संसारी जीवों के इन्द्रियों की दृष्टि से एक, द्वि., त्री., चतुः, पंचइन्द्रिय इस प्रकार पांच भेद किए गए हैं, फिर एकेन्द्रिय में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय आदि के विविध भेद-प्रभेदों की प्रज्ञापना की गई है। एकेन्द्रिय के पश्चात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय का वर्णन है। पंचेन्द्रिय में भी नारक एवं तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों का वर्णन करने के पश्चात् मनुष्य का वर्णन किया है। मनुष्य के संमूर्च्छिम और गर्भज, ये दो भेद किए हैं। संमूर्च्छिम मनुष्य औपचारिक मनुष्य हैं; वे गर्भज के मल, मूत्र, कफ आदि अशुचि में ही उत्पन्न होते हैं, इसीलिए उन्हें मनुष्य कहा गया है। गर्भज मनुष्य के कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, अन्तर्द्वीपज, ये तीन प्रकार हैं।

जीवों की सूक्ष्मता, पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक दृष्टि से भी जीवों के भेद-प्रभेद प्रतिपादित हैं। एकेंन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक जितने भी जीव हैं, वे संमूर्च्छिम हैं। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और मनुष्य ये गर्भज और संमूर्च्छिम दोनों प्रकार के होते हैं। नारक और देव का जन्म उपपात है। संमूर्च्छिम और नरक के जीव एकान्त रूप से नपुंसक होते हैं। देवों में स्त्री और पुरुष दोनों होते हैं, नपुंसक नहीं होते। गर्भज मनुष्य और गर्भज तिर्यञ्च में तीनों लिंग होते हैं। इस तरह लिंगभेद की दृष्टि से जीवों के भेद किए गए है। नरकगित, तिर्यञ्चगित, मनुष्यगित और देवगित, ये भेद गित की दृष्टि से किए गये हैं।

पाँच भरत, पाँच ऐरावत और पाँच महाविदेह — ये पन्द्रह कर्मभूमियाँ हैं। यहाँ के मानव कर्म करके अपना जीवनयापन करते हैं, एतदर्थ इन भूमियों में उत्पन्न मानव कर्मभूमिज कहलाते हैं। कर्मभूमिज मनुष्य के भी आर्य और म्लेच्छ ये दो प्रकार हैं। आर्य मनुष्य के भी ऋद्धिप्राप्त व अनृद्धिप्राप्त ये दो प्रकार हैं। प्रज्ञापना में ऋद्धिप्राप्त आर्य के अरिहन्त, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, चारण और विद्याधर यह छ: प्रकार बातये हैं। ^{७६}

तत्त्वार्थवार्तिक में ऋद्धिप्राप्त आर्य के बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, तप, बल, औषध, रस और क्षेत्र, ये आठ प्रकार बतलाये हैं।^{७७}

प्रज्ञापना में अनृद्धिप्राप्त आर्य के क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कुलार्य, कर्मार्य, शिल्पार्य, भाषार्य, ज्ञानार्य, दर्शनार्य और चारित्रार्य, ये नौ प्रकार बतलाये हैं।⁹⁶

७५. (क) उपासकजनालंकार की प्रस्तावना, पृष्ठ १६

⁽ख) उपासकजनालंकार लोकोत्तरसम्पत्ति निद्देस, पृष्ठ ३४०

⁽ग) पण्णवणासुत्तं द्वितीय भाग, प्रस्तावना पृष्ठ ३६ —पुण्यविजयजी

७६. प्रज्ञापना १ सूत्र १००

७७. तत्त्वार्थवार्तिक ३। ३६, पृष्ठ २०१

७८. प्रज्ञापना १। १०१

तत्त्वार्थवार्तिक में अनृद्धिप्राप्त आर्यों के क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कर्मार्य, चिरत्रार्य और दर्शनार्य; ये पांच प्रकार प्ररूपित हैं। ^{७९}

तत्त्वार्थभाष्य में अनृद्धिप्राप्त आर्यों के क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कुलार्य, शिल्पार्य, कर्मार्य, एवं भाषार्य, ये छ: प्रकार उल्लिखित हैं।^{८०}

प्रज्ञापना की दृष्टि से साढ़े पच्चीस देशों में रहने वाले मनुष्य क्षेत्रार्य हैं। इन देशों में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव उत्पन्न हुए, इसलिए इन्हें आर्य जनपद कहा है। १९ प्रवचनसारोद्धार में भी आर्य की यही पिरभाषा दी गई हैं। १९ जिनदासगणी महत्तर ने लिखा है कि जिन प्रदेशों में यौगलिक रहते थे, जहाँ पर हाकार आदि नीतियों का प्रवर्त्तन हुआ था; वे प्रदेश आर्य हैं और शेष अनार्य। १९३ इस दृष्टि से आर्य जनपदों की सीमा बढ़ जाती है। तत्त्वार्थभाष्य में लिखा है कि चक्रवर्ती विजयों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य भी आर्य होते हैं। १४ तत्त्वार्थवार्तिक में काशी, कौशल प्रभृति जनपदों में उत्पन्न मनुष्यों को क्षेत्रार्य कहा है। १५ इसका अर्थ यह है कि बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, गुजरात, राजस्थान और पंजाब तथा पश्चिमी पंजाब एवं सिन्ध, ये कोई पूर्ण तथा कोई अपूर्ण प्रान्त आर्यक्षेत्र में थे और शेष प्रान्त उस सीमा में नहीं थे। दिक्षणापथ आर्यक्षेत्र की सीमा में नहीं था। उत्तर भारत में आर्यों का वर्चस्व था, संभवत: इसी दृष्टि से सीमानिर्धारण किया गया हो। प्रज्ञापना में साढ़े पच्चीस देशों की जो सूची दी गई है उसमें अवन्ती का उल्लेख नहीं है जबिक अवन्ती श्रमण भगवान् महावीर के समय एक प्रसिद्ध राज्य था। वहाँ का चन्द्रप्रद्योत राजा था। भगवान् महावीर सिन्धुसौवीर जब पधारे थे तो अवन्ती से ही पधारे थे। सिन्धुसौवीर से अवन्ती अस्सी योजन दूर था १६ दिक्षण में जैनधर्म का प्रचार था फिर भी उन क्षेत्रों को आर्यक्षेत्रों की परिगणना में नहीं लिया गया है। ये विज्ञों के लिए चिन्तनीय प्रश्न है। यह भी बहुत कुछ संभव है, जिन देशों को आर्य नहीं माना गया है संभव है वहाँ पर आर्यपूर्व जातियों का वर्चस्व रहा होगा।

प्रज्ञापना में जाति-आर्य मनुष्यों के अम्बष्ट, कलिंद, विदेह, हरित, वेदक और चुंचुण ये छ: प्रकार बताये गये हैं।

कुलार्य मानव के भी उग्र, भोग, राजन, इक्ष्वाकु, ज्ञात और कौरव यह छ: प्रकार बतलाये गये हैं। तत्त्वार्थवार्तिक में जाति-आर्य और कुल-आर्य इन दोनों को भिन्न नहीं माना है। इक्ष्वाकु, ज्ञात और भोग प्रभृति कुलों में समुत्पन्न मानव जात्यार्य होते हैं। ८० तत्त्वार्थभाष्य में इक्ष्वाकु, विदेह, हरित, अम्बष्ठ,

७९. तत्त्वार्थवार्तिक ३। ३६, पृष्ठ २००

८०. तत्त्वार्थभाष्य ३। १५

८१. इत्थुप्पत्ति जिणाणं, चक्कीणं राम कण्हाणं। — प्रज्ञापना १। ११७

८२. यत्र तीर्थंकरादीनामुत्पत्तिस्तदार्यं, शेषमनार्यम्। —प्रवचनसारोद्धार, पृष्ठ ४४६

८३. जेसु केसुवि पएसेसु मिहुणगादि पइट्टिएसु हक्काराइया नीई परूढा ते आरिया, सेसा अणारिया। —आवश्यकचूर्णि

८४. भरतेषु अर्धषड्विंशतिजनपदेषु जाता: शेषेषु च चक्रवर्तिविजयेषु। — तत्त्वार्थभाष्य ३। १५

८५. क्षेत्रार्या: काशिकोशलादिषु जाता:।

⁻⁻⁻तत्त्वार्थवार्तिक ३ ।३६, पृष्ठ २००

८६. गच्छाचार, पृष्ठ १२२

८७. इक्ष्वाकुज्ञातभोजादिषु कुलेषु जाता जात्यार्य:।

⁻⁻⁻तत्त्वार्थवार्तिक ३। ३६ पृष्ठ २००

ज्ञात कूरु, बुम्बु, नाल, उग्र, भोग, राजन्य आदि को जात्यार्य और कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव तथा तीसरे, पांचवें और सातवें कुलकर से लेकर शेष कुलकरों से उत्पन्न विशुद्ध वंश वाले कुल-आर्य हैं।

प्रज्ञापना में दूष्यक— वस्त्र के व्यापारी, सूत के व्यापारी कपास या रुई के व्यापारी, नाई, कुम्हार आदि आर्यकर्म करने वाले मानवों को कर्मार्य माना है। शिल्पार्य मानव के तुण्णाग (रफू करने वाले), तन्तुवाय (जुलाहे), पुस्तकार, लेप्यकार, चित्रकार आदि अनेक प्रकार हैं। तत्त्वार्थवार्तिक में कर्मार्य और शिल्पार्य को एक ही माना है। उन्होंने कर्मार्य के सावद्य-कर्मार्य, अल्पसावद्य-कर्मार्य, असावद्य-कर्मार्य यह तीन भेद किए हैं। असि, मिष, कृषि, विद्या, शिल्प और विणक्कर्म करने वाले सावद्य कर्मार्य हैं। श्रावक-श्राविकाएँ अल्पसावद्य-कर्मार्य हैं; संयमी श्रमण असावद्यकर्मार्य हैं। १९ तत्त्वार्थभाष्य में यजन, याजन, अध्यापन, प्रयोग, कृषि, लिपि, वाणिज्य और योनि संपोषण से आजीविका करनेवाले बुनकर, कुम्हार, नाई, दर्जी और अन्य अनेक प्रकार के कारीगरों को शिल्पार्य माना है। १०

अर्द्धमागधी भाषा बोलने वाले तथा ब्राह्मी लिपि में लिखने वाले को प्रज्ञापना में भाषार्य कहा है। तत्त्वार्थवार्तिक में भाषार्य का वर्णन नहीं आया है। तत्त्वार्थभाष्य में सभ्य मानवों की भाषा के नियत वर्णों, लोकरूढ, स्पष्ट शब्दों तथा पांच प्रकार के आर्यों के संव्यवहार का सम्यक् प्रकार से उच्चारण करने वाले को भाषार्य माना है। ११ भगवान् महावीर स्वयं अर्धमागधी भाषा बोलते थे। १२ अर्धमागधी को देववाणी माना है। १३

सम्यग्ज्ञानी को ज्ञानार्य, सम्यग्दृष्टि को दर्शनार्य और सम्यक्चारित्री को चारित्रार्थ माना गया है। ज्ञानार्य, दर्शनार्य, चारित्रार्य इन तीनों का सम्बन्ध धार्मिक जगत् से है। जिन मानवों को यह रत्नत्रय प्राप्त है, फिर वे भले ही किसी भी जाति के या कुल के क्यों न हों, आर्य हैं। रत्नत्रय के अभाव में वे अनार्य हैं। आर्यों का जो विभाग किया गया है वह भौगोलिक दृष्टि से, आजीविका की दृष्टि से, जाति और भाषा की दृष्टि से किया गया है। साढ़े पच्चीस देशों को जो आर्य माना गया है, हमारी दृष्टि से उसका कारण यही हो सकता है कि वहां पर जैनधर्म और जैनसंस्कृति का अत्यधिक प्रचार रहा है; इसी दृष्टि से उन्हें आर्य जनपद कहा गया हो। वैदिक परम्परा के विज्ञों ने अंग-बंग आदि जनपदों के विषय में लिखा है—

''अंग - बंग - कलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च। तीर्थयात्रां विना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हति॥''

अर्थात्—अंग (मुगेर-भागलपुर), बंग (बंगाल), किलंग (उडीसा), सौराष्ट्र (काठियावाड़) और मगध (पटना गया आदि) में तीर्थयात्रा के सिवाय जाने से फिर से उपनयनादि संस्कार करके शुद्ध होना पड़ता है।

८८. जात्यार्याः इक्ष्वाकवो विदेहा हर्यम्बष्ठा ज्ञाताः कुरवो बुम्बुनाला उग्रभोगा राजन्या इत्येवमादयः। कुलार्याः—कुलकराश्चक्रवर्तिनो बलदेवा वासुदेवाः। ये चान्ये आतृतीयादापंचमादासप्तमाद् वा कुलकरेभ्यो वा विशुद्धान्वयप्रकृतयः।—तत्त्वार्थभाष्य ३।१५

८९. तत्त्वार्थवार्तिक ३। ३६, पृष्ठ २०१

९०. तत्त्वार्थभाष्य, ३। १५

९१. वही, ३। १५

९२. अद्भमागहाए भासाए भासाइ अरिहा धम्मं।

⁻⁻⁻ औपपातिक सूत्र ५६

९३. देवा णं अद्धमागहाए भासाए भासंति।

⁻⁻⁻भगवती ५।४।१९१

कितने ही चिन्तकों का यह भी मानना है कि प्रज्ञापना और जीवाजीवाभिगम में क्षेत्र आदि की दृष्टि से जो आर्य और अनार्य का भेद प्रतिपादित है वह विभाजन आर्य और अनार्य जातियों के घुल-मिल जाने के पश्चात् का है। इसमें वर्ण और शरीरसंस्थान के आधार पर यह विभाग नहीं हुआ है। १४ सूत्रकृतांग में वर्ण और शरीर के संस्थान की दृष्टि से विभाग किया है। वहाँ पर कहा गया है—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, इन चारों दिशाओं में मनुष्य होते हैं। उनमें कितने ही आर्य होते हैं, तो कितने ही अनार्य होते हैं। कितने ही उच्च गोत्र वाले होते हैं तो कितने ही नीच गोत्र वाले; कितने ही लम्बे होते हैं तो कितने ही नाटे होते हैं; कितने ही श्रेष्ठ वर्ण वाले होते हैं तो कितने की अपकृष्ट वर्ण वाले अर्थात् काले होते हैं, कितने ही सुरूप होते हैं, कितने ही कुरूप होते हैं। अनार्य जातियों में भी अनेक सम्पन्न जातियां थी; उनकी अपनी भाषा थी, अपनी सभ्यता थी, अपनी संस्कृति थी, अपनी संपदा और अपनी धार्मिक मान्यताएँ थीं। १६

प्रज्ञापना में कर्मभूमिज मनुष्यों के ही आर्य और म्लेच्छ ये दो भेद किए हैं। १७ तत्त्वार्थभाष्य १८ और तत्वार्थवार्तिक १९ में अन्तर्द्वीपज मनुष्यों के भी दो भेद किए हें। म्लेच्छों की भी अनेक परिभाषाएँ बतायी गई हैं। प्रवचनसारोद्धार की दृष्टि से जो हेयधमीं से दूर हैं और उपादेय धर्मों के निकट हैं वे आर्य हैं। १०० जो हेयधमीं को ग्रहण किए हुए हैं वे अनार्य हैं। आचार्य मलयगिरि ने प्रज्ञापनावृत्ति में लिखा है कि जिनका व्यवहार शिष्टसम्मत नहीं है वे म्लेच्छ हैं। १०१ प्रवचनसारोद्धार में लिखा है—जो पापी हैं, प्रचंड कर्म करने वाले हैं, पाप के प्रति जिनके अन्तर्मानस में घृणा नहीं है अकृत्य कार्यों के प्रति जिनके मन में पश्चाताप नहीं है। 'धर्म' यह शब्द जिनको स्वप्न में भी स्मरण नहीं आता, वे अनार्य हैं। १०२ प्रश्नव्याकरण में कहा गया है—विविध प्रकार के हिंसाकर्म म्लेच्छ मानव करते हैं। १०३ आर्य म्लेच्छों की जो ये परिभाषाएं हैं ये जातिपरक और क्षेत्रपरक न होकर गुण की दृष्टि से हैं। कौटिल्यअर्थशास्त्र में आर्य शब्द स्वतन्त्र नागरिक और दास परतंत्र नागरिक के अर्थ में व्यवहत हुआ। १०४

प्रज्ञापना में कर्मभूमिज मनुष्य का एक विभाग अनार्य यानी म्लेच्छ कहा गया है। अनार्य देशों में समुत्पन्न लोग अनार्य कहलाते हैं। प्रज्ञापना के अनार्य देशों में नाम इस प्रकार हैं—

```
९४. अतीत का अनावरण, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ १५५
```

धम्मोत्ति अक्खग़ुर्द्र्क् सुमिणे वि न नज्जए जाणं। । —प्रवचनसारोद्धार, गाथा १५१६

९५. सूत्रकृतांग २। १

९६. ऋग्वेद ७।६।३;१।१७६।३-४;८।७०।११

९७. प्रज्ञापना १, सूत्र १८

९८. तत्त्वार्थभाष्य, ३। १५

९९. तत्त्वार्थवार्तिक, ३। ३६

१००. प्रवचनसारोद्धार, पृष्ठ ४१५

१०१. प्रज्ञापना १, वृत्ति

१०२. पावा य चंडकम्मा, अणारिया निग्घणा निरणुतावी।

१०३. प्रश्नव्याकरण, आंश्रव द्वार १

१०४. मूल्येन चायत्वं गच्छेत्। —कौटिल्य अर्थशास्त्र ३। १३।२२

१. शक (पश्चिम भारत का देश), २. यवन— यूनान, ३. चिलात (किरात,) ४. शबर, ५. बर्बर, ६. काय, ७. मुरुण्ड, ८. ओड, ९. भटक (भद्रक) (दिल्ली और मथुरा के बीच यमुना के पश्चिम में स्थित प्रदेश), १०. णिण्णग (निम्नग), ११. पक्किणय (मध्य एशिया का एक प्रदेश प्रकण्व या परगना), १२. कुलक्ष, १३. गोंड, १४. सिंहल (लंका), १५. पारस (ईरान), १६. गोध, १७. क्रोंच, १८. अम्बष्ठ (चिनाव नदी के निचले भाग में स्थित एक गणराज्य), १९. दिमल (द्रविड़), २०. चिल्लल, २१. पुलिन्द, २२. हारोस, २३. दोब, २४. वोक्कण (अफगानिस्तान का उत्तरी-पूर्वी छोटा प्रदेश-वखान), २५. गन्धहारग (कन्धार), २६. पहलिय, २७. अण्झल, २८. रोम, २९. पास, ३०. पउस, ३१. मलय, ३२. बन्धुय (बन्धुक), ३३. सूयिल, ३४. कोंकणग, ३५. मेय, ३६. पल्हव, ३७. मालव ३८. मंग्गर, ३९. आभाषिक, ४०. अणक्क (अनक्र), ४१. चीण (चीन), ४२. लहसिय (ल्हासा), ४३. खस, ४४. खासिय, ४५. णद्धर (नेहर) ४६. मोंढ, ४७. डोंबिलग, ४८. लओस, ४९. कक्केय, ५०. पओस, ५१. अक्खाग, ५२. हूण, ५३. रोभक, ५४. मरु, ५५. मरु, ५५. मरुका।

प्रश्नव्याकरण^{१०५} अधर्मद्वार में भी कुछ परिवर्तन के साथ अनार्यों के नाम प्राप्त होते हैं। वहाँ यवन के बाद चिलाय नहीं है, भटक के पश्चात् णिण्णग नहीं है, पर तित्तीय है। तुलनात्मक दृष्टि से संक्षेप में अन्तर इस प्रकार है-

प्रज्ञापना	प्रश्नव्याकरण	प्रज्ञापना	प्रश्नव्याकरण
३ चिलाय	0	२३ दोब	२१ डोंब
८ ओड	७ उद	२४ वोक्कण	२२ पोक्कण
O (1)	९ तित्तिय	२५ पहलिय	२४ बहलीय
१० निण्णग	•	२७ अज्झल	२५ जल्ल
१३ गोंड	१२ गौड	२९ पास	२७ मास
१६ गोध	१६ अन्ध आन्ध्र	३० पडस	२८ बडस
१८ अम्बड	0	३२ बन्धुय	३० चंचुय
२० चिल्लल	१८ बिल्लल	३३ सूयलि	३१ चुलिय
२२ हारोस	२० अरोस	३६ पल्हव	३४ पण्हव

बहुत से नामों में भिन्नता है, ये भिन्न शब्द इस प्रकार हैं -

प्रज्ञापना	प्रश्नव्याकरण
३८ मग्गर	३६ महुर
४५ णद्दर	४३ णेहर
४६ मोंढ़	४४ मरहठ
४८ लओस	४५ मुठिय
४९ पओस	४६ आरभ
५१ कक्केय	४९ केकभ
५२ अक्खाग	४८ कुट्टण
५४ भरु	५२ रुस

१०५. प्रश्नव्याकरण, अधर्मद्वार, सूत्र ४

प्रवचनसारोद्धार १०६ में अनार्य देशों के नाम इस प्रकार हैं---

१. शक, २. यवन, ३. शबर, ४. बर्बर, ५. काय, ६. मरुण्ड, ७. अड्डु, ८. गोपा (गौड्डु), ९. पक्कणग, १०. अरबाग, ११. हूण, १२. रोमक, १३. पारस, १४. खस, १५. खासिक, १६. दुम्बिलक, १७. लकुश, १८. बोक्कस, १९. भिल्ल, २०. आन्ध्र (अन्ध्र) २१. पुलिन्द, २२. क्रोंच, २३. भ्रमररुच, २४. कोर्पक २५. चीन, २६. चंचुक, २७. मालव, २८. द्रविड, २९. कुलार्घ, ३०. केकय, ३१. किरात, ३२. हयमुख, ३३. खरमुख ३४. गजमुख, ३५. तुरंगमुख ३६. मिण्ढकमुख, ३७. हयकर्ण, ३८. गजकर्ण।

महाभारत में उपायन-पर्व में भी कुछ नाम इसी तरह से प्राप्त होते हैं, जो निम्नानुसार हैं-

१. म्लेच्छ २. यवन ३. बर्बर ४. आन्ध्र ५. शक ६. पुलिन्द ७. औरुणिक ८. कम्बोज ९. आमीर १०. पल्हव ११. दरद १२. कंक १३. खस १४. केकय १५. त्रिगर्त १६. शिबि १७. भद्र १८. हंस कायन १९. अम्बष्ट २०. तार्क्य २१. प्रहव २२. वसाति २३. मौंलिय २४. क्षुद्रमालवक २५. शौण्डिक २६. पुण्ड्र २७. शाणवत्य २८. कायव्य २९. दार्व ३०. शूर ३१. वैयमक ३२. उदुम्बर ३३. वाल्हीक ३४. कुदमान ३५. पौरक आदि।

इस प्रकार मानव जाति एक होकर भी उसके विभिन्न भेद हो गए हैं। पशु में जिस प्रकार जातिगत भेद हैं, वैसे ही मनुष्य में जातिगत भेद नहीं हैं। मानव सर्वाधिक शक्तिसंपन्न और बौद्धिक प्राणी है। वह संख्या की दृष्टि से अनेक है पर जाति की दृष्टि से एक है। उपर्युक्त चर्चा में जो भेद प्रतिपादित किये गये हैं, वे भौगोलिक और गुणों की दृष्टि से हैं।

जीवों का निवासस्थान

संसारी और सिद्ध के भेद और प्रभेद की चर्चा करने के पश्चात् उन जीवों के निवासस्थान के सम्बन्ध में चिन्तन किया गया है। इस चिन्तन का मूल कारण यह है कि आत्मा के परिमाण के सम्बन्ध में उपनिषदों में अनेक कल्पनाएँ हैं। इन सभी कल्पनाओं के अन्त में ऋषियों की विचारधारा आत्मा को व्यापक मानने की ओर विशेष रही है। १०७ प्राय: सभी वैदिक दर्शनों ने आत्मा को व्यापक माना है। हाँ, आचार्य शंकर और आचार्य रामानुज आदि ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार इसमें अपवाद हैं। उन्होंने ब्रह्मात्मा को व्यापक और जीवात्मा को अणु परिमाण माना है। बृहदारण्यक उपनिषद् में आत्मा को चावल या जौ के दाने के परिमाण माना है। १०० कठोपनिषद् में आत्मा को 'अंगुष्ठपरिमाण' का लिखा है १०० तो छान्दोग्योपनिषद् में आत्मा को 'बालिशत' परिमाण का कहा है। १०० मैत्र्युपनिषद् में आत्मा को अणु की तरह सूक्ष्म माना है। १०० कठोपनिषद् १०० मैत्र्युपनिषद् में आत्मा को अणु की तरह सूक्ष्म माना है। १०० कठोपनिषद् १०० मैत्र्युपनिषद् में आत्मा को अणु की तरह सूक्ष्म माना है। १०० कठोपनिषद् १०० मैत्र्युपनिषद् में आत्मा को अणु की तरह सूक्ष्म माना है।

१०६. प्रवचनसारोद्धार, गाथा १५८३-१५८५

१०७. (क) मुण्डक-उपनिषद् १।१।६

⁽ग) न्यायमंजरी, पृष्ठ ४६८ (विजय)

१०८. बृहदारण्यक-उपनिषद्, ५।६।१

१०९. कठोपनिषद् २।२।१२

११०. छान्दोग्योपनिषद् ५। १८। १

१११. मैत्र्युपनिषद् ६। ३८

११२. कठोपनिषद् १।२।२०

⁽ख) वैशेषिकसूत्र ७।१।१२

⁽घ) प्रकरणपंजिका, पृष्ठ १५८

छान्दोग्योपनिषद्^{११३} और श्वेताश्वेतरीपनिषद्^{११४} में आत्मा को अणु से अणु और महान् से महान् भी कहा है।

सांख्यदर्शन में आत्मा को कूटस्थ नित्य माना है अर्थात् आत्मा में किसी भी प्रकार का परिणमन या विकार नहीं होता है। संसार और मोक्ष आत्मा का नहीं प्रकृति का है। ११५ सुख-दु:ख ज्ञान, ये आत्मा के नहीं किन्तु प्रकृति के धर्म हैं। ११६ इस तरह वह आत्मा को सर्वथा अपरिणामी मानता है। कर्तृत्व न होने पर भी भोग आत्मा में ही माना है। ११७ इस भोग के आधार पर आत्मा में परिणाम की संभावना है, इसलिए कितने ही सांख्य भोग को आत्मा का धर्म नहीं मानते। ११८ उन्होंने आत्मा को कूटस्थ होने के मन्तव्य की रक्षा की है। कठोपनिषद् आदि में भी आत्मा को कूटस्थ माना है। ११९

जैनदर्शन में आत्मा को सर्वव्यापक नहीं माना है, वह शरीर-प्रमाण-व्यापी है। उसमें संकोच और विकास दोनों गुण हैं। आत्मा को कूटस्थ नित्य भी नहीं माना है किन्तु परिणामी नित्य माना गया है। इस विराट् विश्व में वह विविध पर्यायों के रूप में जन्म ग्रहण करता है और नियत स्थान पर ही वह आत्मा शरीर धारण करता है। कौन सा जीव किस स्थान में है, इस प्रश्न पर चिन्तन करना आवश्यक हो गया तो प्रज्ञापना के द्वितीय पद में स्थान के सम्बन्ध में चिंतन किया है। स्थान भी दो प्रकर का है— एक स्थायी, दूसरा प्रासंगिक। जन्म ग्रहण करने के पश्चात् मृत्युपर्यन्त जीव जिस स्थान पर रहता है, वह स्थायी स्थान है, स्थायी स्थान को आगमकार ने स्व-स्थान कहा है। प्रासंगिक निवास स्थान उपपात और समुद्घात के रूप में दो प्रकार का है।

जैनदृष्टि से जीव की आयु पूर्ण होने पर वह नये स्थान पर जन्म ग्रहण करता है। एक जीव देवायु को पूर्ण कर मानव बनने वाला है; वह जीव देवस्थान से चलकर मानवलोक में आता है। बीच की जो उसकी यात्रा है, वह यात्रा स्वस्थान नहीं है; वह तो प्रासंगिक यात्रा है, उस यात्रा को उपपातस्थान कहा गया है। दूसरा प्रासंगिक स्थान समुद्घात है। वेदना, मृत्यु, विक्रिया, प्रभृति विशिष्ट प्रसंगों पर जीव के प्रदेशों का जो विस्तार होता है वह समुद्घात है। समुद्घात के समय आत्मप्रदेश शरीरस्थान में रहते हुए भी किसी न किसी स्थान में बाहर भी समुद्घात-काल पर्यन्त रहते हैं। इसलिए समुद्घात की दृष्टि से जीव के प्रासंगिक निवास स्थान पर विचार किया गया है। इस तरह द्वितीय पद में स्वस्थान, उपपातस्थान और समुद्घातस्थान—तीनों प्रकार के स्थानों के सम्बन्ध में चिंतन किया है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि प्रथम पद में निर्दिष्ट जीवभेदों में से एकेन्द्रिय जैसे कई सामान्य भेदों के स्थानों पर चिंतन नहीं है, केवल मुख्य भेद-प्रभेदों के स्थानों पर ही विचार किया है।

११३. छान्दोग्योपनिषद् ३। २०

११४. श्वेताश्वतरोपनिषद् ३। २०

११५. सांख्यकारिका ६२

११६. सांख्यकारिका ११

११७. सांख्यकारिका १७

११८. सांख्यतत्त्वकौमुदी १७

११९. कठोपनिषद् १२। १८। १९

संसारी जीवों के लिए उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की दृष्टि से चिंतन किया गया है, पर सिद्धों के लिए स्वस्थान का ही चिंतन किया गया है। सिद्धों का उपपात नहीं होता। अन्य संसारी जीव के नाम, गोत्र, आयु आदि कर्मों का उदय होता है जिससे वे एक गित से दूसरी गित में जाते हैं। सिद्ध कर्मों से मुक्त होते हैं। कर्मों के अभाव के कारण वे सिद्ध रूप में जन्म नहीं लेते। जैनदृष्टि से जो जीव लोकान्त तक जाते हैं वे आकाशप्रदेशों को स्पर्श नहीं करते, १२० इसलिए सिद्धों का उपपातस्थान नहीं है। कर्मयुक्त जीव ही समुद्घात करते हैं, सिद्ध नहीं। इसलिए प्रस्तुत प्रकरण में सिद्धों के स्वस्थान पर ही चिन्तन किया गया है।

एकेन्द्रिय जाति के जीव समग्रलोक में व्यास हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सामान्य पंचेन्द्रिय जीव लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। नारक, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य और देव के लिए पृथक्-पृथक् स्थानों का निर्देश किया गया है और सिद्ध लोक के अग्रभाग में अवस्थित हैं। यहाँ पर यह स्मरण रखना होगा कि जब छद्मस्थ मनुष्य समुद्घात करता है तो वह लोक के असंख्यातवें भाग को स्पर्श करता है और जब केवली समुद्घात करते है। तो वह सम्पूर्ण लोक को स्पर्श करते हैं। जब मनुष्य के आत्मप्रदेश सम्पूर्ण लोक में विस्तृत हो जाते हैं, उस समय उसकी आत्मा लोकव्याप्त हो जाती है। १२१

अजीवों के स्थान के सम्बन्ध में विचार नहीं किया गया है। ऐसा ज्ञात होता है—जैसे जीवों के प्रभेदों में अमुक निश्चित स्थान की कल्पना कर सकते हैं, वैसे पुद्गल के सम्बन्ध में नहीं। परमाणु व स्कन्ध समग्र लोकाकाश में हैं किन्तु उनका स्थान निश्चित नहीं है। धर्मास्तिकाय, अधर्मस्तिकाय ये दोनों समग्र लोकव्यापी हैं, अत: उनकी चर्चा यहाँ नहीं की गई है।

संख्या की दृष्टि से चिन्तन

तीसरे पद में जीव और अजीव तत्त्वों का संख्या की दृष्टि से विचार किया गया है। भगवान् महावीर के समय और तत्पश्चात् भी तत्त्वों का संख्या-विचार महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। एक ओर उपनिषदों के मत से सम्पूर्ण विश्व एक ही तत्त्व का परिणाम है तो दूसरी ओर सांख्य के मत से जीव अनेक हैं किन्तु अजीव एक है। बौद्धों की मान्यता अनेक चित्त और अनेक रूप की है। इस दृष्टि ने जैनमत का स्पष्टीकरण आवश्यक था। वह यहाँ पर किया गया है। अन्य दर्शनों में सिर्फ संख्या का निरूपण है, जबिक प्रस्तुत पद में संख्या का विचार अनेक दृष्टियों से किया गया है। मुख्य रूप से तारतम्य का निरूपण अर्थात् कौन किससे कम या अधिक है, इसकी विचारणा इस पद में की गई है। प्रथम, दिशा की अपेक्षा से किस दिशा में जीव अधिक और किस दिशा में कम, इसी तरह जीवों के भेद-प्रभेद की न्यूनाधिकता का भी दिशा की अपेक्षा से विचार किया गया है। इसी प्रकार गित, इन्द्रिय, काय, योग आदि से जीवों के जो-जो प्रकार होते हैं, उनमें संख्या का विचार करके अन्त में समग्र जीवों के जो विविध प्रकार होते हैं, उन समग्र जीवों की न्यूनाधिक संख्या का निर्देश किया गया है।

१२०. प्रज्ञापना मलयगिरिवृत्ति, पत्रांक १०८

१२१. द्रव्यसंग्रह टीका, ब्रह्मदेवकृत, १०

इसमें केवल जीवों का ही नहीं किन्तु धर्मास्तिकाय आदि षड्द्रव्यों की भी परस्पर संख्या का तारतम्य निरूपण किया गया है। वह तारतम्य द्रव्यदृष्टि और प्रदेशदृष्टि से बताया गया है। प्रारम्भ में दिशा को मुख्य करके संख्या-विचार है और बाद में ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् लोक की दृष्टि से समग्र जीवों के भेदों का संख्यागत विचार है। जीवों की तरह पुद्गलों की संख्या का अल्पबहुत्व भी उन उन दिशाओं में व उन उन लोकों में बताया है। इसके सिवाय द्रव्य, प्रदेश और द्रव्यप्रदेश दृष्टियों से भी परमाणु और संख्या का विचार है। उसके बाद पुद्गलों की अवगाहना, कालस्थित और उनकी पर्यायों की दृष्टि से भी संख्या का निरूपण किया गया है।

इस पद में जीवों का अनेक प्रकार से वर्गीकरण करके अल्पबहुत्व का विचार किया है। इसकी संख्या की सूची पर से यह फलित होता है कि उस काल में भी आचार्यों ने जीवों की संख्या का तारतम्य (अल्पबहुत्व) बताने का इस प्रकार जो प्रयत्न किया है, वह प्रशस्त है। इसमें बताया गया है कि पुरुषों से स्त्रियों की संख्या—चाहे मनुष्य हों, देव हों या तिर्यञ्च हों—अधिक मानी गई है। अधोलोक में नारकों में प्रथम से सातवीं नरक में जीवों का क्रम घटता गया है अर्थात् सबसे नीचे के सातवें नरक में सबसे कम नारक जीव हैं। इसके विपरीत क्रम उर्ध्वलोक के देवों में है, नीचे के देवलोकों में सबसे अधिक जीव हैं, अर्थात् सौधर्म में सबसे अधिक और अनुत्तर विमानों में सबसे कम हैं। परन्तु मनुष्यलोक (तिर्यक्लोक) के नीचे भवनवासी देव हैं। उनकी संख्या सौधर्म से अधिक है और उनसे ऊपर होने पर भी व्यन्तर देवों की संख्या अधिक और उनसे भी अधिक ज्योतिष्क हैं, जो व्यन्तरों से भी ऊपर हैं।

सबसे कम संख्या मनुष्यों की है। इसिलए यह भव दुर्लभ माना जाय यह स्वाभाविक है। इन्द्रियाँ जितनी कम उतनी जीवों की संख्या अधिक। अथवा ऐसा कह सकते हैं कि विकसित जीवों की अपेक्षा अविकसित जीवों की संख्या अधिक है। अनादिकाल से आज तक जिन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली है, ऐसे सिद्ध जीवों की संख्या भी एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा से कम ही है। संसारी जीवों की संख्या सिद्धों से अधिक ही रहती है। इसिलए यह लोक संसारी जीवों से कभी शून्य नहीं होगा, क्योंकि प्रस्तुत पद में जो संख्याएँ दी हैं उनमें कभी परिवर्तन नहीं होगा, वे ध्रवसंख्याएँ हैं।

सातवें नरक में अन्य नरकों की अपेक्षा सबसे कम नारक जीव हैं तो सबसे ऊपर देवलोक—अनुत्तर में भी अन्य देवलोकों की अपेक्षा सबसे कम जीव हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि जैसे अनन्त पुण्यशाली होना दुष्कर है, वैसे ही अत्यन्त पापी होना भी दुष्कर है। जीवों का जो क्रिमक विकास माना गया है उनके अनुसार तो निकृष्ट कोटि के जीव एकेन्द्रिय हैं। एकेन्द्रिय में से ही आगे बढ़कर जीव क्रमश: विकास को प्राप्त होते हैं।

एकेन्द्रियों और सिद्धों की संख्या अनन्त की गणना में पहुँचती है। अभव्य भी अनन्त हैं और सिद्धों की अपेक्षा समग्र रूप से संसारी जीवों की संख्या भी अधिक है और यह बिल्कुल संगत है, क्योंकि भविष्य में—अनागत काल में संसारी जीवों में से ही सिद्ध होने वाले हैं। इसलिए वे कम हों तो संसार खाली हो जायेगा, ऐसा मानना पड़ेगा।

एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक क्रम से जीवों की संख्या घटती जाती है। यह क्रम अपर्याप्त जीवों में तो बराबर बना रहता है किन्तु पर्याप्त अवस्था में व्युत्क्रम मालूम पड़ता है। ऐसा क्यों हुआ है, यह विज्ञों के लिए विचारणीय और संशोधन का विषय है।

स्थितिचिन्तन

चौथे पद में जीवों की स्थिति अर्थात् आयु का विचार है। जीवों की नारकादि रूप में स्थिति-अवस्थिति कितने समय तक रहती है, उसकी विचारणा इसमें होने से इस का नाम 'स्थिति' पद दिया है।

जीव द्रव्य तो नित्य है परन्तु वह जो अनेक प्रकार के रूप—पर्याय—नानाविध जन्म धारण करता है, वे अनित्य हैं। इसलिए पर्यायें कभी तो नष्ट होती ही हैं। अतएव उनकी स्थिति का विचार करना आवश्यक है। वह प्रस्तुत पद में किया गया है। जघन्य आयु कितनी और उत्कृष्ट आयु कितनी—इस तरह दो प्रकार से उसका विचार केवल संसारी जीवों और उनके भेदों को लेकर किया है। सिद्ध तो 'सादीया अपज्जवसिता' सादि-अनन्त होने से उनकी आयु का विचार नहीं किया गया है। अजीव द्रव्य की पर्यायों की स्थिति का विचार भी इसमें नहीं है। क्योंकि उनकी पर्याय जीव की आयु की तरह मर्यादित काल में रखी नहीं जा सकती है, इसलिए उसे छोड़ देना स्वाभाविक है।

प्रस्तुत पद में प्रथम जीवों के सामान्य भेदों को लेकर उनकी आयु का निर्देश है। बाद में उनके अपर्याप्त और पर्याप्त भेदों का निर्देश है। उदाहरणार्थ— पहले तो सामान्य नारक की आयु और उसके पश्चात् नारक के अपर्याप्त और उसके वाद पर्याप्त की आयु का वर्णन है। इसी क्रम से प्रत्येक नारक आदि को लेकर सर्व प्रकार के आयुष्य का विचार किया गया है।

स्थिति की सूची के अवलोकन से ज्ञात होता है कि पुरुष से स्त्री की आयु कम है। नारकों और देवों का आयुष्य मनुष्यों और तिर्यंचों से अधिक है। एकेन्द्रिय जीवों में अग्निकाय का आयुष्य सबसे न्यून है। यह प्रत्यक्ष है, क्योंकि अग्नि अन्य जीवों की अपेक्षा शीघ्र बुझ जाती है। एकेन्द्रियों में पृथ्वीकाय का आयुष्य सबसे अधिक है। द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय जीवों का आयुष्य कम मानने का 'क्या कारण है, यह विचारणीय है। फिर चतुरिन्द्रिय का आयुष्य अधिक है, परन्तु द्वीन्द्रिय से कम है, यह भी एक रहस्य है और शोध का विषय है।

प्रस्तुत पद में अजीव की स्थिति का विचार नहीं है। उसका कारण यह प्रतीत होता है कि धर्म, अधर्म और आकाश तो नित्य हैं और पुद्गलों की स्थिति भी एक समय से लेकर असंख्यात समय की है, जिसका वर्णन पांचवें पद में है। इसलिए अलग से इसका निर्देश आवश्यक नहीं था। फिर, प्रस्तुत पद में तो आयुकर्मकृत स्थिति का विचार है और वह अजीव में अप्रस्तुत है। १२२

पर्याय : एक चिन्तन

पांचवें पद का नाम विशेषपद है। विशेष शब्द के दो अर्थ हैं—(1) प्रकार और (२) पर्याय। प्रथम पद में जीव और अजीव इन दो द्रव्यों के प्रकार—भेद-प्रभेदों का वर्णन किया है, तो इनमें इन द्रव्यों की

१२२. पन्नवणासूत्र—प्रस्तावना पुण्यविजयजी महाराज, पृ. ६०

अनन्त पर्यायों का वर्णन है। वहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि प्रत्येक द्रव्य की अनन्त पर्यायें हैं तो समग्र की भी अनन्त पर्यायें ही होंगी और द्रव्य की पर्यायें—परिणाम होते हैं तो वह द्रव्य कूटस्थनित्य नहीं हो सकता, किन्तु उसे परिणामीनित्य मानना पड़ेगा। इस सूचन से यह भी फिलत होता है कि वस्तु का स्वरूप द्रव्य और पर्याय-रूप है। इस पद का 'विसेस' नाम दिया है, परन्तु इस शब्द का उपयोग सूत्र में नहीं किया गया है। समग्र पद में पर्याय शब्द का ही प्रयोग हुआ है। जैनशास्त्रों में इस पर्याय शब्द का विशेष महत्त्व है, इसिलए पर्याय या विशेष में कोई भेद नहीं है। यहाँ पर्याय शब्द प्रकार या भेद और अवस्था या परिणाम, इन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। जैन आगमों में पर्याय शब्द प्रचित्त था परन्तु वैशेषिक दर्शन में 'विशेष' शब्द का प्रयोग होने से उस शब्द का प्रयोग पर्याय अर्थ में और वस्तु के—द्रव्य के भेद अर्थ में भी हो सकता है— यह बताने के लिए आचार्य ने इस प्रकरण का 'विसेस' नाम दिया हो ऐसा ज्ञात होता है।

प्रस्तुत पद में जीव और अजीव द्रव्यों में भेदों और पर्यायों का निरूपण है। भेदों का निरूपण तो प्रथम पद में था परन्तु प्रत्येक भेद में अनन्त पर्यायें हैं, इस तथ्य का सूचन करना इस पद की विशेषता है। इसमें २४ दंडक और २५ वें सिद्ध इस प्रकार उनकी संख्या और पर्यायों का विचार किया गया है।

जीव द्रव्य के नारकादि भेदों की पर्यायों का विचार अनेक प्रकार— अनेक दृष्टियों से किया गया है। इसमें जैनसम्मत अनेकान्तदृष्टि का प्रयोग हुआ है। जीव के नारकादि के जिन भेदों की पर्यायों का निरूपण है उसमें द्रव्यार्थता, प्रदेशार्थता, स्थिति, कृष्णादि वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, ज्ञान और दर्शन इन दश दृष्टियों से विचारणा की गई है। विचारणा का क्रम इस प्रकार है—प्रश्न किया गया कि नारक जीवों की कितनी पर्यायें हैं? उत्तर में कहा कि नारक जीवों की अनन्त पर्यायें हैं। इसमें संख्यात, असंख्यात और अनन्त के भेद भिन्न-भिन्न दृष्टियों की अपेक्षा से हैं। द्रव्यदृष्टि से नारक संख्यात हैं, प्रदेशदृष्टि से असंख्यात प्रदेश होने से असंख्यात हैं और वर्ण, गंधादि व ज्ञान, दर्शन आदि दृष्टियों से उनकी पर्यायें अनन्त हैं। इस प्रकार सभी दंडकों और सिद्धों की पर्यायों का स्पष्ट निरूपण इस पद में किया है।

आचार्य मलयगिरि ने प्रस्तुत दश दृष्टियों को संक्षेप में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार दृष्टियों में विभक्त किया है। द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता को द्रव्य में, अवगाहना को क्षेत्र में, स्थिति को काल में और वर्णादि व जानादि को भाव में समाविष्ट किया है। ^{१२३}

द्रव्य की दृष्टि से वनस्पति के अतिरिक्त शेष २३ दंडक के जीव असंख्य हैं और वनस्पति के अनन्त। पर्याय की दृष्टि से सभी २४ दंडक के जीव अनन्त हैं। सिद्ध द्रव्य की दृष्टि से अनन्त हैं।

प्रथम पद में अजीव के जो भेद किए हैं, वे प्रस्तुत पद में भी हैं। अन्तर यह है कि वहाँ प्रज्ञापना के नाम से हैं और यहां पर्याय के नाम से। पुद्गल के यहाँ पर परमाणु और स्कन्ध ये दो भेद किये हैं। स्कन्धदेश और स्कन्धप्रदेश को स्कन्ध के अन्तर्गत ही ले लिया है। रूपी अजीब की पर्याय अनन्त हैं। उनका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की दृष्टि से इसमें विचार किया है। परमाणु, द्विप्रदेशी स्कन्ध यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध और संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की पर्यायें अनन्त हैं। स्थित की अपेक्षा परमाणु और

१२३. प्रज्ञापना टीका, पत्र १८१ अ.

स्कन्ध दोनों एक समय की, दो समय की स्थिति से लेकर असंख्यातकाल तक की स्थिति वाले होते हैं। स्वतंत्र परमाणु अनंतकाल की स्थिति वाला नहीं होता परन्तु स्कन्ध अनन्तकाल की स्थिति वाला हो सकता है। एक परमाणु अन्य परमाणु से स्थिति की दृष्टि से हीन, तुल्य या अधिक होता है। अवगाहना की दृष्टि से द्विप्रदेशी से लेकर यावत् अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध आकाश के एक प्रदेश से लेकर असंख्यातप्रदेश तक का क्षेत्र रोक सकते हैं परन्तु अनन्तप्रदेश नहीं, क्योंकि पुद्गल द्रव्य लोकाकाश में ही है और लोकाकाश के प्रदेश असंख्यात ही हैं। अलोकाकाश अनन्त है पर वहां पुद्गल या अन्य किसी द्रव्य की अवस्थिति नहीं है।

परमाणुवादी न्याय-वैशेषिक परमाणु को नित्य मानते हैं और उसके परिणाम-पर्याय नहीं मानते। जबिक जैन परमाणु को भी परिणामीनित्य मानते हैं। परमाणु स्वतंत्र होने पर भी उसमें परिणाम होते हैं, यह प्रस्तुत पद से स्पष्ट होता है। परमाणु स्कन्ध रूप में और स्कन्ध परमाणु रूप में परिणत होते हैं, ऐसी प्रक्रिया जैनाभिमत है।

गति और आगति चिन्तन

छठा व्यक्तांतिपद है। इसमें जीवों की गति और आगति पर विचार किया गया है। सामान्यत: चारों गतियों में जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त उपपात-विरहकाल और उद्वर्तना-विरहकाल है। उन गतियों के प्रभेदों पर चिन्तन करते हैं तो उपपात-विरहकाल और उद्वर्तना-विरहकाल प्रथम नरक में जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त का है। सिद्धगित में उपपात है, उद्वर्तना नहीं है। इसी प्रकार अन्य गतियों में भी जानना चाहिए। १२४ पांच स्थावरों में निरन्तर उपपात और उद्वर्तना है। इसमें सान्तर विकल्प नहीं है। इसके पश्चात् एक समय में नरक से लेकर सिद्ध तक कितने जीवों का उपपात और उद्वर्तन है, इस पर चिन्तन किया गया है। साथ ही नारकादि के भेद-प्रभेदों में जीव किस किस भव से आकर पैदा होता है और मरकर कहाँ-कहाँ जाता है, उसके पश्चात् पर-भव का आयुष्य जीव कब बाँधता है, इसकी चर्चा है। जीव ने जिस प्रकार का आयुष्य बांधा है उसी प्रकार का नवीन भव धारण करता है। आयु के सोपक्रम और निरुपक्रम ये दो भेद हैं। इनमें देवों और नारकों में तो निरुपक्रम आयु है, क्योंकि उनकी आकस्मिक मृत्यु नहीं होती और आयु के छह माह शेष रहने पर वे नवीन आगामी भव का आयुष्य बांधते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीवों में दोनों प्रकार की आयु है। निरुपक्रम हो तो आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहने पर पर-भव का आयुष्य बांधते हैं और सोपक्रम हो तो त्रिभाग में अथवा त्रिभाग का भी त्रिभाग करते करते एक आवली मात्र आयु शेष रहते पर पर-भव का आयुष्य बांधते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य में असंख्यात वर्ष की आयु वाला हो तो नियम से आयु के छह माह शेष रहने पर और संख्यात वर्ष की आयु वाले यदि निरुपक्रम आयु वाले हों तो आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर आयुष्य बांधते हैं। सोपक्रम आयु वाले हों तो एकेन्द्रिय के समान जानना चाहिये। आयुष्यबंध के छह प्रकार हैं—जातिनाम निधत्त-आयुनाम, गतिनाम, स्थितिनाम, अवगाहनानाम, प्रदेशनाम और अनुभावनाम-निधत्त। इन सभी में आयुकर्म का प्राधान्य है और उसके उदय होने से तत्सम्बन्धी उन उन जाति आदि कर्म का उदय होता है।

१२४. प्रज्ञापना टीका, पत्र २०५

सिद्धों के श्वासोच्छ्वास नहीं होता है, अत: सातवें पद में संसारी जीवों के श्वासोच्छ्वास के काल की चर्चा है। आचार्य मलयगिरि ने लिखा है कि जितना दु:ख अधिक उतने श्वासोच्छ्वास अधिक होते हैं और अत्यन्त दु:खी की तो निरन्तर श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया चालू रहती है। १२५ ज्यों-ज्यों अधिक सुख होता है त्यों-त्यों श्वासोच्छ्वास लम्बे समय के बाद लिये जाते हैं, यह अनुभव की बात है। १२६ श्वासोच्छ्वास की क्रिया भी दु:ख है। देवों में जिनकी जितनी अधिक स्थिति है उतने ही पक्ष के पश्चात् उनकी श्वासोच्छ्वास की क्रिया होती है, इत्यादि का विस्तार से निरूपण है। १२७

आठवें संज्ञापद में जीवों की संज्ञा के सम्बन्ध में चिंतन किया है। संज्ञा दश प्रकार की है—आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, लोक और ओघ। इन संज्ञाओं का २४ दण्डकों की अपेक्षा से विचार किया है और संज्ञा-सम्पन्न जीवों के अल्पबहुत्व का भी विचार किया है। नारक में भयसंज्ञा का, तिर्यच में आहारसंज्ञा का, मनुष्य में मैथुनसंज्ञा का और देवों में परिग्रहसंज्ञा का बाहुत्य है।

नवें पद का नाम योनिपद है। एक भव में से आयु पूर्ण होने पर जीव अपने साथ कार्मण और तैजस शरीर लेकर गमन करता है। जन्म लेने के स्थान में नये जन्म के योग्य औदारिक आदि शरीर के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है। उस स्थान को योनि अथवा उद्गमस्थान कहते हैं। प्रस्तुत पद में योनि का अनेक दृष्टियों से विचार किया गया है। शीत, उष्ण, शीतोष्ण, सचित्त, अचित्त, मिश्र, संवृत, विवृत और संवृतिववृत, इस प्रकार जीवों के ९ प्रकार के योनि–स्थान अर्थात् उत्पत्तिस्थान हैं। इन सभी का विस्तार से निरूपण है।

दसवें पद में द्रव्यों के चरम और अचरम का विवेचन है। जगत् की रचना में कोई चरम के अन्त में होता है तो कोई अचरम के अन्त में नहीं किन्तु मध्य में होता है। प्रस्तुत पद में विभिन्न द्रव्यों के लोक-अलोक आश्रित चरम और अचरम के सम्बन्ध में विचारणा की गई है। चरम-अचरम की कल्पना किसी अन्य की अपेक्षा से ही संभव है। प्रस्तुत पद में छ: प्रकार के प्रश्न पूछे गये हैं—१. चरम है, २. अचरम है, ३. चरम हैं (बहुवचन), ४. अचरम हैं, ५. चरमान्त प्रदेश हैं, ६. अचरमान्त प्रदेश हैं। इन छह विकल्पों को लेकर २४ दण्डकों में जीवों का इत्यादि दृष्टि से विचार किया गया है। उदाहरणार्थ, गित की अपेक्षा से चरम उसे कहते हैं कि जो अब अन्य किसी गित में न जाकर मनुष्यगित में से सीधा मोक्ष में जाने वाला है। किन्तु मनुष्य गित में से सभी मोक्ष में जाने वाले नहीं हैं, इसिलए जिनके भव शेष हैं वे सभी जीव गित की अपेक्षा से अचरम हैं। इसी प्रकार स्थित आदि से भी चरम-अचरम का विचार किया गया है।

भाषा : एक चिन्तन

ग्यारहवें पद में भाषा के सम्बन्ध में चितन करते हुए बताया है कि भाषा किस प्रकार उत्पन्न होती है, कहाँ रहती है, उसकी आकृति क्या है? साथ ही उसके स्वरूप-भेद-प्रभेद, बोलने वाला व्यक्ति प्रभृति विविध

१२५. अतिदु:खिता हि नैरियका:, दु:खितानां च निरन्तरं उच्छ्वासिन:श्वासौ, तथा लोके दर्शनात्। —प्रज्ञापना टीका, पत्र २२०

२२६. सुखितानां च यथोत्तरं महानुच्छवास-नि:श्वासिक्रयाविरहकाल:। — प्रज्ञापना टीका पत्र २२१

१२७. यथा-यथाऽऽयुष: सागरोपमवृद्धिस्तथा-तथोच्छ्वास-नि:श्वासिक्रियाविरहप्रमाणस्यापि पक्षवृद्धिः।

महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है। जो बोली जाय वह भाषा है। १२८ दूसरे शब्दों में जो दूसरों के अवबोध—समझने में कारण हो वह भाषा है। १२९ मानव जाति के सांस्कृतिक विकास में भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भाषा विचारों के आदान-प्रदान का असाधारण माध्यम है। भाषा शब्दों से बनती है और शब्द वर्णात्मक हैं। इसलिए भाषा के मौलिक विचार के लिए वर्णविचार आवश्यक है, क्योंकि भाषा, वर्ण और शब्द से अभिन्न है।

भारतीय दार्शनिकों ने शब्द के सम्बन्ध में गंभीर चितन किया है—शब्द क्या है? उसका मूल उपादान क्या है? वह किस प्रकार उत्पन्न होता है ? अभिव्यक्त होता ? और किस प्रकार श्रोताओं के कर्ण-कुहरों में पहुँचता है ?

कणाद आदि कितने ही दार्शनिक शब्द को द्रव्य न मानकर आकाश का गुण मानते हैं। उनका मन्तव्य है कि शब्द पौद्गलिक नहीं है चूंकि उसके आधार में स्पर्श का अभाव है। शब्द आकाश का गुण है इसलिए शब्द का आधार भी आकाश ही माना जा सकता है। आकाश स्पर्श से रहित है इसलिए उसका गुण शब्द भी स्पर्शरहित स्कन्ध दोनों एक है और जो स्पर्शरहित है वह पुद्गल नहीं है। दूसरी बात पुद्गल रूपी होता है। रूपी होने से वह स्थूल है, स्थूल वस्तु न तो किसी सघन वस्तु में प्रविष्ट हो सकती हैं और न निकल ही सकती है। शब्द यदि पुद्गल होता तो वह स्थूल भी होता पर शब्द दीवाल को भेद कर बाहर निकलता है। इसलिए वह रूपी नहीं है और रूपी नहीं होने से वह पुद्गल भी नहीं है। तीसरा कारण यह है पौद्गलिक पदार्थ उत्पन्न होने के पूर्व भी दिखाई देता है और घड़ा नष्ट होने पर उसके टुकड़े भी दिखाई देते हैं। इस प्रकार प्रत्येक पौद्गलिक पदार्थ के पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती रूप दृग्गोचर होते हैं। पर शब्द का न तो कोई पूर्वकालीन रूप दिखाई देता है और न उत्तरकालीन ही। ऐसी स्थित में शब्द को पुद्गल नहीं मानना चाहिए। चौथी बात यह है कि पौद्गलिक पदार्थ दूसरे पौद्गलिक पदार्थों को प्रेरित करते हैं। यदि शब्द पुद्गल होता तो वह भी अन्य पुद्गलों को प्रेरित करता। पर वह अन्य पुद्गलों को प्रेरित नहीं करता है, इसलिए शब्द को पौद्गलिक नहीं मान सकते। पांचवाँ कारण—शब्द आकाश का गुण है, आकाश स्वयं पुद्गल नहीं है, इसलिए उसका गुण—शब्द पुद्गल नहीं हो सकता।

प्रस्तुत युक्तियों के सम्बन्ध में हम जैनदृष्टि से चिंतन करेंगे। मीमांसा दर्शन में शब्द के आधार को स्पर्शरहित माना है किन्तु वस्तुत: शब्द का आधार स्पर्शरहित नहीं किन्तु स्पर्शवान् है। शब्द का आधार भाषावर्गणा है और भाषावर्गणा में स्पर्श अवश्य होता है। अत: शब्द का आधार स्पर्श वाला होने से शब्द भी स्पर्श वाला है और स्पर्श वाला होने से पुद्गल है। यहाँ पर यह सहज जिज्ञासा हो सकती है कि शब्द में यदि स्पर्श होता तो हमें स्पर्श की प्रतीति होनी चाहिए, हम शब्द सुनते हैं किन्तु शब्द स्पर्श नहीं होता, ऐसी स्थिति में शब्द को स्पर्शवान् कैसे माना जाय? उत्तर में निवेदन है कि जिस वस्तु का हमें अनुभव हो उसका अभाव

१२८. भाष्यते इति भाषा-प्रज्ञापना टीका २४६

१२९. भाषा अवबोधबीजभूता। — प्रज्ञापना टीका २५६

हो, ऐसा नियम नहीं बनाया जा सकता। ऐसी अनेक वस्तुएं हैं जिनका हमें अनुभव नहीं होता तथापि अनुमानादि प्रमाणों से उनका अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। उदाहरणार्थ परमाणु प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता तथापि उसका अस्तित्व है।

द्वितीय जिज्ञासा यह हो सकती है कि शब्द में स्पर्श है तो उसकी प्रतीति क्यों नहीं होती? इसका समाधान यह है शब्द में स्पर्श तो है पर वह अव्यक्त है। जैसे सुगन्धित पदार्थ से गन्ध की अनुभूति तो होती है पर उसमें स्पर्श का अनुभव नहीं होता चूंकि वह अव्यक्त है। इसी तरह शब्द का स्पर्श भी अव्यक्त है। पुन: जिज्ञासा हो सकती है कि शब्द में स्पर्श होने का निश्चय कैसे करें? समाधान में कहा जा सकता है कि अनुकूल पवन चलता हो तब दूर तक भी ध्विन सुनाई देती है। प्रतिकूल पवन के चलने पर सिन्नकट रहे हुए भी शब्द स्पष्ट रूप से सुनाई नहीं देते। इससे स्पष्ट है कि अनुकूल पवन शब्द के संचार में सहायक होता है, प्रतिकूल पवन प्रतिरोध करता है। यदि शब्द स्पर्शहीन होता तो उस पर पवन का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए शब्द रूपी है, स्पर्श वाला है और स्पर्श वाला होने से वह पौद्गिलक है।

दूसरा तर्क था कि शब्द दीवाल को उल्लंघ कर बाहर आ जाता है। इसलिए पुद्गल नहीं है। उत्तर यह है कि द्वार और खिड़िकयों में लघु छिद्र होते हैं, जिसके कारण उन छिद्रों में से शब्द बाहर आता है। यदि बिल्कुल ही छिद्र न हों तो शब्द बाहर नहीं आता। द्वार खुला है तो स्पष्ट सुनाई देता है और द्वार बन्द होने पर अस्पष्ट। इसलिए शब्द गन्ध की तरह ही स्थूल है और स्थूल होने के कानण वह पौद्गलिक है।

उत्पत्ति होने के पहले और नष्ट होने के बाद पुद्गल दिखाई देने के तर्क का उत्तर यह है—जैसे विद्युत उत्पन्न होने के पहले दिखलाई नहीं देती और नष्ट होने के बाद भी उसका उत्तरकालीन रूप दिखाई नहीं देता फिर भी विद्युत पौद्लिक ही है तो शब्द को पौद्गलिक मानने में क्या बाधा है।

एक युक्ति यह दी गई है कि शब्द यदि पुद्गल होता तो वह अवश्य ही अन्य पुद्गलों को प्रेरित करता। इसके उत्तर में कहना चाहेंगे कि सूक्ष्म रज, धूम, आदि ऐसे अनेक पदार्थ हैं जो पौद्गलिक होने पर भी दूसरों को प्रेरणा नहीं करते। इससे उनके पुद्गल होने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती, वैसी ही स्थिति शब्द की भी है।

शब्द आकाश का गुण भी नहीं है किन्तु पुद्गल द्रव्य की पर्याय है। यदि शब्द आकाश का गुण होता तो वह प्रत्यक्ष नहीं हो सकता था। चूंकि आकाश प्रत्यक्ष नहीं है तो उसका गुण कैसे प्रत्यक्ष हो सकता है? परन्तु शब्द श्रोत्र इन्द्रिय के द्वारा प्रत्यक्ष होता है, इसलिए वह आकाश का गुण नहीं है। जो पदार्थ इन्द्रिय का विषय होता है वह पौद्गलिक होता है, जैसे घट, पट, आदि पदार्थ। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि शब्द पुद्गल है। इस पुद्गलरूप शब्द में एक स्वाभाविक शक्ति है जिसके कारण पदार्थों का बोध होता है। प्रत्येक शब्द में संसार के सभी पदार्थों का बोध कराने की शक्ति रही हुई है। घट शब्द घड़े का बोधक है किन्तु वह पट आदि का भी बोधक हो सकता। पर मानव ने विभिन्न संकेतों की कल्पना करके उसकी विराट वाचकशिक केन्द्रित कर दी है। अत: जिस देश और जिस काल में जिस पदार्थ के लिए जो शब्द नियत है वह उसी का बोध कराता है। उदाहरण के रूप में 'गौ' शब्द को लें, 'गौ' का अर्थ यदि संसार के सभी पदार्थों को मान लिया लिया जाय तो व्यक्ति उससे मन चाहा कोई भी पदार्थ समझ लेगा। इस गड़बड़ी से

बचने के लिए शब्द की व्यापक वाचकशक्ति को किसी एक पदार्थ तक सीमित करना आवश्यक है, जिससे वह नियत एक अर्थ का ही परिज्ञान करा सके।

भाषा शब्दवर्गणा के पुद्गलों से निर्मित होती है। शब्दवर्गणा के परमाणु समस्त लोकाकाश में व्यास हैं। जब वक्ता बोलना चाहता है तो उन पुद्गलों को ग्रहण करता है, वे पुद्गल शब्दरूप में परिणत हो जाते हैं और बोलते हुए एक समय में लोकान्त तक पहुँच जाते हैं। उसकी गित का वेग तीव्रतर होता है। आकाश द्रव्य के प्रदेशों की श्रेणियाँ हैं। वे श्रेणियाँ पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे इस प्रकार छहों दिशाओं में विद्यमान हैं। जब वक्ता भाषा का प्रयोग करता है तो शब्द उन श्रेणियों से प्रसिरत होता है। चार समय जितने सूक्ष्म काल में शब्द सम्पूर्ण लोकाकाश में फैल जाता है। यदि श्रोता भाषा की समश्रेणी में अवस्थित होता है तो वक्ता द्वारा जो भाषा बोली जाती है या भेरी आदि वाद्य का जो शब्द होता है उसे वह मिश्र रूप में सुनता है। यदि श्रोता विश्रेणी में स्थित है तो वासित शब्द सुनता है।

श्रोता वक्ता द्वारा बोले हुए शब्द ही नहीं सुनता परन्तु बोले हुए शब्दद्रव्य तथा उन शब्दद्रव्यों से वासित हुए बीच के शब्दद्रव्य मिलकर मिश्रशब्द होते हैं। उन्हीं मिश्रशब्दद्रव्यों को समश्रेणी स्थित श्रोता श्रवण करता है। विश्रेणी स्थित श्रोता मिश्रशब्द को भी श्रवण नहीं करता। वह केवल उच्चारित मूल शब्दों द्वारा वासित शब्दों को ही श्रवण करता है। वासित शब्द का अर्थ है वक्ता द्वारा शब्द रूप से त्यागे हुए द्रव्यों से अथवा भेरी आदि की ध्विन से, मध्य में स्थित शब्दवर्गणा के पुद्गल शब्द रूप में परिणत हो जाते हैं। शब्द श्रेणी के अनुसार ही फैलता है, वह विश्रेणी में नहीं जाता। शब्दद्रव्य इतना सूक्ष्म है कि दीवाल प्रभृति का प्रतिघात भी उसे विश्रेणी में नहीं ले जा सकता।

जिज्ञासा होती है कि शब्द एक समय में श्रेणी के अनुसार लोकान्त तक पहुँच जाता है। द्वितीय समय में विदिशा में भी जाता है और चार समय में समस्त लोक में फैल जाता है। ऐसी स्थिति में जब श्रोता विदिशा में होता है तो मिश्रशब्द श्रवण क्यों नहीं करता? उत्तर यह है कि लोकान्त भाषा को पहुँचने में केवल एक समय लगता है और दूसरे समय में भाषा, भाषा नहीं रहती। क्योंकि कहा गया है, जिस समय में वह भाषा बोली जाती हो उसी समय में वह भाषा कहलाती है, दूसरे समय में भाषा अभाषा हो जाती है। १३० इसलिए विदिशा में जो शब्द सुनाई पड़ता है, वह दो, तीन, चार आदि समयवर्ती हो जाता है जिससे वह श्राव्य शिक से शून्य हो जाता है।

वह मूल शब्द अन्य शब्दवर्गणा के पुद्गलों को भाषारूप में परिणत कर देता है। इसिलए वह वासित शब्द है और वासित शब्द विदिशा में सुनाई नहीं देते। उदाहरण के रूप में तालाब में जहाँ पर पत्थर गिरता है उसके चारों ओर एक लहर व्याप्त हो जाती है। वह लहर अन्य लहरों को उत्पन्न करती हुई जलाशय के अन्त तक पहुँच जाती है। उसी तरह वक्ता द्वारा प्रयुक्त भाषाद्रव्य आगे बढ़ता हुआ आकाश में अवस्थित अन्यान्य भाषा योग्य द्रव्यों को भाषा रूप में परिणत करता हुआ लोक के अन्त तक जाता है। लोक के अन्त तक पहुँच कर उसमें जो श्रव्यशक्ति है वह समाप्त हो जाती है। उससे अन्यान्य भाषावर्गणा के पुद्गलों में

१३०. भाष्यमाणैव भाषा, भाषासमयानन्तरं भाषाऽभाषा।

शब्दरूप परिणित समुत्पन्न होती है और वे शब्द मूल और बीच के शब्दों द्वारा सम्प्रेरित होकर गितमान् होते हैं। इस तरह चार समय में सम्पूर्ण लोकाकाश उन शब्दों से व्याप्त हो जाता है।

काययोग के द्वारा जीव भाषावर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करता है और वचनयोग के द्वारा उनका पिरत्याग करता है। १३१ ग्रहण करने और त्याग करने का क्रम चलता रहता है। कभी कभी जीव प्रतिपल प्रतिक्षण भाषाद्रव्य को ग्रहण करता है और साथ ही कभी-कभी प्रतिपल प्रतिक्षण भाषाद्रव्य का त्याग करता है। प्रथम समय में ग्रहण किए हुए भाषाद्रव्यों को द्वितीय समय में त्याग करता है और द्वितीय समय में ग्रहण किए हुए द्रव्यों को तृतीय समय में त्याग करता है। औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीर वाला जीव ही भाषाद्रव्य को ग्रहण करता है।

कितने ही चिन्तकों का मत है कि ब्रह्म शब्दात्मक है। समस्त विराट् विश्व शब्दात्मक है, शब्द के अतिरिक्त घट-पट आदि बाह्म पदार्थों एवं ज्ञान प्रभृति आन्तरिक पदार्थों की सत्ता का अभाव है। शब्द ही विभिन्न वस्तुओं के रूप में प्रतिभासित होता है। पर यह चिन्तन प्रमाणबाधित है। हम पूर्व में शब्द की पौद्गिलकता का समर्थन कर चुके हैं। आधुनिक वैज्ञानिक यन्त्रों के माध्यम से भी यह सत्य तथ्य उजागर हो चुका है। यन्त्र स्वयं पुद्गल रूप है इसीलिए वह पुद्गल को पकड़ने में समर्थ है। पौद्गिलक वस्तु ही पौद्गिलक वस्तु को पकड़ सकती है।

भाषा के पुद्गल जब भाषा के रूप में बाहर निकलते हैं तब सम्पूर्ण लोक में व्याप्त होते हैं। लोक का आकार वज्राकार है इसलिए भाषा का आकार भी वज्राकार बतलाया गया है। लोक के आगे भाषा के पुद्गल नहीं जाते, क्योंकि गमन क्रिया में सहायभूत धर्मास्तिकाय लोक में ही है।

पुद्गल, परमाणु से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध रूप होते हैं। जो स्कन्ध अनन्तप्रदेशी हैं उन्हीं का ग्रहण भाषा के लिए उपयोगी होता है। क्षेत्र की दृष्टि से असंख्यात प्रदेशों में स्थित स्कन्ध, काल की दृष्टि से एक समय से लेकर असंख्यात समय तक की स्थिति वाले होते हैं। रूप-रस-गंध और स्पर्श की दृष्टि से भाषा के पुद्गल एक समान नहीं होते परन्तु सभी रूपादि परिणाम वाले तो होते ही हैं। स्पर्श की दृष्टि से चार स्पर्श वाले पुद्गलों का ही ग्रहण किया जाता है। आत्मा आकाश के जितने प्रदेशों का अवगाहन कर रहता है, उतने ही प्रदेशों में रहे हुए भाषा के पुद्गलों को वह ग्रहण करता है।

प्रस्तुत पद में भाषा के भेदों का अनेक दृष्टियों से वर्णन किया गया है। भाषा के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो भेद हैं। पर्याप्त के सत्यभाषा और मृषाभाषा दो भेद हैं तथा सत्यभाषा के जनपदसत्य, सम्मतसत्य, स्थापनासत्य, नामसत्य, रूपसत्य, प्रतीत्यसत्य, व्यवहारसत्य, भावसत्य, योगसत्य, औपम्यसत्य, ये दस भेद हैं। असत्य भाषा बोलने के अनेक कारण हैं। असत्यभाषा के दस भेद हैं—क्रोधनिःसृत, मानिःसृत, माया-निःसृत, लोभनिःसृत, प्रेमनिःसृत, द्वेषनिःसृत, हास्यनिःसृत, भयनिःसृत, आख्यानिकानिःसृत, उपघातनिःसृत।

अपर्याप्तक भाषा के सत्यामृषा और असत्यामृषा ये दो प्रकार हैं। उनमें सत्यामृषा के दस और असत्यामृषा के बारह भेद बताये गये हैं। सत्यामृषा भाषा वह है जो अर्द्ध सत्य हो और असत्यामृषा वह है जिसमें सत्य

१३१. (क) आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ७ (ख) विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ३५३

और मिथ्या का व्यवहार नहीं होता। अन्य दृष्टि से लिंग, संख्या, काल, वचन आदि की दृष्टि से भाषा के सोलह प्रकार बताये हैं।

शरीर : एक चिंतन

बारहवें पद में जीवों के शरीर के सम्बन्ध में चिंतन किया गया है। शरीर के औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण ये पांच भेद हैं। १३२ उपनिषदों में आत्मा के पांच कोषों की चर्चा है—

१. अन्नमयकोष (स्थूल शरीर, जो अन्न से बनता है) २. प्राणमयकोष (शरीर के अन्तर्गत वायुतत्त्व)३. मनोमय-कोष (मन की संकल्प-विकल्पात्मक क्रिया) ४. विज्ञानमयकोष (बुद्धि की विवेचनात्मक क्रिया) ५. आनन्दमयकोष (आनन्द की स्थिति)। १३३ इन पांच कोषों में केवल अन्नमयकोष के साथ औदारिक शरीर की तुलना की जा सकती है। १३४ औदारिक आदि शरीर स्थूल हैं तो कार्मणशरीर सूक्ष्म शरीर है। कार्मणशरीर के कारण ही स्थूल शरीर की उत्पत्ति होती है। नैयायिकों ने कार्मणशरीर को अव्यक्त शरीर भी कहा है। १३५ सांख्य प्रभृति दर्शनों में अव्यक्त सूक्ष्म और लिंग शरीर जिन्हें माना गया है उनकी तुलना कार्मणशरीर के साथ की जा सकती है। १३६

चौबीस दंडकों में कितने कितने शरीर हैं, इस पर चिंतन कर यह बताया है कि औदारिक से वैक्रिय और वैक्रिय से आहारक आदि शरीरों के प्रदेशों की संख्या अधिक होने पर भी वे अधिकाधिक सूक्ष्म हैं। संक्षेप में औदारिक शरीर स्थूल पुद्गलों से निष्पत्र रसादि धातुमय शरीर है। यह शरीर मनुष्य और तिर्यञ्चों में होता है। वैक्रिय शरीर वह है जो विविध रूप करने में समर्थ हो, यह शरीर नैरियक तथा देवों का होता है। वैक्रियलिब्ध से सम्पन्न मनुष्यों और तिर्यञ्चों तथा वायुकाय में भी होता है। आहारक शरीर वह है जो आहारक नामक लिब्धिवशेष से निष्पन्न हो। तैजस शरीर वह है जिससे तेजोलिब्ध प्राप्त हो, जिससे उपघात या अनुग्रह किया जा सके, जिससे दीप्ति और पाचन हो। कार्मण शरीर वह है जो कर्मसमूह से निष्पन्न है, दूसरे शब्दों में कर्मविकार को कार्मण शरीर कह सकते हैं। तैजस और कार्मण शरीर सभी सांसारिक जीवों में होता है।

भावपरिणमन : एक चिन्तन

तेरहवें परिणामपद में परिणाम के संबंध में चिंतन है। भारतीय दर्शनों में सांख्य आदि दर्शन परिणामवादी हैं तो न्याय आदि कुछ दर्शन परिणामवाद को स्वीकार नहीं करते। जिन दर्शनों ने धर्म और धर्मी का अभेद स्वीकार किया है वे परिणामवादी हैं और जिन दर्शनों ने धर्म और धर्मी में अत्यन्त भेद माना है, वे अपरिणामवादी

१३२. भगवतीसूत्र १७। १ सूत्र ५९२

१३३. (क) पंचदशी ३. १। ११ (ख) हिन्दुधर्मकोश—डॉ. राजबलि पाण्डेय

१३४. तैत्तिरीय-उपनिषद्, भृगुवल्ली, बेलवलकर और रानाडे, —History of Indian Philosophy, 250

१३५. द्वे शरीरस्य प्रकृती व्यक्ता च अव्यक्ता च। तत्र अव्यक्तायाः कर्मसमाख्यातायाः प्रकृतेरुपभोगात् प्रक्षयः। प्रक्षीणे च कर्मणि विद्यमानानि भूतानि न शरीरमुत्पादयन्ति इति उपपन्नोऽपवर्गः। — न्यायवार्तिक ३ । २ । ६८ १३६. सांख्यकारिका ३९-४०, बेलवलकर और रानाडे—History of Indian Philosophy, 358, 430 & 370

हैं। नित्यता के संबंध में भारतीय दर्शनों में तीन प्रकार के विचार हैं—सांख्य, जैन और वेदान्तियों में रामानुज? इन तीनों ने परिणामी-नित्यता स्वीकार की है। पर सांख्यदर्शन ने प्रकृति में परिणामीनित्यता मानी है, पुरुष में कूटस्थिनित्यता स्वीकार की है। १३७ नैयायिकों ने सभी प्रकार की नित्य वस्तुओं में कूटस्थिनित्यता मानी है। धर्म और धर्मी में अत्यन्त भेद स्वीकार करने के कारण परिणामीनित्यता के सिद्धान्त को उन्होंने मान्य नहीं किया। बौद्धों ने क्षणिकवाद स्वीकार किया है। क्षणिकवाद स्वीकार करने पर भी उन्होंने पुनर्जन्म को स्वीकार किया है। उन्होंने सन्तिनिनित्यता के रूप के नित्यता का तृतीय प्रकार स्वीकार किया है।

प्रज्ञापना के प्रस्तुत पद में जैनदृष्टि से जीव और अजीवों दोनों के परिणाम प्रतिपादित किए हैं। जिससे स्पष्ट है कि सांख्यदर्शन मान्य पुरुषकूटस्थवाद जैनों को अमान्य है। पहले जीव के परिणामों के भेद-प्रभेदों को प्रतिपादित कर नरक आदि चौबीस दण्डकों में परिणामों का विचार किया गया है। उसके पश्चात् अजीव के परिणामों की परिगणना की गई है। यहाँ पर विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि अजीव में केवल पुद्गल के परिणामों की ही चर्चा की गई है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि अरूपी अजीव द्रव्यों के परिणामों की चर्चा नहीं है। आगमप्रभावक पुण्यविजय जी महाराज व पंडित दलसुख मालविणया आदि ने प्रज्ञापना (श्री महावीर विद्यालय, बंबई प्रकाशन) की प्रस्तावना में इस संबंध में विशेष चर्चा की है, वह चर्चा ज्ञानवर्द्धक है, अतः हम जिज्ञासुओं को उसके पढ़ने का सूचन करते हैं। यहाँ पर परिणाम का अर्थ पर्याय अथवा भावों का परिणमन है।

कषाय: एक चिंतन

चौदहवें पद का नाम कषायपद है। कषाय जैनदर्शन का पारिभाषिक शब्द है। जो जीव के शुद्धोपयोग में मलीनता उत्पन्न करता है, वह कषाय है। १३८ कष का अर्थ है कुरेदना, खोदना और कृषि करना। जिससे कर्मों की कृषि लहलहाती हो वह कषाय है। कषाय के पकते ही सुख और दुःख रूपी फल निकल आते हैं कषाय शब्द कषैले रस का भी द्योतक है। जिस प्रकार कषाय रस प्रधान वस्तु के सेवन से अन्नरुचि न्यून होती है, वैसे ही कषायप्रधान जीवों में मोक्षाभिलाषा क्रमशः कम हो जाती है। कषाय वह है जिससे समता, शान्ति और संतुलन नष्ट हो जाता है। १३९ कषाय एक प्रकार का प्रकम्पन है, उत्ताप है और आवर्त्त है, जो चैतन्योपयोग में विक्षोभ उत्पन्न करता है। क्रोध—मान—माया—लोभ इन चारों को एक शब्द में कहा जाए तो वह कषाय है। कषाय मन की मादकता है। कषाय की तुलना आवर्त से की गई है पर क्रोध के आवर्त से मान का आवर्त भिन्न है और मान के आवर्त से माया का आवर्त भिन्न है। इस आवर्त से प्रेरित मनोदशा पहाड़ की चोटी को अपने बहाव में उड़ा ले जाने वाली तेज पवन के सदृश है। मायावी का मन घुमावदार होता अपने—आपके अस्तित्व का अनुभव करता है। माया गूढावर्त्त के सदृश है। मायावी का मन घुमावदार होता

१३७. द्वयी चेयं नित्यता कूटस्थनित्यता परिणामिनित्यता च। तत्र कूटस्थनित्यता पुरुषस्य। परिणामिनित्यता गुणानाम्। ——पातञ्जलभाष्य ४ , ३३

१३८. प्रज्ञापना पद १४ टीका

१३९. अत्ररुचिस्तम्भनकृत् कषाय:। —स्थानांग टीका

है। इसके विचार गूढ होते हैं, वह विचारों को छुपाए रखता है। लोभ आभिषावर्त है, लोभी का मानस किसी एक केन्द्र को मानकर उसके चारों ओर घूमता है, जैसे चील आदि पक्षी मांस के चारों ओर घूमते हैं, उसके प्राप्त नहीं होने तक उनके मन में शान्ति नहीं होती। इसी प्रकार कषाय चक्राकार है जो चेतना को घुमाती रहती है।

प्रस्तुत पद में क्रोध-मान-माया-लोभ ये चारों कषाय चौबीस दण्डकों में बताये गये हैं। क्षेत्र, वस्तु, शरीर और उपिध को लेकर सम्पूर्ण सांसारिक जीवों में कषाय उत्पन्न होता है। कितनी बार जीव को कषाय का निमित्त मिलता है और कितनी बार बिना निमित्त के भी कषाय उत्पन्न हो जाता है।

चारों ही कषायों के तरतमता की दृष्टि से अनन्त स्तर होते हैं, तथापि आत्मिवकास के घात की दृष्टि से उनमें से प्रत्येक के चार-चार स्तर हैं—अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन। अनन्तानुबंधी कषाय के उदयकाल में सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता। अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयकाल में अणुव्रत की योग्यता, प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयकाल में महाव्रत की योग्यता प्राप्त नहीं होती और संज्वलन कषाय के उदयकाल में वीतरागता उत्पन्न नहीं होती। ये चारों प्रकार के कषाय उत्तरोत्तर, मंदमंदतर होते हैं, साथ ही आभोगनिवंतित, और अनाभोगनिवंतित, उपशान्त और अनुपशान्त, इस प्रकार के भेद भी किए गए हैं। आभोगनिवंतित कषाय कारण उपस्थित होने पर होता है तथा जो बिना कारण होता है वह अनाभोगनिवंतित कहलाता है।

कर्मबंधन का कारण मुख्य रूप से कषाय है। तीनों कालों में आठों कर्मप्रकृतियों के चयन के स्थान और प्रकार, २४ दंडक के जीवों में कषाय को ही माना गया है। साथ ही उपचय, बंध, उदीरणा, वेदना और निर्जरा में चारों कषाय ही मुख्य रूप से कारण बताये हैं।

इन्द्रिय: एक चिंतन

पन्द्रहवें पद में इन्द्रियों के संबंध में दो उद्देशकों में चिंतन किया गया है। प्राणी और अप्राणी में भेद रेखा खींचने वाला चिह्न इन्द्रिय है। आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि में इन्द्रिय शब्द की परिभाषा करते हुए लिखा है—परम ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले आत्मा को इन्द्र और उस इन्द्र के लिंग या चिह्न को इन्द्रिय कहते हैं अथवा जो जीव को अर्थ की उपलब्धि में निमित्त होता है वह इन्द्रिय है अथवा जो इन्द्रियातीत आत्मा के सद्भाव की सिद्धि का हेतु है वह इन्द्रिय है। अथवा इन्द्र अर्थात् नामकर्म के द्वारा निर्मित स्पर्शन आदि को इन्द्रिय कहा है। १४० तत्त्वार्थभाष्य, १४१ तत्त्वार्थवार्तिक, १४२ आवश्यकिनर्युक्ति आदि अनेक ग्रन्थों में इससे मिलती–जुलती परिभाषायें हैं। तात्पर्य यह है कि आत्मा की स्वाभाविक शक्ति पर कर्म का आवरण होने के कारण सीधा आत्मा

१४०. इन्दतीति इन्द्र: आत्मा, तस्य ज्ञस्वभावस्य तदावरणक्षयोपशमे सित स्वयमर्थान् गृहीतुमसमर्थस्य तदर्थोपलिब्धिनिमित्तं लिङ्गं तदिन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियमित्युच्यते। अथवा लीनमर्थ गमयतीति लिङ्गम्। आत्मन:सूक्ष्मस्यास्तित्वाधिगमे लिङ्गमिन्द्रियम्। अथवा इन्द्र इति नामकमौच्यते, तेन सृष्टमिन्द्रियमिति।—सर्वार्थसिद्धिश्-१४

१४१. तत्त्वार्थभाष्य २-१५

१४२. तत्त्वार्थवार्तिक २। १५। १-२

१४३. आवश्यकनिर्युक्ति, हरिभद्रीया वृत्ति ९१८, पृष्ठ ३९८

से ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए किसी माध्यम की आवश्यकता होती है और वह माध्यम इन्द्रिय है। अतएव जिसकी सहायता से ज्ञान लाभ हो सके वह इन्द्रिय है। इन्द्रियाँ पांच हैं—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र। इनके विषय भी पांच हैं—स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द। इसलिए इन्द्रिय को प्रतिनियत अर्थग्राही कहा जाता है। १४४

प्रत्येक इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय रूप से दो-दो प्रकार की है। १४५ पुद्गल की आकृतिविशेष द्रव्येन्द्रिय है और आत्मा का परिणाम भावेन्द्रिय है। द्रव्येन्द्रिय के निर्वृत्ति और उपकरण ये दो भेद हैं। १४६

इन्द्रियों की विशेष आकृति निर्वृत्ति-द्रव्येन्द्रिय है। निर्वृत्ति-द्रव्येन्द्रिय की बाह्य और आभ्यन्तरिक पौद्गलिक शक्ति है, जिसके अभाव में आकृति के होने पर भी ज्ञान होना संभव नहीं है; वह उपकरण द्रव्येन्द्रिय है। भावेन्द्रिय भी लब्धि और उपयोग रूप से दो प्रकार की है। १४७ ज्ञानावरणकर्म आदि के क्षयोपशम से प्राप्त होने वाली जो आत्मिक शक्तिविशेष है, वह लब्धि है। लब्धि प्राप्त होने पर आत्मा एक विशेष प्रकार का व्यापार करती है, वह व्यापार उपयोग है।

प्रथम उद्देशक में चौबीस द्वार और दूसरे में बारह द्वार हैं। इन्द्रियों की चर्चा चौबीस दण्डकों में की गई है। जीवों में इन्द्रियों के द्वारा अवग्रहण-पिरच्छेद, अवाय, ईहा और अवग्रह—अर्थ और व्यंजन दोनों प्रकार से चौबीस दण्डकों में निरूपण किया गया है। चक्षुरिन्द्रिय को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों से व्यंजनावग्रह होता है। अर्थावग्रह छ: प्रकार का है। वह पांच इन्द्रिय और छठे नोइन्द्रिय-मन से होता है। इस प्रकार इन्द्रियों के द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय दो भेद किए हैं। द्रव्येन्द्रिय पुद्गलजन्य होने से जड़ रूप है और भावेन्द्रिय ज्ञान रूप है। इसलिए वह चेतना शक्ति का पर्याय है। द्रव्येन्द्रिय अंगोपांग और निर्माण नामकर्म के उदय से प्राप्त है। इन्द्रियों के आकार का नाम निर्वृत्ति है। वह निवृत्ति भी बाह्य रूप से दो प्रकार की है। इन्द्रिय के बाह्य आकार को बाह्यनिर्वृत्ति और आभ्यन्तर आकृति को आभ्यन्तरिर्वृत्ति कहते हैं। बाह्य भाग तलवार के सदृश है और आभ्यन्तर भाग तलवार को तेज धार के सदृश है जो बहुत ही स्वच्छ परमाणुओं से निर्मित है। प्रज्ञापना की टीका में आभ्यन्तर निर्वृति का स्वरूप पुद्गलमय बताया है। १४९

यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि त्वचा की आकृति विभिन्न प्रकार की होती है किन्तु उसके बाह्य और आभ्यन्तर आकार में पृथक्ता नहीं है। प्राणी की त्वचा का जिस प्रकार का बाह्य आकार होता है वैसा ही आभ्यन्तर आकार भी होता है, पर अन्य चार इन्द्रियों के संबंध में ऐसा नहीं है। उन इन्द्रियों का बाह्य आकार और आभ्यन्तर आकार अलग-अलग है। जैसे—कान की आम्यन्तर आकृति कदम्बपुष्प के सदृश, आंख की

१४४. प्रमाणमीमांसा १।२।२१-२३

१४५. सर्वार्थसिद्धि २/१६/१७९

१४६. निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्। —तत्त्वार्थसूत्र २/१७

१४७. लब्ब्युपयोगौ भावेन्द्रियम्। —तत्त्वार्थसूत्र २/१८

१४८. प्रज्ञापनासूत्र, इन्द्रियपद, टीका पुष्ठ २९४/१

१४९. आचारांगवृत्ति, पृष्ठ १०४

आभ्यन्तर आकृति मसूर के दाने के सदृश, नाक की आभ्यन्तर आकृति अतिमुक्तक के फूल के सदृश तथा जीभ की आकृति छुरे के समान होती है। पर बाह्याकार सभी में पृथक्-पृथक् दृग्गोचर होते हैं। मनुष्य, हाथी, घोड़े, पक्षी आदि के कान, आंख, नाक, जीभ आदि को देख सकते हैं।

आभ्यन्तरिनर्वृत्ति की विषयग्रहणशक्ति उपकरणेन्द्रिय है। तत्त्वार्थसूत्र,^{१५०} विशेषावश्यकभाष्य,^{१५१} लोकप्रकाश^{१५२} प्रभृति ग्रन्थों में इन्द्रियों पर विशेषरूप से विचार किया गया है। प्रज्ञापना में इन्द्रियोपचय, इन्द्रियनिर्वर्तन, इन्द्रियलब्धि, इन्द्रियोपयोग आदि द्वारों से द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय की चौबीस दण्डकों में विचारणा की गई है।

प्रयोग : एक चिन्तन

सोलहवाँ प्रयोगपद है। मन, वचन, काया के द्वारा आत्मा के व्यापार को योग कहा गया है तथा उसी योग का वर्णन प्रस्तुत पद में प्रयोग शब्द से किया गया है, यह आत्मव्यापार इसिलए कहा जाता है कि आत्मा के अभाव में तीनों की क्रिया नहीं हो सकती। आचार्य अकलंकदेव ने तीनों योगों के बाह्य और आम्यन्तर कारण बताकर उसकी व्याख्या की है। संक्षेप में वह इस प्रकार है—बाह्य और आभ्यन्तर कारणों से मनन के अभिमुख आत्मा का जो प्रदेशपरिस्पन्दन है वह मनोयोग कहलाता है। मनोवर्गणा का आलम्बन बाह्य कारण है। वीर्यान्तरायकर्म का क्षय, क्षयोपशम तथा नोइन्द्रियावरणकर्म का क्षय-क्षायोपशम इसका आभ्यन्तर कारण है।

बाह्य और आभ्यन्तर कारण-जन्य भाषाभिमुख आत्मा का प्रदेशपरिस्पन्द वचनयोग है। वचनवर्गणा का आलम्बन बाह्य कारण है और वीर्यान्तरायकर्म का क्षय-क्षयोपशम तथा मितज्ञानावरण और अक्षरश्रुतज्ञानावरण आदि कर्म का क्षयोपशम आभ्यन्तर कारण है।

बाह्य और आभ्यन्तर कारण से उत्पन्न गमन आदि विषयक आत्मा का प्रदेशपरिस्पन्दन काययोग है। किसी भी प्रकार की शरीरवर्गणा का आलम्बन इसका बाह्य कारण है। वीर्यान्तरायकर्म का क्षय-क्षयोपशम इसका आभ्यन्तर कारण है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में वीर्यान्तरायकर्म का क्षय, जो आभ्यन्तर कारण है वह दोनों ही गुणस्थानों में समान है किन्तु वर्गणा का आलम्बनरूप बाह्य कारण समान नहीं होने से तेरहवें गुणस्थान में योगविधि होती है किन्तु चौदहवें में नहीं। १५३ यहाँ एक प्रश्न यह भी उद्बुद्ध होता है कि मनोयोग और वचनयोग में किसी न किसी प्रकार का काययोग का आलम्बन होता ही है। इसिलए केवल एक काययोग का मानना पर्याप्त है। उत्तर में निवेदन है—मनोयोग और वचनयोग में काययोग की प्रधानता है। जब काययोग मनन करने में सहायक बनता है, तब मनोयोग है और जब काययोग भाषा बोलने में सहयोगी बनता है, तब वह वचनयोग कहलाता है। व्यवहार की दृष्टि से काययोग के ही ये

१५०. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय २, सूत्र १७/१८

१५१. विशेषावश्यकभाष्य तथा विभिन्न वृत्तियाँ गाथा २९९३-३००३

१५२. लोकप्रकाश, सर्ग ३, श्लोक ४६४ से आगे

१५३. तत्त्वार्थसूत्र राजवार्तिक ६/१/१०.

तीन प्रकार हैं। जो पुद्गल मन बनने के योग्य हैं, उन्हें मनोवर्गणा के पुद्गल कहा गया है, जब वे मन के रूप में परिणत हो जाते हैं तब उन्हें द्रव्य-मन कहते हैं। श्वेताम्बरपरम्परा के अनुसार द्रव्यमन का शरीर में कोई स्थानविशेष नहीं है, वह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। दिगम्बरपरम्परा की दृष्टि से द्रव्यमन का स्थान हृदय है और उसका आकार कमल के सदृश है। भाषावर्गणा के पुद्गल जब वचन रूप में परिणत होते हैं तो वे वचन कहलाते हैं। औदारिक और वैक्रिय आदि शरीर वर्गणाओं के पुद्गलों से जो योग प्रवर्तमान होता है, वह काययोग है। १५४ इस प्रकार आलम्बनभेद से योग के तीन प्रकार हैं। जैनदृष्टि से मन, वचन और काया ये तीनों पुद्गलमय हैं और पुद्गल की जो स्वाभाविक गति है वह आत्मा के बिना भी उसमें हो सकती है पर जब पुद्गल मन, वचन और काया के रूप में परिणत हों तब आत्मा के सहयोग से जो विशिष्ट प्रकार का व्यापार होता है वह अपरिणत में असंभव है। पुद्गल का मन आदि रूप में परिणमन होना भी आत्मा के कर्माधीन ही है। इसलिए उसके व्यापार को आत्मव्यापार कहा है। मन, वचन और काया के प्रयोग के पन्द्रह प्रकार बताये हैं, जो निम्नलिखित हैं —

१. सत्यमनःप्रयोग २. असत्यमनःप्रयोग ३. सत्यमृषामनःप्रयोग ४. असत्यामृषामनःप्रयोग ५. सत्यवचनप्रयोग ६. असत्यवचनप्रयोग ७. सत्यमृषावचनप्रयोग ८. असत्यामृषावचनप्रयोग ९. औदारिककायप्रयोग १०. औदारिकमिश्रकायप्रयोग ११. वैक्रियकायप्रयोग १२. वैक्रियमिश्रकायप्रयोग १३. आहारककायप्रयोग १४. आहारकमिश्रकायप्रयोग १५. कार्मणकायप्रयोग।

प्रज्ञापना की टीका में आचार्य मलयगिरि ने इन पन्द्रह प्रयोग के भेदों में तेजसकायप्रयोग का निर्देश न होने से कार्मण के साथ तैजस को मिलाकर तैजसकार्मणशरीरप्रयोग की चर्चा की है।^{१५५}

इन पन्द्रह प्रयोगों की जीव में और विशेष रूप से चौबीस दण्डकों में योजना बताई है। प्रयोग के विवेचन के पश्चात् इस पद में गतिप्रपात का भी निरूपण है। उसके पांच प्रकार बताये हैं—प्रयोगगित, तत्गित, बन्धनछेदनगित, उपपातगित और विहायोगित। इनके भी अवान्तर अनेक भेद-प्रभेद हैं।

लेश्या: एक विश्लेषण

सत्रहवां लेश्यापद है। लेश्या एक प्रकार का पौद्गिलिक पर्यावरण है। जीव से पुद्गल और पुद्गल से जीव प्रभावित होते हैं। जीव को प्रभावित करने वाले पुद्गलों के अनेक समूह हैं। उनमें से एक समूह का नाम लेश्या है। उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति में लेश्या का अर्थ आणिवक आभा, क्रान्ति, प्रभा या छाया किया है। १५६ दिगम्बरपरम्परा के आचार्य शिवार्य ने लेश्या उसे कहा है जो जीव का परिणाम छायापुद्गलों से प्रभावित होता है। १५७ प्राचीन जैन वाङ्मय में शरीर के वर्ण, आणिवक आभा और उससे प्रभावित होने वाले

१५४. दर्शन और चिंतन (हिन्दी) पृष्ठ ३०९-३११---पंडित सुखलाल जी

१५५. प्रज्ञापनाटीका पत्र ३१९ --- आचार्य मलयगिरि

[—] बृहद्वृत्ति, पत्र ६५०

विचार इन तीनों अर्थों में लेश्या शब्द व्यवहृत हुआ है। शरीर के वर्ण और आणविक आभा द्रव्यलेश्या हैं^{१५८} तो विचार भावलेश्या हैं।^{१५९}

विभिन्न ग्रन्थों में लेश्या की विभिन्न परिभाषायें प्राप्त होती हैं। प्राचीन पंचसंग्रह, १६० धवला, १६१ गोम्मटसार, १६२ आदि में लिखा है कि जीव जिसके द्वारा अपने को पुण्य पाप से लिप्त करता है, वह लेश्या है। तत्त्वार्थवार्तिक १६३ पंचास्तिकाय, १६४ आदि ग्रन्थों के अनुसार कषाय के उदय से अनुरंजित योगों की प्रवृत्ति लेश्या है। स्थानांग-अभयदेववृत्ति, १६५ ध्यानशतक, १६६ प्रभृति ग्रन्थों में लिखा है—जिसके द्वारा प्राणी कर्म से संश्लिष्ट होता है उसका नाम लेश्या है। कृष्ण आदि द्रव्य की सहायता से जो जीव का परिणाम होता है वह लेश्या है। योग परिणाम लेश्या है। १६७

उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार लेश्या से जीव और कर्म के पुद्गलों का संबंध होता है, कर्म की स्थिति निष्पन्न होती है और कर्म का उदय होता है। आत्मा की शुद्धि और अशुद्धि के साथ लेश्या का संबंध है। पौद्गलिक लेश्या का मन की विचारधारा पर प्रभाव पड़ता है और मन की विचारधारा का लेश्या पर प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार की लेश्या होगी वैसी ही मानसिक परिणित होगी। कितने ही मूर्धन्य मनीषियों का यह मन्तव्य है कि कषाय की मंदता से अध्यवसाय में विशुद्धि होती है और अध्यवसाय की विशुद्धि से लेश्या की शुद्धि होती है। १६६८

जिस परिभाषा के अनुसार योगप्रवृत्ति लेश्या है, उस दृष्टि से तेरहवें गुणस्थान तक भावलेश्या का सद्भाव है और जिस परिभाषा के अनुसार कषायोदय-अनुरंजित योगप्रवृत्ति लेश्या है, उस दृष्टि से दसवें गुणस्थान पर्यन्त ही लेश्या है। ये दोनों परिभाषायें अपेक्षाकृत होने से एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं हैं। जहाँ योगप्रवृत्ति को लेश्या कहा है, वहाँ पर प्रकृति और प्रदेशबन्ध के निमित्तभूत परिणाम लेश्या के रूप में

```
१५७. जह बाहिरलेस्साओ, किण्हादीओ हवंति पुरिसस्स।
अब्धन्तरलेस्साओ, तह किण्हादीय पुरिसस्स॥ —मूलाराधना, ७११९०७
```

१५८. (क) गोम्मटसार, जीवकाण्ड गाथा, ४९४ (ख) उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा ५३९

१५९. उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा ५४०

१६०. प्राचीन पंचसंग्रह १-१४२

१६१. धवला, पु. १, पृ. १५०

१६२. गोम्मटसार, जीवकाण्ड ४८९

१६३. तत्त्वार्थवार्तिक २, ६, ८

१६४. पंचास्तिकाय जयसेनाचार्य वृत्ति १४०

१६५. लिश्यते प्राणी कर्मणा यया सा लेश्या - स्थानांग अभयदेववृत्ति ५१, पृ. ३१

१६६. कृष्णादि द्रव्यसाचिव्यात् परिणामो य आत्मनः।

स्फटिकस्येव तत्रायं लेश्याशब्द: प्रयुज्जते ॥ —ध्यानशतक हरिभद्रीयावृत्ति १४

१६७. उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति पत्र ६५०

१६८. (क) लेस्सासोधी अण्झवसाणविसोधिए होई जनस्स। अण्झवसाणविसोधी, मंदलेसायस्स णादव्या॥—मूलाराधना १।१९११

(ख) अन्तर्विशुद्धितो जन्तोः शुद्धिः सम्पद्यते बहिः। बाह्यो हि शुध्यते दोषः सर्वमन्तरदोषतः ॥ — मूलाराधना (अमितगति), ७।१९६७ विवक्षित हैं और जहाँ कषायोदय से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहा है, वहाँ स्थिति, अनुभाग आदि चारों बन्ध के निमित्तभूत परिणाम लेश्या रूप में विवक्षित हैं।^{१६९}

प्रस्तुत पद में छ: उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में नारक आदि चौबीस दण्डकों के सम्बन्ध में आहार, शरीर, श्वासोच्छ्वास, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया आयु आदि का वर्णन है। जिन नारक जीवों के शरीर की अवगाहना बड़ी है उनमें आहार आदि भी अधिक है। नारकों में उत्तरोत्तर अवगाहना बढ़ती है। प्रथम नरक की अपेक्षा द्वितीय में और द्वितीय से तृतीय में, पर देवों में इससे उल्टा क्रम है। वहां पर उत्तरोत्तर अवगाहना कम होती है और आहार की मात्रा भी। आहार की मात्रा अधिक होना दु:ख का ही कारण है। दु:खी व्यक्ति अधिक खाता है, सुखी कम। सलेश्य जीवों की अपेक्षा नारक आदि चौबीस दण्डकों में सम-विषम आहार आदि की चर्चा है। द्वितीय उद्देशक में लेश्या के कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म, शुक्ल ये छ: भेद बताकर नरक आदि चार गतियों के जीवों में कितनी-कितनी लेश्यायें होती हैं इसका विस्तार से निरूपण है। अपेक्षा दृष्टि से लेश्या अल्पबहुत्व का भी चिन्तन इसमें किया गया है। साथ ही २४ दण्डक के जीवों को लेकर लेश्या की अपेक्षा से ऋद्धि के अल्प और बहुत्व के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। तृतीय उद्देशक में जन्म और मृत्यु काल की लेश्या सम्बन्धी चर्चा है। अमुक-अमुक लेश्या वाले जीवों के अवधिज्ञान की विषय-मर्यादा पर भी प्रकाश डाला गया है। चतुर्थ उद्देशक में एक लेश्या का दूसरी लेश्या में परिणमन होने पर उसके वर्ण,रस,गंध, स्पर्श किस प्रकार परिवर्तित होते हैं, इसकी विस्तृत चर्चा है। लेश्याओं के विविध परिणाम, उनके प्रदेश, अवगाहना, क्षेत्र और स्थान की अपेक्षा से अल्पबहुत्व द्रव्य और प्रदेश को लेकर किया गया है। पांचवें उद्देशक में एक लेश्या का दूसरी लेश्या में देव-नारक की अपेक्षा से परिणमन नहीं होता, यह बताया है। छठे उद्देशक में विविध क्षेत्रों में रहे हुए मनुष्य और मनुष्यनी की अपेक्षा से चिन्तन किया गया है। यह स्मरण रखना होगा कि जो लेश्या माता-पिता में होती है वही लेश्या पुत्र और पुत्री में भी हो. यह नियम नहीं है।

जीव को लेश्या की प्राप्ति के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त व्यतीत हो जाने पर तथा अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाने पर जीव परलोक में जन्म ग्रहण करता है, क्योंकि मृत्युकाल में आगामी भव की और उत्पत्तिकाल में उसी लेश्या का अन्तर्मुहूर्त काल तक होना आवश्यक है। जीव जिस लेश्या में मरता है, अगले भव में उसी लेश्या में जन्म लेता है।^{१७०}

उत्तराध्ययन में किस किस लेश्या वाले जीव के किस किस प्रकार के अध्यवसाय होते हैं तथा भगवती में लेश्याओं के द्रव्य और भाव ये भेद किए गए हैं। पर प्रज्ञापना का लेश्यापद बहुत ही विस्तृत होने पर भी उसमें उसकी परिभाषा एवं द्रव्य और भाव आदि बातों की कमी है। इस कमी के सम्बन्ध में आगमप्रभावक पुण्यविजयजी महाराज का यह मानना है कि यह इस आगम की प्राचीनता का प्रतीक है।

१६९. जोगपउत्ती लेस्सा, कसायउदयाणुरंजिया होइ। तत्तो दोण्णं कज्जं, बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं॥ ४८९॥ — गो. जीवकाण्ड १७०. जल्लेसाइं दव्वाइं आयइत्ता कालं करेइ, तल्लेसेसु उववज्जइ।

कायस्थिति : एक विवेचन

अठारहवें पद का नाम कायस्थिति है। इसमें जीव और अजीव दोनों अपनी अपनी पर्याय में कितने काल तक रहते हैं, इस पर चिन्तन किया गया है। चतुर्थ स्थितिपद और इस पद में अन्तर यह है कि स्थितिपद में तो २४ दण्डकों में जीवों की भवस्थिति अर्थात् एक भव की अपेक्षा से आयुष्य का विचार है जबिक इस पद में एक जीव मरकर सतत उसी पर्याय में जन्म लेता रहे तो ऐसे सब भवों की परम्परा की काल-मर्यादा अथवा उन सभी भवों में आयुष्य का कुल जोड़ कितना होगा? स्थितिपद में तो केवल एक भव की आयु का ही विचार है जबिक प्रस्तुत पद में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय आदि अजीव द्रव्य, जो काय के रूप में जाने जाते हैं, उनका उस रूप में रहने के काल का अर्थात स्थिति का भी विचार किया गया है।

इसमें जीव, गित, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, लेश्या, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, संयत, उपयोग, आहार, भाषक, पिरत, पर्याप्त, सूक्ष्म, संज्ञी, भव (सिद्धि), अस्ति (काय), चिरम की अपेक्षा से कायस्थिति का वर्णन है। वनस्पित की कायस्थिति 'असंखेज्जा पोगगलपिरयट्टा' बताई है। इसका तात्पर्य यह है कि कोई भी वनस्पित का जीव अनादि काल से वनस्पितरूप में नहीं रह सकता। उस जीव ने वनस्पित के अतिरिक्त अन्य भव किये होने चाहिए। इससे यह स्पष्ट है प्रज्ञापना के रचियता आचार्य श्याम के समय तक व्यवहारराशि–अव्यवहार-राशि की कल्पना पैदा नहीं हुई थी। व्यवहारराशि–अव्यवहारराशि की कल्पना दार्शनिक युग की देन है। यही कारण है कि प्रज्ञापना की टीका में व्यवहारराशि और अव्यवहाराशि, ये दो भेद वनस्पित के किए गये हैं और निगोद के जीवों के स्वरूप का वर्णन है। माता मरुदेवी का जीव अनादि काल से वनस्पित में था; इसका उल्लेख टीका में किया गया है। १७१

इस पद में अनेक ज्ञातव्य विषयों पर चर्चा की गई है। टीकाकार मलयगिरि ने मूल सूत्र में आई हुई अनेक बातों का स्पष्टीकरण टीका में किया है।

उन्नीसवाँ सम्यक्त्वपद है। इसमें जीवों के चौबीस दण्डकों में सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि के सम्बन्ध में विचार करते हुए बताया है कि सम्यग्-मिथ्यादृष्टि केवल पंचेन्द्रिय होता है और एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि ही होता है। द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते। षट्खण्डागम में असंज्ञी पंचेन्द्रिय को मिथ्यादृष्टि ही कहा है। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक होते हैं। सम्यक्त्व से तात्पर्य है—व्यवहार से जीवादि का श्रद्धान और निश्चय से आत्मा का श्रद्धान है। १७२ जीव-अजीव आदि नौ पदार्थ हैं। उन परमार्थभूत पदार्थों के सद्भाव का उपदेश से अथवा निसर्ग से होने वाले श्रद्धान को सम्यक्त्व जानना चाहिए। १७३

१७१. प्रज्ञापना टीका पत्र ३७९। ३८५

१७२. जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं। ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवई सम्मत्तं॥ —दर्शनाप्राभृत, २०

१७३. जीवाऽजीवा य बंधो य, पुत्र-पावाऽऽसवो तहा।
संवरो णिष्जरा मोक्खो, संतेए तहिया नव॥
तहियाणं तु भावाणं सब्भावे उवएसणं।
भावेण सद्दृहंतस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं।—उत्तराध्ययन २८।१४-१५

अन्तक्रिया : एक चिन्तन

बीसवें पद का नाम अन्तक्रिया है। मृत्यु होने पर जीव का स्थूल शरीर यहीं पर रह जाता है पर तैजस और कार्मण, जो सूक्ष्म शरीर हैं, उसके साथ रहते हैं। कार्मणशरीर के द्वारा ही फिर स्थूल शरीर निष्पन्न होता है। अत: स्थूल शरीर के एक बार छूट जाने के बाद सूक्ष्म शरीर रहने के कारण जन्म-मरण की परम्परा का अन्त नहीं होता। जब सूक्ष्म शरीर नष्ट हो जाते हैं तो भवपरम्परा का भी अन्त हो जाता है। अन्तक्रिया का अर्थ है जन्म-मरण की परम्परा का अन्त करना। भव का अन्त करने वाली क्रिया अन्तक्रिया है। यह क्रिया दो अर्थों में व्यवहत हुई है—नवीन भव अथवा मोक्ष, दूसरे शब्दों में यहाँ पर मोक्ष और मरण इन दोनों अर्थों में अन्तक्रिया शब्द का प्रयोग हुआ है। स्थानांग में भरत गजसुकुमाल, सनत्कुमार और माता मरुदेवी की जो अन्तक्रिया बताई गई है, वह जन्म-मरण का अन्त कर मोक्ष प्राप्त करने की क्रिया है। वे आत्मा एवं शरीर आदि से उत्पन्न क्रियाओं का अन्त कर अक्रिय बन गए। १७४ प्रस्तुत पद में अन्तक्रिया का विचार जीवों के नरक आदि चौबीस दण्डकों में क्या गया है। यह भी बताया गया है कि सिर्फ मानव ही अन्तक्रिया यानी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। इसका वर्णन दस द्वारों के द्वारा किया गया है।

अवगाहना-संस्थान : एक चिन्तन -

इक्कीसवाँ 'अवगाहनासंस्थान' पद है। इस पद में जीवों के शरीर के भेद, संस्थान-आकृति, प्रमाण-शरीर का माप, शरीरनिर्माण के लिए पुद्गलों का चयन, जीव में एक साथ कौनसे शरीर होते हैं? शरीरों के द्रव्यों और प्रदेशों का अल्प-बहुत्व और अवगाहना का अल्प-बहुत्व इन सात द्वारों से शरीर के सम्बन्ध में विचारणा की गई है। गति आदि अनेक द्वारों से पूर्व में जीवों की विचारणा हुई है, पर उनमें शरीरद्वार नहीं है। यहाँ पर प्रथम विधिद्वार में शरीर के पांच भेदों — औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण का वर्णन करने के पश्चात् औदारिक आदि शरीरों के भेदों की चर्चा है। औदारिकशरीरधारी एकेन्द्रिय आदि में कौनसा संस्थान है, उनकी अवगाहना कितनी है? एक जीव में एक साथ कितने-कितने शरीर सम्भव हैं? शरीर के द्रव्य-प्रदेशों का अल्पबहुत्व, शरीर की अवगाहना का अल्पबहुत्व आदि के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा है।

क्रिया : एक चिन्तन

बाईसवाँ क्रियापद है। प्राचीन युग में सुकृत-दुष्कृत, पुण्य-पाप, कुशल-अकुशल कर्म के लिए क्रिया शब्द व्यवहृत होता था और क्रिया करने वालों के लिए क्रियावादी शब्द का प्रयोग किया जाता था। आगम व पाली-पिटकों में प्रस्तुत अर्थ में क्रिया का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। १७५ प्रस्तुत पद में क्रिया-कर्म की विचारणा की गई है। कर्म अर्थात् वासना या संस्कार, जिनके कारण पुनर्जन्म होता है। जब हम आत्मा के जन्म-जन्मान्तर की कल्पना करते हैं तब उसके कारण-रूप कर्म की विचारणा अनिवार्य हो जाती है।

१७४. स्थानांग, स्थान ४।१

१७५. दीघनिकाय सामञ्जफलसुत्त

महावीर और बुद्ध के समय क्रियावाद शब्द कर्म को मानने वालों के लिए प्रचलित था। इसलिए क्रियावाद और—कर्मवाद दोनों शब्द एक-दूसरे के पर्यायवाची हो गए थे। उसके बाद कालक्रम से क्रियावाद शब्द के स्थान पर कर्मवाद ही प्रचलित हो गया। इसका एक कारण यह भी है कि कर्म-विचार की सूक्ष्मता ज्यों-ज्यों बढ़ती गई त्यों-त्यों वह क्रिया-विचार से दूर भी होता गया। यह क्रियाविचार कर्मविचार की पूर्वभूमिका के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है। प्रज्ञापना में क्रियापद, सूत्रकृताङ्ग में क्रियास्थान अगेर भगवती भे में अनेक प्रसंगों पर क्रिया और क्रियावाद की चर्चा की गई है। इससे ज्ञात होता है उस समय क्रिया की चर्चा का कितना महत्त्व था।

प्रस्तुत पद में विभिन्न दृष्टियों से क्रिया पर चिन्तन है। क्रिया का सामान्य अर्थ प्रवृत्ति है, पर यहाँ विशेष प्रवृत्ति के अर्थ में क्रिया शब्द व्यवहृत हुआ है। क्योंकि विश्व में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें क्रियाकारित्व न हो। वस्तु वही है जिसमें अर्थ-क्रिया की क्षमता नहीं वह अवस्तु है। इसलिए हर एक वस्तु में प्रवृत्ति तो है ही, पर यहाँ विशेष प्रवृत्ति को लेकर ही क्रिया शब्द का प्रयोग हुआ है। क्रिया के कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपातकी, ये पांच प्रकार बताए हैं। क्रिया के जो ये पांच विभाग किए गए हैं वे हिंसा और अहिंसा को लक्ष्य में रखकर किए गए हैं। इन पांचों क्रियाओं में अठारह पापस्थान प्राणतिपात, मृषावाद, अदत्तादान आदि समाविष्ट हो जाते हैं। तीसरे रूप में क्रिया के पाँच प्रकार बताए हैं —आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावित्तया, अपच्चक्खान तथा मिच्छादंसणवित्तया। ये पांच क्रियाएं भी अठारह पापस्थानों में समाविष्ट हो जाती हैं। यहाँ पर किसके द्वारा कौनसी क्रिया होती है, यह भी बताया है। उदाहरण के रूप में —प्राणातिपात से होने वाली क्रिया षट्जीविनकाय के सम्बन्ध में होती है। नरक आदि चौबीस दण्डकों के जीव छह प्रकार का प्राणातिपात करते हैं। मृषावाद सभी द्रव्यों के सम्बन्ध में किया जाता है। जो द्रव्य ग्रहण किया जाता है उसके सम्बन्ध में अदत्तादान होता है। रूप और रूप वाले द्रव्यों के सम्बन्ध में मैथुन होता है। परिग्रह सर्वद्रव्यों के विषय में होता है। प्राणातिपात आदि क्रियाओं के द्वारा कर्म की कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है, इस सम्बन्ध में चर्चा–विचारणा की गई है।

स्थानांग^{१७९} में विस्तार के साथ क्रियाओं के भेद-प्रभेदों की चर्चा है। वहाँ जीवक्रिया, अजीवक्रिया और फिर उनके भेद, उपभेद—कुल बहत्तर कहे गए हैं। सूत्रकृताङ्ग^{१८०} में तेरह क्रियास्थान बताए हैं तो तत्त्वार्थसूत्र^{१८१} में पच्चीस क्रियाओं का निर्देश है। भगवती^{१८२} में भी अनेक स्थलों में क्रियाओं का वर्णन मिलता है। उन सभी के साथ प्रज्ञापना के प्रस्तुत क्रियापद की तुलना की जा सकती है।

१७७. सूत्रकृतांङ्ग १ ।१ ॥१

१७८. भगवती ३०-१

१७९. स्थानाङ्ग, पहला स्थान, सूत्र ४, द्वितीय स्थान, सूत्र २-३७

१८०. सूत्रकृताङ्ग २।२।२

१८१. अव्रतकषायेन्द्रियक्रियाः पञ्चचतुः पञ्च पञ्चविंशतिसंख्याःपूर्वस्य भेदाः । —तत्त्वार्थसूत्र ६/६

१८२. भगवती शतक १, उद्देशक २, शतक ८, उद्देशक ४, शतक ३, उद्देशक ३

कर्मसिद्धान्त : एक चिन्तन

तेईस से लेकर सत्ताईसवें पद तक के कर्मप्रकृति, कर्मबन्ध, कर्मबन्ध-वेद, कर्मवेद-बन्ध, कर्मवेदवेदक, इन पांच पदों में कर्म सम्बन्धी विचारणा की गई है। कर्म सिद्धान्त भारतीय चिन्तकों के चिन्तन का नवनीत है। वस्तुत: आस्तिक दर्शनों का भव्य-भवन कर्मसिद्धान्त पर ही आधृत है। भले ही कर्म के स्वरूप-निर्णय के सम्बन्ध में मतैक्य न हो, पर सभी चिन्तकों ने आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए कर्म-मुक्ति आवश्यक मानी है। यही कारण है कि सभी दार्शनिकों ने कर्म के सम्बन्ध में चिंतन किया है। परन्तु जैनदर्शन का कर्म संबंधी चिन्तन बहुत ही सूक्ष्मता को लिए हुए है। इस विराट् विश्व में विविध प्रकार के प्राणियों में दृग्गोचर विषमताओं का मूल कर्म है।

जैनदर्शन ने कर्म को केवल संस्कारमात्र ही नहीं माना अपितु वह एक वस्तुभूत पदार्थ है जो राग-द्वेष की क्रिया से आकृष्ट होकर जीव के साथ बंध जाता हैं। वह पदार्थ जीवप्रदेश के क्षेत्र में स्थित, सूक्ष्म, कर्म-प्रायोग्य अनन्तानन्त परमाणुओं से बना होता है। आत्मा अपने सभी प्रदेशों—सर्वांग से कर्मों को आकृष्ट करता है। वे कर्मस्कन्ध ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय प्रभृति विभिन्न प्रकृतियों या रूपों में परिणत होते हैं। प्रत्येक आत्मप्रदेश पर अनन्तानन्त कर्मपुद्गलस्कन्ध चिपके रहते हैं।

राग-द्वेषमय आत्म-परिणित भावकर्म है और उससे आकृष्ट-संश्लिष्ट होने वाले पुद्गल द्रव्यकर्म हैं। कार्मणवर्गणा, जो पुद्गलद्रव्य का एक प्रकार है, सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। वह कार्मणवर्गणा ही जीव के भावों का निमित्त पाकर कर्म रूप में परिणत होती है। यहां प्रश्न हो सकता है कि आत्मा अमूर्त और कर्मद्रव्य मूर्त्त है। तो अमूर्त के साथ मूर्त का बन्ध कैसे संभव है? समाधान इस प्रकार है — जैनदर्शन ने जीव और कर्म को प्रवाह की दृष्टि से अनादि माना हैं उसका यह मंतव्य नहीं है कि जीव पहले पूर्ण शुद्ध था, उसके पश्चात् कर्मों से आबद्ध हुआ। जो जीव संसार में अवस्थित है , जन्म-मरण के चक्र में पड़ा हुआ है, उसके प्रतिपल-प्रतिक्षण राग-द्वेषरूप परिणाम होते हैं। उन परिणामों के फलस्वरूप निरन्तर कर्म बंधते रहते हैं। उन कर्मों के बन्ध से उसे विविध गतियों में जन्म लेना पड़ता है। जन्म लेने पर शरीर होता है, शरीर में इन्द्रियां होती हैं और इन्द्रियों से वह आत्मा विषय ग्रहण करता है। विषयों को ग्रहण करने से राग-द्वेष के भाव उद्बुद्ध होते हैं। इस प्रकार भावों से कर्म और कर्मों से भाव उत्पन्न होते रहते हैं। इससे स्पष्ट है कि जो मूर्त कर्मों से बंधा हुआ है अर्थात् स्वरूपत: अमूर्त होने पर भी कर्मबद्ध होने से मूर्त बना हुआ है, उसी के नूतन कर्म बंधते हैं। इस तरह मूर्त का मूर्त के साथ संयोग होता है और मूर्त का मूर्त के साथ बंध भी होता है। आत्मा में अवस्थित पुराने कर्मों के कारण ही नूतन कर्म बंधते हैं।

आत्मा के साथ कर्मबन्ध की प्रक्रिया चार प्रकार की है—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध, प्रदेशाबन्ध। जब आत्मा कर्मपुद्गलों को ग्रहण करता है, उस समय वे पुदल एकरूपी होते हैं। परन्तु बन्धकाल में वे विभिन्न प्रकृतियों—स्वभाव वाले हो सकते हैं। यह प्रकृतिबन्ध कहलाता है। बद्ध कर्मों में समय की मर्यादा का होना स्थितिबन्ध है। आत्मपरिणामों की तीव्रता और मंदता के कारण कर्मफल में तीव्रता या मंदता होना अनुभागबन्ध है और पुद्गलों का आत्मप्रदेशों के साथ एकमेक होना प्रदेशबन्ध है। योग के कारण प्रकृति और प्रदेशबन्ध होता है और कषाय के कारण स्थिति और अनुभागबन्ध होता है।

प्रस्तुत पदों में विभिन्न प्रकृतियों के आधार पर कर्म के मूल आठ भेद कहे गये हैं। कर्म की आठों मूल प्रकृतियाँ नैरियक आदि सभी जीवों में होती हैं। ज्ञानावरण आदि कर्मों के बन्ध का मूल कारण राग और द्वेष है। राग में माया और लोभ का तथा द्वेष में क्रोध और मान का समावेश किया गया है। कर्मों के वेदन — अनुभव के सम्बन्ध में बताते हुए कहा है — वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म तो चौबीसों दण्डकों के जीव वेदते ही हैं परन्तु ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय, इन चार कर्मों को कोई जीव वेदते भी हैं और नहीं भी वेदते। यहां पर वेदना के लिए 'अनुभाव' शब्द का प्रयोग किया गया है।

आहार : एक चिन्तन

अट्डाईसवें पद का नाम आहारपद है। इसमें जीवों की आहार संबंधी विचारणा दो उद्देशकों द्वारा की गई है। प्रथम उद्देशक में ग्यारह द्वारों से और दूसरे उद्देशक में तेरह द्वारों से आहार के सम्बन्ध में विचार किया गया है। चौबीस दण्डकों में जीवों का आहार सचित्त होता है, अचित्त होता है या मिश्र होता है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है कि वैक्रियशरीरधारी जीवों का आहार सचित्त ही होता है परन्तु औदारिक शरीरधारी जीव तीनों प्रकार का आहार ग्रहण करते हैं। नारकादि चौबीस दण्डकों में सात द्वारों से अर्थात नारक आदि जीव आहारार्थी हैं या नहीं ? कितने समय के पश्चात् ये आहारार्थी होते हैं ? आहार में वे क्या लेते हैं ? सभी दिशाओं में से आहार ग्रहण कर क्या सम्पूर्ण आहार को परिणत करते हैं? जो आहार के पुद्गलों का आहार करते हैं ? आहार में लिए हुए पुद्गलों का बया होता है ? इन सात द्वारों से आहार सम्बन्धी विचारणा की गई है। जीव जो आहार लेते हैं वह आभोगनिर्विर्तित — स्वयं की इच्छा होने पर आहार लेना और अनाभोगनिर्विर्तित — बिना इच्छा के आहार लेना, इस तरह दो प्रकार का है। इच्छा होने पर आहार लेने में जीवों की भिन्न-भिन्न कालस्थित है परन्तु बिना इच्छा लिया जाने वाला आहार निरन्तर लिया जाता है। वर्ण-रस आदि से सम्पन्न अनन्त प्रदेशी स्कन्ध वाला और असंख्यातप्रदेशी क्षेत्र में अवगाढ और आत्मप्रदेशों से स्पृष्ट ऐसे पुद्गल ही आहार के लिए उपयोगी होते हैं।

प्रस्तुत पद के दूसरे उद्देशक में आहार , भव्य, संज्ञी, लेश्या, दृष्टि, संयत, कषाय, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर और पर्याप्ति इन तेरह द्वारों के माध्यम से जीवों के आहारक और अनाहारक विकल्पों की चर्चा की गई है। प्रथम उद्देशक में जो आहार के भेदों की चर्चा है, उसकी यहां पर कोई चर्चा नहीं है। आहारक और अनाहारक इन दो पदों के आधार से यह भंगों की रचना की है और किन-किन जीवों में कितने भंग(विकल्प) प्राप्त होते है, इस सम्बन्ध में चिन्तन किया गया है।

आचार्य मलयगिरि ने तीसरे संज्ञी द्वार में यह प्रश्न उत्पन्न किया है — संज्ञी का अर्थ समनस्क है। जब जीव विग्रहगित करता है उस समय जीव अनाहारक होता है। विग्रहगित में मन नहीं होता। फिर उन्हें संज्ञी कैसे कहा है? आचार्य ने इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया है —जब जीव विग्रहगित करता है तब वह संज्ञी जीव सम्बन्धी आयुकर्म का वेदन करता है, इस कारण उसे संज्ञी कहा है, भले ही उस समय उसके मन न हो। दूसरा प्रश्न यह है — नारक, भवनपित और वाणव्यन्तर को असंज्ञी कहा ? इसका उत्तर यह है कि इन तीनों में असंज्ञी जीव उत्पन्न होता है, इस अपेक्षा से उन्हें असंज्ञी कहा है।

उपयोग और पश्यता

उनतीसवें, तीसवें और तेतीसवें, इन तीन पदों में क्रमश: उपयोग, पश्यता और अवधि की चर्चा है। प्रज्ञापना में जीवों के बोध-व्यापार अथवा ज्ञान-व्यापार के सम्बन्ध में इन पदों में चर्चा-विचारणा की गई है, अतएव हमने यहां पर तीनों को एक साथ लिया है।

जैन दृष्टि से आत्मा विज्ञाता है, १८३ उसमें न रूप है, न रस है, न गन्ध है। वह अरूपी है, लोक-प्रमाण असंख्यप्रदेशी है, नित्य है, उपयोग उसका विशिष्ट गुण है। १८४ संख्या की दृष्टि से वह अनन्त है। उपयोग आत्मा का लक्षण भी है और गुण भी, १८५ उपयोग में अविध का समावेश होने पर भी इनके लिए अलग पद देने का कारण यह है कि उस काल में अविध का विशेष विचार हुआ था। प्रस्तुत पद में उपयोग और पश्यता के दो दो भेद किए हैं — साकारापयोग (ज्ञान) और अनाकारोपयोग (दर्शन), साकारपश्यता और अनाकारपश्यता।

आचार्य अभयदेव ने पश्यता को उपयोग-विशेष ही कहा है। अधिक स्पष्टीकरण करते हुए यह भी बताया है कि जिस बोध में केवल त्रैकालिक अवबोध होता हो वह पश्यता है परन्तु जिस बोध में वर्तमानकालिक, बोध होता है वह उपयोग है। यही कारण है कि मितज्ञान और मित अज्ञान को साकार पश्यता के भेदों में नहीं लिया है, क्योंकि मितज्ञान और मित-अज्ञान का विषय वर्तमान काल में जो पदार्थ है वह बनता है। अनाकार पश्यता में अचश्चदर्शन क्यों नहीं लिया गया है? इस प्रश्न का समाधान आचार्य ने इस प्रकार किया है कि पश्यता प्रकृष्ट ईक्षण है और प्रेक्षण तो केवल चश्चदर्शन में ही सम्भव है, अन्य इन्द्रियों द्वारा होने वाले दर्शन में नहीं। अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा चक्षु का उपयोग स्वल्पकालीन होता है और जहां पर स्वल्पकालीन उपयोग होता है वहां बोधिक्रया में अत्यन्त शीघ्रता होती है। यही इस प्रकृष्टता का कारण है। १८६

आचार्य मलयगिरि ने लिखा है कि पश्यता शब्द रूढ़ि के कारण उपयोग शब्द की तरह साकार और अनाकार बोध का प्रतिपादन करने वाला है, तथापि यह समझना आवश्यक है कि जहां पर लम्बे समय तक उपयोग होता है वहीं पर तीनों काल का बोध सम्भव है। मितज्ञान में दीर्घकाल का उपयोग नहीं है। इसिलए उसमें त्रैकालिक बोध नहीं होता, जिससे उसे पश्यता में स्थान नहीं दिया गया है। १८७ यही है उपयोग और पश्यता में अन्तर।

उपयोग और पश्यता इन दोनों की प्ररूपणा चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में की गई है। वस्तुत: इनमें विशेष कोई अन्तर नहीं है। पश्यतापद में केवलज्ञानी का ज्ञान और दर्शन का उपयोग युगपत् है या क्रमश: इस सम्बन्ध में भी चर्चा करते हुए तर्क दिया है कि ज्ञान साकार है और दर्शन अनाकार। इसलिए एक ही

१८३. आचारांग ५१५ सूत्र १६५

१८४. आचारांग ५१६ सूत्र १७०-१७१

१८५. गुणओ उवओगगुणे। - भगवती २।१॥११८

१८६. भगवती सूत्र, अभयदेव वृत्ति पृष्ठ ७१४

१८७. प्रज्ञापना, मलयगिरि वृत्ति पृष्ठ ७३०

समय में दोनों उपयोग कैसे हो सकते हैं? साकार का अर्थ सिवकल्प है और अनाकार का अर्थ निर्विकल्प। जो उपयोग वस्तु के विशेष अंश को ग्रहण करता है वह सिवकल्प और जो उपयोग सामान्य अंश को ग्रहण करता है वह निर्विकल्प है। १८८

ज्ञान दर्शन : एक चिन्तन

ज्ञान और दर्शन की मान्यता जैन-साहित्य में अत्यधिक प्राचीन है। ज्ञान को आवृत्त करने वाले कर्म का नाम ज्ञानावरण है और दर्शन को आच्छादित करने वाला कर्म दर्शनावरण है। इन कर्मों के क्षय अथवा क्षयोपशम से ज्ञान और दर्शन गुण प्रकट होते हैं। आगम-साहित्य में यन-तत्र ज्ञान के लिए 'जाणइ' और दर्शन के लिए 'पासइ' शब्द व्यवहृत हुआ है।

दिगम्बर आचार्यों का अभिमत है कि बहिर्मुख उपयोग ज्ञान है और अन्तर्मुख उपयोग दर्शन है। आचार्य वीरसेन षट्खण्डागम की धवलाटीका में लिखते हैं कि सामान्य-विशेषात्मक बाह्यार्थ का ग्रहण ज्ञान है और तदात्मक आत्मा का ग्रहण दर्शन है। १८९ दर्शन और ज्ञान में यही अन्तर है कि दर्शन सामान्य-विशेषात्मक आत्मा का उपयोग है --- स्वरूप-दर्शन है, जबिक ज्ञान आत्मा से इतर प्रमेय का ग्रहण करता है। जिसका यह मन्तव्य है कि सामान्य का ग्रहण दर्शन है और विशेष का ग्रहण ज्ञान है, वे प्रस्तुत मत के अनुसार दर्शन और ज्ञान के विषय से अनिभज्ञ हैं। सामान्य और विशेष ये दोनों पदार्थ के धर्म हैं। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व नहीं है। केवल सामान्य और केवल विशेष का ग्रहण करने वाला ज्ञान अप्रमाण है। इसी तरह विशेष व्यतिरिक्त सामान्य का ग्रहण करने वाला दर्शन मिथ्या है। ^{१९०} प्रस्तुत मत का प्रतिपादन करते हुए द्रव्यसंग्रह की वृत्ति में ब्रह्मदेव ने लिखा है — ज्ञान और दर्शन का दो दृष्टियों से चिन्तन करना चाहिए — तर्कदृष्टि से और सिद्धान्तदृष्टि से। दर्शन को सामान्यग्राही मानना तर्कदृष्टि से उचित है किन्तु सिद्धान्तदृष्टि से आत्मा का सही उपयोग दर्शन है और बाह्य अर्थ का ग्रहण ज्ञान है। १९१ व्यावहारिक दृष्टि से ज्ञान और दर्शन में भिन्नता है पर नैश्चयिक दृष्टि से ज्ञान और दर्शन में किसी भी प्रकार की भिन्नता नही है।^{१९२} सामान्य और विशेष के आधार से ज्ञान और दर्शन का जो भेद किया गया है उसका निराकरण अन्य प्रकार से भी किया गया है। यह अन्य दार्शनिकों को समझाने के लिए सामान्य और विशेष का प्रयोग किया गया है किन्तु जो जैन तत्वज्ञान के ज्ञाता हैं उनके लिए आगमिक व्याख्यान ही ग्राह्य है। शास्त्रीय परम्परा के अनुसार आत्मा और इतर का भेद ही वस्तुत: सारपूर्ण है। १९३

उल्लिखित विचारधारा को मानने वाले आचार्यों की संख्या अधिक नहीं है, अधिकांशत: दर्शनिक आचार्यों ने साकार और अनाकार के भेद को स्वीकार किया है। दर्शन को सामान्यग्राही मानने का तात्पर्य

१८८. तत्त्वार्थसूत्र भाष्य १। ९

१८१. षट्खण्डागम, धवला टीका १।१।४

१९०. षट्खण्डागम, धवला वृत्ति १। ४

१९१. द्रव्यसंग्रहवृत्ति गाथा ४४

१९२. द्रव्यसंग्रहवृत्ति गाथा ४४

१९३. द्रव्यसंग्रहवृत्ति गाथा ४४

इतना ही है कि उस उपयोग में सामान्य धर्म प्रतिबिम्बित होता है और ज्ञानोपयोग में विशेष धर्म झलकता है। वस्तु में दोनों धर्म हैं पर उपयोग किसी एक धर्म को मुख्य रूप से ग्रहण कर पाता है। उपयोग में सामान्य और विशेष का भेद होता है किन्तु वस्तु में नहीं।

काल की दृष्टि से दर्शन और ज्ञान का क्या सम्बन्ध है? इस प्रश्न पर भी चिन्तन करना आवश्यक है। छद्मस्थों के लिए सभी आचार्यों का एक मत है कि छद्मस्थों को दर्शन और ज्ञान क्रमशः होता है, युगपत नहीं। केवली में दर्शन और ज्ञान का उपभोग किस प्रकार होता है। इस सम्बन्ध में आचार्यों के तीन मत हैं। प्रथम मत – ज्ञान और दर्शन क्रमशः होते हैं। द्वितीय मान्यता — दर्शन और ज्ञान युगपत होते हैं। तृतीय मान्यता — ज्ञान और दर्शन में अभेद है अर्थात् दोनों एक हैं।

आवश्यकिनर्युक्ति, १९४ विशेषावश्यकभाष्य १९५ आदि में कहा गया है कि केवली के भी दो उपयोग एक साथ नहीं हो सकते। श्वेताम्बर परम्परा के आगम केवली के दर्शन और ज्ञान को युगपत नहीं मानते। १९६ दिगम्बर परम्परा के अनुसार केवलदर्शन और केवलज्ञान युगपत होते हैं। १९७ आचार्य उमास्वाति का भी यही अभिमत रहा है। मित-श्रुत आदि का उपयोग क्रम से होता है, युगपत नहीं। केवली में दर्शन और ज्ञांनात्मक उपयोग प्रत्येक क्षण में युगपत होता है। १९८ नियमसार में आचार्य कुन्दकुन्द ने स्पष्ट लिखा है कि जैसे सूर्य में प्रकाश और आतप एक साथ रहता है उसी प्रकार केवली में दर्शन और ज्ञान एक साथ रहते हैं। १९९

तीसरी परम्परा चतुर्थ शताब्दी के महान् दार्शनिक आचार्य सिद्धसेन दिवाकर की है। उन्होंने सन्मित-तर्कप्रकरण ग्रन्थ में लिखा है – मन:पर्याय तक तो ज्ञान और दर्शन का भेद सिद्ध कर सकते हैं किन्तु केवलज्ञान केवलदर्शन में भेद सिद्ध करना संभव नहीं। १००० दर्शनावरण और ज्ञानावरण का क्षय युगपत होता है। उस क्षय से होने वाले उपयोग में यह प्रथम होता है, यह बाद में होता है' इस प्रकार का भेद किस प्रकार से किया जा सकता है? १०१ केवल्य की प्राप्ति जिस समय होती है उस समय सर्वप्रथम मोहनीय कर्म का क्षय होता है। जब दर्शनावरण और ज्ञानावरण दोनों के क्षय में काल का भेद नहीं है, तब यह किस आधार पर कहा जा सकता है कि प्रथम केवलदर्शन होता है, बाद में केवलज्ञान। इस समस्या के समाधान के लिए कोई यह माने कि दोनों का युगपत सद्धाव है तो यह भी उचित नहीं, क्योंकि एक साथ दो उपयोग नहीं हो सकते। इस समस्या का सबसे सरल और तर्कसंगत समाधान यह है कि केवली अवस्था में दर्शन और ज्ञान में भेद नहीं होता। दर्शन और ज्ञान को पृथक्-पृथक् मानने से एक समस्या और उत्पन्न होती है कि यदि केवली एक

१९४. आवश्यकनिर्युक्ति गाथा १७७-१७१

१९५. विशेषावश्यकभाष्य गाथा ३०८८-३१३५

१९६. भगवती सूत्र १८/८ तथा भगवती, शतक १४, उद्देशक १०

१९७. गोम्मटसार, जीवकाण्ड ७३० और द्रव्यसंग्रह ४४

१९८. तत्त्वार्थसूत्र भाष्य १/३१

१९९. नियमसार, गाथा १५९

२००. सन्मति० प्रकरण २/३

२०१. सन्मति ० प्रकरण १/९

ही क्षण में सभी कुछ जान लेता है तो उसे सदा के लिए सब कुछ जानते रहना चाहिए। यदि उसका ज्ञान सदा पूर्ण नहीं है तो वह सर्वज्ञ कैसा ?^{२०२}

यदि उसका ज्ञान सदा पूर्ण है तो क्रम और अक्रम का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। यह सदा एकरूप है। वहां पर दर्शन और ज्ञान में किसी भी प्रकार का कोई अन्तर नहीं है। ज्ञान सिवकल्प है और दर्शन निर्विकल्प है, इस प्रकार का भेद आवरण रूप कर्म के क्षय के पश्चात् नहीं रहता^{२०३} जहां पर उपयोग की अपूर्णता है, वहीं पर सिवकल्पक और निर्विकल्पक का भेद होता है। पूर्ण उपयोग होने पर किसी प्रकार का भेद नहीं होता। एक समस्या और है, और वह यह है कि ज्ञान हमेशा दर्शनपूर्वक होता है किन्तु दर्शन ज्ञानपूर्वक नहीं होता। १०४ केवली को एक बार जब सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता है तब फिर दर्शन नहीं हो सकता, क्योंकि दर्शन ज्ञानपूर्वक नहीं होता। एतदर्थ ज्ञान और दर्शन का क्रमभाव नहीं घट सकता।

दिगम्बरपरम्परा में केवल युगपत पक्ष ही मान्य रहा है। श्वेताम्बरपरम्परा में इसकी क्रम, युगपत और अभेद ये तीन धाराएं बनी। इन तीनों धाराओं का विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के महान् तार्किक यशोविजयजी ने नई दृष्टि से समन्वय किया है। रे॰५ ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से क्रमिक पक्ष संगत है। यह दृष्टि वर्तमान समय को ग्रहण करती है। प्रथम समय का ज्ञान कारण है और द्वितीय समय का दर्शन उसका कार्य है। ज्ञान और दर्शन में कारण और कार्य का क्रम है। व्यवहारनय भेदस्पर्शी है। उसकी दृष्टि से युगपत पक्ष भी संगत हैं। संग्रहन्य अभेदस्पर्शी है, उसकी दृष्टि से अभेद पक्ष भी संगत है। तर्कदृष्टि से देखने पर इन तीन धाराओं में अभेद पक्ष अधिक युक्तिसंगत लगता है।

दूसरा दृष्टिकोण आगमिक है। उसका प्रतिपादन स्वभावस्पर्शी है। प्रथम समय में वस्तुगत भिन्नताओं को जानना और दूसरे समय में भिन्नतागत अभिन्नता को जानना स्वभावसिद्ध है। ज्ञान का स्वभाव ही इस प्रकार का है कि भेद में अभेद और अभेद में भेद समाया हुआ है, तथापि भेदप्रधान ज्ञान और अभेदप्रधान दर्शन का समय एक नहीं होता। २०६

प्रज्ञापना में उपयोग और पश्यता के सम्बन्ध में अन्य चर्चा नहीं है। अविध पद में अविधज्ञान के सम्बन्ध में भेद, विषय, संस्थान, आभ्यन्तर और बाह्य अविध, देशाविध, अविध की क्षय-वृद्धि, प्रतिपाति और अप्रतिपाति, इन सात विषय की विस्तृत चर्चा है। अविधज्ञान के दो भेद हैं — एक तो जन्म से प्राप्त होता है, दूसरा कर्म के क्षयोपशम से। देवों नारकों में जन्म से ही अविधज्ञान होता है, किन्तु मनुष्यों और तिर्यच पंचेन्द्रियों का अविधज्ञान क्षायोपशमिक है। यद्यपि दोनों प्रकार के ज्ञान क्षयोपशमजन्य ही हैं तथापि देव-

२०२. सन्मति० प्रकरण २/१०

२०३. सन्मति० प्रकरण २/११

२०४. सन्मति० प्रकरण २/२२

२०५. ज्ञानिबन्दु , पृष्ठ १५४-१६४

२०६. (क) विशेष वितरण के लिए देखिए धर्मसंग्रहणी गाथा १३३६-१३५९

⁽ख) तत्त्वार्थसूत्र, सिद्धसेन गणी टीका, अध्याय १, सू. ३१, पृ. ७७/१

⁽ग) नन्दीसूत्र, मलयगिरि वृत्ति पृ. १३४-१३८

नारकों को यह क्षयोपशम भव के निमित्त से होता है और मनुष्यों एवं तिर्यचों को तपोनुष्ठान आदि बाह्य निमित्तों से होता है। अवधिज्ञान किसमें कितना होता है? इसकी भी विस्तृत चर्चा है। परमावधिज्ञान केवल मनुष्य में ही होता है। प्रज्ञापना के मूल पाठ में अवधिज्ञान का निरूपण तो है पर परिभाषा नहीं दी है। अवधिज्ञान का तात्पर्य यह है– इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना ही आत्मा से जो रूपी पदार्थ का सीमित ज्ञान होता है, वह अवधिज्ञान है।

संज्ञा : एक चिन्तन

इकतीसवें संज्ञीपद से सिद्धों सिहत सम्पूर्ण जीवों को संज्ञी, असंज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी इन तीन भेदों में विभक्त करके विचार किया गया है। सिद्ध न तो संज्ञी हैं और न असंज्ञी, इसिलए उनको नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी कहा है। मनुष्य में भी जो केवली हैं वे भी सिद्ध समान हैं और इसी संज्ञा वाले हैं। क्योंकि मन होने पर भी वे उसके व्यापार से ज्ञान प्राप्त नहीं करते। जीव संज्ञी और असंज्ञी दोनों प्रकार के हैं। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक के जीव असंज्ञी ही होते हैं। नारक, भवनपित, वाणव्यंतर और पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी और असंज्ञी दोनों प्रकार के हैं। ज्योतिष्क और वैमानिक सिर्फ संज्ञी हैं।

यहाँ पर संज्ञा का क्या अर्थ लेना चाहिए ? यह स्पष्ट नहीं हैं, क्योंकि मनुष्यों, नारकों, भवनपितयों और वाणव्यंतर देवों को असंज्ञी कहा है। इसिलए जिसके मन होता है वह संज्ञी है, यह अर्थ यहाँ पर घटित नहीं होता। अतएव आचार्य मलयगिरि ने संज्ञा शब्द के दो अर्थ किए हैं, तथापि पूरा समाधान नहीं हो पाता। नारक, भवनपित, वाणव्यंतर आदि को संज्ञी और असंज्ञी कहा है, वे जीव पूर्व भव में संज्ञी और असंज्ञी थे इस दृष्टि से उनको संज्ञी और असंज्ञी कहा है। २०७

आगमप्रभावक पुण्यविजय जी महाराज^{२०८} का अभिमत है कि यहाँ पर जो संज्ञी-असंज्ञी शब्द आया है वह किस अर्थ का सही द्योतक है? अन्वेषणीय है। संज्ञा शब्द का प्रयोग आगमसाहित्य में विभिन्न अर्थों को लेकर हुआ। आचारांग में^{२०१} संज्ञा शब्द पूर्वभव के जातिस्मरण ज्ञान के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। दशाश्रुतस्कन्थ^{२१०} में दत्तचित्त समाधि का उल्लेख है, वहाँ भी जातिस्मृति के अर्थ में ही 'सण्णिनाणं' शब्द का उपयोग हुआ। स्थानांग^{२११} में प्रथम स्थान में एक संज्ञा का उल्लेख है तो चतुर्थ स्थान में आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा, इन चार संज्ञाओं का उल्लेख है^{२१२} तो दसवें स्थान^{२१३} में दस संज्ञाओं का वर्णन है, उपर्युक्त चार संज्ञाओं के अतिरिक्त क्रोध, मान, माया, लोभ, लोक और ओघ इन संज्ञाओं का उल्लेख है।

२०७. प्रज्ञापनासूत्र भाग २, पुण्यविजय जी म. की प्रस्तावना पृष्ठ २४२

२०८. प्रज्ञापना, प्रस्तावना, पृष्ठ २४२

२०९. आचारांग १-२

२१०. दशाश्रुतस्कन्ध, ५वीं दशा

२११. स्थानांग, प्रथम स्थान, सूत्र ३०

२१२. स्थानांग, चतुर्थ स्थान, सूत्र ३५६

२१३. स्थानांग, दसवां स्थान, सूत्र १०५

इस प्रकार संज्ञा के दो अर्थ हैं—प्रत्यिभज्ञान और अनुभूति। इन्हीं में मितज्ञान का एक नाम संज्ञा निर्दिष्ट है। १९४ तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वाति ने मित, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध, इन्हें एकार्थक माना है। १९४ मलयिगिरि १९६ और अभयदेव १९७ दोनों ने संज्ञा का अर्थ व्यंजनावग्रह के पश्चात् होने वाली एक प्रकार की मित किया है। आचार्य अभयदेव ने दूसरा अर्थ संज्ञा का अनुभूति भी किया है। १९४ संज्ञा के जो दस प्रकार स्थानांग में बताए हैं उनमें अनुभूति ही घटित होता है। १९६ आचार्य उमास्वाति ने संज्ञी-असंज्ञी का समाधान करते हुए लिखा है कि संज्ञी वह है जो मन वाला है २९० और भाष्य में उसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि संज्ञी शब्द से वे ही जीव अभिप्रेत हैं जिनमें संप्रधारण संज्ञा होती है २२१ क्योंकि संप्रधारण संज्ञा वाले को ही मन होता है। आहार आदि संज्ञा के कारण जो संज्ञी कहलाते हैं, वे जीव यहाँ अभिप्रेत नहीं हैं।

बत्तीसवें पद का नाम संयत है। इसमें संयत, असंयत, संयतासंयत और नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयता-संयत इस प्रकार संयत के चार भेदों को लेकर समस्त जीवों का विचार किया गया है। नारक, एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रय जीवों तक, अवग वासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक ये असंयत होते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयत और संयतासंयत होते हैं। मनुष्य में प्रथम के तीन प्रकार होते हैं और सिद्धों में संयत का चौथा प्रकार नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत है। संयम के आधार से जीवों के विचार करने की पद्धति महत्त्वपूर्ण है।

प्रविचारणा : एक चिन्तन

चौंतीसवें पद का नाम प्रविचारणा है। प्रस्तुत पद में 'पवियारण' (प्रविचारण) शब्द का जो प्रयोग हुआ है उसका मूल 'प्रविचार' शब्द है। १२२ पद के प्रारम्भ में जहाँ द्वारों का निरूपण है वहाँ 'परियारणा' और मूल में 'परियारणया' ऐसा पाठ है। क्रीडा, रित, इन्द्रियों के कामभोग और मैथुन के लिए संस्कृत में प्रविचार अथवा प्रविचारणा और प्राकृत में परियारणा अथवा पवियारणा शब्द का प्रयोग हआ है। परिचारणा कब, किसको और किस प्रकार की सम्भव है, इस विषय की चर्चा प्रस्तुत पद में २४ दण्डकों के आधार से की गई है। नारकों के सम्बन्ध में कहा है कि वे उपपात क्षेत्र में आकर तुरन्त ही आहार के पुद्गल ग्रहण करना आरम्भ कर देते हैं। इससे उनके शरीर की निष्पत्ति होती है और पुद्गल अंगोपांग, इन्द्रियादि रूप से परिणत होने के पश्चात् वे परिचारण प्रारम्भ करते हैं अर्थात् शब्दादि सभी विषयों का उपभोग करना शुरू करते हैं। परिचारण के बाद विकुर्वणा—अनेक प्रकार के रूप धारण करने की प्रक्रिया करते हैं। देवों में इस

सण्णा सई मई पण्णा, सव्वं आभिणिबोहियं॥ —नंदीसूत्र ५४, गा. ६

२१४. ईहाअपोहवीमंसा, मग्गणा य गवेषणा।

२१५. मित: स्मृति: संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थन्तरम्। —तत्त्वार्थसूत्र १/१३

२१६. संज्ञानं संज्ञा व्यंजनावग्रहोत्तरकालभावी मतिविशेष इत्यर्थ। —नंदीवृत्ति, पत्र १८७

२१७. संज्ञान संज्ञा व्यंजनावग्रहोत्तरकालभावी मितविशेष:। —स्थानांगवृत्ति, पत्र १९

२१८. आहारभयाद्युपाधिका वा चेतना संज्ञा। —स्थानांग वृत्ति, पत्र ४७

२१९. स्थानांग १०/१०५

२२०. संज्ञिन: समनस्का:। —तत्त्वार्थसूत्र २/२५

२२१. ईहापोहयुक्ता गुणदोषविचारणात्मिका सम्प्रधारणसंज्ञा। —तत्त्वार्थभाष्य २/२५

२२२. (क) कायप्रविचारो नाम मैथुनविषयोपसेवनम्। (ख) प्रवीचारो मैथुनोपसेवनम्। —सर्वार्थसिद्धि ४-७

क्रम में यह अन्तर है कि उनकी विकुर्वणा करने के बाद परिचारणा होती है। एकेन्द्रिय जीवों में परिचारणा नारक की तरह है किन्तु उनमें विकुर्वणा नहीं है, सिर्फ वायुकाय में विकुर्वणा है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय में एकेन्द्रिय की तरह, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य में नारक की तरह परिचारणा है।

प्रस्तुत पद में जीवों के आहारग्रहण के दो भेद—आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित—बताकर भी चर्चा की गई। एकेन्द्रिय के अतिरिक्त सभी जीव आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित आहार लेते हैं परन्तु में एकेन्द्रिय सिर्फ अनाभोगनिर्वर्तित आहार ही होता है। जीव अपनी इच्छा से उपयोगपूर्वक आहार ग्रहण करते हैं। वह आभोगनिर्वर्तित है और इच्छा न होते हुए भी जो लोमाहार आदि के द्वारा सतत आहार का ग्रहण होता रहता है वह अनाभोगनिर्वर्तित है।

आचार्य मलयगिरि ने प्रज्ञापना की टीका में लिखा है कि एकेन्द्रिय में भी अपटु मन है क्योंकि मनोलब्धि सभी जीवों में है। द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक अपटु मन है तो फिर एकेन्द्रिय में ही अनाभोगनिर्वर्तित आहार कहा है और शेष में क्यों नहीं ? इस प्रश्न का सम्यक् समाधान नहीं है। आगमप्रभावक पुण्यविजय जी महाराज का ऐसा मन्तव्य है कि संभवत: रसनेन्द्रिय वाले प्राणी के मुख होता है इसलिए उसे खाने की इच्छा होती है। अतएव उसमें आभोगनिर्वर्तित आहार माना गया हो और जिसमें रसनेन्द्रिय का अभाव है उसमें अनाभोगनिर्वर्तित माना हो। इस प्रकरण में आहार ग्रहण करने वाला व्यक्ति आहार के पुद्गलों को जानता है, देखता है औह जानता भी नहीं, देखता भी नहीं, आदि विकल्प कर उस पर चिन्तन किया है। अध्यवसाय के सम्बन्ध में भी प्रासंगिक चर्चा की गई है। मुख्य रूप से अध्यवसाय दो प्रकार के होते हैं— १. प्रशस्त २. अप्रशस्त। तरतमता की दृष्टि से उन अध्यवसायों के असंख्यात भेद होते हैं। चौबीसों दण्डकों के जीवों के अध्यवसायों की चर्चा की गई है।

देवों की परिचारणा के सम्बन्ध में चार विकल्प बताए गए हैं -

१. देव	सदेवी	सपरिचार
२. देव	सदेवी	अपरिचार
३. देव	अदेवी	सपरिचार
४. देव	अदेवी	अपरिचार

भवनपित, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क, सौधर्म और ईशान, इनमें देवियां हैं। इसिलए प्रथम विकल्प है। यहाँ पर देव और देवियों के कायिक पिरचारणा है। सनत्कुमार से लेकर अच्युत कल्प तक केवल देव ही होते हैं, देवियां नहीं होती। तथापि उनमें देवियों के अभाव में भी पिरचारणा है। ग्रैवयक और अनुत्तर विमानों में देव हैं, देवियां नहीं है और पिरचारणा भी नहीं है। द्वितीय विकल्प देव हैं, देवियां हैं और अपिरचारक हैं यह विकल्प कहीं संभव नहीं है।

देवी नहीं तथापि परिचारणा किस प्रकार संभव है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है (१) सनत्-कुमार-माहेन्द्रकल्प में स्पर्शपरिचारणा है (२) ब्रह्मलोक-लान्तक कल्प में रूपपरिचारणा है (३) महाशुक्र-सहस्रार में शब्द परिचारणा है। (४) आनत-प्राणत-आरण-अच्युत कल्प में मन:परिचारणा है। कायपरिचारणा में मनुष्य की तरह देव देवी के साथ मैथुन सेवन करते है। देवों में शुक्र के पुद्गल यहाँ बताये हैं और वे शुक्रपुद्गल देवियों में जाकर पांच इन्द्रियों के रूप में परिणत होते हैं। उस शुक्र से गर्भाधान नहीं होता रेव क्योंकि देवों में वैक्रिय शरीर है। यह शुक्र वैक्रियवर्गणाओं से निर्मित होता है। जहाँ पर स्पर्श आदि परिचारणा बताई है उन देवलोकों में देवियां नहीं होती, पर जब उन देवों की इच्छा होती है तब सहस्रार देवलोक तक देवियां विकुर्वणा करके वहाँ उपस्थित होती हैं और देव अनुक्रम से उनके स्पर्श, रूप, शब्द से संतुष्ट होते हैं। रव्श टीकाकार ने यहाँ बताया है—उन देवों में भी शुक्रविसर्जन होता है अर्थात् देव और देवियों में सम्पर्क नहीं होता तथापि शुक्र–संक्रमण होता है और उसके परिणमन से उनके रूप–लावण्य में वृद्धि होती है।

आनत-प्राणत-आरण-अच्युत कल्प में जब देवों की इच्छा मन:परिचारण की होती है तब देवी अपने स्थान पर रहकर ही दिव्य रूप और शृंगार सजाती है और वे देव स्वस्थान पर रहकर ही संतुष्ट होते हैं और देवी भी अपने स्थान पर रहकर ही रूप-लावण्यवती बन जाती है। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि कायपरिचारणा आदि में पूर्व को अपेक्षा उत्तर की परिचारणा में क्रमश: अधिक सुख है और अपरिचारणा वाले देवों में उससे भी अधिक सुख है। इससे स्पष्ट है कि परिचारणा में सुख का अभाव है पर प्राणी चारित्रमोहनीय की प्रबलता के कारण उसमें सुख की अनुभूति करता है। रूप

वेदनाः एक चिन्तन

पैंतीसवाँ पद वेदनापद है। चौबीस दण्डकों में जीवों को अनेक प्रकार की वेदना का जो अनुभव होता है, उसकी विचारणा इस पद में की गई है। वेदना के अनेक प्रकार बताये गये हैं, जैसे कि (१) शीत, उष्ण, शीतोष्ण (२) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (३) शारीरिक, मानसिक और उभय (४) साता, असाता, सातासाता (५) दु:खा, सुखा, अदु:खा–असुखा (६) आभ्युपगिमकी, औपक्रमिकी (७) निदा–अनिदा आदि। संज्ञी की वेदना निदा है और असंज्ञी की वेदना को अनिदा कहा है।

शीतोष्ण वेदना के सम्बन्ध में आचार्य मलयिगिर ने यह प्रश्न उपस्थिति किया है कि उपयोग क्रिमिक है तो फिर शीत और उष्ण इन दोनों का युगपत् अनुभव किस प्रकार हो सकता है? प्रश्न का समाधान करते हुए लिखा है—उपयोग क्रिमिक है परन्तु शीघ्र संचारण के कारण अनुभव करते समय क्रम का अनुभव नहीं होता, इसी कारण आगम में शीतोष्ण वेदना का युगपत् अनुभव कहा है। २२६ यही बात शारीरिक-मानिसक, साता-असाता के सम्बन्ध में है। २२७

आचार्य मलयगिरि ने अदुःखा-असुखा वेदना का अर्थ सुख-दुःखात्मिका किया है अर्थात् जिसे सुख संज्ञा न दी जा सके, क्योंकि उसमें दुःख का भी अनुभव है। दुःखं संज्ञा नहीं दी जा सकती है क्योंकि उसमें

२२३. केवलं ते वैक्रियशरीरान्तर्गता इति न गर्भाधानहेतव:। — प्रज्ञापनावृत्ति पत्र ५५०

२२४. पुद्गलसंक्रमो दिव्यप्रभावादवसेय:।

[—]प्रज्ञापनावृत्ति पत्र ५५१

२२५. प्रज्ञापनाटीका, पत्र २५२

२२६. प्रज्ञापनाटीका, पत्र ५५५

२२७. प्रज्ञापनाटीका, पत्र ५५६

सुख का भी अनुभव है।^{२२८} साता-असाता तथा सुख और दु:ख में क्या भेद है? इस प्रश्न का उत्तर भी आचार्य ने यह दिया है कि वेदनीयकर्म में पुद्गलों का क्रम-प्राप्त उदय होने से जो वेदना होती है वह साता-असाता है पर जब कोई दूसरा व्यक्ति उदीरणा करता है, उस समय जो साता-असाता का अनुभव होता है वह सुख-दु:ख कहलाता है।^{२२९}

वेदना के आभ्युपगिमकी और औपक्रमिकी ये दो प्रकार हैं। अभ्युपगम का अर्थ अंगीकार है। हम कितनी ही बातों को स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं। तपस्या किसी कर्म के उदय से नहीं होती, वह अभ्युपगम के कारण की जाती है। तप में जो वेदना होती है वह आभ्युपगिमकी वेदना है। उपक्रम का अर्थ कर्म की उदीरणा का हेतु है। शरीर में जब रोग होता है तो उससे कर्म की उदीरणा होती है इसलिए वह कर्म की उदीरणा का उपक्रम है। उपक्रम के निमित्त से होने वाली वेदना औपक्रमिकी वेदना है। रै३०

समुद्घात : एक चिन्तन

छत्तीसवें पद का नाम समुद्घातपद है। शरीर से बाहर आत्मप्रदेशों के प्रक्षेप को समुद्घात कहते हैं। १३१ दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि सम्भूत होकर आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर जाने का नाम समुद्घात है। १३२ समुद्घात के सात प्रकार बताये हैं—वेदना समुद्घात, असातावेदनीय कर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात। २. कषायसमुद्घात, कषायमोहकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात। ३. मारणान्तिकसमुद्घात, आयुष्य के अन्तर्मुहूर्त्त अवशिष्ट रह जाने पर उसके आश्रित होने वाला समुद्घात। ४. वैक्रियसमद्घात, वैक्रियशरीर नामकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात। ५. तैजससमुद्घात, तैजसशरीर नामकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात। ७. केविलसमुद्घात, वेदनीय, नाम गोत्र और आयुष्यकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।

इन सात समुद्धातों में से किस जीव में कितने समुद्धात पाए जा सकते हैं, इस पर विचार करते हुए लिखा है—नारक के प्रथम चार समुद्धात हैं। देवों में और तिर्यंञ्च पंचेन्द्रियों में प्रथम पाँच समुद्धात हैं। वायु के अतिरिक्त शेष एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय में प्रथम तीन समुद्धात हैं। वायुकाय में प्रथम चार समुद्धात हैं। मनुष्य में सातों ही समुद्धात हो सकते हैं। जीवों की दृष्टि से समुद्धात की अपेक्षा से अल्पबहुत्व पर चिन्तन करते हुए बताया है कि जधन्य संख्या आहारकसमुद्धात करने वालों की है और सबसे अधिक संख्या वेदनासमुद्धात करने वालों की है। उनसे अधिक जीव ऐसे है जो समुद्धात नहीं करते। इसी तरह दण्डकों के सम्बन्ध में भी अल्पबहुत्व की दृष्टि से चिन्तन किया है। कषायसमुद्धात के चार

२२८. प्रज्ञापनाटीका, पत्र ५५६

२२९. प्रज्ञापनाटीका, पत्र ५५६

२३०. अभ्युपगमेन—अङ्गीकारणे निवृत्ता तत्र वा भवा आभ्युपगमिकी तया—शिरोलोचतपश्चरणादिकया वेदया—पीडया उपक्रमेण— कर्मोदीरणकारणेन निर्वृत्ता तत्र वा भवा औपक्रमिकी तया—ज्वरातिसारादिजन्यया। —स्थानांग वृत्ति पत्र ८४

२३१. समुद्घननं समुद्घात:शरीराद् बहिर्जीवप्रदेशप्रक्षेप:। —स्थानांग अभयदेव वृत्ति ३८०

२३२. हन्तर्गमिक्रियात्वात् सम्भूयात्मप्रदेशानां च बहिरुद्हननं समुद्घात:। —तत्त्वार्थवार्तिक १, २०, १२

प्रकार किये गये हैं और दण्डकों के आधार पर विचार किया गया है। पूर्व के छहों समुद्घात छाद्मस्थिक हैं। इन समुद्घातों के अवगाहना और स्पर्श कितने होते हैं तथा कितने काल तक ये रहते हैं ? समुद्घात के समय जीव की कितनी क्रियाएँ होती हैं ? इन सभी प्रश्नों पर विचार किया है।

केवलिसमुद्घात के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा है। केवलिसमुद्घात करने के पूर्व एक विशेष क्रिया होती है जो शुभ योग रूप है। उसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण है। उसका कार्य उदयावलिका में कर्मदिलकों का निक्षेप करना है। यह क्रिया आवर्जीकरण कहलाती है। मोक्ष की ओर आत्मा आवर्जित यानी झुकी हुई होने से इसे आवर्जितकरण भी कहते हैं। केवलज्ञानियों के द्वारा अवश्य किये जाने के कारण इसे आवश्यककरण भी कहते हैं। विशेषावश्यकभाष्य, पंचसंग्रह आदि में ये तीनों नाम प्राप्त होते हैं। १३३ दिगम्बर परम्परा के साहित्य में केवल आवर्जितकरण नाम ही मिलता है। १३४

जब वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म की स्थिति में दिलक आयुकर्म की स्थिति और दिलकों से अधिक हों तब उन सभी को बराबर करने के लिए केविलसमुद्घात होता है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु अवशेष रहने पर यह समुद्घात होता है। केविलसमुद्घात का कालप्रमाण आठ समय का है। प्रथम समय में आत्मा के प्रदेशों को शरीर से बाहर निकाला जाता है। उस समय उनका आकार दण्ड सदृश होता है। आत्मप्रदेशों का यह दण्डरूप ऊंचाई में लोक के ऊपर से नीचे तक अर्थात् चौदह रण्जु लम्बा होता है। उसकी मोटाई केवल स्वयं के शरीर के बराबर होती हैं। दूसरे समय में उस दण्ड को पूर्व, पश्चिम या उत्तर, दिक्षण में विस्तीर्ण कर उसका आकार कपाट के सदृश बनाया जाता है। तृतीय समय में कपाट के आकार के आत्मप्रदेशों को मंथाकार बनाया जाता है अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दिक्षण चारों तरफ फैलाने से उसका आकार मथनी का सा बन जाता है। चतुर्थसमय में विदिशाओं के खाली भागों को आत्मप्रदेशों से पूर्ण करके उन्हें सम्पूर्ण लोक में व्याप्त किया जाता है। पाँचवें समय में आत्मा के लोकव्यापी आत्मप्रदेशों को संहरण के द्वारा फिर मंथाकार, छठे समय में मंथाकार से कपाटाकार बना लिया जाता है। सातवें समय में आत्मप्रदेश फिर दण्ड रूप में परिणत होते हैं और आठवें समय में पुन: वे अपनी असली स्थिति में आ जाते हैं।

वैदिक परम्परा^{२३५} के ग्रन्थों में आत्मा की व्यापकता के सम्बन्ध में जो चिन्तन किया गया है, उसकी तुलना हम केविलसमुद्घात के चतुर्थ समय में जब आत्मा लोकव्यापी बन जाता है, उससे कर सकते हैं। व्याख्यासाहित्य

इस प्रकार प्रज्ञापना के छत्तीस पदों में विपुल द्रव्यानुयोग सम्बन्धी सामग्री का संकलन है। इस प्रकार का संकलन अन्यत्र दुर्लभ है। प्रज्ञापना का विषय गम्भीरता को लिए हुए है। आगमों के गम्भीर रहस्यों को

२३३. (क) विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ३०५०-५१ (ख) पंचसंग्रह, द्वार १, गाथा १६ की टीका

२३४. लब्धिसार, गा. ६१७

२३५. (क) विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वत: पात। —श्वेताश्वतरोपनिषद् ३-३, १११-५

⁽ख) सर्वतः पाणिपादं तत्, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके, सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ — भगवद्गीता, १३, १३

उद्घाटित करने के लिए मूर्धन्य मनीषियों के द्वारा व्याख्यासाहित्य का निर्माण किया गया है। प्रज्ञापना पर निरुक्ति और भाष्य नहीं लिखे गए। किन्तु आचार्य हरिभद्र ने प्रज्ञापना की प्रदेश-व्याख्या में प्रज्ञापना की अवचूर्णि का उल्लेख किया है। २३६ इससे यह स्पष्ट है आचार्य हरिभद्र के पूर्व इस पर कोई न कोई अवचूर्णि अवश्य रही होगी, क्योंकि व्याख्या में यत्र-तत्र 'एतदुक्तं भवित', 'किमुक्तं भवित' 'अयमत्र भावार्थः', 'इदमत्र हृदयम्', 'एतिसिं भावणा' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। आचार्य मलयिगिर २३७ ने भी अपनी वृत्ति में चूर्णि का उल्लेख किया है। यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि अवचूर्णि या चूर्णि का रचियता कौन था? मुनिश्री पुण्यविजय जी महाराज का अभिमत है कि चूर्णि के रचियता आचार्य हरिभद्र के गुरु ही होने चाहिए, क्योंकि व्याख्या में ये शब्द प्रयुक्त हुए हैं—'एवं तावत् पूज्यपादा व्याचक्षते', 'गुरवस्तु', 'इह तु पूज्याः', 'अत्र गुरवो व्याचक्षते।' पुण्यविजय जी महाराज का भी यह मन्तव्य है कि प्रज्ञापना पर आचार्य हरिभद्र के गुरु जिनभद्र के अतिरिक्त अन्य आचार्यों की व्याख्याएँ भी होनी चाहिए। र३८ पर उपलब्ध नहीं होने से इसका क्या रूप था, यह नहीं कहा जा सकता।

प्रज्ञापना पर वर्तमान में जो टीकाएँ उपलब्ध हैं उनमें सर्वप्रथम आचार्य हरिभद्र की प्रदेशव्याख्या है। हिरभद्र जैन आगमों के प्राचीन टीकाकार हैं। उन्होंने आवश्यक, दशवैकालिक जीवाजीवाभिगम, नन्दी, अनुयोगद्वार, पिण्डिनर्युंक्ति, प्रभृति पर महत्त्वपूर्ण टीकाएं लिखी हैं। प्रज्ञापना की टीका में सर्वप्रथम जैनप्रवचन की मिहमा गाई है। १३९ उसके पश्चात् मंगल का विश्लेषण किया है और साथ ही यह भी सूचित किया है कि मंगल की विशेष व्याख्या आवश्यक टीका में की गई है। भव्य-अभव्य का विवेचन करते हुए आचार्य ने वादिमुख्य कृत अभव्य-स्वभाव के सूचक श्लोक को भी उद्धृत किया है। १४०

प्रज्ञापना पर दूसरी वृत्ति नवांगी टीकाकार आचार्य अभयदेव की है। पर यह वृत्ति सम्पूर्ण प्रज्ञापना पर नहीं है केवल प्रज्ञापना के तीसरे पद—जीवों के अल्पबहुत्व—पर है। आचार्य ने १३३ गाथाओं के द्वारा इस पद पर प्रकाश डाला है। स्वयं आचार्य ने उसे 'संग्रह' की अभिधा प्रदान की है। यह व्याख्या धर्मरत्नसंग्रहणी और प्रज्ञापनोद्धार नाम से भी विश्रुत है।

इस संग्रहणी पर कुलमण्डनगणी ने संवत् १४४१ में एक अवचूर्णि का निर्माण किया है। आत्मानन्द जैन सभा भावनगर से प्रज्ञापना तृतीय पद संग्रहणी पर एक अवचूर्णि प्रकाशित हुई है। पर उस अवचूर्णि के रचियता का नाम ज्ञात नहीं है। यह अवचूर्णि कुलमण्डनगणी विरचित अवचूर्णि से कुछ विस्तृत है। पुण्यविजय जी महाराज का यह अभिमत है कि कुलमण्डनकृत अवचूर्णि को ही अधिक स्पष्ट करने के लिए किसी विज्ञ ने इसकी रचना की है।

२३६. अलमतिप्रसङ्गेन अवचूर्णिकामात्रमेतदिति।

⁻⁻⁻⁻प्रज्ञापनाप्रदेशव्याख्या, पृ. २८, ११३

२३७. प्रज्ञापना मलयगिरि वृत्ति, पत्र २६३-२७१

२३८. प्रज्ञापना, प्रस्तावना पृ. १५२

२३९. रागादिवध्यपट: सुरलोकसेतुरानन्ददुन्दुभिरसत्कृतिवंचितनाम्। संसारचारकपलायनफालघंटा, जैनं वचस्तदिह को न भजेत विद्वान्॥१॥ —प्रज्ञापना प्रदेशव्याख्या

२४०. सद्धर्म्मबीजवपनानघकौशलस्य, यल्लाह्यकबान्धव! तवापि खिलान्यभूवन्। तन्नाद्भुतं खगकुलेष्विह तामसेषु, सूर्यांशवो मधुकरीचरणावदाता:॥ १॥ —प्रज्ञापना प्रदेशव्याख्या

प्रज्ञापना पर विस्तृत व्याख्या मलयगिरि की है। आचार्य मलयगिरि सुप्रसिद्ध टीकाकार हैं। उनकी टीकाओं में विषय की विशदता, भाषा की प्रांजलता, शैली की प्रौढ़ता एक साथ देखी जा सकती है। कहा जाता है कि उन्होंने छब्बीस ग्रन्थों पर वृत्तियाँ लिखी हैं, उनमें से बीस ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं। मलयगिरि ने स्वतन्त्र ग्रन्थ न लिखकर टीकाएँ ही लिखी हैं पर उनकी टीकाओं में प्रकाण्ड पाण्डित्य मुखरित हुआ है। वे सर्वप्रथम मूल सूत्र के शब्दार्थ की व्याख्या करते हैं, अर्थ का स्पष्ट निर्देश करते हैं, उसके पश्चात् विस्तृत विवेचन करते हैं। विषय से सम्बन्धित प्रासंगिक विषयों को भी छूते चले जाते हैं। विषय को प्रामाणिक बनाने के लिए प्राचीन ग्रन्थों के उद्धरण भी देते हैं। प्रज्ञापनावृत्ति उनकी महत्त्वपूर्ण वृत्ति है। यह वृत्ति आचार्य हरिभद्र की प्रदेशव्याख्या से चार गुणी अधिक विस्तृत है। प्रज्ञापना के गुरु गम्भीर रहस्यों को समझने के लिए यह वृत्ति अन्यन्त उपयोगी है। वृत्ति के प्रारम्भ में आचार्य ने मंगलसूचक चार श्लोक दिए हैं। प्रथम श्लोक में भगवान् महावीर की स्तुति है, द्वितीय में जिन प्रवचन को नमस्कार किया गया है, तृतीय श्लोक में गुरु को नमन किया गया है और चतुर्थ श्लोक में प्रज्ञापना पर वृत्ति लिखने की प्रतिज्ञा की है। श्रिश

आचार्य मलयगिरि ने प्रज्ञापना का शब्दार्थ करते हुए लिखा है कि 'प्रकर्षेण ज्ञाप्यन्ते अनेयित प्रज्ञापना' अर्थात् जिसके द्वारा जीव-अजीव आदि पदार्थों का ज्ञान किया जाय वह प्रज्ञापना है। आचार्य हिरभद्र ने अपनी वृत्ति में प्रज्ञापना को उपांग के रूप में उल्लिखित किया है पर आचार्य मलयगिरि ने उनसे आगे बढ़कर समवायाङ्ग का उपांग प्रज्ञापना को बताया है। उनका यह स्पष्ट अभिमत है कि समवायाङ्ग निरूपित अर्थ का प्रतिपादन प्रज्ञापना में हुआ है। उन्होंने यह भी लिखा है कि कहा जा सकता है कि समवायाङ्ग निरूपित अर्थ का प्रज्ञापना में प्रतिपादन करना उचित नहीं, पर यह कथन उपयुक्त नहीं, क्योंकि प्रज्ञापना में समवायाङ्ग प्रतिपादित अर्थ का ही विस्तार है और यह विस्तार मंदमित शिष्य के विशेष उपकार के लिए किया गया है। इसलिए इसकी रचना पूर्ण सार्थक है। विज्ञों का यह मानना है कि अमुक अंग का अमुक उपांग है, इस प्रकार की व्यवस्था आचार्य हिरभद्र के पश्चात् और आचार्य मलयगिरि के पूर्व हुई है।

मलयगिरि की वृत्ति का मूलाधार आचार्य हरिभद्र की प्रदेशव्याख्या रही है तथापि आचार्य मलयगिरि ने अन्य अनेक ग्रन्थों का उपयोग किया है।^{२४२} उदाहरण के रूप में आचार्य हरिभद्र ने स्त्री तीर्थंकर बन

२४१. जयित नमदमरमुकुटप्रतिबिम्बच्छद्मविहित बहुरूपः।
उद्धर्तुंमिव समस्तं विश्वं भवपङ्कतोवीरः॥ १॥
जिनवचनामृतजलिधं वन्दे यद्बिन्दुमात्रमादाय।
अभवत्रूनं सत्त्वा जन्म-जरा-व्याधिपरिहीनाः॥ २॥
प्रणमत गुरुपदपङ्कजमधरीकृतकामधेनुकल्पलतम्।
यदुपास्तिवशित्ररुपममश्नुवते ब्रह्म तनुभाजः॥ ३॥
जडमितरिप गुरुचरणोपास्तिसमुद्भूतिवपुलमितिविभवः।
समयानुसारतोऽहं विदधे प्रज्ञापनाविवृत्तिम्॥ ४॥ —प्रज्ञापना टीका

२४२. (क) पाणिनि: स्वप्राकृतव्याकरणे—पत्र ५, पत्रा ३६५ (ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति गाथा—पत्र १२। जीवाभिगमचूर्णि प. ३०८ आदि।

सकती है या नहीं? इसके लिए सिद्ध प्राभृत का संकेत किया है जबिक आचार्य मलयगिरि ने स्त्री मुक्त होती है या नहीं ? इस सम्बन्ध में पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष की रचना का विस्तार से विश्लेषण किया है। १४३

इसी प्रकार सिद्ध के स्वरूप के सम्बन्ध में विभिन्न दार्शनिकों के मन्तव्य की चर्चा करके अन्त में जैनदर्शन की दृष्टि से सिद्ध के स्वरूप की संस्थापना की है। १४४ सामान्य रूप से आचार्य मलयगिरि ने व्याख्या के सम्बन्ध में विभिन्न चिन्तकों के मतभेद का सूचन किया है पर कुछ स्थलों पर उन्होंने अपना स्वतन्त्र मत भी प्रकट किया है और जहाँ उन्हें लगा कि यह उलझन भरा है वहाँ उन्होंने अपना मत न देकर केविलगम्य कहकर सन्तोष किया है। यह कथन उनकी भवभीरुता का द्योतक है। आज जिन विषयों में कुछ भी नहीं जानते उस विषय में भी जो लोग अधिकार के साथ अपना मत दे देते हैं, उन्हें इस महान आचार्य से प्रेरणा लेनी चाहिए।

आचार्य मलयगिरि ने कितने ही विषयों की चर्चा तर्क और श्रद्धा दोनों ही दृष्टि से की है। जैसे— प्रज्ञापना की रचना श्यामाचार्य ने की तथापि इसमें श्रमण भगवान् महावीर और गणधर गौतम का संवाद कैसे ? भगवान् महावीर और गौतम का संवाद होने पर भी इसमें अनेक मतभेदों का उल्लेख कैसे ? सिद्ध के पन्द्रह भेदों की व्याख्या के साथ उनकी समीक्षा भी की है। स्त्रियाँ मोक्ष पा सकती हैं, वे षडावश्यक, कालिक और उत्कालिक सूत्रों का अध्ययन कर सकती हैं, निगोद की चर्चा, म्लेच्छ की व्याख्या, असंख्यात आकाश प्रदेशों में अनन्त प्रदेशी स्कन्ध का समावेश किस प्रकार होता है ? भाषा के पुद्गलों के ग्रहण और निसर्ग की चर्चा, अनन्त जीव होने पर भी शरीर असंख्यात कैसे ? आदि विविध विषयों पर कलम चलाकर आचार्य ने अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा का ज्वलन्त परिचय दिया है। अनेक विषयों की संगति बिठाने हेतु आचार्य ने नयदृष्टि का अवलम्बन लेकर व्याख्या की है और स्थलों पर पूर्वाचार्यों का और पूर्व संप्रदायों की मान्यताओं का उल्लेख किया है। प्रस्तुत वृत्ति का ग्रन्थमान १६००० श्लोक प्रमाण है।

आचार्य मलयगिरि की व्याख्या के पश्चात् अन्य कुछ आचार्यों ने भी व्याख्याएं लिखी हैं, पर वे व्याख्याएं पूर्ण आगम पर नहीं हैं और न इतनी विस्तृत ही हैं। मुनि चन्द्रसूरि ने प्रज्ञापना के वनस्पति के विषय को लेकर वनस्पतिसप्तितका ग्रन्थ लिखा है जिसमें ७१ गाथाएं हैं। इस पर एक अज्ञात लेखक की एक अवचूरि भी है। यह अप्रकाशित है और इसकी प्रति लालभाई दलपतभाई विद्यामन्दिर ग्रन्थगार में है।

प्रज्ञापनाबीजक—यह हर्षकुलगणी की रचना है, ऐसा विज्ञों का मत है। क्योंकि ग्रन्थ के प्रारम्भ में और अन्त में कहीं पर भी कोई सूचना नहीं है। इसमें प्रज्ञापना के छत्तीस पदों की विषयसूची संस्कृत भाषा में दी गई है। यह प्रति भी अप्रकाशित है और लालभाई दलपतभाई विद्यामन्दिर ग्रन्थागार के संग्रह में है।

पद्मसुन्दरकृत अवचूरि—यह भी एक अप्रकाशित रचना है, जिसका संकेत आचार्य मलयगिरि ने अपनी टीका में किया है। इसकी प्रति भी उपर्युक्त ग्रन्थागार में उपलब्ध है।

धनविमलकृत बालावबोध भी अप्रकाशित रचना है। सर्वप्रथम भाषानुवाद इसमें हुआ है जिसे टबा कहते हैं। इस टबे की रचना संवत् १७६७ से पहले की है। श्री जीवविजयकृत दूसरा टबा यानी बालावबोध

२४३. पण्णवणासुत्तं-प्रस्तावना भाग २, पृ. १५४-१५७

२४४. देखिए---पण्णवणासुत्तं-प्रस्तावना, २, १५७

भी प्राप्त होता है। यह टबा संवत १७६४ में रचित हैं। परमानन्दकृत स्तवक अर्थात् बालावबोध प्राप्त है, जो संवत १८७६ की रचना है। यह टबा रायधनपतिसंह बहादुर की प्रज्ञापना की आवृत्ति में प्रकाशित है। श्री नानकचंदकृत संस्कृतछाया भी प्राप्त है, जो रायधनपतिसंह बहादुर ने प्रकाशित की है (प्रज्ञापना के साथ)। पिण्डत भगवानदास हरकचन्द ने प्रज्ञापवनासूत्र का अनुवाद भी तैयार किया था, जो विक्रम संवत् १९९१ में प्रकाशित हुआ। आचार्य अमोलक ऋषि जी महाराज ने भी हिन्दी अनुवाद सहित प्रज्ञापना का एक संस्करण प्रकाशित किया था। इस प्रकार समय-समय पर प्रज्ञापना पर विविध व्याख्या साहित्य लिखा गया है।

सर्वप्रथम सन् १८८४ में मलयगिरिविहित विवरण, रामचन्द्रकृत संस्कृतछाया व परमानन्दर्षिकृत स्तवक के साथ प्रज्ञापना का धनपतिसंह ने बनारस से संस्करण प्रकाशित किया। उसके पश्चात् सन् १९१८-१९१९ में आगमोदय सिमित बम्बई ने मलयगिरि टीका के साथ प्रज्ञापना का संस्करण प्रकाशित किया। विक्रम संवत् १९९१ में भगवानदास हर्षचन्द्र जैन सोसायटी अहमदाबाद से मलयगिरि टीका के अनुवाद के साथ प्रज्ञापना का संस्करण निकला। सन् १९४७-१९४९ में ऋषभदेवजी केसरीमलजी श्वेताम्बर संस्था रतलाम, जैन पुस्तक प्रचार संस्था, सूरत से हरिभद्रविहित प्रदेशव्याख्या सिहत प्रज्ञापना का संस्करण निकला। सन् १९७१ में श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई से पण्णवणासुत्तं मूल पाठ और विस्तृत प्रस्तावना के साथ, पुण्यविजयजी महाराज द्वारा सम्पादित प्रकाशित हुआ है। विक्रम सम्वत् १९७५ में श्री अमोलक ऋषिजी महाराज कृत हिन्दी अनुवाद सिहत हैदराबाद से एक प्रकाशन निकला है। वि. सम्वत् २०११ में सूत्रागमसिमित गुडगांव छावनी से श्री पुप्फिमक्खु द्वारा सम्पादित प्रज्ञापना का मूल पाठ प्रकाशित हुआ है। इस तरह समय-समय पर आज तक प्रज्ञापना के विविध संस्करण निकले हैं।

प्रस्तृत संस्करण

प्रज्ञापना के अनेक संस्करण प्रकाशित होने पर भी एक ऐसे संस्करण की आवश्यकता थी जिसमें शुद्ध मूल पाठ हो, अर्थ हो और मुख्य स्थलों पर विवेचन भी हो, जिससे विषय सहज रूप से समझा जा सके। इसी दृष्टि से प्रस्तुत आगम का प्रकाशन हो रहा है। श्रमणसंघ के युवाचार्य महामिहम मधुकर मुनिजी महाराज ने आगमों के अभिनव संस्करण निकालने की योजना बनाई। यह योजना युवाचार्यश्री की दूरदर्शिता, दृढ़संकल्प, शिक्त और आगमसाहित्य के प्रति अगाध भिक्त का पावन प्रतीक है। युवाचार्यश्री के प्रबल पुरुषार्थ के फलस्वरूप ही स्वल्पकाल में अनेक आगम प्रकाशित हो चुके हैं और अनेक आगम शीघ्र प्रकाशित होने वाले हैं। अनेक मनीषियों के सहयोग के कारण यह गुरुतर कार्य सहज और सुगम हो गया है।

प्रस्तुत प्रज्ञापना के संस्करण की अपनी विशेषता है। इसमें शुद्ध मूलपाठ, भावार्थ और विवेचन है। विवेचन न बहुत अधिक लम्बा है और न बहुत संक्षिप्त ही। विषय को स्पष्ट करने के लिए प्राचीन टीकाओं का भी उपयोग किया है। विषय बहुत ही गम्भीर होने पर भी विवेचनकार ने उसे सहज, सरल और सरस बनाने का भरसक प्रयास किया है। यह कहा जाय कि विवेचन में गागर में सागर भर दिया गया है तो अतिश्योक्ति नहीं होगा।

प्रज्ञापना जैन-तत्त्व-ज्ञान का वूहत् कोष है। इसमें जैनसिद्धान्त के अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का संकलन है। उपांगों में यह सबसे अधिक विशाल है। अंगों में जो स्थान व्याख्याप्रज्ञप्ति का है वही स्थान उपांगों में प्रज्ञापना का है। इसका सम्पादनकार्य सरल नहीं अपितु किठन और किठनतर है पर परम आह्वाद है कि वाग् देवता के वरद पुत्र श्री ज्ञानमुनिजी ने इस महान् कार्य को सम्पन्न किया है। मुनिश्री का प्रकाण्ड पाण्डित्य यत्र-तत्र मुखरित हुआ है। उन्होंने गम्भीर और सूक्ष्म विषय को अपने चिन्तन की सूक्ष्मता और तीक्ष्णता से स्पर्श किया है जिससे विषय विद्वानों के लिए ही नहीं, सामान्य जिज्ञासुओं के लिए भी हस्तामलकवत् हो गया है। उन्होंने प्रज्ञापना का सम्पादन और विवेचन कर भारती के भंडार में एक अनमोल भेंट समर्पित की है। तदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं। साथ ही इसमें पण्डित शोभाचंद्रजी भारिल्ल का श्रम भी मुखरित हो रहा है।

प्रज्ञापना की प्रस्तावना में बहुत ही विस्तार के साथ लिखना चाहता था, क्योंकि प्रज्ञापना में ऐसे अनेक मौलिक विषय हैं जिन पर तुलनात्मक दृष्टि से चिंतन करना आवश्यक था, पर अस्वस्थ हो जाने के कारण चाहते हुए भी नहीं लिख सका। परमश्रद्धेय सद्गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्करमुनि महाराज का मार्गदर्शन भी मेरे लिए अतीव उपयोगी रहा है।

मुझे आशा और दृढ़ विश्वास है कि प्रज्ञापना का यह संस्करण प्रबुद्ध पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। वे इसका स्वाध्याय कर अपने ज्ञान में अभिवृद्धि करेंगे। अन्य आगमों की तरह यह आगम भी जन-जन के मन को मुग्ध करेगा।

—देवेन्द्रमुनि शास्त्री

जैन स्थानक मदनगंज-किशनगढ़ विजयदशमी १३ अक्टूबर १९८३

विषयानुक्रमणिका

सूत्र		पृष्ठांक
	प्रज्ञापनासूत्र - विषयपरिचय	ş
१	मंगलाचरण और शास्त्र सम्बन्धी चार अनुबन्ध	१०
२	प्रज्ञापनासूत्र के छत्तीस पर्दों के नाम	१४
	प्रथम प्रज्ञापनापद	
३	प्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार	१६
8	अजीवप्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार	१६
4	अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना	१६
६-१३	रूपी-अजीव-प्रज्ञापना	.१६
	(वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-संठाण) रूपी अजीव की परिभाषा, धर्मास्तिकाय	
	आदि की परिभाषा; वर्णपरिणत पुद्गलों के भेद तथा उनकी व्याख्या	
	(
৾ १४	जीव प्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार	३५
१५-१७	असंसारसमापन्न जीव-प्रज्ञापना	३५
	(असंसारसमापन्न जीवों (सिद्ध) के १५ भेद —(३२-३३)	
१८	संसारसमापन्न जीव-प्रज्ञापना के पांच प्रकार	४०
१९	एकेन्द्रिय संसारी जीवों की प्रज्ञापना	४१
२०-२५	पृथ्वीकायिक जीवों की प्रज्ञापना	४२
२६-२८	अप्कायिक जीवों की प्रज्ञापना	80
२९-३१	तेजस्कायिक जीवों की प्रज्ञापना	४९
३ २-३४	वायुकायिक जीवों की प्रज्ञापना	ः ५०
३५-५३	वनस्पतिकायिकों की प्रज्ञापना	५२
	(प्रत्येक शरीर बादर वनस्पति के १२ भेद४८-५६)	५३
48-44	साधारणशरीर बादर वनस्पतिकायिक (अनन्तकाय) का स्वरूप तथा प्रकार	६१
	(वृक्षादि १२ भेदों की व्याख्या प्रत्येकशरीरी अनेक जीवों का एक	
	शरीराकार कैसे ? दो दृष्टान्त अनन्त जीवों वाली वनस्पति के लक्षण	
	बीज का जीव मूलादि का जीव बन सकता है या नहीं ?	
	साधारणशरीर बादर वनस्पतिकायिक जीवों का लक्षण	

५६	द्वीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना	<i>.</i> બ્લ
	द्वीन्द्रिय जीवों की जाति एवं योनियाँ	
40	त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना	७६
40	चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना	<i>e)e)</i>
49	चतुर्विध पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना	১৩
६०	नैरयिक जीवों की प्रज्ञापना	७९
६१-६८	समग्र पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की प्रज्ञापना	७९
	३ भेदजलचर, स्थलचर, खेचर। जलचर के पांच भेद	
६९-८१	थलचर पंचेन्द्रिय के विविध भेद	८१
८२-८५	आसालिक की उत्पत्ति कहाँ ?	८५
८६-९१	खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक के विविध भेद	
	चर्मपक्षी, लोमपक्षी, समुद्गपक्षी, विततपक्षी	23
९२	समग्र मनुष्य जीवों की प्रज्ञापना	९२
९३	सम्मूर्च्छिम मनुष्य उत्पत्ति के १४ स्थान	९२
९४	गर्भज मनुष्य के तीन प्रकार	९३
९५	अन्तर्द्वीपक मनुष्य के अट्ठाईस भेद	९३
९६	अकर्मभूमक मनुष्य के तीस भेद	९३
९७	कर्मभूमक मनुष्य : दो भेद — आर्य-म्लेच्छ	९४
९८	म्लेच्छ (अनार्य) भेद	९४
९९	आर्य के विविध भेद	९५
१००	ऋद्धि-प्राप्त आर्य : ६ भेद (अरहंत, चक्रवर्ती आदि)	९५
१०१	ऋद्धि-अप्राप्त आर्य : नौ भेद	९५
१०२	क्षेत्रार्य : साढ़े छब्बीस आर्यक्षेत्र	९५
१०३	जात्यार्य — छह प्रकार	९५
१०४	कुलार्य — छह प्रकार	9,0
१०५-१०६	कर्मार्य— शिल्पार्य: विविध भेद	९७
१०७	भाषार्य कौन ? लिपि के १८ भेद	९८
१०८-१३८	ज्ञानार्य-दर्शनार्य-चारित्रार्य: विविध भेद	99
	विवेचन—अन्तर्द्वीपक मनुष्य —कहाँ, कैसे ?	१०३-१०६
	अकर्मभूमक तथा आर्य जातियाँ—विवेचन	
	चारित्रार्यः विविध समीक्षाएँ	
१३९	चतुर्विध देवों की प्रज्ञापना	१२०

१४०	दश प्रकार के भवनवासी देव	१२०
१४१	आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देव	१२०
१४२	पांच प्रकार के ज्योतिष्क देव	१२०
१४१-६४१	वैमानिक देव : दो प्रकार	१२१
	(देवों के विविध स्वरूप : भवन-आवास आदि)	
	द्वितीय स्थानपद	
	प्राथमिक	१२५
१४८-१५०	पृथ्वीकायिकों के स्थान का निरूपण	१२८
	आठ पृथ्वी—रत्नप्रभा आदि का वर्णन	
	पृथ्वीकायिकों का तीनों लोकों में निवासस्थान कहाँ कहाँ ?	
१५१-१५३	अप्कायिकों के स्थान का निरूपण	१३१
	सात घनोदिध आदि का वर्णन	•
१५४-१५६	तेजस्कायिकों के स्थान का निरूपण	१३३
	दो ऊर्ध्वकपाट : विवेचन	
१५७-१५९	वायुकायिकों के स्थान का निरूपण	१३७
१६०-१६२	वनस्पतिकायिकों के स्थानों का निरूपण	१३९
१६३	द्वीन्द्रिय जीवों के स्थानों का निरूपण	१४१
१६४-१६५	त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय जीवों के स्थानों का निरूपण	१४१
१६६	पंचेन्द्रिय जीवों के स्थान की पृच्छा	१४३
१६७-१७४	नैरियकों के स्थानों की प्ररूपणा	१४४
	(रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियों का स्थान, वर्ण, गंध,	
	मोटाई, संख्या आदि का निरूपण)	
१७५	पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों के स्थान की प्ररूपणा	१५५
१७६	मनुष्यों के स्थानों की प्ररूपणा	१५५
१७७	सर्व भवनवासी देवों के स्थानों की प्ररूपणा	१५६
०८१-७७१	असुरकुमार आदि के भवनावास तथा अन्य वर्णन	१५९
	चमरेन्द्र व बलीन्द्र का वर्णन दाक्षिणात्य असुरकुमारों (चमरेन्द्र)	I
	का वर्णन उत्तरिदशावासी असुरकुमार बलीन्द्र —	
	वैरोचनेन्द्र का वर्णन	
१८१-१८३	नागकुमारों का वर्णन	१६६
	दाक्षिणात्य तथा उत्तरदिशावासी नागकुमारों का वर्णन	१६६
१८४-१८७	सुपर्णकुमार देवों के स्थान आदि का वर्णन	१६८

१८८-१९४	समस्त वाणव्यन्तर देवों के स्थानों की प्ररूपणा	१७४
१९५	ज्योतिष्क देवों के स्थानों की प्ररूपणा	१८१
१९६	सर्व वैमानिक देवों के स्थानों की प्ररूपणा	१८४
१९७	सौधर्मकल्पगत देवों के स्थान की प्ररूपणा	१८६
१९८	ईशानकल्पवासी देवों के स्थान की प्ररूपणा	१८८
१९९-२०६	सनत्कुमार आदि आरण-अच्युतकल्पवासी देवों के स्थानों की प्ररूपणा	१८९
२०७-२०९	ग्रैवेयकवासी देवों के स्थानों की प्ररूपणा	१९८
२१०	अनुत्तरौपपातिक देवों के स्थानों की प्ररूपणा	२००
	कल्पों के अवतंसकों का रेखाचित्र	२०२
२११	सिद्धस्थान का वर्णन	२०२
	तृतीय बहुवक्तव्यता (अल्प-बहुत्व) पद	
	प्राथमिक	२१२
२१२	दिशादि २७ द्वारों के नाम	२१५
२१३-२२४	दिशा की अपेक्षा से जीवों का अल्प-बहुत्व	२१५
२२५-२२६	पाँच या आठ गतियों की अपेक्षा से जीवों का अल्प-बहुत्व	२२५
२२७–२३१	इन्द्रियों की अपेक्षा से जीवों का अल्प-बहुत्व	. २२७
२३२-२३६	काय की अपेक्षा से सकायिक, अकायिक एवं षट्कायिक जीवों का अल्प-	बहुत्व२३२
२३७-२५१	सूक्ष्म-बादर काय का अल्प-बहुत्व	२३७
२५२	योगों की अपेक्षा से जीवों का अल्प-बहुत्व	२५६
२५३	वेदों की अपेक्षा से जीवों का अल्प-बहुत्व	२५७
२५४	कषायों की अपेक्षा से जीवों का अल्प-बहुत्व	२५८
२५५	लेश्या की अपेक्षा जीवों का अल्प-बहुत्व	२५९
२५६	तीन दृष्टियों की अपेक्षा जीवों का अल्प-बहुत्व	२६०
२५७-२५९	ज्ञान और अज्ञान की अपेक्षा जीवों का अल्प-बहुत्व	२६१
२६०	दर्शन की अपेक्षा जीवों का अल्प-बहुत्व	२६३
२६१	संयत आदि की अपेक्षा जीवों का अल्प- ब हुत्व	२६३
२६२	उपयोगद्वार की दृष्टि से जीवों का अल्प-बहुत्व	२६४
२६३	आहारक-अनाहरक जीवों का अल्प-बहुत्व	२६५
२६४	भाषा की अपेक्षा जीवों का अल्प–बहुत्व	२६५
२६५	परित्त आदि की दृष्टि से जीवों का अल्प-बहुत्व	२६६
२६६	पर्याप्ति की अपेक्षा जीवों का अल्प-बहुत्व	२६७
२६७	सक्ष्म आदि की दृष्टि से जीवों का अल्प-बहुत्व	२६७

२६८	संज्ञी आदि की दृष्टि से जीवों का अल्प-बहुत्व	२६८
२६९	भवसिद्धिकद्वार के माध्यम से जीवों का अल्प-बहुत्व	२६८
२७०-२७३	अस्तिकायद्वार के माध्यम से षड्द्रव्य का अल्प-बहुत्व	२६९
२७४	चरम और अचरम ज़ीवों का अल्प-बहुत्व	२७५
२७५	जीवादि का अल्प-बहुत्व	२७६
२७६–३२४	क्षेत्र की अपेक्षा से ऊर्ध्वलोकादिगत विविध जीवों का अल्प-बहुत्व	२७६
३२५	आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक आदि जीवों का अल्प-बहुत्व	२९७
३२६-३ ३३	पुद्गल द्रव्यों आदि का द्रव्यादि विविध अपेक्षाओं से अल्प-बहुत्व	२९९
४६६	विभिन्न विवक्षाओं से सर्व जीवों के अल्प-बहुत्व का निरूपण	<i>७</i> ०६
	चतुर्थ स्थितिपद	
	प्राथमिक	३१५
३३५-३४२	नैरयिकों की स्थिति प्रज्ञापना	३१७
888-888	देवों और देवियों की स्थिति की प्ररूपणा	३२२
३४५-३५३	भवनवासियों की स्थिति-प्ररूपणा	३२३
३५४-३६५	एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा	३२८
३६६-३६८	वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति-प्ररूपणा	३३४
३६९	द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा	३३५
३७०	त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा	३३५
३७१	चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा	३३६
३७२-३८९	पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति-प्ररूपणा	३४६
<u> ३९०-३</u> ९२	मनुष्यों की स्थिति–प्ररूपणा	<i>७</i> ४६
३९३-३९४	वाणव्यन्तर देवों की स्थिति-प्ररूपणा	386
३९५-४०६	ज्योतिष्क देवों की स्थिति-प्ररूपणा	३५५
४०७-४३७	वैमानिक देवों की स्थिति-प्ररूपणा	३७३
	पंचम विशेषपद (पर्यायपद)	
	प्राथमिक	३७८
	(पर्याय के अर्थ, अन्य दर्शनों के साथ सैद्धान्तिक तुलना)	
४३८	पर्यायों के प्रकार	३७८
४३९	जीवपर्याय का निरूपण	३७९
४४०	नैरियकों के अनन्त पर्याय : क्यों और कैसे ?	३८४
	(षट्स्थानपतितत्व का स्वरूप)	३८४
४४२	असुरकुमार आदि भवनवासी देवों के अनन्त पर्याय	३८५

४४३-४४७	पाँच स्थावरों के अनन्त पर्यायों की प्ररूपणा	१८७
४४८-४५१	विकलेन्द्रिय एवं तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्यायों का निरूपण	३९१
४५२	मनुष्यों के अनन्त पर्यायों की सयुक्तिक प्ररूपणा	३९२
४५३-४५४	वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के अनन्त पर्यायों की प्ररूपणा	३९३
४५५-४६३	विभिन्न अपेक्षाओं से जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले नारकों की प्ररूपणा	३९४
४६४-४६५	जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले असुरकुमारादि भवनपति देवों के पर्याय	४०२
४६६-४७२	जघन्यादि युक्त अवगाहनादि विशिष्ट एकेन्द्रिय के पर्याय	४०३
०८४-६७४	जघन्यादि युक्त अवगाहनादि विशिष्ट विकलेन्द्रियों के पर्याय	४०८
328-878	जघन्य अवगाहनादि वाले पंचेन्द्रियतिर्यंचों की विविध अपेक्षाओं से पर्याय-प्ररूपणा	४१३
४८९-४९८	जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहनादि वाले मनुष्यों की पर्याय-प्ररूपणा	४१९
४९९	वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की पर्याय-प्ररूपणा	४२७
	अजीव-पर्याय	
400-403	अजीवपर्याय के भेद-प्रभेद और पर्यायसंख्या	४२८
५०४-५२४	परमाणुपुद्गल आदि की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता	४३०
	(परमाणु पुद्गलों में अनन्त पर्यायों की सिद्धि परमाणु चतुःस्पर्शी और	
	षट्स्थानपतित द्विप्रदेशी-यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक की हीनाधिकता	
	अवगाहना की दृष्टि से	
५२५-५३७	जघन्यादि विशिष्ट अवगाहना एवं स्थिति वाले द्विप्रदेशी से अनन्त प्रदेशी	
	स्कन्ध तक की पर्याय-प्ररूपणा	४३९
	द्विप्रदेशी स्कन्ध में मध्यम अवगाहना नहीं होती	
५३८-५५३	जघन्यादि युक्त वर्णादियुक्त पुद्गलों की पर्याय-प्ररूपणा	४४९
५५४-५५८	जघन्यादि सामान्य पुद्गल स्कन्धों की विविध अपेक्षाओं से पर्याय-प्ररूपणा	४५९
	छठा व्युत्क्रान्तिपद	
	प्राथमिक	४६४
449	व्युत्क्रान्ति पद के आठ द्वार	४६७
५६०-५६८	नरकादि गतियों में उपपात और उद्वर्तना का विरहकाल निरूपण (प्रथम द्वादश द्वार)	४६७
५६९-६०८	नैरियकों से अनुत्तरौपपातिकों तक के उपपात और उद्वर्तना के विरहकाल की	
	प्ररूपणा (द्वितीय चतुर्विंशति द्वार)	०७४
६०९-६२५	नैरियकों से सिद्धों तक की उत्पत्ति और उद्वर्तना का सान्तर-निरन्तर-निरूपण	
	(तीसरा सान्तर द्वार)	800
६२६-६३८	(चौथा एक समय द्वार:) चौबीस दण्डकवर्ती जीवों और सिद्धों की एक समय	
	में उत्पत्ति और उद्वर्तना की संख्या-प्ररूपणा	४८०

६३९-६६५	(पंचम कुतोद्वार) चातुर्गतिक जीवों की पूर्वभवों से उत्पत्ति (आगति) की प्ररूपणा	४८२
६६६-६७६	(छठा उद्वर्तना द्वार) चातुर्गतिक जीवों के उदवर्तनानन्तर गमन एवं उत्पाद	
	की प्ररूपणा	५०५
<i>\$</i>\3-00	(सप्तम पारभविकायुष्य द्वार) चातुर्गतिक जीवों की पारभविकायुष्य सम्बन्धी प्ररूपणा	५१२
६८४-६९२	(अष्टम आकर्षद्वार) सर्व जीवों के षड्विध आयुष्यबन्ध, उनके आकर्षों की संख्या	
	और अल्प-बहुत्व	५१५
	सप्तम उच्छ्वासपद	
	प्राथमिक	५१९
६९३	ैनरियकों में उच्छ्वास-निश्वासकाल-निरूपण	५२०
६९४-६१६	भवनवासी देवों में उच्छ्वास-विरहकाल-प्ररूपणा	५२०
६९७-६९८	् एकेन्द्रिय से लेकर मनुष्य पर्यन्त उच्छ्वास-विरहकाल-निरूपण	420
६९९	वाणव्यन्तर देवों में उच्छ्वास-विरहकाल-प्ररूपणा	५२१
900	ज्योतिष्क देवों में उच्छ्वास-विरहकाल-प्ररूपणा	५२१
४५७-१०७	वैमानिक देवों में उच्छ्वास-विरहकाल-प्ररूपणा	५२१
	(आणमंति, पाणमंति आदि पदों की व्याख्या)	
•	अष्टम संज्ञापद	
	प्राथमिक	५२९
७२५	संज्ञाओं के दस प्रकार	५३०
	(संज्ञा की शास्त्रीय परिभाषा)	
७२६-७२९	नैरियकों से वैमानिकों तक (२४ दण्डकों में) संज्ञा की सद्भाव-प्ररूपणा	५३१
१६७-०६७	नारकों में संज्ञाओं का विचार (अल्प-बहुत्व)	५३२
७३२-७३३	तिर्यंचों में संज्ञाओं का विचार (अल्प-बहुत्व)	५३४
७३४-७३५	मनुष्यों में संज्ञाओं का विचार (अल्प-बहुत्व)	५३५
७६७-३६७	देवों में संज्ञाओं का विचार (अल्प-बहुत्व)	५३५
	नवम योनिपद	
	प्राथमिक	५३७
১६७	शीतादि त्रिविध योनियों की नारकादि में प्ररूपणा	५३९
७३९-७५२	चौबीस दण्डकों में शीतादि योनियों की प्ररूपणा	५३९
७५३	जीवों में शीतादि योनियों में अल्प-बहुत्व	५४१
७५४-७६२	नैरयिकादि जीवों में सचित्तादि त्रिविध योनियों की प्ररूपणा	५४३
७६३	सचित्तादि त्रिविधयोनिक जीवों का अल्प-बहुत्व कथन	५४४
५७७-४३७	सर्वजीवों में संवृत्तादि त्रिविध योनियों की प्ररूपणा	५४५
<i>⊊⊎</i> 0	मनुष्यों की त्रिविध विशिष्ट योनियां	486

सिरिसामञ्जवायग-विरइयं चउत्थं उवंगं

पण्णवणासुन्तं

श्रीमत्-श्यामार्यं वाचक-विरचित चतुर्थं उपांग

प्रज्ञापनासूत्र

ॐ नमो वीतरागाय

श्रीमत्-श्यामार्य-वाचक-विरचित

चतुर्थ उपांग

पण्णवणासुत्तं : प्रज्ञापनासूत्र

विषय-परिचय

🔲 प्रज्ञापना जैन आगम वाङ्मय का चतुर्थ उपांग एवं अंगबाह्यश्रुत है। इसमें ३६ पद हैं। उनका

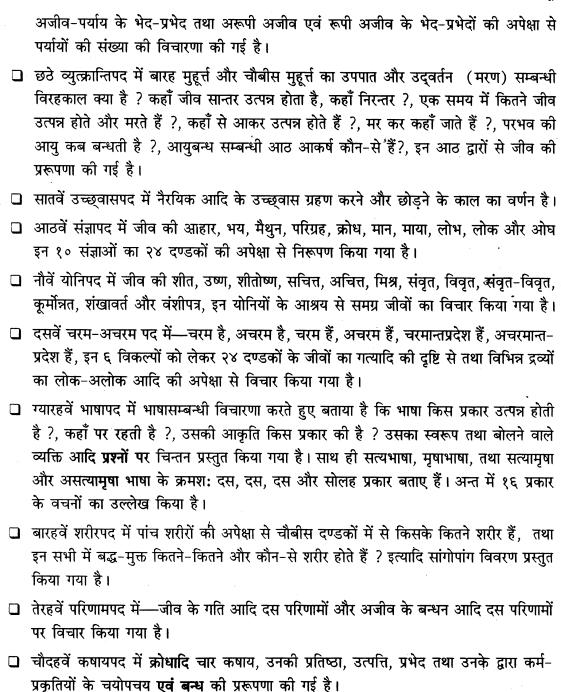
संक्षिप्त परिचय इस प्रकार हैं—
प्रज्ञापना का प्रथम पद 'प्रज्ञापना' है। इस पद में सर्वप्रथम प्रज्ञापना के दो भेद बतला कर अजीव-
प्रज्ञापना का सर्वप्रथम निरूपण किया है, तदनन्तर जीव-प्रज्ञापना का। अजीव-प्रज्ञापना में अरूपी
अजीव और रूपी अजीव के भेद-प्रभेद बताए हैं। जीव-प्रज्ञापना में जीव के दो भेद संसारी और
सिद्ध बताकर सिद्धों के १५ प्रकार और समय की अपेक्षा से भेद बताए हैं। फिर संसारी जीवों
के भेद-प्रभेद बताए हैं। इन्द्रियों के क्रम के अनुसार एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक में सब संसारी

जीवों का समावेश करके निरूपण किया है। यहाँ जीव के भेदों का नियामक तत्त्व इन्द्रियों की

□ दूसरे स्थानपद में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पितकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, नैरियक, तिर्यंच, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक और सिद्ध जीवों के वासस्थान का वर्णन किया गया है। जीवों के निवासस्थान दो प्रकार के हैं — (१) जीव जहाँ जन्म लेकर मरणपर्यन्त रहता है, वह स्वस्थान और (२) प्रासंगिक वासस्थान (उपपात और समुद्घात)।

क्रमश: वृद्धि है।

- □ तृतीय अल्पबहुत्वपद है। इसमें दिशा, गित, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, लेश्या, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, संयत, उपयोग, आहार, भाषक, परीत, पर्याप्त, सूक्ष्म, संज्ञी, भव, अस्तिकाय, चरम, जीव, क्षेत्र, बन्ध, पुद्गल और महादण्डक, इन २७ द्वारों की अपेक्षा से जीवों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।
- □ चतुर्थ स्थितिपद में नैरियक, भवनवासी, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पितकाय, द्वि-त्रि-चतु-पंचेन्द्रिय, मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक जीवों की स्थिति का वर्णन है।
- ☐ पंचम विशेषपद या पर्यायपद में चौबीस दण्डकों के क्रम से प्रथम जीवों के नैरियक आदि विभिन्न भेद-प्रभेदों को लेकर वैमानिक देवों तक के पर्यायों की विचारणा की गई है। तत्पश्चात



□ पन्द्रहवें इन्द्रियपद में दो उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में पांचों इन्द्रियों की संस्थान, बाहल्य आदि २४ द्वारों के माध्यम से विचारणा की गई है। दूसरे उद्देश्यक में इन्द्रियोपचय, इन्द्रियनिर्वर्तना,

विषय - परिचय]

निर्वर्तनासमय, इन्द्रियलिब्धि, इन्द्रिय-उपयोग आदि तथा इन्द्रियों की अवगाहना, अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा आदि १२ द्वारों के माध्यम से चर्चा की गई है। अन्त में इन्द्रियों के भेद-प्रभेद का विचार प्रस्तुत किया गया है।

- सोलहवें प्रयोगपद में सत्यमन:प्रयोग आदि १५ प्रकार के प्रयोगों का चौबीस दण्डकवर्ती जीवों की अपेक्षा से विचार किया गया है। अन्त में ५ प्रकार के गतिप्रपात के स्वरूप, का चिन्तन किया गया है।
- □ सत्रहवें लेश्यापद में छह उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में समकर्म, समवर्ण, समलेश्या, समवेदना, समक्रिया और समआयु नामक अधिकार हैं। दूसरे में कृष्णादि ६ लेश्याओं के आश्रय से जीवों का निरूपण किया गया है। तीसरे उद्देशक में लेश्यासम्बन्धी कितपय प्रश्नोत्तर हैं। चतुर्थ उद्देशक में परिणाम, वर्ण, रस, गन्ध, शुद्ध, अप्रशस्त, संक्लिष्ट, उष्ण, गित, परिणाम, प्रदेश, अवगाढ़, वर्गणा, स्थान और अल्प-बहुत्व नामक अधिकार हैं। लेश्याओं के वर्ण और स्वाद (रस) का भी वर्णन है। पांचवें में लेश्याओं के परिणाम बताए हैं और छठे उद्देशक में किस जीव के कितनी लेश्याएँ होती हैं ? इसका निरूपण है।
- □ अठारहवें पद का नाम कायस्थित है। इसमें जीव और अजीव दोनों अपनी-अपनी पर्याय में कितने काल तक रहते हैं, इसका चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। स्थितिपद और कायस्थितिपद में अन्तर यह है कि स्थितिपद में तो २४ दण्डकवर्ती जीवों की भवस्थिति—एक भव की अपेक्षा से आयुष्य का विचार है, जबिक कायस्थितिपद में जीव मर कर उसी भव में जन्म लेता रहे तो ऐसे सब भवों की परम्परा की कालमर्यादा यानी सब भवों के आयुष्य का कुल जोड़ कितना होगा ?, इसका विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त कायस्थितिपद में 'काय' शब्द से निरूपित धर्मास्तिकाय आदि का उस-उस रूप में रहने के काल (स्थिति) का भी विचार किया है। अत: इसमें जीव, गित, इन्द्रिय, योग, वेद आदि से लेकर अस्तिकाय और चरम इन द्वारों के माध्यम से विचार प्रस्तुत किया गया है।
- □ उन्नीसवें सम्यक्त्वपद में २४ दण्डकवर्ती जीवों के क्रम से सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि का विचार किया गया है।
- □ बीसवें अन्तिक्रियापद में बताया गया है कि कौन-सा जीव अन्तिक्रिया (कर्मनाश द्वारा मोक्षप्राप्ति) कर सकता है, और क्यों ? साथ ही अन्तिक्रिया शब्द वर्तमान भव का अन्त करके नवीन भवप्राप्ति, (अथवा मृत्यु) के अर्थ में भी यहाँ प्रयुक्त किया गया है। और इस प्रकार की अन्तिक्रिया का विचार चौबीस दण्डकवर्ती जीवों से सम्बन्धित किया गया है। कर्मों की अन्तरूप अन्तिक्रिया तो एकमात्र मनुष्य ही कर सकते हैं; इसका वर्णन ६ द्वारों के माध्यम से किया गया है।
- 🔲 इक्कीसवें अवगाहना-संस्थान (या शरीर) पद में शरीर के विधि (भेद), संस्थान, प्रमाण, पुद्गलों

	के चय, शरीरों के पारस्परिक सम्बन्ध, उनके द्रव्य, प्रदेश, द्रव्यप्रदेशों तथा अवगाहना के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है।
	बाईसवें क्रियापद में कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी व प्राणातिपातिकी, इन ५ क्रियाओं तथा इनके भेदों की अपेक्षा से समस्त संसारी जीवों का विचार किया गया है।
	तेईसवें कर्मप्रकृतिपद में दो उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों में से कौन जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधता है ? इसका विचार है। द्वितीय उद्देशक में कर्मों की उत्तरप्रकृतियों और उनके बन्ध का वर्णन है।
	चौबीसवें कर्मबन्ध पद में यह चिन्तन प्रस्तुत किया गया है कि ज्ञानावरणीय आदि में से किस कर्म को बांधते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधता है ?
	पच्चीसवें कर्मवेदपद में ज्ञानावरणीयादि कर्मों को बांधते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है ? इसका विचार किया गया है।
0	छब्बीसवें कर्मवेदबन्धपद में यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का वेदन करते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधता है ।
	सत्ताईसवें कर्मवेदपद में—ज्ञानावरणीय आदि का वेदन करते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है ? इसका विचार किया गया है।
	अट्ठाईसवें आहारपद में दो उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में—सिचत्ताहारी आहारार्थी कितने काल तक, किसका आहार करता है ? क्या वह सर्वात्मप्रदेशों द्वारा आहार करता है, या अमुक भाग से आहार करता है ? क्या सर्वपुद्गलों का आहार करता है ? किस रूप में उसका परिणमन होता है ? लोमाहार आदि क्या हैं ?, इसका विचार है। दूसरे उद्देशक में आहार, भव्य, संज्ञी, लेश्या, दृष्टि आदि तेरह अधिकार हैं।
	उनतीसवें उपयोगपद में दो उपयोगों के प्रकार बताकर किस जीव में कितने उपयोग पाए जाते हैं ? इसका वर्णन किया है।
۵	तीसवें पश्यत्तापद में भी पूर्ववत् साकारपश्यत्ता (ज्ञान) और अनाकारपश्यत्ता (दर्शन) ये दो भेद बताकर इनके प्रभेदों की अपेक्षा से जीवों का विचार किया गया है।
	इकतीसवें संज्ञीपद में संज्ञी, असंज्ञी और नोसंज्ञी की अपेक्षा से जीवों का विचार किया है।
	बत्तीसवें संयतपद में संयत, असंयत और संयतासंयत की दृष्टि से जीवों का विचार किया गया है।
	तेतीसवें अवधिपद में विषय, संस्थान, अभ्यन्तरावधि, बाह्यावधि, देशावधि, सर्वावधि, वृद्धि-अवधि, प्रतिपाती और अप्रतिपाती, इन द्वारों के माध्यम से विचारणा की गई है।

विषय - परिचय]

9

- □ चौतीसवें प्रविचारणा (या परिचारणा) पद में अनन्तरागत आहारक, आहारविषयक आभोग-अनाभोग, आहाररूप से गृहीत, पुद्गलों की अज्ञानता, अध्यवसायकथन, सम्यक्त्वप्राप्ति तथा कायस्पर्श, रूप, शब्द और मन से सम्बन्धित प्रविचारणा (विषयभोग-परिचारणा) एवं उनके अल्पबहुत्व का विचार है।
- □ पैंतीसवें वेदनापद में सीत, उष्ण, शीतोष्ण, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, शारीरिक, मानसिक, शारीरिक मानसिक साता, असाता, साता-असाता, दुःखा, सुखा, अदुःखसुखा, आध्युपगिमकी, औपक्रमिकी, निदा (चित्त की संलग्नता) एवं अनिदा नामक वेदनाओं की अपेक्षा से जीवों का विचार किया गया है।
- □ छत्तीसवें समुद्घातपद में वेदना, कषाय, मरण, वैक्रिय, तैजस, आहारक और केविल समुद्घात की अपेक्षा से जीवों की विचारणा की गई है। इसमें केविलसमुद्घात का विस्तृत वर्णन है।

पण्णवणासुत्तं : प्रज्ञापनासूत्र

पढमं पण्णवणापदं

प्रथम प्रज्ञापनापद

पाथमिक

U	प्रज्ञापनासूत्र का यह प्रयम पद	ह, इसका नाम प्रशासनायप हा	•
	इसमें जैनदर्शनसम्मत जीवतत्त्व	और अजीवतत्त्व की प्रज्ञापना—प्रकर्षरूपेण	प्ररूपणा—भेद-प्रभेद
	बता कर की गई है।		

- □ जीव-प्रज्ञापना से पूर्व अजीव-प्रज्ञापना इसलिए की गई है कि इसमें जीवतत्त्व की अपेक्षा वक्तव्य अल्प है। अजीवों के निरूपण में रूपी और अरूपी, ये भेद और इनके प्रभेद प्रस्तुत किये गए हैं। रूपी में पुद्गल द्रव्य का और अरूपी में धर्मास्तिकायादि तीन द्रव्यों का समावेश हो जाता है। तथा 'अद्धासमय' के साथ 'अस्तिकाय' शब्द जुड़ा हुआ न होने पर भी वह एक स्वतन्त्र अरूपी अजीव कालद्रव्य का द्योतक तो है ही। प्रस्तुत अरूपी अजीव का प्रतिपादन करने के साथ ही यहाँ धर्मास्तिकायादि तीन को देश और प्रदेश के भेदों में विभक्त किया गया है। तत्पश्चात् रूपी अजीव के स्कन्ध से लेकर परमाणु पुद्गल तक मुख्य ४ भेद बता कर उनके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के रूप में परिणत होने पर अनेक प्रभेदों का कथन किया है। साथ ही वर्णादि के परस्पर सम्बन्ध से कुल ५३० भंग होते हैं, उनका निरूपण भी यहाँ किया गया है। शास्त्रकार का आशय यही है कि यों प्रत्येक वर्ण आदि के अनन्त-अनन्त भेद हो सकते हैं। यहाँ मौलिक भेदों का निर्देश करके आगे शास्त्रकार ने इसी शास्त्र के पंचम विशेष-पद में अजीव के पर्यायों तथा तेरहवें परिणामपद में परिणामों का विस्तृत वर्णन किया है।
- □ जीव-प्रज्ञापना में जीव के दो मुख्य भेदों—सिद्ध और संसारी का असंसारसमापन्न और संसार-समापन्न नाम से निर्देश किया है। तत्पश्चात् सिद्धों के १५ प्रकार तथा समय की अपेक्षा से सिद्धों का परस्पर अन्तर बताकर मुक्त होने के बाद आत्मा के, परमात्मा में विलीन हो जाने के सिद्धान्त का निराकरण एवं प्रत्येक मुक्तात्मा के पृथक् अस्तित्व के सिद्धान्त का मण्डन ध्वनित किया है। इसके पश्चात् एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक प्रत्येक संसारी जीव के भेद-प्रभेदों का निरूपण करके जीव को ईश्वर का अंश न मान कर प्रत्येक जीव का अपने-आप में स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध किया है। अगर ब्रह्मैकत्व—(आत्मैकत्ववाद) माना जाए तो प्रत्येक जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व,

१. (क) पण्णवणासुत्तं भा.-१, पृ. ३ से ४५ तक

⁽ख) पण्णवणासुत्तं भा-२, प्रथम पद की प्रस्तावना, पृ. २९ से ३६ तक।

प्रथम प्रज्ञापनापद]

शुभाशुभकर्मबन्ध तथा उसके फल की एवं कर्मबन्ध से मुक्ति की व्यवस्था घटित नहीं हो सकती। यही कारण है कि शास्त्रकार ने पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय से लेकर देवयोनि तक के समस्त संसारी—संसारसमापन्न जीवों का पृथक्-पृथक् कथन किया है। इस पर से यह भी ध्वनित किया है कि चार गितयों और ८४ लक्ष योनियों या २४ दण्डकों में जब तक परिभ्रमण एवं आवागमन है, तब तक संसारसमापन्नता मिट नहीं सकती। किसी देवी-देव या ईश्वर अथवा अवतार (भगवान्) के द्वारा किसी की संसार-समापन्नता मिटाई नहीं जा सकती, वह तो स्वयं की रत्नत्रय-साधना से ही मिटाई जा सकती है। मनुष्य के ज्ञानार्य दर्शनार्य एवं चारित्रार्य-रूप भेद बताकर यह स्पष्ट कर दिया है कि उपशान्तकषायत्व, क्षीणकषायत्व, सूक्ष्मसम्परायत्व, वीतरागत्व तथा केविलत्व आदि से युक्त आर्यता प्राप्त करना मनुष्य के अपने अधिकार में है, स्वकीय-पुरुषार्थ के द्वारा ही वह उच्चकोटि का आर्यत्व और सिद्धत्व प्राप्त कर सकता है।

☐ पंचेन्द्रिय जीवों में नारकों और देवों की प्रज्ञापना से अन्यत्र विस्तृतरूप में ही है, किन्तु मनुष्यों की प्रज्ञापना अन्यत्र इतनी विस्तृत रूप से नहीं है, अतएव प्रथम पद में मनुष्यों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है, जो जैनदर्शन के सिद्धान्त को स्पष्ट करने में उपयोगी है।

पण्णवणासुत्तं

प्रज्ञापना-सूत्र

मंगलाचरण और शास्त्र सम्बन्धी चार अनुबन्ध

[नमो अरिहंताणं। नमो सिद्धाणं। नमो आयरियाणं। नमो उवज्झायाणं। नमो लोए सव्वसाहुणं॥]

१. ववगयजर-मरणभए सिद्धे अभिवंदिऊण तिविहेणं। वंदामि जिणवरिंदं तेलोक्कगुरुं महावीरं॥१॥ सुयरयणनिहाणं जिणवरेणं भिवयजणिणव्वुइकरेणं। उवदंसिया भयवया पण्णवणा सव्वभावाणं॥२॥ अञ्झयणिमणं चित्तं सुयरयणं दिट्ठिवायणीसंदं। जह विण्णयं भगवया अहमवि तह वण्णाइस्सामि॥३॥

अरिहन्तों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोक में (विद्यमान) सर्व-साधुओं को नमस्कार हो।

[१. गाथाओं का अर्थ—] जरा, मृत्यु, और भय से रहित सिद्धों को त्रिविध (मन, वचन और काय से) अभिवन्दन करके त्रैलोक्यगुरु जिनवरेन्द्र श्री भगवान् महावीर को वन्दन करता हूँ॥ १॥

भव्यजनों को निवृत्ति (निर्वाण या उसके कारणरूप रत्नत्रय का उपदेश) करने वाले जिनेश्वर भगवान् ने श्रुतरत्निधिरूप सर्वभावों की प्रज्ञापना का उपदेश दिया है॥ २॥

दृष्टिवाद के नि:स्यन्द-(निष्कर्ष = निचोड़) रूप विचित्र श्रुतरत्नरूप इस प्रज्ञापना-अध्ययन का श्रीतीर्थकर भगवान् ने जैसा वर्णन किया है, मैं (श्यामार्य) भी उसी प्रकार वर्णन करूंगा॥ ३॥

विवेचन—मंगलाचरण और शास्त्रसम्बन्धी चार अनुबन्ध—प्रस्तुत सूत्र में तीन गाथाओं द्वारा प्रज्ञापनासूत्र के रचयिता श्री श्यामार्यवाचक शास्त्र के प्रारम्भ में विघ्नशान्ति-हेतु मंगलाचरण तथा प्रस्तुत शास्त्र से सम्बन्धित अनुबन्धचतुष्टय प्रस्तुत करते हैं।

मंगलाचरण का औचित्य — यह उपांग समस्त जीव, अजीव आदि पदार्थों की शिक्षा (ज्ञान) देने वाला होने से शास्त्र है और शास्त्र के प्रारम्भ में विचारक को शास्त्र में प्रवृत्त करने तथा विघ्नोपशान्ति के हेतु तीन प्रयोजनों की दृष्टि से तीन मंगलाचरण करने चाहिए। शिष्टजनों का यह आचार है कि निर्विघ्नता से शास्त्र के पारगमन के लिए आदिमंगल, ग्रहण किये हुए शास्त्रीय पदार्थ (प्ररूपण) को

स्थिर करने के लिये मध्यमंगल तथा शिष्यपरम्परा से शास्त्र की विचारधारा को सतत चालू रखने के लिए अन्तिम मंगलाचार करना चाहिए। तदनुसार प्रस्तुत में 'ववगयजरामरणभए.' आदि तीन गाथाओं द्वारा शास्त्रकार ने आदिमंगल, 'कइविहे णं उवओगे पन्नत्ते ?' इत्यादि ज्ञानात्मक सूत्रपाठ मध्यमंगल एवं.......'सुही सुहं पत्ता' इत्यादि सिद्धाधिकारात्मक सूत्र-पाठ द्वारा अन्तमंगल प्रस्तुत किया है।

अनुबन्ध चतुष्टय—शास्त्र के प्रारम्भ में समस्त भव्यों एवं बुद्धिमानों को शास्त्र में प्रवृत्त करने के उद्देश्य से चार अनुबन्ध अवश्य बताने चाहिए। वे चार अनुबन्ध इस प्रकार हैं—(१) विषय, (२) अधिकारी, (३) सम्बन्ध और (४) प्रयोजन। मंगलाचरणीय गाथात्रय से ही प्रस्तुत शास्त्र के पूर्वोक्त चारों अनुबन्ध ध्वनित होते हैं।

अभिधेय विषय—प्रस्तुत शास्त्र का अभिधेय विषय—श्रुतिनिधिरूप सर्वभावों की प्रज्ञापना-प्ररूपणा करना है। 'प्रज्ञापना' शब्द का अर्थ ही स्पष्ट रूप से यह प्रकट कर रहा है कि 'जिसके द्वारा जीव, अजीव आदि तत्त्व प्रकर्ष रूप से ज्ञापित किये जाएँ उसे प्रज्ञापना—कहते हैं। यहाँ 'प्रकर्षरूप से' का तात्पर्य है—समस्त कुतीर्थिकों के प्रवर्तक जिसकी प्ररूपणा करने में असमर्थ हैं, ऐसे वस्तुस्वरूप का यथावस्थितरूप से निरूपण करना। ज्ञापित करने का अर्थ है—शिष्य की बुद्धि में आरोपित कर देना—जमा. देना। वि

अधिकारी—इस शास्त्र के पठन-पाठन का अधिकारी वह है, जो सर्वज्ञवचनों पर श्रद्धा रखता हो, शास्त्रज्ञान में जिसकी रुचि हो, जिसे शास्त्रज्ञान एवं तत्त्वज्ञान के द्वारा अपूर्व आनन्द की अनुभूति हो। ऐसा अधिकारी महाव्रती भी हो सकता है, अणुव्रती भी और सम्यग्दृष्टिसम्पन्न भी। जैसे कि कहा गया है—जो मध्यस्थ हो, बुद्धिमान हो और तत्त्वज्ञानार्थी हो, वह श्रोता (वक्ता) पात्र है।

सम्बन्ध सम्बन्ध प्रस्तुत शास्त्र में दो प्रकार का है — (१) उपायोपेयभाव-सम्बन्ध और (२) गुरुपर्वक्रमरूप-सम्बन्ध। पहला सम्बन्ध तर्क का अनुसरण करने वालों की अपेक्षा से है। वचनरूप से प्राप्त प्रकरण उपाय है और उसका परिज्ञान उपेय है। गुरुपर्वक्रमरूप-सम्बन्ध केवल श्रद्धानुसारी जनों

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलयगिरिवृत्ति, पत्रांक २

⁽ख) प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं, फलादित्रितयं स्फुटम्। मंगलं चैव शास्त्रादौ, वाच्यिमष्टार्थसिद्धये॥ १॥

⁽ग) तं मंगलमाईए मज्झे पज्जंतए य सत्थस्स। पढमं सत्थत्थाविग्घपारगमणाय निद्दिट्ठं॥ १॥ तस्सेव य थेज्जत्थं मज्झिमयं अंतिमंपि तस्सेव। अव्वोच्छित्तिनिमित्तं सिस्सपसिस्साइवंसस्स॥ २॥

२. (क) 'प्रवृत्तिप्रयोजकज्ञानविषयत्वमनुबन्धत्वम्, विषयश्चाधिकारी च सम्बन्धश्च प्रयोजनमिति अनुबन्धचतुष्टयम्।'

⁽ख) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक. १-२

३. प्रकर्षेण-नि:शेषकुतीर्थितीर्थकरासाध्येन यथावस्थितस्वरूपनिरूपणलक्षणेनज्ञाप्यन्ते—शिष्यबुद्धावारोप्यन्ते जीवाजीवादयः पदार्था अनयेति प्रज्ञापना। —प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १

<u>४.</u> मध्यस्थो बद्धिमानर्थी श्रोता पात्रमिति स्मृत:।—प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक ७

की अपेक्षा से है, जिसे शास्त्रकार स्वयं आगे बताएँगे।

प्रयोजन—प्रस्तुत शास्त्र का प्रयोजन दो प्रकार का है—पर (अनन्तर) प्रयोजन और अपर (परम्पर) प्रयोजन। ये दोनों प्रयोजन भी दो-दो प्रकार के हैं—(१) शास्त्रकर्ता का पर-अपर-प्रयोजन और (२) श्रोता का पर-अपर-प्रयोजन।

शास्त्रकर्ता का प्रयोजन-द्रव्यास्तिकनय की दृष्टि से विचार करने पर 'आगम' नित्य होने से उसका कोई कर्ता है ही नहीं। जैसा कि कहा गया है - 'यह द्वाद्रशांगी कभी नहीं थी, ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा भी नहीं है और कभी नहीं होगी, ऐसा भी नहीं है। यह धुव, नित्य और शाश्वत है' इत्यादि। पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से विचार करने पर आगम अनित्य है, अतएव उसका कर्ता भी अवश्य होता है। वस्तुत: तात्त्विक दृष्टि से विचार करने पर आगम सूत्र, अर्थ और तदुभयरूप है। अत: अर्थ की अपेक्षा से नित्य और सूत्र की अपेक्षा से अनित्य होने से शास्त्र का कर्ता कथंचित् सिद्ध होता है। शास्त्रकर्ता का इस शास्त्रप्ररूपणा से अनन्तरप्रयोजन है—प्राणियों पर अनुग्रह करना और परम्परप्रयोजन है—मोक्षप्राप्ति। कहा भी है—'जो व्यक्ति सर्वज्ञोक्त उपदेश द्वारा दुःखसंतप्त जीवों पर अनुग्रह करता है, वह शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है।' कोई कह सकता है कि अर्थरूप आगम के प्रतिपादक अर्हत् (तीर्थंकर) भगवान् तो कृतकृत्य हो चुके हैं, उन्हें शास्त्र-प्रतिपादन से क्या प्रयोजन है? बिना प्रयोजन के अर्थरूप आगम का प्रतिपादन करना वृथा है। इस शंका का समाधान यह है कि ऐसी बात नहीं है। तीर्थंकर भगवान् तीर्थंकरनामकर्म के विपाकोदयवश अर्थागम का प्रतिपादन करते हैं। आवश्यकिनर्युक्ति में इस विषय में एक प्रश्नोत्तरी द्वारा प्रकाश डाला गया है—(प्र.) 'वह (तीर्थंकर नामकर्म) किस प्रकार से वेदन किया (भोगा) जाता है?' (उ.) 'अग्लान भाव से धर्मदेशना देने से (उसका वेदन होता है)।' श्रोताओं का प्रयोजन—श्रोताओं का साक्षात् (अनन्तरप्रयोजन है—विविक्षत अध्ययन के अर्थ का परिज्ञान होना। अर्थात् आगम श्रवण करते ही उसके अभीष्ट अर्थ का ज्ञान श्रोता को हो जाता है। परम्पराप्रयोजन है—मोक्षप्राप्ति। जब श्रोता विवक्षित अध्ययन का अर्थ समीचीनरूप से जान लेता है, हृदयंगम कर लेता है, तो संसार से उसे विरक्ति हो जाती है। विरक्त होकर भवभ्रमण से छुटकारा पाने हेतु वह आगमानुसार संयम मार्ग में सम्यक् प्रवृत्ति करता है। संयम में प्रकर्षरूप से प्रवृत्ति और संसार से विरक्ति के कारण श्रोता के समस्त कर्मों का क्षय हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। कहा भी है---वस्तुस्वरूप के यथार्थ परिज्ञान से संसार से विरक्त जन (मोक्षानुसारी) क्रिया में संलग्न होकर निर्विघ्नता से परमगति (मोक्ष) प्राप्त कर लेते हैं। रे

१. नन्दीसूत्र, श्रुतज्ञान-प्रकरण

२. 'तं च कहं वेइज्जइ ? अगिलाए धम्मदेसणाए उ'। आव. निर्युक्ति

सम्यग्भावपरिज्ञानाद् विरक्ता भवतो जनाः।
 क्रियासक्ता ह्यबिघ्नेन गच्छन्ति परमां गतिम्॥

कतिपय विशिष्ट शब्दों की व्याख्या—'ववगयजरमरणभए'—जो जरा, मरण और भय से सदा के लिए मक्त हो चुके हैं। यह सिद्धों का विशेषण है। जरा का अर्थ है—वय की हानिरूप वृद्धावस्था, मरण का अर्थ प्राणत्याग, और भय का अर्थ है—इहलोकभय, परलोकभय आदि सात प्रकार की भीति। सिद्ध भगवान् इससे सर्वथा रहित हो चुके हैं। सिद्धे—जिन्होंने सित यानी बद्ध अष्टविध-कर्मेन्धन को जाज्वल्यमान शुक्लध्यानाग्नि से ध्मात यानी दग्ध (भस्म) कर डाला है, वे सिद्ध हैं। अथवा जो सिद्ध---निष्ठितार्थ (कृतकृत्य) हो चुके हैं, वे सिद्ध हैं। या 'षिध्' धातु शास्त्र और मांगल्य अर्थ में होने से इसके दो अर्थ और निकलते हैं — (१) जो शास्ता हो चुके हैं, अथवा (२) मंगलरूपता का अनुभव कर चुके हैं वे सिद्ध हैं। शिजणवरिंदं = जो रागादि शत्रुओं को जीतते हैं, वे जिन हैं। वे चार प्रकार के हैं--श्रुतजिन, अवधिजिन, मन:पर्यायजिन और केवलिजिन। यहाँ केवलिजिन को सूचित करने के लिए 'वर' शब्द प्रयुक्त किया गया है। जिनों में जो वर यानी श्रेष्ठ हो तथा अतीत-अनागत-वर्तमानकाल के समस्त पदार्थों के स्वरूप को जानने वाले केवलज्ञान से युक्त हो. वह जिनवर कहलाता है। परन्तु ऐसा जिनवर तो सामान्यकेवली भी होता है, अत: तीर्थकरत्वसूचक पद बतलाने के लिए जिनवर के साथ 'इन्द्र' विशेषण लगाया है, जिसका अर्थ होता है—'जिनवरों के इन्द्र'। यहाँ ऋषभदेव आदि अन्य तीर्थंकरों को वन्दन न करके तीर्थंकर महावीर को ही वन्दन किया गया है, इसका कारण है — महावीर वर्तमान जिनशासन (धर्मतीर्थ) के अधिपति होने से आसन उपकारी हैं। महावीरं-जो महान् वीर हो, वह महावीर है। आध्यात्मिक क्षेत्र में वीर का अर्थ है-जो कषायादि शत्रुओं के प्रति वीरत्व-पराक्रम दिखलाता है। महावीर का 'महावीर' यह नाम परीषहों और उपसर्गों को जीतने में महावीर द्वारा प्रकट की गई असाधारण वीरता की अपेक्षा से सुरों और असुरों द्वारा दिया गया है। रे तेलोक्कगुरुं — भगवान् महावीर का यह विशेषण है— तीनों लोकों के गरु। गुरु उसे कहते हैं, जो यथार्थरूप से प्रवचन के अर्थ का प्रतिपादन करता है। भगवान महावीर तीनों लोकों के गुरु इसलिए थे कि उन्होंने अधोलोकनिवासी असुरकुमार आदि भवनपति देवों को, मध्यलोकवासी मनुष्यों, पशुओं, विद्याधरों, वाणव्यन्तर एवं ज्योतिष्कदेवों को, तथा ऊर्ध्वलोकवासी सौधर्म आदि वैमानिक देवों, इन्दों आदि को धर्मीपदेश दिया।

भगवान् महावीर के लिए प्रयुक्त 'जिनवरेन्द्र' 'महावीर' और 'त्रैलोक्यगुरु' ये तीनों शब्द क्रमशः उनके ज्ञानातिशय, पूजातिशय, अपायापगमातिशय, एवं वचनातिशय को प्रकट करते हैं।

१. सितं—बद्धमष्टप्रकारं कर्मेन्धनं, ध्यातं—जाज्वल्यमानशुक्लध्यानानलेन यैस्ते सिद्धाः। यदि वा 'षिध संराद्धौ'— सिध्यन्तिस्म निष्ठितार्था भवन्तिस्म; यद्वा 'षिधु शास्त्रे मांगल्ये च' —सेधन्तेस्म—शासितारोऽभवन् मांगल्यरूपतां वाऽनुभवन्तिस्मेति सिद्धाः।

[&]quot;ध्मातं सितं येन पुराणकर्म, यो वा गतो निर्वृतिसौधमूर्ध्नि। ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो, यः सोऽस्तु सिद्धः कृतमंगलो मे॥ —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक-२-३ २. अयले भयभेरवाणं खंतिखमे परीसहोवसग्गाणं। देवेहिं कए महावीर' इति।

जिणवरेणं भगवया—सामान्य केवली भी जिन कहलाते हैं किन्तु इसके 'वर' शब्द जोड़ने से सामान्य केवलियों से भी वर-उत्तम तीर्थंकर सूचित हो सकते हैं, किन्तु छद्मस्थ-क्षीणमोह-जिन की अपेक्षा से सामान्यकेवली भी 'जिनवर' कहला सकते हैं, अत: तीर्थंकर अर्थ द्योतित करने हेतु 'भगवया' विशेषण लगाया गया। भगवान् महावीर में समग्र ऐश्वर्य (अष्ट महाप्रातिहार्य, त्रैलोक्याधिपतित्व आदि), धर्म, यश, श्री, वैराग्य एवं प्रयत्न ये ६ भगवत्तत्व थे, इसिलिए यहाँ 'तीर्थंकर भगवान् महावीर ने' यही अर्थ स्पष्टत: सूचित होता है।

भवियजणिणव्युइकरेणं—इसके दो अर्थ फलित होते हैं—तथाविध अनादिपारिणामिक-भाव के कारण जो सिद्धिगमनयोग्य हो, वह भव्य कहलाता है। ऐसे भव्यजनों को जो निर्वृति—निर्वाण, शान्ति या निर्वाण के कारणभूत सम्यग्दर्शनादि प्रदान करने वाले हैं। निर्वाण का एक अर्थ है—समस्त कर्ममल के दूर होने से स्वस्वरूप के लाभ से परम स्वास्थ्य। प्रश्न यह है कि ऐसे निर्वाण के हेतुभूत सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय भी केवल भव्यजनों को ही भगवान् देते हैं, यह तो एक प्रकार का पक्षपात हुआ भव्यों के प्रति। इसका समाधान यह है कि सूर्य सभी को समानभाव से प्रकाश देता है, किन्तु उस प्रकार के योग्य चक्षुष्मान् प्राणी ही उससे लाभ उठा पाते हैं, तामस खगपक्षी (उल्लू आदि) को उसका प्रकाश उपकारक नहीं होता, वैसे ही भगवान् सभी प्राणियों को समानभाव से उपदेश देते हैं, किन्तु अभव्य जीवों का स्वभाव ही ऐसा है कि वे भगवान् के उपदेश से लाभ नहीं उठा पाते। उवदंसिया—जैसे श्रोताओं को झटपट यथार्थवस्तुतत्वबोध समीप से होता है, वैसे ही भगवान् ने स्पष्ट प्रवचनों से श्रोताओं के लिए यह (प्रज्ञापना) श्रवणगोचर कर दी, उपदिष्ट की। पण्णवणा—प्रज्ञापना—जीवादि भाव जिस शब्दसंहित द्वारा प्रज्ञापित-प्ररूपित किये जाते हैं। रे

प्रज्ञापनासूत्र के छत्तीस पदों के नाम

२. पण्णवणा १ ठाणाइं २ बहुवत्तव्वं ३ ठिई ४ विसेसा य ५। वक्कंती ६ उस्सासो ७ सण्णा ८ जोणी य ९ चिरमाइं १० ॥ ४॥ भासा ११ सरीर १२ परिणाम १३ कसाए १४ इंदिए १५ पओगे य १६। लेसा १७ कायिठई या १८ सम्मत्ते १९ अंतिकिरिया य २० ॥ ५॥ ओगाहणसंठाणे २१ किरिया २२ कम्मे त्ति यावरे २३। कम्मस्स बंधए २४ कम्मवेदए २५ वेदस्स बंधए २६ वेयवेयए २७ ॥ ६॥

१. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
 वैराग्यस्याथ प्रयत्नस्य षण्णां भग इतीङ्गना॥—प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक-३-४

२. प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्रांक २

आहारे २८ उवओगे २९ पासणया ३० सण्णि ३१ संजमे ३२ चेव। ओही ३३ पवियारण ३४ वेयणा य ३५ तत्तो समुग्घाए ३६॥ ७॥

- २. [अर्थाधिकार-संग्रहणी गाथाओं का अर्थ—] (प्रज्ञापनासूत्र में छत्तीस पद हैं। वे क्रमश: इस प्रकार हैं—) १. प्रज्ञापना, २. स्थान, ३. बहुवक्तव्य, ४. स्थिति, ५. विशेष, ६. व्युत्क्रान्ति (उपपात-उद्वर्त्तनादि), ७. उच्छ्वास, ८. संज्ञा, ९ योनि, १०. चरम॥४॥
- ११. भाषा, १२. शरीर, १३. परिणाम, १४. कषाय, १५. इन्द्रिय, १६. प्रयोग, १७. लेश्या १८. कायस्थिति, १९. सम्यक्त्व और २०. अन्तक्रिया॥ ५॥
- २१. अवगाहना-संस्थान, २२. क्रिया, २३. कर्म और इसके पश्चात्, २४.कर्म का बन्धक, २५. कर्म का वेदक, २६. वेद का बन्धक, २७. वेद-वेदक॥ ६॥
- २८. आहार, २९. उपयोग, ३०. पश्यत्ता, ३१. संज्ञी और ३२. संयम, ३३. अवधि, ३४. प्रविचार्णा, ३५. तथा वेदना, एवं इसके अनन्तर ३६. समुद्घात॥७॥

(इन सबके अन्त में 'पद' शब्द जोड़ देना चाहिए।)

पढमं पण्णवणापदं

प्रथम प्रज्ञापनापद

प्रथम : स्वरूप और प्रकार

३. से किं तं पण्णवणा ?

पण्णवणा दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—जीवपण्णवणा य १ अजीवपण्णवणा य २।

[३-प्र.] वह (पूर्वोक्त) प्रज्ञापना (का अर्थ) क्या है ?

[३-उ.] प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—जीवप्रज्ञापना और अजीवप्रज्ञापना। अजीवप्रज्ञापना: स्वरूप और प्रकार

े ४. से किं तं अजीवपण्णवणा ?

अजीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—रूविअजीवपण्णवणा य १ अरूविअजीव-पण्णवणा य २।

[४-प्र.] वह अजीवप्रज्ञापना क्या है ?

[४-उ.] अजीवप्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—१. रूपी-अजीवप्रज्ञापना और २. अरूपी-अजीवप्रज्ञापना।

अरूपी-अजीवप्रजापना

५. से किं तं अरूविअजीवपण्णवणा ?

अरूविअजीवपण्णवणा दसविहा पन्नता। तं जहा—धम्मित्थकाए १ धम्मित्थिकायस्स देसे २ धम्मित्थिकायस्स पदेसा ३, अधम्मित्थिकाए ४ अधम्मित्थिकायस्स देसे ५ अधम्मित्थिकायस्स पदेसा ६, आगासित्थिकाए ७ आगासित्थिकायस्स देसे ८ आगासित्थिकायस्स पदेसा ९, अद्धासमए १०। से तं अरूविअजीवपण्णवणा।

[५-प्र.] वह अरूपी-अजीवप्रज्ञापना क्या है ?

[५-उ.] अरूपी-अजीवप्रज्ञापना दस प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—१. धर्मास्तिकाय, २. धर्मास्तिकाय का देश, ३. धर्मास्तिकाय के प्रदेश, ४. अधर्मास्तिकाय, ५. अधर्मास्तिकाय का देश, ६. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, ७. आकाशास्तिकाय, ८. आकाशस्तिकाय का देश, ९ आकाशास्तिकाय के प्रदेश और १०. अद्धाकाल। यह अरूपी-अजीवप्रज्ञापना है।

रूपी-अजीवप्रजापना

६. से किं तं रूविअजीवपण्णवणा ?

प्रथम प्रज्ञापनापद]

रूविअजीवपण्णवणा चउव्विहा पण्णत्ता। तं तहा — खंधा ? खंधदेसा २ खंधप्पएसा ३ परमाणुपोग्गला ४ ।

- [६-प्र.] वह रूपी-अजीवप्रज्ञापना क्या है ?
- [६-उ.] रूपी-अजीवप्रज्ञापना चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार —१. स्कन्ध, २. स्कन्धदेश, ३. स्कन्धप्रदेश और ४. परमाणुपुदुगल।
- ७. ते समासतो पंचिवहा पण्णत्ता। तं जहा—वण्णपरिणया १ गंधपरिणया २ रसपरिणया ३ फासपरिणया ४ संठाणपरिणया ५ ।
- ७. वे (चारों) संक्षेप से पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा—(१) वर्णपरिणत, (२) गन्धपरिणत (३) रसपरिणत, (४) स्पर्शपरिणत और (५) संस्थानपरिणत।
- ८. [१] जे वण्णपरिणया ते पंचिवहा पण्णत्ता। तं जहा—कालवण्णपरिणया १ नीलवण्णपरिणया २ लोहियवण्णपरिणया ३ हालिद्वण्णपरिणया ४ सुक्किलवण्णपरिणया ५।
- [८-१] जो वर्णपरिणत होते हैं, वे पांच प्रकार के कहे हैं,। यथा—(१) काले वर्ण के रूप में परिणत, (२) नीले वर्ण के रूप में परिणत, (३) लाल वर्ण के रूप में परिणत, (४) पीले (हारिद्र) वर्ण के रूप में परिणत, और (५) शुक्ल (श्वेत) वर्ण के रूप में परिणत।
- [२] जे गंधपरिणता ते दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—सुब्भिगंधपरिणता य १ दुब्भिगंधपरिणता य २।
- [८-२] जो गन्धपरिणत होते हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं—(१) सुगन्ध के रूप में परिणत और (२) दुर्गन्ध के रूप में परिणत ।
- [३] जे रसपरिणता से पंचिवहा पन्नता। तं जहा—ितत्तरसपरिणता १ कडुयरसपरिणता २ कसायरसपरिणता ३ अंबिलरसपरिणता ४ महुररसपरिणता ५ ।
- [८-२] जो रसपरिणत होते हैं, वे पांच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार —(१) तिक्त (तीखे) रस के रूप में परिणत, (२) कटु (कड़वे) रस के रूप में परिणत, (३) कषाय—(कसैले) रस के रूप में परिणत, (४) अम्ल (खट्टे) रस के रूप में परिणत और (५) मधुर (मीठे) रस के रूप में परिणत।
- [४] जे फासपरिणता ते अट्टविहा पण्णत्ता। तं जहा—कक्खडफासपरिणता १ मउयफासपरिणता २ गरुयफासपरिणता ३ लहुयफासपरिणता ४ सीयफासपरिणता ५ उसिणफासपरिणता ६ निद्धफासपरिणता ७ लुक्खफासपरिणता ८ ।
- [८-४] जो स्पर्शपरिणत होते हैं, वे आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा—(१) कर्कश (कठोर) स्पर्श के रूप में परिणत, (२) मृदु (कोमल) स्पर्श के रूप में परिणत, (३) गुरु (भारी) स्पर्श के रूप में परिणत, (४) लघु (हल्के) स्पर्श के रूप में परिणत, (५) शीत (ठंडे) स्पर्श के रूप में परिणत,

- (६) उष्ण (गर्म) स्पर्श के रूप में परिणत, (७) स्निग्ध (चिकने) स्पर्श के रूप में परिणत और (८) रूक्ष (रूखे) स्पर्श के रूप में परिणत।
- [५] जे संठाणपरिणता ते पंचिवहा पण्णत्ता। तं जहा—परिमंडलसंठाणपरिणता १ वट्टसंठाणपरिणता २ तंससंठाणपरिणता ३ चउरंससंठाणपरिणता ४ आयतसंठाणपरिणता ५। २५।
- [८-५] जो संस्थानपरिणत होते हैं, वे पांच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) परिमण्डल-संस्थान के रूप में परिणत, (२) वृत्त (गोल) चूड़ी के संस्थान के रूप में परिणत, (३) त्र्यस्र (तिकोन) संस्थान के रूप में परिणत, (४) चतुरस्र (चोकोन) संस्थान के रूप में परिणत और (५) आयत (लम्बे) संस्थान (आकार) के रूप में परिणत॥ २५॥
- १. [१] जे वण्णओ कालवण्णपरिणता से गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०।
- [९-१] जो वर्ण से काले वर्ण के रूप में परिणत हैं, उनमें से कोई गन्ध की अपेक्षा से सुरिभ-गन्ध-परिणत भी होते हैं, दुरिभगन्ध-परिणत भी। रस से कोई तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कोई कटुरस-परिणत भी, इसी प्रकार कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। उनमें से कोई स्पर्श से कर्कशस्पर्शपरिणत भी होते हैं, कोई मृदुस्पर्श-परिणत भी एवं गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्ध स्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। वे संस्थान से (आकार से) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्र (त्रिकोण) संस्थान-परिणत भी, चतुरस्र (चतुष्कोण) संस्थान-परिणत भी होते हैं। ३०॥
- [२] जे वण्णओ नीलवण्णपरिणता ते गंधओ सुन्भिगंधपरिणता वि दुन्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कटुयरसपरिणता•िव कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररस-परिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफास-परिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०।
- [९-२] जो वर्ण से नीले वर्ण में परिणत होते हैं, उनमें से कोई गन्ध की अपेक्षा सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी; रस से तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-

परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। (वे) स्पर्श से कर्कश- स्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीत-स्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्त्रिग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। (वे) संस्थान से परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्त (त्रिकोण) संस्थान -परिणत भी, चतुरस्त (चतुष्कोण) संस्थान-परिणत भी और आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं॥ २०॥

[३] जे वण्णओ लोहियवण्णपरिणता ते गंधओ सुन्भिगंधपरिणता वि दुन्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठापरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०।

[९-३] जो वर्ण से रक्त वर्ण-परिणत हैं, उनमें से कोई गन्ध से सुगन्धपरिणत होते हैं, कोई दुर्गन्धपरिणत। (वे) रस से तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श से वे कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से-परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं और उपलसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी होते हैं और आयतसंस्थान-परिणत भी। २०॥

[४] जे वण्णओ हालिद्दवण्णपरिणता ते गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररस-परिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफास-परिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठापरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाण-परिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०।

[९-४] जो वर्ण से हारिद्र (पीत) वर्ण-परिणत होते हैं, उनमें से कोई गन्ध से सुगन्ध-परिणत होते हैं, कोई दुर्गन्ध-परिणत भी हो सकते हैं। रस से कोई तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कोई कटुरस-परिणत भी, कोई कषायरस-परिणत भी, कोई अम्लरस-परिणत और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श से उनमें से कोई कर्कशस्पर्श-परिणत होते हैं, कोई मृदुस्पर्श-परिणत एवं गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श परिणत भी, उष्णस्पर्शपरिणत भी, स्निग्धस्पर्श परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से कोई परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी और आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं॥ २०॥

- [५] जे वण्णओ सुक्किलवण्णपरिणता ते गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररस-परिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०। १००। १।
- [९-५] जो वर्ण से शुक्लवर्ण-परिणत होते हैं, उनमें से कोई गन्ध की अपेक्षा से सुगन्धपरिणत होते हैं, कोई दुर्गन्धपरिणत भी । इसी प्रकार रस से- तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श से-(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, कोई मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से- परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी और आयतसंस्थान-परिणत भी ॥ २०-१००-१॥
- १०.[१] जे गंधओ सुब्भगंधपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि णीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्वण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठापरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २३।
- [१०-१] जो गन्ध से सुगन्ध-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नील वर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। वे रस से तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, कोई मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। (वे) संस्थान से- परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं और आयतसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी होते हैं और आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं ॥ २३॥
- [२] जे गंधओ दुब्भिगंधपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्वण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ

कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २३। ४६। २॥

[१०-२] जो गन्ध से—दुर्गन्थपरिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। रस से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, सिनग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से (वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत, और आयतसंस्थान-परिणत भी। २३/४६। २॥

११ [१] जे रसओ तित्तरसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि णीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि त्रिक्सिगंधपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०।

[११-१] जो रस से- तिक्तरस-परिणत होते हैं, वे वर्ण से— कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी होते हैं, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध से (वे) सुगन्ध-परिणत और दुर्गन्धपरिणत भी होते हैं। स्पर्श से- (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श- परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श परिणत भी होते हैं, और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से वे-परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी और आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं॥ २०॥

[२] जे रसओ कडुयरसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि

वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाण-परिणता वि २०।

[११-२] जो रस से कटुरस परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नील-वर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध से (वे)सुगन्ध परिणत होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। स्पर्श से कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। (वे) संस्थान से परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्रयस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत, भी एवं आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं॥ २०॥

[३] जे रसओ कसायरसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि ति सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वृहसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०।

[११-३] जो रस से कषायरस-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध से (वे)सुगन्ध-परिणत होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। स्पर्श से- कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी एवं आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं॥ २०॥

[४] जे रसओ अंबिलरसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणत वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चडरंससंठाणपरिणता वि आववसंठाणपरिणता वि २०।

[११-४] जो रस से अम्लरस-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, हारिद्र (पीत) वर्ण-परिणत भी तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। प्रथम प्रज्ञापनापद]

वे गन्ध से सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। स्पर्श से कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्शपरिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से (वे) परिमण्डलसंस्थान-संस्थित भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-संस्थित भी, त्र्यस्रसंस्थान-संस्थित भी, चतुरस्रसंस्थान-संस्थित भी एवं आयतसंस्थान-संस्थित भी होते हैं॥ २०॥

[५] जे रसओ महुररसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्वण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासओ कव्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि तिद्धफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वृह्संठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि, चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०। १००। ३।

[११-५] जो रस से मधुर-रसपरिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नील-वर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी होते हैं, पीतवर्ण-परिणत भी तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध से-(वे) सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। स्पर्श से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं; मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी लघुस्पर्श-परिणत भी हैं, शीतस्पर्श परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी तथैव, स्निग्धस्पर्शपरिणत भी रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। संस्थान से-(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्नसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्नसंस्थान-परिणत भी एवं आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं। २०।१००।३।

- १२. [१] जे फासतो कक्खडफासपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्वण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुन्भिगंधपरिणता वि दुन्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि, चडरंससंठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २३।
- [१२-१] जो स्पर्श से कर्कशस्पर्श-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी, तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। (वे) गन्ध से सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। रस से (वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श (वे) गुरुस्पर्श-परिणत भी होते हैं लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श परिणत भी और, उष्णस्पर्श-

परिणत भी एवं स्निग्धस्पर्श-परिणत भी तथा रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। सस्थान से (वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी तथा आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं॥ २३॥

[२] जे फासतो मउयफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्वण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससँठाणपरिणता वि, चउरंससंठाणपरिणता वि अययसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-२] जो स्पर्श से मृदु (कोमल)-स्पर्श-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी, तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। (वे) गन्ध से सुगन्धपरिणत भी और दुर्गन्धपरिणत भी। रस से (वे) तिक्तरस परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी काषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श से (वे) गुरुस्पर्श-परिणत भी होते हैं लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। संस्थान से परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं। वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत, भी होते हैं तथा आयतसंस्थान-परिणत भी॥ २३॥

[३] जे फासतो गरुयफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुक्किगंधपरिणता वि दुक्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठापरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि, चउरंससंठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-३] जो स्पर्श से गुरुस्पर्श-परिणत होते हैं वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध से सुगन्धपरिणत भी और दुर्गन्धपरिणत भी। रस से (वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस परिणत भी होते हैं। स्पर्श से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं। मृदुस्पर्श-परिणत भी शीतस्पर्श-परिणत भी उष्णस्पर्श परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान की अपेक्षा से (वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत

प्रथम प्रज्ञापनापद्] २५

भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत तथा, चतुरस्रसंस्थान-परिणत, भी एवं आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं॥ २३॥

[४] जे फासतो लहुयफासपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुन्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि, चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-४] जो स्पर्श की अपेक्षा से लघु (हलके) स्पर्श से परिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण परिणत भी एवं शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से (वे) सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से (वे) तिक्तरस परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी कषायरस, परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं। होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान की अपेक्षा से (वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्रायससंस्थान-परिणत भी होते हैं एवं आयतसंस्थान-परिणत भी। २३॥

[५] जे फासतो सीयफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि, चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-५] जो स्पर्श की अपेक्षा से शीतस्पर्शपरिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी, शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से (वे) सुगन्ध-परिणत भी होते हैं, और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से (वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरस-परिणत भी तथा मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी गुरुस्पर्श-परिणत भी लघुस्पर्श-परिणत भी तथा, स्निग्धस्पर्श परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान की अपेक्षा से (वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी होते हैं, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी तथा आयतसंस्थान-परिणंत भी होते हैं। २३॥

[६] जे फासतो उसिणफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुन्धिगंधपरिणता वि दुन्धिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणतो परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-६] जो स्पर्श से उष्णस्पर्श-परिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी और पीतवर्ण-परिणत भी, होते हैं तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी। गन्ध की अपेक्षा से (वे) सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से (वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी गुरुस्पर्श-परिणत भी और लघुस्पर्श-परिणत भी तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी। संस्थान की अपेक्षा स (वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी होते हैं और आयतसंस्थान-परिणत भी॥ २३॥

[७] जे फासतो णिद्धफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसावरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि, लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि, संठाणातो परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि अथयसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-७] जो स्पर्श से स्निग्धस्पर्श-परिणत होते हैं, वर्ण की अपेक्षा से वे कृष्णवर्ण-परिणत भी, होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से (वे) सुगन्ध-परिणत भी होते हैं, और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से (वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी अम्लरस-परिणत भी

प्रथम प्रज्ञापनापद] २७

होते हैं और मधुररस-परिणत भी । स्पर्श की अपेक्षा से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श- परिणत भी और उष्णस्पर्श-परिणत भी होते हैं। संस्थान की अपेक्षा से (वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्रास्रसंस्थान-परिणत भी और आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं॥ २३॥

- [८] जे फासतो लुक्खफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भगंधपरिणता वि दुब्भगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि, लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि, संठाणातो परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि अयतसंठाणपरिणता वि २३। १८४। ८॥
- [१२-८] जो स्पर्श से रूक्षस्पर्श-परिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से कृष्णवर्ण-परिणत भी, होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी और पीतवर्ण-परिणत भी होते हैं तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी। गन्ध की अपेक्षा से (वे) सुगन्ध-परिणत भी होते हैं, और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से (वे) तिक्तरस परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श परिणत भी गुरुस्पर्श परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी होते हैं तथा शीतस्पर्श- परिणत भी होते हैं और उष्णस्पर्शपरिणत भी। संस्थान से—(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्रयस्रसंथान-परिणत भी तथा आयत-संस्थान-परिणत भी होते हैं और चतुरस्रसंस्थानपरिणत भी तथा आयत-संस्थान-परिणत भी होते हैं ॥ २३। १८४। ८॥
- १३. [१] जे संठाणतो परिमंडलसंठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्वण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुन्भिगंधपरिणता वि दुन्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २०।
- [१३-१] जो संस्थान की अपेक्षा से परिमण्डलसंस्थानपरिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं नीलवर्ण-परिणत भी होते हैं, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से (वे) सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध- परिणत भी। रस की अपेक्षा से तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत

भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत, मृदुस्पर्श परिणत भी, गुरुस्पर्श परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं॥२०॥

[२ [जे संठाणओ वट्टसंठाणपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिइवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुन्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २०।

[१३-२] जो संस्थान की अपेक्षा से वृत्तसंस्थानपरिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी, और शुक्लवर्ण परिणत भी। गन्ध की अपेक्षा से (वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। (वे) रस की अपेक्षा से तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से (वे) कर्कश-स्पर्शपरिणत भी होते हैं, मृदु-स्पर्शपरिणत भी, गुरुस्पर्शपरिणत भी होते हैं, लघुस्पर्श-परिणत भी शीतस्पर्श-परिणत भी और उष्णस्पर्श-परिणत भी होते हैं तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी॥२०॥

[३] जे संठाणतो तंससंठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुन्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २०।

[१३-३] जो संस्थान की अपेक्षा से त्र्यस्रसंस्थान-परिणत हैं, वे वर्णतः कृष्णवर्णपरिणत हैं, नीलवर्णपरिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्णपरिणत भी और शुक्लवर्णपरिणत भी होते हैं। गन्धतः (वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। रसतः (वे) तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरसपरिणत भी होते हैं और मधुररसपरिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से (वे) कर्कशस्पर्शपरिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्शपरिणत भी, गुरुस्पर्शपरिणत भी लघुस्पर्शपरिणत भी, शीतस्पर्शणित भी और उष्णस्पर्शपरिणत भी तथा स्निग्धस्पर्शपरिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्शपरिणत भी ॥ २०॥

[४] जे संठाणओ चउरंससंठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्वण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंध- परिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मडयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २०।

[१३-४] जो संस्थान से चतुरस्नसंस्थानपरिणत हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्णपरिणत भी होते हैं, नीलवर्णपरिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्णपरिणत भी और शुक्लवर्णपरिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से (वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। रस की अपेक्षा से (वे) तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी अम्लरसपरिणत भी होते हैं और मधुररसरिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से (वे) कर्कशस्पर्शपरिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्शपरिणत भी, गुरुस्पर्शपरिणत भी, लघुस्पर्शपरिणत भी, शीतस्पर्शपरिणत भी, उष्णस्पर्श परिणत भी और स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, तथा रूक्षस्पर्शपरिणत भी॥ २०॥

[५] जे संठाणतो आयतसंठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्वण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २०।१००।५। से त्तं स्रविअजीवपण्णवणा। से त्तं अजीवपण्णवणा।

[१३-५] जो संस्थान की अपेक्षा से आयतसंस्थानपरिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से (वे) सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से (वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कश-स्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी होते हैं। २०॥१००।५॥

यह हुई वह (पूर्वोक्त) रूपी-अजीव-प्रज्ञापना। इस प्रकार अजीव-प्रज्ञापना का वर्णन भी पूर्ण हुआ।

विवेचन—प्रज्ञापना: दो प्रकार तथा द्विविध अजीव-प्रज्ञापना का निरूपण—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों (सू. ३ से १३ तक) में प्रज्ञापना के जीव-अजीव सम्बन्धी मुख्य दो प्रकार, तत्पश्चात् अजीव-प्रज्ञापना के अरूपी और रूपी के भेद से दो प्रकार और उनके विविध विकल्पों (भंगों) का निरूपण किया गया है।

प्रथम प्रज्ञापनापदः प्रश्नकर्ता कौन, उत्तरदाता कौन ? प्रज्ञापनासूत्र के रचिवता श्री श्यामार्य (श्यामाचार्य) वाचक हैं, उन्होंने प्रारम्भ में सामान्यरूप से किसी अनाग्रही, मध्यस्थ, बुद्धिमान् एवं तत्त्वज्ञानार्थी श्रोता या जिज्ञासु की ओर से स्वयं प्रश्न उठाए हैं और आगे अनेक स्थलों या पदों में श्री गौतम गणधर द्वारा प्रश्न उठाए हैं, तथा उत्तर भगवान् महावीर की ओर से प्रस्तुत किये हैं। यद्यपि साक्षात् गौतम गणधर या कोई मध्यस्थ प्रश्नकर्ता तथा भगवान् महावीर जैसे उत्तरदाता यहाँ नहीं हैं, किन्तु 'अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं' (शास्त्रोक्त अर्थ का कथन अर्हन्त करते हैं और गणधर सूत्ररूप में उसका कुशलतापूर्वक ग्रथन (रचना) करते हैं।) इस न्याय से पम्परागत शास्त्रप्रतिपादित अर्थ तीर्थंकर भगवान् महावीर और गौतमादि गणधरों से ही आयात है, इसिलए तथा सारा शास्त्रीयज्ञान तीर्थंकरों का है, मैं तो उसकी केवल संकलना करने वाला हूँ, इस प्रकार अपनी नम्रता प्रदर्शित करने के लिए तीर्थंकर भगवान् द्वारा उपदिष्ट तत्त्वों की प्रश्नोत्तर-रूप में प्ररूपणा करना युक्तियुक्त ही है। यह शास्त्र कहाँ से उद्धृत किया गया है ? इसमें प्रतिपादित अर्थ किन-किन के द्वारा वर्णित हैं ? यह दूसरी, तीसरी मंगलाचरणगाथा में स्पष्ट कह दिया है।

प्रज्ञापना का प्रकारात्मक स्वरूप—प्रज्ञापना क्या है ? यह प्रश्न या इस प्रकार के शास्त्रीय-शैली के प्रश्नों का फिलतार्थ यह है कि प्रज्ञापना या अन्य विविक्षित तत्त्वों का प्रकारात्मक स्वरूप क्या है ? प्रज्ञापना का व्युत्पित्त के अनुसार अर्थ या स्वरूप तो पहले प्रतिपादित किया जा चुका है। वास्तव में जीव और अजीव से सम्बन्धित समस्त पदार्थों या तत्त्वों को शिष्य या तत्त्विज्ञासु की बुद्धि में स्थापित कर देना ही प्रज्ञापना का अर्थ या स्वरूप है।

जीवप्रज्ञापना और अजीवप्रज्ञापना—समस्त चेतनाशील एवं उपयोग वाले जीव कहलाते हैं, जिनमें चेतना नहीं होती, उपयोग नहीं होता, वे सब अजीव कहलाते हैं। जीवों की प्रज्ञापना में इन्द्रियों तथा विभिन्न गितयों एवं योनियों की दृष्टि से जीवों का वर्गीकरण करके उनके भेद-प्रभेद प्रस्तुत किये गए हैं तथा अजीवप्रज्ञापना में अरूपी और रूपी अजीवों के भेद-प्रभेदों का वर्गीकरण तथा विविध वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श एवं संस्थान एक दूसरे के साथ सम्बन्धित होने से होने वाले विकल्प (भंग) भी प्रस्तुत किये गए हैं। वैसे देखा जाए तो जीव और अजीव इन दोनों के निमित्त से होने वाले विभिन्न तत्त्वों या पदार्थों का ही विश्लेषण समग्र प्रज्ञापनासूत्र में है। जीवप्रज्ञापना और अजीवप्रज्ञापना ये दो ही प्रस्तुत शास्त्र के समस्त पदों (अध्ययनों) की मूल आधारभूमि हैं। र

१. (क) 'मध्यस्थो बुद्धिमानर्थी, श्रोता पात्रमिति स्मृतः।'

⁽ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय, वृत्ति, पत्रांक ७

⁽ग) 'प्रकर्षेण यथावस्थितस्वरूपनिरूपणलक्षणेन ज्ञाप्यन्ते-शिष्यबुद्धावारोप्यन्ते जीवाजीवादयः पदार्था अनयेति प्रज्ञापना।'—प्रज्ञापना. म. वृत्ति. प. १

२. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. १२ से ४५ तक

रूपी अजीव की परिभाषा—जिनमें रूप हो, वे रूपी कहलाते हैं। यहाँ रूप के ग्रहण से, उपलक्षण से शेष रस, गन्ध, स्पर्श और संस्थान का भी ग्रहण कर लेना चाहिए; क्योंकि रस-गन्धादि के बिना अकेले रूप का अस्तित्व सम्भव नहीं है। प्रत्येक परमाणु रूप, रस, गन्ध और स्पर्श वाला होता है। केवल परमाणु को ही लीजिए, वह भी कारण ही है, कार्य नहीं तथा वह अन्तिम, सूक्ष्म, और द्रव्य रूप से नित्य तथा पर्यायरूप से अनित्य तथा उसमें एक रस, एक गन्ध, एक वर्ण और दो स्पर्श होते हैं। यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष से ज्ञात नहीं होता, केवल स्कन्धरूप कार्य से उसका अनुमान होता है। अथवा रूप का अर्थ है—स्पर्श, रूप आदिमय मूर्ति, वह जिनमें हो, वे मूर्तिक या रूपी कहलाते हैं। संसार में जितनी भी रूपादिमान् अजीव वस्तुएँ हैं, वे सब रूपी अजीव में परिगणित हैं।

अरूपी अजीव की परिभाषा—जिनमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि न हों, वे सब अचेतन पदार्थ अरूपी अजीव कहलाते हैं। अरूपी अजीव के मुख्य दस भेद होने से उसकी प्रज्ञापना—प्ररूपणा भी दस प्रकार की कही गई है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन तीनों के स्कन्ध, देश और प्रदेश तथा अद्धाकाल, यों कुल १० भेद होते है।

धर्मास्तिकाय आदि की परिभाषा—धर्मास्तिकाय—स्वयं गितपरिणाम में परिणत जीवों और पुद्गलों की गित में जो निमित्त कारण हो, जीवों-पुद्गलों के गितरूपस्वभाव का जो धारण-पोषण करता हो, वह धर्म कहलाता है। अस्ति का अर्थ यहाँ प्रदेश है, उन (अस्तियों) का काय अर्थात् संघात (प्रदेशों का समूह) अस्तिकाय है। धर्मास्तिकाय धर्मास्तिकाय कहलाता है। धर्मास्तिकाय कहने से असंख्यातप्रदेशी धर्मास्तिकाय रूप अवयवी द्रव्य का बोध होता है। अवयवी अवयवों के तथारूप-संघातपरिणाम विशेषरूप होता है, किन्तु अवयवों से पृथक् अर्थान्तर द्रव्य नहीं होता। धर्मास्तिकाय का देश—उसी धर्मास्तिकाय का बुद्धि द्वारा किल्पत दो, तीन आदि प्रदेशात्मक विभाग। धर्मास्तिकाय का प्रदेश—धर्मास्तिकाय का बुद्धिकिल्पत प्रकृष्ट देश, प्रदेश—जिसका फिर विभाग न हो सके, ऐसा निर्विभाग विभाग।

अधर्मास्तिकाय—धर्मास्तिकाय का प्रतिपक्षभूत अधर्मास्तिकाय है। अर्थात्—स्थितिपरिणाम में परिणत जीवों और पुद्गलों की स्थिति में जो सहायक हो, ऐसा अमूर्त्त, असंख्यातप्रदेशसंघातात्मक द्रव्य अधर्मास्तिकाय है। अधर्मास्तिकाय का देश, प्रदेश—अधर्मास्तिकाय का बुद्धिकिल्पत द्विप्रदेशात्मक आदि खण्ड अधर्मास्तिकायदेश, एवं उसका सबसे सूक्ष्म विभाग, जिसका फिर दूसरा विभाग न हो सके वह अधर्मास्तिकाय-प्रदेश है। धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय के प्रदेश असंख्यात हैं, लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर हैं।

आकाशस्तिकाय—जिसमें अवस्थित पदार्थ (आ=मर्यादा से) अपने स्वभाव का परित्याग किये बिना (प्र)काशित स्वरूप से प्रतिभासित होते हैं, वह आकाश है; अथवा जो सब पदार्थों में अभिव्यास होकर प्रकाशित होता (रहता) है, वह आकाश है। अस्तिकाय का अर्थ—प्रदेशों का संघात है। आकाशरूप

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ८

अस्तिकाय को **आकाशास्तिकाय** कहते हैं। आकाशास्तिकाय के देश और प्रदेश का अर्थ पूर्ववत् है। यद्यपि लोकाकाश असंख्यातप्रदेशात्मक है, किन्तु अलोकाकाश अनन्त है, इस दृष्टि से आकाशास्तिकाय के प्रदेश अनन्त हैं।

अद्धासमय अद्धा कहते हैं—काल को। अद्धारूप समय अद्धासमय है। अथवा अद्धा (काल) का समय अर्थात् निर्विभाग (अंश) 'अद्धासमय' कहलाता है। परमार्थ दृष्टि से वर्तमान काल का एक ही समय 'सत्' होता है; अतीत और अनागत काल के समय नहीं; क्योंकि अतीतकाल के समय नष्ट हो चुके हैं और अनागतकाल के समय अभी उत्पन्न ही नहीं हुए। अतएव काल में देश-प्रदेशों के संघात की कल्पना हो नहीं सकती। असंख्यात समयों के समूह रूप आविलका आदि की कल्पना केवल व्यवहार के लिए की गई है।

स्कन्ध आदि की व्याख्या—स्कन्ध व्युत्पत्ति के अनुसार स्कन्ध का अर्थ होता है—जो पुद्गल अन्य पुद्गलों के मिलने से पुष्ट होते हैं—बढ़ जाते हैं, तथा विघटन हो जाने—हट जाने या पृथक् हो जाने से घट जाते हैं, वे स्कन्ध हैं। 'स्कन्ध' शब्द में बहुवचन का प्रयोग पुद्गल-स्कन्धों की अनन्तता बताने के लिए है, क्योंकि आगमों में स्कन्ध अनन्त बताए गए हैं। स्कन्धप्रदेश—स्कन्धरूप परिणाम को नहीं त्यागने वाले स्कन्धों के ही बुद्धिकिल्पत द्विप्रदेशी आदि (द्विप्रदेश से लेकर अनन्तप्रदेश तक) विभाग स्कन्धदेश कहलाते हैं। यहाँ भी स्कन्धप्रदेश के लिए बहुवचनान्त प्रयोग तथाविध अनन्तानन्त-प्रदेशी स्कन्धों में, अनन्त स्कन्धदेश भी हो सकते हैं, इसे सूचित करने हेतु है।

स्कन्ध-प्रदेश—स्कन्धों के बुद्धिकित्पत प्रकृष्ट देश को अर्थात्—स्कन्ध में मिले हुए निर्विभाग अंश (परमाणु) को स्कन्धप्रदेश कहते हैं। परमाणु-पुद्गल—निर्विभागद्रव्य (जिनके विभाग न हो सकें, ऐसे पुद्गलद्रव्य) रूप परम अणु, परमाणु-पुद्गल कहलाते हैं। परमाणु स्कन्ध में मिले हुए नहीं होते, वे स्वतन्त्र पुद्गल होते हैं।

वर्णादिपरिणत स्कन्धादि चार—स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणुपुद्गल ये चारों रूपी-अजीव संक्षेपत: प्रत्येक पांच-पांच प्रकार के कहे गए हैं। यथा—जो वर्णरूप में परिणत हों वे वर्णपरिणत कहलाते हैं। इसी प्रकार गन्धपरिणत, रसपरिणत, स्पर्शपरिणत और संस्थानपरिणत भी समझ लेना चाहिए। 'परिणत' शब्द अतीतकाल का निर्देशक होते हुए भी उपलक्षण से वर्तमान और भविष्यत्काल का भी सूचक है, क्योंकि वर्तमान और अनागत के बिना अतीतत्व सम्भव नहीं है। जो वर्तमानत्व का अतिक्रमण कर जाता है, वही अतीत होता है, और वर्तमानत्व का वही अनुभव करता है, जो अभी अनागत भी है—जो अभी वर्तमानत्व को प्राप्त है, वही अतीत होता है, और जो वर्तमानत्व को प्राप्त करेगा, वही अनागत है। इस दृष्टि से वर्णपरिणत का अर्थ है—वर्णरूप में जो परिणत हो चुके हैं, परिणत होते हैं, और परिणत होंगे। इसी प्रकार गन्धपरिणत आदि का त्रिकालसूचक अर्थ समझ लेना चाहिए।

१-२.प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ८-९-१०

वर्णपरिणत आदि पुद्गलों के भेद तथा उनकी व्याख्या—वर्णपरिणत के ५ प्रकार—वर्णरूप में परिणत, जो पुद्गल हैं, वे ५ प्रकार के हैं—(१) कोई काजल आदि के समान काले होते हैं, वे कुष्णवर्णपरिणत, (२) कोई नील या मोर को गर्दन आदि के समान नीले रंग के होते हैं, वे नीलवर्ण-परिणत, (३) कोई हींगलू आदि के समान लाल रंग के होते हैं, वे लोहित (रक्त) वर्णपरिणत, (४) कोई हलदी आदि के समान पीले रंग के होते हैं, वे हारिद्र (पीत) वर्ण-परिणत, (५) शंख आदि के समान कोई पुद्गल श्वेत रंग के होते हैं, वे शुक्लवर्णपरिणत हैं।

गन्धपरिणत के दो प्रकार—कोई पुद्गल चन्दनादि अनुकूल सामग्री मिलने से सुगन्ध वाले हो जाते हैं, वे सुगन्धपरिणत और कोई लहसुन आदि के समान सामग्री मिलने से दुर्गन्ध वाले हो जाते हैं, वे दुर्गन्धपरिणत हो जाते हैं।

रसपरिणत पुद्गलों के पांच प्रकार—(१) कोई मिर्च आदि के समान तिक्त (तीखे या चटपटे) रस वाले होते हैं, (२) कोई नीम, चिरायता आदि के समान कटुरस वाले होते हैं, (३) कोई हरड आदि के समान कसैले (कषाय) रस वाले होते हैं, (४) कोई इमली आदि के समान खट्टे (अम्ल) रस वाले होते हैं और (५) कोई शक्कर आदि के समान मधुर (मीठे) रस वाले होते हैं7

स्पर्शपरिणत पुद्गलों के आठ प्रकार—(१) कोई पाषाण आदि के समान कठोरस्पर्श वाले, (२) कोई आक की रुई या रेशम के समान कोमल स्पर्श वाले, (३) कोई वज्र या लोह आदि के समान भारी (गुरु स्पर्श वाले) होते हैं, तो (४) कोई पुद्गल सेमल की रुई आदि के समान हलके (लघुस्पर्श वाले) होते हैं। (५) कोई मृणाल, कदलीवृक्ष आदि के समान ठण्डे (शीतस्पर्श वाले) होते हैं, तो कोई (६) अग्नि आदि के समान गर्म (उष्णस्पर्श वाले) होते हैं। (७) कोई घी आदि के समान चिकने (स्निग्धस्पर्श वाले) होते हैं तो (८) कोई राख आदि के समान रूखे (रूक्षस्पर्श वाले) होते हैं।

संस्थानपरिणत के पांच प्रकार—(१) कोई पुद्गल वलय (कड़ा-चूड़ी) आदि के समान परिमण्डलसंस्थान (आकार) के होते हैं, जैसे — $O \cdot (2)$ कोई चाक, थाली आदि के समान वृत्त (गोल) संस्थान वाले होते हैं, यथा कोई सिंघाड़े के समान तिकोने (त्र्यस्र) आकार के होते हैं, यथा — $\Delta \cdot (8)$ कोई कुम्भिका आदि के समान चौकोर आकर के (चतुरस्रसंस्थान के) होते हैं, यथा — $\Box \cdot (8)$ और कोई पुद्गल दण्ड आदि के समान आयत संस्थान के होते हैं, यथा— $\Box \cdot (8)$

वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श और संस्थानों के पारस्परिक सम्बन्ध से समुत्पन्न भंगजाल—अब शास्त्रकार पूर्वोक्त वर्णादि से युक्त स्कन्धादिचतुष्टय के पारस्परिक सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले भंग-जाल की प्ररूपणा करते हैं। अर्थात् प्रत्येक वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से परिणत स्कन्धादि पुद्गलों के साथ जब अन्य वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थानों की अपेक्षा से यथायोग्य सम्बन्ध होता है तब जो भंग (विकल्प) होते हैं, उन्हीं का निरूपण यहाँ किया गया है।

- (१) जो पांच वर्णों में से किसी भी एक वर्ण के रूप में परिणत हैं, वे ही यदि दो गन्ध, पांच रस, आठ स्पर्श एवं पांच संस्थानों में से किसी एक के स्वरूप में परिणत हों तो पांचों वर्णों के २० + २० + २० + २० + २० = १०० भंग हो जाते हैं।
- (२) दो गन्धों में प्रत्येक के रूप में परिणत पुद्गल, यदि पांच वर्ण, पांच रस, आठ स्पर्श और पांच संस्थानों की अपेक्षा से परिणत हों तो उन दोनों गन्धों के २३ + २३ = ४६ भंग हो जाते हैं।
- (३) पाँच रसों में से प्रत्येक के रूप में परिणत पुद्गल, यदि पांच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श और पांच संस्थानों के रूप से परिणत हों तो उन पांचों के २०+२०+२०+२० = १०० भंग हो जाते हैं।
- (४) आठ स्पर्शों में से प्रत्येक के रूप में परिणत पुद्गल यदि पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, छह स्पर्श (प्रतिपक्षी और स्व स्पर्श को छोड़कर) तथा पांच संस्थानों के रूप से परिणत हों, तो उनके २३+२३+२३+२३+२३+२३+२३+२३ = १८४ भंग हो जाते हैं।
- (५) पांच संस्थानों में से प्रत्येक के रूप में परिणत पुद्गल, यदि पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस तथा आठ स्पर्शों के रूप से परिणत हों तो उनके २०+२०+२०+२०+ = १०० भंग होते हैं। इस प्रकार वर्णादि पांचों के पारस्परिक सम्बन्ध की अपेक्षा से १००+४६+१००+१८४+१०० = कुल ५३० भंग (विकल्प) निष्पन्न होते हैं।

इसे स्पष्टरूप से समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए—मान लो, कुछ स्कन्धरूप पुद्गल काले वर्ण वाले हैं, यानी कृष्णवर्ण के रूप में परिणत हैं, उनमें से गन्ध की अपेक्षा से कोई सुगन्ध वाले होते हैं, कोई दुर्गन्ध वाले भी होते हैं। रस की अपेक्षा से—वे तिक्तरस वाले भी हो सकते हैं, कटुरस वाले भी, कषायरस वाले भी, अम्लरस वाले भी और मधुररस वाले भी—होने संभव हैं। स्पर्श की दृष्टि से सोचें तो वे कर्कश आदि आठों ही स्पर्शों में से कोई न कोई किसी न किसी स्पर्श के हो सकते हैं। संस्थान की अपेक्षा से विचार किया जाए तो वे कृष्णवर्ण-परिणत पुद्गल परिमण्डल भी होते हैं, वृत्त भी, त्रिकोण भी, चतुष्कोण भी और आयत आकार के भी होते हैं। इस प्रकार एक कृष्णवर्णीय पुद्गल के साथ प्रत्येक गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से २० भंग हो जाते हैं। इसी तरह पूर्वोक्त सभी भंगों का विचार कर लेना चाहिए।

विकल्पों की संख्या स्थूल दृष्टि से, सूक्ष्मदृष्टि से नहीं—यद्यपि बादरस्कन्थों में पांचों वर्ण, दोनों गन्ध, पांचों रस पाए जाते हैं, अतएव अधिकृत वर्ण आदि के सिवाय शेष वर्ण आदि से भी भंग (विकल्प) हो सकते हैं, तथापि उन्हीं बादर स्कन्थों में जो व्यावहारिक दृष्टि से केवल कृष्णवर्णादि से युक्त बीच के स्कन्ध हैं, जैसे—देहस्कन्ध में ही एक नेत्रस्कन्ध काला है, तदन्तर्गत ही कोई लाल है, दूसरा अन्तर्गत ही शुक्ल है, उन्हीं की यहाँ विवक्षा की गई है। उनमें दूसरे वर्णादि संभव नहीं हैं। स्पर्श की प्ररूपणा में, प्रतिपक्षी स्पर्श को छोड़कर किसी एक स्पर्श के साथ अन्य स्पर्श भी देखे जाते हैं। अतएव यहाँ जो भंगों की संख्या बताई गई है, वह युक्तियुक्त है। किन्तु यह विकल्पसंख्या स्थूलदृष्टि

से ही समझनी चाहिए। सूक्ष्मदृष्टि से देख जाए तो तरतमता की अपेक्षा से इनमें से प्रत्येक के अनन्त-अनन्त भेद होने के कारण अनन्त विकल्प हो सकते हैं।

वर्णादि परिणामों का अवस्थान जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यातकाल तक रहता है। र जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार

१४. से किं तं जीवपण्णवणा ?

जीवपण्णवणा दुविहा पण्णता। तं जहा—संसारसमावण्णजीवपण्णवण य १ असंसार-समावण्णजीवपण्णवणा २।

[१४ प्र.] वह (पूर्वोक्त) जीवप्रज्ञापना क्या है ?

[१४ उ.] जीवप्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) संसार-समापन्न (संसारी) जीवों की प्रज्ञापना और (२) असंसार-समापन्न (मुक्त) जीवों की प्रज्ञापना।

विवेचन—जीवप्रज्ञापना: स्वरूप और प्रकार—प्रस्तुत सूत्र १४ से जीवों की प्रज्ञापना प्रारम्भ होती है, जो सू. १४७ में पूर्ण होती है। इस प्रकार सूत्र में जीव-प्रज्ञापना का उपक्रम और उसके दो प्रकार बताए गए हैं।

जीव की परिभाषा—जो जीते हैं, प्राणों को धारण करते हैं, वे जीव कहलाते हैं। प्राण दो प्रकार के हैं—द्रव्यप्राण और भावप्राण। द्रव्यप्राण १० है—पांच इन्द्रियां, तीन बल—मन-वचन-काय, श्वासोच्छ्वास और आयुष्यबल प्राण। भावप्राण चार हैं—ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य। संसार-समापन्न समस्त जीव यथायोग्य भावप्राणों से तथा द्रव्यप्राणों से युक्त होते हैं। जो असंसारसमापन्न—सिद्ध होते हैं, वे केवल भावप्राणों से युक्त हैं।

संसारसमापन्न और असंसारसमापन्न की व्याख्या—संसार का अर्थ है संसार-परिभ्रमण, जो कि नारक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देवभवानुभवरूप है, उक्त संसार को जो प्राप्त हैं, वे जीव संसारसमापन्न हैं, अर्थात्—संसारवर्ती जीव हैं। जो संसार—भवभ्रमण से रहित हैं, वे जीव असंसारसमापन्न हैं। है

असंसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और भेद-प्रभेद

१५. से किं तं असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्ण-जीवपण्णवणा य १ परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा य २ ?

[१५ प्र.] वह (पूर्वोक्त) असंसारसमापत्रजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १२, १७-१८

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १८

[१५ उ.] असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—१— अनन्तरसिद्ध-असंसार-समापन्नजीव-प्रज्ञापना और २—परम्परासिद्ध-असंसार-समापन्नजीव-प्रज्ञापना।

१६. से किं तं अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा पन्नरसिवहा पन्नत्ता। तं जहा—तित्थिसिद्धा १ अतित्थिसिद्धा २ तित्थगरसिद्ध ३ अतित्थगरसिद्धा ४ सयंबुद्धसिद्धा ५ पत्तेयबुद्धसिद्धा ६ बुद्धबोहियसिद्धा ७ इत्थीलिंगसिद्धा ८ पुरिसलिंगसिद्धा ९ नपुंसकिलंगसिद्धा १० सिलंगसिद्धा ११ अण्णलिंगसिद्धा १२ गिहिलिंगसिद्धा १३ एगसिद्धा १४ अणेगसिद्धा १५। से त्तं अणंतरसिद्ध- असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

[१६ प्र.] वह अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापत्रजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

(१६ उ.) अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना पन्द्रह प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—(१) तीर्थसिद्ध, (२) अतीर्थसिद्ध, (३) तीर्थंकरसिद्ध, (४) अतीर्थंकरसिद्ध, (५) स्वयं-बुद्धसिद्ध, (६) प्रत्येकबुद्धसिद्ध, (७) बुद्धबोधितसिद्ध, (८) स्त्रीलिंगसिद्ध, (९) पुरुषलिंगसिद्ध, (१०) नपुंसकलिंगसिद्ध, (११) स्वलिंगसिद्ध, (१२) अन्यलिंगसिद्ध, (१३) गृहस्थिलंगसिद्ध, (१४) एकसिद्ध और (१५) अनेकसिद्ध। यह है—अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना (प्ररूपणा)।

१७. से किं तं परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

परंपरिसद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगिवहा पण्णत्ता। तं जहा अपढमसमयिसद्धा दुसमयिसद्धा तिसमयिसद्धा चउसमयिसद्धा जाव संखेजनसमयिसद्धा असंखेजनसमयिसद्धा अणंतसमयिसद्धा। से त्तं परंपरिसद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा। से त्तं असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

[१७ प्र.] वह (पूर्वोक्त) परम्परासिद्ध-असंसारसमापत्र-जीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१७ उ.] परम्परासिद्ध-असंसारसमापत्र-जीव-प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—अप्रथमसमयसिद्ध, द्विसमयसिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतुःसमयसिद्ध,यावत्—संख्यातसमय-सिद्ध, असंख्यात समयसिद्ध और अनन्तसमयसिद्ध। यह हुई—परम्परसिद्ध-असंसार समापन्न-जीव-प्रज्ञापना।

इस प्रकार वह (पूर्वोक्त) असंसारसमापत्र जीवों की प्रज्ञापना (प्ररूपणा) पूर्ण हुई।

विवेचन—असंसार-समापन्न-जीवप्रज्ञापना: स्वरूप और भेद-प्रभेद—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. १५ से १७ तक) में असंसार-समापन्नजीवों की प्रज्ञापना का प्रकारात्मक स्वरूप तथा उसके भेदप्रभेदों की प्ररूपणा की गई है।

असंसारसमापन्नजीवों का स्वरूप—असंसार का अर्थ है—जहाँ जन्ममरणरूप चातुर्गतिक

संसारपरिभ्रमण न हो, अर्थात्—मोक्ष। उस मोक्ष को प्राप्त, समस्त कर्मों से मुक्त, सिद्धिप्राप्त जीव असंसारसमापन्न जीव कहलाते हैं।⁸

अनन्तरिसद्ध-असंसारसमापन्न जीव—जिन मुक्त जीवों के सिद्ध होने में अन्तर अर्थात् समय का व्यवधान न हो, वे अनन्तरिसद्ध होते हैं, अर्थात्—सिद्धत्व के प्रथम समय में विद्यमान। जिन जीवों को सिद्ध हुए प्रथम ही समय हो, वे अनन्तरिसद्ध हैं।

अनन्तरिसद्ध-असंसारसमापन्न जीवों के १५ भेदों की व्याख्या—(,) तीर्थिसिद्ध—जिनके आश्रय से संसार-सागर को तिरा जाए-पार किया जाय, उसे तीर्थ कहते हैं। ऐसा तीर्थ वह प्रवचन है, जो समस्त जीव-अजीब आदि पदार्थों का यथार्थरूप से प्ररूपक है और परमगुरु—सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत (प्रतिपादित) है। वह तीर्थ निराधार नहीं होता। अत: चतुर्विध संघ अथवा प्रथम गणधर को भी तीर्थ समझना चाहिए। आगम में कहा है—'(प्र.) भगवन्! तीर्थ को तीर्थ कहते हैं या तीर्थकर को तीर्थ कहते हैं? (उ.) गौतम! अरिहन्त भगवान् (नियम से) तीर्थकर होते हैं; तीर्थ तो चातुर्वर्ण्य श्रमणसंघ (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविक रूप) अथवा प्रथम गणधर है।' इस प्रकार के तीर्थ की स्थापना होने पर जो जीव सिद्ध होते हैं, वे तीर्थिसिद्ध कहलाते हैं।

- (२) अतीर्थिसिद्ध—तीर्थ का अभाव अतीर्थ कहलाता है। तीर्थ का अभाव दो प्रकार से होता है—या तो तीर्थ की स्थापना ही न हुई हो, अथवा स्थापना होने के पश्चात् कालान्तर में उसका विच्छेद हो गया हो। ऐसे अतीर्थकाल में जिन्होंने सिद्धि प्राप्त की हो, वे अतीर्थिसिद्ध कहलाते हैं। तीर्थ की स्थापना के अभाव में (पूर्व ही) मरुदेवी आदि सिद्ध हुई हैं। मरुदेवी आदि के सिद्धिगमनकाल में तीर्थ की स्थापना नहीं हुई थी। तथा सुविधिनाथ आदि तीर्थंकरों के बीच के समय में तीर्थ का विच्छेद होने से तीर्थव्यवच्छेद-सिद्ध कहलाये। ये दोनों ही प्रकार के सिद्ध अतीर्थसिद्ध हैं।
- (३) तीर्थकरिसद्ध—जो तीर्थकर होकर सिद्ध होते हैं, वे तीर्थकरिसद्ध कहलाते हैं। जैसे— इस अवसर्पिणीकाल में ऋषभदेव से लेकर श्री वर्द्धमान स्वामी तक चौबीस तीर्थंकर, तीर्थंकर होकर सिद्ध हुए।
- (४) अतीर्थंकरिसद्ध जो सामान्य केवली होकर सिद्ध होते हैं, वे अतीर्थंकरिसद्ध कहलाते हैं।
- (५) स्वयंबुद्धिसिद्ध—जो परोपदेश के बिना, स्वयं ही सम्बुद्ध हो (संसारस्वरूप समझ) कर सिद्ध होते हैं।
- (६) प्रत्येकबुद्धसिद्ध—जो प्रत्येकबुद्ध होकर सिद्ध होते हैं। यद्यपि स्वयंबुद्ध और प्रत्येकबुद्ध दोनों ही परोपदेश के बिना ही सिद्ध होते हैं, तथापि इन दोनों में अन्तर यह है कि स्वयम्बुद्ध बाह्य-

१. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति पत्रांक १८

२. (प्र.) तित्थं भंते! तित्थं, तित्थकरे तित्थं?

⁽उ.) गोयमा! अरिहा ताव (नियमा) तित्थकरे, तित्थं पुण चाउवण्णो समणसंघो पढमगणहरो वा।

निमित्तों के बिना ही, अपने जातिस्मरणादि ज्ञान से ही सम्बुद्ध हो जाते (बोध प्राप्त कर लेते) हैं, जबिक प्रत्येकबुद्ध वे कहलाते हैं, जो वृषभ, वृक्ष बादल आदि किसी भी बाह्य निमित्तकारण से प्रबुद्ध होते हैं। सुना जाता है कि करकण्डू आदि को वृषभादि बाह्यनिमित्त की प्रेक्षा से बोधि प्राप्त हुई थी। प्रत्येकबुद्ध बोधि प्राप्त करके नियमत: एकाकी (प्रत्येक) ही विचरते हैं, गच्छ (गण)- वासी साधुओं की तरह समूहबद्ध हो कर नहीं विचरण करते।

नन्दी-अध्ययन की चूर्णि में कहा है—स्वयंबुद्ध दो प्रकार के होते हैं—तीर्थकर और तीर्थकर-भिन्न। तीर्थकर तो तीर्थकरसिद्ध की कोटि में सम्मिलत हैं। अतएव यहाँ तीर्थकर-भिन्न स्वयंबुद्ध ही समझना चाहिए। है स्वयंबुद्धों के पात्रादि के भेद से बारह प्रकार की उपिध (उपकरण) होती है, जबिक प्रत्येकबुद्धों की जघन्य दो प्रकार की और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) नौ प्रकार की उपिध प्रावरण (वस्त्र) को छोड़ कर होती है। स्वयंबुद्धों के श्रुत (शास्त्र) पूर्वाधीत (पूर्वजन्मपिठत) होता भी है, नहीं भी होता। अगर होता है तो देवता उन्हें लिंग (वेष) प्रदान करता है, अथवा वे गुरु के सान्निध्य में जाकर मुनिलिंग स्वीकार कर लेते हैं। यदि वे एकाकी विचरण करने में समर्थ हों और उनकी एकाकी-विचरण की इच्छा हो तो एकाकी विचरण करते हैं, नहीं तो गच्छवासी हो कर रहते हैं। यदि उनके श्रुत पूर्वाधीत न हो तो वे नियम से गुरु के निकट जा कर ही मुनिलिंग स्वीकार करते हैं और गच्छवासी हो कर ही रहते हैं। प्रत्येकबुद्धों के नियमतः श्रुत पूर्वाधीत होता है। वे जघन्यतः ग्यारह अंग और उत्कृष्टतः दस पूर्व से किश्चित् कम पहले पढ़े हुए होते हैं। उन्हें देवता मुनिलिंग देता है, अथवा कदाचित् वे लिंगरहितं भी विचरते हैं। है

- (७) **बुद्धबोधितसिद्ध**—बुद्ध अर्थात्—बोधप्राप्त आचार्य, उनके द्वारा बोधित हो कर जो सिद्ध होते हैं वे बुद्धबोधितसिद्ध हैं।
- (८) स्त्रीलिंगसिद्ध—इन पूर्वोक्त प्रकार के सिद्धों में से कई स्त्रीलिंगसिद्ध होते हैं। जिससे स्त्री की पहिचान हो वह स्त्री का लिंग-चिह्न स्त्रीलिंग कहलाता है। उपलक्षण से स्त्रीत्वद्योतक होने से वह

१. ते दुविहा सयंबुद्धा-तित्थयरा तित्थयरवइरित्ता य, इह वइरित्तेहि अहिगारो। -नन्दी, अध्ययन चूर्णि

२. पत्तेयं—बाह्यं वृषभादिकं कारणमभिसमीक्ष्य बुद्धाः, बहिष्प्रत्ययं प्रति बुद्धानां च पत्तेयं नियमा विहारो जम्हा तम्हा ते पत्तेयनुद्धा।

पत्तेयबुद्धाणं जहन्नेणं दुविहो, उक्कोसेणं नविवहो नियमा उवही पाउरणवज्जो भवइ। सयंबुद्धस्स पुट्याहीयं सुयं से हवइ वा न वा, जइ से नित्थ तो लिंगं ित्यमा गुरुसिन्नहे पिडवज्जइ, जइ य एगिविहार-विहरणसमत्थो इच्छा वा से तो एक्को चेव विहरइ, अन्यथा गच्छे विहरइ। पत्तेयबुद्धाणं पुट्याहीयं सुयं नियमा हवइ, जहन्नेणं इक्कारस अंगा, उक्कोसेणं भिन्नदसपुट्या। लिंगं च से देवया पयच्छइ, लिंगवज्जिओ वा हवइ।

तीन प्रकार का हो सकता है—वेद, शरीर की निष्पत्त (रचना) और वेषभूषा। इन तीन प्रकार के लिंगों में से यहाँ स्त्री-शरीररचना से प्रयोजन है; स्त्रीवेद या स्त्रीवेशरूप स्त्रीलिंग से नहीं, क्योंकि स्त्रीवेद की विद्यमानता में सिद्धत्व प्राप्त नहीं हो सकता और वेश अप्रमाणिक है। अत: ऐसे स्त्रीलिंग में विद्यमान होते हुए जो जीव सिद्ध होते हैं, वे स्त्रीलिंगसिद्ध हैं। इस शास्त्रीय कथन से 'स्त्रियों को निर्वाण नहीं होता'; इस उक्ति का खण्डन हो जाता है। वास्तव में मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्ररूप है। यह रत्नत्रय पुरुषों की तरह स्त्रियों में भी हो सकता है। इसकी साधना में तथा प्रवचनार्थ में रुचि एवं श्रद्धा रखने में स्त्रीलिंग बाधक नहीं है।

- (९) पुरुषलिंगसिद्ध—पुरुष-शरीररचनारूप पुल्लिंग में स्थित होकर सिद्ध होते हैं, वे पुरुष-लिंगसिद्ध कहलाते हैं।
- (१०) नपुंसकलिंगसिद्ध—जो जीव न तो स्त्री के और न ही पुरुष के, किन्तु नपुंसक के शरीर से सिद्ध होते हैं, वे नपुंसकलिंगसिद्ध कहलाते हैं।
 - (११) स्वलिंगसिद्ध—जो स्वलिंग से अर्थात्—रजोहरणादिरूप वेश में रहते हुए सिद्ध होते हैं।
- (१२) अन्यलिंगसिद्ध—जो अन्यलिंग से, अर्थात्—परिव्राजक आदि से सम्बन्धित वल्कल (छाल) या काषायादि रंग के वस्त्र वाले द्रव्यलिंग में रहते हुए सिद्ध होते हैं।
- (१३) गृहिलिंगसिद्ध—जो गृहस्थ के लिंग (वेष) में रहते हुए सिद्ध होते हैं। वे गृहिलिंगसिद्ध होते हैं, जैसे—मरुदेवी आदि।
 - (१४) एकसिद्ध-जो एक समय में अकेले ही सिद्ध होते हैं, वे एकसिद्ध हैं।
- (१५) अनेकसिद्ध—जो एक ही समय में एक से अधिक—अनेक सिद्ध होते हैं, वे अनेकसिद्ध कहलाते हैं। सिद्धान्तानुसार एक समय में अधिक से अधिक १०८ जीव सिद्ध होते हैं। ध

अनन्तर सिद्धों के उपाधि के भेद से ये १५ प्रकार कहे हैं।

- इत्थीए लिंगं इत्थिलिंगं उवलक्खणं ति वुत्तं भवइ। तं च तिविहं—वेदो सरीरिनिव्वत्ती नेवत्थं च। इह सरीरिनव्वत्तीए अहिगारो, न वेय-नेवत्थेहिं। —नन्दी, अध्ययन चूर्णि
- २. स्त्रीमुक्ति की विशेष चर्चा के लिए देखिये—प्रज्ञापना. म० वृत्ति, पत्रांक २० से २२ तक दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रकृत गोमट्टसार में देखिये—अडयाला पुंवेया, इत्थीवेया, हवंति चालीसा। वीस नपुंसकवेया, समएणेगेण सिन्झंति॥
- ३. 'अनेकसिद्ध' का विस्तृत वर्णन देखें—प्रज्ञापना० म० वृत्ति, पत्रांक २२ बत्तीसा अडयाला सट्टी बावत्तरी य बोद्धव्वा। चुलसीइ छउन्नइ उ दुरहियं अट्ठुत्तरसयं च॥
- ४. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १९ से २२ तक

परम्परासिद्ध-असंसार-समापन्नजीवों के प्रकार—इनके अनेक प्रकार हैं, इसलिए शास्त्रकार ने इनके प्रकारों की निश्चित संख्या नहीं दी है। अप्रथमसमयसिद्ध से लेकर अनन्तसमयसिद्ध तक के जीव परम्परासिद्ध की कोटि में हैं। अप्रथमसमयसिद्ध—जिन्हें सिद्ध हुए प्रथम समय न हो, अर्थात् जिन्हें सिद्ध हुए एक से अधिक समय हो चुके हों, वे अप्रथमसमयसिद्ध कहलाते हैं। अथवा जो परम्परिद्धों में प्रथमसमयवर्ती हों वे प्रथमसमयसिद्ध होते हैं। इसी प्रकार तृतीय आदि समयों में द्वितीयसमयसिद्ध आदि कहलाते हैं। अथवा 'अप्रथमसमयसिद्ध' का कथन सामान्यरूप से किया गया है, आगे इसी के विषय में विशेषतः कहा गया है—द्विसमयसिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतुःसमयसिद्ध आदि यावत् अनन्त समयसिद्ध तक अप्रथमसमयसिद्ध—परंपरासिद्ध समझने चाहिए।

अथवा परम्परिसद्ध का अर्थ इस प्रकार से है—जो किसी भी प्रथम समय में सिद्ध है, उससे एक समय पहले सिद्ध होने वाला 'पर' कहलाता है। परम्परिसद्ध का आशय यह है कि जिस समय में कोई जीव सिद्ध हुआ है, उससे पूर्ववर्त्ती समयों में जो जीव सिद्ध हुए हैं, वे सब उसकी अपेक्षा परम्परिसद्ध हैं। अनन्त अतीतकाल से सिद्ध होते आ रहे हैं, वे सब किसी भी विवक्षित प्रथम समय में सिद्ध होने वाले की अपेक्षा से परम्परिसद्ध हैं। ऐसे मुक्तात्मा परम्परिसद्ध असंसारसमापत्र जीव हैं। है

संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना के पांच प्रकार

१८. से किं तं संसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

संसारसमावण्णजीवपण्णवणा पंचिवहा पन्नता। तं जहा—एगिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्ण-वणा १ बेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा २ तेंदियसंसारसमावन्नजीवपण्णवणा ३ चउरेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ४ पंचेंदियसंसारसमावन्नजीवपण्णवणा ५।

[१८ प्र.] वह (पूर्वोक्त) संसारसमापत्रजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१८ उ.] संसारसमापत्र-जीवप्रज्ञापना पांच प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है— (१) एकेन्द्रिय संसारसमापत्र-जीवप्रज्ञापना, (२) द्वीन्द्रिय संसारसमापत्र-जीवप्रज्ञापना, (३) त्रीन्द्रिय संसारसमापत्र-जीवप्रज्ञापना, (४) चतुरिन्द्रिय संसारसमापत्र-जीवप्रज्ञापना और (५) पंचेन्द्रिय संसार-समापत्र-जीवप्रज्ञापना।

विवेचन—संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना के पांच प्रकार—संसारी जीवों की प्रज्ञापना के एकेन्द्रियादि पांच प्रकार क्रमश: इस सूत्र (सू. १८) में प्रतिपादित किये गए हैं।

संसारी जीवों के पांच प्रकारों की व्याख्या— (१) एकेन्द्रिय—पृथ्वीकायादि स्पर्शनेन्द्रिय वाले जीव एकेन्द्रिय कहलाते हैं। (२) द्वीन्द्रिय—जिन जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय, ये दो इन्द्रियां होती हैं, वे द्वीन्द्रिय होते हैं। जैसे—शंख, सीप, लट, गिंडोला आदि (३) त्रीन्द्रिय—जिन जीवों के

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय, वृत्ति, पत्रांक २३ तथा १८

स्पर्शन, रसन और घ्राणेन्द्रिय हों, वे त्रीन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे—जूं, खटमल, चींटी आदि। (४) चतुरिन्द्रिय—जिन जीवों के स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षुरिन्द्रिय हो वे चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे—टिड्डी, पतंगा, मक्खी, मच्छर आदि। (५) पंचेन्द्रिय—जिनके स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, ये पांचों इन्द्रियां हों, वे पंचेन्द्रिय कहलाते हैं जैसे—नारक, तिर्यञ्च (मत्स्य, गाय, हंस, सर्प), मनुष्य और देव। इन्द्रियां दो प्रकार की हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। द्रव्येन्द्रिय के दो रूप—निर्वृत्तिरूप और उपकरणरूप। इन्द्रियों की रचना को निर्वृत्ति–इन्द्रिय कहते हैं और निर्वृत्ति–इन्द्रिय की शक्तिविशेष को उपकरणेन्द्रिय कहते हैं। भावेन्द्रिय लब्धि (क्षयोपशम) तथा उपयोग रूप है। एकेन्द्रिय जीवों में भी क्षयोपशम एवं उपयोगरूप भावेन्द्रिय पांचों ही सम्भव हैं; क्योंकि उनमें से कई एकेन्द्रिय जीवों में उनका कार्य दिखाई देता है। जैसे—जीवविज्ञानविशेषज्ञ डॉ. जगदीशचन्द्र बोस ने एकेन्द्रिय वनस्पति में भी निन्दा–प्रशंसा आदि भावों को समझने की शक्ति (लब्धि = क्षयोपशम) सिद्ध करके बताई है।

एकेन्द्रिय संसारी जीवों की प्रज्ञापना

१९. से किं तं एगेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

एगेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा पंचिवहा पण्णत्ता। तं जहा—पुढिवकाइया १ आउकाइया २ तेउकाइया ३ वाउकाइया ४ वणस्सइकाइया ५।

[१९ प्र.] वह (पूर्वोक्त) एकेन्द्रिय-संसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१९ उ.] एकेन्द्रिय-संसारसमापत्रजीव-प्रज्ञापना पांच प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक और ५. वनस्पतिकायिक।

विवेचन—एकेन्द्रियसंसारी जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र में पृथ्वीकायिक आदि पांच प्रकार के एकेन्द्रियजीवों की प्ररूपणा की गई है।

एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार और लक्षण— (१) पृथ्वीकायिक—पृथ्वी ही जिनका काय—शरीर है, वे पृथ्वीकाय या पृथ्वीकायिक कहलाते हैं। (२) अप्कायिक—अप्—प्रसिद्ध जल ही जिनका काय—शरीर है, वे अप्काय या अप्कायिक कहलाते हैं। (३) तेजस्कायिक—तेज यानी अग्नि ही जिनका काय—शरीर है, वे तेजस्काय या तेजस्कायिक कहलाते हैं। (४) वायुकायिक—वायु—हवा ही जिनका काय—शरीर है; वे वायुकाय या वायुकायिक हैं। (५) वनस्पतिकायिक—लतादिरूप वनस्पति ही जिनका शरीर (काय) है, वे वनस्पतिकाय या वनस्पतिकायिक कहलाते हैं।

पृथ्वी समस्त प्राणियों की आधारभूत होने से सर्वप्रथम पृथ्वीकायिकों का ग्रहण किया गया। अप्कायिक पृथ्वी के आश्रित हैं, इसलिए तदनन्तर अप्कायिकों का ग्रहण किया गया। तत्पश्चात् उनके प्रतिपक्षी

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २३-२४

अग्निकायिकों का, अग्नि वायु के सम्पर्क से बढ़ती है, इसलिए उसके बाद वायुकायिकों का और वायु दूरस्थ लतादि के कम्पन से उपलक्षित होता है, इसलिए तत्पश्चात् वनस्पतिकायिकों का ग्रहण किया गया। १

पृथ्वीकायिक जीवों की प्रज्ञापना

२०. से किं तं पुढिवकाइया ?

पुढिवकाइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा---सुहुमपुढिवकाइया य बादरपुढिवकाइया य ।

[२० प्र.] वे पृथ्वीकायिक जीव कौन-से हैं ?

[२० उ.] पृथ्वीकायिक (मुख्यतया) दो प्रकार के कहे गए हैं—सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और बादर पृथ्वीकायिक।

२१. से किं तं सुहुमपुढिवकाइया ?

सुहुमपुढिवकाइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तसुहुमपुढिवकाइया य अपज्जत्तसुहुमपुढ-विकाइया य। से तं सुहुमपुढिवकाइया।

[२१ प्र.] सूक्ष्मपृथ्वीकायिक क्या हैं ?

[२१ उ.] सूक्ष्मपृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक। यह सूक्ष्मपृथ्वीकायिक का वर्णन हुआ।

२२. से किं तं बादरपुढिवकाइया ?

बादरपुढिवकाइया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—सण्हबादरपुढिविकाइया य खरबादरपुढिविकाइया य।

[२२ प्र.] बादरपृथ्वीकायिक क्या हैं ?

[२२ उ.] बादरपृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—श्लक्ष्ण (चिकने) बादरपृथ्वीकायिक और खरबादरपृथ्वीकायिक।

२३. से किं तं सण्हबादरपुढविकाइया ?

सण्हबादरपुढिविकाइया सत्तिविहा पन्नता। तं जहा—किण्हमित्तिया १ नीलमित्तिया २ लोहियमित्तिया ३ हालिद्दमित्तिया ४ सुक्किल्लमित्तिया ५ पंडुमित्तिया ६ पणगमित्तिया ७। से तं सण्हबादरपुढिविकाइया ।

[२३ प्र.] श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक क्या हैं ?

[२३ उ.] श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक सात प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार — (१) कृष्ण-मृत्तिका (काली मिट्टी), (२) नीलमृत्तिका (नीले रंग की मिट्टी), लोहितमृत्तिका (लाल रंग की

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २४

मिट्टी), (४) हारिद्रमृत्तिका (पीली मिट्टी), (५) शुक्लमृत्तिका (सफेद मिट्टी), (६) पाण्डुमृत्तिका (पाण्डु—मटमैले रंग की मिट्टी) और (७) पनकमृत्तिका (काई-सी हरे रंग की मिट्टी)।

२४. से किं तं खरबादरपुढिवकाइया ?

खरबादरपुढिविकाइया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—
पुढवी य १ सक्करा २ वालुया य ३ उवले ४ सिला य ५ लोणूसे ६-७।
अय ८ तंब ९ तउय १० सीसय ११ रुप्प १२ सुवण्णे य १३ वइरे य १४॥८॥
हरियाले १५ हिंगुलुए १६ मणोसिला १७ सासगंऽजण १८-१९ पवाले २०।
अब्भपडल २१ ऽब्भवालुय २२ बादरकाए मणिविहाणा॥९॥
१ गोमेज्जए य २३ रुपए २४ अंके २५ फिलहे य २५ लोहियक्खे य २७।
मरगय २८ मसारगल्ले २० भुयमोयग २० इंदनीले य ३१ ॥ १०॥
चंदण ३२ गेरुय ३३ हंसे ३४ पुलए ३५ सोगंधिए य ३६ बोद्धव्वे।
चंदणभ ३७ वेरुलिए ३८ जलकंते ३९ सूरकंते य ४०॥ ११॥
जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[२४-प्र.] खर बादरपृथ्वीकायिक कितने प्रकार के हैं ?

[२४-उ.] खर बादरपृथ्वीकायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार— (१) पृथ्वी, (२) शर्करा (कंकर), (३) बालुका (बालु-रेत), (४) उपल (पाषाण-पत्थर), (५) शिला (चट्टान), (६) लवण (सामुद्र, सैंचल आदि नमक), (७) ऊष (ऊषर—क्षार वाली जमीन, बंजरभूमि), (८) अयस् (लोहा), (९) ताम्बा, (१०) त्रपुष् (रांगा), (११) सीसा, (१२) रौप्य (चांदी),(१३) सुवर्ण (सोना), (१४) वज्र (हीरा), (१५) हड़ताल, (१६) हींगलू (१७) मैनसिल, (१८) सासग (पारद—पारा), (१९) अंजन (सौवीर आदि), (२०) प्रवाल (मूंगा), (२१) अभ्रपटल (अभ्रक-भोडल), (२२) अभ्रबालुका (अभ्रक-मिश्रित बालू), बादरकाय में मिणयों के प्रकार— (२३) गोमेज्जक (गोमेदरल), (२४) रुचकरल, (२५) अंकरल, (२६) स्फिटकरल, (२७) लोहिताक्षरल, (२८) मरकतरल, (२९) मसारगल्लरल, (३०) भुजमोचकरल, (३१) इन्द्रनीलमिण, (३२) चन्द्रप्रभरल, (३८) वैडूर्यरल, (३९) जलकान्तमिण और (४०) सूर्यकान्तमिण ॥ ८-९-१०-११॥

१. गोमेज्जए य २३ रुयगे २४ अंके २५ फिलिहे य २६ लोहियक्खे य २७। चंदण २८ गेरुय २९ हंसग ३० भुयमोय ३१ मसारगल्ले य ३२ ॥ ७५।। चंदप्पह ३३ वेरुलिए ३३ जलकंते ३५ चेव सूरकंते य ३७। एए खरपुढवीए नामं छत्तीसयं होइ॥ ७३॥

इस प्रकार आचारांग वृत्तिकार शीलांकाचार्य ने आचारागनिर्युक्ति की गाथाओं द्वारा खरपृथ्वीकाय के ३६ भेद गिनाए हैं, जबिक प्रज्ञापना में ४० भेद वर्णित हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में प्रज्ञापना के समान ही गाथाएँ हैं। — सं.

इनके अतिरिक्त जो अन्य भी तथा प्रकार के (वैसे) (पद्मराग आदि मणिभेद हैं, वे भी खर बादरपृथ्वीकायिक समझने चाहिए।)

२५. [१] ते समासतो दुविहा पन्नत्ता। तं जहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

[२५-१] वे (पूर्वोक्त सामान्य बादरपृथ्वीकायिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

[२] तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता ।

[२५-२] उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे (स्वयोग्य पर्याप्तियों को) असम्प्राप्त होते हैं ।

[३] तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एतेसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणिप्यमुहसतसहस्साइं। पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखिज्जा। से त्तं खरबादरपुढिवकाइया। से त्तं बादरपुढिवकाइया। से त्तं

[२५-३] उनमें से जो पर्याप्तक हैं, इनके वर्णादेश (वर्ण की अपेक्षा) से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों सहस्रश: भेद (विधान) हैं। (उनके) संख्यात लाख योनिप्रमुख (योनिद्वार) हैं। पर्याप्तकों के निश्राय (आश्रय) में, अपर्याप्तक (आकर) उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक (पर्याप्तक) होता है, वहां (उसके आश्रय से) नियम से असंख्यात अपर्याप्तक (उत्पन्न होते हैं।) यह हुआ—वह (पूर्वोक्त) खर बादर पृथ्वीकायिकों का निरूपण। (उसके साथ ही) बादरपृथ्वीकायिकों का वर्णन पूर्ण हुआ। (इसके पूर्ण होते ही) पृथ्वीकायिकों की प्ररूपणा समाप्त हुई।

विवेचन—पृथ्वीकायिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत छह सूत्रों (सू. २०से २५ तक में) पृथ्वीकायिक जीवों के मुख्य दो भेदों तथा उनके अवान्तर भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और बादर पृथ्वीकायिक की व्याख्या—जिन जीवों को सूक्ष्मनामकर्म का उदय हो, वे सूक्ष्म कहलाते हैं। ऐसे पृथ्वीकायिक जीव सूक्ष्मपृथ्वीकायिक हैं। जिनको बादरनामकर्म का उदय हो, उन्हें बादर कहते हैं। ऐसे पृथ्वीकायिक बादरपृथ्वीकायिक कहलाते हैं। बेर और आंवले में जैसी सापेक्ष सूक्ष्मता और बादरता है, वैसी सूक्ष्मता और बादरता यहां नहीं समझनी चाहिए। यहां तो (नाम-) कर्मोदय के निमित्त से ही सूक्ष्म और बादर समझना चाहिए। मूल में 'च' शब्द सूक्ष्म और बादर के अनेक अवान्तरभेदों, जैसे—पर्याप्त और अपर्याप्त आदि भेदों तथा शर्करा, बालुका आदि उपभेदों को सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया गया है।

'सूक्ष्म सर्वलोक में है' उत्तराध्ययन सूत्र की इस उक्ति के अनुसार सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव समग्र लोक में ऐसे ठसाठस भरे हुए हैं, जैसे किसी पेटी में सुगन्धित पदार्थ डाल देने पर उसकी महक उसमें प्रथम प्रज्ञापनापद]

सर्वत्र व्याप्त हो जाती है। बादरपृथ्वीकायिक नियत-नियत स्थानों पर लोकाकाश में होते हैं। यह द्वितीयपद में बताया जाएगा। १

सूक्ष्मपृथ्वीकायिकों के पर्याप्तक-अपर्याप्तक की व्याख्या — जिन जीवों की पर्याप्तियाँ पूर्ण हो चुकी हों वे पर्याप्त या पर्याप्तक कहलाते हैं। जो जीव अपने योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण न कर सके हों, वे अपर्याप्त या अपर्याप्तक कहलाते हैं। पर्याप्त और अपर्याप्त के प्रत्येक दो-दो भेद होते हैं — लब्धि-पर्याप्त और करण-पर्याप्त, तथा लब्धि-अपर्याप्तक और करण-अपर्याप्त। जो जीव अपर्याप्त रह कर ही मर जाते हैं, वे लब्धि-अपर्याप्त और जिनकी पर्याप्तियाँ अभी पूरी नहीं हुई हैं, किन्तु पूरी होंगी, वे करण-अपर्याप्त कहलाते हैं। पर्याप्ति — पर्याप्त आत्मा की एक विशिष्ट शक्ति की परिपूर्णता है, जिसके द्वारा आत्मा आहार, शरीर आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है और उन्हें आहार, शरीर आदि के रूप में परिणत करता है। वह पर्याप्तिरूप शक्ति पुद्गलों के उपचय से उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि उत्पत्तिदेश में आए हुए नवीन आत्मा ने पहले जिन पुद्गलों को ग्रहण किया, उनको तथा प्रतिसमय ग्रहण किये जा रहे अन्य पुद्गलों को, एवं उनके सम्पर्क से जो तद्रूप परिणत हो गए हैं, उनको आहार, शरीर, इन्द्रिय आदि के रूप में जिस शक्ति के द्वारा परिणत किया जाता है, उस शिक्त की पूर्णता पर्याप्ति कहलाती है।

पर्याप्ति छह हैं—(१) आहारपर्याप्ति, (२) शरीरपर्याप्ति, (३) इन्द्रियपर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, (५) भाषापर्याप्ति और (६) मनः पर्याप्ति। जिस शिक्त द्वारा जीव बाह्य आहार (आहारयोग्य पुद्गलों) को लेकर खल और रस के रूप में परिणत करता है, वह आहार-पर्याप्ति है। जिस शिक्त के द्वारा रसीभूत (रसरूप-परिणत) आहार (आहारयोग्य पुद्गलों) को रस, रक्त, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा और शुक्र, इन सात धातुओं के रूप में परिणत किया जाता है, वह शरीरपर्याप्ति है। जिस शिक्त के द्वारा धातुरूप में परिणित आहार पुद्गलों को इन्द्रियरूप में परिणत किया जाता है, वह इन्द्रियपर्याप्ति है। इसे दूसरी तरह से यों भी समझा जा सकता है—पाँचों इन्द्रियों के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके अनाभोगनिर्वर्तित (अनजाने ही निष्यन्त) वीर्य के द्वारा इन्द्रियरूप में परिणत करने वाली शिक्त इन्द्रियपर्याप्ति है। जिस शिक्त के द्वारा (श्वास तथा उच्छ्वास के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके, उन्हें (श्वास एवं)उच्छ्वासरूप परिणत करके और फिर उनका आलम्बन लेकर छोड़ा जाता है, वह (श्वास) उच्छ्वास-पर्याप्ति है। जिस शिक्त से भाषा-योग्य (भाषावर्गणा के) पुद्गलों को ग्रहण करके , उन्हें भाषारूप में परिणत करके, वचनयोग का आलम्बन लेकर छोड़ा जाता है, वह भाषापर्याप्ति है। जिस शिक्त के द्वारा मन के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके मन के रूप में परिणत करके, मनोयोग का आलम्बन लेकर छोड़ा जाता है, वह मन:पर्याप्ति है। इन छह पर्याप्तियों में

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक २४-२५

⁽ख) उत्तराध्ययनसूत्र,अ. ३६— 'सुहुमा सळ्लोगंमि।'

से एकेन्द्रिय में चार, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय में पांच और संज्ञी पंचेन्द्रिय में छहों पर्याप्तियाँ होती हैं।

जीव अपनी उत्पत्ति (जन्म)के प्रथम समय में ही, अपने योग्य सम्भावित पर्याप्तियों को एक साथ निष्पन्न करना प्रारम्भ कर देता है। किन्तु वे (पर्याप्तियाँ)क्रमशः पूर्ण होती हैं। जैसे—सर्वप्रथम आहारपर्याप्ति, तत्पश्चात् शरीरपर्याप्ति, फिर इन्द्रियपर्याप्ति, तदनन्तर श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, उसके बाद भाषापर्याप्ति और सबसे अन्त में मनःपर्याप्ति पूर्ण होती है। आहारपर्याप्ति प्रथम समय में ही निष्पन्न हो जाती है, शेष पर्याप्तियों के पूर्ण होने में प्रत्येक को अन्तर्मुहूर्त्त समय लग जाता है। किन्तु समग्र पर्याप्तियों के पूर्ण होने में भी अन्तर्मुहूर्त्तकाल ही लगता है क्योंकि अन्तर्मुहूर्त्त के अनेक विकल्प हैं। इस पर से सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और बादरपृथ्वीकायिक दोनों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक का स्वरूप समझ लेना चाहिए। १

श्लक्ष्ण बादरणृथ्वीकायिक— पीसे हुए आटे समान मृदु (मुलायम) पृथ्वी श्लक्ष्ण कहलाती है। श्लक्ष्ण पृथिव्यात्मक जीव भी उपचार से श्लक्ष्ण कहलाते हैं। जिन बादरपृथ्वी के जीवों का शरीर श्लक्ष्ण—मृदु है, वे श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकियक हैं। यह मुख्यतया सात प्रकार की होती है। उनमें से पाण्डुमृत्तिका का अर्थ यह भी है कि किसी देश में मिट्टी धूलिरूप में हो कर भी 'पाण्डु' नाम से प्रसिद्ध है। पनकमृत्तिका का अर्थ वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है—नदी आदि में बाढ़ से डूबे हुए प्रदेश में नदी आदि के पूर चले जाने के बाद भूमि पर जो श्लक्ष्ण मृदुरूप पंक शेष रह जाता है, जिसे 'जलमल' भी कहते हैं, वही पनकमृत्तिका है। र

खर बादरपृथ्वीकायिकों की व्याख्या—प्रस्तुत'गाथाओं में खर बादरपृथ्वीकायिकों के ४० भेद बताए हैं, अन्त में यह भी कहा है कि ये और इसी प्रकार के अन्य जो भी पद्मरागादि रत्न हैं, वे सब इसी के अन्तर्गत समझने चाहिए। अपर्याप्तकों का स्वरूप— खर बादरपृथ्वीकायिक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक जो दो भेद हैं, उनमें से अपर्याप्तक या तो अपनी पर्याप्तियों को पूर्णतया असंप्राप्त हैं अथवा उन्हें विशिष्ट वर्ण आदि प्राप्त नहीं हुए हैं। इस दृष्टि से उनके लिए यह नहीं कहा जा सकता है कि वे कृष्ण आदि वर्ण वाले हैं। शरीर आदि पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जाने पर ही बादर जीवों में वर्ण आदि विभाग प्रकट होता है, अपूर्ण होने की स्थिति में नहीं। तथा वे अपर्याप्तक उच्छ्वास पर्याप्ति से अपर्याप्त रह कर ही मर जाते हैं, इसी कारण उनमें स्पष्टतर वर्णादि का विभाग सम्भव नहीं। इसी दृष्टि से उन्हें 'असम्प्राप्त' कहा है। पर्याप्तकों के वर्णादि के भेद से हजारों भेद—इनमें से जो पर्याप्तक हैं, जिनकी अपने योग्य चार पर्याप्तियां पूर्ण हो चुकी हैं, उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के भेद से हजारों भेद होते हैं। जैसे—वर्ण के ५, गन्ध के २, रस के ५ स्पर्श के ८ भेद होते हैं। फिर प्रत्येक वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श में

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २५-२६

⁽ख) आहारपर्याप्ति के सम्बन्ध में सूक्ष्मचर्चा देखिये—प्रज्ञापना. २८ वां आहारपद

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक २६

अनेक प्रकार की तरतमता होती है। जैसे— भ्रमर, कोयल और कज्जल आदि में कालेपन की न्यूनता अधिकता होती है। अत: कृष्ण, कृष्णतर और कृष्णतम आदि अनेक कृष्णवर्गीय भेद हो गए। इसी प्रकार नील आदि वर्ण के विषय में समझना चाहिए। गन्ध, रस और स्पर्श से सम्बन्धित भी ऐसे ही अनेक भेद होते हैं। इसी प्रकार वर्णों के परस्पर मिश्रण से धूसरवर्ण, कर्बुर (चितकबरा) वर्ण आदि अगणित वर्ण निष्यन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार एक गन्ध में दूसरी गंध के मिलने से २, एक रस में दूसरा रस मिश्रण करने से एक स्पर्श के साथ दूसरे स्पर्श के संयोग से हजारों भेद गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से हो जाते हैं। ऐसे पृथ्वीकायिकों की लाखों योनियां — उपर्युक्त पृथ्वीकायिक जीवों की लाखों योनियां हैं। यही बात मूलपाठ में कही गई है—'संखेज्जाइं जोणिप्यमुहसयसहस्साइं'— अर्थात् 'संख्यातलाख' योनिप्रमुख योनिद्वार। जैसे कि एक-एक वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श में पृथ्वीकायिकों की संवृता योनि होती हैं। वह तीन प्रकार की है—सचित्त, अचित्त और मिश्र। इनके प्रत्येक के तीन-तीर भेद होते हैं—शीत, उष्ण और शीतोष्ण। इन शीत आदि प्रत्येक के भी तारतम्य के कारण अनेक भेद हो जाते हैं। यद्यिप इस प्रकार से स्वस्थान में विशिष्ट वर्णादि से युक्त योनियां व्यक्ति के भेद से संख्यातीत हो जाती हैं, तथापि वे सब जाति (सामान्य) की अपेक्षा एक ही योनि में परिगणित होती हैं। इस दृष्टि से पृथ्वीकायिक जीवों की संख्यात लाख योनियाँ होती हैं और वे सूक्ष्म और बादर सबकी सब मिलकर सात लाख योनियां समझनी चाहिए। ध

अप्कायिक जीवों की प्रजापना

२६. से किं तं आउक्काइया ?

आउक्काइया दुविहा पण्णता। तं जहा-सुहुमआउक्काइया य बादर आउक्काइया य।

[२६ प्र.] वे (पूर्वोक्त) अप्कायिक जीव किस (कितने) प्रकार के हैं ?

[२६ उ.] अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं ---सूक्ष्म अप्कायिक और बादर अप्कायिक ।

२७. से किं ते सुहुमआउक्काइया ?

सुहुमआउक्काइया दुविहा पन्नत्ता। तं तहा —पञ्जत्तसुहुमआउक्काइया य अपञ्जत्तसुहुम-आउक्काइया य । से त्तं सुहुमआउक्काइया ।

[२७ प्र.] वे (पूर्वोक्त) सूक्ष्म अप्कायिक किस प्रकार के हैं ?

[२७ उ.] सूक्ष्म अप्कायिक दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं— पर्याप्त सूक्ष्म-अप्कायिक और अपर्याप्त-सूक्ष्म-अप्कायिक। (इस प्रकार) यह सूक्ष्म-अप्कायिक की प्ररूपणा हुई ।

२८. [१] से किं तं बादरआउक्काइया ?

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २७-२८

बादरआउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—१ओसा हिमए महिया करए हरतणुए सुद्धोदए सेतोदए उसिणोदए खारोदए खट्टोदए अंबिलोदए लवणोदए वारुणोदए खीरोदए घओदए खोतोदए रसोदए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[२८-१प्र.] वे (पूर्वोक्त) बादर-अप्कायिक क्या (कैसे) हैं ?

[२८-१ उ.] बादर-अप्कायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार — ओस, हिम, (बर्फ), महिका (गर्भमासों में होने वाली सूक्ष्म वर्षा—धुम्मस या कोहरा), ओले हरतनु (भूमि को फोड़ कर अंकुरित होने वाले गेहूँ घास आदि के अग्रभाग पर जमा होने वाले जलिबन्दु), शुद्धोदक (आकाश में उत्पन्न होने वाला तथा नदी आदि का पानी), शीतोदक (नदी आदि का शीतस्पर्शपरिणत जल), उष्णोदक (कहीं झरने आदि से स्वाभाविकरूप से उष्णस्पर्शपरिणत जल), क्षारोदक (खारा पानी), खट्टोदक (कुछ खट्टा पानी), अम्लोदक (स्वाभाविकरूप से कांजी-सा खट्टा पानी), लवणोदक (लवण समुद्र का पानी), वारुणोदक (वरुणसमुद्र का या मदिरा जैसे स्वादवाला जल), क्षीरोदक (क्षीरसमुद्र का पानी), धृतोदक (घृतवरसमुद्र का जल), क्षोरोदक (इक्षुसमुद्र का जल) और रसोदक (पुष्करवर समुद्र का जल)। ये और तथा प्रकार के और भी (रस-स्पर्शादि के भेद से) जितने प्रकार हों, (वे सब बादर-अप्कायिक समझने चाहिए।)

[२] ते समासतो दुविहा पन्नता। तं जहा— पञ्जत्तगा य अपञ्जत्तगा य।

[२८-२] वे (ओस आदि बादर अप्कायिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार -----पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

[३] तत्थ णं जे ते अपञ्जत्तगा ते णं असंपत्ता।

[२८-३] उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे असम्प्राप्त (अपनी पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं कर पाए) हैं।

[४] तत्थ णं जे ते पञ्जत्तगा एतेसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणीपमुहसयसहस्साइं। पञ्जत्तगणिस्साए अपञ्जत्तगा वक्कमंति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेज्जा। से त्तं बादरआउक्काइया। से त्तं आउक्काइया।

[२८-४] उनमें से जो पर्याप्तक हैं, उनके वर्ण, गन्ध , रस और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों (सहस्रश:) भेद (विधान) होते हैं। उनके संख्यात लाख योनिप्रमुख हैं। पर्याप्तक जीवों के आश्रय से अपर्याप्तक और उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक पर्याप्तक हैं, वहाँ नियम से (उसके आश्रय से) असंख्यात (अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं।) यह हुआ, बादर अप्कायिकों (का वर्णन।) (और साथ ही) अप्कायिक जीवों की (प्ररूपणा पूर्ण हुई।)

१. आचारांगसूत्रनिर्युक्तिकार ने बादर-अप्काय के — "सुद्धोदए य १ उस्सा २ हिमे य ३ महिया य ४ हरतणू चेव। बायरआउविहाणा पंचविहा विण्णया एए॥ १०८॥" इस गाथानुसार ५ ही भेदों का निर्देश किया है। तथा उत्तराध्ययनसूत्र अ. ३६, गाथा ८६ में भी ये ही पांच भेद गिनाए हैं, जबिक यहाँ अनेक भेद बताए हैं। — सं.

विवेचन अप्कायिक जीवों की प्रज्ञापना प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. २६ से २८ तक) में अप्कायिक जीवों के दो मुख्य प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है।

तेजस्कायिक जीवों की प्रज्ञापना

२९. से किं तं तेउक्काइया ?

तेउक्काइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा-सुहुमतेउक्काइया य बादरतेउक्काइया य ।

[२९ प्र.] वे (पूर्वोक्त) तेजस्कायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[२९ उ.] तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार — सूक्ष्म तेजस्कायिक और बादर तेजस्कायिक ।

३०. से किं तं सुहमतेउक्काइया ?

सुहुमतेउक्काइया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—पञ्जत्तगा य अपञ्जत्तगा य से त्तं सुहुमतेउक्काइया।

[३० प्र.] सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[३० उ.] सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार — पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह हुआ पूर्वोक्त सूक्ष्म तेजस्कायिक का वर्णन।

३१. [१] से किं तं बादरतेउक्काइया ?

बादरतेउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—इंगाले जाला मुम्मुरे अच्ची अलाए सुद्धागणी उक्का विञ्जू असणी णिग्घाए संघरिससमुद्विए सूरकंतमणिणिस्सिए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा ।

[३१-१ प्र.] वे (पूर्वोक्त) बादर तेजस्कायिक किस प्रकार के हैं ?

[३१-१ उ.] बादर तेजस्कायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—अंगार, ज्वाला, (जाज्वल्यमान खैर आदि की ज्वाला अथवा अग्नि से सम्बद्ध दीपक की लौ), मुर्मुर (राख में मिले हुए अग्निकण या भोभर), अर्चि (अग्नि के गोले की अग्नि), उल्का , विद्युत (आकाशीय विद्युत), अशिन (आकाश से गिरने वाले अग्निकण), निर्घात (वैक्रिय सम्बन्धित अशिनपात या विद्युत्पात), संघर्ष-समुत्थित (अरिण आदि की लकड़ी की रगड़ से पैदा होने वाली अग्नि), और सूर्यकान्तमणि-नि:सृत (सूर्य की प्रखर किरणों के सम्पर्क में सूर्यकान्तमणि से उत्पन्न होने वाली अग्नि)। इसी प्रकार की अन्य जो भी(अग्नियाँ) हैं (उन्हें बादर तेजस्कायिकों के रूप में समझना चाहिए।)

[२] ते समासतो दुविहा पन्नता। तं जहा-पञ्जत्तगा य अपञ्जत्तगा य ।

[३१-२] ये (उपर्युक्त बादर तेजस्कायिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार — पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

[३] तत्थ णं जे ते अपञ्जत्तगा ते णं असंपत्ता।

[३१-३] उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे (पूर्ववत्) असम्प्राप्त (अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्णतया अप्राप्त) हैं।

[४] तत्थ णं जे ते पञ्जत्तगा एएसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेण रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेञ्जाइं जोणिप्यमुहसयसहस्साइं। पञ्जत्तगणिस्साए अपञ्जत्तगा वक्कमंति-जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेञ्जा। से त्तं बादरतेउक्काइया। से त्तं तेउक्काइया।

[३१-४] उनमें से जो पर्याप्तक हैं, उनके वर्ण गन्ध रस और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों (सहस्रशः) भेद होते हैं। उनके संख्यात लाख योनि-प्रमुख हैं। पर्याप्तक (तेजस्कायिकों) के आश्रय से अपर्याप्त (तेजस्कायिक) उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक पर्याप्तक होता है, वहाँ नियम से असंख्यात अपर्याप्तक (उत्पन्न होते हैं।)

यह हुई बादर तेजस्कायिक जीवों की प्ररूपणा। (साथ ही) तेजस्कायिक जीवों की भी प्ररूपणा पूर्ण हुई।

विवेचन—तेजस्कायिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. २९ से ३१ तक) में तेजस्कायिक जीवों के मुख्य दो प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है।

वायुकायिक जीवों की प्रज्ञापना

३२. से किं तं वाउक्काइया ?

वाउक्काइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा-सुहुमवाउक्काइया य बाद्रवाउक्काइया य ।

[३२ प्र.] वायुकायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[३२ उ.] वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं — सूक्ष्म वायुकायिक और बादर वायुकायिक।

३३. से किं तं सुहुमवाउक्काइया ?

सुहुमवाउक्काइया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—पञ्जत्तगसुहुमवाउक्काइया य अपञ्जत्तगसुहुम-वाउक्काइया य। से त्तं सुहुमवाउक्काइया।

[३३ प्र.] वे (पूर्वोक्त) सूक्ष्म वायुकायिक कैसे हैं ?

[३३ उ.] सूक्ष्म वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार — पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक और अपर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक।

यह हुआ, वह (पूर्वोक्त) सूक्ष्म वायुकायिकों का वर्णन ।

३४. [१] से किं तं बादरवाउक्काइया ?

बादरवाउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—पाईणवाए पडीणवाए दाहिणवाए उदीण-

प्रथम प्रज्ञापनापद]

वाए उड्ढवाए अहोवाए तिरियवाए विदिसीवाए वाउब्भामे वाउक्किलया वायमंडिलया उक्किलयावाए मंडिलयावाए गुंजावाए झंझावाए संवट्टगवाए घणवाए तणुवाए सुद्धवाए, जे यावऽण्णे तहप्पगारे।

[३४-१ प्र.] वे बादर वायुकायिक किस प्रकार के हैं ?

[३४-१ उ.] बादर वायुकायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—पूर्वी वात (पूर्विदशा से बहती हुई वायु), पश्चिमो वायु, दिक्षणी वायु, उत्तरी वायु ऊर्ध्ववायु, अधोवायु, तिर्यग्वायु (तिरछी चलती हुई हवा), विदिग्वायु (विदिशा से आती हुई हवा), वातोद्ध्राम (अनियत-अनवस्थित वायु), वातोत्किलिका (समुद्र के समान प्रचण्ड गित से बहती हुई तूफानी हवा), वात-मण्डिलका (वातोली), उत्किलिकावात (प्रचुरतर उत्किलिकाओं—आंधियों से मिश्रित हवा), मण्डिलकावात (मूलत: प्रचुर मण्डिलकाओं—गोल-गोलचक्करदार हवाओं से प्रारम्भ होकर उठने वाली वायु), गुंजावात (गूंजती हुई—सनसनाती हुई—चलने वाली हवा) झंझावात (वृष्टि के साथ चलने वाला अंधड़), संवर्तकवात (खण्ड-प्रलयकाल में चलने वाली वायु अथवा तिनके आदि उड़ाकर ले जाने वाली आंधी), घनवात (रत्नप्रभादि पृथ्वियों के नीचे रही हुई सघन—ठोस वायु), तनुवात (घनवात के नीचे रही हुई पतली वायु) और शुद्धवात (मशक आदि में भरी हुई या धीमी -धीमी बहने वाली हवा।

अन्य जितनी भी इस प्रकार की हवाएँ हैं, (उन्हें भी बादर वायुकायिक ही समझना चाहिए)।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पञ्जत्तगा य अपञ्जगा य।

[३४-२] वे (पूर्वोक्त बादर वायुकायिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

[३] तत्थ णं ते ते अपञ्जत्तगा ते णं असंपत्ता।

[३४-३] इनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे असम्प्राप्त (अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं किये हुए) हैं।

[४] तत्थ णं जे ते पञ्जत्तगा एतेसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेञ्जाइं जोणिप्यमुहसयसहस्साइं। पञ्जत्तगणिस्साए अपञ्जत्तया वक्कमंति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेञ्जा। से त्तं बादरवाउक्काइया। से त्तं वाउक्काइया।

[३४-४] इनमें से जो पर्याप्तक हैं, उनके वर्ण की अपेक्षा से गन्ध की अपेक्षा से रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों प्रकार (विधान) होते हैं। इनके संख्यात लाख योनि-प्रमुख होते हैं। (सूक्ष्म और बादर वायुकायिक की मिला कर ७ लाख योनियां हैं)। पर्याप्तक वायुकायिक के आश्रय से, अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक (पर्याप्तक वायुकायिक) होता है वहाँ नियम से असंख्यात (अपर्याप्तक वायुकायिक) होते हैं। यह हुआ—बादर वायुकायिक (का वर्णन)। (साथ ही), वायुकायिक जीवों की (प्ररूपणा पूर्ण हुई)।

विवेचन—वायुकायिक जीवों की प्रज्ञापना— प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. ३२ से ३४ तक) में वायुकायिक जीवों के दो मुख्य प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है।

वनस्पतिकायिकों की प्रज्ञापना

३५. से किं तं वणस्सइकाइया ?

वणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सुहुमवणस्सइकाइया य बादरवणस्सितिकाइया य।

[३५ प्र.] वे (पूर्वोक्त) वनस्पतिकायिक जीव कैसे हैं ?

[३५ उ.] वनस्पतिकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार — सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और बादर वनस्पतिकायिक।

[३६] से किं तं सुहुमवणस्सइकाइया ?

सुहुमवणस्सङ्काइया दुविहा पन्नत्ता। ते जहा- पञ्जत्तसुहुमवणस्सकाइया य अपञ्जत्त-सुहुमवणस्सङ्काइया य। से त्तं सुहुमवणस्सङ्काइया ।

[३६ प्र.] वे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[३६ उ.] सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार — पर्याप्तक सूक्ष्मवनस्पतिकायिक और अपर्याप्तक सूक्ष्मवनस्पतिकायिक। यह हुआ सूक्ष्म वनस्पतिकायिक (का निरूपण)।

३७. से किं तं बादरवणस्सइकाइया ?

बादरवणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया य साहारण-सरीरबादरवणप्फइकाइया य।

[३७ प्र.] अब प्रश्न है— बादर वनस्पतिकायिक कैसे हैं ?

[३७ उ.] बादर वनस्पतिकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार —प्रत्येक शरीर बादरवनस्पतिकायिक और साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिक ।

३८. से किं तं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया ?

पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया दुवालसविहा पन्नता। तं जहा---

रुक्खा १ गुच्छा २ गुम्मा ३ लता य ४ वल्ली य ५ पव्चगा चेव ६।

तण ७ वलय ८ हरिय ९ ओसहि १० जलरुह ११ कुहणा य १२ बोद्धव्वा॥ १२॥

[३८ प्र.] वे प्रत्येक शरीर-बादरवनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[३८ उ.] प्रत्येक शरीर बादरवनस्पितकायिक जीव बारह प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार से हैं —(१) वृक्ष (आम, नीम आदि), (२) गुच्छ (बैंगन आदि के पौधे), (३) गुल्म (नवमालिका आदि), (४) लता (चम्पकलता आदि), (५) वल्ली (कूष्माण्डी त्रपुषी आदि बेलें), (६) पर्वग (इक्षु आदि पर्व-पोर-गांठ वाली वनस्पित), (७) तृण (कुश, कास, दूब आदि हरी घास), (८) वलय (जिनकी छाल वलय के आकार की गोल होती है, ऐसे केतकी, कदली आदि), (९) हरित (बथुआ आदि हरी

लिलोती), (१०) औषधि (गेहूँ आदि धान्य, जो फल (फसल) पकने पर सूख जाते हैं), (११) जलरुह (पानी में उगने वाली कमल, सिंघाड़ा, उदकावक आदि वनस्पति) और (१२) कुहण (भूमि को फोड़ कर उगने वाली वनस्पति), (ये बारह प्रकार के प्रत्येकशरीर-बादरवनस्पतिकायिक जीव) समझने चाहिए।

३९. से किं तं रुक्खा ?

रुक्खा दुविहा पन्नता। तं जहा-एगट्टिया य बहुबीयगा य ।

[३९ प्र.] वे वृक्ष कितने प्रकार के हैं ?

[३९ उ.] वृक्ष दो प्रकार के कहे गए हैं —एकास्थिक (प्रत्येक फल में एक गुठली या बीज वाले) और बहुबीजक (जिनके फल में बहुत बीज हों)।

४०. से किं तं एगड्डिया ?

एगट्टिया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा---

णिंबंब जंबु कोसंब साल अंकोल्ल पीलु सेलू य। सल्लइ मोयइ मालुय बउल पलासे करंजे य॥१३॥ पुत्तंजीवयऽरिट्ठे बिभेलए हरडए य भल्लाए। उंबेभिरया खीरिण बोधव्वे धायइ पियाले॥१४॥ पूई करंज सेण्हा (सण्हा) तह सीसवा य असणे य। पुण्णाग णागरुक्खे सोवण्णि तहा असोगे य॥१५॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

एतेसि णं मूला असंखेज्जजीविया, कंदा वि खंधा वि तया वि साला वि पवाला वि। पत्ता पत्तेयजीविया। पुष्फा अणेगजीविया। फला एगट्टिया। से त्तं एगट्टिया।

[४० प्र.] एकास्थिक (प्रत्येक फल में एक बीज-गुठली वाले) वृक्ष किस प्रकार के होते हैं?

[४० उ.] एकास्थिकवृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं---

[गाथार्थ—] नीम, आम, जामुन, कोशम्ब (कोशाम्र—जंगली आम,) शाल, अंकोल्ल (अखरोट या पिश्ते का पेड़), पीलू, शेलु (लिसोड़ा) सल्लकी (हाथी को प्रिय), मोचकी, मालुक, बकुल, (मौलसरी) पलाश (खाखरा या ढाक), करंज (नक्तमाल)॥ १३॥

पुत्रजीवक (पित्तौझिया), अरिष्ठ (अरीठा) बिभीतक, (बहेड़ा), हरड या जियापोता, भल्लातक (भिलावा), उम्बेभरिया, खीरणि (खिरनी), धातकी और प्रियाल॥ १४॥

पूतिक (निम्ब—निम्बौली), करञ्ज, श्लक्ष्ण (या प्लक्ष)तथा शींशपा, अशन और पुन्नाग (नागकेसर), नागवृक्ष, श्रीपर्णी और अशोक; (ये एकास्थिक वृक्ष हैं)।

इसी प्रकार के अन्य जितने भी वृक्ष हों, (जो विभिन्न देशों में उत्पन्न होते हैं तथा जिनके फल में एक ही गुठली हो; उन सबको एकास्थिक ही समझना चाहिए।) ॥ १५॥

इन (एकास्थिक वृक्षों) के मूल असंख्यात जीवों वाले होते हैं, तथा कन्द भी, स्कन्ध भी त्वचा (छाल) भी, शाखा (साल) भी और प्रवाल (कोंपल) भी (असंख्यात जीवों वाले होते हैं), किन्तु इनके पत्ते प्रत्येक जीव (एक-एक पत्ते में एक-एक जीव) वाले होते हैं। इनके फल एकास्थिक (एक ही गुठली वाले) होते हैं। यह हुआ—उस (पूर्वोक्त) एकास्थिक वृक्ष का वर्णन।

४१. से किं तं बहुबीयगा ?

बहुबीयगा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा---

अत्थिय तिंदु किविट्ठे अंबाडग माउलिंग बिल्ले य।
आमलग फणस दाडिम आसोत्थे उंबर वडे य॥ १६॥
णग्गोह णंदिरुक्खे पिप्पिर सयरी पिलुक्खरुक्खे य।
काउंबिर कुत्थंभिर बोधव्वा देवदाली य॥ १७॥
तिलिए लउए छत्तोह सिरीसे सित्तवण्ण दहिवने।
लोद्ध थव चंदणऽज्जुण णीमे कुडए कयंबे य॥ १८॥

ये यावऽण्णे तहप्पगारा। एएसि णं मूला वि असंखेज्जजीविया, कंदा वि खंधा वि तया वि साला वि पवाला वि। पत्ता पत्तेयजीविया। पुष्फा अणेगजीविया। फला बहुबीया। से त्तं बहुबीयगा से त्तं रुक्खा।

[४१ प्र.] और वे (पूर्वोक्त) बहुबीजक वृक्ष किस प्रकार के हैं ?

[४१-२] बहुबीजक वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार से हैं—

[गाथार्थ—] अस्थिक, तेन्दु (तिन्दुक), किपत्थ (कवीठ), अम्बाडग, मातुलिंग (बिजौरा), बिल्व (बेल), आमलक (आँवला), पनस (अनन्नास)दाड़िम (अनार) अश्वत्थ (पीपल), उदुम्बर (गुल्लर), वट (बड़), न्यगोध (बड़ा बड़), ॥ १६॥

नन्दिवृक्ष, पिप्पली (पीपल), शतरी (शतावरी), प्लक्षवृक्ष, कादुम्बरी, कस्तुम्भरी और देवदाली (इन्हें बहुबीजक) जानना चाहिए॥ १७॥

तिलक लवक (लकुच—लीची), छत्रोपक, शिरीष, सप्तपर्ण, दिधपर्ण, लोध्र, धव, चन्दन, अर्जुन, नीप, कुरज (कुटक) और कदम्ब॥ १८॥

इस प्रकार के और भी जितने वृक्ष हैं, (जिनके फल में बहुत बीज हों; वे सब बहुबीजक वृक्ष समझने चाहिये।)

इन (बहुबीजक वृक्षों) के मूल असंख्य जीवों वाले होते हैं। इनके कंद, स्कन्ध, त्वचा (छाल), शाखा और प्रवाल भी (असंख्यात जीवात्मक होते हैं) इनके पत्ते प्रत्येक जीवात्मक (प्रत्येक पत्ते में एक-एक जीव वाले) होते हैं। पुष्प अनेक जीवरूप (होते हैं) और फल बहुत बीजों वालें (हैं)। यह हुआ बहुबीजक (वृक्षों का वर्णन)। (साथ ही) वृक्षों की प्ररूपणा (भी पूर्ण हुई)।

४२. से किं तं गुच्छा ?

गुच्छा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जया—

वाइंगण सल्लई बोंडई य तह कच्छुरी य जासुमणा। किवी अढइ नीली तुलसी तह माउलिंगी य॥ १९॥ कत्थुंभिर पिप्पलिया अतसी बिल्ली य कायमाई या। चुच्चु पडोला कंदिल बाउच्चा वत्थुले बदरे॥ २०॥ पत्तउर सीयउरए हवित तहा तवसए य बोधव्वे। णिग्गुंडि अक्क तूवरी अट्टइ चेव तलऊडा॥ २१॥ सण वाण कास मद्दग अग्धाडग साम सिंदुवारे य। करमद अद्दरूसग करीर एरावण महित्थे॥ २२॥ जाउलग माल परिली गयमारिण कुच्चकारिय शिंडी । २२॥ जावड विशेष से सह गंज पाडला दासी अंकोल्ले । २३॥

ये यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं गुच्छा ।

[४२ प्र.] वे (पूर्वीक्त)गुच्छ किस प्रकार के होते हैं ?

[४२.उ.] गुच्छ अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं — बैंगन, शल्यकी, बोंडी, (अथवा थुण्डकी) तथा कच्छुरी, जासुमना, रूपी, आढकी, नीली, तुलसी तथा मातुलिंगी॥१९॥

कस्तुम्भरी (धनिया), पिप्पलिका, अलसी, बिल्वी, कायमादिका, चुच्चु (वुच्चु), पटोला, कन्दली, बाउच्चा (विकुर्वी), बस्तुल तथा बादर ॥ २० ॥ पत्रपूर, शीतपूरक तथा जवसक, एवं निर्गुण्डी (निल्लु), अर्क (मृगांक), तूवरी (तबरी), अट्टकी (अस्तकी), और तलपुट्टा (तलउडादा) भी समझना चाहिए ॥ २१ ॥ तथा सण (शण), वाण (पाण), काश (कास), मद्रक (मुद्रक), आघ्रातक, श्याम, सिन्दुवार और करमर्द, आर्द्रडूसक, (अडूसा) करीर (कैर), एैरावण तथा महित्थ ॥ २२ ॥ जातुलक, मोल, परिली, गजमारिणी, कुर्च्चकारिका (कुर्व्चकारिका), भंडी (भंड), जावकी (जीवकी), केतकी तथा गंज, पाटला, दासी और अंकोल्ल ॥ २३ ॥

अन्य जो भी इस प्रकार के (इन जैसे) हैं, (वे सब गुच्छ समझने चाहिए)। यह हुआ गुच्छ का वर्णन।

पाठान्तर —१. थुंडई। २ कत्थुरी य जीभुमणा। ३ कच्छुँभरी ४ वुच्चु। ५पडोलकंदे। ६ विउळ्वा वत्थलंदरे। ७. णिग्गु मियंगं तबरि, अत्थई चेव तलउदाडा। ८. पाण । ९. मुद्दग । १०. मोल । ११. कुळ्वकारिया। १२. भंडा। १३. जीवइ। १४. अकोले।

४३. से किं तं गुम्मा ? गुम्मा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा —

सेरियए^१ णोमालिय कोरंटय बंधुजीवग मणोज्ने। पीईय पाण कणइर कुज्नय तह सिंदुवारे य॥ २४॥ जाई मोग्गर तह जूहिया य तह मिल्लया य वासंती। वत्थुल कच्छुलं^२ सेवाल गंठि मगदंतिया चेव॥ २५॥ चंपगजीती णवणीइया^३ य कुंदो तहा महाजाई। एवमणेगागारा हवंति गुम्मा मुणेयव्वा॥ २६॥

से त्तं गुम्मा।

[४३ प्र.] वे (पूर्वोक्त) गुल्म किस प्रकार के हैं ?

[४३ उ.] गुल्म अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—से रितक (सेनतक), नवमालती, कोरण्टक, बन्धुजीवक, मनोद्य, पीतिक (पितिक), पान, कनेर (कर्णिकार), कुर्जक (कुंजक), तथा सिन्दुवार ॥ २४५ ॥ जाती (जाई), मोगरा, जूही (यूथिका), तथा मिल्लका और वासन्ती, वस्तुल, कच्छुल (कस्थुल), शैवाल, ग्रंथि एवं मृगदिन्तका ॥ २५ ॥ चम्पक जीती, नवनीतिका, कुन्द तथा महाजाति; इस प्रकार अनेक आकार-प्रकार के होते हैं (उन सबको) गुल्म समझना चाहिए॥ २६ ॥ यह हुई गुल्मों की प्ररूपणा।

४४. से किं तं लयाओ ?

लयाओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ। तं जहा---

पउमलता नागलता असोग-चंपयलता य चूतलता। वणलय वासंतिलया अइमुत्तय-कुंद-सामलता॥ २७॥ ये यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं लयाओ।

[४४ प्र.] वे (पूर्वोक्त) लताएँ किस प्रकार की होती हैं ?

[४४ उ.] लताएँ अनेक प्रकार की कही गई हैं। यथा — पद्मलता, नागलता, अशोकलता, चम्पकलता, और चूतलता, वनलता, वासन्तीलता, अतिमुक्तलता और श्यामलता॥ २७॥

और जितनी भी इस प्रकार की हैं, (उन्हें लता समझना चाहिए।) यह हुआ उन लताओं का वर्णन।

४५. से किं तं वल्लीओ ?

वल्लीओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ। तं जहा----

पूसफली कालिंगी तूंबी तउसी य एलवालुंकी। घोसाडई^४ पडोला पंचंगुलिया य णालीया^५॥ २८॥

पाठान्तर — १. सेणयए। २. कत्थुल। ३. णीइया। ४. घोसाडइ पंडोला, घोसाई य पडोला। ५. आयणीली य।

कंगूया कद्दुइया^१ कक्कोडइ कारियल्लई सुभगा। कुवधा (या)^२ य वागली पावविल्ल तह देवदारू^३ य॥ २९॥ अफ्फोया^४अइमुत्तय णागलया कण्ह-सूरवल्ली य। संघट्ट सुमणसा वि य जासुवण कुविंदवल्ली य॥ ३०॥ मुद्दिय अप्पा^५ भल्ली छीरविराली^६ जियंति^७ गोवाली। पाणी मासावल्ली गुंजावल्ली^८ य वच्छाणी^९॥ ३१॥ ससिंदु गोत्तफुसिया^{६०} गिरिकण्णइ मालुया य अंजणई। दहफुल्लइ^{११} कागणि^{१२} मोगली य तह अक्कबोंदी य॥ ३२॥

ये यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं वल्लीओ।

[४५ प्र.] वे (पूर्वोक्त) विल्लियाँ किस प्रकार की होती हैं ?

[४५ उ.] विल्लयाँ अनेक प्रकार की कहीं गई हैं। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] पूसफली, कालिंगी (जंगली तरबूज की बेल), तुम्बी, त्रपुषी (ककड़ी), एलवालुकी (एक प्रकार की ककड़ी), घोषातकी, पटोला, पंचांगुलिका और नालीका (आयनीली) ॥ २८॥

कंगुका, कुद्दिकका (कण्डिकका), कर्कोटकी (कंकोड़ी या ककड़ी), कारवेल्लकी (कारेली), सुभगा, कुवधा, (कुवया—कुयवाया) और वागली, पापवल्ली, तथा देवदारु (देवदाली) ॥ २९ ॥ अफ्फोया (अफ्फेया), अतिमुक्ता, नागलता और कृष्णसूरवल्ली, संघट्टा और सुमनसा भी तथा जासुवन और कुविन्दवल्ली ॥ ३० ॥ मुद्दीका, अप्पा, भल्ली (अम्बावली), क्षीरिवर्गली (कृष्णक्षीरीली), जीयंती (जयंती), गोपाली, पाणी, मासावल्ली, गुंजावल्ली, (गुजीवल्ली) और वच्छाणी (विच्छाणी) ॥ ३१ ॥

शशबिन्दु, गोत्रस्पृष्टा, (सिसवी द्विगोत्रस्पृष्टा), गिरिकर्णकी, मालुका और अंजनकी, दहस्फोटकी (दिधस्फोटकी), काकणी (काकली) और मोकली तथा आर्कबोन्दी॥ ३२॥

इसी प्रकार की अन्य जितनी भी (वनस्पतियाँ हैं, उन सबको विल्लयाँ समझना चाहिए।) यह हुई, विल्लयों की प्ररूपणा।

४६. से किं तं प्रव्यगा ? पव्यगा अणेगविहा पन्नत्ता। तं जहा—

> इक्खू य इक्खुवाडी वीरण तह एक्कडे^{१३} भमासे य। सुंठे (सुंबे) सरे य वेत्ते तिमिरे सतपोरग णले य॥ ३३॥

पाठान्तरः १. कंडुइया। २. कुवया, कुयवाया। ३. देवदाली य। ४. अप्फेया। ५. अम्बावल्ली। ६. किण्हछीराली। ७. जयंती। ८. गुजीवल्ली। ९. विछाणी। १०. ससिवी दुगोत्तफुसिया। ११. दिहफोल्लइ। १२. काकली। १३. एक्कडे य मासे।

वंसे वेलू^१ कणए कंकावंसे य वाववंसे य। उदए कुडए विमए^२ कंडावेलू य कल्लाणे॥ ३४॥

ये यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं पव्वगा।

[४६ प्र.] वे पर्वक (वनस्पतियाँ) किस प्रकार की हैं ?

[४६ उ.] पर्वक वनस्पतियाँ अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं----

[गाथार्थ —] इक्षु और इक्षुवाटी, वीरण [वीरुणी] तथा एक्कड, भमास [माष], सूंठ (सुम्ब) शर और वेत्र) (बेंत), तिमिर, शतपर्वक और नल॥ ३३॥ वंश (बांस), वेलू (वेच्छू), कनक, कंकावंश और चापवंश, उदक, कुटज, विमक (विसक), कण्डा, वेलू (वेल्ल) और कल्याण॥ ३४॥

और भी जो इसी प्रकार की वनस्पतियाँ हैं, (उन्हें पर्वक में ही समझनी चाहिए।) यह हुई, उन पर्वकों की प्ररूपणा।

४७. से किं तं तणा ?

तणा अणेगविहा पण्णता। तं जहा —

सेडिय भित्तय होत्तिय डब्भ कुसे पव्वए य पोडइला। अञ्जुण असाढए रोहियंसे सुयवेय खीरतुसे ।। ३५॥ एरंडे कुरंविंदे कक्खड , सुंठे तहा विभंगू य। महुरतण लुणय सिप्पिय बोधव्वे सुंकलितणा य॥ ३६॥

ये याव्रऽण्णे तहप्पगारा। से त्त तणा।

[४७ प्र.] वे (पूर्वोक्त) तृण कितने प्रकार के हैं ?

[४७ उ.] तुण अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं---

[गाथार्थ—] सेटिक (सेंडिक), भिक्तक, (मांत्रिक), होत्रिक, दर्भ, कुश और पर्वक, पोटिकला, (पाटिकला—पोटिलका), अर्जुन, आषाढक, रोहितांश, शुकदेव और क्षीरतुष (क्षीरभुसा) ॥ ३५ ॥ एरण्ड कुरुविन्द, कक्षट (करकर), सूंठ (मुट्ठ), विभंगू और मधुरतृण, लवणक, (क्षुरक), शिल्पिक (शुक्तिक) और संकुलीतृण(सुकलीवृण), (इन्हें) तृण जानना चाहिए॥ ३६॥ जो अन्य इसी प्रकार के हैं (उन्हें भी तृण समझना चाहिए। यह हुई उन (पूर्वकथित) तृणों की प्ररूपणा।

४८. से किं तं वलया ?

वलया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

ताल तमाले तक्किल तेयिल^६ सारे य सारकल्लाणे। सरले जावित केयइ कदली^७ तह धम्मरुक्खे य॥ ३७॥

पाठान्तर— १. मंतिय। २. खीरभुसे। ३. कस्कर। ४. वेच्छू। ५. विसए, कंडावेल्ले। ६. तोयली साली य सारकत्ताणे। ७. कयली तह चम्मरुक्खे य।

भुयरुक्ख हिंगुरुक्खे लवंगरुक्खे य होति बोधव्वे। पूयफली खञ्जूरी बोधव्वा नालिएरी य॥ ३८॥

ये यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं वलाया।

[४८ प्र.] वे वलय (जाति की वनस्पतियां) किस प्रकार की हैं ?

[४८ उ.] वलय-वनस्पितयां अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं---

[गाथार्थ—] ताल (ताड़), तमाल, तर्कली (तक्कली), तेतली (तोतली), सार (शाली), सार-कल्याण (सारकत्राण), सरल जावती (जावित्री), केतकी (केवड़ा), कदली (केला) और धर्मवृक्ष (चर्मवृक्ष) ॥ ३७ ॥ भुजवृक्ष (मुचवृक्ष), हिंगुवृक्ष और (जो) लवंगवृक्ष होता है, (इसे वलय) समझना चाहिए। पूगफली (सुपारी), खजूर और नालिकेरी (नारियल), (इन्हें भी वलय) समझना चाहिए॥ ३८॥

४९. से किं तं हरिया ?

हरिया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा---

अञ्जोरुह वोडाणे हरितग तह तंदुलेञ्जग तणे य। वत्थुल पारग^१ मञ्जार पाइ बिल्ली य पालक्का॥३९॥ दगिपप्पली य दव्वी सोत्थिसाए तहेव मंडुक्की। मूलग सरिसव अंबिलसाए य जियंतए चेव॥४०॥ तुलसी कण्ह उराले फणिञ्जए अञ्जए व भूयणए। चोरग दमणग मरुयग सयपुर्ण्फिदीवरे य तहा॥४१॥

ये यावऽण्णे तहप्पगारा। ते सं हरिया।

[४९ प्र.] वे (पूर्वोक्त) हरित (वनस्पतियां) किस प्रकार की हैं ?

[४९ उ.] हरित वनस्पितयाँ अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं---

[गाथार्थ—] अद्यावरोह, व्युदान हरितक तथा तान्दुलेयक (चन्दिलया), तृण, वस्तुल (बथुआ), पारक (पर्वक), मार्जार, पाती बिल्वी और पाल्यक (पालक)॥ ३९॥ दकिपप्पली और दर्वी, स्वस्तिक शक (सौत्रिक शाक), तथा माण्डुकी, मूलक सर्षप (सरसों का साग), अम्लशाक (अम्ल साकेत) और जीवान्तक॥ ४०॥ तुलसी, कृष्ण, उदार, फानेयक और आर्यक (आर्षक), भुजनक (भूसनक) चोरक (वारक), दमनक, मरुचक, शतपुष्पी तथा इन्दीवर॥ ४१॥

अन्य जो भी इस प्रकार की वनस्पतियाँ हैं, (वे सब हरित(हरी या लिलौती) के अन्तर्गत समझनी चाहिए। यह हुई उन हरित (वनस्पतियों की) प्ररूपणा।

पाठान्तर- १. पोरग मज्जार याइ।

५०. से किं तं ओसहीओ ?
ओसहीओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ । तं जहा—
साली १ वीही २ गोधूम ३ १ जवजवा ४ कल ५ मसूल ६ तिल ७ मुग्गा ८।
बास ९ निप्फाव १० कुलत्थ ११ अलिसंद १२ सतीण १३ पिलमंथा१४ ॥ ४२॥
अयसी १५ कुसुंभ १६ कोद्दव १७ कंगू १८ रालग १९ २ वरसामग २० कोदूसा २१।
सण २२ सिरसव २३ मूलग २४ बीय २५ जा यावऽण्णा तहपगारा॥ ४३॥

[५० प्र.] वे ओषधियाँ किस प्रकार की होती हैं ?

[५० उ.] ओषधियां अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं---

[गाथार्थ—] १. शाली (धान), २. व्रीहि (चावल), ३. गोधूम (गेहूँ), ४. जौ (यवयव), ५. कलाय, ६. मसूर, ७. तिल, ८. मूंग, ९. माष (उड़द), १०. निष्पाव, ११. कुलत्थ (कुलथ), १२. अलिसन्द, १३. सतीण, १४. पिलमन्थ ॥ ४२ ॥ १५. अलसी, १६. कुसुम्भ, १७. कोदों (कोद्रव), १८. कंगू, १९. राल (रालक), २०. वरश्यामाक (सांवा धान) और २१. कोदूस (कोद्दंश), २२. शणसन, २३. सरसों (दाने), २४. मूलक बीज; ये और इसी प्रकार की अन्य जो भी (वनस्पतियां) हैं, (उन्हें भी ओषधियों में गिनना चाहिए।) ॥ ४३॥

यह हुआ ओषधियों का वर्णन।

५१. से किं तं जलरुहा ?

जलरुहा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा — उदए अवए पणए सेवाले कलंबुया हढे कसेरुया कच्छा भाणी उप्पले पउमे कुमुदे निलणे सुभए सोगंधिए पोंडरीए महापोंडरीए सयपत्ते सहस्सपत्ते कल्हारे कोकणदे अरविंदे तामरसे भिसे भिसमुणाले पोक्खले पोक्खलित्थिभए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से तं जलरुहा।

[५१ प्र.] वे जलरुह (रूप वनस्पतियां) किस प्रकार की हैं ?

[५१ उ.] जल में उत्पन्न होने वाली (जलरुह) वनस्पितयां अनेक प्रकार की कहीं गई हैं। वे इस प्रकार हैं—उदक, अवक, पनक, शैवाल, कलम्बुका, हढ (हठ), कसेरुका (कसेरू), कच्छा, भाणी, उत्पल, पद्म, कुमुद, निलन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, कल्हार, कोकनद, अरिवन्द, तामरस कमल, भिस, भिसमृणाल, पुष्कर और पुष्कारास्तिभज (पुष्करास्तिभुक्)। इसी प्रकार की और भी (जल में उत्पन्न होने वाली जो वनस्पितयां हैं, उन्हें जलरुह के अन्तर्गत समझना चाहिए।) यह हुआ, जलरुहों का निरूपण।

पाठान्तर --- १ जव जवजवा। २ वरट्ट साम। ३ पोक्खलित्थभुए।

५२. से किं तं कुहणा ?

कुहणा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—आए काए कुहणे कुणक्के दव्वहिलया सप्फाए^१ सञ्जाए सित्ताए^२ वंसी णाहिया कुरए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं कुहणा।

[५२ प्र.] वे कुहण वनस्पतियां किस प्रकार की हैं ?

[५२ उ.] कुहण वनस्पितयां अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार — आय, काय, कुहण, कुनक्क, द्रव्यहिलका, शफाय, सद्यात (स्वाध्याय?), सित्राक (छत्रोक) और वंशी, नाहिता, कुरक (वशीन, हिताकुरक)। इसी प्रकार की जो अन्य वनस्पितयां उन सबको कुहण के अन्तर्गत समझना चाहिए। यह हुआ कुहण वनस्पितयों का वर्णन।

५३. णाणाविहसंठाणा रुक्खाणं एगजीविया पत्ता।
खंधो वि एगजीवो ताल-सरल-नालिएरीणं॥ ४४॥
जह सगलसिरसवाणं सिलेसिमस्साण विष्ट्या वट्टी।
पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीरसंघाया॥ ४५॥
जह वा तिलपप्पडिया बहुएहि तिलेहि संहता संती।
पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीरसंघाया॥ ४६॥
से त्तं पत्तेयसरीरबादरवणप्फड्काइया।

[५३ गाथार्थ—] वृक्षों (उपलक्षण से गुच्छ, गुल्म आदि) की आकृतियां नाना प्रकार की होती हैं। इनके पत्ते एकजीवक (एक जीव से अधिष्ठित) होते हैं, और स्कन्ध भी एक जीव वाला होता है। (यथा-) ताल, सरल, नारिकेल वृक्षों के पत्ते और स्कन्ध, एक-एक जीव वाले होते हैं॥ ४४॥ जैसे श्लेष द्रव्य से मिश्रित किये हुए समस्त सर्षपों (सरसों के दानों) की वट्टी (में सरसों के दाने पृथक्-पृथक् होते हुए भी) एकरूप प्रतीत होती हैं, वैसे ही (रागद्वेष से उपिचत विशिष्टकर्मश्लेष से) एकत्र हुए प्रत्येकशरीरी जीवों के (शरीर भिन्न होते हुए भी) शरीरसंघात रूप होते हैं॥ ४५॥ जैसे तिलपपड़ी (तिलपट्टी) में (प्रत्येक तिल अलग-अलग प्रतीत होते हुए भी) बहुत-से तिलों के संहत (एकत्र) होने पर होती हैं, वैसे ही प्रत्येकशरीरी जीवों के शरीरसंघात होते हैं॥ ४६॥

इस प्रकार उन (पूर्वोक्त) प्रत्येकशरीर बादरवनस्पतिकायिक जीवों की प्रज्ञापना पूर्ण हुई। ५४. [१] से किं तं साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया ?

> साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा— अवए पणए सेवाले लोहिणी ^३मिहू त्थिहू त्थिभगा। असकण्णी सीहकण्णी सिउंढि तत्तो मुसुंढी य॥ ४७॥

करु कंडुरिया जारू दीरिवराली तहेव किट्ठीया ।
हिलिद्दा सिंगबेरे य आलूगा मूलए इ य ॥ ४८ ॥
केंब्रू य कण्हकडबू महुओ वलई तहेव महुसिंगी ।
णिरुहा सप्पसुयंधा छिण्णरुहा चेव बीयरुहा ॥ ४९ ॥
पाढा मियवालुंकी महुररसा चेव रायवल्ली य।
पउमा य माढरी दंती चंडी किट्ठि त्ति यावरा ॥ ५० ॥
मासपण्णी मुग्गपण्णी जीवियरसभेय रेणुया चेव ।
काओली खीरकाओली तहा भंगी णहीइ य ॥ ५१ ॥
किमिरासि भद्दमुत्था णंगलई पलुगा इय ।
किण्हे पउले य हढे हरतणुया चेव लोयाणी ॥ ५२ ॥
कण्हे कंदे वज्जे सूरणकंदे तहेव खल्लूडे।
एए अणंतजीवा, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ५३ ॥

[५४-१ प्र.] वे पूर्वोक्त साधारणशरीर बादरवनसपितकायिक जीव किस प्रकार के हैं ?
[५४-१उ.] साधारणशरीर बादरवनसपितकायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—
[गाथार्थ-] अवक, पनक, शैवाल, लोहिनी, स्निहूपुष्प (थोहर का फूल), मिहू स्तिहू (मिहूत्थु), हिस्तभागा और अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, सिउण्डी (शितुण्डी), तदनन्दर मुसुण्ढी ॥४७॥ रुरु, कण्डुरिका (कुण्डिरिका या कुन्दिरिका), जीरु (जारु), क्षीरिवरा (डा) ली, तथा किट्टिका, हिरद्रा (हल्दी), शृंगबेर (आदा या अदरक) और आलू एवं मूला ॥४८॥ कम्बू (काम्बोज) और कृष्णकटबू (कर्णोत्कट), मधुक (सुमात्रक), वलकी तथा मधुशृंगी, नीरूह, सर्पसुगन्धा, छित्ररुह, और बीजरुह ॥ ४९॥ पाढा, मृगवालुंकी, मधुररसा और राजपत्री, तथा पद्मा, माठरी, दन्ती, इसी प्रकार चण्डी और इसके बाद किट्टी (कृष्टि)॥ ५०॥ माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवित, रसभेद, (जीवितरसह) और रेणुका, काकोली (काचोली), क्षीरकाकोली, तथा भृंगी,(भंगी), इसी प्रकार नखी ॥ ५१॥ कृमिराशि, भद्रमुस्ता (भद्रमुक्ता), नांगलकी, पलुका (पेलुका), इसी प्रकार कृष्णप्रकुल, और हड, हरतनुका तथा लोयाणी ॥ ५२॥ कृष्णकन्द, वज्रकन्द, सूरणकन्द, तथा खल्लूर, ये (पूर्वोक्त) अनन्त जीव वाले हैं । इनके अतिरिक्त और जितने भी इसी प्रकार के हैं, (वे

[२] तणमूल कंदमूले वंसमूले त्ति यावरे । संखेज्जमसंखेज्जा बोधव्वाऽणंतजीवा य ॥५४॥ सिंघाडगस्स गुच्छो अणेगजीवो उ होति नायव्वो। पत्ता पत्तेयजीया, दोण्णि य जीवा फले भणिता ॥५५॥

सब अनन्त जीवात्मक हैं।)॥ ५३॥

पाठान्तर-- १ जीरु । २ किट्टीया । ३ कंबूयं कन्नुक्कई सुमत्तओ । ४ मियमालुकी । ५ रायवत्ती । ६ वेलुगा इय ।

[५४-२] तृणमूल, कन्दमूल और वंशीमूल, ये और इसी प्रकार के दूसरे संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त जीव वाले समझने चाहिए। सिंघाड़े का गुच्छा अनेक जीव वाला होता है, यह जानना चाहिए और इसके पत्ते प्रत्येक जीव वाले होते हैं। इसके फल में दो-दो जीव कहे गए हैं॥ ५५॥

[३] जस्स मूलस्स भगगस्स समो भंगो पदीसए । अणंतजीवे उ से मूले, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ५६॥ जस्स कंदस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसए अणंतजीवे उ से कंदे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ५७॥ जस्स खंधस्स भगगस्स समो भंगो पदीसई । अणंतजीवे उ से खंधे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ५८॥ जीसे तयाए भग्गए समो भंगो पदीसए अणंतजीवा तया सा उ, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥ ५९॥ जस्स सालस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई । अणंतजीवे उ से साले, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ६०॥ जस्स पवालस्स भगगस्स समो भंगो पदीसई । अणंतजीवे पवाले से, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ६१॥ जस्स पत्तस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई अणंतजीवे उ से पत्ते, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ६२॥ जस्स पप्फस्स भगगस्स समो भंगो पदीसई । अणंतजीवे उ से पुष्फे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ६३॥ जस्स फलस्स भगगस्स समो भंगो पदीसती । अणंतजीवे फले से उ, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ६४॥ जस्स बीयस्स भगगस्स समो भंगो पदीसई । अणंतजीवे उ से बीए, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६५॥

[५४-३] जिस मूल को भंग करने (तोड़ने) पर समान (चक्राकार) दिखाई दे, वह मूल अनन्त जीव वाला है । इसी प्रकार के दूसरे जितने भी मूल हों, उन्हें भी अनन्तजीव समझना चाहिए॥ ५६॥ जिस टूटे या तोड़े हुए कन्द का भंग समान दिखाई दे, वह कन्द अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे जितने भी कन्द हों, उन्हें अनन्तजीव समझना चाहिए॥ ५७॥ जिस टूटे हुए स्कन्ध का भंग समान दिखाई दे, वह स्कन्ध (भी) अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे स्कन्धों को (भी अनन्तजीव समझना चाहिए)॥ ५८॥ जिस छाल (त्वचा) के टूटने पर उसका भंग सम दिखाई दे, वह छाल भी अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य छाल भी (अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए)॥ ५९॥ जिस टूटी हुई

शाखा (साल) का भंग समान दृष्टिगोचर हो, वह शाखा भी अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की जो अन्य (शाखाएँ) हों, (उन्हें भी अनन्तजीव वाली समझो)॥ ६०॥ टूटे हुए जिस प्रवाल (कोंपल) का भंग समान दीखे, वह प्रवाल भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के जितने भी अन्य (प्रवाल) हों, (उन्हें अनन्तजीव वाले समझो)॥ ६१॥ टूटे हुए जिस पत्ते का भंग समान दिखाई दे, वह पत्ता (पत्र) भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार जितने भी अन्य पत्र हों, उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए॥ ६२॥ टूटे हुए जिस फूल (पुष्प) का भंग समान दिखाई दे, वह भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी पुष्प हों, उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए॥ ६३॥ जिस टूटे हुए फल का भंग सम दिखाई दे, वह फल भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी फल हों, उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए॥६४॥ जिस टूटे हुए बीज का भंग समान दिखाई दे, वह बीज भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी बीज हों, उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए॥६४॥

[४] जस्स मुलस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसई। परित्तजीवे उ से मूले, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ६६॥ जस्स कंदस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसई । परित्तजीवे उ से कंदे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ६७॥ जस्स खंधस्य भगगस्स हीरो भंगे पदीसई । परित्तजीवे उ से खंधे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ६८॥ जीसे तयाए भग्गाए हीरों भंगे पदीसई । परित्तजीवा तया सा उ. जा यावऽण्णे तहाविहा ॥ ६९॥ जस्स सालस्स भगगस्स हीरो भंगे पदीसति । परित्तजीवे उ से साले. जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ७०॥ जस्स पवालस्स भगगस्स हीरो भंगे पदीसति । परित्तजीवे पवाले से उ. जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ७१ ॥ जस्स पत्तस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसति । परित्तजीवे उ से पत्ते, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ७२॥ जस्स पुष्फस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसित । परित्तजीवे उ से पुष्फे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ७३॥ जस्स फलस्स भगगस्स हीरो भंगे पदीसति। परित्तजीवे फले से उ, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ७४॥ जस्स बीयस्स भगगस्स हीरो भंगे पदीसति । परित्तजीवे उ से बीए. जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ७५॥ प्रथम प्रज्ञापनापद]

[५४-४] टूटे हुए जिस मूल का भंग (-प्रदेश) हीर (विषमछेद) दिखाई दे, वह मूल प्रत्येक (परित्त) जीव वाला है।, इसी प्रकार के अन्य जितने भी मूल हों,(उन्हें भी प्रत्येकजीव वाले समझने चाहिए)॥ ६६॥) टूटे हुए जिस कन्द के भंग-प्रदेश में हीर (विषमछेद) दिखाई दे, वह कन्द प्रत्येक जीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी (कन्द हों, उन्हें प्रत्येकजीव वाले समझो)॥ ६७॥ टूटे हुए जिस स्कन्ध के भंगप्रदेश में हीर दिखाई दे, वह स्कन्ध प्रत्येकजीव वाला है। इसी प्रकार के और भी जितने स्कन्ध हों, (उन्हें भी प्रत्येकजीव वाले समझो) ॥ ६८ ॥ जिस छाल के टूटने पर उसके भंग (प्रदेश) में हीर दिखाई दे, वह छाल प्रत्येक जीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य जितनी भी छालें (त्वचाएँ) हों, (उन्हें भी प्रत्येकजीव वाले समझो।) ॥ ६९ ॥ जिस शाखा के टूटने पर उसके भंग (प्रदेश) में विषम छेद दीखे, वह शाखा प्रत्येक जीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य जितनी भी शाखाएं हों. (उन्हें भी प्रत्येकजीव वाली समझनी चाहिए।)॥ ७०॥ जिस प्रवाल के टूटने पर उसके भंगप्रदेश में विषमछेद दिखाई दे, वह प्रवाल भी प्रत्येक जीव वाला है। इसी प्रकार के और भी जितने प्रवाल हों. (उन्हें प्रत्येकजीव वाले समझो।)॥ ७१॥ जिस टूटे हुए पत्ते के भंग-प्रदेश में विषमछेद दिखाई दे, वह पत्ता प्रत्येकजीव वाला है। इसी प्रकार के और भी जितने पत्ते हों, (उन्हें भी प्रत्येकजीव वाले समझो)॥ ७२॥ जिस पुष्प के टूटने पर उसके भंगप्रदेश में विषमछेद दिखाई दे, वह पुष्प प्रत्येकजीव वाला है। इसी प्रकार के और भी जितने (पुष्प हों, उन्हें प्रत्येक जीवी समझना चाहिए)॥ ७३॥ जिस फल के टूटने पर उसके भंगप्रदेश में विषमछेद दृष्टिगोचर हो, वह फल भी प्रत्येकजीव वाला है। ऐसे और भी जितने (फल हों, उन्हें प्रत्येकजीव वाले समझने चाहिए)॥ ७४॥ जिस बीज के ट्रटने पर उसके भंग में विषमछेद दिखाई दे, वह बीज प्रत्येकजीव वाला है। ऐसे अन्य जितने भी बीज हों, (वे भी प्रत्येकजीव वाले जानने चाहिए)॥ ७५॥

[५] जस्स मूलस्स कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे।
अणंतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥ ७६॥
जस्स कंदस्स कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे।
अणंतजीवा तु सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥ ७७॥
जस्स खंधस्य कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे।
अणंतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥ ७८॥
जीसे सालाए कट्ठाओ छल्ली, बहलतरी भवे।
अणंतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥ ७९॥

[५४-५] जिस मूल के काष्ठ (मध्यवर्ती सारभाग) की अपेक्षा छल्ली (छाल) अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है। इस प्रकार की जो भी अन्य छालें हों, उन्हें अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए॥७६॥ जिस कन्द के काष्ठ से छाल अधिक मोटी हो वह अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की जो भी अन्य छालें हों, उन्हें अनन्तजीव वाली समझना चाहिए॥७७॥ जिस स्कन्ध के काष्ठ से छाल

अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य जितनी भी छालें हों, (उन सबको अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए)। १९८॥ जिस शाखा के काष्ठ की अपेक्षा छाल अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है। इस प्रकार जितनी भी छालें हों, उन सबको अनन्तजीव वाली समझना चाहिए॥ ७९॥

[६] जस्स मूलस्स कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा॥८०॥
जस्स कंदस्स कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा॥८१॥
जस्स खंधस्स कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा॥८२॥
जीसे सालाए कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा॥८३॥

[५४-६] जिस मूल के काष्ठ की अपेक्षा उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है। इस प्रकार जितनी भी अन्य छालें हों, (उन्हें प्रत्येकजीव वाली समझो) ॥८०॥ जिस कन्द के काष्ठ से उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है। इस प्रकार की जितनी भी अन्य छालें हों, उन्हें प्रत्येकजीव वाली समझना चाहिए ॥८१॥ जिस स्कन्ध के काष्ठ की अपेक्षा, उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है। इस प्रकार की अन्य जो भी छालें हों, उन्हें प्रत्येकजीव वाली समझना चाहिए॥८२॥ जिस शाखा के काष्ठ की अपेक्षा, उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है। इस प्रकार की अन्य जो भी छालें हों, उन्हें प्रत्येकजीव वाली समझना चाहिए॥८२॥ जिस शाखा के काष्ठ की अपेक्षा, उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है। इस प्रकार की अन्य जो भी छालें हों, उन्हें प्रत्येकजीव वाली समझना चाहिए॥८३॥

[७] चक्कागं भज्जमाणस्स गंठी चुण्णघणो भवे।
पुढविसिरसेण भेएण अणंतजीवं वियाणाहि ॥ ८४॥
गूढछिरागं पत्तं सच्छीरं जं च होति णिच्छीरं।
जं पि य पणदुसंधिं अणंतजीवं वियाणाहि॥ ८५॥

[५४-७] जिस (मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, शाखा, पत्र और पुष्प आदि) को तोड़ने पर (उसका भंगस्थान) चक्राकार अर्थात् सम हो, तथा जिसकी गांठ (पर्व, गांठ या भंगस्थान) चूर्ण (रज) से सघन (व्याप्त) हो, उसे पृथ्वी के समान भेद से अनन्तजीवों वाला जानो ॥ ८४॥ जिस (मूलकन्दादि) की शिराएँ गूढ़ (प्रच्छन्न या अदृश्य) हों, जो (मूलादि) दूध वाला हो अथवा जो दूध-रहित हो तथा जिस (मूलादि) को सन्धि नष्ट (अदृश्य) हो, उसे अनन्तजीवों वाला जानो॥ ८५॥

[८] पुष्फा जलया थलया य वेंटबद्धा य णालबद्धा य। संखेजमसंखेजा बोधव्वाऽणंतजीवा य ॥ ८६॥ जे केई नालियाबद्धा पुष्फा संखेजजीविया भणिता। णिह्या अणंतजीवा, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ८७॥ पउमुप्पलिणीकंदे अंतरकंदे तहेव झिल्ली य । एते अणंतजीवा एगो जीवो भिस-म्णाले ॥ ८८॥ पलंडू-ल्हसणकंदे य कंदली य कुसंबए । एए परित्तजीवा जे यावऽण्णे तहाविहा ॥ ८९॥ पउमुप्पल-नलिणाणं सुभग-सोगंधियाण य । अरविंद-कोकणाणं सतवत्त-सहस्सवत्ताणं ॥ ९०॥ वेंटं बाहिरपत्ता य कण्णिया चेव एगजीवस्स । अब्भितरगा पत्ता पत्तेयं केयरा मिंजा वेणु णल इक्खुवाडियसमासइखु य इक्कडेरंडे । करकर सुंठि विहुंगुं तणाण तह पव्वगाणं च ॥ ९२॥ अच्छि पव्वं बलिमोडओ ए एगस्स होंति जीवस्स। पत्तेयं पत्ताइं पुष्फाईं अणोगजीवाइं ⁶ पुस्सफलं कलिंगं तुंबं तउसेलवालु वालुंकं । घोसाडगं पडोलं तिंदूयं चेव तेंदूसं ॥ ९४॥ विंटं गिरं कडाहं एयाहं होंति एगजीवस्स । पत्तेयं पत्ताइं सकेसरमकेसरं मिंजा 11 84 11 सप्फाए सज्जाए उव्वेहलिया य कुहण कंदुके । एए अणंतजीवा कंडुके होति भयणा उ ॥ ९६ ॥

[५४-८] पुष्प जलज (जल में उत्पन्न होने वाले) और स्थलज हों, वृन्तबद्ध हों या नालबद्ध, संख्यात जीवों वाले, असंख्यात जीवों वाले और कोई-कोई अनन्त जीवों वाले समझने चाहिए ॥ ८६॥ जो कोई नालिकाबद्ध पुष्प हों, वे संख्यात जीव वाले कहें गए हैं। थूहर (स्निहका) के फूल अनन्त जीवों वाले हैं। इसी प्रकार के (थूहर के फूलों के सदृश) जो अन्य फूल हों, (उन्हें भी अनन्त जीवों वाले समझने चाहिए।)॥८७॥ पद्मकन्द, उत्पिलनीकन्द और अन्तरकन्द, इसी प्रकार झिल्ली (नामक वनस्पित), ये सब अनन्त जीवों वाले हैं, किन्तु (इनके) भिस और मृणाल में एक-एक जीव है॥ ८८॥ पलाण्डुकन्द (प्याज), लहसुनकन्द, कन्दली नामक कन्द और कुसुम्बक (कुस्तुम्बक या कुटुम्बक)

(नामक वनस्पति) ये प्रत्येकजीवाश्रित हैं। अन्य जो भी इस प्रकार की वनस्पतियां हैं, (उन्हें प्रत्येकजीव वाली समझो) ॥८९॥ पद्म, उप्पल, निलन, सुभग, सौगन्धिक, अरिवन्द, कोकनद, शतपत्र और सहस्रपत्र-कमलों के वृत्त (डंठल), बाहर के पत्ते और किर्णका, ये सब एकजीवरूप हैं। इनके भीतरी पत्ते, केसर और मिंजा (अर्थात्-फल) भी प्रत्येक जीव वाले होते हैं॥९०-९१॥ वेणु (बांस), नल (नड), इक्षुवाटिक, समासेक्षु, और इक्कड़, रंड, करकर, सुंठी (सोंठ), विहुंगु (विहंगु) एवं दूब आदि तृणों तथा पर्व (पोर-गांठ) वाली वनस्पतियों के जो अक्षि, पर्व तथा बिलमोटक (गांठों को परिवेष्टन करने वाला चक्राकार भाग) हों, वे सब एकजीवात्मक हैं। इनके पत्र (पत्ते) प्रत्येकजीवात्मक होते हैं, और इनके पुष्प अनेकजीवात्मक होते हैं ॥९२-९३॥ पुष्पफल, कालिंग, तुम्ब, त्रपुष, एलवालुस (चिर्भट-चीभड़ा-ककड़ी), वालुक (चिर्भट-ककड़ी), तथा घोषाटक (घोषातक), पटोल, तिन्दूक, तिन्दूस फल इनके सब पत्ते प्रत्येक जीव से (पृथक्-पृथक्) अधिष्ठित होते हैं तथा वृन्त (डंठल) गुद्दा और गिर (कटाह) के सिहत तथा केसर (जटा) सिहत या अकेसर (जटारिहत) मिंजा (बीज), ये, सब एक-एक जीव से अधिष्ठित होते हैं ॥९४-९५॥ सप्फाक, सद्यात (सध्यात), उव्वेहिलया और कुहण तथा कन्दक्य ये सब वनस्पतियां अनन्तजीवात्मक होती हैं, किन्तु कन्दुक्य वनस्पति में भजना (विकल्प) है, (अर्थात्-कोई कन्दुक्य अनन्तजीवात्मक और कोई असंख्यातजीवात्मक होती है।॥ ९६॥

[९] जोणिब्भूए बीए जीवो वक्कमई सो व अण्णो वा। जो वि य मूले जीवो सो वि य पत्ते पढमताए॥९७॥ सव्वो वि किसलओ खलु उग्गममाणो अणंतओ भणिओ। सो चेव विवड्ढंतो होई परित्तो अणंतो वा ॥९८॥

[५४-९] योनिभूत बीज में जीव उत्पन्न होता है, वह जीव वही (पहले वाला बीज का जीव हो सकता है,) अथवा अन्य कोई जीव (भी वहाँ आकर उत्पन्न हो सकता है।) जो जीव मूल (रूप) में (परिणत) होता है, वह जीव प्रथम पत्र के रूप में भी (परिणत होता) है। (अत: मूल और वह प्रथमपत्र दोनों एकजीवकर्तृक भी होते हैं।)॥ ९७॥ सभी किसलय (कोंपल) ऊगता हुआ अवश्य ही अनन्तकाय कहा गया है। वही (किसलयरूप अनन्तकायिक) वृद्धि पाता हुआ प्रत्येक शरीर या अनन्तकायिक हो जाता है॥ ९८॥

[१०] समयं वक्कंताणं समयं तेसिं सरीरिनव्वती।
समयं आणुग्गहणं समयं ऊसास-नीसासे॥ ९९॥
एक्कस्स उ जं गहणं बहुण साहारणाण तं चेव।
जं बहु याणं गहणं समासओ तं पि एगस्स॥ १००॥
साहारणमाहारो साहारणमाणुपाणगहणं च।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं एयं॥ १०१॥

जह अयगोलो धंतो जाओ तत्ततविणज्जसंकासो।
सव्वो अगणिपरिणतो निगोयजीवे तहा जाण॥ १०२॥
एगस्स दोण्ह तिण्ह व संखेजाण व न पासिउं सक्का।
दीसंति सरीराइं णिओयजीवाणऽणंताणं॥ १०३॥

[५४-१०] एक साथ उत्पन्न (जन्मे) हुए उन (साधारण वनस्पितकायिक जीवों की शरीर निष्पति (शरीर रचना) एक ही काल में होती (तथा) एक साथ ही (उनके द्वारा) प्राणापान-(के योग्य पुद्गलों का) ग्रहण होता है, (तत्पश्चात्) एक काल में ही (उनका) उच्छ्वास और निःश्वास होता है ॥९९॥ एक जीव का जो (आहारादि पुद्गलों का) ग्रहण करना है, वही बहुत-से (साधारण) जीवों का ग्रहण करना (समझना चाहिए।) और जो (आहारादि पुद्गलों का) ग्रहण बहुत से (साधारण) जीवों का होता है, वही एक का ग्रहण होता है॥१००॥ (एक शरीर में आश्रित) साधारण जीवों का आहार भी साधारण (एक) ही होता है, प्राणापान (के योग्य पुद्गलों) का ग्रहण (एवं श्वासोच्छ्वास भी) साधारण होता है। एक (साधारण जीवों का) साधारण लक्षण (समझना चाहिए।)॥१०१॥ जैसे (अग्नि में) अत्यन्त तपाया हुआ लोहे का गोला, तपे हुए (सोने) के समान सारा का सारा अग्नि में परिणमन होना समझ लो॥१०२॥ एक, दो, तीन, संख्यात अथवा (असंख्यात) निगोदों (के पृथक्-पृथक् शरीरों) का देखना शक्य नहीं है: (केवल) (अनन्त-) निगोदजीवों के शरीर ही दिखाई देते हैं::१०३::

[११] लोगागासपएसे णिओयजीवं ठवेहि एक्केकं ।
एवं मवेज्जमाणा हवंति लोया अणंता उ ॥ १०४॥
लोगागासपएसे परित्तजीवं ठवेहि एक्केकं ।
एवं मविज्जमाणा हवंति लोया असंखेज्जा ॥ १०५॥
पत्तेया पज्जत्ता पयरस्स असंखेभागमेत्ता उ ।
लोगाऽसंखाऽपज्जत्तगाण साहारणमणंता ॥ १०६॥
[एएहिं सरीरेहिं पच्चक्खं ते परूविया जीवा ।
सुहुमा आणगेज्झा चक्खुप्फासं ण ते एंति ॥१॥][पिक्खत्ता गाहा]

जे यावऽणे तहप्पगारा ।

[५४-११] लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में यदि एक-एक निगोदजीव को स्थापित किया जाए और उसका माप किया जाए तो ऐसे-ऐसे अनन्त लोकाकाश हो जाते हैं, (किन्तु लोकाकाश तो एक ही है, वह भी असंख्यातप्रदेशी है।)॥१०४॥ एक-एक लोकाकाश-प्रदेश में, प्रत्येक वनस्पतिकाय के एक-एक जीव को स्थापित किया जाए और उन्हें मापा जाए तो ऐसे-ऐसे असंख्यातलोकाश हो जाते हैं॥१०५॥ प्रत्येक वनस्पतिकाय के पर्याप्तक जीव घनीकृत प्रतर के असंख्यात-भाग मात्र (अर्थात्-लोक

के असंख्यातवें भाग में जितने आकाशप्रदेश हैं, उतने) होते हैं। तथा अपर्याप्तक प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीवों का प्रमाण असंख्यात लोक के बराबर है, और साधारण जीवों का परिमाण अनन्तलोक के बराबर है॥ १०६॥

[प्रक्षिप्त गाथार्थ] ''इन (पूर्वोक्त) शरीरों के द्वारा स्पष्टरूप से उन बादरिनगोद जीवों की प्ररूपणा की गई है। सूक्ष्म निगोदजीव केवल आज्ञाग्राह्म (तीर्थकरवचनों द्वारा ही ज्ञेय) हैं। क्योंकि ये (सूक्ष्मिनगोद जीव) आँखों से दिखाई नहीं देते ॥१॥'' अन्य जो भी इस प्रकार की (न कही गई) वनस्पतियां हों, (उन्हें साधारण या प्रत्येक वनस्पतिकाय में लक्षणानुसार यथायोग्य समझ लेनी चाहिए।)

५५. [१] ते समासओ दुविहा पण्णता । तं जहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ।

[५५-१] वे (पूर्वोक्त सभी प्रकार के वनस्पतिकाय जीव) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार-पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

[२] तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता ।

[५५-२] उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे असम्प्रापत (अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं किये हुए) हैं।

[३] तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा तेसिं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेजाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं । पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति-जत्थ एगो तत्थ सिय संखेजा सिय असंखेजा सिय अणंता। एएसि णं इमाओ गाहाओ अणुगंतव्याओ। तं जहा-

कंदा य १ कंदमूला य २ रुक्खमूला इ ३ यावरे ।
गुच्छा य ४ गुम्म ५ वल्ली य ६ वेणुयाणि ७ तणाणि य ८ ॥ १०७॥
पउमुप्पल ९-१० संघाडे ११ हढे य १२ सेवाल १३ किण्हए १४ पणए १५ ।
अवए य १६ कच्छ १७ भाणी १८ कंडुक्केक्कणवीसइमे १९ ॥ १०८॥
तय-छल्लि-पवालेसु य पत्त-पुष्फ-फलेसु य ।
मूलऽग्ग-मज्झ-बीएसु जोणी कस्स य कित्तिया ॥ १०९॥

से त्तं साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया । से त्तं बादरवणस्सइकाइया । से त्तं वणस्सइकाइया । से त्तं एगिंदिया ।

[५५-३] उनमें से जो पर्याप्तक हैं, उनके वर्ण की अपेक्षा से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों प्रकार (विधान) हो जाते हैं। उनके संख्यात लाख योनिप्रमुख होते हैं। पर्याप्तकों के आश्रय से अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक (बादर) पर्याप्तक जीव होता है, वहां (नियम से उसके आश्रय से) कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त (प्रत्येक) अपर्याप्तक जीव उत्पन्न होते हैं। (साधारण जीव तो नियम से अनन्त ही उत्पन्न होते हैं)।

इन (साधारण और प्रत्येक वनस्पति-विशेष) के विषय में विशेष जानने के लिए इन (आगे कही जाने वाली) गाथाओं का अनुसरण करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं-

[गाथार्थ-] १. कन्द (सूरण आदि कन्द), २. कन्दमूल और ३. वृक्षमूल (ये साधारण वनस्पित-विशेष हैं।) ४. गुच्छ, ५. गुल्म, ६. वल्ली और ७. वेणु (बांस) और ८. तृण (अर्जुन आदि हरी घास), ९. पद्म, १०. उत्पल, ११. शृंगाटक (सिंघाड़ा), १२. हढ (जलज वनस्पित), १३. शैवाल, १४. कृष्णक, १५. पनक, १६. अवक, १७. कच्छ, १८. भाणी और १९. कन्दक्य (नामक साधारण वनस्पित)॥१०८।।

इन उपर्युक्त उन्नीस प्रकार की वनस्पितयों की त्वचा, छल्ली (छाल), प्रवाल (कोंपल), पत्र, पुष्प, फल, मूल, अग्र और मध्य और बीज (इन) में से किसी की योनि कुछ और किसी की कुछ कही गई है॥१०९॥ यह हुआ साधारणशरीर वनस्पितकायिक का स्वरूप। (इसके साथ ही) उस (पूर्वोक्त) बादर वनसपितकायिक का वक्तव्य पूर्ण हुआ। (साथ ही) वह (पूर्वोक्त) वनस्पितकायिकों का वर्णन भी समाप्त हुआ, और इस प्रकार उन एकेन्द्रियसंसारसमापन्न जीवों की प्ररूपणा पूर्ण हुई।

विवेचन—समस्त वनस्पतिकायिकों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत इक्कीस सूत्रों (सू. ३५ से ५५ तक) में वनस्पतिकायिक जीवों के भेद-प्रभेदों तथा प्रत्येक शरीर बादरवनस्पतिकायिकों के वृक्ष, गुच्छ आदि सविवंरण बारह भेदों तथा साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिकों की विस्तृत प्ररूपणा की गई है।

क्रम—सर्वप्रथम वनस्पतिकाय के सूक्ष्म और बादर ये दो भेद, तदनन्तर सूक्ष्म के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये दो प्रकार, फिर बादर के दो भेद-प्रत्येक शरीर और साधारणशरीर, तत्पश्चात् प्रत्येकशरीर के वृक्ष, गुच्छ आदि १२ भेद, क्रमश: प्रत्येक पद के अन्तर्गत विविध वनस्पतियों के नामों का उल्लेख, तदनन्तर साधारणवनस्पतिकायिकों के अन्तर्गत अनेक नामों का उल्लेख तथा लक्षण एवं अन्त में उनके पर्याप्तक-अपर्याप्तक भेदों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। १

वृक्षादि बारह भेदों की व्याख्या — वृक्ष— जिनके आश्रित मूल, पत्ते, फूल, फल, शाखा- प्रशाखा, स्कन्ध, त्वचा, आदि अनेक हों, ऐसे आम, नीम, जामुन आदि वृक्ष कहलाते हैं। वृक्ष दो प्रकार के होते हैं-एकास्थिक (जिसके फल में एक ही बीज या गुठली हो) और बहुबीजक (जिसके फल में अनेक बीज हों)। आम, नीम आदि वृक्ष एकास्थिक के उदाहरण हैं तथा बिजौरा, वट, दाड़िम, उदुम्बर आदि बहुबीजक वृक्ष हैं। ये दोनों प्रकार के वृक्ष तो प्रत्येकशरीरी होते हैं, लेकिन इन दोनों प्रकार के वृक्षों के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा और प्रवाल असंख्यात जीवों वाले तथा। पत्ते प्रत्येक जीव वाले और पुष्प अनेक जीवों वाले होते हैं। गुच्छ-वर्तमान युग की भाषा में इसका अर्थ है-पौधा। इसके प्रसिद्ध उदाहरण हैं-वृन्ताकी (बेंगन), तुलसी, मातुलिंगी आदि पौधे। गुल्म-विशेषतः फूलों के पौधों को गुल्म कहते हैं। जैसे-चम्पा, जाई, जूही, कुन्द, मोगरा, मिल्लका आदि पुष्पों के पौधे। लता-ऐसी बेलें जो प्राय: वृक्षों पर चढ़ जाती हैं, वे लताएँ होती हैं। जैसे चम्पकलता, नागलता, अशोकलता

१. पष्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भाग-१, पृ. १६ से २७ तक

आदि। वल्ली - ऐसी बेलें जो विशेषत: जमीन पर ही फैलती हैं, वे विल्लयां कहलाती हैं। उदाहरणार्थ-कालिंगी (तरबूज की बेल), तुम्बी (तूम्बे की बेल), कर्किटकी (ककड़ी की बेल), एला (इलायची की बेल) आदि। पर्वक-जिन वनस्पतियों में बीच-बीच में पर्व-पोर या गांठें हों वे पर्वक वनस्पतियां कहलाती हैं। जैसे-इक्षु, सूंठ, बेंत आदि। तृण-हरी घास आदि को तृण कहते हैं। जैसे-कुश, अर्जुन, दूब आदि। वलय -वलय के आकार की गोल-गोल पत्तों वाली वनस्पति वलय कहलाती है। जैसे-ताल (ताड़) कदली (केले) आदि के पौधे। औषधि-जो वनस्पति फल (फसल) के पक जाने पर दानों के रूप में होती है, वह औषधि कहलाती है। जैसे- गेहूँ, चावल, मसूर, तिल, मूंग आदि। हरित- विशेषत: हरी सागभाजी को हरित कहते हैं—जैसे-चन्दिलया, वथुआ, पालक आदि। जलरुह-जल में उत्पन्न होने वाली वनस्पति जलरुह कहलाती है। जैसे-पनक, शैवाल, पद्म, कुमुद, कमल आदि। कुहण-भूमि को तोड़ कर निकलने वाली वनस्पतियां कुहण कहलाती हैं। जैसे छत्राक (कुकुरमुत्ता) आदि। हि

प्रत्येकशरीरी अनेक जीवों का एक शरीराकार कैसे ? प्रथम दृष्टान्त : जैसे-पूर्ण सरसों के दानों को किसी श्लेषद्रव्य से मिश्रित कर देने पर वे बट्टी के रूप में एकरूप-एकाकार हो जाते हैं। यद्यपि वे सब सरसों के दाने परिपूर्ण शरीर वाले होने के कारण पृथक्-पृथक् अपनी-अपनी अवगाहना में रहते हैं, तथापि श्लेषद्रव्य से परस्पर चिपक जाने पर वे एकरूप प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक शरीरी जीवों के शरीरसंघात भी परिपूर्ण शरीर होने के कारण पृथक्-पृथक् अपनी-अपनी अवगाहना में रहते हैं, परन्तु विशिष्ट कर्मरूपी श्लेषद्रव्य से मिश्रित होने के कारण वे जीव भी एक-शरीरात्मक, एकरूप एवं एकशरीराकार प्रतीत होते हैं।

द्वितीय दृष्टान्त — जैसे तिलपपड़ी बहुत-से तिलों में एकमेक होने से (गुड़ आदि श्लेषद्रव्य से मिश्रित करने से) बनती है। उस तिलपपड़ी में तिल अपनी-अपनी अवगाहना में स्थित होकर अलग-अलग रहते हैं, फिर भी वह तिलपट्टी एकरूप प्रतीत होती। इसी प्रकार प्रत्येक शरीरी जीवों के शरीरसंघात पृथक्-पृथक् होने पर भी एकरूप प्रतीत होते हैं।

अनन्तजीवों वाली वनस्पित के लक्षण — (१) टूटे हुए या तोड़े हुए जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पुष्प, फल, बीज का भंग प्रदेश समान अर्थात्-चक्राकार दिखाई दे, उन मूल आदि को अनन्तजीवों वाले समझने चाहिए।(२) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध और शाखा के काष्ठ यानी मध्यवर्ती सारभाग की अपेक्षा छाल अधिक मोटी हो, उस छाल को अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए।(३) जिस मूल, कंद, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, पत्र और पुष्प आदि के तोड़े जाने पर उसका भंगस्थान चक्र के आकार का एकदम सम हो, वह मूल, कन्द आदि अनन्तजीव वाला समझना चाहिए।(४) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, शाखा, पत्र और पुष्प आदि के तोड़े जाने पर पर्व-गांठ या भंगस्थान रज से व्याप्त होता है, अथवा जिस पत्र आदि को तोड़ने पर चक्राकार का भंग नहीं दिखता और भंग (ग्रन्थि) स्थान भी रज

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३० से ३२

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ३३

से व्याप्त नहीं होता, किन्तु भंगस्थान का पृथ्वीसदृश भेद हो जाता है। अर्थातु सूर्य की किरणों से अत्यन्त तपे हुए खेत की क्यारियों के प्रतरखण्ड का-सा समान भंग हो जाता है, तो उसे अनन्तजीवों वाला समझना चाहिए। (५) क्षीरसहित (दुधवाले) या क्षीररहित (बिना दुध के) जिस पत्र की शिराएँ दिखती न हों, उसे, अथवा जिस पत्र की (पत्र के दोनों भागों को जोड़ने वाली) सन्धि सर्वथा दिखाई न दे, उसे भी अनन्तजीवों वाला समझना चाहिए।(६) पुष्प दो प्रकार के होते हैं-जलज और स्थलज। ये दोनों भी प्रत्येक दो-दो प्रकार के होते हैं-वृन्तबद्ध (अतिमुक्तक आदि) और नालबद्ध (जाई के फूल आदि), इन पुष्पों में से पत्रगत जीवों की अपेक्षा से कोई-कोई संख्यात जीवों वाले, कोई-कोई असंख्यात जीवों वाले और कोई-कोई अनन्त जीवों वाले भी होते हैं। आगम के अनुसार उन्हें जान लेना चाहिए। विशेष यह है कि जो जाई आदि नालबद्ध पुष्प होते हैं, उन सभी को तीर्थकरों तथा गणधरों ने संख्यातजीवों वाले कहे हैं, किन्तु स्निह्पुष्प अर्थात् - थोहर के फूल या थोहर के जैसे अन्य फूल भी अनन्त जीवों वाले समझने चाहिए। (७) पद्मिनीकन्द, उत्पलिनीकन्द, अन्तरकन्द (जलज वनस्पतिविशेष कन्द) एवं झिल्लिका नामक वनस्पति, ये सब अनन्तजीवों वाले होते हैं। विशेष यह है कि पद्मिनीकन्द आदि के विस (भिस) और मृणाल में एक जीव होता है। (८) सफ्फाक, सज्जाय, उब्बेहलिया, कूहन और कन्दूका (देशभेद से) अनन्तजीवात्मक होती हैं। (९) सभी किसलय (कोंपल) ऊगते समय अनन्तकायिक होते हैं। प्रत्येक वनस्पतिकाय, चाहे वह प्रत्येकशरीरी हो या साधारण, जब किसलय अवस्था को प्राप्त होता है, तब तीर्थकरों और गणधरों द्वारा उसे अनन्तकायिक कहा गया है। किन्तु वही किसलय बढता बढता. बाद में पत्र रूप धारण कर लेता है तब साधारणशरीर या अनन्तकाय अथवा प्रत्येक शरीरी जीव हो जाता है।

प्रत्येक शरीर जीव वाली वनस्पित के लक्षण — (१) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प अथवा फल या बीज को तोड़ने पर उसके टूटे हुए (भंग) प्रदेश (स्थान) में हीर दिखाई दे, अर्थात्–उसके टुकड़े समरूप न हों, विषम हों, दंतीले हों उस मूल, कन्द या स्कन्ध को प्रत्येक (शरीरी) जीव समझना चाहिए। (२) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध या शाखा के काष्ठ (मध्यवर्ती सारभाग) की अपेक्षा उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकशरीर जीव वाली समझनी चाहिए। (३) पलाण्डुकन्द, लहसुनकन्द, कदलीकन्द और कुस्तुम्ब नामक वनस्पित, ये सब प्रत्येकशरीरजीवात्मक समझने चाहिए। इस प्रकार की सभी अनन्त जीवात्मकलक्षण से रहित वनस्पितयां प्रत्येकशरीरजीवात्मक समझनी चाहिए। (४) पद्म, उत्पल, निलन, सुभग, सौगन्धिक, अरिवन्द, कोकनद, शतपत्र और सहस्रपत्र, इन सब प्रकार के कमलों के वृन्त (डण्ठल), बाह्य पत्र और पत्रों की आधारभूत कर्णिका, ये तीनों एकजीवात्मक हैं। इनके भीतरी पत्ते केसर (जटा) और मिंजा भी एकजीवात्मक हैं। (५) बांस, नड नामक घास, इक्षुवाटिका, समासेक्षु, इक्कड घास, करकर, सूंठि, विहंगु और दूब आदि तृणों तथा पर्ववाली वनस्पितयों की अक्षि, पर्व, बिलमोटक (पर्व को परिवेष्टित करने वाला चक्राकार भाग) ये सब एकजीवात्मक हैं। इनके पत्ते भी एकजीवािधिष्टित होते हैं। किन्तु इनके पुष्प अनेक जीवों वाले होते हैं।

(६) पुष्यफल, कालिंग आदि फलों का प्रत्येक पत्ता (पृथक्-पृथक्), वृन्त, गिरि और गूदा और जटावाले या बिना जटा के बीज एक-एक जीव से अधिष्ठित होते हैं।

बीज का जीव मूलादि का जीव बन सकता है या नहीं ?— बीज की दो अवस्थाएं होती हैं— योनि-अवस्था और अयोनि-अवस्था। जब बीज योनि-अवस्था का परित्याग नहीं करता किन्तु जीव के द्वारा त्याग दिया जाता है, तब वह बीज योनिभूत कहलाता है। जीव के द्वारा बीज त्याग दिया गया है, छद्मस्थ के द्वारा निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। अतः आजकल चेतन या अचेतन, जो अविध्वस्तयोनि है, उसे योनिभूत कहते हैं। जो विध्वस्तयोनि है, वह नियमतः अचेतन होने से अयोनिभूत बीज है। ऐसा बीज उगने से समर्थ नहीं रहता। तात्पर्य यह है कि योनि कहते हैं-जीव के उत्पत्तिस्थान को। अविध्वस्तशिक-सम्पन्न बीज ही योनिभूत होता है, उसी में जीव उत्पन्न होता है। प्रश्न यह है कि ऐसे योनिभूत बीज में वही पहले के बीज वाला जीव आकर उत्पन्न होता है अथवा दूसरा कोई जीव आकर उत्पन्न होता है? उत्तर है-दोनों ही विकल्प हो सकते हैं। तात्पर्य यह है कि बीज में जो जीव था, उसने अपनी आयु का क्षय होने पर बीज का परित्याग कर दिया। यह बीज निर्जीव हो गया किन्तु उस बीज को पुनः पानी, काल और जमीन के संयोगरूप सामग्री मिले तो कदाचित् वही पहले वाला बीज मूल आदि का नाम-गोत्र बांध कर उसी पूर्व-बीज में आकर उत्पन्न हो जाता है, और कभी कोई अन्य पृथ्वीकायिक आदि नया जीव भी उस बीज में उत्पन्न हो जाता है।

साधारणशरीर बादरवनस्पितकायिकजीवों का लक्षण—साधारण वनस्पितकायिक जीव एक साथ ही उत्पन्न होते हैं, एक साथ ही उनका शरीर बनता है, एक साथ ही वे प्राणापान के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करते हैं और एक साथ ही उनका श्वासोच्छ्वास होता है। एक जीव का आहारादि के पुद्गलों को ग्रहण करना ही (उस शरीर के आश्रित) बहुत-से जीवों का ग्रहण करना है, इसी प्रकार बहुत-से जीवों का आहारादि-पुद्गल-ग्रहण करना भी एक जीव का आहारादि-पुद्गल-ग्रहण करना है; क्योंिक वे सब जीव एक ही शरीर-आश्रित होते हैं। एक शरीर-आश्रित साधारण जीवों का आहार, प्राणापानयोग्य पुद्गलग्रहण एवं श्वासोच्छ्वास साधारण ही होता है। यही साधारण जीवों का साधारणरूप लक्षण है। एक निगोदशरीर में अनन्तजीवों का परिणमन कैसे होता है? इसका समाधान यह है-अग्न में प्रतप्त लोहे का गोला जैसे सारा-का-सारा अग्निमय बन जाता है, वैसे ही निगोदरूप एकशरीर में अनन्त जीवों का परिणमन समझ लेना चाहिए। एक, दो, तीन, संख्यात या असंख्यात निगोदजीवों के शरीर हमें नहीं दिखाई दे सकते, क्योंकि उनके पृथक्-पृथक् शरीर ही नहीं हैं, वे तो अनन्तजीवों के पिण्डरूप ही होते हैं। अर्थात् अनन्तजीवों का एक ही शरीर होता है। हमें केवल अनन्तजीवों के शरीर ही दिखाई देते हैं, वे भी बादर निगोदजीवों के ही; सूक्ष्म निगोदजीवों के नहीं; क्योंकि सूक्ष्म निगोदजीवों के शरीर अनन्त

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका, भा. १, पृ. ३०० से ३२५ तक

⁽ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३५-३६-३७

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३८

जीवात्मक होने पर भी वे अदृश्य (दृष्टि से अगोचर) हो जाते हैं। स्वाभाविकरूप से उसी प्रकार के सूक्ष्मपिरणामों से पिरणत उनके शरीर होते हैं। अनन्त निगोदजीवों का एक ही शरीर होता है, इस विषय में वीतराग सर्वज्ञ तीर्थकर भगवान् के वचन ही प्रमाणभूत हैं। भगवान् का कथन है-'सुई की नोंक के बराबर निगोदकाय में असंख्यात गोले होते हैं, एक-एक गोले में असंख्यात-असंख्यात निगोद होते हैं और एक-एक निगोद में अनन्त-अनन्त जीव होते हैं।

अनन्त निगोदिया जीवों का शरीर एक ही होता है, यह कथन औदारिकशरीर की अपेक्षा जानना चाहिए। उन सबके तैजस और कार्मण शरीर भिन्न-भिन्न ही होते हैं।

द्वीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना-

५६. [१] से किं तं बेंदिया ? बेंदिया (से किं तं बेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ? बेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा) अणेगिवहा पन्नता। तं जहा-पुलिकिमिया कुच्छिकिमिया गंडूयलगा गोलोमो णेउरा सोमंलगा वंसीमुहा सूईमुहा गोजलोया जलोया जलोउया संख संखणगा घुल्ला-खुल्ला गुलाया खंधा वराडा सोत्तिया मोत्तिया कलुयावासा एगओवत्ता दुहओवत्ता णंदियावत्ता संवुक्का माईवाहा सिप्पिसंपुडा चंदणा समुद्दलिक्खा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। सळेते सम्मुच्छिमा नपुंसगा।

[५६-१ प्र.] वे (पूर्वोक्त) द्वीन्द्रिय जीव किस प्रकार के है ? [वह द्वीन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना क्या है?]

[५६-१ उ.] द्वीन्द्रिय (द्वीन्द्रिय-संसारसमापन्न जीव-प्रज्ञापना) अनेक प्रकार के कहे गए हैं। (अनेक प्रकार की कही गई है।) वह इस प्रकार-पुलाकृमिक, कुक्षिकृमिक, गण्डूयलग, गोलोम, नूपर, सौमंगलक, वंशीमुख, सूचीमुख, गौजलोका, जलोका, जलोयुक (जलायुष्क), शंख, शंखनक, घुल्ला, खुल्ला, गुडज, स्कन्ध, वराटा (वराटिका = कौडी), सौक्तिक, मौक्तिक (सौत्रिक मूत्रिक), कलुकावास, एकतोवृत्त, द्विधातोवृत्त, नन्दिकावर्त्त, शम्बूक शुक्तिसम्पुट, चन्दनक, समुद्र-लिक्षा। अन्य जितने भी इस प्रकार के हैं, (उन्हें द्वीन्द्रिय समझना चाहिए।) ये उपर्युक्त प्रकार के सभी (द्वीन्द्रिय) सम्मूर्च्छिम और नपुंसक हैं।

[२] ते समासतो दुविहा पन्नत्ता। तं जहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एएसि णं एवमादियाणं बेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं सत्त जाइकुलकोडिजोणीपमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। से त्तं बेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

[५६-२] ये (द्वीन्द्रिय) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पर्याप्तक और

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३९-४०

⁽ख) गोला य असंखेजा होंति निगोया असंखया गोले। एक्केको य निगोओ अणंत जीवो मुणेयव्यो॥

अपर्याप्तक । इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक द्वीन्द्रियों के सात लाख जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख होते हैं, ऐसा कहा गया है। यह हुई द्वीन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना।

विवेचन—द्वीन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू. ५६) में द्वीन्द्रिय जीवों की विविध जातियों के नामों का उल्लेख है तथा उनके दो प्रकारों एवं उनकी जीवयोनियों की संख्या का निरूपण किया गया है।

कुछ शब्दों के विशेष अर्थ—'पुलािकिमिया'-पुलाकृमिक एक प्रकार के कृमि होते हैं, जो मलद्वार (गुदाद्वार) में उत्पन्न होते हैं। कुच्छिकिमिया-कुक्षिकृमिक एक प्रकार के कृमि, जो उदरप्रदेश में उत्पन्न होते हैं। संखणगा-शंखनक-छोटे शंख, शंखनी। चंदणा-चन्दनक-अक्ष। गंडूयलगा-गिंडोला। संवुक्का-शम्बूक-घोंघा। घुल्ला-घोंघरी। खुल्ला-समुद्री शंख के आकार के छोटे शंख। सिप्पसंपुटा-शुक्तिसंपुट-संपुटाकार सीप। जलोया-जौंक। १

सव्वेते सम्मुच्छिमा—इसी प्रकार के मृतकलेवर में पैदा होने वाले कृमि, कीट आदि सब द्वीन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम समझने चाहिए। क्योंकि सभी अशुचिस्थानों में पैदा होने वाले कीड़े सम्मूर्च्छिम हो होते हैं, गर्भज नहीं और तत्त्वार्थसूत्र के 'नारक-सम्मूर्च्छिमो नपुंसकानि' इस सूत्रानुसार सभी सम्मूर्च्छिम जीव नपुंसक ही होते हैं

जाति, कुलकोटि एवं योनि शब्द की व्याख्या—पूर्वाचार्यों ने इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है-जातिपद से तिर्यञ्चगति समझनी चाहिए। उसके कुल हैं-कृमि, कीट, वृश्चिक आदि। ये कुल योनि-प्रमुख होते हैं, अर्थात्-एक ही योनि में अनेक कुल होते हैं। जैसे-एक ही छगण (गोबर या कंडे) की योनि में कृमिकुल, कीटकुल और वृश्चिककुल आदि होते हैं। इसी प्रकार एक ही योनि में अवान्तर जातिभेद होने से अनेक जातिकुल के योनिप्रवाह होते हैं। द्वीन्द्रियों के सात लाख जातिकुलकोटिरूप योनियां हैं। इ

त्रीन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना

५७. [१] से किं तं तेंदियसंसारसमावण्णजीव पण्णवणा ? तेंदियसंसारसमावण्णजीव-पण्णवणा अणेगविहा पन्नत्ता। तं जहा-ओवइया रोहिणीया कुंथू पिपीलिया उद्दंसगा उद्देहिया उक्किलया उप्पाया उक्कडा उप्पडा तणाहारा कट्ठाहारा मालुया पत्ताहारा तणविंटिया पत्तविंटिया पुष्फविंटिया फलविंटिया बीयविंटिया तेदुरणिंगिज्या तउसिंगिजया कप्पासिट्ठसिंगिजया हिल्लिया झिल्लिया झिंगिरा किंगिरिडा पाहुया सुभगा सोविच्छया सुयविंटा इंदिकाइया इंदगोवया उरुलुंचगा इ

१. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक ४१, (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा. १, पृ. ३४८-३४९

२. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक ४१

⁽ख) तत्त्वार्थसूत्र अ. २. सू, ५०

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ४१

४. तंब्रुणुमज्जिया, तिंबुरणमज्जिया, तेबुरणमिंजिया।

५. झिंगिरिडा बाहुया।

६. उरुतुंभुगा, तुरुतुंबगा।

कोत्थलवाहगा जूया हालाहला पिसुया सतवाइया गोम्ही हत्थिसोंडा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। सव्वेते सम्मुच्छिम-णपुंसगा।

[५७-१ प्र.] वह (पूर्वोक्त) त्रीन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना किस प्रकार की है ?
[५७-१ उ.] त्रीन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—औपियक, रोहिणीक, कंथु (कुंथुआ), पिपीलिका (चींटी, कीड़ी), उद्देशक, उद्देहिका (उदई—दीमक), उत्किलक, उत्पाद, उत्कट, उत्पट, तृणहार, काष्टाहार (धुन), मालुक, पत्राहार, तृणवृन्तिक, पत्रवृन्तिक, पृष्पवृन्तिक, फलवृन्तिक, बीजवृन्तिक, तेदुरणमिज्जिक (तेवुरणमिंजिक या तम्बुरुण-उमिज्जिक), त्रपुषमिंजिक, कार्पासास्थिमिंजिक, हिल्लिक, झिल्लिक, झिंगिरा (झींगूर), किंगिरिट, बाहुक, लघुक, सुभग, सौवस्तिक, शुकवृन्त, इन्द्रिकायिक (इन्द्रकायिक), इन्द्रगोपक (इन्द्रगोप—बीरबहूटी), उरुलुंचक (तुरुतुम्बक), कुस्थलवाहक, यूका (जूं), हालाहक, पिशुक (पिस्सू—खटमल), शतपादिका (गजाई), गोम्ही (गोम्मयी), और हस्तिशौण्ड। इसी प्रकार के जितने भी अन्य जीव हों, उन्हें त्रीन्द्रिय-संसारसमापन्न समझना चाहिए।) ये (उपर्युक्त) सब सम्मूर्च्छम और नपुंसक हैं।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एएसि णं एवमाइयाणं तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं अट्ठ जातिकुलकोडिजोणिप्पमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खायं। से त्तं तेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

[५७-२] ये (पूर्वोक्त त्रीन्द्रिय जीव) संक्षेप में, दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्क। इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रीन्द्रियजीवों के आठ लाख जाति कुलकोटि-योनिप्रमुख (योनिद्वार) होते हैं, ऐसा कहा है। यह हुई उन त्रीन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना।

विवेचन—त्रीन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू. ५७) में तीन इन्द्रियों वाले अनेक जाति के जीवों का निरूपण किया गया है।

गोम्ही का अर्थ—वृत्तिकार ने इसका अर्थ—'कर्णसियालिया' किया है। हिन्दी भाषा में इसे कनसला या कानखजूरा भी कहते हैं।

चतुरिन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना

५८. [१] से किं तं चउरिदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ? चउरिदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगिवहा पण्णत्ता। तं जहा— अंधिय णेत्तिय^र मच्छिय मगमिगकीडे^३ तहा पयंगे य। ढिंकुण कुक्कुड कुक्कुह णंदावत्ते य सिंगिरिडे॥ ११०॥

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय, वृत्ति, पत्रांक ४२

पाठान्तर— २. पोत्तिय।

३. मसगाकीडे, मणसिरकीडे, मगासकीडे।

किण्हपत्ता नीलपत्ता लोहियपत्ता हिलद्दपत्ता सुक्किलपत्ता चित्तपक्खा विचित्तपक्खा ओभंजिलया जलचारिया गंभीरा णीणिया तंतवा अच्छिरोडा अच्छिवेहा सारंगा णेउला दोला भमरा भिरली जरुला तोट्टा विच्छुता पत्तविच्छुया छाणिवच्छुया जलविच्छुया पियंगाला कणगा गोमयकीडगा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। सब्वेते सम्मुच्छिमा नपुंसगा।

[५८-१ प्र.] वह (पूर्वोक्त) चतुरिन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना किस प्रकार की है ? [५८-१ उ.] चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—[गाथार्थ] अंधिक, नेत्रिक (या पित्रक), मक्खी, मगमृगकीट (मशक—मच्छर, कीड़ा अथवा टिड्डी) तथा पतंगा, ढिंकुण (ढंकुण), कुक्कुड (कुर्क्कुट), कुक्कुह, नन्द्यावर्त और शृंगिरिट (शृंगिरट) ॥ ११०॥

कृष्णपत्र (कृष्णपक्ष), नीलपत्र (नीलपक्ष), लोहितपत्र (लोहितपक्ष), हारिद्रपत्र (हारिद्रपक्ष), शुक्लपत्र (शुक्लपक्ष), चित्रपक्ष, विचित्रपक्ष, अवभांजिलक (ओहांजिलक), जलचारिक, गम्भीर, नीनिक (नीतिक), तन्तव, अक्षिरोट अक्षिवेध, सारंग, नेवल (नूपुर), दोला, भ्रमर, भिरली, जरुला, तोट्ट, बिच्छू, पत्रवृश्चिक, छाणवृश्चिक (गोबर का बिच्छू) जलवृश्चिक, (जल का बिच्छू) प्रियंगाल, कनक और गोमयकीट (गोबर का कीड़ा)। इसी प्रकार के जितने भी अन्य (प्राणी) हैं, (उन्हें भी चतुरिन्द्रिय समझना चाहिए।) ये (पूर्वोक्त) सभी चतुरिन्द्रिय सम्मूर्छिम और नपुंसक हैं।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पञ्जत्तगा य अपञ्जत्तगा य। एतेसि णं एवमाइयाणं चउरिंदियाणं पज्जत्ताऽपञ्जत्ताणं णव जातिकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खायं। से त्तं चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

[५८-२] वे दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इस प्रकार के चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के नौ लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा (तीर्थंकरों ने) कहा है। यह हुई उन चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना।

विवेचन—चतुरिन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू. ५८) में चतुरिन्द्रिय जीवों के अनेक प्रकारों और उनकी जातिकुलकोटि-योनियों की संख्या का निरूपण किया गया है।

चतुर्विध पंचेन्द्रिय-संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना

८९. से किं तं पंचिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

पंचिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—नेरइयपंचिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा १ तिरिक्खजोणियपंचिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा २ मणुस्सपंचिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ३ देवपंचिंदियसंसारसामावण्णजीवपण्णवणा ४।

[५९ प्र.] वह पंचेन्द्रियं-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना किस प्रकार की है ?

[५९ उ.] पंचेन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार

है — (१) नैरियक-पंचेन्द्रिय-संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (२) तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (३) मनुष्य-पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना और (४) देव-पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न जीवप्रज्ञापना।

विवेचन—पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न जीवप्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू. ५९) में नैरियक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव; इन चतुर्विध पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों का निरूपण किया गया है।

नैरियकजीवों की प्रज्ञापना

६०. से किं तं नेरइया ?

नेरइया सत्तिवहा पण्णत्ता। तं जहा—रयणप्पभापुढिविनेरइया १ सक्करप्पभापुढिविनेरइया २ वालुयप्पभापुढिविनेरइया ३ पंकप्पभापुढिविनेरइया ४ धूमप्पभापुढिविनेरइया ५ तमप्पभापुढिविनेरइया ६ तमतमप्पभापुढिविनेरइया ७।

ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से तं नेरइया।

[६० प्र.] वे (पूर्वोक्त) नैरयिक किस (कितने) प्रकार के हैं?

[६० उ.] नैरियक सात प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) रत्नप्रभापृथ्वी-नैरियक, (२) शर्कराप्रभापृथ्वी-नैरियक (३) वालुकाप्रभापृथ्वी-नैरियक, (४) पंकप्रभापृथ्वी-नैरियक (५) धूमप्रभापृथ्वी-नैरियक, (६) तम:प्रभापृथ्वी-नैरियक और (७) तमस्तम:प्रभापृथ्वी-नैरियक। वे (उपर्युक्त सातों प्रकार के नैरियक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह नैरियकों की प्ररूपणा हुई।

विवेचन—नैरियक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू. ६०) में नैरियक और उसके सात प्रकारों की प्ररूपणा की गई है।

'नैरियक' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ—िनर् + अय का अर्थ है—िजससे अय अर्थात् इष्टफल देने वाला (शुभ कर्म) निर् अर्थात् निर्गत हो गया हो—िनकल गया हो, जहां इष्टफल की प्राप्ति न होती हो, वह निरय अर्थात् नारकावास है। निरय में उत्पन्न होने वाले जीव नैरियक कहलाते हैं। ये नैरियक (नारक) जीव संसारसमापन्न अर्थात्—जन्ममरण को प्राप्त हैं तथा पाँचों इन्द्रियों से युक्त होते हैं, अतएव पंचेन्द्रिय-संसारसमापन्न कहलाते हैं। १

समग्र पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक जीवों की प्रज्ञापना

६१. से किं तं पंचिंदियतिरिक्खजोणिया ?

पंचिंदियतिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया १ थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया २ खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया ३।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ४३

[६१ प्र.] वे पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के हैं ?

[६१ उ.] पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक तीन प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, (२) स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक और (३) खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

६२. से किं तं जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया ?

जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया पंचिवहा पण्णत्ता। तं जहा—मच्छा १ कच्छभा २ गाहा ३ मगरा ४ सुंसुमारा ५।

[६२ प्र.] वे जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक कैसे हैं ?

[६२ उ.] जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक पांच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) मत्स्य, (२) कच्छप, (कछुए), (३) ग्राह, (४) मगर और (५) सुंसुमार।

६३. से किं तं मच्छा ?

मच्छा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—सण्हमच्छा खवल्लमच्छा^१जुगमच्छा तिज्झिडियमच्छा हिलमच्छा मग्गिरमच्छा रोहियमच्छा हिलीसागरा गागरा वडा वडगरा। तिमी तिमिंगिला णक्का तंदुलमच्छा कणिक्कामच्छा सालिसिच्छियामच्छा लंभणमच्छा पडागा पडागितिपडागा, ये यावऽण्णे तहप्पगारा। से तं मच्छा।

[६३ प्र.] वे (पूर्वोक्त) मत्स्य कितने प्रकार के हैं ?

[६३ उ.] मत्स्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार— श्लक्ष्णमत्स्य, खवल्लमत्स्य, युगमत्स्य (जुंगमत्स्य), विझिडिय (विज्झिडिय) मत्स्य, हिलमत्स्य, मकरीमत्स्य, रोहितमत्स्य, हिलीसागर, गागर, वट, वटकर, (तथा गर्भज उसगार), तिमि, तिमिंगल, नक्र, तन्दुलमत्स्य, किणक्कामत्स्य, शालिशिस्त्रिक मत्स्य, लंभनमत्स्य, पताका और पताकातिपताका। इसी प्रकार के जो भी अन्य प्राणी हैं, वे सब मत्स्यों के अन्तर्गत समझने चाहिए। यह मत्स्यों की प्ररूपणा हुई।

६४. से किं कच्छभा ?

कच्छभा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा-अट्टिकच्छभा य मंसकच्छभा य। से तं कच्छभा।

[६४ प्र.] वे (पूर्वोक्त) कच्छप किस प्रकार के हैं ?

[६४ उ.] कच्छप दो प्रकार के कहे गए हैं। ये इस प्रकार हैं—अस्थिकच्छप (जिनके शरीर में हिड्डियां अधिक हों, वे) और मांसकच्छप (जिनके शरीर में मांस की बहुलता हो, वे। इस प्रकार कच्छप की प्ररूपणा पूर्ण हुई।

६५. से किं तं गाहा ?

पाठान्तर— १. जुंगमच्छा।

२. 'गब्भया उसगारा' यह अधिक पाठ है। ३. वेढगा।

गाहा पंचिवहा पण्णत्ता। तं जहा—दिली १ वेढला २ मुद्धया ३ पुलगा ४ सीमागारा ५। से त्तं गाहा ।

[६५ प्र.] वे (पूर्वोक्त) ग्राह कितने प्रकार के हैं ?

[६५ उ.] ग्राह (घड़ियाल) पांच प्रकार के होते हैं? वे इस प्रकार हैं—(१) दिली, (२) वेढल या (वेटल), (३) मूर्धज, (४) पुलक और (५) सीमाकार। यह हुई ग्राह की वक्तव्यता।

६६. से किं तं मगरा ?

मगरा दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सोंडमगरा य मट्टमगरा य । से त्तं मगरा ।

[६६ प्र.] वे मगर किस प्रकार के होते हैं ?

[६६ उ.] मगर (मगरमच्छ) दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—शौण्डमगर और मृष्टमगर। यह हुई (पूर्वोक्त) मगर की प्ररूपणा।

६७. से किं तं सुंसुमारा ?

सुंसुमारा एगागारा पण्णत्ता। से त्तं सुंसमारा। जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[६७ प्र.] वे सुंसुमार (शिशुमार) किस प्रकार के हैं ?

[६७ उ.] सुंसुमार (शिशुमार) एक ही आकार-प्रकार के कहे गए हैं। यह हुआ (पूर्वोक्त) सुंसुमार का निरूपण। अन्य जो इस प्रकार के हों।

६८. [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य ।

[६८-१] वे (उपर्युक्त सभी प्रकार के जलचर तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय) संक्षेप में दो प्रकार के हैं। यथा— सम्मूर्च्छिम और गर्भज (गर्भव्युत्क्रान्तिक)।

[२] तत्थ णं जे सम्मुच्छिमा ते सळ्वे नपुंसगा।

[६८-२] इनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सब नपुंसक होते हैं।

[३] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुंसगा ३।

[६८-३] इनमें से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक।

[४] एतेसि णं एवमाइयाणं जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पञ्जत्तापञ्जत्ताणं अद्धतेरस जाइकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खायं। से त्तं जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया।

[६८-४] इस प्रकार (मत्स्य) इत्यादि इन (पांचों प्रकार के) पर्याप्तक और अपर्याप्तक जलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के साढ़े बारह लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है। यह हुई जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों की प्ररूपणा।

६९. से किं तं थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—चउप्पयथलयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया य परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य।

[६९ प्र.] वे (पूर्वोक्त) स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के हैं ?

[६९ उ.] स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक और परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

७०. से किं तं चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पप्णत्ता। तं जहा—एगखुरा १ दुखुरा २ गंडीपदा ३ सणप्पदा ४।

[७० प्र.] वे (पूर्वोक्त) चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के हैं ?

[७० उ.] चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए हैं। ये इस प्रकार हैं—१. एकखुरा (एक खुर वाले), २. द्विखुरा (दो खुर वाले), ३. गण्डीपद (सुनार की एरण जैसे पैर वाले) और ४. सनखपद (नखसहित पैरों वाले)।

७१. से किं तं एगखुरा ?

एगखुरा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—अस्सा अस्सतरा घोडगा गर्दभा गोरक्खरा कंदलगा सिरिकंदलगा आवत्ता, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं एगखुरा।

[७१ प्र.] वे एकखुरा किस प्रकार के हैं ?

[७१ उ.] एकखुरा अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं, जैसे कि—अश्व, अश्वतर, (खच्चर), घोटक (घोड़ा), गधा (गर्दभ), गोरक्षर, कन्दलक, श्रीकन्दलक और आवर्त (आवर्त्तक) इसी प्रकार के अन्य जितने भी प्राणी हैं, (उन्हें एकखुर-स्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्च के अन्तर्गत समझना चाहिए।) यह हुआ एकखुरों का प्ररूपण।

७२. से किं तं दुखुरा ?

दुखुरा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—उट्टा गोणा गवया रोज्झा पसुया महिसा मिया संवरा वराहा अय-एलग-रुरु-सरभ-चमर-कुरंग-गोकण्णमादी। से त्तं दुखुरा।

[७२ प्र.] वे द्विखुर किस प्रकार के कहे गए हैं ?

[७२ उ.] द्विखुर (दो खुर वाले) अनेक प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—उष्ट्र (ऊँट), गाय (गौ और वृषभ आदि), गवय (नील गाय), रोज, पशुक, मिष्ठष (भैंस-भैंसा), मृग, सांभर, वराह (सूअर), अज (बकरा-बकरी), एलक (बकरा या भेड़ा), रुरु, सरभ, चमर (चमरी गाय), कुरंग, गोकर्ण आदि। यह दो खुर वालों की प्ररूपणा हुई।

७३. से किं तं गंडीपया ?

गंडीपया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—हत्थी हत्थी-पूयणया मंकुणहत्थी खग्गा गंडा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं गंडीपया।

[७३ प्र.] वे (पूर्वोक्त) गण्डीपद किस प्रकार के हैं ?

गण्डीपद अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार — हाथी, हस्तिपूतनक, मत्कुणहस्ती, (बिना दांतों का छोटे कद का हाथी), खड्गी और गंडा (गेंडा) इसी प्रकार जो भी अन्य प्राणी हों, उन्हें गण्डीपद में जान लेना चाहिए। यह हुई गण्डीपद जीवों की प्ररूपणा।

७४. से किं तं सणप्कदा ?

सणप्कदा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—सीहा वग्घा दीविया अच्छा तरच्छा परस्परा सियाला बिडाला सुणगा कोलसुणगा^१ कोकंतिया ससगा चित्तगा चित्तलगा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा से तं सणप्कदा।

[७४. प्र.] वे सनखपद किस प्रकार के हैं ?

[७४ उ.] सनखपद अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—सिंह, व्याघ्र, द्वीपिक (दीपड़ा), रीछ (भालू) तरक्ष, पाराशर, शृगाल (सियार), विडाल (बिल्ली)। श्वान, कोलश्वान, कोकन्तिक (लोमड़ी), शशक (खरगोश), चीता और चित्तलग (चिल्लक)। इसी प्रकार के अन्य जो भी प्राणी हैं, वे सब सनखपदों के अन्तर्गत समझने चाहिए। यह हुआ पूर्वोक्त सनखपदों का निरूपण।

७५. [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य।

[७५-१] वे (उपर्युक्त सभी प्रकार के चतुष्पद-स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—सम्मुच्छिम और गर्भज।

[२] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सब्बे णपुंसगा।

[७५-२] उनमें जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सब नपुंसक हैं।

[३] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ णपुंसगा ३।

[७५-३] उनमें जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं। यथा—१ स्त्री, २. पुरुष और ३. नपुंसक।

[४] एतेसि णं एवमादियाणं (चउप्पय) थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं दस जाईकुलकोडिजोणिप्यमुहसयसहस्सा हवंतीति मक्खातं। से त्तं चउप्पयथलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया।

[७५-४] इस प्रकार (एकखुर) इत्यादि इन स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों के पर्याप्तक-अपर्याप्तकों के दस लाख जाति-कुल-कोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है। यह हुआ चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों का निरूपण।

१. [ग्रन्थाग्रम् ५००]

७६. से किं तं परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—उरपरिसप्पथलयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया य भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य।

[७६ प्र.] वे (पूर्वोक्त) परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के हैं ?

[७६ उ.] परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—उर: परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक एवं भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

७७. से किं तं उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—अही १ अयगरा २ आसालिया ३ महोरगा ४।

[७७ प्र.] उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के हैं ?

[७७ उ.] उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१. अहि (सर्प), २. अजगर, ३. आसालिक और ४. महोरग।

७८. से किं तं अही ?

अही दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—दव्वीकरा य मउलिणो य ।

[७८ प्र.] वे अहि किस प्रकार के होते हैं ?

[७८ उ.] अहि दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—दर्वीकर (फन वाले), और मुकुली (बिना फन वाले)।

७९. से किं तं दव्वीकरा ?

दब्बीकरा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—आसीविहा दिट्ठीविसा उग्गविसा भोगविसा तयाविसा लालाविसा उस्सासिवसा निस्सासिवसा कण्हसप्पा सेदसप्पा काओदरा दञ्झपुष्फा कोलाहा मेलिमिंदा, सेसिंदा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से तं दब्बोकरा।

[७९ प्र.] वे दर्वीकर सर्प किस प्रकार के होते हैं ?

[७९ उ.] दर्वीकर (फन वाले) सर्प अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार है—आशीविष (दाढ़ों में विष वाले), दृष्टिविष (दृष्टि में विष वाले), उग्रविष (तीव्र विष वाले), भोगविष (फन या शरीर में विष वाले), त्वचाविष (चमड़ी में विष वाले), लालाविष (लार में विष वाले), उच्छ्वासविष (श्वास लेने में विष वाले), निःश्वासविष (श्वास छोड़ने में विष वाले), कृष्णसर्प, श्वेतसर्प, काकोदर, दह्यपुष्प (दर्भपुष्प), कोलाह, मेलिमिन्द और शेषेन्द्र। इसी प्रकार के और भी जितने सर्प हों, वे सब दर्बीकर के अन्तर्गत समझना चाहिए। यह हुई दर्वीकर सर्प की प्ररूपणा।

८०. से किं तं मडलिणो ?

मंडिलणो अणेगिवहा पण्णत्ता। तं जहा—दिव्वाग गोणसा कसाहिया वइडला चित्तिलणो मंडिलणो मालिणो अही अहिसलागा वायपडागा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं मंडिलणो। से त्तं अही ।

[८०. प्र.] वे (पूर्वोक्त) मुकुली (बिना फन वाले) सर्प कैसे होते हैं ?

[८०. उ.] मुकुली सर्प अनेक प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—दिव्याक, गोनस, कषाधिक व्यतिक, चित्रली, मण्डली, माली, अहि, अहिशलाका और वातपताका (वासपताका)। अन्य जितने भी इसी प्रकार के सर्प हैं, (वे सब मुकुली सर्प की जाति के समझने चाहिये।) यह हुआ मुकुली (सर्पों का वर्णन), (साथ ही), अहि सर्पों की (प्ररूपणा पूर्ण हुई)।

८१. से किं तं अयगरा ?

अयगरा एगागार पण्णत्ता। से त्तं अयगरा।

[८१ प्र.] वे (पूर्वोक्त) अजगर किस प्रकर के होते हैं ?

[८१ उ.]अजगर एक ही आकार-प्रकार के कहे गए हैं। यह अजगर की प्ररूपणा हुई।

८२. से किं तं आसालिया ? किह णं भंते! आसालिया सम्मुच्छित ?

गोयमा! अंतोमणुस्मखिते अहुाइजेसु दीवेसु, निव्वाघाएणं पण्णरससु कम्मभूमीसु, वाघातं पडुच्च पंचसु महाविदेहेसु, चक्कविद्धंधावारेसु वा वासुदेवखंधावारेसु बलदेवखंधावारेसु मंडिलयखंधावारेसु महामंडिलयखंधावारेसु वा गामिनिबेसेसु नगरिनवेसेसु निगमिणवेसेसु खेडिनिवेसेसु कब्बडिनवेसेसु मडंबिनवेसेसु वा दोणमुहिनवेसेसु पटुणिनवेसेसु आगरिनवेसेसु आसमिनवेसेसु संवाहिनवेसेसु रायहाणीनिवेसेसु एतेसि णं चेव विणासेसु एत्थ णं आसालिया सम्मुच्छिति, जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए उक्कोसेणं बारसजोयणाइं, तयणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं भूमिं दालित्ताणं समुट्ठेति अस्सण्णी मिच्छिद्दिट्टी अण्णाणी अंतोमुहृत्तद्धाउया चेव कालं करेइ। से त्तं आसालिया।

[८२ प्र.] आसालिक किस प्रकार के होते हैं? भगवन्! आसालिग (आसालिक) कहाँ सम्मूर्च्छित (उत्पन्न) होते हैं?

[८२ उ.] गौतम! वे (आसालिक उर:परिसर्प) मनुष्य क्षेत्र के अन्दर ढाई द्वीपों में, निर्व्याघातरूप से (बिना व्याघात के) पन्द्रह कर्मभूमियों में, व्याघात की अपेक्षा से पांच महाविदेह क्षेत्रों में, अथवा चक्रवर्ती के स्कन्धावारों (सैनिकशिविरों-छाविनयों) में, या वासुदेवों के स्कन्धावारों में, बलदेवों के स्कन्धावारों में, माण्डिलकों (अल्पवैभव वाले छोटे राजाओं) के स्कन्धावारों में, महामाण्डिलकों (अन्य देशों के अधिपित नरेशों) के स्कन्धावारों में, ग्रामिववेशों में, नगरिनवेशों में, निगम (विणक्-निवास)-निवेशों में, खेटिनवेशों में, कर्बटिनवेशों में, मडम्बिनवेशों में, द्रोणमुखनिवेशों में, पट्टणिनवेशों में,

आकरनिवेशों में, आश्रमनिवेशों में, सम्बाधनिवेशों में और राजधानीनिवेशों में। इन (चक्रवर्ती स्कन्धावार आदि स्थानों) का विनाश होने वाला हो तब इन (पूर्वोक्त) स्थानों में आसालिक-सम्मूर्च्छिमरूप से उत्पन्न होते हैं। वे (आसालिक) जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग-मात्र की अवगाहना से और उत्कृष्ट बारह योजन की अवगाहना से (उत्पन्न होते हैं।) उस (अवगाहना) के अनुरूप ही उनका विष्कम्भ (विस्तार) और बाहल्य (मोटाई) होता है। वह (आसालिक) चक्रवर्ती के स्कन्धावार आदि के नीचे की भूमि को फाड़ (विदारण) कर प्रादुर्भूत (समुत्थित) होता है। वह असंज्ञी, मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी होता है, तथा अन्तर्मुहूर्त्तकाल की आयु भोग कर मर (काल कर) जाता है। यह हुई उक्त आसालिक की प्ररूपणा।

८३. से किं तं महोरगा ?

महोरगा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—अत्थेगइया अंगुलं पि अंगुलपुहत्तिया वि वियत्थिं पि वियत्थिपुहत्तिया वि रयणिं पि रयणिपुहत्तिया वि कुच्छिं पि कुच्छिपुहत्तिया वि धणुं पि धणुपुहत्तिया वि गाउयं पि गाउयपुहत्तिया वि जोयणं पि जोयणपुहत्तिया वि जोयणसतं पि जोयणसतपुहत्तिया वि जोयणसहस्सं पि। ते णं थले जाता जले वि चरंति थले वि चरंति। ते णत्थि इहं, बाहिरएसु दीवसमुद्दएसु हवंति, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से तं महोरगा।

[८३ प्र.] महोरग किस प्रकार के होते हैं ?

[८३ उ.] महोरग अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—कई महोरग एक अंगुल के भी होते हैं, कई अंगुलपृथक्त्व (दो अंगुल से नौ अंगुल तक) के, कई वितस्ति (बीता—बारह अंगुल) के भी होते हैं, कई वितस्तिपृथक्त्व (दो से नौ वितस्ति) के, कई एक रिल (हाथ) भर के, कई रिलपृथक्त्व (दो हाथ से नौ हाथ तक) के भी, कई कुक्षिप्रमाण (दो हाथ के) होते हैं, कई कुक्षिपृथक्त्व (दो कुिक्ष से नौ कुिक्ष तक) के भी, कई धनुष (चार हाथ) प्रमाण भी, कई धनुषपृथक्त्व (दो धनुष से नौ धनुष तक) के भी, कई गव्यूति—(गाऊ—दो कोस दो हजारधनुष) प्रमाण भी, कई गव्यूतिपृथक्त्व के भी, कई योजनप्रमाण (चार गाऊ भर) भी, कई योजनपृथक्त्व के भी कई सौ योजन के भी, कई योजनशतपृथक्त्व (दो सौ से नौ सौ योजन तक) के भी और कई हजार योजन के भी होते हैं। वे स्थल में उत्पन्न होते हैं, किन्तु जल में विचरण (संचरण) करते हैं, स्थल में भी विचरते हैं। वे यहाँ नहीं होते, किन्तु मनुष्यक्षेत्र के बाहर के द्वीप—समुद्रों में होते हैं। इसी प्रकार के अन्य जो भी उर:परिसर्प हों, उन्हें भी महोरगजाति के समझने चाहिए। यह हुई उन (पूर्वोक्त) महोरगों की प्ररूपणा।

८४. [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य।

[८४-१] वे (चारों प्रकार के पूर्वोक्त उर:परिसर्प स्थलचर) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं— सम्मूर्च्छिम और गर्भज।

[२] तत्थ णं जे ते समुच्छिमा ते सब्वे नपुंसगा।

- [८४-२] इनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सभी नपुंसक होते हैं।
- [३] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते णं तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुंसगा ३।
 - [८४-३] इनमें से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं १. स्त्री, २. पुरुष और ३. नपुंसक।
- [४] एएसि णं एवमाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं उरपरिसप्पाणं दस जाइकुलकोडीजोणिप्प-मुहसतसहस्सा हवंतीति मक्खातं। से त्तं उरपरिसप्पा।

[८४-४] इस प्रकार (अहि) इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक उर:परिसर्पों के दस लाख जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है।

यह उर:परिसर्पों की प्ररूपणा हुई।

८५. [१] से किं तं भुयपरिसप्पा ?

भुयपरिसप्पा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—णउला गोहा सरडा सरंठा सारा खारा घरोइला विस्संभरा मूसा मंगूसा पयलाइया छीरविरालिया; जहा चउप्पाइया, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[८५-१ प्र.] भुजपरिसर्प किस प्रकार के हैं ?

[८५-१ उ.] भुजपिरसर्प अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—नकुल (नेवले), गोह, सरट (गिरगिट), शल्य, सरंठ (सरठ), सार, खार (खोर), गृहकोिकला (घरोली—छिपकली) विषम्भरा, (विसभरा), मूषक (चूहे), मंगुसा (गिलहरी), पयोलाितक, क्षीरविडािलका; जैसे चतुष्पद (चौपाये) स्थलचर (का कथन किया, वैसे ही इनका समझना चािहए)। इसी प्रकार के अन्य जितने भी (भुजा से चलने वाले प्राणी हों, उन्हें भुजपिरसर्प समझना चािहए)।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य ।

[८५-२] वे (नकुल आदि पूर्वोक्त भुजपरिसर्प) संक्षेप में दो प्रकार के होते हैं। जैसे कि— सम्मुर्च्छिम और गर्भज।

[३] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे णपुंसगा।

[८५-३]इनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सभी निर्पुसक होते हैं।

- [४] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते णं तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुंसगा ३।
- [८५-४] इनमें से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं। (१) स्त्री, (२) पुरुष और (३) नपुसंक।
- [५] एतेसि णं एवमाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं भुयपिसप्पाणं णव जाइकुलकोडिजोणीपमुह-सतसहस्सा हवंतीति मक्खायं। से त्तं भुयपिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया। से त्तं पिरसप्प-थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया।

[८५-५] इस प्रकार (नकुल) इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक भुजपरिसर्पों के नौ लाख जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है।

यह हुआ पूर्वोक्त भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों (का वर्णन।)(साथ ही) परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों (की प्ररूपणा भी पूर्ण हुई)।

८६. से किं तं खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहां—चम्मपक्खी १ लोमपक्खी समुग्गपक्खी ३ वियतपक्खी ४।

[८६ प्र.] वे (पूर्वोक्त) खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस-किस प्रकार के हैं ?

[८६ उ.] खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं (१) चर्मपक्षी (जिनकी पांखें चमड़े की हों), (२) लोम (रोम) पक्षी (जिनकी पांखें रोंएदार हों), (३) समुद्गकपक्षी (जिनकी पांखें उड़ते समय भी समुद्गक (डिब्बे या पेटी) जैसी रहें), और (४) विततपक्षी (जिनके पंख फैले हुए रहें, सिकुड़ें नहीं)।

८७. से किं तं चम्मपक्खी ?

चम्मपक्खी अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—वग्गुली जलोया अडिला भारंडपक्खी जीवंजीवा समुद्दवायसा कण्णत्तिया पक्खिबराली, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से तं चम्मपक्खी।

[८७ प्र.] वे (पूर्वोक्त चर्मपक्षी खेचर किस प्रकार के हैं ?

[८७ उ.] चर्मपक्षी अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—वल्गुली (चमगीदड़—चमचेड़), जलौका, अडिल्ल, भारण्डपक्षी, जीवंजीव (चक्रवाक-चकवे),समुद्रवायस (समुद्री कौए), कर्णत्रिक और पिक्षविडाली। अन्य जो भी इस प्रकार के पक्षी हों, (उन्हें चर्मपक्षी समझना चाहिए)। यह हुई चर्म-पिक्षयों (की प्ररूपणा)।

८८. से किं तं लोमपक्खी ?

लोमपक्खी अणेगविहा पन्नत्ता। तं जहा—ढंका कंका वायसा चक्कागा हंसा कलहंसा पायहंसा रायहंसा अडा सेडी बगा बलागा पारिप्पवा कोंचा सारसा मेसरा मसूरा मयूरा सतवच्छा गहरा पोंडरीया कागा कामंजुगा वंजुलगा तित्तिरा वट्टगा लावगा कवोया कविंजला पारेवया चिडगा चासा कुकुडा सुगा बरहिणा मदणसलागा कोइला सेहा वरेल्लगमादी। से त्तं लोमपक्खी।

[८८ प्र.] वे (पूर्वोक्त) रोमपक्षी किस प्रकार के हैं।

[८८ उ.] रोमपक्षी अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—ढंक, कंक, कुरल, वायस (कौए), चक्रवाक (चकवा), हंस, कलहंस, राजहंस (लाल चोंच एवं पंख वाले हंस), पादहंस, आड (अड), सेडी, बक (बगुले), बकाका (बकपंक्ति), पारिप्लव, क्रौंच, सारस, मेसर, मसूर, मयूर (मोर), शतवत्स (सप्तहस्त), गहर, पौण्डरीक, काक, कामंजुक (कामेजुक), वंजुलक, तित्तिर (तीतर), वर्तक

(बतक), लावक, कपोत, कपिंजल, पारावत (कबूतर), चिटक, चास, कुक्कुट (मुर्गे), शुक (सुग्गे-तोते), बर्ही (मोर विशेष), मदनशलाका (मैना), कोकिल (कोयल),सेह और विश्लिक आदि। यह है (उक्त) रोमपक्षियों (का वर्णन)।

८९. से किं तं समुग्गपक्खी ?

समुग्गपक्खी एगागारा पण्णत्ता। ते णं णित्थ इहं, बाहिरएसु दीव-समुद्दएसु भवंति। से त्तं समुग्गपक्खी।

[८९ प्र.] वे (पूर्वोक्त) समुद्गपक्षी कौन-से हैं ?

[८९ उ.] समुद्गपक्षी एक ही आकार-प्रकार के कहे गए हैं। वे यहां (मनुष्यक्षेत्र में) नहीं होते। वे (मनुष्यक्षेत्र से)बाहर के द्वीप-समुद्री में होते हैं। यह समुद्गपक्षियों की प्ररूपणा हुई।

९०. से किं तं विततपक्खी ?

विततपक्खी एगागारा पण्णत्ता। ते णं नित्थि इहं, बाहिरएसु दीव-समुद्दएस भवंति। से तं विततपक्खी।

ं[९०प्र.] वे (पूर्वोक्त) विततपक्षी कैसे हैं ?

[९०-उ.] विततपक्षी एक ही आकार-प्रकार के होते हैं। वे यहाँ (मनुष्यक्षेत्र में) नहीं होते, (मनुष्यक्षेत्र से)बाहर के द्वीप-समुद्रों में होते हैं। यह विततपक्षियों की प्ररूपणा हुई।

९१. [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—समुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य ।

[९१-१] ये (पूर्वोक्त चारों प्रकार के खेचरपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—सम्मुर्च्छिम और गर्भज।

[२] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे नपुंसगा।

[९१-२] इनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सभी नपुंसक होते हैं।

[३] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते णं तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुंसगा ३।

[९१-३] इनमें से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—(१) स्त्री, (२) पुरुष और (३) नपुंसक।

[४] एएसि णं एवमाइयाणं खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं बारस जातीकुलकोडीजोणिप्पमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

सत्तद्व जातिकुलकोडिलक्ख नव अद्धतेरसाइं च।

दस दस य होंति णवगा तह बारस चेव बोद्धव्वा॥ १११॥

से त्तं खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया। से त्तं पंचेंदियतिरिक्खजोणिया। से त्तं तिरिक्खजोणिया।

[९१-४] इस प्रकार चर्मपक्षी इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों के बारह लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है।

[संग्रहणी गाथार्थ—] (द्वीन्द्रियजीवों की) सात लाख जातिकुलकोटि, (त्रीन्द्रियों की) आठ लाख, (चतुरिन्द्रियों की) नौ लाख, (जलचर तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों की) साढ़े बारह लाख, (चतुष्पद-स्थलचर पंचेन्द्रियों की) दस लाख, (उर:परिसर्प-स्थलचर पंचेन्द्रियों की) दस लाख, (भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रियों की) नौ लाख तथा (खेचर-पंचेन्द्रियों की) बारह लाख, (यों द्वीन्द्रिय से लेकर खेचर पंचेन्द्रिय तक की क्रमश:) समझनी चाहिए ॥ १११॥

यह खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों की प्ररूपणा हुई। इस समाप्ति के साथ ही पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवों की प्ररूपणा भी समाप्त हुई और इसके साथ ही समस्त तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों की प्ररूपणा भी पूर्ण हुई।

विवेचन—पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत इकतीस सूत्रों (सू. ६१ से ९१ तक) में शास्त्रकार ने पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के जलचर आदि तीनों प्रकारों के भेद-प्रभेदों तथा उनकी विभिन्न जातियों एवं जातिकुलकोटियों की संख्या का विशद निरूपण किया है।

गर्भज और सम्मूर्च्छिम की व्याख्या—जो जीव गर्भ में उत्पन्न होते हैं, वे माता-पिता के संयोग से उत्पन्न होने वाले गर्भव्युत्क्रान्तिक या गर्भज कहलाते हैं। जो जीव माता-पिता के संयोग के बिना ही, गर्भ या उपपात के बिना, इधर-उधर के अनुकूल पुद्गलों के इकट्ठे हो जाने से उत्पन्न होते हैं, वे सम्मूर्च्छिम कहलाते हैं। सम्मूर्च्छिम सब नपुंसक ही होते हैं; किन्तु गर्भजों में स्त्री, पुरुष और नपुंसक,ये तीनों प्रकार होते हैं।

तिर्यञ्चयोनिक शब्द का निर्वचन—जो 'तिर्' अर्थात् कुटिल—टेढ़े-मेढ़े या वक्र, 'अञ्चन' अर्थात् गमन करते हैं, उन्हें तिर्यञ्च कहते हैं। उनकी योनि अर्थात्—उत्पत्तिस्थान को 'तिर्यग्योनि' कहते हैं। तिर्यग्योनि में जन्मने—उत्पन्न होने वाले तैर्यग्योनिक हैं।

'उर:परिसर्प' और 'भुजपरिसर्प का अर्थ—जो अपनी छाती (उर) से रेंग (परिसर्पण) करके चलते हैं, वे सर्प आदि स्थलचर तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय 'उर:परिसर्प' कहलाते हैं और जो अपनी भुजाओं के सहारे चलते हैं, ऐसे नेवले, गोह आदि स्थलचर तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय प्राणी 'भुजपरिसर्प' कहलाते हैं।

'आसालिका' (उर:परिसर्प) की व्याख्या— 'आसालिया' शब्द के संस्कृत में दो रूपान्तर होते हैं—आसालिका और आसालिगा। आसालिका या आसालिगा किसे कहते हैं, वे किस-किस प्रकार के होते हैं और कहाँ उत्पन्न होते हैं? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर में प्रज्ञापना सूत्रकार श्री श्यामार्य वाचक ने अन्य ग्रन्थ में भगवान् द्वारा गौतम के प्रति प्ररूपित कथन को यहाँ उद्धृत किया है।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ४४

२. वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक ४३

३. वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक ४६

'आसालिया किहं संमुच्छइ ?' इस वाक्य में प्रयुक्त 'संमुच्छइ' क्रियापद से स्पष्ट सूचित होता है कि 'आसालिका' या 'आसालिक' गर्भज नहीं, किन्तु सम्मूर्छिम हैं।

आसालिका की उत्पत्ति मनुष्यक्षेत्र के अन्दर अढाई द्वीपों में होती है; वस्तुत: मनुष्यक्षेत्र, अढाई द्वीप की ही कहते हैं, किन्तू यहाँ जो अढाई द्वीप में इनकी उत्पत्ति बताई है, वह यह सूचित करने के लिए है कि आसालिका की उत्पत्ति अढाई द्वीपों में ही होती है, लवणसमुद्र में या कालोदिध समुद्र में नहीं। किसी प्रकार के व्याघात के अभाव में वह १५ कर्मभूमियों में उत्पन्न होता है, इसका रहस्य यह है कि अगर ५ भरत एवं ५ ऐरवत क्षेत्रों में व्याघातहेतुक सुषम-सुषम आदि रूप या दु:षम-दु:षम आदिरूप काल व्याघातकारक न हों, तो १५ कर्मभूमियों में आसालिका की उत्पत्ति होती है। यदि ५ भरत और ५ ऐरवत क्षेत्र में पूर्वोक्त रूप को कोई व्याघात हो तो फिर वहाँ वह उत्पन्न नहीं होता। ऐसी (व्याघातकारक) स्थिति में वह पांच महाविदेहक्षेत्रों में उत्पन्न होता है। इससे यह भी ध्वनित हो जाता है कि तीस अकर्मभूमियों में आसालिका की उत्पत्ति नहीं होती तथा १५ कर्मभूमियों एवं महाविदेहों में भी इसकी सर्वत्र उत्पत्ति नहीं होती, किन्तु चक्रवर्ती, बलदेव आदि के स्कन्धावारों (सैनिक छाविनयों) में वह उत्पन्न होता है। इनके अतिरिक्त ग्राम-निवेश से लेकर राजधानी-निवेश तक में से किसी में भी इसकी उत्पत्ति होती है; और वह भी जब चक्रवर्ती आदि के स्कन्धावारों या ग्रामादि-निवेशों का विनाश होने वाला हो। स्कन्धावारों या निवेशों के विनाशकाल में उनके नीचे की भूमि को फाड़कर उसमें से यह आसालिका निकलती है। यही आसालिका की उत्पत्ति की प्ररूपणा है। आसालिका की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातर्वे भाग की, उत्कृष्ट बारह योजन की होती है। उसका विस्तार और मोटाई अवगाहना के अनुरूप होती है। आसालिका असंज्ञी, मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी होता है। इसकी आयु सिर्फ अन्तर्मुहूर्त भर की होती है।

महोरगों का स्वरूप और स्थान—महोरग एक अंगुल की अवगाहना से लेकर एक हजार योजन तक की अवगाहना वाले होते हैं। ये स्थल में उत्पन्न होकर भी जल में भी संचार करते हैं, स्थल में भी; क्योंकि इनका स्वभाव ही ऐसा है। महोरग इस मनुष्यक्षेत्र में नहीं होते, किन्तु इससे बाहर के द्वीपों और समुद्रों में, तथा समुद्रों में भी पर्वत, देवनगरी आदि स्थलों में उत्पन्न होते हैं। अत्यन्त स्थूल होने के कारण ये जल में उत्पन्न नहीं होते। इसी कारण ये मनुष्यक्षेत्र में नहीं दिखाई देते। मूलपाठ में उक्त लक्षण वाले दस अंगुल आदि की अवगाहना वाले जो उर:परिसर्प हों, उन्हें महोरग समझना चाहिए।

'दर्वीकर' और 'मुकुली' शब्दों का अर्थ—दर्वी कहते हैं—कुडछी या चाटु को, उसकी तरह दर्वी या फणा करने वाला दर्वीकर है। मुकुली अर्थात्—फन उठाने की शक्ति से विकल, जो बिना फन का हो।³

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ४७-४८

२. वही मलय वृत्ति, पत्रांक ४८

३. वही मलय. वृत्ति पत्रांक ४७

ग्राम आदि के विशेष अर्थ—ग्राम—बाड़ से घिरी हुई बस्ती। नगर—जहाँ अठारह प्रकार के कर न लगते हों। निगम—बहुत से विणक्जनों के निवास वाली बस्ती। खेट—खेड़ा, धूल के परकोटे से घिरी हुई बस्ती। कर्बट—छोटे से प्राकार से विष्टित बस्ती। मडम्ब—जिसके आसपास ढाई कोस तक दूसरी बस्ती न हो। द्रोणमुख—जिसमें प्राय: जलमार्ग से ही आवागमन हो या बन्दरगाह। पट्टण—जहाँ घोड़ा, गाड़ी या नौका से पहुंचा जाए अथवा व्यापार की मंडी, व्यापारिक केन्द्र। आकर—स्वर्णाद की खान। आश्रम—तापसजनों का निवासस्थल। संबाध—धान्यसुरक्षा के लिए कृषकों द्वारा निर्मित दुर्गम, भूमिगत स्थान या यात्रिकों के पड़ाव का स्थान। राजधानी—राज्य का शासक जहाँ रहता हो। रि

समग्र मनुष्य जीवों की प्रज्ञापना

९२. से किं तं मणुस्सा ?

मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मुच्छिममणुस्सा य गब्भवक्कंतियमणुस्सा य।

[९२ प्र.] मनुष्य किस (कितने) प्रकार के होते हैं ?

[९२ उ.] मनुष्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—सम्मूर्च्छिम मनुष्य और गर्भज मनुष्य।

९३. से किं तं सम्मुच्छिममणुस्सा ? किह णं भंते! सम्मुच्छिममणुस्सा सम्मुच्छंति ?

गोयमा! अंतोमणुस्सखेत्ते पणुतालीसाए जोयणसयसहस्सेसु अङ्गृइज्जेसु दीव-समुद्देसु पन्नरससु कम्भभूमीसु तीसाए अकम्भभूमीसु छप्पण्णाए अंतरदीवएसु गब्भवक्रंतियमणुस्साणं चेव उच्चारेसु वा १ पासवणेसु वा २ खेलेसु वा ३ सिंघाणेसु वा ४ वंतेसु वा ५पित्तेसू वा ६ पूएसु वा ७ सोणिएसु वा ८ सुक्केसु वा ९ सुक्कपोग्गलपिरसाडेसु वा १० विगतजीवकलेवरेसु वा ११ थी-पुरिससंजोएसु वा १२ [गोयणिद्धमणेमु वा १३] णगरणिद्धमणेसु वा १४ सव्वेसु चेव असुइएसु ठाणेसु, एत्थ णं सम्मुच्छिम-मणुस्सा सम्मुच्छित। अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए असण्णी मिच्छिद्दिही सव्वाहिं पज्ततीहिं अपज्तत्तगा अंतोमुहुत्ताउया चेव कालं करेति। से त्तं सम्मुच्छिममणुस्सा।

[९३ प्र.] सम्मूर्च्छिम मनुष्य कैसे होते हैं ? भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कहाँ उत्पन्न होते हैं?

[९३ उ.] गौतम! मनुष्यक्षेत्र के अन्दर, पैंतालीस लाख योजन विस्तृत द्वीप-समुद्रों में, पन्द्रह कर्मभूमियों में, तीस अकर्मभूमियों में एवं छप्पन अन्तर्द्वीपों में गर्भज मनुष्यों के—(१) उच्चारों (विष्ठाओं—मलों) में (२) पेशाबों (मूत्रों) में, (३) कफों में, (४) सिंघाण—नाक के मैलों (लींट) में,(५) वमनों में, (६) पित्तों में, (७) मवादों में, (८) रक्तों में, (९) शुक्रों—वीर्यों में, (१०) पहले सूखे हुए शुक्र के पुद्गलों को गीला करने में, (११) मरे हुए जीवों के कलेवरों (लाशों) में, (१२)स्त्री-पुरुष के संयोगों में या (१३) ग्राम की गटरों या मोरियों में अथवा (१४) नगर की गटरों-मोरियों में, अथवा सभी अशुचि (अपवित्र-गंदे) स्थानों में—इन सभी स्थानों में सम्मूर्च्छिम मनुष्य (माता-पिता के संयोग

१. वही मलय, वृत्ति, पत्रांक ४७-४८

२. ''गामाणिद्धमणेसु वा १२'' पाठ मलयगिरि नन्दी टीका के उद्धरण में है।

के बिना स्वत:) उत्पन्न होते हैं। इन सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र की होती है। ये असंज्ञी मिथ्यादृष्टि एवं सभी पर्याप्तियों से अपर्याप्त होते हैं। ये अन्तर्मुहूर्त्त की आयु भोग कर मर जाते हैं। यह सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की प्ररूपणा हुई।

९४. से किं तं गब्भवक्रंतियमणुस्सा ?

गब्भवक्रंतियमणुस्सा तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—कम्मभूमगा १ अकम्मभूमगा २ अंतरदीवगा ३।

[९४ प्र.] गर्भज मनुष्य किस प्रकार के होते हैं?

[९४ उ.] गर्भज मनुष्य तीन प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—१. कर्मभूमिक, २. अकर्मभूमिक और ३. अन्तरद्वीपक।

९५. से किं तं अंतरदीवगा ?

अंतरदीवया अद्वावीसितिविहा पण्णत्ता। तं जहा—एगोरुया १ आभासिया २ वेसाणिया ३ णंगोलिया ४ हयकण्णा ५ गयकण्णा ६ गोकण्णा ७ सक्कुलिकण्णा ८ आयंसमुहा ९ मेंढमुहा १० अयोमुहा ११ गोमुहा १२ आसमुहा १३ हित्थमुहा १४ सीहमुहा १५ वग्घमुहा १६ आसकण्णा १७ सीहकण्णा १८ अकण्णा १९ कण्णपाउरण्णा २० उक्कामुहा २१ मेहमुहा २२ विज्जुमुहा २३ विज्जुदंता २४ घणादंता २५ लट्टदंता २६ गूढदंता २७ सुद्धदंता २८। से त्तं अंतरदीवगा।

[९५ प्र.] अन्तरद्वीपक किस प्रकार के होते हैं ?

[९५ उ.] अन्तरद्वीपक अट्टाईस प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) एकोरुक, (२) आभासिक, (३) वैषाणिक, (४) नांगोलिक, (५) हयकर्ण, (६) गजकर्ण, (७) गोकर्ण, (८) शष्कुलिकर्ण, (९) आदर्शमुख, (१०) मेण्ढमुख, (११) अयोमुख, (१२) गोमुख, (१३) अश्वमुख, (१४) हस्तिमुख, (१५) सिंहमुख, (१६) व्याघ्रमुख, (१७) अश्वकर्ण, (१८) सिंहकर्ण (हरिकर्ण),(१९) अकर्ण, (२०) कर्णप्रावरण, (२१) उल्कामुख, (२२) मेघमुख, (२३) विद्युन्मुख, (२४) विद्युन्त, (२५) घनदन्त, (२६) लष्टदन्त, (२७) गूढदन्त और (२८) शुद्धदन्त। यह अंतरद्वीपकों की प्ररूपणा हुई।

९६. से किं तं अकम्मभूमगा ?

अकम्मभूमगा तीसतिविहा पन्नत्ता। तं जहा—पंचिह हेमवएिह पंचिह हिरण्णवएिह पंचिह हिरिवासेहि पंचिह रम्मगवासेहि पंचिह देवकुरूिह पंचिह उत्तरकुरूिह। से तं अकम्मभूमगा।

[९६ प्र.] अकर्मभूमक मनुष्य कौन-से हैं ?

[९६ उ.] अकर्मभूमक मनुष्य तीस प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पांच हैमवत क्षेत्रों में, पांच हैरण्यवत क्षेत्रों में, पांच हरिवर्ष क्षेत्रों में, पांच रम्यकवर्ष क्षेत्रों में, पांच देवकुरुक्षेत्रों में और पांच उत्तरकुरुक्षेत्रों में। इस प्रकार यह अकर्मभूमक मनुष्य की प्ररूपणा हुई।

९७. [१] से किं तं कम्मभूमया ?

कम्मभूमया पण्णरसिवहा पण्णत्ता। तं जहा—पंचिहं भरहेहिं पंचिहं एरवतेहिं पंचिहं महाविदेहेहिं।

[९७-१ प्र.] कर्मभूमक मनुष्य किस प्रकार के हैं ?

[९७-१ उ.] कर्मभूमक मनुष्य पन्द्रह प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—पांच भरत क्षेत्रों में, पांच ऐरवत क्षेत्रों में और पांच महाविदेहक्षेत्रों में।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता तं जहा—आरिया य मिलक्खू य ।

[९७-२] वे (पन्द्रह प्रकार के कर्मभूमक मनुष्य) संक्षेप में दो प्रकार के हैं—आर्य और म्लेच्छ।

९८. से किं तं मिलक्खू ?

मिलक्खू श्रणेगिवहा पण्णत्ता। तं जहा—सग-जवण-चिलाय-सबर-बब्बर-काय-मुरुं-डोड्ड-भडग-णिण्णग-पक्कणिय-कुलक्ख-गोंड-सिंहल-पारस-गांधोडंब-दिमल-चिल्लल-पुलिंद-हारोस-डोंब-वोक्काण-गंधाहारग-बहिलय-अज्जल-रोम-पास-पउसा-मलया य चुंचया य मूयिल-कोंकणग-मेय-पल्हव-मालव-गग्गर-आभासिय-णक्क-चीणा ल्हिसिय-खस-खासिय-णेडूर-मंढडोंबिलग-लउस-बउस-केक्कया अरवागा हूण-रोसग-मरुग-रुय-विलायविसयवासी य एवसादी। से त्तं मिलक्खू।

[९८ प्र.] म्लेच्छ मनुष्य किस-किस प्रकार के हैं ?

[९८ उ.] म्लेच्छ मनुष्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—शक, यवन, किरात, शबर, बर्बर, काय, मरुण्ड, उड्ड, भण्डक, (भडक), निन्नक (निण्णक), पक्कणिक, कुलाक्ष, गोंड, सिंहल, पारस्य, (पारसक) आन्ध्र (क्रौंच), उडम्ब (अम्बडक), तिमल (दिमल-द्रिवड़), चिल्लल (चिल्लस या चिल्लक) पुलिन्द, हारोस, डोंब (डोम), पोक्काण (वोक्काण), गन्धाहारक (कन्धारक), बहलिक (बाल्हीक), अज्जल (अज्झल), रोम, पास (मास), प्रदुष (प्रकुष), मलय (मलयाली) और चंचूक (बन्धुक)

१. प्रवचनसारोद्धार की तीन गाथाओं में म्लेच्छ के बदले अनार्यों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं—''सग-जवण-सबर-बब्बर-काय-मुरुंडोड्डगोण-पक्षणया। अरबाग-होण-रोमय-पारस खसखासिया चेव॥ १५८३॥ दुंबिलय-लउस-बोक्कस-भिल्लंऽध-पुलिंद-कुंच-भमररुया। कोवाय-चीण-चंचुय-मालव-दिमला कुलग्घा य॥ १५८४॥ केक्कय-किराय-हयमुह-खरमुह-गय-तुरय-मिंढयमुहा य। हयकन्ना गयकन्ना अन्ने वि अणारिया बहवे॥ १५८५॥'''शकाः यवनाः शबराः बर्बरा कायाः मुरुण्डाः उड्डाः गौड्डाः पक्षणगाः अरबागाः हूणाः रोमकाः पारसाः खसाः खासिकाः दुम्बिलकाः लकुशाः बोक्कशाः भिल्लाः अन्धाः पुलिन्द्राः कुञ्चाः भ्रमरुचाः कोर्पकाः चीनाः चञ्चुकाः मालवाः द्रविडाः कुलार्घाः केकयाः किराताः हयमुखाः खरमुखाः गजमुखाः तुरङ्गमुखाः मिण्ढकमुखाः हयकर्णाः गजकर्णाश्चेत्येते देषां अनार्याः।'' इति वृतिः। पत्रं ४४५-२॥

तथा मूयली (चूलिक), कोंकणक, मेद (मेव), पल्हव, मालव, गग्गर, (मग्गर), आभाषिक, णक्ष (कणवीर), चीना ल्हासिक (लासा के), खस, खासिक (खास जातीय), नेडूर (नेदूर), मंढ (मीढ), डोम्बिलक, लओस, बकुश, कैकय, अरबाक (अक्खाग), हूण, रोसक (रूसवासी या रोमक), मरुक, रुत (भ्रमररुत) और विलात (चिलात) देशवासी इत्यादि। यह म्लेच्छों का (वर्णन हुआ)।

९९. से किं तं आरिया ?

आरिया दुविहा पण्णता। तं जहा—इड्डिपत्तारिया य अणिड्डिपत्तारिया य।

[९९ प्र.] आर्य कौन-से हैं ?

[९९ उ.] आर्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—ऋद्विप्राप्त आर्य और ऋद्धि-अप्राप्त आर्य। १००. से किं तं इड्टिपत्तारिया ?

इड्डिपत्तारिया छिव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—अरहंता १ चक्कवट्टी २ बलदेवा ३ वासुदेवा ४ चारणा ५ विजाहरा ६। से त्तं इड्डिपत्तारिया।

[१०० प्र.] ऋद्धिप्राप्त आर्य कौन-कौन-से हैं ?

[१०० उ.] ऋद्धिप्राप्त आर्य छह प्रकार के हैं। वे इस प्रकार हैं—१. अर्हन्त (तीर्थंकर), २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव , ४. वासुदेव, ५. चारण और ६. विद्याधर। यह हुई ऋद्धिप्राप्त आर्यों की प्ररूपणा। **१०१. से किं तं अणिड्टिपत्तारिया ?**

अणिड्ढिपत्तारिया णविवहा पण्णत्ता। तं जहा— खेत्तारिया १ जातिआरिया २ कुलारिया ३ कम्मारिया ४ सिप्पारिया ५ भासारिया ६ णाणारिया ७ दंसणारिया ८ चरित्तारिया ९ ।

[१०१ प्र.] ऋद्धि-अप्राप्त आर्य किस प्रकार के हैं ?

[१०१ उ.] ऋद्धि-अप्राप्त आर्य नौ प्रकार के कहे कए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) क्षेत्रार्य, (२) जात्यार्य, (३) कुलार्य, (४) कर्मार्य, (५) शिल्पार्य, (६) भाषार्य, (७) ज्ञानार्य, (८) दर्शनार्य और (९) चारित्रार्य।

१०२. से किं तं खेतारिया ?

खेत्तारिया अद्धछव्वीसितविहा पण्णत्ता। तं जहा—

रायगिह मगह १, चंपा अंगा २, तह तामिलित्ति वंगा य ३। कंचणपुरं किलंगा ४, वाणारिस चेव कासी य ५॥ ११२॥ साएय कोसला ६, गयपुरं च कुरु ७, सोरियं कुसट्टा य ८। कंपिल्लं पंचाला ९, अहिछत्ता जंगला चेव १०॥ ११३॥

१. 'तामिलत्ती' शब्द के संस्कृत में दो रूपान्तर होते हैं—तामिलित्ती और ताम्रिलित्ती। प्रज्ञापना मलय, वृत्ति, तथा प्रवचनसारोद्धार में प्रथम रूपान्तर माना गया है, जब कि भगवती आदि की टीकाओं में 'ताम्रिलित्ती' शब्द को ही प्रचलित माना है। जो हो, वर्तमान में यह 'तामलूक' नाम से पश्चिम बंगाल में प्रसिद्ध है। —सं.

बारवती य सुरद्घ ११, मिहिल विदेहा य १२, वच्छ कोसंबी १३।

णंदिपुरं संडिल्ला १४, भिहलपुरमेव मलया य १५ ॥ ११४॥
वइराड मच्छ १६, वरणा अच्छा १७, तह मित्तयावइ दसण्णा १८।

सुत्तीमई य जेदी १९, वीइभयं सिंधुसोवीरा २० ॥ ११५॥
महुरा य सूरसेणा २१, पावा भंगी य २२, मास पुरिवट्टा २३।

सावत्थी य कुणाला २४, कोडीविरसं च लाढा य २५॥ ११६॥

सेयविया वि य णयरी केयइअद्धं च२५॥ आरियं भिणतं।

एत्थुप्पत्ति जिणाणं चक्कीणं राम-कण्हाणं॥ ११७॥

से तं खेत्तारिया।

[१०२ प्र.] क्षेत्रार्य किस-किस प्रकार के हैं ?

[१०२ उ.] क्षेत्रार्थ साढे पच्चीस प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—

[गाथाओं का अर्थ—]— (१) मगध (देश में) राजगृह (नगर), (२) अंग (देश में) चम्पा (नगरी), तथा (३) बंग (देश में) ताम्रिलिती (तामलूक नगरी), (४) किलंग (देश में) काञ्चनपुर और (५) काशी (देश में), वाराणसी (नगरी), ॥ ११२॥ (६) कौशल (देश में) साकेत (नगर), (७)कुरु (देश में) गजपुर (हस्तिनापुर), (८) कुशार्त (कुशावर्त देश में) सौरियपुर (सौरीपुर), (९) पंचाल (देश में), काम्पिल्य, (१०) जांगल (देश में) अहिच्छत्रा (नगरी),॥ ११३॥ (११) सौराष्ट्र में द्वारावती (द्वारिका), (१२) विदेह (जनपद में), मिथिला (नगरी), (१३) वत्स (देश में) कौशाम्बी (नगरी), (१४) शाण्डिल्य (देश में), नित्दपुर, (१५) मलय (देश में), भिद्तलपुर॥ ११४॥ (१६) मत्स्य (देश में), वैराट नगर, (१७) वरण (देश में), अच्छ (पुरी), तथा (१८) दशार्ण (देश में),मृत्तिकावती (नगरी), (१९) चेदि (देश में) शुक्तिमती (शौक्तिकावती),(२०) सिन्धु-सौवीर देश में वीतभय नगर ॥ ११५॥ (२१) शूरसेन (देश में) मथुरा (नगरी), (२२) भंग (नामक जनपद में) पावापुरी (अपापा नगरी),

१. प्रवचनसोद्धार की गाथा १५८९ से १५९२ तक की वृत्ति १३ वें आर्यक्षंत्र से पाठक्रम तथा इसी के समान वृत्ति मिलती है—'वत्सदेशः कौशाम्बी नगरी १३ निन्दिपुरं नगरं शाण्डिल्यो शाण्डिल्या वा देशः १४ भिंदलपुरं नगरं मलयादेशः १५ वैराटो देशः वत्सा राजधानी, अन्ये तु 'वत्सादेशो वैराटं परं नगरम्' इत्याहुः १६ वरुणा-नगरं अच्छादेशः; अन्ये तु 'वरुणेषु अच्छापुरी' इत्याहुः १७ तथा मृत्तिकावती नगरी दशाणों देशः १८ शुक्तिमती नगरी चेदयो देशः १९ वीतभयं नगरं सिन्धुसौवीरा जनपदः २० मथुरा नगरी सूरसेनाख्यो देशः २१ पापा नगरी भङ्गयो देशः २२ मासपुरी नगरी वर्तो देशः २३ तथा श्रावस्ती नगरी कुणाला देशः २४।' —पत्रांक ४४६/२

२. वैराट् नगर (वर्तमान में वैराठ) अलवर के पास है, जहाँ प्राचीनकाल में पाण्डवों का अज्ञातवास रहा है। यह वत्सदेश में न होकर मत्स्यदेश में है। क्योंकि वच्छ कोसांबी पाठ पहले आ चुका है। अत: मूलपाठ में यह 'वच्छ' न होकर मच्छ शब्द होना चाहिए। अन्यथा 'वहराड वच्छ' पाठ होने से वत्सदेश नाम के दो देश होने का भ्रम हो जाएगा। — सं.। — देखिये, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भा-२, पृ. ९१।

(२३) पुरिवर्त्त (परावर्त्त) (नामक जनपद में) मासा पुरी (माषानगरी), (२४) कुणाल (देश में), श्रावस्ती (सेहटमेहट), (२५) लाढ (देश में) कोटिवर्ष (नगर)॥ ११६॥ और (२५½) केकयार्द्ध (जनपद में) श्वेताम्बिका (नगरी), (ये सब२५॥ देश) आर्य (क्षेत्र) कहे गए हैं। इन (क्षेत्रों में तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों, राम और कृष्ण (बलदेवों और वासुदेवों) का जन्म (उत्पत्ति) होता है॥ ११७॥ यह हुआ उक्त क्षेत्रार्यों का वर्णन।

१०३. से किं तं जातिआरिया ?

जातिआरिया छव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—

अंबट्ठा १य कलिंदा २ विदेहा ३ वेदगा ४ इ य। हरिया ५ चुंचुणा ६ चेव, छ एया इब्भजातिओ^१ ॥ ११८॥

से त्तं जातिआरिया।

[१०३ प्र.] जात्यार्य किस प्रकार के हैं ?

[१०३ उ.] जात्यार्य^२ छह प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ]—(१) अम्बष्ट^३, (२) कलिन्द, (३) वैदेह^४, (४) वेदग (वेदंग) आदि और (५) हरित एवं (६) चुंचुण; ये छह इभ्य (अर्चनीय-माननीय) जातियां हैं॥ ११८॥

यह हुआ उक्त जात्यार्यों का निरूपण।

१०४. से किं कुलारिया ?

कुलारिया छव्विहा पन्नत्ता। तं जहा—उग्गा १ भोगा २ राइण्णा ३ इक्खागा ४ णाता ५ कोरव्वा ६। से त्तं कुलारिया।

[१०४ प्र.] कुलार्य कौन-कौन से हैं ?

[१०४ उ.] कुलार्य छह प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं —(१) उग्र (२) भोग, (३) राजन्य, (४) इक्ष्वाकु, (५) ज्ञात और (६) कौरव्य। यह हुआ कुलार्यों का निरूपण।

१०५. से किं तं कम्मारिया ?

- १. पाठान्तर--अञ्जजातितो।
- २. जात्यार्य उमास्वातिकृत तत्त्वार्थभाष्य में इक्ष्वाकु विदेह, हरि, अम्बष्ट, ज्ञात, कुरु, बुंबुनाल, (?) उग्र, भोग, राजन्य आदि की गणना जात्यार्य में की गई है।
- ३. अम्बष्ठ ब्राह्मण पुरुष और वैश्यस्त्री से उत्पन्न सन्तान, देखिये—मनुस्मृति तथा आचारांगनिर्युक्ति (२०-२७)
- ४. वैदेह— वैश्य पुरुष और ब्राह्मणस्त्री से उत्पन्न। देखिये—मनुस्मृति तथा आचारांगनिर्युक्ति (२०-२७)
- ५. कुलार्य-तत्त्वार्थभाष्य में कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि की गणना कुलार्य में की गई है।
 - तत्त्वार्थाभाष्य, अ. ३/ सू. १५
- ६. उग्र---क्षत्रिय पुरुष और शूद्रस्त्री से उत्पन्न सन्तान। देखिये मनुस्मृति और आचारांगनिर्युक्ति।

कम्मारिया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—दोस्सिया सोत्तिया कप्पासिया सुत्तवेयालिया भंडवेयालिया कोलालिया णरदावणिया, ये यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं कम्मारिया।

[१०५ प्र.] कर्मार्य कौन-कौन से हैं ?

[१०५ उ.] कर्मार्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार —दोषिक (दूष्यक), सौत्रिक, कार्पासिक, सूत्रवैतालिक, भाण्डवैतालिक, कौलालिक और नरवाहनिक। इसी प्रकार के अन्य जितने भी (आर्यकर्म वाले हों, उन्हें कर्मार्य समझना चाहिए)। यह हुई उक्त कर्मार्यों (की प्ररूपणा)।

१०६. से किं तं सिप्पारिया ?

सिप्पारिया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—तुण्णागा तंतुवाया पट्टागारा देयडा वरणा^१ छिळ्या कट्टपाउयारा मुंजपाउयारा छत्तारा वज्झारा पोत्थारा लेप्पारा चित्तारा संखारा दंतारा भंडारा जिज्झगारा^१ सेल्लगारा^३ कोडिगारा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं सिप्पारिया।

[१०६ प्र.] शिल्पार्य कौन-कौन से हैं ?

[१०६ उ.] शिल्पार्य भी अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—तुन्नाक —(रफ्फूगर) दर्जी, तन्तुवाय—जुलाहे, पट्टकार (पटवा), दृतिकार (चमड़े की मशक बनाने वाले), वरण (या वरुण—पिच्छिक-पिंछी बनाने वाले), छिर्विक (चटाई आदि बनाने वाले), काष्ठपादुकाकार (लकड़ी की खड़ाऊँ बनाने वाले) मुंजपादुकाकार (मुंज की खड़ाऊँ बनाने वाले), छत्रकार (छाते बनाने वाले), वज्झार-वाह्यकार (वाहन बनाने वाले), (अथवा बहकार— मोरिपच्छी बनाने वाले), पुच्छकार या पुस्तकार (पूंछ के बालों से झाडू आदि बनाने वाले), या पुस्तककार—जिल्दसाज अथवा मिट्टी के पुतले बनाने वाले, लेप्यकार (लिपाई-पुताई करने वाले, अथवा मिट्टी के खिलौने आदि बनाने वाले), चित्रकार, शंखकार, दन्तकार (दांत बनाने वाले, या दांती), भाण्डकार (विविध बर्तन बनाने वाले), जिज्झकार (जिह्वाकार=नकली जीभ बनाने वाले), सेल्लकार (शैल्यकार— शिला तथा पाषाण आदि घड़कर वस्तु बनाने वाले अथवा सैलकार—भाला बनाने वाले) और कोडिकार (कोडियों की माला आदि बनाने वाले), इसी प्रकार के अन्य जितने भी आर्य शिल्पकार हैं, उन सबको शिल्पार्य समझना चाहिए। यह हुई उन शिल्पार्यों की प्ररूपणा।

१०७. से किं तं भासारिया ?

भासारिया जे णं अद्धमागहाए भासाए भासंति, जत्थ विय णं बंभी लिवी पवत्तई। बंभीए णं लिवीए अट्ठारसिवहे लेक्खविहाणे पण्णत्ते। तं जहा—बंभी १ जवणाणिया २ दोसापुरिया^४ ३ खरोट्ठी४ पुक्खरसारिया५ भोगवईया ६ पहराईयाओ य ७ अंतक्खरिया ८ अक्खरपुट्टिया ९ वेणइया १० णिण्हइया ११ अंकलिवी १२ गणितिलवी १३ गंधव्विलवी १४ आयंसिलवी १५ माहेसरी १६ दामिली १७ पोलिदी १८। से तं भासारिया।

पाठान्तर— १. वरुणा, वरुट्टा। २. जिब्भगारा, जिब्भारा। ३. सेल्लारा (शिलावट)। ४. दासापुरिया। ५ दोमिली, दोमिलिवी।

[१०७ प्र.] भाषार्य कौन-कौन से हैं ?

[१०७ उ.] भाषार्य वे हैं, जो अर्धमागधी भाषा में बोलते हैं, और जहाँ भी ब्राह्मी लिपि प्रचलित है (अर्थात्—जिनमें ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया जाता है)। ब्राह्मी लिपि में अठारह प्रकार का लेखिवधान (लेखन-प्रकार) बताया गया है। जैसे कि—१. ब्राह्मी, २. यवनानी, ३. दोषापुरिका, ४. खरौष्ट्री, ५. पुष्करशारिका, ६. भोगवितका, ७. प्रहरादिका, ८. अन्ताक्षरिका, ९. अक्षरपुष्टिका, १०. वैनियका, ११. निह्मविका, १२. अंकलिपि, १३. गणितिलिपि, १४. गन्धर्विलिपि, १५. आदर्शलिपि, १६. माहेश्वरी, १७. तामिली—द्राविड़ी, १८. पौलिन्दी। यह हुआ उक्त भाषार्य का वर्णन।

१०८. से किं तं णाणारिया ?

णाणारिया पंचिवहा पण्णत्ता। तं जहा—आभिणिबोहियणाणारिया १ सुयणाणारिया २ ओहिणाणारिया ३ मणपञ्जवणाणारिया ४ केवलणाणारिया ५। से त्तं णाणारिया।

[१०८ प्र.] ज्ञानार्य कौन-कौन से हैं ?

[१०८ उ.] ज्ञानार्य पांच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार —१. आभिनिबोधिकज्ञानार्य, २. श्रुतज्ञानार्य, ३. अविधज्ञानार्य, ४. मन: पर्यवज्ञानार्य और ५. केवलज्ञानार्य। यह है उक्त ज्ञानार्यों की प्ररूपणा।

१०९. से किं तं दंसणारिया ?

दंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सरागदंसणारिया य वीयरागदंसणारिया य।

[१०९ प्र.] वे दर्शनार्य कौन-कौन से हैं ?

[१०९ उ.] दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार — सरागदर्शनार्य और वीतरागदर्शनार्य।

११०. से किं तं सरागदंसणारिया ?

सरागदंसणारिया दसविहा पण्णत्ता। तं जहा---

निस्सग्गुवएसरुई-१ २-आणारुइ ३-सुत्त ४-बीयरुइ ५-मेव। अहिगम-६ वित्थाररुई-७ कि रिया-८ संखेव-९ धम्मरुई-१० ॥ ११९॥

भूअत्थेणाधिगया जीवाऽजीवं च पुण्ण-पावं च।
सहसम्मुइयाऽऽसव-संवरे य रोएइ उ णिसग्गो॥१२०॥
जो जिणिदिट्ठे भावे चउव्विहे सद्दृहाइ सयमेव।
एमेव णऽण्णह त्ति य णिस्सग्गरुइ ति णायव्वो १॥१२१॥
एते चेव उ भावे उविद्ठे जो परेण सद्दृह।
छउमत्थेण जिणेण व उवएसरुइ ति नायव्वो २॥१२२॥
जो हेउमयाणंतो आणाए रोयए पवयणं तु।
एमेव णऽण्णह त्ति य एसो आणारुई नाम ३॥१२३॥

जो सूत्तमहिज्जंतो सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं। अंगेण बाहिरेण व सो सुत्तरुइ ति णायव्वो ४॥ १२४॥ एगपएऽणोगाइं पदाइं जो पसरई उ सम्मत्तं। उदए व्व तेल्लबिंदू सो बीयरुइ ति णायव्वो ५॥ १२५॥ सो होड अहिगमरुई स्यणाणं जस्स अत्थओ दिद्रं। एक्कारस अंगाइं पइण्णगं दिद्विवाओ य ६॥ १२६॥ दव्वाण सव्वभावा सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा। सव्वाहि णयविहीहि वित्थाररुइ ति णायव्वो ७॥ १२७॥ दसंण-णाण-चरित्ते तव-विणए सव्वसमिइ-गुत्तीसु। जो किरियाभावरुई सो खलु किरियारुई णाम ८॥ १२८॥ अणभिग्गहियकुदिद्वी संखेवरुड़ त्ति होई णायव्वो। अविसारओ पवयणे अणभिग्गहिओ य सेसेसु ९॥ १२९॥ जो अत्थिकायधम्मं सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च। सद्दहड जिणाभिहियं सो धम्मरुड त्ति नायव्वो १०॥ १३०॥ परमत्थ्रत्रथवो वा स्दिद्वपरमत्थसेवणा वा वि। वावण्ण-कृदंसणवञ्जणा य सम्मत्तसदृहणा॥ १३१॥

निस्संकिय १ निक्कं खिय २ निक्वितिगिच्छा ३ अमूढदिट्ठी ४ य। अववूह ५ थिरीकरणे ६ वच्छल्ल ७ पभावणे ८ अट्ठ॥ १३२॥

से त्तं सरागदंसणारिया।

[११० प्र.] सरागदर्शनार्य किस प्रकार के होते हैं ?

[११० उ.] सरागदर्शनार्य दस प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—

[गाथाओं का अर्थ—] १. निसर्गरुचि, २. उपदेशरुचि, ३. आज्ञारुचि, ४. सूत्ररुचि, और ५. बीजरुचि, ६. अभिगमरुचि, ७. विस्तारुुचि, ८. क्रियारुचि, ९. संक्षेपरुुचि और १०. धर्मरुचि॥ ११९॥

१. जो व्यक्ति (परोपदेश के बिना) स्वमित (जातिस्मरणादि) से जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव और संवर आदि तत्त्वों को भूतार्थ (तथ्य) रूप से जान कर उन पर रुचि—श्रद्धा करता है, वह निसर्ग— (रुचि-सराग-दर्शनार्य) है ॥ १२० ॥ जो व्यक्ति तीर्थंकर भगवान् द्वारा उपिदष्ट भावों (पदार्थों) पर स्वयमेव (परोपदेश के बिना) चार प्रकार से (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से) श्रद्धान करता है, तथा (ऐस विश्वास करता है कि जीवादि तत्त्वों का स्वरूप जैसा तीर्थंकर भगवान् ने कहा है,) वह वैसा ही है, अन्यथा नहीं, उसे निसर्गरुचि जानना चाहिए॥ १२१॥

प्रथम प्रज्ञापनापद] [१०१

२. जो व्यक्ति छद्मस्थ या जिन (केवली) किसी दूसरे के द्वारा उपदिष्ट इन्हीं (जीवादि) पदार्थों पर श्रद्धा करता है, उसे उपदेशरुचि जानना चाहिए॥ १२२॥

- ३. जो (व्यक्ति किसी अर्थ में साधक) हेतु (युक्ति या तर्क) को नहीं जानता हुआ, केवल जिनाज्ञा से प्रवचन पर रुचि—श्रद्धा रखता है, तथा यह समझता है कि जिनोपदिष्ट तत्त्व ऐसे ही हैं, अन्यथा नहीं; वह आज्ञारुचि नामक दर्शनार्य है॥ १२३॥
- ४. जो व्यक्ति शास्त्रों का अध्ययन करता हुआ शुत के द्वारा ही सम्यक्त्व का अवगाहन करता है चाहे वह शुत अंगप्रविष्ट हो या अंगबाह्म, उसे सूत्ररुचि (दर्शनार्य) जानना चाहिए॥ १२४॥
- ५. जैसे जल में पड़ा हुआ तेल का बिन्दु फैल जाता है, उसी प्रकार जिसके लिए सूत्र (शास्त्र) का एक पद, अनेक पदों के रूप में फैल (परिणत हो) जाता है, उसे बीजरुचि (दर्शनार्य) समझना चाहिए॥ १२५॥
- ६. जिसने ग्यारह अंगों, प्रकीर्णकों (पइन्नों) को तथा बारहवें दृष्टिवाद नामक अंग तक का श्रुतज्ञान, अर्थरूप में उपलब्ध (दृष्ट एवं ज्ञात) कर लिया है, वह अभिगमरुचि होता है॥ १२६॥
- .७. जिसने द्रव्यों के सर्वभावों को, समस्त प्रमाणों से एवं समस्त नयविधियों (नयविवक्षाओं) से उपलब्ध कर (जान) लिया, उसे विस्ताररुचि समझना चाहिए॥ १२७॥
- ८. दर्शन, ज्ञान और चारित्र में , तप और विनय में, सर्व समितियों और गुप्तियों में जो क्रियाभावरुचि (आचरण-निष्ठा) वाला है, वह क्रियारुचि नामक (सरागदर्शनार्य) है॥ १२८॥
- ९. जिसने कुदर्शन (मिथ्यादर्शन)का ग्रहण नहीं किया है, तथा शेष अन्य दर्शनों का भी अभिग्रहण (पिरज्ञान) नहीं किया है, और जो अर्हत्प्रणीत प्रवचन में विशारद (पटु) नहीं है, उसे संक्षेपरुचि (सराग दर्शनार्य) समझना चाहिए॥ १२९॥
- १०. जो व्यक्ति जिनोक्त अस्तिकायधर्म (धर्मास्तिकाय आदि पांचों अस्तिकायों के धर्म पर तथा श्रुतधर्म एवं चारित्रधर्म पर श्रद्धा करता है, उसे धर्मरुचि (सरागदर्शनार्य) समझना चाहिए । १३०॥

परमार्थ (जीवादि तात्त्विक पदार्थों) का संस्तव करना, (पिरचय प्राप्त करना, अर्थात्—उन्हें समझने के लिये बहुमानपूर्वक प्रयत्न करना या संस्तुति—प्रशंसा, आदर करना); जिन्होंने परमार्थ (जीवादि तत्त्वार्थ) को सम्यक् प्रकार से श्रद्धापूर्वक जान लिया है, उनकी सेवा—उपासना करना या उनका सेवन-सत्संग करना); और जिन्होंने सम्युक्त्व का वमन कर दिया है, उन (निह्नवों) से तथा कुदृष्टियों से दूर रहना, यही सम्यक्त्व-श्रद्धान (सम्यग्दर्शन) है। (जो इनका पालन करता है, वही सरागदर्शनार्य होता है।)॥ १३१॥

(सरागदर्शन के) ये आठ आचार हैं—(१) नि:शंकित, (२) निष्कांक्षित, (३) निर्विचिकित्स और (४) अमूढ़दृष्टि, (५) उपबृहंण, (६) स्थिरीकरण, (७) वात्सल्य और (८) प्रभावना। (ये आठ दर्शनाचार जिसमें हो, वह सरागदर्शनार्य होता है।)॥ १३२॥ यह हुई उक्त सरागदर्शनार्यों की प्ररूपणा।

१११. से किं तं वीयरागदंसणारिया ?

वीयरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—उवसंतकसायवीयरायदंसणारिया खीणकसाय-वीयरायदंसणारिया।

[१११ प्र.] वीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[१११ उ.] वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—उपशान्तकषाायवीतरागदर्शनार्य और क्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य।

११२. से किं तं उवसंतकसायवीयरायदंसणारिया ?

उवसंतकसायवीयरायदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयउवसंतकसाय-वीयराय-दंसणारिया अपढमसमयउवसंतकसायवीयरायदंसणारिया, अहवा चरिमसमयउवसंतकसाय-वीयरायदंसणारिया य अचरिमसमयउवसंतकसायवीयरायदंसणारिया य।

[११२ प्र.] उपशान्तकषायवीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[११२ उ.] उपशान्तकषायवीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। यहाँ —प्रथमसमय उपशान्त-कषायवीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमयउपशान्तकषायवीतरागदर्शनार्य अथवा चमरसमयउपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमयउपशान्तकषायवीतरागदर्शनार्य।

११३. से किं तं खीणकसायवीयरायदंसणारिया ?

खीणकसायवीयरायदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—छउमत्थखीणकसायवीयराग-दंसणारिया य केवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया य।

[११३ प्र.] क्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[११३ उ.] क्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार— छदुमस्थक्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य और केवलिक्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य।

११४. से किं तं छउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया ?

छउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया द्विहा पण्णत्ता। तं जहा—सयंबुद्धछउमत्थखीण-कसायवीयरागदंसणारिया य बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया य ।

[११४ प्र.] छद्मस्थक्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के हैं ?

[११४ उ.] छद्मस्थक्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार— स्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य और बुद्धबोधितछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य।

११५. से किं तं सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया ?

सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा — पढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया य अपढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीण- कसायवीयरायदंसणारिया य, अहवा चिरमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य अचिरमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य अचिरमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य। से तं सयंबुद्धछउमत्थखीण- कसायवीयरायदंसणारिया।

[११५ प्र.] स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के होते हैं ?

[११५ उ.] स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—प्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य अथवा चरमसमय स्वयंबुद्धछद्मस्थ क्षीणकषाय वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य। यह हुआ उक्त स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य। यह हुआ उक्त स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-वर्शनार्य। यह हुआ उक्त स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यों का वर्णन।

११६. से किं तं बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया ?

बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा — पढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य अपढमसमयबुद्धबोहियछ- उमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया य, अहवा चिरमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणक- सायवीयरायदंसणारिया य अचिरमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य। से तं बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयराय-दंसणारिया। से तं छउमत्थखीणकसायवीयराय-दंसणारिया।

[११६ प्र.] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[११६उ.] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा— प्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषय-वीतरागदर्शनार्य; अथवा चरमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य और अचरमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

यह हुआ उक्त बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य का निरूपण और इसके साथ ही उक्त छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य का निरूपण पूर्ण हुआ?

११७. से किं तं केवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया ?

केवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सजोगिकेवलिखीणकसाय-वीतरागदंसणारिया य अजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य।

[११७. प्र.] केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के कहे गए हैं ?

[११७ उ.] केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हें—सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११८. से किं तं सजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया ?

सजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयसजोगि-केवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अपढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य, अहवा चरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अचरिमसमयसजोगि-केवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य। से त्तं सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया।

[११८ प्र.] सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के हैं ?

[११८ उ.] सयोगि-केविल-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—प्रथमसमय-सयोगिकेविल-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-सयोगिकेविल-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य; अथवा चरमसमय-सयोगिकेविल-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-सयोगिकेविल-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

यह हुई सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य की प्ररूपणा ।

११९. से किं तं अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया ?

अजोगिके विलखीणक सायवीयरागदं सणारिया दुविहा पण्णात्ता। तं जहा— पढमसमयअजोगिकेविलखीणकसायवीयरागदं सणारिया य अपढमसमयअजोगिकेविलखीणक-सायवीयरागदं सणारिया य, अहवा चरिमसमयअजोगिकेविलखीणक सायवीयरागदं सणारिया य अचरिमसमयअजोगिकेविलखीणक सायवीयरागदं सणारिया य। से त्तं अजोगिकेविलखीणक-सायवीयरागदं सणारिया। से त्तं के विलिखीणक सायवीतरागदं सणारिया। से त्तं खीणक सायवीतरागदं सणारिया। से तं वीयरायदं सणारिया। से तं दं सणारिया।

[११९ प्र.] अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य कि स प्रकार के होते हैं ?

[११९ उ.] अयोगि-केविल-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार — प्रथमसमय-अयोगिकेविल-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-अयोगिकेविल-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य, अथवा चरमसमय-अयोगिकेविल-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य। अयोगिकेविल-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

यह हुआ उक्त अयोगिकेविल-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यों (का वर्णन)। (साथ ही पूर्वोक्त) केविल-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यों का वर्णन (भी पूर्ण हुआ और इसके पूर्ण होने के साथ ही क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यों का वर्णन भी समाप्त हुआ।

यह है उक्त दर्शनार्य (मनुष्यों) का (विवरण)।

१२०. से किं तं चरित्तारिया ?

चिरत्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सरागचिरत्तारिया य वीयरागचिरत्तारिया य ।

[१२० प्र.] चारित्रार्य (मनुष्य) कैसे होते हैं ?

[१२०उ.] चारित्रार्य (मनुष्य) दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा — सरागचारित्रार्य और वीतरागचारित्रार्य।

१२१. से किं तं सरागचरित्तारिया ?

सरागचरित्तारिया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—सुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया य बायर-संपरायसरागचरित्तारिया य ।

[१२१ प्र.] सरागचारित्रार्य मनुष्य कैसे होते हैं ?

[१२१ उ.] सरागचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—सूक्ष्मसम्पराय-सराग-चारित्रार्य और बादरसम्पराय-सराग चारित्रार्य।

१२२. से किं तं सुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया ?

सुहुमसंपरायसरागचिरत्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा —पढमसमयसुहुमसंपरायसरागचिरत्तारिया य अपढमसमयसुहुमसंपरायसरागचिरत्तारिया य, अहवा चिरमसमयसुहुमसंपरायसरागचिरत्तारिया य अचिरमसमयसुहुमसंपरायसरागचिरत्तारिया य अचिरमसमयसुहुमसंपरायसरागचिरत्तारिया य; अहवा सुहुमसंपरायसरागचिरत्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संकिलिस्समाणा य विसुन्झमाणा य। से तं सुहुमसंपरायचिरत्तारिया।

[१२२ प्र.] सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य किस प्रकार के होते हैं ?

[१२२ उ.] सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य दो प्रकार के होते हैं—प्रथमसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य और अप्रथमसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य; अथवा चरमसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य और अचरमसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य। अथवा सूक्ष्मसम्पराय- सराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—संक्लिश्यमान (ग्यारहवें गुणस्थान से गिर कर दशम गुणस्थान में आये हुए) और विशुद्ध्यमान (नवम गुणस्थान से ऊपर चढ़ कर दशम गुणस्थान में पहुँचे हुए)। यह हुई, उक्त सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य की प्ररूपणा।

१२३. से किं तं बादरसंपरायसरागचिरत्तारिया ?

बादरसंपरायसरागचिरत्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा— पढमसमयबादरसंपराय-सरागचिरत्तारिया य अपढमसमयबादरसंपरायसरागचिरत्तारिया य, अहवा चिरमसमयबादरसंपराय-सरागचिरत्तारिया य अचिरमसमयबादरसंपरायसरागचिरत्तारिया य; अहवा बादरसंपराय-सरागचिरत्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पिडवाती य अपिडवाती य। से तं बादरसंपराव

सरागचरित्तारिया। से त्तं सरागचरित्तारिया।

[१२३ प्र.] बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१२३ उ.] बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—प्रथमसमय-बादर-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य अथवा चरमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य और अचरमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य अथवा (तीसरी तरह से) बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—प्रतिपाति और अप्रतिपाती। यह हुआ बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य (का वर्णन) (और साथ ही) सराग-चारित्रार्य (का वर्णन भी पूर्ण हुआ)।

१२४. से किं तं वीयरागचरित्तारिया ?

वीयरागचिरत्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा — उवसंतकसायवीयरायचिरित्तारिया य खीणकसायवीतरागचिरत्तारिया य।

[१२४ प्र.] वीतराग-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१२४ उ.] वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं। वे इस प्रकार—उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

१२५. से किं तं उवसंतकसायवीयरायचरित्तारिया ?

उवसंतकसायवीयरायचिरत्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयउवसंतकसायवीय-रायचिरत्तारिया य अपढमसमयउवसंतकसायवीयरायचिरत्तारिया य , अहवा चिरमसमयउवसंतक-सायवीयरायचिरत्तारिया य अचिरमसमयउवसंतकसायवीयरायचिरत्तारिया य। से त्तं उवसंतक-सायवीयरायचिरत्तारिया ।

[१२५ प्र.] उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य किस प्रकार के होते हैं ?

[१२५ उ.] उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं— प्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य; अथवा चरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अचरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य। यह हुआ उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य का निरूपण।

१२६. से किं तं खीणकसायवीयरायचरित्तारिया ?

खीणकसायवीयरायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा— इंडमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य केवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य।

[१२६ प्र.] क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१२६ उ.] क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

१२७. से किं तं छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया ?

छउमत्थखीणकसायवीतरागचिरत्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सयंबुद्धछउमत्थखीणक-सायवीयरागचिरत्तारिया य बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायचिरत्तारिया य।

[१२७ प्र.] छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१२७ उ.] छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं। यथा—स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

१२८. से किं तं सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया ?

सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा— पढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया य अपढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणक-सौयवीयरागचिरत्तारिया य, अहवा चिरमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया य अचिरमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया य। से तं सयंबुद्धछउमत्थखीणक-सायवीयरागचिरित्तारिया।

[१२८. प्र.] वे स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कौन हैं?

[१२८ उ.] स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—प्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य; अथवा चरमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अचरमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वितराग-चारित्रार्य का वर्णन ।

१२९. से किं तं बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचिरत्तारिया ?

बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचिरत्तारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा पढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थलीणकसायवीतरागचिरत्तारिया य अपढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थलिणकसायवीतरागचिरत्तारिया य अपढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थलिणकसायवीतरागचिरत्तारिया च अचिरमसमयबुद्धबोहियछउमत्थलीणकसायवीतरागचिरत्तारिया च अचिरमसमयबुद्धबोहियछउमत्थलीणकसायवीतरागचिरत्तारिया च से त्तं बुद्धबोहियछउमत्थलिणकसायवीतरागचिरत्तारिया । से तं छउमत्थलीणकसायवीतरागचिरत्तारिया ?

[१२९ प्र.] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१२९ उ.] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं—प्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य; अथवा चरमसमयबुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अचरमसमय- बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्थ।

यह बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों और साथ ही छद्मस्थक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों का वर्णन सम्पूर्ण हुआ।

१३०. से किं तं केवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया ?

केविलखीणकसायवीतरागचिरत्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सजोगिकेविलखीणक-सायवीतरागचिरत्तारिया य अजोगिकेविलखीणकसायवीतरागचिरत्तारिया य।

[१३० प्र.] केवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य कौन हैं?

[१३० उ.] केवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—सयोगिकेवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य और अयोगिकेवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य।

[१३१ प्र.] से किं तं सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया ?

सजोगिके विलखीणक सायवीयरागचिरत्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा-पढमसमयसजोगिकेविलखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया य अपढमसमयसजोगिकेविलखीणक-सायवीयरागचिरत्तारिया य, अहवा चिरमसमयसजोगिकेविलखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया य अचिरमसमयसजोगिकेविलखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया य। से तं सजोगिकविलखीणक-सायवीयरागचिरत्तारिया।

[१३१ प्र.] सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य किस प्रकार के कहे हैं ?

[१३१ उ.] सयोगिकेविलक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—प्रथमसमय-सयोगिकेविलक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य और अप्रथमसमय-सयोगिकेविलक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य; अथवा चरमसमय-सयोगिकेविल-क्षीणकषावीतरागचारित्रार्य और अचरमसमय-सयोगिकेविल-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य का निरूपण हुआ।

१३२. से किं तं अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया ?

अजोगिकेविलखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया दुविहा पन्नता। तं जहा—पढमसमयअजोगि-केविलखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया य अपढमसमयअजोगिकेविलखीणकसायवीयराग-चिरत्तारिया य अचिरम्मयअजोगिकेविलखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया य अचिरम्मसमयअजोगिकेविलखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया य अचिरम्मसमयअजोगिकेविलखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया य। से तं अजोगिकेविलखीणकसाय-वीयरागचिरत्तारिया। से तं केविलखीणकसायवीयरागचिरत्तारिया। से तं खीणकसाय-वीतरागचिरत्तारिया। से तं वीतरागचिरत्तारिया।

[१३२ प्र.] अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य कैसे होते हैं ?

[१३२ उ.] अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—प्रथम-समय-अयोगिकेवलि - क्षीणकषाय - वीतरागचारित्रार्य और अप्रथमसमय - अयोगिकेवलि - क्षीणकषाय- वीतरागचारित्रार्य; अथवा चरमसमय-अयोगिकेविल-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य और अचरमसमय-अयोगिकेविल-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य। इस प्रकार अयोगिकेविल-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों का, साथ ही केविलक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों का वर्णन (भी पूर्ण हुआ); (और इसके पूर्ण होने के साथ ही) वीतराग-चारित्रार्यों की प्ररूपणा (भी पूर्ण हुई)।

१३३. अहवा चिरत्तारिया पंचिवहा पन्नता। तं जहा—सामाइयचरित्तारिया १ छेदोवट्ठा-विणयचरित्तारिया २ परिहारिवसुद्धियचरित्तारिया ३ सुहुमसंपरायचरित्तारिया ४ अहक्खाय-चरित्तारिया ५।

[१३३] अथवा—प्रकारान्तर से चारित्रार्थ पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा—१. सामायिक-चारित्रार्य, २. छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य, ३. परिहारिवशुद्धिक-चारित्रार्य, ४. सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य और ५. यथाख्यात-चारित्रार्य।

१३४. से किं तं सामाइयचरित्तारिया ?

सामाइयचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्तरियसामाइयचरित्तारिया य आवकहिय-सामाइयचरित्तारिया य। से त्तं सामाइयचरित्तारिया।

[१३४ प्र.] वे (पूर्वोक्त) सामायिक-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१३४ उ.] सामायिक-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं—इत्वरिक सामायिक-चारित्रार्य और यावत्-कथित् सामायिक-चारित्रार्य। यह हुआ सामायिक-चारित्रार्य का निरूपण।

१३५. से किं तं छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया ?

छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—साइयारछेदोवट्ठावणियचरित्तारिया य णिरइयारछेदोवट्ठावणियचरित्तारिया य। से तं छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया।

[१३५ प्र.] छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं?

[१३५ उ.] छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—सातिचार-छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य और निरतिचार-छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य। यह हुआ छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्यों का वर्णन।

१३६. से किं तं परिहारविसुद्धियचरित्तारिया ?

परिहारिवसुद्धियचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा— निळिसमाणपरिहार-विसुद्धियचरित्तारिया य निळिवट्ठकाइयपरिहारिवसुद्धियचरित्तारिया य। से त्तं परिहारिवसुद्धियचरित्तारिया।

[१३६ प्र.] परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१३६ उ.] परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—निर्विश्यमानक-परिहार-विशुद्धि-चारित्रार्य और निर्विष्टकायिक-परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य। यह हुआ उक्त परिहारविशुद्धि चारित्रार्यों का वर्णन। १३७. से किं तं सुहुमसंपरायचरित्तारिया ?

सुहुमसंपरायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—संकिलिस्समाणसुहुमसंपरायचरित्तारिया य विसुज्झमाणसुहुमसंपरायचरित्तारिया य। से त्तं सुहुमसंपरायचरित्तारिया।

[१३७ प्र.] सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१३७ उ.] सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं—संक्लिश्यमान-सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य और विशुद्धयमान-सूक्ष्मसम्पराय-चरित्रार्य।

यह हुआ उक्त सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्यों का निरूपण।

१३८. से किं तं अहक्खायचरित्तारिया ?

अहक्खायचिरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—छउमत्थअहक्खायचिरित्तारिया य केविलअहक्खायचिरित्तारिया। से तं अहक्खायचिरित्तारिया। से तं चिरित्तारिया। से तं अणिड्डिपत्तारिया। से तं आरिया। से तं कम्मभूमगा। से तं गब्भवक्कंतिया। से तं मणुस्सा।

[१३८ प्र.] यथाख्यात-चारित्रार्थ किस प्रकार के हैं ?

[१३८प्र.] यथाख्यात-चारित्रार्थ दो प्रकार के कहे गये हैं—छद्मस्थयथातख्यात-चारित्रार्य और केविलयथाख्यात-चारित्रार्य। यह हुआ यथाख्यात-चारित्रार्यों का (निरूपण।) (इसके पूर्ण होने के साथ ही) चारित्रार्य का वर्णन। (समाप्त हुआ।)। इस प्रकार आर्यों का वर्णन, कर्मभूमिजों का वर्णन तथा उक्त गर्भजों के वर्णन के समाप्त होने के साथ ही मनुष्यों की प्ररूपणा पूर्ण हुई।

विवेचन— समग्र मनुष्यजीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत ४७ सूत्रों (सू. ९२ से १३८ तक) में मनुष्यों के सम्मूर्च्छिम और गर्भज इन दो भेदों का उल्लेख करके गर्भजों के कर्मभूमक, अकर्मभूमक और अन्तरद्वीपज, यों तीन भेद और फिर इनके भेदों-प्रभेदों का निरूपण किया गया है।

कर्मभूमक और अकर्मभूमक की व्याख्या—कर्मभूमक— प्रस्तुत में कृषि-वाणिज्यादि जीवन-निर्वाह के कार्यों तथा मोक्ष सम्बन्धी अनुष्ठान को कर्म कहा गया है जिनकी कर्मप्रधान भूमि हैं, वे 'कर्मभूम' या 'कर्मभूमक' कहलाते हैं। अर्थात्— कर्मप्रधान भूमि में रहने और उत्पन्न होने वाले मनुष्य कर्मभूमक हैं। अकर्मभूमक—जिन मनुष्यों की भूमि पूर्वोक्त कर्मों सें रहित हो, जो कल्पवृक्षों से ही अपना जीवन निर्वाह करते हों, वे अकर्मभूम या अकर्मभूमक कहलाते हैं।

'अन्तरद्वीपक' मनुष्यों की व्याख्या— अन्तर शब्द मध्यवाचक है। अन्तर में अर्थात्—लवण-समुद्र में जो द्वीप है वे अन्तरद्वीप कहलाते हैं। उन अन्तरद्वीपों में रहने वाले अन्तरद्वीपग या अन्तरद्वीपक कहलाते हैं। ये अन्तरद्वीपग मनुष्य अट्टाईस प्रकार के हैं, जिनका मूल पाठ में नामोल्लेख है।

अन्तरद्वीप मनुष्य वज्रऋषभनाराचसंहनन वाले, कंकपक्षी के समान परिणमनवाले अनुकूल वायुवेग

१. प्रज्ञापनसूत्र मलय, वृत्ति, पत्रांक ५०

वाले एवं समचतुरस्रसंस्थान वाले होते हैं। उनके चरणों की रचना कच्छप के समान आकार वाली एवं सुन्दर होती है। उनकी दोनों जांघें चिकनी, अल्परोमचुक्त, कुरुविन्द के समान गोल होती हैं। उनके घुटने निगूढ़ और सम्यक्तयाबद्ध होते हैं, उनके उरूभाग हाथी की सूंड के समान गोलाई से युक्त होते हैं, उनका किटप्रदेश सिंह के समान, मध्यभाग वज्र के समान नाभि-मण्डल दक्षिणावर्त्त शंख के समान तथा वक्ष:स्थल विशाल, पृष्ट एवं श्रीवत्स से लाञ्छित होता है। उनकी भुजाएँ नगर के फाटक की अर्गला के समान दीर्घ होती हैं। हाथ की कलाइयां (मणिबन्ध) सुबद्ध होती हैं। उनके करतल और पगतल रक्तकमल के समान लाल होते हैं। उनकी गर्दन चार अंगुल की, सम और वृत्ताकार शंख-सी होती है। उनका मुखमण्डल शरद्ऋतु के चन्द्रमा के समान सौम्य होता है। उनके छत्राकार मस्तक पर अस्फुटित-स्निग्ध, कान्तिमान एवं चिकने केश होते हैं।

वे कमण्डलु, कलश, यूप, स्तूप वापी, ध्वज, पताका, सौवस्तिक, यव, मत्स्य, मगर, कच्छप, रथ, स्थाल, अंशुक, अष्टापद, अंकुश, सुप्रतिष्ठक, मयूर, श्रीदाम, अभिषेक, तोरण, पृथ्वी, समुद्र, श्रेष्ठ भवन, दर्पण, पर्वत, हाथी, वृषभ, सिंह, छत्र और चामर; इन ३२ उत्तम लक्षणों से युक्त होते हैं।

वहाँ की स्त्रियाँ भी सुनिर्मित-सर्वांगसुन्दर तथा समस्त महिलागुणों से युक्त होती हैं। उनके चरण कच्छप के आकार के, तथा परस्पर सटी हुई अंगुलियों वाले एवं कमलदल के समान मनोहर होते हैं। उनके जंघायुगल रोमरिहत एवं प्रशस्त लक्षणों से युक्त होते हैं, तथा जानुप्रदेश निगृढ़ एवं पृष्ट होते हैं, उनके उरू केले के स्तम्भसदृश संहत, सुकुमार एवं पृष्ट होते हैं। उनके नितम्ब विशाल, मांसल एवं शरीर के आयाम के अनुरूप होते हैं। उनकी रोमराजि मुलायम, कान्तिमय एवं सुकोमल होती है। उनका नाभिमण्डल दिक्षणावर्त्त की तरंगों के समान, उदर, प्रशस्त लक्षणयुक्त एवं स्तन स्वर्णकलशसम संहत, उन्तत, पृष्ट एवं गोल होते हैं। पार्श्वभाग भी संगत होता है। उनकी बांहें लता के समान सुकुमार होती हैं। उनके अधरोष्ट अनार के पुष्प के समान लाल, तालु एवं जिह्ना रक्तकमल के समान तथा आंखें विकसित नीलकमल के समान बड़ी एवं कमनीय होती हैं। उनकी भौंहें चढ़ाए हुए धनुषबाण के आकार की सुसंगत होती हैं। ललाट प्रमाणोपत होता है। मस्तक के केश सुस्निग्ध एवं सुन्दर होते हैं। करतल एवं पदतल स्वस्तिक, शंख चक्र आदि की आकृति की रेखाओं से सुशोभित होते हैं। गर्दन ऊँची, मांसल एवं शंख के समान होती हैं। प्रकृति से हास्य, वचन-विलास एवं विषय में परम नैपुण्य से युक्त होती हैं।

वहाँ के पुरुष-स्त्री सभी स्वभाव से सुगन्धित वदन वाले होते हैं। उनके क्रोध, मान, माया और लोभ अत्यन्त मन्द होते हैं। वे सन्तोषी उत्सुकता रहित, मृदुता-ऋजुतासम्पन्न होते हैं। मनोहर, मणि, स्वर्ण और मोती आदि ममत्व के कारणों के विद्यमान होते हुए भी ममत्व के अभिनिवेश से तथा वैरानुबन्ध से रहित होते हैं। हाथी, घोड़े, गाय, भैंस आदि के होते हुए भी वे उनके परिभोग से पराङ्मुख रह कर पैदल चलते हैं।

वे ज्वरादि रोग, भूत, प्रेत, यक्ष आदि की ग्रस्तता, महामारी आदि विपत्तियों के उपद्रव से भी रहित होते हैं। उनमें परस्पर स्वामि-सेवक का व्यवहार नहीं होता, अतएव सभी अहमिन्द्र जैसे होते हैं। उनकी पीठ में ६४ पसिलयाँ होती हैं। उनका आहार एक चतुर्थभक्त (उपवास) के बाद होता है और आहार भी शालि आदि धान्य से निष्यन्न नहीं, िकन्तु पृथ्वी की मिट्टी एवं कल्पवृक्षों के पृष्प, फल का होता है। क्योंकि वहाँ चावल, गेहूँ, मूंग, उड़द आदि अन्न होते हुए भी वे मनुष्यों के उपभोग में नहीं आते, वहाँ की पृथ्वी ही शक्कर से अनन्तगुणी मधुर है, तथा कल्पवृक्षों के पृष्प-फलों का स्वाद-चक्रवर्ती के भोजन से भी अनेक गुणा अच्छा है। वे इस प्रकार का स्वादिष्ट आहार करके प्रासाद के आकार के जो गृहाकार कल्पवृक्ष होते हैं, उनमें सुख से रहते हैं। उस क्षेत्र में डांस, मच्छर, जूं, खटमल, आदि शरीरोपद्रवकारी जन्तु पैदा नहीं होते। जो भी सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि वहाँ होते हैं, वे मनुष्यों को कोई पीड़ा नहीं पहुँचाते। उनमें परस्पर हिंस्य-हिंसकभाव का व्यवहार नहीं है। क्षेत्र के प्रभाव से वहाँ के जीव रौद्र (भयंकर) स्वभाव से रहित होते हैं। वहाँ के मनुष्यों (स्त्री-पुरुषों) का जोड़ा अपने अवसान के समय एक जोड़े (स्त्री-पुरुष) को जन्म देता है और ७९ दिन तक उसका पालन-पोषण करता है। उनके शरीर की ऊँचाई ८०० धनुष की और उनकी आयु पल्योयम के असंख्यातवें भाग जितनी होती हैं। वे मन्दकषायी, मन्दराग-मोहानुबन्ध के कारण मर कर देवलोक में जाते हैं। उनका मरण भी जंभाई, खांसी या छींक आदि से होता है, किन्तु किसी शरीरपीड़ापूर्वक नहीं।

अन्तरद्वीपगों के अन्तरद्वीप कहां और कैसी स्थित में ?—आगमानुसार छप्पन अन्तरद्वीपगों के अन्तरद्वीप हिमवान् और शिखरी इन दो पर्वतों की लवणसमुद्र में निकली दाढ़ाओं पर स्थित हैं। हिमवान् पर्वत के अट्ठाईस अन्तरद्वीपों का वर्णन-जम्बूद्वीप में भरत और हैमवत क्षेत्रों की सीमा का विभाजन करने वाला हिमवान् नामक पर्वत है। यह भूमि में २५ योजन गहरा और सौ योजन ऊँचा तथा भरत क्षेत्र से दुगुना विस्तृत, हेममय चीनांशुक के-से वर्ण वाला है। उसके दोनों पार्श्व नाना वर्णों से विशिष्ट कान्तिमय मणिसमूह से परिमण्डित हैं। उसका विस्तार ऊपर-नीचे सर्वत्र समान है। वह गगनमण्डल को स्पर्श करने वाले रत्नमय ग्यारह कूटों से सुशोभित है, उसका तल वज्रमय है, तटभाग विविध मणियों और सोने से सुशोभित है। वह दस योजन में अवगाहित-जगह घेरे हुए है। वह पूर्व-पश्चिम में हजार योजन लम्बा और दक्षिण-उत्तर में पांच योजन विस्तीण है। उसके मध्यभाग में पदाहद है तथा चारों ओर कल्पवृक्षों की पंक्ति से अतीव कमनीय है। वह पूर्व और पश्चिम के छोरों (अन्तों) से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। लवणसमुद्र के जल के स्पर्श से लेकर पूर्व-पश्चिम दिशा में दो गजदन्ताकार दाढ़ें निकली हैं। उनमें से ईशानकोण में जो दाढ़ा निकली है, उस प्रदेश में हिमवान् पर्वत से तीन सौ योजन की दूरी पर लवणसमुद्र में ३०० योजन लम्बा-चौड़ा तथा कुछ कम ९४९ योजन की परिधिवाला एकोरुक नामक द्वीप है। जो कि ५०० धनुष विस्तृत, दो गाऊ ऊँची पद्मवरवेदिका से चारों ओर से मण्डित है। उसी हिमवान् पर्वत के पर्यन्तभाग से दक्षिण-पूर्वकोण में तीन सौ योजन दूर स्थित लवणसमुद्र का अवगाहन

प्रथम प्रज्ञापनापद] [११३

करते ही दूसरी दाढ़ा आती है, जिस पर एकोरुक द्वीप जितना ही लम्बा-चौड़ा 'आभासिक' नामक द्वीप है तथा उसी हिमवान् पर्वत के पश्चिम दिशा के छोर (पर्यन्त) से लेकर दक्षिण-पश्चिमदिशा (नैऋत्यकोण) में तीन-सौ योजन लवणसमुद्र का अवगाहन करने के बाद एक दाढ़ आती है, जिस पर उसी प्रमाण का वैषाणिक नामक द्वीप है; एवं उसी हिमवान् पर्वत के पश्चिमदिशा के छोर से लेकर पश्चिमोत्तर दिशा (वायव्यकोण) में तीन-सौ योजन दूर लवणसमुद्र में एक दंष्ट्रा (दाढ़) आती है, जिस पर पूर्वोक्त प्रमाण वाला नांगोलिक द्वीप आता है। इस प्रकार ये चारों द्वीप हिमवान् पर्वत से चारों विदिशाओं में हैं और समान प्रमाण वाले हैं।

तदनन्तर इन्हीं एकोरुक आदि चारों द्वीपों के आगे यथाक्रम से पूर्वोत्तर आदि प्रत्येक विदिशा में चार-चार सौ योजन आगे चलने के बाद चार-चार सौ योजन लम्बे-चौड़े, कुछ कम १२६५ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका एवं वनखण्ड से सुशोभित परिसर वाले तथा जम्बूद्वीप की वेदिका से ४०० योजन प्रमाण अन्तर वाले हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण और शष्कुलीकर्ण नाम के चार द्वीप हैं। एकोरुक द्वीप के आगे हयकर्ण है, आभासिक के आगे गजकर्ण, वैषाणिक के आगे गोकर्ण और नांगोलिक के आगे शष्कुलीकर्ण द्वीप है।

तत्पश्चात् इन हयकर्ण आदि चार द्वीपों के आगे पांच-पांच सौ योजन की दूरी पर फिर चार द्वीप हैं-जो पांच-पांच सौ योजन लम्बे-चौड़े हैं और पहले की तरह ही चारों विदिशाओं में स्थित हैं। इनकी पिरिध १५८१ योजन की है। इनके बाह्यप्रदेश भी पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से सुशोभित हैं तथा जम्बूद्वीप की वेदिका से ५०० योजन प्रमाण अन्तर वाले हैं। इनके नाम हैं-आदर्शमुख, मेण्डमुख, अयोमुख और गोमुख। इनमें से हयकर्ण के आगे आदर्शमुख, गजकर्ण के आगे मेण्डमुख, गोकर्ण के आगे अयोमुख और शष्कुलीकर्ण के आगे गोमुख द्वीप है।

इन आदर्शमुख आदि चारों द्वीपों के आगे छह-छह सौ योजन की दूरी पर पूर्वोत्तरादि विदिशाओं में फिर चार द्वीप हैं-अश्वमुख, हिस्तमुख, सिंहमुख और व्याघ्रमुख। ये चारों द्वीप ६०० योजन लम्बेच चौड़े और १८९७ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से मण्डित बाह्यप्रदेश वाले एवं जम्बूद्वीप की वेदिका से ६०० योजन अन्तर पर हैं।

इन अश्वमुखादि चारों द्वीपों के आगे क्रमश: पूर्वोत्तरादि विदिशाओं में ७००-७०० योजन की दूरी पर ७०० योजन लम्बे-चौड़े तथा २२१३ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से घिरे हुए एवं जम्बूद्वीप की वेदिका से ७०० योजन के अन्तर पर क्रमश: अश्वकर्ण, हरिकर्ण, अकर्ण और कर्णप्रावरण नाम के चार द्वीप हैं।

फिर इन्हीं अश्वकर्ण आदि चार द्वीपों के आगे, यथाक्रम से पूर्वोत्तरादि विदिशाओं में ८००-८०० योजन दूर जाने पर आठ सौ योजन लम्बे-चौड़े, २५२९ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त प्रमाण वाली पद्मवरवेदिका-वनखण्ड से मण्डित परिसर वाले, एवं जम्बूद्वीप की वेदिका से ८०० योजन के अन्तर पर उल्कामुख, मेघमुख, विद्युन्सुख और विद्युद्धन्त नाम के चार द्वीप हैं।

तदनन्तर इन्हीं उल्कामुख आदि चारों द्वीपों के आगे क्रमश: पूर्वोत्तरादि विदिशाओं में ९००-९०० योजन की दूरी पर, नौ सौ योजन लम्बे-चौड़े तथा २८४५ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त प्रमाण वाली पद्मवरवेदिका एवं वनखण्ड से सुशोभित परिसर वाले, जम्बूद्वीप की वेदिका से ९०० योजन के अन्तर पर चार द्वीप और हैं। जिनके नाम क्रमश: ये हैं-घनदन्त, लष्टदन्त, गूढ़दन्त और शुद्धदन्त। इस हिमवान पर्वत की दाढों पर चारों विदिशाओं में स्थित ये सब द्वीप (७४४=२८) अट्ठाईस हैं।

शिखरी पर्वत के २८ अन्तरद्वीपों का वर्णन—इसी प्रकार हिमवान् पर्वत के समान वर्ण और प्रमाण वाले तथा पद्महृद के समान लम्बे-चौड़े और गहरे पुण्डरीकहृद से सुशोभित शिखरी पर्वत पर लवणसमुद्र के जलस्पर्श से लेकर पूर्वोक्त दूरी पर यथोक्त प्रमाण वाली चारों विदिशाओं में स्थित, एकोरुक आदि नाम के अट्ठाईस द्वीप हैं। इनकी लम्बाई-चौड़ाई, परिधि, नाम आदि सब पूर्ववत् हैं। अतएव दोनों ओर के मिल कर कुल अन्तरद्वीप छप्पन हैं। इन द्वीपों में रहने वाले मनुष्य भी इन्हीं नामों से पुकारे जाते हैं। जैसे पंजाब में रहने वाले को पंजाबी कहा जाता है। है

अकर्मभूमकों का वर्णन— अकर्मभूमक मनुष्य तीन प्रकार के हैं। अढाई द्वीप रूप मनुष्यक्षेत्र में पांच हैमवत, पांच हैरण्यवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यकवर्ष, पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु अकर्मभूमि के इन तीस क्षेत्रों में ३० ही प्रकार के मनुष्य रहते हैं। इन्हीं के नाम पर से इनमें रहने वाले मनुष्यों के प्रकार गिनाए गए हैं। इनमें से ५ हैमवत क्षेत्र और ५ हैरण्यवत क्षेत्र में मनुष्य एक गव्यूति (गाऊ) ऊँचे, एक पल्योपम की आयु और वज्रऋषभनाराचसंहनन तथा समचतुरस्रसंस्थान वाले होते हैं। इनकी पीठ की पसिलयाँ ६४ होती हैं, ये एक दिन के अन्तर से भोजन करते हैं और ७९ दिन तक अपनी संतान का पालन-पोषण करते हैं। पांच हरिवर्ष और पांच रम्यकवर्ष क्षेत्रों में मनुष्यों की आयु दो पल्योपम की, शरीर की ऊँचाई दो गव्यूति की होती है।

ये वज्रऋषभनाराचसंहनन और समुचतुरस्त्रसंस्थान वाले होते हैं। ये दो दिन के अन्तर से आहार करते हैं। इनकी पीठ की पसिलयां १२८ होती हैं और ये अपनी संतान का पालन ६४ दिन तक करते हैं। पांच देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रों में मनुष्यों की आयु तीन पल्योपम की एवं शरीर की ऊँचाई तीन गाऊ की होती हैं। ये भी वज्रऋषभनाराचसंहनन और समचतुरस्त्रसंस्थान वाले होते हैं। इनकी पीठ की पसिलयां २५६ होती हैं। ये तीन दिनों के अनन्तर आहार करते हैं और ४९ दिनों तक अपनी संतित का पालन करते हैं।

इन सभी क्षेत्रों में अन्तरद्वीपों की तरह मनुष्यों के भोगोपभोग के साधनों की पूर्ति कल्पवृक्षों से होती है। इतना अन्तर अवश्य है कि पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत क्षेत्रों में मनुष्यों के उत्थान, बलवियं आदि तथा वहाँ के कल्पवृक्षों के फलों का स्वाद और वहाँ की भूमि का माधुर्य अन्तरद्वीप की अपेक्षा पर्यायों की दृष्टि से अनन्तगुणा अधिक है। ये ही सब पदार्थ पांच हरिवर्ष और पांच रम्यकवर्ष

१. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक ५० से ५४ तक

प्रथम प्रज्ञापनापद] [११५

क्षेत्रों में उनसे भी अनन्तगुणे अधिक तथा पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु में इनसे भी अनन्तगुणे अधिक होते हैं। यह संक्षेप में अकर्मभूमकों का निरूपण है। १

आर्य और म्लेच्छ मनुष्य—पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच महाविदेह, इन १५ क्षेत्रों में आर्य और म्लेच्छ दोनों प्रकार के कर्मभूमक मनुष्य रहते हैं। आर्य का अर्थ-हेय धर्मों (अधर्मो या पापों) से जो दूर हैं, और उपादेय धर्मों (अहिंसा, सत्य आदि धर्मों) के निकट हैं या इन्हें प्राप्त किए हुए हैं। म्लेच्छ वे हैं-जिनके वचन (भाषा) और आचार अव्यक्त-अस्पष्ट हों। दूसरे शब्दों में कहें तो जिनका समस्त व्यवहार शिष्टजनसम्मत न हो, उन्हें म्लेच्छ समझना चाहिए।

म्लेच्छ अनेक प्रकार के हैं, जिनका मूलपाठ में उल्लेख हैं। इनमें से अधिकांश म्लेच्छों की जाति के नाम तो अमुक-अमुक देश में निवास करने से पड़ गए हैं, जैसे-शक देश के निवासी शक, यवन देश के निवासी यवन इत्यादि।

आर्यों के प्रकार और उनके लक्षण-क्षेत्रार्य-मुलपाठ में परिगणित साढे पच्चीस जनपदात्मक आर्य क्षेत्र में उत्पन्न होने एवं रहने वाले क्षेत्रार्य कहलाते हैं। ये क्षेत्र आर्य इसलिए कहे गए हैं कि इनमें तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि उत्तम पुरुषों का जन्म होता है। इनसे भिन्न क्षेत्र अनार्य कहलाते हैं। जात्यार्य-मूलपाठ में वर्णित अम्बष्ठ आदि ६ जातियां इभ्य-अभ्यर्चनीय एवं प्रसिद्ध हैं। इन जातियों से सम्बद्ध जन जात्यार्य कहलाते हैं। कुलार्य-शास्त्र-परिगणित उग्र आदि ६ कुलों में से किसी कुल में जन्म लेने वाले कुलार्य-कुल की अपेक्षा से आर्य कहलाते हैं। कर्मार्य-अहिंसा आदि एवं शिष्टसम्मत तथा आजीविकार्थ किए जाने वाले कर्म आर्यकर्म कहलाते हैं। शास्त्रकार ने दोषिक, सौत्रिक आदि कुछ आर्यकर्म से सम्बन्धित मनुष्यों के प्रकार गिनाये हैं। विशेषता स्वयमेव समझ लेना चाहिए। शिल्पार्य-जो शिल्प अहिंसा आदि धर्मांगों से तथा शिष्टजनों के आचार के अनुकुल हो, वह आर्य शिल्प कहलाता है। ऐसे आर्य शिल्प से अपना जीवननिर्वाह करने वाले शिल्पार्यों में परिगणित किए गए हैं। कुछ नाम तो शास्त्रकार ने गिनाये ही हैं। शेष स्वयं चिन्तन द्वारा समझ लेना चाहिए। भाषार्य-अर्धमागधी उस समय आम जनता की, शिष्टजनों की भाषा थी, आज उसी का प्रचलित रूप हिन्दी एवं विविध प्रान्तीय भाषाएँ हैं। अत: वर्तमान युग में भाषार्य उन्हें कहा जा सकता है जिनकी भाषा संस्कृति और सभ्यता से सम्बन्धित हो, जिनकी भाषा तुच्छ और कर्कश न हो, किन्तु आदरसूचक. कोमल-कान्त पदावली से युक्त हो। शेष ज्ञानार्य, दर्शनार्य और चारित्रार्य का स्वरूप स्पष्ट ही है। जो सम्यग्ज्ञान से युक्त हों, वे ज्ञानार्य, जो सम्यग्दर्शन से युक्त हों, वे दर्शनार्य और जो सम्यक्चारित्र से युक्त हों, वे चारित्रार्य कहलाते हैं। जो मिथ्याज्ञान से, मिथ्यात्व एवं मिथ्यादर्शन से एवं कुचारित्र से युक्त हों, उन्हें क्रमशः ज्ञानार्य, दर्शनार्य एवं चारित्रार्य नहीं कहा जा सकता। शास्त्रकार ने पांच प्रकार के सम्यग्ज्ञान से युक्त जनों को ज्ञानार्य, सराग और वीतराग रूप सम्यग्दर्शन से युक्त जनों को दर्शनार्य तथा सराग और वीतराग रूप

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ५४

सम्यक्चारित्र से युक्त जनों को चारित्रार्य बतलाया है। इन सबके अवान्तर भेद-प्रभेद विभिन्न अपेक्षाओं से बताए हैं। इन सब अवान्तर भेदों वाले भी ज्ञानार्य, दर्शनार्य एवं चारित्रार्य में ही परिगणित होते हैं।

सरागदर्शनार्य और वीतरागदर्शनार्य जो दर्शन राग अर्थात् कषाय से युक्त होता है, वह सरागदर्शन तथा जो दर्शन राग अर्थात् कषाय से रहित हो वह वीतरागदर्शन कहलाता है। सरागदर्शन की अपेक्षा से आर्य सरागदर्शनार्य और वीतरागदर्शन की अपेक्षा से आर्य वीतरागदर्शनार्य कहलाते हैं। सरागदर्शन के निस्तर्गरुचि आदि १० प्रकार हैं। परमार्थसंस्तव आदि तीन लखण हैं और निःशंकित आदि ८ आचार हैं। वीतरागदर्शन दो प्रकार का है-उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय। इन दोनों के कारण जो आर्य हैं, उन्हें क्रमशः उपशान्तकषायदर्शनार्य और क्षीणकषायदर्शनार्य कहा जाता है। उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य वे हैं-जिनके समस्त कषायों का उपशमन हो चुका है अतएव जिनमें वीतरागदशा प्रकट हो चुकी है, ऐसे ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि। क्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य वे हैं-जिनके समस्त कषाय समूल क्षीण हो चुके हैं, अतएव जिनमें वीतरागदशा प्रकट हो चुकी है, वे बारहवें से लेकर चौदहवें गुणस्थानवर्ती महामुनि। जिन्हें इस अवस्था में पहुँचे प्रथम समय ही हो, वे प्रथमसमयवर्ती, और जिन्हें एक समय से अधिक हो गया हो, वे अप्रथमसमयवर्ती कहलाते हैं। इसी प्रकार चरमसमयवर्ती और अचरसमयवर्ती ये दो भेद समयभेद के कारण हैं।

क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य के भी अवस्थाभेद से दो प्रकार हैं—जो बारहवें गुणस्थानवर्ती वीतराग हैं, वे छद्मस्थ हैं और जो तेरहवें, चौदहवें गुणस्थानवाले हैं, वे केवली हैं। बारहवें गुणस्थानवर्ती छद्मस्थक्षीणकषायवोतराग भी दो प्रकार के हैं-स्वयंबुद्ध और बुद्धबोधित। फिर इन दोनों में से प्रत्येक के अवस्थाभेद से दो-दो भेद पूर्ववत् होते हैं- प्रथमसमयवर्ती और अप्रथमसमयवर्ती, तथा चरमसमयवर्ती और अचरसमयवर्ती। स्वामी के भेद के कारण दर्शन में भी भेद होता है और दर्शनभेद से उनके व्यक्तित्व (आर्यत्व) में भी भेद माना गया है। केविलक्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य के सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दो भेद होते हैं। जो केवलज्ञान तो प्राप्त कर चुके, लेकिन अभी तक योगों से युक्त हैं, वे सयोगिकेवली, और जो केवली अयोग दशा प्राप्त कर चके, वे अयोगिकेवली कहलाते हैं। वे सिर्फ चौदहवें गुणस्थान वाले होते हैं। इन दोनों के भी समयभेद से प्रथमसमयवर्ती और अप्रथमसमयवर्ती अथवा चरमसमयवर्ती और अचरसमयवर्ती, यों प्रत्येक के चार-चार भेद हो जाते हैं। इनके भेद से दर्शन में भी भेद माना गया है और दर्शनभेद के कारण दर्शननिमित्तक आर्यत्व में भी भेद होता है।

सरागचारित्रार्य और वीतरागचारित्रार्य - रागसहित चारित्र अथवा रागसिहतपुरुष के चारित्र को सरागचारित्र और जिस चारित्र में राग का सद्भाव न हो, या वीतरागपुरुष का जो चारित्र हो, उसे वीतरागचारित्र कहते हैं। सरागचारित्र के दो भेद हैं-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्र (जिसमें सूक्ष्म कषाय की विद्यमानता होती है) तथा बादरसम्पराय-सरागचारित्र (जिसमें स्थूल कषाय हो, वह)। इनसे जो आर्य हो, वह तथारूप आर्य होता है। सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य के अवस्था भेद से चार भेद बताए हैं-प्रथमसमयवर्ती व

प्रथम प्रज्ञापनापद] [११७

अप्रथमसमयवर्ती, तथा चरमसमयवर्ती और अचरमसमयवर्ती। इनकी व्याख्या पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य के पुन: दो भेद बताए गए हैं-संक्लिश्यमान (ग्यारहवें गुणस्थान से गिरकर दसवें गुणस्थान में आया हुआ)। और विशुद्धयमान (नौवें गुणस्थान से ऊपर चढ़कर दसवें गुणस्थान में आया हुआ)। बादरसम्पराय-चारित्रार्य के भी पूर्ववत् प्रथमसमयवर्ती आदि चार भेद बताए गए हैं। इनके भी प्रकारान्तर से दो भेद किए गए हैं-प्रतिपाती और अप्रतिपाती । उपशमश्रेणी वाले प्रतिपाती (गिरने वाले) और क्षपकश्रेणीप्राप्त अप्रतिपाती (नहीं गिरने वाले) होते हैं। वीतराग के दो प्रकार हैं- उपशान्तकषायवीतराग और क्षीणकषायवीतराग। उपशान्तकषायवीतराग (एकादशम-गुणस्थान वर्ती) की व्याख्या तथा इसके चार भेदों की व्याख्या पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए।

क्षीणकषायवीतराग के भी दो भेद होते हैं—छद्मस्थक्षीणकषायवीतराग और केवलिक्षीण-कषायवीतराग। इनमें से छद्मस्थक्षीणकषायवीतराग के दो प्रकार हैं—स्वयंबुद्ध और बुद्धबोधित। इन दोनों के प्रथमसमयवर्ती आदि पूर्ववत् चार-चार भेद होते हैं। इन सबकी व्याख्या भी पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। इसी प्रकार केवलिक्षीणकषायवीतराग के भी पूर्ववत् सयोगिकेवली और अयोगिकेवली तथा प्रथमसमयवर्ती आदि चार भेद होते हैं। इनकी व्याख्या भी पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। इन सबकी अपेक्षा से जो आर्य होते हैं, वे तथारूप चारित्रार्य कहलाते हैं। है

सामायिक चारित्रार्य का स्वरूप—सम का अर्थ है—राग और द्वेष से रहित। समरूप आय को समाय कहते हैं। अथवा सम का अर्थ है-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, इनके आय अर्थात् लाभ अथवा प्राप्ति को समाय कहते हैं। अथवा 'समाय' शब्द साधु की समस्त क्रियाओं का, उपलक्षण हैं; क्योंकि साधु की समस्त क्रियाएँ राग-द्वेष से रहित होती हैं। पूर्वोक्त 'समाय' से जो निष्पन्न हो, सम्पन्न हो अथवा 'समाय' में होने वाला सामायिक है। अथवा समाय ही सामायिक है; जिसका तात्पर्य है-सर्व सावद्य कार्यों से विरति। महाव्रती साधु-साध्वियों के चारित्र को सामायिकचारित्र कहा गया है; क्योंकि महाव्रती जीवन अंगीकार करते समय समस्त सावद्य कार्यों अथवा योगों से निवृत्तिरूप सामायिक चारित्र ग्रहण किया जाता है। यद्यपि सामायिकचारित्र में साधु के चारित्रों का अन्तर्भाव हो जाता है, तथापि छेदोपस्थापना आदि विशिष्ट चारित्रों से सामायिकचारित्र में उत्तरोत्तर विशुद्धि और विशेषता आने के कारण उन चारित्रों को पृथक् ग्रहण किया गया है। सामायिक चारित्र के दो भेद हैं—इत्वरिक और यावत्कथिक। इत्वरिक का अर्थ है—अल्पकालिक और यावत्कथिक का अर्थ है—आजीवन (जीवनभर का, यावज्जीव का)। इत्वरिकसामायिक-चारित्र, भरत और ऐरवत क्षेत्रों में, प्रथम और अन्तिम तीर्थकर के तीर्थ में, महाव्रतों का आरोपण नहीं किया गया हो, तब तक शैक्ष (नवदीक्षित) को दिया जाता है। अर्थात्-दीक्षाग्रहणकाल में महाव्रतारोपण से पूर्व तक का शैक्ष (नवदीक्षित) का चारित्र इत्वरिकसामायिक-चारित्र होता है। भरत और ऐरवत क्षेत्र के मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों तथा महाविदेहक्षेत्रीय तीर्थंकरों के

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ५५ से ६० तक

⁽ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भाग. १, पृ. ४५३ से ५१३ तक

११८]

तीर्थ में साधुओं के यावत्कथिकसामायिक-चारित्र होता है। क्योंकि उनके उपस्थापना नहीं होती, अर्थात्-उन्हें महाव्रतारोपण के लिए दूसरी बार दीक्षा नहीं दी जाती। इस प्रकार के सामायिकचारित्र की आराधना के कारण से जो आर्य हैं वे सामायिकचारित्रार्य कहलाते हैं।

छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य—जिस चारित्र में पूर्वपर्याय का छेद, और महाव्रतों में उपस्थापन किया जाता है वह छेदोपस्थापनचारित्र है। वह दो प्रकार का है-साितचार और निरितचार। निरितचार छेदोपस्थापनचारित्र वह है-जो इत्वरिक सामाियक वाले शैक्ष (नवदीिक्षत) को दिया जाता है अथवा एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में जाने पर अंगीकार किया जाता है। जैसे पार्श्वनाथ के तीर्थ से वर्द्धमान के तीर्थ में आने वाले श्रमण को पंचमहाव्रतरूप चारित्र स्वीकार करने पर दिया जाने वाला छेदोस्थापनचारित्र निरितचार है। साितचार छेदोपस्थापनचारित्र वह है जो मूलगुणों (महाव्रतों) में से किसी का विघात करने वाले साधु को पुन: महाव्रतोच्चारण के रूप में दिया जाता है। यह दोनों ही प्रकार का छेदोपस्थापनचारित्र स्थितकल्प में-अर्थात्-प्रथम और चरम तीर्थंकरों के तीर्थ में होता है, मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के तीर्थ में नहीं। छेदोपस्थापनचारित्र की आराधना करने के कारण साधक को छेदोपस्थापनचारित्रार्य कहा जाता है।

परिहारविशृद्धिचारित्रार्य का स्वरूप—परिहार एक विशिष्ट तप है, जिससे दोषों का परिहार किया जाता है। अत: जिस चारित्र में उक्त परिहार तप से विशुद्धि प्राप्त होती है, उसे परिहारविशुद्धिचारित्र कहते हैं। उसके दो भेद हैं-निर्विशमानक और निर्विष्टकायिक। जिस चारित्र में साधक प्रविष्ट होकर उस तपोविधि के अनुसार तपश्चरण कर रहे हों, उसे निर्विशमानकचारित्र कहते हैं और जिस चारित्र में साधक तपोविधि के अनुसार तप का आराधन कर चुके हों, उस चारित्र का नाम निर्विष्टकायिकचारित्र है। इस प्रकार के चारित्र अंगीकार करने वाले साधकों को भी क्रमश: निर्विशमान और निर्विष्टकायिक कहा जाता है। नौ साधु मिल कर इस परिहारतप की आराधना करते हैं। उनमें से चार साधु निर्विशमानक होते हैं। जो इस तप को करते हैं और चार साधु उनके अनुचारी अर्थात् वैयावृत्त्य करने वाले होते हैं तथा एक नाधु कल्पस्थित वाचनाचार्य होता है। यद्यपि सभी साधु श्रुतातिशयसम्पन्न होते हैं, तथापि यह एक प्रकार का कल्प होने के कारण उनमें एक कल्पस्थित आचार्य स्थापित कर लिया जाता है। निर्विशमान साधुओं का परिहारतप इस प्रकार होता है-ज्ञानीजनों ने पारिहारकों का शीतकाल, उष्णकाल और वर्षाकाल में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट तप इस प्रकार बताया है-ग्रीष्मकाल में जघन्य चतुर्थभक्त, मध्यम षष्ठभक्त और उत्कृष्ट अष्टमभक्त होता है, शिशिरकाल में जघन्य षष्ठभक्त (बेला), मध्यम अष्टमभक्त (तेला) और उत्कृष्ट दशमभक्त (चौला) तप होता है। वर्षाकाल में जघन्य अष्टमभक्त, मध्यम दशमभक्त और उत्कृष्ट द्वादशभक्त (पंचौला) तप। पारणे में आयम्बिल किया जाता है। भिक्षा में पांच (वस्तुओं) का ग्रहण और दो का अभिग्रह होता है। कल्पस्थित भी प्रतिदिन इसी प्रकार आयम्बिल करते हैं। इस प्रकार छह महीने तक तप करके पारिहारिक (निर्विशमानक) साधु अनुचारी (वैयावृत्य करने वाले) बन जाते हैं; और जो चार अनुचारी थे, वे छह महीने के लिए पारिहारिक बन जाते हैं। इसी प्रकार कल्पस्थित

(वाचनाचार्य पदस्थित) साधु भी छहमहीने के पश्चात् पारिहारिक बन कर अगले ६ महीनों तक के लिए तप करता है। और शेष साधु अनुचारी तथा कल्पस्थित बन जाते हैं। यह कल्प कुल १८ मास का संक्षेप में कहा गया है। कल्प समाप्त हो जाने के पश्चात् वे साधु या तो जिनकल्प को अंगीकार कर लेते हैं, या अपने गच्छ में पुन: लौट आते हैं। परिहार तप के प्रतिपद्यमानक इस तप को या तो तीर्थकर भगवान् के सान्निध्य में अथवा जिसने इस कल्प को तीर्थंकर से स्वीकार किया हो, उसके पास से अंगीकार करते हैं; अन्य के पास नहीं। ऐसे मुनियों का चारित्र परिहारिवशुद्धिचारित्र कहलाता है। इस चारित्र की आराधना करने वाले को परिहारिवशुद्धिचारित्रार्य कहते हैं।

परिहारिवशुद्धिचारित्री दो प्रकार के होते हैं—इत्वरिक और यावत्कथिक। इत्वरिक वे होते हैं, जो कल्प की समाप्ति के बाद उसी कल्प या गच्छ में आ जाते हैं। जो कल्प समाप्त होते ही बिना व्यवधान के तत्काल जिनकल्प को स्वीकार कर लेते हैं, वे यावत्कथिकचारित्री कहलाते हैं। इत्वरिकपरिहारिवशुद्धिकों को कल्प के प्रभाव से देवादिकृत उपसर्ग, प्राणहारक आतंक या दुःसह वेदना नहीं होती किन्तु जिनकल्प को अंगीकार करने वाले यावत्कथिकों को जिनकल्पी भाव का अनुभव करने के साथ ही उपसर्ग होने सम्भव हैं।

सूक्ष्मसम्परायचारित्रार्य का स्वरूप — जिसमें सूक्ष्म अर्थात् संज्वलन के सूक्ष्म लोभरूप सम्पराय-कषाय का ही उदय रह गया हो, ऐसा चारित्र सूक्ष्मसम्परायचारित्र कहलाता है। यह चारित्र दसवें गुणस्थान वालों में होता है; जहाँ संज्वलनकषाय का सूक्ष्म अंश ही शेष रह जाता है। इसके दो भेद हैं- विशुद्धयमानक और संक्लिश्यमानक। क्षपकश्रेणी या उपसमश्रेणी पर आरोहण करने वाले का चारित्र विशुद्धयमानक होता है, जबिक उपशमश्रेणी के द्वारा ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँच कर वहाँ से गिरने वाला मुनि जब पुन: दसवें गुणस्थान में आता है, उस समय का सूक्ष्मसम्परायचारित्र संक्लिश्यमानक कहलाता है। सूक्ष्मसम्परायचारित्र की आराधना से जो आर्य हों, उन्हें सूक्ष्मसम्परायचारित्रार्य कहते हैं।

यथाख्यातचारित्रार्य— 'यथाख्यात' शब्द में यथा+आ+आख्यात, ये तीन शब्द संयुक्त हैं, जिनका अर्थ होता है-यथा (यथार्थरूप से) आ (पूरी तरह से) आख्यात (कषायरिहत कहा गया) हो अथवा जिस प्रकार समस्त लोक में ख्यात-प्रसिद्ध जो अकषायरूप हो, वह चारित्र, यथाख्यातचारित्र कहलाता है। इस चारित्र के भी दो भेद हैं-छाद्मस्थिक (छद्मस्थ-यानी ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव का) और कैवलिक (तैरहवें गुणस्थानवर्ती-सयोगिकेवली और चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली का)। इस प्रकार के यथाख्यातचारित्र की आराधना से जो आर्य हों, वे यथाख्यातचारित्रार्य कहलाते हैं। है

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ६३ से ६८ तक

⁽ख) सव्विमणं समाइयं छेयाइविसेसियं पुण विभिन्नं । अविसेसं समाइयं चियमिह सामन्नसन्नाए॥ प्र. म. वृ. प. ६३

⁽ग) अह सद्दो उ जहत्थे, अडोऽभिविहीए कहियमक्खायं। चरणमकसायमुद्रयं तहमक्खायं जहक्खायं॥-प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक ६८

चतुर्विध देवों की प्रज्ञापना

१३९. से किं तं देवा ?

देवा चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा-भवणवासी १ वाणमंतरा २ जोइसिया ३ वेमाणिया ४। [१३९ प्र.] देव कितने प्रकार के हैं ?

[१३९ उ.] देव चार प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं— (१) भवनवासी, (२) वाणव्यन्तर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक।

१४०. [१] से किं तं भवणवासी ?

भवणवासी दसविहा पन्नत्ता। तं जहा-असुरकुमारा १ नागकुमारा २ सुवण्णकुमारा ३ विज्जुकुमारा ४ अग्गिकुमारा ५ दीवकुमारा ६ उदिहकुमारा ७ दिसाकुमारा ८ वाउकुमारा ९ थणियकुमारा १०।

[१४०-१ प्र.] भवनवासी देव किस प्रकार के हैं ?

[१४०-१ उ.] भवनवासी देव दस प्रकार के हैं—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुपर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदिधकुमार, (८) दिशाकुमार, (९) पवन (वायु) कुमार और (१०) स्तनितकुमार।

(२) ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से तं भवणवासी। [१४०-२] ये (दस प्रकार के भवनवासी देव) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा-पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

यह भवनवासी देवों की प्ररूपणा हुई।

१४१. [१] से किं तं वाणमंतरा ?

वाणमंतरा अट्टविहा पण्णत्ता। तं जहा—किन्नरा १ किंपुरिसा २ महोरगा ३ गंधव्वा ४ जक्खा ५ रक्खसा ६ भूया ७ पिसाया ८।

[१४१-१ प्र.] वाणव्यन्तर देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४१-१ उ.] वाणव्यन्तर देव आठ प्रकार के कहे गए हैं। जैसे—(१) किन्नर, (२) किम्पुरुष, (३) महोरग, (४) गन्धर्व, (५) यक्ष, (६) राक्षस, (७) भूत और (८) पिशाच।

[२] से समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । से तं वाणमंतरा। [१४१-२] वे (उपर्युक्त किन्नर आदि आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देव) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं; पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह हुआ उक्त वाणव्यन्तरों का वर्णन।

१४२. [१] से किं तं जोइसिया ?

जोइसिया पंचिवहा पन्नत्ता। तं जहा-चंदा १ सूरा २ गहा ३ नक्खता ४ तारा ५।

[१४२-१ प्र.] ज्योतिष्क देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४२-१ उ.] ज्योतिष्क देव पांच प्रकार के हैं। यथा-(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र और (५) तारे।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता तं जहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं जोइसिया।

[१४२-२] वे (उपर्युक्त पांच प्रकार के ज्योतिष्क देव) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं-पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह ज्योतिष्क देवों का निरूपण है।

१४३. से किं त्तं वेमाणिया ?

वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा-कप्पोवगा य कप्पातीता य।

[१४३ प्र.] वैमानिक देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४३ उ.] वैमानिक देव दो प्रकार के हैं-कल्पोपपन्न और कल्पातीत।

१४४. [१] से किं तं कप्पोवगा ?

कप्पोवगा बारसिवहा पण्णत्ता। तं जहा-सोहम्मा १ ईसाणा २ सणंकुमारा ३ माहिंदा ४ बंभलोया ५ लंतया ६ सुक्का ७ सहस्सारा ८ आणता ९ पाणता १० आरणा ११ अच्चुता १२।

[१४४-१ प्र.] कल्पोपपन्न कितने प्रकार के हैं ?

[१४४-१ उ.] कल्पोपपन्न देव बारह प्रकार के कहे गए हैं-(१) सौधर्म, (२) ईशान, (३) सनत्कुमार, (४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्मलोक, (६) लान्तक, (७) महाशुक्र, (८) सहस्रार, (९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण और (१२) अच्युत।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा- पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं कप्पोवगा।

[१४४-२] वे (बारह प्रकार के कल्पोपपन्न देव) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा-पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह कल्पोपपन्न देवों की प्ररूपणा हुई।

१४५. से किं तं कप्पातीया ?

कप्पातीया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा-गेवेज्जगा य अणुत्तरोववाइया य ।

[१४५ प्र.] कल्पातीत देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४५ उ.] कल्पातीत देव दो प्रकार के हैं-ग्रैवेयकवासी और अनुत्तरौपपातिक।

१४६. [१] से किं तं गेवेज्जगा ?

गेवेज्जगा णविवहा पण्णत्ता। तं जहा-हेट्ठिमेहेट्ठिमगेवेज्जगा १ हेट्ठिममिष्झमगवेज्जगा २ हेट्ठिमउविरमगेवेज्जगा ३ मिष्झमहेट्ठिमगेवेज्जगा ४ मिष्झममिष्झमगेवेज्जगा ५ मिष्झमउविरमगेवेज्जगा ६ उविरमहेट्ठिमगेवेज्जगा ७ उविरममिष्झमगेवेज्जगा ८ उविरमउविरमगेवेज्जगा ९। [१४६-१ प्र.] ग्रैवेयक देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४६-१ उ.] ग्रैवेयक देव नौ प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार-(१) अधस्तन-अधस्तन-ग्रैवेयक, (२) अधस्तन-मध्यम-ग्रैवेयक, (३) अधस्तन-उपित्म-ग्रैवेयक, (४) मध्यम-अधस्तन-ग्रैवेयक, (५) मध्यम-मध्यम-ग्रैवेयक, (६) मध्यम-उपित्म-ग्रैवेयक, (७) उपित्म-अधस्तन-ग्रैवेयक, (८) उपित्म-मध्यम-ग्रैवेयक और (९) उपित्म-उपित्म-ग्रैवेयक में रहने वाले।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से तं गेवेज्जगा।

[१४६-२] ये (उपर्युक्त नौ प्रकार के ग्रैवेयक देव) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह ग्रैवेयकों का निरूपण हुआ।

१४७. [१] से किं तं अणुत्तरोववाइया ?

अणुत्तरोववाइया पंचिवहा पण्णत्ता। तं जहा-विजया १ वेजयंता २ जयंता ३ अपराजिता ४ सळ्वट्ठसिद्धा ५।

[१४७-१ प्र.] अनुत्तरौपपातिक देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४७-१ उ.] अनुत्तरौपपातिक देव पांच प्रकार के कहे गए हैं—(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित और (५) सर्वार्थसिद्ध, (विमानों में रहने वाले)।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से तं अणुत्तरोववाइया। से त्तं कप्पाईया। से तं वेमाणिया। से त्तं देवा। से तं पंचिंदिया। से त्तं संसारसमावण्णजीवपण्णवणा। से त्तं जीवपण्णवणा। से त्तं पण्णवणा।

॥ पण्णवणाए भगवईए पढमं पण्णवणापयं समत्तं॥

[१४७-२] ये संक्षेप में दो प्रकार के हैं-पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह हुई अनुत्तरौपपातिक देवों की प्ररूपणा। साथ ही उक्त कल्पातीत देवों का निरूपण पूर्ण हुआ, और इससे सम्बन्धित वैमानिक देवों का निरूपण भी पूर्ण हुआ। इसके पूर्ण होने पर देवों का वर्णन भी पूर्ण हुआ। साथ ही पंचेन्द्रिय जीवों का वर्णन भी पूरा हुआ। इसकी समाप्ति के साथ ही उक्त संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना पूर्ण हुई; और इससे सम्बन्धित जीवप्रज्ञापना भी समाप्त हुई। इस प्रकार यह प्रथम प्रज्ञापनापद पूर्ण हुआ।

विवेचन—चतुर्विध देवों की प्रज्ञापना-प्रस्तुत नौ सूत्रों (सू. १३९ से १४७ तक) में चार प्रकार के देवों के भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है।

भवनवासी देवों का स्वरूप-जो देव प्राय: भवनों में निवास किया करते हैं, वे भवनवासी देव कहलाते हैं। यह कथन बहुलता से नागकुमार आदि देवों की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योंकि वे (नागकुमारादि) ही प्राय: भवनों में निवास करते हैं, कदाचित् आवासों में भी रहते हैं; किन्तु असुरकुमार प्राय: आवासों में रहते हैं, कदाचित् भवनों में भी निवास करते हैं। भवन और आवास में अन्तर यह है कि भवन तो बाहर से वृत्त (गोलाकार) तथा भीतर से समचौरस होते हैं और नीचे कमल की कर्णिका के आकार के होते हैं; जबिक आवास कायप्रमाण स्थान वाले महामण्डप होते हैं, जो अनेक प्रकार के मणि-रत्नरूपी प्रदीपों से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करते हैं। भवनवासी देवों के प्रत्येक प्रकार के नाम के साथ संलग्न 'कुमार' शब्द इनकी विशेषता का द्योतक है। ये दसों ही प्रकार के देव कुमारों के समान चेष्टा करते हैं अतएव 'कुमार' कहलाते हैं। ये कुमारों की तरह सुकुमार होते हैं, इनकी चाल (गित) कुमारों की तरह मृदु, मधुर और लिलत होती है। शृंगार-प्रसाधनार्थ ये नाना प्रकार की विशिष्ट एवं विशिष्टतर उत्तरविक्रिया किया करते हैं। कुमारों की तरह ही इनके रूप, वेशभूषा, भाषा, आभूषण, शस्त्रास्त्र, यान एवं वाहन ठाठदार होते हैं। ये कुमारों के समान तीव्र अनुरागपरायण एवं क्रीड़ातत्पर होते हैं।

वाणव्यन्तर देवों का स्वरूप—अन्तर का अर्थ है—अवकाश, आश्रय या जगह। जिन देवों का अन्तर (आश्रय), भवन, नगरावास आदि रूप हो, वे व्यन्तर कहलाते हैं। वाणव्यन्तर देवों के भवन रत्नप्रभापृथ्वी के प्रथम रत्नकाण्ड में ऊपर और नीचे सौ-सौ योजन छोड़ कर शेष आठ सौ योजन प्रमाण मध्यभाग में हैं; और इनके नगर तिर्यग्लोक में भी हैं; तथा इनके आवास तीन लोकों में हैं, जैसे ऊर्ध्वलोक में इनके आवास पाण्डुकवन आदि में हैं। व्यन्तर शब्द का दूसरा अर्थ है-मनुष्यों से जिनका अन्तर नहीं (विगत) हो, क्योंकि कई व्यन्तर चक्रवर्ती, वासुदेव आदि मनुष्यों की सेवक की तरह सेवा करते हैं। अथवा जिनके पर्वतान्तर, कन्दरान्तर या वनान्तर आदि आश्रयरूप विविध अन्तर हों, वे व्यन्तर कहलाते हैं। अथवा वानमन्तर का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है-वनों का अन्तर वनान्तर है, जो वनान्तरों में रहते हैं, वे वानमन्तर।

वाणव्यन्तरों के किन्नर आदि आठ भेद हैं। किन्नर के दस भेद हैं— (१) किन्नर, (२) किम्पुरुष, (३) किम्पुरुषोत्तम, (४) किन्नरोत्तम, (५) हृदयंगम, (६) रूपशाली, (७) अनिन्दित, (८) मनोरम, (९) रितप्रिय और (१०) रितश्रेष्ठ। किम्पुरुष भी दस प्रकार के होते हैं- (१) पुरुष, (२) सत्पुरुष, (३) महापुरुष, (४) पुरुषवृषभ, (५) पुरुषोत्तम, (६) अतिपुरुष, (७) महादेव, (८) मरुत, (९) मेरुप्रभ और (१०) यशस्वन्त। महोरग भी दस प्रकार के होते हैं-(१) भुजग, (२) भोगशाली, (३) महाकाय, (४) अतिकाय, (५) स्कन्धशाली, (६) मनोरम, (७) महावेग, (८) महायक्ष, (९) मेरुकान्त और (१०) भास्वन्त। गन्धर्व १२ प्रकार के होते हैं-(१) हाहा, (२) हूहू, (३) तुम्बरव, (४) नारद, (५) ऋषिवादिक, (६) भूतवादिक, (७) कादम्ब, (८) महाकदम्ब, (९) रेवत, (१०) विश्वावसु, (११) गीतरित और (१२) गीतयश। यक्ष तेरह प्रकार के होते हैं-(१) पूर्णभद्र, (२) मणिभद्र, (३) श्वेतभद्र, (४) हरितभद्र, (५) सुमनोभद्र, (६) व्यितपातिकभद्र, (७) सुभद्र, (८) सर्वतोभद्र, (९) मनुष्ययक्ष, (१०) वनाधिपित, (११) वनाहार, (१२) रूपयक्ष और (१३) यक्षोत्तम। राक्षस देव सात प्रकार के होते हैं-(१) भीम, (२) महाभीम, (३) विष्टा, (४) विनायक, (५) जलराक्षस, (६) राक्षस-

राक्षस और (७) ब्रह्मराक्षस। भूत नौ प्रकार के होते हैं- (१) सुरूप, (२) प्रतिरूप, (३) अतिरूप, (४) भूतोत्तम, (५) स्कन्द, (६) महास्कन्द, (७) महावेग, (८) प्रतिच्छन्न और (९) आकाशग। पिशाच सोलह प्रकार के होते हैं-(१) कूष्पाण्ड, (२) पटक, (३) सुजोष, (४) आह्रिक, (५) काल, (६) महाकाल, (७) चोक्ष, (८) अचोक्ष, (९) तालपिशाच, (१०) मुखरपिशाच, (११) अधस्तारक, (१२) देह, (१३) विदेह, (१४) महादेह, (१५) तृष्णीक और (१६) वनपिशाच।

ज्योतिष्क देवों का स्वरूप—जो लोक को द्योतित-ज्योतित-प्रकाशित करते हैं वे ज्योतिष्क कहलाते हैं। अथवा जो द्योतित करते हैं, वे ज्योतिष्-विमान हैं, उन ज्योतिर्विमानों में रहने वाले देव ज्योतिष्क देव कहलाते हैं। अथवा जो मस्तक के मुकुटों से आश्रित प्रभामण्डलसदृश सूर्यमण्डल आदि के द्वारा प्रकाश करते हैं, वे सूर्यादि ज्योतिष्कदेव कहलाते हैं। सूर्यदेव के मुकुट के अग्रभाग में सूर्य के आकार का, चन्द्रदेव के मुकुट के अग्रभाग में चन्द्र के आकार का, ग्रहदेव के मुकुट के अग्रभाग में ग्रह के आकार का, नक्षत्रदेव के मुकुट के अग्रभाग में नक्षत्र के आकार का और तारकदेव के मुकुट के अग्रभाग में तारक के आकार का चिह्न होता है। इससे वे प्रकाश करते हैं।

वैमानिक देवों का स्वरूप—वैमानिक देव दो प्रकार के होते हैं—(१) कल्पोपग या कल्पोपपन्न और (२) कल्पातीत। कल्पोपपन्न का अर्थ है—कल्प यानी आचार-अर्थात्-इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिस आदि का व्यवहार और मर्यादा। उक्त कल्प से युक्त व्यवहार जिनमें हो, वे देव कल्पोपपन्न कहलाते हैं और जिनमें ऐसा कल्प न हो, वे कल्पातीत कहलाते हैं। सौधर्म आदि देव कल्पोपपन्न और नौ ग्रैवेयकं तथा पांच अनुत्तरौपपातिक देव कल्पातीत कहलाते हैं। लोकपुरुष की ग्रीवा पर स्थित होने से ये विमान ग्रैवेयक कहलाते हैं। अनुत्तर का अर्थ है-सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ठ विमान। उन अनुत्तर विमानों में उपपात यानी जन्म होने के कारण ये देव अनुत्तरौपपातिक कहलाते हैं।

॥ प्रज्ञापना सूत्रः प्रथम प्रज्ञापनापद समाप्त॥

बिइयं ठाणपयं

द्वितीय स्थानपद

प्राथमिक

	प्रथम पद में संसारी और सिद्ध, इन दो प्रकार के जीवों के भेद-प्रभेद बताए गए हैं। उन-उन जीवों के निवासस्थान का जानना आवश्यक होने से इस द्वितीय 'स्थानपद' में उसका विचार किया गया है।
٥	जीवों के निवासस्थान का विचार करना इसिलए भी आवश्यक है कि अन्य दर्शनों की तरह जैनदर्शन में आत्मा को सर्वव्यापक नहीं, किन्तु उस-उस जीव के शरीरप्रमाणव्यापी संकोचिवकासशील माना गया है। इसके अतिरिक्त जैनदर्शन में अन्य दर्शनों की मान्यता की तरह आत्मा कूटस्थिनित्य नहीं, किन्तु परिणामीनित्य मानी गई है। इस कारण संसार में नाना पर्यायों के रूप में उसका जन्म होता है तथा नियत स्थान से ही वह शरीर धारण करती है। अतएव कौन-सा जीव किस स्थान में होता है? इसका विचार करना अनिवार्य हो जाता है। दूसरे दर्शनों की दृष्टि से जीव सदैव सर्वत्र लोक में उपलब्ध हैं ही, वे केवल शरीर की दृष्टि से भले ही निवास स्थान का विचार कर लें, आत्मा की दृष्टि से जीव के स्थान का विचार उनके लिए अनिवार्य नहीं।
	प्रस्तुत 'स्थानपद' में अंकित मूलपाठ के अनुसार जीव के दो प्रकार के निवासस्थान फलित होते हैं—(१) स्थायी और (२) प्रासंगिक। जन्म धारण करने से लेकर मृत्यु पर्यन्त जीव जहाँ (जिस स्थान में) रहता है, उस निवास स्थान को स्थायी कहा जा सकता है, शास्त्रकार ने जिसका उल्लेख 'स्वस्थान' के नाम से किया है। प्रासंगिक निवासस्थान का विचार 'उपपात' और 'समुद्धात' इन दो प्रकारों से किया गया है।
	जैनशास्त्रीय परिभाषानुसार पूर्वभय की आयु समाप्त (मृत्यु) होते ही जीव नये नाम (पर्याय) से पहचाना जाता है। उदाहरणार्थ कोई जीव पूर्वभव में देव था, किन्तु वहाँ से मर कर वह मनुष्य होने वाला हो तो देवायु समाप्त होने से वह मनुष्य नाम से पहचाना जाता है। परन्तु जीव (आत्मा) सर्वव्यापक न होने से, शरीरप्रमाणव्यापी जीव को मृत्यु के पश्चात् नया जीवन स्वीकार करने हेतु

यात्रा करके स्वजन्मस्थान में जाना पड़ता है। क्योंकि देवलोक तो उस जीव ने छोड़ दिया और मनुष्यलोक में अभी तक पहुँचा नहीं है, तब तक उसका यह यात्राकाल है। इस यात्रा के दौरान उस जीव ने जिस प्रदेश की यात्रा की, वह भी उसका स्थान तो है ही। इसी स्थान को शास्त्रकार ने

🗅 प्रज्ञापनासूत्र का यह द्वितीय स्थानपद है।

१. (क) प्रमाणनयतत्त्वालोक (रत्नाकरावतारिका) परि. ४

⁽ख) पण्णवणासुत्तं पद २ की प्रस्तावना भा. २, पृ. ४७-४८

'उपपातस्थान' कहा है। स्पष्ट है कि यह स्थान प्रासंगिक है, फिर भी अनिवार्य तो है ही।

- □ दूसरा प्रासंगिक स्थान है—'समुद्घात'। वेदना मृत्यु या विक्रिया आदि के विशिष्ट प्रसंगों पर जैनमतानुसार जीव के प्रदेशों का विस्तार होता है, जिसे जैन परिभाषा में 'समुद्घात' कहते हैं; जो कि अनेक प्रकार का है। समुद्घात के समय जीव के (आत्म-) प्रदेश शरीर स्थान में रहते हुए भी किसी न किसी स्थान में बाहर भी समुद्घात पर्यन्त रहते हैं। अत: समुद्घात की अपेक्षा से जीव के इस प्रासंगिक या कादाचित्क निवासस्थान का विचार भी आवश्यक है। इसीलिए प्रस्तुत पद में नानाविध जीवों के विषय में स्वस्थान, उपपातस्थान और समुद्घातस्थान, यों तीन प्रकार के निवासस्थानों का विचार किया गया है। षट्खण्डागम में भी खेताणुगमप्रकरण में स्वस्थान, उपपात और समुद्घात को लेकर स्थान-क्षेत्र का विचार किया गया है।
- ☐ प्रस्तुत 'स्थानप्रद' में जीवों के जिन भेदों के स्थानों के विषय में विचार और क्रम बताया गया है, उस पर से मालूम होता है कि प्रथमपद में निर्दिष्ट जीवभेदों में से एकेन्द्रिय जैसे कई सामान्य भेदों का विचार नहीं किया गया है, किन्तु 'पंचेन्द्रिय' जैसे सामान्य भेदों का विचार किया गया है। प्रथमपद-निर्दिष्ट सभी विशेष भेद-प्रभेदों के स्थानों का विचार प्रस्तुत पद में नहीं किया गया है, किन्तु मुख्य-मुख्य भेद-प्रभेदों के स्थानों का विचार किया गया है।
- □ अन्य सभी जीवों के भेद-प्रभेदों के स्थान के विषय में विचार करते समय पूर्वोक्त तीनों स्थानों का विचार किया गया है, परन्तु सिद्धों के विषय में केवल 'स्वस्थान' का ही विचार किया गया है। इसका कारण यह है कि सिद्धों का उपपात नहीं होता; क्योंकि अन्य जीवों को उस-उस जन्मस्थान को प्राप्त करने से पूर्व उस-उस नाम, गोत्र और आयु कर्म का उदय होता है, इस कारण से नाम धारण करके, नया जन्म ग्रहण करने हेतु उस गित को प्राप्त करते हैं। सिद्धों के कर्मों का अभाव है, इस कारण सिद्ध रूप में उनका जन्म नहीं होता, किन्तु वे स्व (सिद्धि) स्थान की दृष्टि से स्वस्वरूप को प्राप्त करते हैं, वही उनका स्वस्थान है। मुक्त जीवों की लोकान्त-स्थान तक जो गित होती है, वह जैनमान्यतानुसार आकाश प्रदेशों को स्पर्श करके नहीं होती, इसिलए मुक्त जीवों का गमन होते हुए भी आकाशप्रदेशों का स्पर्श न होने से उस-उस प्रदेश में सिद्धों का 'स्थान' होना नहीं कहलाता। इस दृष्टि से सिद्धों का उपपातस्थान नहीं होता। समुद्घातस्थान भी सिद्धों को नहीं होता, क्योंकि समुद्घात कर्मयुक्त जीवों के होता है, सिद्ध कर्मरहित हैं। इसिलए सिद्धों के विषय में 'स्वस्थान' का ही विचार किया गया है।

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १., पृ. ४६ से ८०

⁽ख) पण्ण्वणासुत्तं पद २ की प्रस्तावना भा. २, पृ. ४७-४८

⁽ग) षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ. २९९

- 'एकेन्द्रिय जीव समग्र लोक में पिरव्याप्त हैं' इस कथन का अर्थ केवल एक एकेन्द्रिय जीव से नहीं, अपितु समग्ररूप से—सामान्य रूप से एकेन्द्रिय जाति से है। तथा तीन स्थानों का पृथक्-पृथक् कथन न करके तीनों स्थान समग्ररूप से समझना चाहिए। द्वीन्द्विय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव समग्र लोक में नहीं, किन्तु लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। सामान्य पंचेन्द्रियों का स्थान भी लोक के असंख्यातवें भाग में है, किन्तु विशेषपंचेन्द्रिय के रूप में नारकों, तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों, मनुष्यों एवं देवों के पृथक्-पृथक् सूत्रों में उन-उनके स्थानों का पृथक्-पृथक् निर्देश है। सिद्ध लोक के अग्रभाग में हैं। है
- □ जीवभेदों के अनुसार स्थान-निर्देश इस क्रम से किया गया है— (१) पृथ्वीकायिक (बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त), (२) अप्कायिक (पूर्ववत्), (३) तेजस्कायिक (पूर्ववत्), (४) वायुकायिक (पूर्ववत्) (५) वनस्पतिकायिक (पूर्ववत्), (६) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय (पर्याप्त-अपर्याप्त), (७) पंचेन्द्रिय (सामान्य), (८) नारक (सामान्य, पर्याप्त-अपर्याप्त), (९) प्रथम से सप्तस नरक तक (पर्याप्त-अपर्याप्त), (१०) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च (पूर्ववत्), (११) मनुष्य (पूर्ववत्), (१२) भवनवासी देव (पर्याप्त-अपर्याप्त), (१३) असुरकुमार आदि दस भवनवासी (दिक्षणात्य, औदिच्य, पर्याप्त-अपर्याप्त), (१४) व्यन्तर (पर्याप्त-अपर्याप्त), (१५) पिशाचादि ८ व्यन्तर (दिक्षण-उत्तर के, पर्याप्त-अपर्याप्त), (१६) जोतिष्कदेव, (१७) वैमानिकदेव, (१८) सौधर्म से अच्युत तक, (पर्याप्त-अपर्याप्त), (१९) ग्रैवेयकदेव (पर्याप्त-अपर्याप्त), (२०) अनुत्तरौपपातिकदेव (पर्याप्त-अपर्याप्त) और (२१) सिद्ध। वि

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. ४६ से ८० तक

⁽ख) पण्ण्वणसुत्तं पद दो की प्रस्तावना भा. २, पृ. ४९-५०

⁽ग) उत्तराध्ययन अ. ३६, गा. 'सुहुमा सव्वलोगिम'

२. पण्ण्वणासुत्तं (मूलपाठ) विषयानुक्रम, पृ. ३१

बिइयं ठाणपयं

द्वितीय स्थानपद

पृथ्वीकायिकों के स्थानों का निरूपण

१४८. किह णं भंते! बादरपुढिविकाइयाणं पञ्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा! सट्ठाणेणं अट्ठसु पुढवीसु। तं जहा-रयणप्पभाए १ सक्करप्पभाए २ वालुयप्पभाए ३ पंकप्पभाए ४ धूमप्पभाए ५ तमप्पभाए ६ तमतमप्पभाए ७ इसीपब्भाराए ८-१।

अहोलोए पायलेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु णिरएसु निरयावलियासु निरयपत्थडेसु २। उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु ३।

तिरियलोए टंकेसु कूडेसु सेलेसु सिहरीसु पब्भारेसु विजएसु वक्खारेसु वासेसु वासहरपव्यएसु वेलासु वेइयासु दारेसु तोरणेसु दीवेसु समुद्देसु (-४) ण्क^१।

एत्थ णं बादरपुढविकाइयाणं पञ्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१४८ प्र.] भगवन्! बादरपृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीवों के स्थान कहाँ कहे हैं ?

[१४८ उ.] गौतम! स्वस्थान की अपेक्षा से वे आठ पृथ्वियों में हैं। वे इस प्रकार—(१) रत्नप्रभा में, (२) शर्कराप्रभा में, (३) वालुकाप्रभा में, (४) पंकप्रभा में, (५) धूमप्रभा में, (६) तम:प्रभा में, (७) तमस्तम:प्रभा में और (८) ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी में।

- १. अधोलोक में—पातालों में, भवनों में, भवनों के प्रस्तटों (पाथड़ों) में, नरकों में, नरकाविलयों में एवं नरक के प्रस्तटों (पाथड़ों) में।
 - २. ऊर्ध्वलोक में—कल्पों में, विमानों में, विमानाविलयों में और विमान के प्रस्तटों (पाथड़ों) में।
- ३. तिर्यक्लोक में—टंकों में, कूटों में, शैलों में, शिखर वाले पर्वतों में, प्राग्भारों (कुछ झुके हुए पर्वतों) में, विजयों में, वक्षस्कार पर्वतों में, (भारतवर्ष आदि) वर्षों (क्षेत्रों) में, (हिमवान् आदि) वर्षधरपर्वतों में, वेलाओं (समुद्रतटवर्ती ज्वारभूमियों) में, वेदिकाओं में, द्वारों में, तोरणों में, द्वीपों में और समुद्रों में।

इन (उपर्युक्त भूमियों) में बादरपृथ्वीकायिक पर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यतवें भाग में और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

१. 'पक' चार संख्या का द्योतक है।

१४९. किह णं भंते! बादरपुढिवकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा! जत्थेव बादरपुढिविकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरपुढिविकाइयाणं अपज्जत्त-गाणं ठाणा पण्णत्ता। तं जहा—उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१४९ प्र.] भगवन्! बादरपृथ्वीकायिकों के अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ कहे हैं ?

[१४९ उ.] गौतम! जहाँ बादरपृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं, वहीं बादर-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं। जैसे कि—उपपात की अपेक्षा से सर्वलोक में, समुद्घात की अपेक्षा से समस्त लोक में तथा स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

१५०. किह णं भंते! सुहुमपुढिविकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं य ठाणा पण्णत्ता ? गोयमा! सुहुमपुढिविकाइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सब्वे एगिवहा अविसेसा अणाणत्ता सब्वलोयपिरियावण्णागा पण्णत्ता समणाउसो!

[१५० प्र.] भगवन्! सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? [१५० उ.] गौतम! सूक्ष्मपृथ्वीकायिक, जो पर्याप्तक हैं और जो अपर्याप्तक हैं, वे सब एक ही प्रकार के हैं, विशेषतारहित (सामान्य) हैं, नानात्व (अनेकत्व) से रहित हैं और हे आयुष्मन् श्रमणो! वे समग्र लोक में परिव्याप्त कहे गए हैं।

विवेचन—पृथ्वीकायिकों के स्थानों का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों(सू. १४८ से १५० तक) में बादर, सूक्ष्म, पर्याप्तक और अपर्याप्तक सभी प्रकार के पृथ्वीकायिकों के स्थानों का निरूपण किया गया है।

'स्थान' की परिभाषा और प्रकार—जीव जहाँ-जहाँ रहते हैं, जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक जहां रहते हैं, उसे 'स्वस्थान' कहते हैं, जहाँ एक भव से छूट कर दूसरे भव में जन्म लेने से पूर्व बीच में स्वस्थानाभिमुख होकर रहते हैं, उसे 'उपपातस्थान' कहते हैं और समुद्धात करते समय जीव के प्रदेश जहाँ रहते हैं, जितने आकाशप्रदेश में रहते हैं, उसे 'समुद्धातस्थान' कहते हैं।

पृथ्वीकायिकों के तीनों लोकों में निवासस्थान कहाँ-कहाँ और कितने प्रदेश में ? शास्त्रकार ने पृथ्वीकायिकों (बादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्तों) के स्वस्थान तीन दृष्टियों से बताए हैं—(१) सात नरक पृथ्वियों में और आठवीं ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी में, तत्पश्चात् (२) अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक में विभिन्न स्थानों में, तथा (३) स्वस्थान में भी लोक के असंख्यातवें भाग में। इसके अतिरिक्त बादर पर्याप्तक-अपर्याप्तक के उपपातस्थान क्रमशः लोक के असंख्यातवें भाग में तथा सर्वलोक में और समुद्घातस्थान पूर्वोक्त दोनों पृथ्वीकायिकों के क्रमशः लोक के असंख्यातवें भगा में तथा सर्वलोक में बताया गया है। १

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. ६४

⁽ख) पण्णवणासुत्तं भा. २, पद २ की प्रस्तावना

उपपात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीवों का जो स्वस्थान कहा गया है, उसकी प्राप्ति के अभिमुख होना उपपात है, उस उपपात को लेकर वे चतुर्दशरज्ज्वात्मक लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, क्योंकि उनका रत्नप्रभादि समुदित स्वस्थान भी लोक के असंख्यातवें भाग में है। पर्याप्त बादरपृथ्वीकायिक थोड़े हैं, इसिलए उपपात के समय अपान्तरालगत होने पर भी वे सभी स्वस्थान लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं, इस कथन में कोई दोष नहीं है।

समुद्धात की अपेक्षा से भी लोक के असंख्यातवें भाग में—बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव समुद्धात-अवस्था में स्वस्थान के अतिरिक्त क्षेत्रान्तरवर्ती होने पर भी लोक के असंख्यातवें भाग में ही होते हैं, कारण यह है कि बादर पृथ्वीकायिकजीव सोपक्रम आयु वाले हों या निरुपक्रम आयु वाले, जब भुज्यमान आयु का तृतीय भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करके मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, तब उनके दण्डरूप में फैले हुए आत्मप्रदेश भी लोक के असंख्यातवें भाग में ही होते हैं, क्योंकि वे जीव थोड़े ही होते हैं। उन बादर पृथ्वीकायिकों की आयु अभी क्षीण नहीं हुई, इसलिए वे बादर पृथ्वीकायिक तब (समुद्धात-अवस्था में) भी पर्याप्तरूप में उपलब्ध होते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा से भी लोक के असंख्यातवें भाग में स्वस्थान हैं रत्नप्रभादि। वे सब मिल कर भी लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। जैसे कि रत्नप्रभा पृथ्वी का पिण्ड एक लाख, अस्सी हजार योजन का है। इसी प्रकार अन्य पृथ्वियों की भिन्न-भिन्न मोटाई भी कह लेनी चाहिए। पातालकलश भी एक लाख योजन अवगाह वाले होते हैं। नरकवास भी तीन हजार योजन ऊँचे होते हैं। विमान भी बत्तीस सौ योजन विस्तृत होते हैं। अतएव ये सभी परिमित होने के कारण सब मिल कर भी असंख्यातप्रदेशात्मक लोक के असंख्यातवें भागवर्ती ही होते हैं।

अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक: उपपात और समुद्धात की अपेक्षा से—दानों अपेक्षाओं से ये समस्त लोक में रहते हैं। अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक उपपातावस्था में विग्रहगति (अपान्तराल गति) में होते हुए भी स्वस्थान में भी अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक की आयु का वेदन विशिष्ट विपाकवश करते हैं तथा वे देवों व नारकों को छोड़कर शेष सभी कार्यों से उत्पन्न होते हैं, उद्वृत्त होने पर (मरने पर)भी वे देवों और नारकों को छोड़कर शेष सभी स्थानों में जाते हैं। मर कर स्वस्थान में जाते समय वे विग्रहगति में रहे हुए (उपपातावस्था में) भी अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक ही कहलाते हैं, वे स्वभाव से ही प्रचुरसंख्या में होते हैं, इसलिए उपपात और समुद्धात की अपेक्षा से सर्वलोकव्यापी होते हैं। इनमें से किन्हीं का उपपात ऋजुगति से होता है, और किन्हीं का वक्रगति से। ऋजुगति तो सुप्रतीत है। वक्रगति की स्थापना इस प्रकार है—जिस समय में प्रथम वक्र (मोड़) को कई जीव संहरण करते हैं, उसी समय दूसरे जीव उस वक्रदेश को आपूरित कर देते हैं। इसी प्रकार द्वितीय वक्रदेश के संहरण में भी, वक्रोत्पित में भी प्रवाह से निरन्तर आपूरण होता रहता है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तों और अपर्याप्तों के तीन स्थान—सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के जो पर्याप्त और अपर्याप्त जीव हैं, वे सभी एक ही प्रकार के हैं, पूर्वकृत स्थान आदि के विचार की अपेक्षा से इनमें कोई भेद नहीं होता, कोई विशेष नहीं होता, जैसे पर्याप्त हैं, वैसे ही दूसरे हैं तथा वे नानात्व से रहित हैं, देशभेद से उनमें नानात्व परिलक्षित नहीं होता। तात्पर्य यह है कि जिन आधारभूत आकाशप्रदेशों में ये (एक) हैं, उन्हीं में दूसरे हैं। अत: वे सभी सूक्ष्म पृथ्वीकायिक उपपात, समुद्घात और स्वस्थान, इन तीनों अपेक्षाओं से सर्वलोकव्यापी हैं। १

कठिन शब्दों के विशेष अर्थ—'भवणेसु'—भवनपितयों के रहने के भवनों में, 'भवन-पत्थडेसु'
—भवनों के प्रस्तटों यानी भवनभूमिकाओं में (भवनों के बीच के भागों—अन्तरालों में)। 'णिरएसु
निरयाविलकासु'—नरकों (प्रकीर्णक नरकवास) में, तथा आवली रूप से स्थित नरकवासों में।
'कप्पेसु'—कल्पों—सौधर्मादि बारह देवलोकों में। 'विमाणेसु'—ग्रेवेयकसम्बन्धी प्रकीर्णक विमानों में। 'टंकेसु'—छित्र टंकों (एक भाग कटे हुए पर्वतों में)। 'कूटेसू'—कूटों—पर्वत के शिखरों में। 'सेलेसु'—शैलों—शिखरहीन पर्वतों में। 'विजयेसु'—विजयों—कच्छादि विजयों में। 'वक्खारेसु'—विद्युत्प्रभ आदि वक्षस्कार पर्वतों में। 'वेलासु'—समुद्रादि के जल की तटवर्ती रमणभूमियों में। 'वेदिकासु'—जम्बूद्वीप की जगती आदि से सम्बन्धित वेदिकाओं में। 'तोरणेसु'—विजय आदि द्वारों में, द्वारादि सम्बन्धी तोरणों में। 'दीवेसु समुद्देसुण्क'—समस्त द्वीपों और समस्त समुद्रों में। यहाँ 'ण्क' शब्द 'चार' संख्या का द्योतक है, ऐसा किन्हीं विद्वानों का अभिप्राय है।

अप्कायिकों के स्थानों का निरूपण

१५१. किह णं भंते! बादरआउकाइयाणं पज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? गोयमा! सद्वाणेणं सत्तसु घणोदधीसु सत्तसु घणोदधिवलएसु १। अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु २। उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणाविलयासु विमाणपत्थडेसु ३।

तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजिलयासु सरेसु सरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु विप्पणेसु दीवेसु समुदेसु सळेसु चेव जलासएसु जलट्टाणेसु ४।

एत्थ णं बादरआउकाइयाणं पज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्टाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७३-७४

२. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७३

⁽ख) पण्णवणासुत्तं मूलपाठ-टिप्पण पृ. ४६

[१५१ प्र.] भगवन्! बादर अप्कायिक-पर्याप्तकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१५१ उ.] गौतम! (१) स्वस्थान की अपेक्षा से—सात घनोदिधयों में और सात घनोदिध-वलयों में उनके स्थान हैं।

- २--- अधोलोक में---पातालों में, भवनों में तथा भवनों के प्रस्तटों (पाथडों) में हैं।
- ३— ऊर्ध्वलोक में—कल्पों में, विमानों में, विमानविलयों (आवलीबद्ध विमानों) में, विमानों के प्रस्तटों (मध्यवर्ती स्थानों) में हैं।
- ४— तिर्यंग्लोक में—अवटों (कुओं) में, तालाबों में, निदयों में, हदों में, वािपयों (चौकोर बाविड़यों), पुष्करिणियों (गोलाकार बाविड़यों या पुष्कर-कमल वाली बाविड़यों) में, दीिर्घकाओं (लम्बी बाविड़यों, सरल-छोटी निदयों) में, गुंजालिकाओं (टेढ़ीमेढ़ी बाविड़यों) में, सरोवरों में, पंक्तिबद्ध सरोवरों में, सर: सर:पंक्तियों (नाली द्वारा जिनमें कुंए का जल बहता है, ऐसे पंक्तिबद्ध तालाबों में), बिलों में (स्वाभाविक बनी हुई छोटी कुइओं में), पंक्तिबद्ध बिलों में, उज्झरों में (पर्वतीय जलस्त्रोतों में), निईरों (झरनों) में, गड्ढों में पोखरों में, वप्रों (क्यारियों) में, द्वीपों में, समुद्र में तथा समस्त जलाशयों में और जलस्थानों में (इनके स्थान) हैं।

इन (पूर्वोक्त) स्थानों में बादर-अप्कायिकों के पर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असंख्यातवें भाग में और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।

१५२. किह णं भंते! बादरआउक्काइयाणं अपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा! जत्थेव बादरआउक्काइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरआउक्काइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१५२ प्र.] भगवन्! बादर-अप्कायिकों के अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१५२ उ.] गौतम! जहाँ बादर-अप्कायिक-पर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं, वहीं बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से सर्वलोक में, समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में और स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।

१५३. किह णं भंते! सुहुमआउक्काइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा! सुहुमआउक्काइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जतगा ते सन्ने एगिवहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पन्नत्ता समणाउसो!

[१५३ प्र.] भगवन्! सूक्ष्म-अप्कायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ-कहे हैं?

[१५३ उ.] गौतम! सूक्ष्म-अप्कायिकों के जो पर्याप्तक और अपर्याप्तक हैं, वे सभी एक प्रकार के हैं, अविशेष (विशेषतारहित—सामान्य या भेदरहित) हैं, नानात्व रहित हैं, और आयुष्मन् श्रमणो! वे सर्वलोकव्यापी कहे गए हैं।

विवेचन—अप्कायिकों के स्थानों का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. १५१ से १५३ तक) में बादर, सूक्ष्म, पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक अप्कायिकों के स्वस्थान, उपपात और समुद्घात, इन तीनों अपेक्षाओं से स्थानों का निरूपण किया गया है।

'घणोदिधवलएस्' इत्यादि शब्दों की व्याख्या 'घणोदिधवलएस्'—स्व-स्वपृथ्वी-पर्यन्त प्रदेश को वेष्टित करने वाले वलयाकारों में। 'पायालेस्'—वलयामुख आदि पातालकलशों में। क्योंकि उनमें भी दूसरे में देशत: त्रिभाग में और तीसरे में त्रिभाग में सर्वात्मना जल का सद्भाव रहता है।

'भवणेसु कप्पेसु विमाणेसु'—भवनपितयों के भवनों में, कल्पों-देवलोकों में, तथा विमानों— सौधर्मादि-कल्पगत विमानों में, तथा इसके प्रस्तटों एवं विमानाविलयों में जल बावड़ी आदि में होता है। ग्रैवेयक आदि विमानों में बावड़िया नहीं होती, अतः वहां जल नहीं होता।^१

तेजस्कायिकों के स्थानों का निरूपण

१५४. किह णं भंते! बादरतेउकाइयाणं पज्जन्तगाणं ठाणा पण्णात्ता ?

गोयमा! सट्ठाणेणं अंतोमणुस्सखेत्ते अङ्गाइज्जेसु दीव-समुद्देसु निव्वाघाएणं पण्णरससु कम्म-भूमीसु, बाघायं पडुच्च पंचसु महाविदेहेसु।

एत्थ णं बादरतेउक्काइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं^२ लोयस्स असंखेजइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, सद्वाणेणं लोयस्स असंखेजइभागे।

[१५४ प्र.] भगवन्! बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक जीवों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं?

[१५४ उ.] गौतम! स्वस्थान की अपेक्षा से—मनुष्यक्षेत्र के अन्दर ढाई द्वीप-समुद्रों में, निर्व्याघात (बिना व्याघात) से पन्द्रह कर्मभूमियों में, व्याघात की अपेक्षा से—पांच महाविदेहों में (इनके स्थान हैं)।

इन (उपर्युक्त)स्थानों में बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में, तथा स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में (वे) होते हैं।

१५५. किह णं भंते! बादरतेउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा! जत्थेव बादरतेउकाइयाणं पज्जत्तगाणं तत्थेव बादरतेउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पत्रत्ता।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७४-७५

२. पाठान्तर-तीसु वि लोगस्स असंखेजितभागे

उववाएणं लोयस्स दोसु उड्ढकवाडेसु^१ तिरियलोयतट्टे य, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेजइभागे।

[१५५ प्र.] भगवन्! बादर तेजस्कायिकों के अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं? [१५५ उ.] गौतम! जहाँ बादर तेजस्कायिकों के पर्याप्तकों के स्थान हैं, वहीं बादर तेजस्कायिकों के अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के दो ऊर्ध्वकपाटों में तथा तिर्यग्लोक के तट्ट (स्थालरूप स्थान) में एवं समुद्घात की अपेक्षा से—सर्वलोक में तथा स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।

१५६. किह णं भंते! सुहुमतेउकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाण य ठाणा पण्णत्ता ? गोयमा! सुहुमतेउकाइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सब्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सब्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो!

[१५६ प्र.] भगवन्! सूक्ष्म तेजस्कायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? [१५६ उ.] गौतम! सूक्ष्म तेजस्कायिक, जो पर्याप्त हैं और अपर्याप्त हैं, वे सब एक ही प्रकार के हैं, अविशेष हैं, (उनमें विशेषता या भिन्नता नहीं है) उनमें नानात्व नहीं है, हे आयुष्मन् श्रमणो! वे सर्वलोकव्यापी कहे गए हैं?

विवेचन—तेजस्कायिक के स्थान का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. १५४ से १५६ तक) में बादर-सूक्ष्म के पर्याप्त एवं अपर्याप्त तेजस्कायिकों के स्वस्थान, उपपात स्थान एवं समुद्घातस्थान की प्ररूपणा की गई है।

बादर तेजस्कायिक पर्याप्तकों के स्थान—स्वस्थान की अपेक्षा से—वे मनुष्यक्षेत्र के अन्दर-अन्दर हैं। अर्थात् मनुष्यक्षेत्र के अन्तर्गत ढाई द्वीपों एवं दो समुद्रों में हैं। व्याघाताभाव से वे पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच महाविदेह इन पन्द्रह कर्मभूमियों में होते हैं; और व्याघात होने पर पांच महाविदेह क्षेत्रों में होते हैं। तात्पर्य यह है कि अत्यन्तस्निग्ध या अत्यन्तरूक्ष काल व्याघात कहलाता है। इस प्रकार के व्याघात होने पर अग्नि का विच्छेद हो जाता है। जब पांच भरत पांच ऐरवत क्षेत्रों में सुषम-सुषम, सुषम, तथा सुषम-दुष्यम आरा प्रवृत्त होता है, तब वह अतिस्निग्ध काल कहलाता है। उधर दुष्यम-दुष्यम आरा अतिरूक्ष काल कहलाता है। ये दोनों प्रकार के काल हों तो व्याघात—अग्निविच्छेद होता है। अगर ऐसी व्याघात की स्थिति हो तो पंचमहाविदेह क्षेत्रों में ही बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक जीव होते हैं। अगर इस प्रकार के व्याघात से रहित काल हो तो पन्द्रह ही कर्मभूमिक क्षेत्रों में बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक जीव होते हैं।

१. पाठान्तर-दोसुद्धक

विग्रहगित में यथोक्त स्वस्थान-प्राप्ति के अभिमुख—उपपात अवस्था में स्थान का विचार करने पर ये लोक के असंख्यातवें भाग में ही होते हैं, क्योंकि उपपात के समय वे बहुत थोड़े होते हैं। समुद्घात की अपेक्षा से विचार करें तो मारणान्तिक समुद्घातवश दण्डरूप में आत्मा प्रदेशों को फैलाने पर भी वे थोड़े होने से लोक के असंख्यातवें भाग में ही समा जाते हैं। स्वस्थान की अपेक्षा से भी वे लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं। क्योंकि मनुष्यक्षेत्र कुल ४५ लाख योजनप्रमाण लम्बा-चौड़ा है, जो कि लोक का असंख्यातवां भागमात्र हैं। है

बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तकों के स्थान—पर्याप्तकों के आश्रय से ही अपर्याप्त जीव रहते हैं, इस दृष्टि से जहाँ पर्याप्तकों के स्थान हैं, वहीं अपर्याप्तकों के हैं। उपपात की अपेक्षा से लोक के दो ऊर्ध्वकपाटों तथा तिर्यग्लोकतट्ट में बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक रहते हैं। आशय यह है कि अढाई द्वीप-समुद्रों से निकले हुए, अढाई द्वीप-समुद्रप्रमाण विस्तृत एवं पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यन्त जो दो कपाट हैं, वे केविलसमुद्घातसमय के कपाट की तरह ऊपर भी लोक के अन्त को स्पृष्ट (छुए हुए) हैं और नीचे भी लोकान्त को स्पृष्ट (छुए हुए) हैं, ये ही 'दो ऊर्ध्वकपाट' कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त तट्ट का अर्थ है—स्थाल (थाल)। अर्थात्—स्थालसदृश तिर्यग्लोकरूप तट्ट (स्थाल) कहलाता है। आशय यह है कि स्वयम्भूरमणसमुद्र की वेदिकापर्यन्त अठारह सौ योजन मोटा समस्त तिर्यग्लोकरूप तट्ट (स्थाल) है।

निष्कर्ष यह है कि उपपात की अपेक्षा से लोक के दो ऊर्ध्वकपाटों एवं तिर्यग्लोकरूप तट्ट में बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक जीवों के स्थान हैं।

'लोयस्स दोसुद्धकवाडेसु तिरियलोयतट्ठे' इस पाठान्तर के अनुसार यह अर्थ भी हो सकता है—लोक के उन दोनों ऊर्ध्वकपाटों में जो स्थित हो, वह तट्ठ—'तत्स्थ'। इस प्रकार—ितर्यग्लोक रूप तत्स्थ में—अर्थात्—उन दो ऊर्ध्वकपाटों के अन्दर स्थित तिर्यग्लोक में वे होते हैं। निष्कर्ष यह हुआ कि पूर्वोक्त दोनों ऊर्ध्वकपाटों में और तिर्यग्लोक में भी (स्थित) उन्हीं कपाटों में अपर्याप्त बादर तेजस्कायिकजीवों का उपपातस्थान है, अन्यत्र नहीं।

अभिमुखनामगोत्र अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक का प्रस्तुत अधिकार—यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक तीन प्रकार के होते हैं—

(१) एकभविक, (२) बुद्धायुष्क और (३) अभिमुखनामगोत्र। जो जीव विवक्षित भव के अनन्तर आगामी भव में बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकरूप में उत्पन्न होंगे वे एकभाविक कहलाते हैं, जो जीव पूर्वभव की आयु का त्रिभाग आदि समय शेष रहते बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक की आयु बांध चुके हैं, वे बुद्धायुष्क कहलाते हैं और जो पूर्वभव को छोड़ने के पश्चात् बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक की आयु, नाम और गोत्र का साक्षात् वेदन (अनुभव) कर रहे हैं, अर्थात् बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक-पर्याप्त

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७५

का अनुभव कर रहे हैं, वे 'अभिमुखनामगोत्र' कहलाते हैं। इन तीन प्रकार के बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकों में से प्रथम के दो—एक भविक और बुद्धायुष्क—द्रव्यिनक्षेप से ही बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक हैं, भाविनक्षेप से नहीं, क्योंकि ये दोनों उस समय आयु, नाम और गोत्र का वेदन नहीं करते; अतएव यहाँ इन दोनों का अधिकार नहीं है, किन्तु यहाँ केवल अभिमुख नाम गोत्र बादर अपर्याप्त तेजस्कायिकों का अधिकार समझना चाहिए; क्योंकि वे ही स्वस्थान प्राप्ति के आभिमुख्यरूप उपपात को प्राप्त करते हैं। यद्यपि ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से वे भी बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक के आयुष्य, नाम एवं गोत्र का वेदन करने के कारण पूर्वोक्त कपाटयुगल-तिर्यग्लोक के बाहर स्थित होते हुए भी बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक नाम को प्राप्त कर लेते हैं, तथापि यहाँ व्यवहारनय की दृष्टि को स्वीकार करने के कारण जो स्वस्थान में समश्रेणिक कपाट-युगल में स्थित हैं, और जो स्वस्थान से अनुगत तिर्यग्लोक में प्रविष्ट हैं, उन्हीं को बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक नाम से कहा जाता है; शेष जो कपाटों के अन्तराल में स्थित हैं, उनको नहीं क्योंकि वे विषमस्थानवर्ती हैं। इस प्रकार जो अभी तक उक्त कपाटयुगल में प्रवेश नहीं करते और न तिर्यग्लोक में प्रविष्ट होते हैं, वे अभी पूर्वभव में ही स्थित हैं, अतएव उनकी गणना बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकों में नहीं की जाती। कहा भी है—

पणयाललक्खपिहुला दुन्नि कवाडा य छिद्दिसिं पुट्ठा। लोगंते तेसिंऽतो जे तेऊ ते उ घिप्पंति॥

अर्थात्—पैंतालीस लाख योजन चौड़े दो कपाट हैं, जो छहों दिशाओं में लोकान्त का स्पर्श करंते हैं। उनके अन्दर-अन्दर जो तेजस्कायिक हैं, उन्हीं का यहाँ ग्रहण किया जाता है। इसकी स्थापना (आकृति) इस प्रकार है —

अत: इस सूत्र की व्याख्या व्यवहारनय की दृष्टि से की गई है।

समुद्धात की अपेक्षा से बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकों का स्थान—समुद्धात की दृष्टि से ये सर्वलोक में होते हैं। इसका आशय यों समझना चाहिए—पूर्वोक्तस्वरूप वाले दोनों कपाटों के मध्य (अपान्तरालों) में जो सूक्ष्मपृथ्वीकायिकादि जीव हैं, वे बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकों में उत्पन्न होते हुए मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उस समय वे विस्तार और मोटाई में शरीर-प्रमाण और लम्बाई में उत्कृष्टतः लोकान्त तक अपने आत्मप्रदेशों को बाहर फैलाते हैं। जैसा कि अवगाहनासंस्थानपद में आगे कहा जाएगा—

पुढवीकाइयस्स णं भंते! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्य तेयासरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा प.?' 'गोयमा! सरीरपमाणमेत्तिविक्खंभबाहल्लेणं आयामेणं जहन्नेणं अंगुलस्य असंखेज्जइभागे, उक्कोसेणं लोगंतो।' प्रज्ञापना. म. वृत्ति पत्रांक ७६ में उद्धृत

[प्र.] भगवन्! मारणान्तिक समुद्घात किये हुए पृथ्वीकायिक के तैजसशरीर की शारीरिक अवगाहना कितनी बड़ी होती है ?

[उ.] गौतम! (उन की शरीरावगाहना, विस्तार और मोटाई की अपेक्षा से शरीरप्रमाण होती है, और लम्बाई की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट लोकान्तप्रमाण होती है।

उसके पश्चात् वे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि अपने उत्पत्तिदेश तक दण्डरूप में आत्मप्रदेशों को फैलाते हैं और अपान्तरालगित (विग्रहगित) में वर्तमान होते हुए वे बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक की आयु का वेदन करने के कारण बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक नाम को धारण करते हैं। वे समुद्घात अवस्था में ही विग्रहगित में विद्यमान होते हैं तथा समुद्घात-गत जीव समस्त लोक को व्याप्त करते हैं। इस दृष्टि से समुद्घात की अपेक्षा से इन्हें सर्वलोकव्यापी कहा गया है।

दूसरे आचार्यों का कहना है—बादर अपर्यात-तेजस्कायिक जीव संख्या में बहुत-अधिक होते है; क्योंकि एक-एक पर्यात्त के आश्रय से असंख्यात अपर्यात्तों की उत्पत्ति होती है। वे सूक्ष्मों में भी उत्पन्न होते हैं और सूक्ष्म तो सर्वत्र विद्यमान हैं। इसलिए बादर अपर्यात्तक-तेजस्कायिक अपने-अपने भव के अन्त में मारणान्तिक समुद्घात करते हुए समस्त लोक को आपूरित करते हैं। इसलिए इन्हें समग्र की दृष्टि से, समुद्घात की अपेक्षा सकललोकन्नापी कहने में कोई दोष नहीं है। है

स्वस्थान की अपेक्षा से बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं, क्योंकि पर्याप्तों के आश्रय से अपर्याप्तों की उत्पत्ति होती है। पर्याप्तों का स्थान मनुष्यक्षेत्र है, जो कि सम्पूर्ण लोक का असंख्यातवां भागमात्र है। इसलिए इन्हें लोक के असंख्यातवें भाग में कहना उचित ही है।

वायुकायिकों के स्थानों का निरूपण

१५७. किह णं भंते! बादरवाउकाइयाणं पञ्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सद्वाणेणं सत्तसु घणवाएसु सत्तसु घणवायवलएसु तणुवाएसु सत्तसु वलएसु १। अहोलोए पायलेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु भवणिछहेसु भवणिवखुडेसु निरएसु निरयाविलयासु णिरयपत्थडेसु णिरयिछहेसु णिरयणिक्खुडेसु २।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणाविलयासु विमाणपत्थडेसु विमाणिछिदेसु विमाणिकखुडेसु ३।

तिरियलोए पाईण-पडीण-दाहिण-उदीण सळेसु चेव लोगागासिछिद्देसु लोगनिक्खुडेसु य ४। एत्थ णं बायरवाउकाइयाणं पञ्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु, समुग्घाएण लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७५ से ७७

- [१५७ प्र.] भगवन् ! बादर वायुकायिक-पर्याप्तकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?
- [१५७ उ.] १—गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से सात घनवातों में, सात घनवातवलयों में, सात तनुवातवलयों में (वे होते हैं)।
- २. अधोलोक में-पातालों में, भवनों में, भवनों के प्रस्तटों (पाथड़ों) में, भवनों के छिद्रों में, भवनों के निष्कुट प्रदेशों में नरकों में, नरकाविलयों में, नरकों के प्रस्तटों में, छिद्रों में और नरकों के निष्कुट-प्रदेशों में (वे हैं)।
- 3. उर्ध्वलोक में (वे) कल्पों में, विमानों में, आवली (पंक्ति) बद्ध विमानों में, विमानों के प्रस्तटों (पाथड़ों-बीच के भागों) में, विमानों के छिद्रों में, विमानों के निष्कुट-प्रदेशों में (हैं)।
- **४. तिर्यग्लोक में**-(वे)पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में समस्त लोकाकाश के छिद्रों में, तथा लोक के निष्कुट-प्रदेशों में, इन (पूर्वोक्त सभी स्थलों) में बादर वायुकायिक-पर्याप्तक जीव के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से-लोक के असंख्येयभागों में, समुद्घात की अपेक्षा से-लोक के असंख्येयभागों में, तथा स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्येयभागों में (बादर वायुकायिक-पर्याप्तक जीवों के स्थान हैं।

१५८. किह णं भंते अपज्जत्तबादरवाउकाइयाणं ठाणा पन्नता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरवाउक्काइयाणं पञ्जत्तगाणं ठाण तत्थेव बादरवाउकाइयाणं अपञ्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्टाणेणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु।

[१५८ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त-बादर-वायुकायिकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१५८ उ.] गौतम ! जहाँ बादर-वायुकायिक-पर्याप्तकों के स्थान हैं, वहीं बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) सर्वलोक में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से-(वे) सर्वलोक में हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यात भागों में हैं।

१५९. किह णं भंते ! स्हुमवाउकाइयाणं पञ्जत्तगाणं अपञ्जत्तगाणं ठाणा पन्नता ?

गोयमा ! सुहुमवाउकाइया जे य पञ्जत्तगा जे ये अपञ्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो !

[१५९ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्मवाायुकायिकों के पर्याप्तों और अपर्याप्तों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१५९ उ.] गौतम ! सूक्ष्मवायुकायिक, जो पर्याप्त हैं और जो अपर्याप्त हैं, वे सब एक ही प्रकार के हैं, अविशेष (विशेषता या भेद से रहित) हैं, नानात्व से रहित हैं और हे आयुष्मन् श्रमणों! वे सर्वलोक में परिव्याप्त हैं।

द्वितीय स्थानपद] [१३९

विवेचन-वायुकायिकों के स्थानों का निरूपण-प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. १५७ से १५९ तक) में वायुकायिक जीवों के बादर, सूक्ष्म और उनके पर्याप्तकों-अपर्याप्तकों के स्थानों का निरूपण तीनों अपेक्षाओं से किया गया है।

'भवणिछदेसु' 'भवणिणक्खुडेसु' आदि पदों के विशेषार्थ-भवणिछदेसु-भवनपितदेवों के भवनों के छिद्रों-अवकाशान्तरों में। 'भवणिणक्खुडेसु'-भवनों के निष्कुटों अर्थात् गवाक्ष आदि के समान भवनप्रदेशों में। णिरयणिक्खुडेसु-नरकों के निष्कुटों यानी गवाक्ष आदि के समान नरकावास प्रदेशों में।

पर्याप्त बादरवायुकायिक: उपपात आदि तीनों की अपेक्षा से-ये तीनों की अपेक्षा से लोक के असंख्यात भागों में हैं; क्योंकि जहाँ भी खाली जगह है-पोल है, वहाँ वायु बहती है। लोक में खाली जगह (पोल) बहुत है। इसिलए पर्याप्त वायुकायिक जीव बहुत अधिक हैं। इस कारण उपपात समुद्घात और स्वस्थान इन तीनों अपेक्षाओं से बादर पर्याप्तवायुकायिक लोक के असंख्येय भागों में कहे हैं।

अपर्याप्त बादरवायुकायिकों के स्थान-उपपात और समुद्घात की अपेक्षा से अपर्याप्त बादरवायुकायिक जीव सर्वलोक में व्याप्त हैं; क्योंकि देवों और नारकों को छोड़ कर शेष सभी कार्यों से जीव बादर अपर्याप्तवायुकायिकों में उत्पन्न होते हैं। विग्रहगित में भी बादर अपर्याप्तवायुकायिक पाए जाते हैं तथा उनके बहुत-से स्वस्थान हैं। अतएव व्यवहारनय की दृष्टि से भी उपपात को लेकर बादर पर्याप्त-अपर्याप्तवायुकायिकों की सकललोकव्यापिता में कोई बाधा नहीं है। समुद्घात की अपेक्षा से उनकी समग्रलोकव्यापिता प्रसिद्ध ही है; क्योंकि समस्त सूक्ष्म जीवों में और लोक में सर्वत्र वे उत्पन्न हो सकते हैं। स्वस्थान की अपेक्षा से बादर-अपर्याप्तवायुकायिकजीव लोक के असंख्येयभागों में होते हैं, यह पहले बतलाया जा चुका है।

वनस्पतिकायिकों के स्थानों का निरूपण

१६०. किह णं भंते ! बादरवणस्सइकाइयाणं पञ्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तस् घणोदहीस् सत्तस् घणोदहिवलएस् १।

अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु २।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु ३।

तिरियलोए अगडेसु तडागेसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु विप्पणेसु दीवेसु समुदेसु सळेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ४।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक. ७८

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७८

एत्थ णं बादरवणस्सइकाइयाणं पञ्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता । उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१६० प्र.] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक जीवों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं?

[१६० उ.] गौतम! १—स्वस्थान की अपेक्षा से—सात घनोदिधयों में और सात घनोदिधवलयों में (हैं)।

२-अधोलोक में---पातालों में, भवनों में और भवनों के प्रस्तटों (पाथड़ों) में (हैं)।

३—ऊर्ध्वलोक में-कल्पों में, विमानों में, आविलकाबद्ध विमानों में और विमानों के प्रस्तटों (पाथड़ों) में (वे हैं)।

४—तिर्यग्लोक में—कुओं में, तालाबों में, निदयों में, हृदों में, वािपयों (चौरस बाविड्यों) में, पुष्किरिणियों में, दीिर्घकाओं में, गुंजािलकाओं (वक्र—टेढ़ीमेढ़ी बाविड्यों) में, सरोवरों में, पंक्तिबद्धसरोवरों में, सर-सर पंक्तियों में, बिलों (स्वाभाविकरूप से बनी हुई कुइयों) में, पंक्तिबद्ध बिलों में, उईरों (पर्वतीयजल के अस्थायी प्रवाहों) में, निईरों (झरनों) में, तलैया में, पोखरों में, क्षेत्रों (खेतों या क्यारियों) में, द्वीपों में, समुद्रों में और सभी जलाशयों में तथा जल के स्थानों में; इन (सभी स्थलों) में बादर वेंनस्पितिकाियक-पर्याप्तक जीवों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (ये) सर्वलोक में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में हैं और स्वस्थांन की अपेक्षा से (ये) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

१६१. किह णं भांते ! बादरवणस्सइकाइयाणं अपञ्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरवणस्सइकाइयाणं पञ्जत्तगाणं ठणा तत्थेव बादरवणस्सइकाइयाणं अपञ्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१६१ प्र.] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं?

[१६१ उ.] गौतम ! जहाँ बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों के स्थान हैं, वहीं बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं—

उपपात की अपेक्षा से—(वे) सर्वलोक में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से (भी) सर्वलोक में हैं; (किन्तु) स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

१६२. किहं णं भंते ! सुहुमवणस्सइकााइयाणं पञ्जत्तगाणं अपञ्जत्तगाण य ठाणा पण्णत्ता ? गोयमा ! सुहुमवणस्सइकाइया जे य पञ्जत्तगा जे ये अपञ्जत्तगा ते सळ्ये एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सळ्यलोयपरियावण्णगा पण्णता समणाउसो ! [१६२ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्मवनस्पतिकायिकों के पर्याप्तकों एवं अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६२ उ.] गौतम ! सूक्ष्मवनस्पतिकायिक, जो पर्याप्त हैं और जो अपर्याप्त हैं, वे सब एक ही प्रकार के हैं, विशेषता से रहित हैं, नानात्व से भी रहित हैं और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे सर्वलोक में व्याप्त कहे गए हैं।

विवेचन—वनस्पतिकायिकों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रों में बादर - सूक्ष्मवनस्पतिकायिकों के पर्याप्तक-अपर्याप्तक-भेदों के स्वस्थान, उपपातस्थान और समुद्घातस्थान की प्ररूपणा की गई है।

पर्याप्त-बादरवनस्पितकायिकों के स्थान-जहाँ जल होता है, वहाँ वनस्पित अवश्य होती है, इस दृष्टि से समस्त जलस्थानों में पर्याप्त बादरवनस्पितकायिक जीव होते हैं। उपपात की अपेक्षा से वे सर्वलोक में हैं, क्योंिक उनके स्वस्थान घनोदिध आदि हैं, उनमें शैवाल आदि बादरिनगोद के जीव होते हैं। सूक्ष्मिनगोद जीवों की भवस्थिति अन्तर्मुहूर्त की ही होती है, तत्पश्चात् वे बादर पर्याप्त-निगोदों में उत्पन्न होकर बदर निगोदपर्याप्त की आयु का वेदन करते हुए सुविशुद्ध ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से बादर पर्याप्तवनस्पितकायिक नाम पा लेते हैं; उपपात की अपेक्षा से (वे) समस्त काल और समस्त लोक को व्याप्त कर लेते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा से भी वे सर्वलोक में व्याप्त हैं; क्योंकि जब बादरिनगोद सूक्ष्मिनगोद-सम्बन्धी आयु का बन्ध करके और आयु के अन्त में मारणान्तिकसमुद्घात करके आत्मप्रदेशों को उत्पत्तिदेश तक फैलाते हैं, तब तक उनकी पर्याप्तबादरिनगोद की आयु क्षीण नहीं होती। अतएव वे उस समय भी बादर पर्याप्तिनगोद ही रहते हैं और समुद्घातावस्था में वे समस्तलोक में व्याप्त होते हैं। इस दृष्टि से कहा गया है कि बादर पर्याप्तवनस्पतिकायिक समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में व्याप्त होते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा से वे लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं, क्योंकि घनोदिध आदि पूर्वोक्त सभी स्थान मिल कर भी लोक के असंख्यातवें भागमात्र में ही हैं।^१

द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-सामान्य पंचेन्द्रियों के स्थानों की प्ररूपणा

१६३. किह णं भंते ! बेइंदियाणं पञ्जत्तगाऽपञ्जत्तगाणं ठाणा पन्नता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभागे १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खिरणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु विष्पणेसु दीवेसु समुद्देसु सळेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ णं बेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७८

उववाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१६३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं? [१६३ उ.] गौतम ! १. ऊर्ध्वलोक में—उसके एकदेशभाग में (वे) होते हैं, २. अधोलोक में-उसके एकदेशभाग में (होते हैं), ३. तिर्यग्लोक में-कुओं में, तालाबों में, निदयों में, हृदों में, वािपयों (बाविड़यों) में, पुष्किरिणयों में, दीिर्घकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरोवरों में, पंक्तिबद्ध सरोवरों में, सर-सर पंक्तियों में, बिलों में, पंक्तिबद्ध बिलों में, पर्वतीय जलप्रवाहों में, निर्झरों में, तलैयों में, पोखरों में, वप्रों (खेतों या क्यारियों) में, द्वीपों में, समुद्रों में और सभी जलाशयों में तथा समस्त जलस्थानों में द्वीन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं, समुद्घात की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।

१६४. किह णं भंते ! तेइंदियाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खिरणीसु दीहियासु गुंजािलयासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु विष्णिसु दीवेसु समुद्देसु सळ्येसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ णं तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णात्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्टाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१६४ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीवों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं?

[१६४ उ.] गौतम ! १. ऊर्ध्वलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), २. अधोलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), ३. तिर्यग्लोक में—कुंओं में, तालाबों में, निदयों में, हृदों में, वािपयों में, पंक्तिबद्ध सरोवरों में, सर-सर-पिक्तयों में, बिलों में, बिलपंक्तियों में, पर्वतीय जलप्रवाहों में, निर्झरों में, तलैयों (छोटे गड्ढों) में, पोखरों में, वप्रों (खेतों या क्यारियों) में, द्वीपों में, समुद्रों में और सभी जलाशयों में तथा समस्त जलस्थानों में, इन (सभी स्थानों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), समुद्घात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।

१६५. कहि णं भंते ! चउरिंदियाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु विष्णिमु दीवेसु समुद्देसु सळ्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३।

एत्थ णं चउरिंदियाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पन्नता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१६५ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं?

[१६५ उ.] गौतम ! १. (वे) उर्ध्वलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), २. अधोलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), ३. तिर्यग्लोक में—कूपों में, तालाबों में, निदयों में, हृदों में, वािपयों में, पुष्करिणियों में, दीिर्घकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरोवरों में, पंक्तिबद्ध सरोवरों में, सर-सरपंक्तियों में, बिलों में, पंक्तिबद्ध बिलों में, पर्वतीय जलस्रोतों में, झरनों में, छोटे गड्ढों में, पोखरों में, वप्रों (खेतों या क्यारियों) में, द्वीपों में, समुद्रों में और समस्त जलाशयों में तथा सभी जलस्थानों में (होते हैं)। इन (पूर्वोक्त सभी स्थलों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं)।

१६६. किह णं भंते! पंचिंदियाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा! उड्डलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु विष्पणेसु दीवेसु समुद्देसु सळेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ णं पंचेंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सद्वाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१६६ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं?

[१६६ उ.] गौतम! १. (वे) ऊर्ध्वलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), अधोलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), और ३. तिर्यग्लोक में—कुओं में, तालाबों में, निदयों में हृदों में, वािपयों में पुष्करिणियों में, दीिर्घकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरोवरों में, सरोवर-पंक्तियों में, सर-सरपंक्तियों में, बिलों में, बिलपंक्तियों में, पर्वतीय जलप्रवाहों में, झरनों में, छोटे गड्ढों में, पोखरों में, वप्रों में, द्वीपों में, समुद्रों में, और सभी जलाशयों तथा समस्त जलस्थानों में (होते हैं) । इन (सभी उपर्युक्त स्थलों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक पंचेन्द्रियों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), समुद्घात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं) और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं)।

विवेचन—द्वि-त्रि-चतु:-पंचेन्द्रिय जीवों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रों (सू. १६३ से १६६ तक) में क्रमश: द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सामान्य पंचेन्द्रिय जीवों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के स्थानों की प्ररूपणा की गई हैं।

द्वीन्द्रियादि जीवों के तीनों लोकों की दृष्टि से स्वस्थान-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सामान्य पंचेन्द्रिय, इन चारों के सूत्रपाठ एक समान हैं। ये सभी ऊर्ध्वलोक में उसके एकदेशभाग में—अर्थात्—मेरुपर्वत आदि की वापी आदि में होते हैं। अधोलोक में भी उसके एकदेशभाग में, अर्थात्—अधोलौकिक वापी, कूप तालाब आदि में होते हैं तथा तिर्यग्लोक में भी कूप तड़ाग, नदी आदि में होते हैं।

तथा पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार उपपात समुद्घात एवं स्वस्थान की अपेक्षा से द्वीन्द्रिय से सामान्य पंचेन्द्रिय तक के जीव लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।^१

नैरियकों के स्थानों की प्ररूपणा

१६७. किह णं भंते! नेरइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! नेरइया परिवसंति ?

गोयमा! सट्ठाणेणं सत्तस् पुढवीस्। तं जहा—रयणप्यभाए सक्करप्यभाए वालुयप्यभाए पंकप्यभाए धूमप्यभाए तमप्यभाए तमतमप्यभाए, एत्थ णं णेरइयाणं चउरासीति णिरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खायं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-णक्खत-जोइसपहा मेद-वसा-पूय-रुहिर-मंसचिक्खिल्लिल्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा; काऊअगणिवण्णभा कक्खडफासा दुरिहयासा असुभा णरगा असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं णेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७९

उववाएणं लोयस्स असंखेन्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेन्जइभागे, सट्टाणेणं लोयस्स असंखेन्जइभागे।

एत्थ णं बहवे णेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो!

ते णं तत्थ णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तिसया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१६७ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त नारकों के स्थान कहाँ, किस और कितने, तथा कैसे प्रदेश में कहे गए हैं ? नैरियक कहाँ निवास करते हैं ?

[१६७ उ.] गौतम! स्वस्थान की अपेक्षा से (वे) सात (नरक-) पृथ्वियों में रहते हैं। तथा इस प्रकार हैं—(१) रत्नप्रभा में, (२) शर्कराप्रभा में, (३) वालुकाप्रभा में, (४) पंकप्रभा में, (५) धूमप्रभा में, (६) तम:प्रभा में और (७) तमस्तम:प्रभा में। इन (सातों नरक-पृथ्वियों) में चौरासी लाख नरकावास होते हैं, वे नरक (नारकावास) अन्दर से गोल और बाहर से चोकौर (होते हैं), नीचे से छुरे के आकार (संस्थान) से युक्त (संस्थित) हैं। सतत् अन्धकार होने से गाढ़ अंधकार (से ग्रस्त होते हैं)। (वे नारकावास) ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित हैं। उनके तलभाग (फर्श) मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर (रक्त) और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त, अशुचि (गंदे), बीभत्स (घिनौने), अत्यन्त दुर्गन्धित, (धधकती) कापोत वर्ण की अग्नि जैसे रंग के, कठोरस्पर्श वाले, दु:सह एवं अशुभ नरक हैं। नरकों में अशुभ वेदनाएँ होती हैं। इन (ऐसे अशुभ नरकावासों) में पर्याप्त-अपर्याप्त नारकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असंख्यातवें भाग में, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में, इनमें (पूर्वोक्त नरकावासों में) बहुत-से नैरियक निवास करते हैं। हे आयुष्पन् श्रमणो! ये (नारक) काले, काली आभा वाले, (भयवश) गम्भीर रोमाञ्च वाले, भीम (भयानक), उत्कट त्रासजनक, तथा वर्ण (रंग) से अतीव काले कहे गए हैं।

वे (वहाँ) नित्य भीत (डरते), सदैव त्रस्त (परमाधार्मिक असुरों से परस्पर) त्रासित (त्रास पहुँचाए हुए), सदैव उद्विग्न (घबराए हुए) तथा नित्य अत्यन्त अशुभ, अपने नरक का भय प्रत्यक्ष अनुभव करते रहते हैं।

१६८. किह णं भंते! रयणप्यभापुडविणेरइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णता ? किह णं भंते! रयणप्यभापुढविणेरइया परिवसंति ?

गोयमा! इमीसे रयणप्यभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं रयणप्यभापुढविनेरइयाणं तीसं णिरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगय-गह-चंद-सूर-णक्खत्तजोइसप्पभा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्लिल्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा णरगा असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ ण रयणप्पभापुढविणेरइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, समुग्घातेणं लोयस्स असंखेजइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेजइभागे।

एत्थ णं बहवे रयणप्पभापुढिवनेरइया परिवसंति, काला कालोभासा गंभीरलोमहिरसा भीमा उत्तासणगा परमिकण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो!

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था तिसया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१६८ प्र.] भगवन् रत्नप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नारकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ निवास करते हैं ?

[१६८ उ.] गौतम! इस एक लाख अस्सी हजार योजन मोटाई वाली रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करने पर, तथा नीचे एक हजार योजन छोड़, कर, मध्य में एक लाख अठहत्तर हजार योजन (जगह) में, रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नारकावास होते हैं, ऐसा कहा गया है।

वे नरक अन्दर से गोल, बाहर से चौकोर और नीचे से छुरे के आकार से युक्त (संस्थित) हैं, वे नित्य घने अंधकार से ग्रस्त, ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित हैं। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त होते हैं। (अतएव) अशुचि (अपवित्र—गंदे), बीभत्स, अत्यन्त दुर्गन्धित, कापोतरंग की अग्नि के वर्ण-सदृश, कर्कश स्पर्श वाले, दु:सह तथा अशुभ नरक हैं। नरकों में अशुभ वेदनाएँ हैं। इनमें रत्नप्रभापृथ्वी के पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक नैरियकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

यहाँ रत्नप्रभापृथ्वी के बहुत-से नैरियक निवास करते हैं। (वे) काले, काली आभा वाले, (भयवश) गम्भीर रोमाञ्च वाले, भीम (भयंकर), उत्कट त्रासजनक और हे आयुष्पन् श्रमणो! वे वर्ण से अत्यन्त काले कहे गए हैं।

वे (वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदा (परमाधार्मिक असुरों द्वारा एवं परस्पर) त्रासित (त्रास पहुचाँए हुए), नित्य उद्विग्न (घबराये हुए), तथा सदैव अत्यन्त अशुभ (स्व-)सम्बद्ध, (लगातार) नरक का भय प्रत्यक्ष अनुभव करते रहते हैं।

१६९. किह णं भंते! सक्करप्पभापुढिविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! सक्करप्पभापुढिविनेरइया परिवसंति ?

गोयमा! सक्करप्पभाए पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उविरं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्टा वेगं जोयणसहस्सं विज्ञित्ता मञ्झे तीसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं सक्करप्पभापुढविणेरङ्याणं पणवीसं णिरयावाससयसहस्सा हवंतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगय-गह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसप्पहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्लिल्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरएसु वेयणाओ, एत्थ णं सक्करपभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, सट्ठाणेंणं लोयस्स असंखेजइभागे।

तत्थ णं बहवे सक्करप्पभापुढविणेरइया परिवसंति, काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमिकण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो!

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तिसता णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभय पच्चणुभवमाणां विहरंति।

[१६९ प्र.] भगवन्! शर्कराप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरियकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरियक कहाँ निवास करते हैं ?

[१६९ उ.] गौतम! एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटी शर्कराप्रभा पृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करने पर तथा नीचे भी एक हजार योजन छोड़ कर, मध्य में एक लाख, तीस हजार योजन (जगह) में, शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरियकों के पच्चीस लाख नारकावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे नरक अन्दर से गोल, बाहर से चौकोर और नीचे से छुरे के आकार से युक्त (संस्थित) हैं। वे नित्य घने अन्धकार से ग्रस्त, ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित हैं। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त होते हैं। (अतएव वे) अशुचि, बीभत्स (घृणास्पद) हैं, अथवा अपक्व गन्ध वाले हैं, घोर दुर्गन्ध से युक्त हैं, कापोत अग्नि के वर्ण-सदृश (धोंकी जाती हुई लोहाग्नि के समान नीली आभा वाले) हैं; उनका स्पर्श बड़ा कठोर होता है, (अतएव वे) नरक दु:सह और अशुभ हैं। नरकों की वेदनाएँ अशुभ हैं। (पूर्वोक्त नरकावासों) में शर्कराप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरियकों के (स्व-)स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में (और) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असख्यातवें भाग में हैं।

उनमें बहुत-से शर्कराप्रभापृथ्वी के नारक निवास करते हैं। (वे) काले, काली आभा वाले, अत्यन्त गम्भीर रोमाञ्चयुक्त, भयंकर, उत्कट त्रासजनक, तथा वर्ण से अत्यन्त काले कहे गए हैं।

हे आयुष्मन् श्रमणो! वे (नारक) वहाँ नित्य भयभीत, नित्य त्रस्त, तथा परमाधार्मिकों (द्वारा) सदैव त्रासित, सदा उद्विग्न (घबराए हुए) और नित्य अत्यन्त अशुभ तत्सम्बद्ध नरक के भय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए रहते हैं।

१७०. किह णं भते! वालुयप्पभापुढविनेरयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा! वालुयप्पभाए पुढवीए अट्ठावीसुत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उविरं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मञ्झे छव्वीसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं पण्णरस णिरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अंतो वट्ठा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगय-गह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसप्पहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्लिलित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरएसु वेदणाओ एत्थ णं वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णता।

उववाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, सट्ठाणेणं लोगस्स असंखेजइभागे।

तत्थ णं बहवे वालुयप्पभापुढिवनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमिकण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो।

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तिसता णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१७० प्र.] भगवन्! वालुकाप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरियकों के स्थान कहां कहे गए हैं? [१७० उ.] गौतम! एक लाख अट्ठाईस हजार योजन मोटी वालुकाप्रभापृथ्वी के ऊपर के एक हजार योजन अवगाहन (पार) करके अर्थात् नीचे, और नीचे से एक हजार योजन छोड़ कर बीच में एक लाख छव्वीस हजार योजन प्रदेश में, वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरियकों के पन्द्रह लाख नारकावास हैं, ऐसा कहा है।

वे नरक अन्दर से गोल, बाहर से चौरस और नीचे से छुरे के आकार से युक्त, नित्य गाढ़ अन्धकार से व्याप्त, ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित हैं। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद-पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त होते हैं; अतएव वे अशुचि (अपवित्र), बीभत्स, अतीव दुर्गन्धित, कापोत रंग की धधकती अग्नि के वर्णसदृश, दु:सह एवं अशुभ नरक हैं। उन नरकों में वेदनाएँ अशुभ हैं। इन (ऐसे नारकावासों) में वालुकाप्रभापृथ्वी के पर्याप्त एवं अपर्याप्त नारकों के स्थान कहे हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे नारकावास) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं); समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं); (और) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं)।

जिनमें बहुत-से वालुकाप्रभापृथ्वी के नारक निवास करते हैं। हे आयुष्पन् श्रमणो! वे काले, काली आभा वाले गम्भीर-लोमहर्षक, भीम, उत्कट त्रासजनक, वर्ण से अत्यन्त कृष्ण कहे हैं।

वे नारक (वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदा (परमाधार्मिक असुरों द्वारा) त्रास पहुँचाये हुए, नित्य उद्विग्न और सदैव परम अशुभ तत्सम्बद्ध नरकभय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए जीवनयापन करते हैं।

१७१. किह णं भंते! पंकप्पभापुढिविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा! पंकप्पभाए पुढवीए वीसुत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उविर एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हिट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वजेत्ता मन्झे अट्ठारसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं पंकप्पभापुढविनेरइयाणं दस णिरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगय-गह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसपहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्लिल्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं पंकप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेजइभागे। तत्थ णं बहवे पंकप्पभापुढविनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमिकण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो!

ते णं निच्चं भीता निच्चं तत्था निच्चं तिसया निच्चं उव्विग्गा निच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१७१ प्र.] भगवन्! पंकप्रभापृथ्वी के पर्याप्त एवं अपर्याप्त नैरियकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? [१७१ उ.] गौतम! एक लाख बीस हजार योजन मोटी पंकप्रभापृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन भाग अवगाहन (पार) करके और नीचे का एक हजार योजन भाग छोड़ कर, बीच के एक लाख अठारह हजार योजन प्रदेश में, पंकप्रभापृथ्वी के नैरियकों के दस लाख नरकावास हैं, ऐसा कहा है।

वे नरक(नारकावास) अन्दर से गोल, बाहर से चौरस और नीचे से छुरे के आकार से युक्त, सदा अन्धकार से व्याप्त; ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित; मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त तलवाले, अपवित्र, बीभत्स, अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त, कापोतरंग की (धधकती) अग्नि के वर्ण-सदृश, कठोरस्पर्शयुक्त हैं अतएव अत्यन्त दुःसह एवं अशुभ हैं। उन नरकों में अशुभ वेदनाएँ होती हैं; जहाँ कि पंकप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नारकों के स्थान बताए गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे नरकावास) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं); समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं) और स्वस्थान की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं); जहाँ पंकप्रभापृथ्वी के बहुत-से नैरियक निवास करते हैं; जो काले, काली प्रभावाले, गम्भीर रोमहर्षक, भयंकर, उत्त्रासजनक एवं परमकृष्णवर्ण के कहे गए हैं।

हे आयुष्मन् श्रमणो! वे नारक (वहाँ) सदैव भयभीत, सदा त्रस्त, नित्य परस्पर त्रासित, नित्य उद्विग्न और सदैव सम्बद्ध (निरन्तर) अतीव अशुभ नरकीय वेदना का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए रहते हैं।

१७२. किह णं भंते! धूमप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णता ?

गोयमा! धूमप्पभाए पुढवीए अट्ठारसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्सं अोगाहित्ता हिट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे सोलसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं धूमप्पभा पुढविनेरइयाणं तिन्नि निरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगय-गह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसपहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्लिल्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्कडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं धूमप्पभापुढविनेरइयाणं पजत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेजइभागे। तत्थ णं बहवे धूमप्पभापुढविनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमिकण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो!

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तिसया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१७२ प्र.] भगवन्! धूमप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरियकों के स्थान कहाँ (किस प्रदेश में) कहे हैं?

[१७२ उ.] गौतम! एक लाख अठारह हजार योजन मोटी धूमप्रभापृथ्वी के ऊपर के एक हजार योजन को अवगाहन (पार) करके, नीचे के एक हजार योजन (क्षेत्र) को छोड़ कर बीच के एक लाख सोलह हजार योजन प्रदेश में, धूम्रभापृथ्वी के नारकों के तीन लाख नारकावास हैं, ऐसा कहा है।

वे नरक (नारकावास) भीतर से गोल और बाहर से चौकोर हैं, नीचे से छुरे के-से आकार के तीक्ष्ण हैं, (वे) सदैव गाढ अन्धकार से (पूर्ण रहते हैं); वे ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से दूर हैं। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त होते हैं। अत: वे नरक अत्यन्त अपवित्र, बीभत्स, अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त, कापोत रंग की जाज्वल्यमान अग्नि के वर्ण के समान, कठोरस्पर्श वाले, दु:सह एवं अशुभ हैं। उन नरकों में अशुभ वेदनाएँ हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, (तथा) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, जहाँ उन (नरकावासों) में धूमप्रभापृथ्वी के बहुत-से नैरियक रहते हैं, जो काले, काली कान्तिवाले, गम्भीर रोमाञ्चकारी, भयानक, उत्त्रासदायक, वर्ण से परम कृष्ण कहे गए हैं।

हे आयुष्मन् श्रमणो! वे (नारक वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदैव परस्पर त्रासित, नित्य उद्विग्न और सदैव अविच्छिन्नरूप से परम अशुभ नरकभय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए जीवनयापन करते हैं।

१७३. किह णं भंते! तमप्पभापुढिवनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा! तमप्पभाए पुढवीए सोलसुत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उविर एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हिट्ठा वि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे चोद्दसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं तमप्पभापुढविनेरइयाणं एगे पंचूणे णरगावाससतसहस्से हवंतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता निच्चंधयारतमसा ववगय-गह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसपहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्लिलित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा कक्खडफासा दुरिहयासा असुभा णरगा असुभा नरगेसु वेदणाओ, एत्थ णं तमप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेजइभागे समुग्घाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेजइभागे। तत्थ णं बहवे तमप्पभापुढविणेरइया परिवसंति।

काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमिकण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो!

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तिसया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं नरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१७३ प्र.] भगवन्! तम:प्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरियकों के स्थान कहाँ कहे हैं ?

[१७३ उ.] गौतम! एक लाख सोलह हजार योजन मोटी तम:प्रभापृथ्वी के ऊपर का एक हजार योजन (प्रदेश) अवगाहन (पार) करके और नीचे का एक हजार योजन (प्रदेश) छोड़कर मध्य में एक लाख चौदह हजार योजन (प्रदेश) में, वहाँ तम: प्रभापृथ्वी के नैरियकों के पांच कम एक लाख नारकावास हैं. ऐसा कहा गया है।

वे नरक (नारकावास) भीतर से गोल, बाहर से चौरस और नीचे से छुरे के (आकार के से तीक्ष्ण) संस्थान से युक्त हैं। वे सदैव (घने) अंधेरे से (भरे होते हैं,) वे ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों के प्रकाश से वंचित हैं, उनके तल मेद, वसा, मवाद की मोटी परत, रक्त और मांस के कीचड़ के लेप से लिए रहते हैं, अतएव वे अपवित्र, बीभत्स, अतिदुर्गन्धित, कर्कश स्पर्शयुक्त, दुःसह

एवं अशुभ या सुखरहित (असुख) नरक हैं; इन नरकों में अशुभ वेदनाएँ होती हैं। इन (नरकावासों) में तम:प्रभापृथ्वी के पर्याप्त एवं अपर्याप्त नारकों के स्थान कहे हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे नरकावास) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं); समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं); और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं); जहाँ कि बहुत-से तम:प्रभापृथ्वी के नैरियक निवास करते हैं।

(वे नैरियक) काले, काली प्रभा वाले, गम्भीरलोमहर्षक, भयानक, उत्त्रासदायक, वर्ण से अतीव कृष्ण कहे गए हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! वे (वहाँ) सदैव भयभीत, सदैव त्रस्त, नित्य त्रासित, सदैव उद्विग्न, नित्य परम अशुभ तत्सम्बद्ध नरकभय का सतत प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए रहते हैं।

१७४. किह णं भंतें! तमतमापुढिविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा! तमतमाए पुढवीए अट्टोत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता हिट्ठा वि अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साई वज्जेत्ता मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु, एत्थ णं तमतमापुढविनेरइयाणं पजत्ताऽपज्जत्ताणं पंचदिसिं पंच अणुत्तरा महडमहालया महाणिरया पण्णत्ता, तं जहा—

काले १ महाकाले २ रोरुइ ३ महारोरुए ४ अपइट्ठाणे ५।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता निच्चंधयारतमसा ववगय-गह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसपहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसिचक्खल्लिल्ताणुलेवणतला असुई वीसा परम-दुब्भिगंधा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं तमतमापुढविनेरइयाणं पज्जताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेजइभागे।

तत्थ णं बहवे तमतमापुढिविनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणया परमिकण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो!

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तिसया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

> आसीतं १ बत्तींस २ अट्ठावीसं च होइ ३ वीस च ४। अट्ठारस ५ सोलसंग ६ अट्ठुत्तरमेव ७ हिट्ठिमया॥ १३३॥ अडहुत्तरं च १ तीसं २ छव्वीसं चेव सतसहस्सं तु ५। अट्ठारस ४ सोलसगं ५ चोहसमहियं तु छट्ठीए ६॥ १३४॥ अद्धतिवण्णसहस्सा उविरमऽहे विज्ञिकण तो भिणयं। मज्झे उ तिस् सहस्सेस् होंति नरगा तमतमाए ७॥ १३५॥

तीसा य १ पण्णवीसा २ पण्णरस ३ दसेव सयसहस्साइं ४। तिण्णि य ५ पंचूणोगं ६ पंचेव अणुत्तरा नरगा ७॥ १३६॥

[१७४ प्र.] भगवन्! तमस्तमपृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरियकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? [१७४ उ.] गौतम! एक लाख, आठ हजार मोटी तमस्तमपृथ्वी के ऊपर के साढ़े बावन हजार योजन (प्रदेश) को अवगाहन (पार) करके तथा नीचे के भी साढ़े बावन हजार योजन (प्रदेश) को छोड़कर बीच के तीन हजार योजन (प्रदेश) में, तमस्तमप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नारकों के पांच दिशाओं में पांच अनुत्तर, अत्यन्त विस्तृत महान् महानिरय (बड़े-बड़े नरकावास) कहे गए है। वे इस प्रकार हैं—(१) काल, (२) महाकाल, (३) रौरव, (४) महारौरव और (५) अप्रतिष्ठान।

वे नरक (नारकावास) अन्दर से गोल और बाहर से चौरस हैं, नीचे से छुरे के समान तीक्ष्ण-संस्थान ये युक्त हैं। वे नित्य अन्धकार से आवृत्त रहते हैं; वहाँ ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा नहीं है। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिस रहते हैं। अतएव वे अपवित्र, घृणित, अतिदुर्गन्धित, कठोरस्पर्शयुक्त, दु:सह एवं अशुभ (अनिष्ट) नारक (नारकावास) हैं। उन नरकों में अशुभ वेदनाएँ होती हैं। यहीं तमस्तम:प्रभापृथ्वी के पर्याप्त नारकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे नारकावास) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं तथा स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

हे आयुष्पन् श्रमणो! इन्हीं (पूर्वोक्त स्थलों) में तमस्तम:पृथ्वी के बहुत-से नैरियक निवास करते हैं; जो कि काले, काली प्रभा वाले, (भयंकर) गंभीररोमाञ्चकारी, भयंकर, उत्कृष्ट त्रासदायक (आतंक उत्पन्न करने वाले), वर्ण से अत्यन्त काले कहे हैं।

वे (नारक वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदैव परस्पर त्रास पहुंचाये हुए, नित्य (दु:ख से) उद्विग्न, तथा सदैव अत्यन्त अनिष्ठ तत्सम्बद्ध नरकभय का सतत साक्षात् अनुभव करते हुए जीवनयापन करते हैं।

[संग्रहणी गाथाओं का अर्थ—] (नरकपृथ्वियों की क्रमश: मोटाई एक लाख से ऊपर की संख्या में)—१. अस्सी (हजार), २. बत्तीस (हजार), ३, अट्टाईस (हजार) ४. बीस (हजार), ५. अठारह (हजार), ६. सोलह (हजार) और ७. सबसे निचली की आठ (हजार), (सबक़े 'योजन' शब्द जोड देना चाहिए)॥१३३॥

(नारकावासों का भूमिभाग—) (ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर छठी नरक तक; एक लाख से ऊपर की संख्या में)—१. अठत्तर (हजार), २. तीस (हजार), ३. छव्वीस (हजार), ४. अठारह (हजार) ५. सोलह (हजार), और ६. छठी नरकपृथ्वी में—चौदह (हजार) ये सब एक लाख योजन से ऊपर (की संख्याएँ) हैं। और ७. सातर्वी तमस्तमा नरकपृथ्वी में ऊपर और नीचे साढ़े बावन-हजार छोड़कर मध्य में तीन हजार योजनों में नरक (नारकावास) होते हैं, ऐसा कहा है॥ १३४- १३५॥

(नारकावासों की संख्या) (छठी नरक तक लाख की संख्या में)—१. (प्रथम पृथ्वी में) तीस (लाख), २. (दूसरी में) पच्चीस (लाख), ३. (तीसरी में) पन्द्रह (लाख), ४. (चौथी पृथ्वी में) दस लाख, ५. (पांचवीं में) तीन (लाख), तथा ६. (छठी पृथ्वी में) पाँच कम एक (लाख) और ७. सातवीं नरकपृथ्वी में) केवल पांच ही अनुत्तर नरक (नारकावास) हैं॥१३६॥

विवेचन—नैरियकों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. १६७ ये १७४) में सामान्य नैरियकों तथा तत्पश्चात् क्रमश: पृथक्-पृथक् सातों नरकों के नैरियकों के स्थानों की संख्या तथा उन स्थानों के स्वरूप एवं उन स्थानों में रहने वाले नारकों की प्रकृति एवं परिस्थिति पर प्रकाश डाला गया है। आठों सूत्रों में उल्लिखित निरूपण कुछ बातों को छोड़ कर प्राय: एक सरीखा है।

नारकावासों की संख्या—सातों नरकों के नारकावासों की कुल मिला कर ८४ लाख संख्या होती है; जिसका विवरण संग्रहणी गाथाओं में दिया गया है। इसके अतिरिक्त नारक कहाँ (किस प्रदेश में) रहते हैं?, इसका विवरण भी पूर्वोक्त संग्रहणी गाथाओं में दिया है, जैसे कि—१ हजार योजन ऊपर और १ हजार योजन नीचे छोड़ कर बीच के एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रदेश में प्रथम पृथ्वी के नारक रहते हैं; इत्यादि। सातों पृथ्वियों के नारकों के स्थानादि का वर्णन प्राय: समान है।

नारकावासों की भूमि — नारकावासों का भूमितल कंकरीला होने पर भी नारकों के पैर रखने पर कंकड़ों का स्पर्श ऐसा लगता है, मानों छुरे से पैर कट गए हों। उनमें प्रकाश का अभाव होने से सदैव गाढ़ अन्धकार व्याप्त रहता है। बादलों से आच्छादित काली घोर रात्रि की तरह वहाँ सदैव अन्धकार रहता है; क्योंकि प्रकाशक ग्रह-सूर्य-चन्द्रादि का या उनकी प्रभा का वहाँ अभाव है। वहाँ मेद, चर्बी, मवाद, रक्त, मांस आदि दुर्गन्धित वस्तुओं के कीचड़ से भूमितल व्याप्त रहता है, इसलिए वे नरकावास सदैव गन्दे, घृणित या दुर्गन्धियुक्त रहते हैं। मरी हुई गाय, भैंस आदि के कलेवरों की-सी दुर्गन्ध से भी अत्यन्त अनिष्ट घोर दुर्गन्ध वहाँ रहती है। धौंकनी से लोहे को खूब धौंकने पर जैसे गहरे नीले रंग की (कपोत के रंग-जैसी) ज्वाला निकलती है, वैसी ही आभा वाले नारकावास होते हैं, क्योंकि नारकों के उत्पत्तिस्थान को छोड़ कर वे सर्वत्र उष्ण होते हैं। यह कथन छठी-सातर्वी पृथ्वी के सिवाय अन्य पृथ्वियों के विषय में समझना चाहिए। आगे कहा जायेगा कि छठी और सावर्ती नरक के नारकावास कापोतवर्ण की अग्नि के वर्ण-सदृश नहीं होते। उन नारकावासों का स्पर्श तलवार की धार के समान अतीव कर्कश और दुःसह होता है। वे देखने में भी अत्यन्त अशुभ होते हैं। उन नरकों की वेदनाएँ भी दुःसह शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श के कारण अतीव अशुभ या असुखकर होती हैं।

१. देखिये संग्रहणी गाथाएँ—पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण) भा. १ पृ. ५४-५५

नारकों की शरीररचना, प्रकृति और परिस्थित — वे रंग के काले-कलूटे और भयंकर होते हैं। उनके शरीर से काली प्रभा निकलती है। उनको देखने मात्र से रोमांच हो जाता है, अथवा वे दूसरे नारकों में अत्यन्त भय उत्पन्न करके रोमांच खड़ा कर देते हैं। इस कारण वे अत्यन्त आतंक पैदा करते रहते हैं। तथा वे सदैव भयभीत, त्रस्त, आतंकित, उद्विग्न रहते हैं, तथा सतत अनिष्ट नरकभय का अनुभव करते रहते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के स्थानों की प्ररूपणा

१७५. कहि णं भंते! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए१, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु पल्ललेसु चिल्ललेसु विष्पणेसु दीवेसु समुद्देसु सब्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ णं पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, सद्वाणेणं लोयसस असंखेजइभागे।

[१७५ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त पंचेन्द्रियितयँचों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं? [१७५ उ.] गौतम! १. ऊर्ध्वलोक में उसके एकदेशभाग में, २. अधोलोक में उसके एकदेशभाग में, ३. तिर्यग्लोक में कुओं में, तालाबों में निदयों में, वािपयों में, द्रहों में, पुष्किरिणियों में, दीिर्घकाओं में, गुंजािलकाओं में, सरोवरों में, पंक्तिबद्ध सरोवरों में, सर-सर पंक्तियों में, बिलों में, पंक्तिबद्ध बिलों में, पर्वतीय जलस्रोतों में, झरनों में, छोटे गड्ढो में, पोखरों में, क्यारियों अथवा खेतों में, द्वीपों में, समुद्रों में तथा सभी जलाशयों एव जल के स्थानों में; इन (सभी पूर्वोक्त स्थलों) में पंचेन्दियितर्यञ्चों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) वे लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

विवेचन — पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के स्थानों की प्ररूपणा — प्रस्तुत सूत्र (सू. १७५) में पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तों के स्थानों की प्ररूपणा की गई है। इसमें प्रयुक्त शब्दों का स्पष्टीकरण पहले किया जा चुका है।

मनुष्यों के स्थानों की प्ररूपणा

१७६. किह णं भंते! मणुस्साणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? गोयमा! अंतोमणुस्सखेत्ते पणतालीसाए जोयणसतसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ८०-८१ का सारांश

पण्णरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णाए अंतरदीवेसु, एत्थ णं मणुस्साणं पजनाऽपजनाणं ठाणा पण्णता।

उववाएणं लोयस्स असंखेजइभागे, समुग्घाएणं सळ्लोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेजइभागे। [१७६ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्यों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं?

[१७६ उ.] गौतम! मनुष्यक्षेत्र के अन्दर पैंतालीस लाख योजनों में, ढाई द्वीप-समुद्रों में, पन्द्रह कर्मभूमियों में, तीस अकर्मभूमियों में और छप्पन अन्तर्द्वीपों में; इन स्थलों में पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्यों के स्थान कहे गए हैं। उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

विवेचन—मनुष्यों के स्थानों की प्ररूपणा — प्रस्तुत सूत्र (सू. १७६) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक मनुष्यों के स्थानों की प्ररूपणा की गई है।

समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में — समुद्घात की अपेक्षा से पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्य सर्वलोक में होते हैं, यह कथन केवलिसमुद्घात की अपेक्षा से सम्भव है।

सर्व भवनवासी देवों के स्थानों की प्ररूपणा

१७७. किह णं भंते! भवणवासीणं देवाणं पञ्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! भवणवासी देवा परिवसंति ?

गोयमा! इमीसे रयणप्यभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उविर एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेता मिज्जमअट्टहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं सत्त भवणकोडीओ बावत्तरि च भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं भवणा बाहि वट्टा अंतो समचउंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किण्णंतरविउल गंभीरखात-परिहा पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवारदेसभागा जंत-सयिग्य-मुसल-मुसंढिपरियरिया अउज्झा सदाजता सदागुत्ता अडयालकोट्टगरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवाकिंकरामरदंडोवरिक्खया लाउल्लोइयमिह्या गोसीस-सरसरत्तचंदणदहरिएणपंचंगुलितला उवचियचंदणकलसा चंदणघडसुकततोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारिय-मल्लदामकलावा पंचवणणसरससुरहिमुक्कपुष्फपुंजोवयारकिलया कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूवमघ-मघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधवरगंधगंधिया गंधवट्टिभूता अच्छरगणसंघसंविगिण्णा दिव्वतुडितसहसंपणदिता सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्टा णीरया णिम्मला निप्यंका निक्कंकडच्छाया सप्पहा सिस्सिरिया समिरया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्ञा अभिरूवा पडिरुवा, एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं पजताऽपजताणं ठाणा पण्णत्ता।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ८४

२. ग्रन्थाग्रम् १०००

उववाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे भवणवासी देवा परिवसंति। तं जहा—

असुरा १ नाग २ सुवण्णा ३ विज्जू ४ अग्गी य ५ दीव ६ उदही य ७। दिसि ८ पवण ९ थणिय १० नामा दसहा एए भवणवासी॥ १३७॥

चूडामणिमउडरयण १-भूसणिनउत्तणागफड २-गरुल ३-वइर ४-पुण्णकलसविउप्फेस ५-सीह ६-मगर ७-गयअंक ८-हयवर १-वद्धमाण १०-निज्जुत्तचित्तचिंधगता सुरूवा मिहड्डीया महज्जुतीया महायसा महब्बला महाणुभागा महासोक्खा हारिवराइयवच्छा कडग-तुडियथंभियभुया अंगद-कुंडल-मट्ट-गंडतल कण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमाला-मउलीमउडा कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेण फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्डीए दिव्वाए जुतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेण तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा।

ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसगाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अग्गमिहसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं अणियाणं साणं अणियाहिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महत्ताहतनट्ट-गीत-वाइततंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुयंग-पडुप्पवाइयरवेण दिव्वाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१७७ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त भवनवासी देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भवनवासी देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१७७ उ.] गौतम! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन (प्रदेश) अवगाहन (पार) करके और नीचे भी एक हजार योजन छोड़ कर बीच में एक लाख अठहत्तर हजार योजन में भवनवासी देवों के सात करोड़, बहत्तर लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे भवन बाहर से गोल और भीतर से समचतुरस्न (चौकोर), तथा नीचे पुष्कर (कमल) की किणिका के आकार के हैं। (उन भवनों के चारों ओर) गहरी और विस्तीर्ण खाइयाँ और पिरखाएँ खुदी हुई होती हैं, जिनका अन्तर स्पष्ट (प्रतीत होता) है। (यथास्थान) प्राकारों (परकोटों), अटारियों, कपाटों, तोरणों और प्रतिद्वारों से (वे भवन) सुशोभित हैं। (तथा वे भवन) विविध यन्त्रों व शतिष्वयों (महाशिलाओं या महायिष्टयों), मूसलों, मुसुण्ढी नामक शस्त्रों से चारों और वेष्टित (धिरे हुए) होते हैं; तथा वे शत्रुओं द्वारा अयोध्य (युद्ध न कर सकने योग्य), सदाजय (सदैव जयशील), सदागुप्त (सदैव सुरिक्षत) एवं अड़तालीस कोठों (प्रकोष्टों — कमरों) से रिचत, अड़तालीस वनमालाओं से सुसिण्जत, क्षेममय

(उपद्रवरिहत), शिव (मंगल) मय किंकरदेवों के दण्डों से उपरिक्षित हैं। (गोबर आदि से) लीपने और (चूने आदि से) पोतने के कारण (वे भवन) प्रशस्त रहते हैं। (उन भवनों पर) गोशीर्षचन्दन और सरस रक्तचन्दन से (लिप्त) पांचों अंगुलियों (वाले हाथ) से छापे लगे होते हैं। (यथास्थान) चन्दन के कलश (मांगल्यघट) रखे होते हैं। उनके तोरण और प्रतिद्वारदेश के भाग चन्दन के घड़ों से सुशोभित (सुकृत) होते हैं। (वे भवन) ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एवं गोलाकार पृष्पमालाओं के कलाप से युक्त होते हैं; तथा पंचरंगे ताजे सरस सुगन्धित पृष्पों के उपचार से भी युक्त होते हैं। वे काले अगर, श्रेष्ठ चीड़ा, लोबान तथा धूप की महकती हुई सुगन्ध से रमणीय, उत्तम सुगन्धित होने से गंधवट्टी के समान लगते हैं। वे अप्सरागण के संघों से व्याप्त, दिव्य वाद्यों के शब्दों से भलीभांति शब्दायमान, सर्वरत्नमय, स्वच्छ, चिकने (स्निग्ध), कोमल, घिसे हुए, पौंछे हुए रज से रहित, निर्मल, निष्मंक, आवरणरिहत कान्ति (छाया) वाले, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, किरणों से युक्त, उद्योतयुक्त (शीतल प्रकाश से युक्त), प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप (अतिरमणीय) एवं सुरूप होते हैं। इन (पूर्वोक्त विशेषताओं से युक्त भवनों) में पर्याप्त और अपर्याप्त भवनवासी देवों के स्थान कहे गए हैं।

(वे) उपपात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं; समुद्धात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ बहुत-से भवनवासी देव निवास करते हैं। वे इस प्रकार हैं —

[गाथार्थ—] १-असुरकुमार, २-नागकुमार, ३-सुप(व)र्णकुमार, ४-विद्युत्कुमार, ५-अग्निकुमार, ६-द्वीपकुमार, ७-उद्धिकुमार, ८-दिशाकुमार, ९-पवनकुमार और १०-स्तनितकुमार; इन नामों वाले दस प्रकार के ये भवनवासी देव हैं॥ १३७॥

इनके मुकुट या आभूषणों में अंकित चिह्न क्रमश: इस प्रकार हैं —(१) चूडामणि, (२) नाग का फन, (३) गरुड़, (४) वज्र, (५) पूर्णकलश चिह्न से अंकित मुकुट, (६) सिंह, (७) मकर (मगरमच्छ), (८) हस्ती का चिह्न, (९) श्रेष्ठ अश्व और (१०) वर्द्धमानक (शरावसम्पुट — सकोरा), इनसे युक्त विचित्र चिह्नों वाले, सुरूप, महर्द्धिक (महती ऋद्धि वाले) महाद्युति (कान्ति) वाले, महान् बलशाली, महायशस्वी, महान् अनुभाग (अनुभाव— प्रभाव या शापानुग्रहसामर्थ्य) वाले, महान् (अतीव) सुख वाले, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, कड़ों श्रीर बाजूबन्दों से स्तम्भित भुजा वाले, कपोलों को चिकने बनाने वाले अंगद, कुण्डल तथा कर्णपीठ के धारक, हाथों में विचित्र (नानारूप) आभूषण वाले, विचित्र पुष्पमाला और मस्तक पर मुकुट धारण किये हुए, कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठमाला और अनुलेपन के धारक, देदीप्यमान शरीर वाले, लम्बी वनमाला के धारक तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान (आकृति) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति (कान्ति) से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (शोभा) से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से एवं दिव्य लेश्या से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए, सुशोभित करते हुए वे (भवनवासी देव) वहां

अपने-अपने लाखों भवनावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिकदेवों का, अपने-अपने त्रायस्त्रिश देवों का, अपने-अपने लोकपालों का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदाओं का, अपने-अपने सेनाधिपितयों का, अपने-अपने आत्मरक्षक देवों का, तथा अन्य बहुत-से भवनवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य (अग्रेसरत्व), स्वामित्व (नायकत्व), भर्तृत्व (पोषकत्व), महत्तरत्व (महानता), आज्ञैश्वरत्व (अपनी आज्ञा का पालन करने का प्रभुत्व), एवं सेनापितत्व (अपनी सेना को आज्ञा पालन कराने का प्राधान्य) करते-कराते हुए तथा पालन करते-कराते हुए, अहत (अव्याहत—व्याघात रहित अथवा आहत-आख्यानकों से प्रतिबद्ध) नृत्य, गीत, वादित, एवं तंत्री, तल, ताल (कांसा), त्रुटित (वाद्य) और घनमृदंग बजाने से उत्पन्न महाध्विन के साथ दिव्य एवं उपभोग्य भोगों को भोगते हुए विचरते हैं।

१७८. [१] किह णं भंते! असुरकुमाराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा! इमीसे रयणप्यभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उविरं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता-हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं चोविंद्वं भवणावाससतसहस्सा हवंतीति मक्खायं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किण्णंतरविउलगंभीरखाय-पिरहा पागार-ट्टालय-कवाड-तोरण-पिडदुवारदेसभागा जंतसयिग्ध-मुसलमुसुंढिपियिरिया अओज्झा सदाजया सदागुत्ता अडयालकोट्टगरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा
किंकरामरदंडोवरिक्खया लाउल्लोइयमिहया गोसीस-सरसरत्तचंदणदहर-दिण्णपंचंगुिलतला
उविवतचंदणकलसा चंदणधडसुकयतोरणपिडदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउल-वट्टवग्धारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरससुरिभमुक्कपुष्फपुंजोवयारकिलया कालागरु-पवरकुं दुरुक्कतुरुक्कधूवमधमधंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधवरगंधगंधिया गंधविट्टभूता अच्छरगणसंघसंविगिण्णा
दिव्वतुडितसहसंपिदया सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्टा णीरया निम्मला निष्यंका
णिक्कंकडच्छाया सष्यभा समरीया सउन्जोया पासाईया दिरसिणिन्जा अभिरूवा पिडरूवा, एत्थ
णं असुरकुमाराणं देवाणं पन्जत्तऽपन्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्टाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे असुरकुमारा देवा परिवसंति, काला लाोहियक्ख-बिंबोट्ठा धवलपुप्फदंता असियकेसा वामेयकुंडलधरा अद्द्वंदणाणुलित्तगत्ता, ईसीसिलिंधपुप्फपगासाई असंकिलिट्ठाइं सुहुमाइं वत्थाइं पवरपरिहिया, वयं च पढमं समझक्कंता, बिइयं च असंपत्ता, भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा, तलभंगय-तुडित-पवरभूसण-निम्मलमणि-रयणमंडितभुया दसमुद्दामंडियग्गहत्था चूडामणि-

चित्तचिंधगता सुरूवा मिहङ्कीया महज्जुइया महायसा महब्बला महाणुभागा महासोक्खा हारिवराइयवच्छा कडय-तुडियथंभियभुया अंगय-कुंडल-महुगंडयलकणणपीढधारी विचित्त-हत्थाभरणा विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थ-पिरिहया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं संठाणेणं दिव्वाए इङ्कीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा। ते ण तत्थ साणं साणं भवणावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं अग्गमिहसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाणं य अणियाणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भिट्टतं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महताऽहतणट्ट-गीत-वाइयतंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुइंगपडुप्यवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१७८-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? असुरकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१७८-१ उ.] गौतम! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करके और नीचे एक हजार योजन (प्रदेश) छोड़ कर, बीच में (स्थित) जो एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश है,) वहाँ असुरकुमारदेवों के चौंसठ लाख भवन-आवास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल, अंदर से चौरस (चौकोर), और नीचे से पुष्कर-(नील-कमल) किर्णिका के आकार में संस्थित हैं। (उन भवनों के चारों ओर) गहरी और विस्तीर्ण खाइयाँ और पिरखाएँ खुदी हुई हैं; जिनका अन्तर स्पष्ट (प्रतीत होता) है। (यथास्थान) प्राकारों (परकोटों), अटारियों, कपाटों, तोरणों और प्रतिद्वारों से भवनों के एकदेशभाग सुशोभित होते हैं, (तथा वे भवन) यंत्रों, शतिष्नयों (महाशिलाओं या महायष्टियों), मूसलों और मुसुण्ढी नामक शस्त्रों से (चारों ओर से) वेष्टित (घिरे हुए) होते हैं; तथा शत्रुओं द्वारा अयोध्य (युद्ध न कर सकने योग्य), सदाजय, सदागुस (सदैव सुरिक्षत) तथा अड़तालीस कोठों से रिचत, अड़तालीस वनमालाओं से सुसिज्जित, क्षेममय, शिवमय, किंकर-देवी के दण्डों से उपरिक्षत हैं। (गोबर आदि से) लीपने और (चूने आदि से) पोतने के कारण (वे भवन) प्रशस्त रहते हैं। (उन भवनों पर (गोशीर्षचन्दन और सरस रक्तचन्दन से (लिप्त) पांचों अंगुिलयों (वाले हाथ) के छापे लगे होते हैं; (यथास्थान) चन्दन के (मांगल्य) कलश रखे होते हैं। उनके तोरण और प्रतिद्वारदेश के भाग चन्दन के घड़ों से सुशोभित (सुकृत) होते हैं। (वे भवन) ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एवं गोलाकार पुष्पमालाओं के समूह से युक्त होते हैं; तथ़ा

पंचरंगे ताजे सरस सुगन्धित पुष्पों के द्वारा उपचार से भी युक्त होते हैं। (वे भवन) काले अगर, श्रेष्ठ चीड़ा, लोबान तथा धूप की महकती हुई सुगन्ध से रमणीय, उत्तम सुगन्ध से सुगन्धित, गन्धवट्टी (अगरबत्ती) के समान लगते हैं। (वे भवन) अप्सरागण के संघों से व्याप्त, दिव्य वाद्यों के शब्दों से शब्दायमान, सर्वरत्नमय, स्वच्छ, (स्निध), कोमल, घिसे हुए, पौंछे हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पंक (कलंकरहित), आवरणरहित-कान्तिमान्, प्रभायुक्त, श्रीरप्पन्न, किरणों से युक्त, उद्योतयुक्त (प्रकाशमान), प्रसन्नता (आह्वाद) उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप (अतिरमणीय) एवं प्रतिरूप (सुन्दर) होते हैं। इन (पूर्वोक्त विशेषताओं से युक्त भवनावासों) में पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान कहे गए हैं।

(वे) उपपात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं; समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं (और) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भग में (वे) हैं।

उन (पूर्वोक्त स्थानों) में बहुत-से असुरकुमार देव निवास करते हैं। (वे असुरकुमार देव) काले, लोहिताक्षरत्न तथा बिम्बफल के समान ओठों वाले, श्वेत (धवल) पुष्पों के समान दांतों तथा काले केशों वाले, बाएँ एक कुण्डल के धारक, गीले चन्दन से लिप्त शरीर (गात्र) वाले, शिलिन्धपुष्प के समान थोड़े-से प्रकाशमान (किञ्चत् रक्त) तथा संक्लेश उत्पन्न न करने वाले सूक्ष्म अतीव उत्तम वस्त्र वाले, प्रथम (कौमार्य) वय को पार किये हुए (कुमारावस्था के किनारे पहुँचे हुए) और द्वितीय वय को असंप्राप्त (प्राप्त नहीं किए हुए) (अतएव) भद्र (अतिप्रशस्त) यौवन से वर्तमान होते हैं। (तथा वें) तलभंगक (भुजा का आभूषणविशेष) त्रुटित (बाहुरक्षक) एवं अन्यान्य श्रेष्ठ आभूषणों में जटित निर्मल मणियों तथा रत्नों से मण्डित भुजाओं वाले, दस मुद्रिकाओं (अंगूठियों) से सुशोभित अग्रहस्त (अंगुलियों) वाले, चडमणिरूप अद्भृत चिह्न वाले, सुरूप, महद्धिक, महाद्युतिमान, महायशस्वी, महाबली, महानुभाग (सामर्थ्य) युक्त, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, कड़ों और बाजूबंदों से स्तम्भित भुजा वाले, अंगद एवं कुण्डल से चिकने कपोल वाले तथा कर्णपीठ के धारक, हाथों में विचित्र आभराण वाले, विचित्र पुष्पमाला मस्तक में धारण किए हुए, कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन के धारक देदीप्यमान (चमकते हुए) शरीर वाले, लम्बी वनमाला के धारक तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान (शरीर के डीलडौल) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (कान्ति) से, दिय अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से और दिव्व लेश्या से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए, सुशोभित करते हुए वे (भवनवासी देव) वहाँ अपने-अपने लाखों भवनावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिक देवों का, अपने-अपने त्रायस्त्रिश देवों का अपने-अपने लोकपालों का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सैन्याधिपतिदेवों का, अपने-अपने आत्मरक्षकदेवों का तथा और भी अन्य बहुत से भवनवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य (अग्रेसरत्व), स्वामित्व (नेतृत्व), भर्तृत्व (पोषणाकर्तृत्व), महत्तरत्व (महानता), आज्ञेश्वरत्व एवं सेनापत्य करते-कराते तथा पालन करते-कराते हुए, महान् आहत् से (बड़े जोरों से अथवा महान् व्याघातरिहत) नृत्य, गीत, वादित, तल, ताल, त्रुटित और घनमृदंग के बजाने से उत्पन्न महाध्विन के साथ दिव्य एवं उपभोग्य भोगों का उपभोग करते हुए विहरण करते हैं।

[२] चमर-बलिणो यऽत्थ दुवे असुरकुमारिंदा असुरकुमाररायाणो परिवसंति काला महानीलसरिसा णीलगुलिय-गवल-अयसिकुसुमप्पगासा वियसियवत्तणिम्मलईसीसित-रत्त-गरु लाययउ ज्तुतुं गणासा ओयवियसिलप्पवालबिंबफलसन्निभाहरोट्टा पंडरसिसगलविमल- निम्मलदिह-घण-संख-गोखीर-कुं द-दगरय-मुणालियाधवलदंतसेढी हुयवहणिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततल-तालु-जीहा अंजण-घणकसिणरुयगरमणिज्जणिद्धकेसा वामेयकुंडलधरा, अद्दचंदणाणुलित्तगत्ता, ईसीसिलिंध-पुप्फपगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुदुमाइं वत्थाइं पवर परिहिया, वयं च पढमं समइक्कंता, बिड्यं तु असंपत्ता, भद्दे जोव्वण्णे वट्टमाणा, तलभंगय-त्डित-पवरभूषण-निम्नलमणि-रयणमंडितभुया दसमुद्दा-मंडियग्गहत्था चूडामणिचित्तचिंधगता सुरूवा महिड्ढीया महज्जुईया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडियथंभियभुया अंगद-कुंडल-मट्टगंडतलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेण गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अगगमिहसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आतरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महताऽहतनट्ट-गीत-वाइततंती-तल-ताल तुडित-घणमुइंगपडुप्पवाइतरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१७८-२] यहाँ (इन्हीं स्थानों में) जो दो असुरकुमारों के राजा — चमरेन्द्र और बलीन्द्र निवास करते हैं, वे काले, महानील के समान, नील की गोली, गवल (भैंस के सींग), अलसी के फूल के समान (रंगवाले), विकसित कमल (शतपत्र) के समान निर्मल कहीं श्वेत, रक्त एवं ताम्रवर्ण के नेत्रों वाले, गरुड के समान विशाल सीधी और ऊंची नाक वाले, पृष्ट या तेजस्वी (उपचित) मूंगा तथा बिम्बफल के समान अधरोष्ठ वाले; श्वेत विमल एवं निर्मल, चन्द्रखण्ड, जमे हुए दही, शंख, गाय के दूध, कुन्द, जलकण और मृणालिका के समान धवल दन्तपंक्ति वाले, अग्न में तपाये और धोये हुए तपनीय (सोने) के समान लाल तलवों, तालु तथा जिह्ना वाले, अंजन तथा मेघ के समान काले, रुचकरत्न के समान

रमणीय एवं स्निग्ध (चिकने) केशों वाले, बाएं एक कान में कुण्डल के धारक, गीले (सरस) चन्दन में लिप्त शरीर वाले, शिलीन्ध्र-पुष्प के समान किंचित् लाल रंग के एवं क्लेश उत्पन्न न करने वाले, (अत्यन्त सुखकर) सूक्ष्म एवं अत्यन्त श्रेष्ठ वस्त्र पहने हुए प्रथम वय (कौमार्य) को पार किए हुए, दूसरी वय को अप्राप्त, (अतएव) नवयौवन में वर्तमान, तल-भंगक, त्रुटित तथा अन्य श्रेष्ठ आभूषणों एवं निर्मल मिणयों और रत्नों से मण्डित भुजाओं वाले, दस मुद्रिकाओं (अंगूठियों) से सुशोभित अग्रहस्त (हाथ की अंगुलियों) वाले, विचित्र चूड़ामणि के चिह्न से युक्त, सुरूप, सहर्द्धिक, महाद्युतिमान्, महायशस्वी, महाबलवान्, महासामर्थ्यशाली (प्रभावशाली) महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, कड़ों तथा बाजूबंदों से स्तम्भित भुजाओं वाले, अंगद, कुण्डल तथा कपोल भाग को घर्षण करने वाले कर्णपीठ (कर्णभूषण) के धारक, हाथों में विचित्र आभूषण वाले, अद्भुत मालाओं से युक्त मुकुट वाले, कल्याणकारी श्रेष्ठ वस्त्र पहने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन के धारक, देदीप्यमान (चमकते हुए) शरीर वाले. लम्बी वनमालाओं के धारक तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान (आकृति) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य कान्ति से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से और दिव्य लेश्या (शारीरिकवर्ण-सौन्दर्य) से दसों दिशाओं को प्रकाशित एवं प्रभासित (सुशोभित) करते हुए, वे (असुरकुमारों के इन्द्र चमरेन्द्र और बलीन्द्र) वहाँ अपने-अपने लाखों भवनावासों का अपने-अपने हजारों सामानिकों का, अपने-अपने त्रायस्त्रिंशक देवों का, अपने-अपने लोकपालों का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सैन्याधिपतियों का, अपने-अपने हजारों आत्मरक्षक देवों का और अन्य बहुत-से भवनवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य (अग्रेसरत्व), स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व (महानता) और आजँश्वरत्व तथा सेनापत्य करते-कराते तथा पालन करते-कराते हुए महान् आहत (बड़े जोर से, अथवा अहत—व्याघातरहित) नाट्य, गीत, वादित, (बजाए गए) तंत्री, तल, ताल, त्रुटित और घनमृदंग आदि से उत्पन्न महाध्विन के साथ दिव्य उपभोग्य भोगों को भोगते रहते हैं।

१७९. [१] किह णं भेते! दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भेते! दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा! जंबुद्दीवे मंदरस्स पव्वतस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयण-सतसहस्सबाहल्लाए उविर एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं विज्जित्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं चोत्तीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहि वट्टा अंतो चउरंसा, सो च्चेव वण्णओ^९ जाव पडिरूवा। एत्थ णं दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि

१. 'वण्णओ' से सूत्र १७७ [१] के अनुसार पाठ समझना चाहिए।

लोगस्सअसंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा य देवीओ य परिवसंति। काला लोहियक्खा तहेव^१ जाव भुंजमाणा विहरंति। एतेसि णं तहेव^२ तायत्तीसगलोगपाला भवंति। एवं सव्वत्थ भाणितव्वं भवणवासीणं।

[१७९-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त एवं अपर्याप्त दाक्षिणात्य (दक्षिण दिशा वाले) असुरकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! दाक्षिणात्य असुरकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१७९-१ उ.] गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सुमेरुपर्वत के दक्षिण में, एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नाप्रभापृथ्वी के ऊपर के एक हजार योजन अवगाहन करके तथा नीचे के एक हजार योजन छोड़ कर, बीच में जो एक लाख अठहत्तर हजार योजन क्षेत्र है, वहाँ दाक्षिणात्य असुरकुमार देवों के चौंतीस लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे (दाक्षिणात्य असुरकुमारों के) भवन (भवनावास) बाहर से गोल और अन्दर से चौरस (चौकोर) हैं, शेष समस्त वर्णन यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक सूत्र १७८-१ के अनुसार समझना चाहिए। यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य असुरकुमार देवों के स्थान कहे गए हैं, जो कि तीनों अपेक्षाओं (उपपात, समुद्घात एवं स्वस्थान की अपेक्षा) से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ दाक्षिणात्य असुरकुमार देव एवं देवियाँ निवास करती हैं। वे (दाक्षिणात्य असुरकुमार देव) काले, लोहिताक्ष रत्न के समान ओठ वाले हैं, इत्यादि सब वर्णन यावत् 'भोगते हुए रहते हैं' (भुंजमाणा विहरंति) तक सूत्र १७८-१ के अनुसार समझना चाहिए।

इनके उसी प्रकार त्रायस्त्रिंशक और लोकपाल देव आदि होते हैं, (जिन पर वे आधिपत्य आदि करते-कराते, पालन करते-कराते हुए यावत् विचरण करते हैं।) इस प्रकार सर्वत्र 'भवनवासियों के' ऐसा उल्लेख करना चाहिए।

[२] चमरे अत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसति काले महानीलसरिसे जाव^१ पभासेमाणे।

से णं तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससतसहस्साणं चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं तावत्तीसाए तायत्तीसाणं चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमिहसीणं सपिरवाराणं तिण्हं पिरसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउण्हं च चउसट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव^३ विहरति।

[१७९-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में (दाक्षिणात्य) असुरकुमारों का इन्द्र असुरराज चमरेन्द्र निवास करता है, वह कृष्णवर्ण है, महानीलसदृश है, इत्यादि सारा वर्णन यावत् प्रभासित-सुशोभित करता हुआ

१. 'तहेव' से सूत्र १७८ [१] के अनुसार तत्स्थानीय पूर्ण पाठ ग्राह्य है।

२. 'तहेव' से सूत्र १७८-१ के अनुसार तत्स्थानीय समग्र पाठ समझना चाहिए।

 ^{&#}x27;जाव' तथा 'जहा' से सूचित तत्स्थानीय समग्र पाठ समझना चाहिए।

('पभासेमाणे'), तक सूत्र १७७-२ के अनुसार समझना चाहिए।

वह (चमरेन्द्र) वहाँ चौतीस लाख भवनावासों का, चौसठ हजार सामानिकों का, तेतीस त्रायस्त्रिशक देवों का, चार लोकपालों का, पांच सपरिवार अग्रमिहिषयों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपित देवों का, चार चौसठ हजार — अर्थात् — दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से दाक्षिणात्य असुरकुमार देवों और देवियों का आधिपत्य एवं अग्रेसरत्व करता हुआ यावत् विचरण करता है।

१८०. [१] किह णं भंते! उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! उत्तरिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए^२ असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उविरं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्टा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्टहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं तीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्ठा अंतो चउरंसा, सेसं जहा दाहिणिल्लाणं जाव^१ विहरंति।

[१८०-१ प्र.] भगवन्! उत्तरिशा में पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! उत्तरिशा के असुरकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८०-१ उ.] गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, सुमेरुपर्वत के उत्तर में, एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करके तथा नीचे (भी) एक हजार योजन छोड़ कर, मध्य में एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रदेश में, वहाँ उत्तरदिशा के असुरकुमार देवों के तीस लाख भवनावास हैं ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल और अन्दर से चौरस (चौकोर) हैं, शेष सब वर्णन यावत् विचरण करते हैं (विहरंति) तक, दाक्षिणात्य असुरकुमार देवों के समान (सूत्र १७९-१ के अनुसार) जानना चाहिए।

[२] बली यऽत्थ वइरोयणिंदे वहरोयणराया परिवसित काले महानीलसिरसे जाव (सु. १७८ [२]) पभासेमाणे। से णं तत्थ तीसाए भवणावाससयसहस्साणं सट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमिहसीणं सपिरवाराणं तिण्हं पिरसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउण्ह य सट्ठीणं आयरक्खदेवसाहसीणं अण्णेसिं च बहूणं उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुळ्माणे विहरित।

[१८०-२] इन्हीं (पूर्वाक्त स्थानों) में वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलीन्द्र निवास करता है, (जो) कृष्णवर्ण है। महानीलसदृश है, इत्यादि समग्र वर्णन यावत 'प्रभासित-सुशोभित करता हुआ' ('पभासमाणे' तक सूत्र १७८-२ के अनुसार समझना चाहिए।) वह वहाँ तीस लाख भवनावासों का, साठ हजार सामानिक

१. ग्रन्थाग्रम् ११००

देवों का, तेतीस त्रायस्त्रिशक देवों का, चार लोकपालों का, सपरिवार पांच अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपित देवों का, चार साठ हजार अर्थात् दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा और भी बहुत-से उत्तरदिशा के असुरकुमार देवों और देवियों का आधिपत्य एवं पुरोवर्तित्व (अग्रेसरत्व) करता हुआ विचरण करता है।

१८१. [१] किह णं भंते! णागकुमाराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! णागकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा! इमीसे रयणप्यभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उविर एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्टा वेगं जोयणसहस्सं विष्जिऊण मण्झे अट्टहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं णागकुमाराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं चुलसीइ भवणावाससयसहस्सा हवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा जाव (सु. १७७) पडिरूवा। तत्थ णं णामकुमाराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स अंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे णागकुमारा देवा परिवसंति महिद्दीया महाजुतीया, सेसं जहा ओहियाणं (सु. १७७) जाव विहरंति।

[१८१-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! नागकुमार देव कहाँ निवास करते हैं?

[१८१-१ उ.] गौतम! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करके और नीचे एक हजार योजन छोड़ कर बीच में एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) में, पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवों के चौरासी लाख भवनावास (भवन) हैं, ऐसा कहा है। वे भवन बाहर से गोल और अन्दर से चौरस (चौकोर) हैं, यावत् प्रतिरूप (अत्यन्त सुन्दर) हैं तक, (सू. १७७ के अनुसार सारा वर्णन जानना चाहिए।)

वहाँ (पूर्वोक्त भवनावासों में) पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवों के स्थान कहे गए हैं। तीनों अपेक्षाओं से (उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा से) (वे स्थान) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहां बहुत-से नागकुमार देव निवास करते हैं। वे महर्द्धिक हैं, महाद्युति वाले हैं, इत्यादि शेष वर्णन, यावत् विचरण करते हैं (विहरंति) तक, औधिकों (सामान्य भवनवासी देवों) के समान (सू. १७७ के अनुसार समझना चाहिए।)

[२] धरण-भूयाणंदा एत्थ दुहे णागकुमारिदा णागकुमाररायणो परिवसंति महिड्ढीया, सेसं जहा ओहियाणं जाव (सु. १७७) विहरंति।

[१८१-२] यहाँ (इन्हीं पूर्वोक्त स्थानों में) जो दो नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज—धरणेन्द्र और भूतानन्देन्द्र — निवास करते हैं, (वे) महर्द्धिक हैं; शेष वर्णन औधिक (सामान्य भवनवासियों) के समान (सूत्र १७७ के अनुसार) यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरंति) तक समझना चाहिए।

१८२. [१] किह णं भंते! दाहिणिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा

पण्णत्ता? किह णं भंते! दाहिणिल्ला णागकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उविर एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा वेगं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं णगकुमाराणं देवाणं चोयालीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा जाव^१ पडिरूवा। एत्थ णं दाहिणिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेञ्जइभागे। एत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला नागकुमारा देवा परिवसंति महिङ्कीया जाव (सू. १७७) विहरंति।

[१८२-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य नागकुमारों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! दाक्षिणात्य नागकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८२-१ उ.] गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सुमेरुपर्वत के दक्षिण में, एक लाख अस्सी हजार मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाह करके और नीचे एक हजार योजन छोड़कर, मध्य में एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) में, यहाँ दाक्षिणात्य नागकुमार देवों के चवालीस लाख भवन हैं, ऐसा कहा गया है।

वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल और भीतर से चौरस है, यावत् प्रतिरूप (अतीव सुन्दर) हैं। यहाँ (इन्हीं भवनावासों में) दाक्षिणात्य पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमारों के स्थान कहे गए हैं।

(वे स्थान) तीनों अपेक्षाओं से (उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा से) लोक के असख्यात भाग में हैं, जहाँ कि बहुत-से दाक्षिणात्य नागकुमार देव निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं; (इत्यादि शेष समग्र वर्णन) यावत् विचरण करते हैं (विहरंति) तक (सू. १७७ के अनुसार समझना चाहिए।)

[२] धरणे यऽत्थ णागकुमारिंदे णागकुमारराया परिवसित महिड्ढीए जाव (सु. १७८) पभासेमाणे। से णं तत्थ चोयालीसाए भवणावाससयसहस्साणं छण्हं सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमिहसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउव्वीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं नागकुमाराणं देवाण य देवीण य आहेव्चं पोरेवच्चं कुव्वमाणे विहरित।

[१८२-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणेन्द्र निवास करता है, जो कि महर्द्धिक है, (इत्यादि समग्र वर्णन) यावत् प्रभासित करता हुआ ('पभासमाणे') तक (सू. १७८-२ के अनुसार समझना चाहिए।)

वहाँ वह (धरणेन्द्र) चवालीस लाख भवनावासों का, छह हजार सामानिकों का, तेतीस त्रायस्त्रिशक

१. 'जाव' शब्द से तत्स्थानीय समग्र वर्णन स्. १७७ के अनुसार समझना चाहिए।

देवों का, चार लोकपालों का, सपरिवार पांच अग्रमिहिषयों का, तीन परिषदों का, सात सैन्यों का, सात सेनािधपित देवों का, चौवीस हजार आत्मरक्षक देवों का और अन्य बहुत-से दािक्षणात्य नागकुमर देवों और देवियों का आधिपत्य और अग्रेसरत्व करता हुआ विचरण करता है।

१८३. [१] किह णं भंते! उत्तरिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! उत्तरिल्ला णागकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वतस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयण-सतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं उत्तरिल्लाणं णागकु माराणं देवाणं चत्तालीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा सेसं जहा दाहिणिल्लाणं (सु. १८२ [१]) जाव विहरंति।

[१८३-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त उत्तरिदशा के नागकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! उत्तरिदशा के नागकुमार देव कहाँ निवास करते हैं?

[१८३-१ उ.] गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सुमेरुपर्वत के उत्तर में, एक लाख अस्सी हजार मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाह करके और नीचे एक हजार योजन छोड़कर, बीच में एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) में, यहाँ उत्तरदिशा में नागकुमार देवों के चालीस लाख भवन है, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल है, शेष सारा वर्णन दाक्षिणात्य नागकुमारों के वर्णन (सू. १८२-१) के अनुसार यावत् विचरण करते हैं (विहरंति) (तक समझ लेना चाहिए।)

[२] भूयाणंदे यऽत्थ णागकुमारिदे नागकुमारराया परिवसित महिड्ढीए जाव (सु. १७७) पभासेमाणे। से णं तत्थ चत्तालीसाए भवणावाससतसहस्साणं आहेवच्चं जाव (सु. १७७) विहरति।

[२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में (औदीच्य) नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द निवास करता है, जो कि महर्द्धिक है, (शेष वर्णन) यावत् प्रभासित करता हुआ ('पभासमाणे') तक (सू. १७७ के अनुसार समझ लेना चाहिए।)

वहाँ वह (भूतानन्देन्द्र) चालीस लाख भवनावासों का यावत् आधिपत्य एवं अग्रेसरत्व करता हुआ विचरण करता है, तक (सारा वर्णन सू. १७७ के अनुसार समझ लेना चाहिए।)

१८४. [२] किह णं भंते! सुवण्णकुमाराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? किह णं भंते! सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा! इमीसे रयणप्यभाए पुढवीए जाव एत्थ णं सुवण्णकुमाराणं देवाणं बावत्तरिं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा। तत्थ णं सुवण्णकुमाराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढीया, सेसं जहा ओहियाणं (सु. १७७) जाव-विहरंति।

[१८४-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! सुपर्णकुमार देव कहाँ निवास करते हैं?[१८४-१ उ.] गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक-एक हजार ऊपर और नीचे के भाग को छोड़ कर शेष भाग में यावत् सुपर्णकुमार देवों के बहत्तर लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल यावत् प्रतिरूप तक (समग्र वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।) वहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवों के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) (पूर्वोक्त) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ बहुत:से सुपर्णकुमार देव निवास करते हैं, जो कि महर्द्धिक हैं; (इत्यादि समग्र वर्णन) यावत् 'विचरण करते हैं' (तक) औधिक (सामान्य असुरकुमारों की) तरह (सू. १७७ के अनुसार समझना चाहिए।)

[२] वेणुदेव-वेणुदाली यऽत्थ सुवण्णकुमारिंदा सुवण्णकुमाररायाणो परिवसंति महड्ढीया जाव (सु. १७७) विहरंति।

[१८४-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में से सुपर्णकुमारेन्द्र सुपर्णकुमारराज—वेणुदेव और वेणुदाली निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं; (शेष समग्र वर्णन सू. १७७ के अनुसार) यावत् 'विचरण करते हैं'; तक समझ लेना चाहिए।

१८५. [१] किह णं भंते! दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं पञ्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! दाहिणिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा! इमीसे जाव मञ्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं अट्ठतीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा।

एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेञ्जइभागे। एत्थ णं बहवे सुवण्णकुमारा देवा परिवंसति।

[१८५-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त दक्षिणात्य सुपर्णकुमारों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! दाक्षिणात्य सुपर्णकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८५-१ उ.] गौतम! इसी रत्नप्रभापृथ्वी के यावत् मध्य में एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) में, दाक्षिणात्य सुपर्णकुमारों के अड़तीस लाख भवनावास हैं; ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल यावत् प्रतिरूप हैं; (यहाँ तक का शेष वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए), यहाँ पर्याप्तक और अपर्याप्तक दाक्षिणात्य सुपर्णकुमारों के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। यहाँ बहुत-से सुपर्णकुमार देव निवास करते हैं।

[२] वेणुदेव यऽत्थ सुवण्णिदे सुवण्णकुमारराया परिवसइ। सेसं जहा णागकुमाराणं (सु. १८२ [२])।

१. 'जाव' एवं 'जहां' शब्द से तत्स्थानीय समग्र वर्णन संकेतित सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

[१८५-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में (दाक्षिणात्य) सुपर्णेन्द्र सुपर्णकुमारराज वेणुदेव निवास करता है; शेष सारा वर्णन नागकुमारों के वर्णन की तरह (सू. १८२-२ के अनुसार) समझ लेना चाहिए।

१८६. [१] कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते! उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा! इमीसेरयणप्पभाए जाव एत्थ णं उत्तरिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं चोत्तीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं भवणा जाव एत्थ णं बहवे उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति महिड्डिया जाव (सु. १७७) विहरंति।

[१८६-१ प्र.] भगवन्! उत्तरिशा के पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवों के स्थान कहां कहे गए हैं ? भगवन्! उत्तरिशा के सुपर्णकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८६-१ उ.] गौतम! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक लाख अठहत्तर योजन में, आदि (समग्र वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए)। यावत् यहाँ उत्तरदिशा के सुपर्णकुमार देवों के चौंतीस लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) जिनका समग्र वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए यावत् यहाँ (इन्हीं भवनावासों में) बहुत-से उत्तरदिशा के सुपर्णकुमार देव निवास करते हैं, जो कि महर्द्धिक हैं; यावत् विचरण करते हैं (तक का शेष समग्र वर्णन सू. १७७ के अनुसार) समझ लेना चाहिए।

[२] वेणुदाली यऽत्थ सुवण्णकुमारिंदे सुवण्णकुमारराया परिवसित महिह्रीए, सेसं जहा णागकुमाराणं (सु. १८३ [२])।

[१८६-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में यहाँ सुपर्णकुमारेन्द्र सुपर्णकुमारराज वेणुदाली निवास करता हैं, जो महद्धिक है; शेष सारा वर्णन नागकुमारों की तरह (सू. १८३-२ के अनुसार) समझना चाहिए।

१८७. एवं जहा सुवण्णकुमाराणं वत्तव्वया भिणता तहा सेसाण वि चोद्दसण्हं इंदाणं भिणतव्वा। नवरं भवणनाणत्तं इंदणाणत्तं वण्णणाणत्तं परिहाणणाणत्तं च इमाहिं गाहाहिं अणुगंतव्वं —

> चोविं असुराणं १ चुलसीतो चेव होंति णागाणं २। बावत्तिरं सुवण्णे ३ वाउकुमाराण छण्णउई ४ ॥ १३८॥ दीव- दिसा-उदहीणं विज्जुकुमारिद-थणिय-मग्गीणं। छण्हं पि जुअलयाणं छावत्तिरमो सतसहस्सा १० ॥ १३९॥ चोत्तीसा १ चोयाला २ अट्ठत्तीसं च सयसहस्साईं ३। पण्णा ४ चत्तालीसा ५-१० दाहिणओ होंति भवणाइं॥ १४०॥ तीसा १ चत्तालीसा २ चोत्तीसं चेव सयसहस्साइं ३। छायाला ४ छत्तीसा ५-२० उत्तरओ होंति भवणाइं॥ १४१॥

चउसट्ठी सट्ठी, १ खलु छ च्च सहस्सा २-१० उ असुरवज्जाणं।
सामाणिया उ एए, चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥१४२॥
चमरे १ धरणे २ तह वेणुदेव ३ हिरकंत ४ अग्गिसीहेय।
पुण्णे ६ जलकंते य ७ अमिय ८ विलंबे य ९ घोसे य १०॥१४३॥
बिलि१ भूयाणंदे २ वेणुदालि ३ हिरस्स ४ अग्गिमाणव ५ विसट्ठे६।
जलप्पहे ७ अमियवाहण ८ पभंजणे या ९ महाघोसे १०॥१४४॥
उत्तरिल्लाणं जाव विहरंति।

असुरकुमारा, णागा उदही य पंडरा दो वि। काला वरकणगणिहसगोरा होंति सुवण्णा दिसा थणिया ॥ १४५॥ उत्तत्तकणगवन्ना विज्ञ अग्गी य होंति दीवा वाउकुमारा मुणेयव्वा॥ १४६॥ सामा पियंगुवण्णा होंति रत्ता, सिलिंधपुष्फप्पभा य नागुदही। असुरेस् स्वण्णा दिसा थणिया॥ १४७॥ होंति आसासगवसणधरा विज्ञू अग्गी य होंति दीवा य। णीलाणुरागवसणा संझाणुरागवसणा मुणेयव्वा वाउकुमारा 11 288 11

[१८७] इस प्रकार जैसी वक्तव्यता सुपर्णकुमारों की कही है, वैसी ही शेष भवनवासियों की भी और उनके चौदह इन्द्रों की कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि उनके भवनों की संख्या में, इन्द्रों के नामों में, उनके वर्णों तथा परिधानों (वस्त्रों) में अन्तर है, जो इन गाथाओं द्वारा समझ लेना चाहिए — (गाथाओं का अर्थ—) भवनावास —१—(असुरकुमारों के) चौसठ लाख हैं, २ —(नागकुमारों के) चौरासी लाख हैं, ३—(सुपर्णकुमारों के) बहत्तर लाख हैं, ४—(वायुकुमारों के) छियानवे लाख हैं ॥१३८॥५ से १० तक अर्थात् (द्वीपकुमारों, दिशाकुमारों, उदिधकुमारों, विद्युतकुमारों, स्तनितकुमारों और अग्निकुमारों) इन छहों के युगलों के प्रत्येक के छहत्तर-छहत्तर लाख (भवनवास) हैं॥ १३९॥

दक्षिणदिशा के (असुरकुमारों आदि के) भवनों की संख्या (इस प्रकार है) —१—(असुरकुमारों के) चौंतीस लाख, २—(नागकुमारों के) चवालीस लाख, ३—(सुपर्णकुमारों के) अड़तीस लाख, ४—(वायुकुमारों के) पचास लाख। ५ से १० तक —(द्वीपकुमारों, उदिधकुमारों, विद्युतकुमारों स्तिनतकुमारों और अग्निकुमारों के) प्रत्येक के चालीस-चालीस लाख भवन (भवनावास) हैं ॥ १४०॥

उत्तर दिशा के (असुरकुमारों आदि के) भवनों की संख्या (इस प्रकार है—) १—(असुरकुमारों के) तीस लाख, २—(नागकुमारों के) चालीस लाख, ३—(सुपर्णकुमारों के) चौंतीस लाख, ४— (वायुकुमारों के) छयालीस लाख, ५ से १० तक — अर्थात् द्वीपकुमारों, दिशाकुमारों, उदिधकुमारों, विद्युत्कुमारों, स्तनतिकुमारों और अग्निकुमारों के प्रत्येक के छत्तीस-छत्तीस लाख भवन हैं॥ १४१॥

सामानिकों और आत्मरक्षकों की संख्या — इस प्रकार है — १ — (दक्षिण दिशा के) असुरेन्द्र के ६४ हजार और (उत्तरदिशा के असुरेन्द्र के) ६० हजार हैं; असुरेन्द्र को छोड़ कर (शेष सब २ से १०—दक्षिण-उत्तर के इन्द्रों के प्रत्येक) के छह-छह हजार सामानिकदेव हैं। आत्मरक्षकदेव (प्रत्येक इन्द्र के सामानिकों की अपेक्षा) चौगुने-चौगुने होते हैं॥ १४२॥

दाक्षिणात्य इन्दों के नाम —१ —(असुरकुमारों का) चमरेन्द्र, २—(नागकुमारों का) धरणेन्द्र ३—(सुपर्णकुमारों का) वेणुदेवेन्द्र, ४—(विद्युतकुमारों का) हरिकान्त, ५—(अग्निकुमारों का) अग्निसिंह (या अग्निशिख), ६—(द्वीपकुमारों का) पूर्णेन्द्र, ७—(उदिधकुमारों का) जलकान्त, ८—(दिशाकुमारों का) अमित, ९—(वायुकुमारों का) वैलम्ब और १०—(स्तिनितकुमारों का) इन्द्र घोष है ॥ १४३॥

उत्तरिशा के इन्द्रों के नाम —१—(असुरकुमारों का) बलीन्द्र, २—(नागकुमारों का) भूतानन्द, ३—(सुपर्णकुमारों का) वेणुदालि, ४—(विद्युत्कुमारों का) हरिस्सह, ५—(अग्निकुमारों का) अग्निमाणव, ६—द्वीपकुमारों का विशष्ठ, ७—(उदिधकुमारों का) जलप्रभ, ८—दिशाकुमारों का) अमितवाहन, ९—(वायुकुमारों का) प्रभंजन और १०—(स्तनितकुमारों का) महाघोष इन्द्र है ॥ १४४॥

(ये दसों) उत्तरिषा के इन्द्र यावत् विचरण करते हैं।

वर्णों का कथन — सभी असुरकुमार काले वर्ण के होते हैं, नागकुमारों और उद्धिकुमारों का वर्ण पाण्डुर अर्थात् — शुक्ल होता है, सुपर्णकुमार, दिशाकुमार और स्तनितकुमार कसौटी (निकषपाषाण) पर बनी हुई श्रेष्ठ स्वर्णरेखा के समान गौर वर्ण के होते हैं॥ १४५॥

विद्युतकुमार, अग्निकुमार और द्वीपकुमार तपे हुए सोने के समान (किञ्चित् रक्त) वर्ण के होते हैं और वायुकुमार श्याम प्रियंगु के वर्ण के समझने चाहिए॥ १४६॥

इनके वस्त्रों के वर्ण असुरकुमारों के वस्त्र लाल होते हैं, नागकुमारों और उद्धिकुमारों के वस्त्र शिलिन्ध्रपुष्प की प्रभा के समान (नीले) होते हैं, सुपर्णकुमारों, दिशाकुमारों और स्तनितकुमारों के वस्त्र अश्व के मुख के फेन के सदृश अतिश्वेत होते हैं॥ १४७॥

विद्युत्कुमारों, अग्निकुमारों और द्वीपकुमारों के वस्त्र नीले रंग के होते हैं और वायुकुमारों के वस्त्र सन्ध्याकाल की लालिमा जैसे वर्ण के जानने चाहिए॥१४८॥

विवेचन—सर्व भवनवासी देवों के स्थानों की प्ररूपणा — प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों (सू. १७७ से १८७ तक) में शास्त्रकार ने सामान्य भवनवासी देवों से लेकर असुरकुमारादि दस प्रकार के, तथा उनमें भी दक्षिण और उत्तर दिशओं के, फिर उनके भी प्रत्येक निकाय के इन्द्रों के (विविध अपेक्षाओं से) स्थानों, भवनवासों की संख्या और विशेषता तथा प्रत्येक प्रकार के भवनवासी देवों और इन्द्रों के स्वरूप, वैभव एवं सामर्थ्य, प्रभाव आदि का विस्तृत वर्णन किया है। अन्त में — संग्रहणी गाथाओं द्वारा प्रत्येक प्रकार के भवनवासी देवों के भवनों, सामानिकों और आत्मरक्षक देवों की संख्या, दक्षिणात्य और औदीच्य

कुल २० इन्द्रों के नाम तथा दस प्रकार के भवनवासियों के प्रत्येक के शारीरिक और वस्त्र सम्बन्धी वर्ण का उल्लेख किया है।⁸

कुछ कठिन शब्दों की व्याख्या -- पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिया -- पुष्कर -- कमल की कर्णिका के समान आकार में संस्थित हैं। कर्णिका उन्नत एवं समान चित्रविचित्र बिन्दु रूप होती है। '**उक्किण्णंतरिवउलगंभीरखातपरिहा'**—उन भवनों के चारों ओर खाइयाँ और परिखाएँ है। जिनका अन्तर उत्कीर्ण की तरह स्पष्ट प्रतीत होता है। वे विपुल यानी अत्यन्त गम्भीर (गहरी) हैं। जो ऊपर से चौड़ी और नीचे से संकड़ी हो उसे परिखा कहते हैं और जो ऊपर-नीचे समान हो, उसे खात (खाई) कहते है। यह परिखा और खाई में अन्तर है। पागारऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवार-देसभागा---प्रत्येक भवन के प्राकार, अट्टालक, कपाट, तोरण और प्रतिद्वार यथास्थान बने हुए हैं। प्राकार कहते हैं। —साल या परकोटे को। उस पर भृत्यवर्ग के लिए बने हुए कमरों को अट्टालक या अटारी कहते हैं। बड़े दरवाजों (फाटकों) के निकट छोटे द्वार 'तोरण' कहलाते हैं। बड़े द्वारों के सामने जो छोटे द्वार रहते हैं, उन्हें प्रतिद्वार कहते हैं। अउज्झा—जहाँ शत्रुओं द्वारा युद्ध करना अशक्य हो, ऐसे अयोध्य भवन। खेमा- शत्रुकृत उपद्रव से रहित। सिवा- सदा मंगलयुक्त। चंदण-घडसुकयतोरणपडिद्वारदेसभागा ---जिन भवनों के प्रतिद्वारों के देशभाग में चन्दन के घडों से अच्छी तरह बनाए हुए तोरण हैं। 'सव्वरयणामया लण्हा'—वे असुरकुमारों के भवन पूर्णरूप से रत्नमय, अच्छा--स्फटिक के समान स्वच्छ, सण्हा --स्निग्ध पुद्गलस्कन्धों से निर्मित, और कोमल होते हैं। निप्पंका-कलंक या कीचड़ से रहित। निक्कंकडछाया -वे भवन उपघात आवरण से रहित (निष्कंकट) छाया यानी कान्ति वाले होते हैं। समिरया — उनमें से किरणों का जाल बाहर निकलता रहता है। **सउन्जोया**—उद्योतयुक्त अर्थात्—बाहर स्थित वस्तुओं को भी प्रकाशित करने वाले। **पासादीया** —मन को प्रसन्न करने वाले। दिरसिणिज्जा —दर्शनीय —दर्शनयोग्य, जिन्हें देखने में नेत्र थकें नहीं। दिव्वतुडियसद्दसंपणादिया—दिव्य वीणा, वेणु, मृदंग आदि वाद्यों की मनोहर ध्वनि से सदा गुंजते रहने वाले। पडिरूवा — प्रतिरूप — उनमें प्रतिक्षण नया-नया रूप दृष्टिगोचर होता है। धवलपप्फदंता— कुंद आदि के श्वेतवर्ण-पुष्पों के समान श्वेत दांत वाले, असियकेसा — काले केश वाले। ये दांत और केश औदारिक पुद्गलों के नहीं, वैक्रिय के समझने चाहिए। महिड्डिटया— भवन, परिवार आदि महान् ऋद्भियों से युक्त । **महञ्जुइया** — जिनके शरीरगत और आभूषणगत महती द्युति है । **महब्बला** — शारीरिक और प्राणगत महती शक्ति वाले। महाणुभागे —महान् अनुभाग —सामर्थ्यशील, अर्थात् जिनमें शाप और अनुग्रह का महान् सामर्थ्य हो। दिव्वेण संघयणेणं—दिव्य संहनन से। यहाँ देवों के संहनन का कथन शक्तिविशेष की अपेक्षा से कहा गया है। क्योंकि संहनन अस्थिरचनात्मक (हड्डियों की रचना विशेष) होता है, देवों के हिड्डयाँ नहीं होती। इसीलिए जीवाभिगमसूत्र में कहा है — 'देवा असंघयणी, जम्हा तेसिं नेवट्ठी नेव सिरा' (देव असंहनन होते हैं, क्योंकि उनके न तो हड्डी होती है, न ही

१. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा. १, पृ. ५५ से ६३ तक

नसें (शिराएँ) होती हैं, दिव्वाए पभाए — दिव्य प्रभा से, भवनावासगत प्रभा से। दिव्वाए छायाए — दिव्य छाया से — देवों के समूह की शोभा से। दिव्वाए अच्वीए — शरीरस्थ रत्नों आदि के तेज की ज्वाला से। दिव्वाणं तेएण — शरीर से निकलते हुए दिव्य तेज से। दिव्वाए लेसाए — देह के वर्ण की दिव्य सुन्दरता से। आणाईसरसेणावच्चं — आज्ञा से ईश्वरत्व (आज्ञा पर प्रभुत्व) एवं सेनापितत्व करते हुए।

भवनवासियों के मुकुट और आभूषणों में अंकित चिह्न — मूलपाठ में असुरकुमारादि की पहिचान के लिए चिह्न बताए हैं। वे उनके मुकुटों तथा अन्य आभूषणों में अंकित होते हैं। १

समस्त वाणव्यन्तर देवों के स्थानों की प्ररूपणा

१८८. किह णं भंते! वाणमंतराणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! वाणमंतरा देवा परिवसंति ?

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उविर एगं जोयणसतं ओगाहिता हेट्ठा वि एगं जोयणसतं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जणगरावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भोमेञ्जा णगरा बाहिं वटा अंतो चउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किण्णंतरिवउलगंभीरखाय-परिहा पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पिडदुवारदेसभागा जंत-सयग्धि-मुसल-मुसुंढि-पिरयिरिया अओञ्झा सदाजता सदागुत्ता अडयालकोट्टगरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामरदंडोवरिक्खया लाउल्लोइयमिहया गोसीस-सरसर्त्तचंदणदद्दरिव्वपंचंगुलितला उवचित-चंदणकलसा चंदणधडसुकयतोरणपिडदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्धारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकित्या कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवमधमधेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधवरगंधगंधिया गंधविट्टभूता अच्छरगणसंघसंविकिण्णा दिव्वतुडितसद्दसंपणदिता पगाड-मालाउलाभिरामा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्टा नीरया निम्मला निप्यंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा समरीया सउज्जोता पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं वहवे वाणमंतरा देवा परिवसंति। त जहा—पिसाया १ भूया २ जक्खा ३ रक्खसा ४ किन्नरा ५ किंपुरिसा ६ भुयगवइणो य महाकाया ७ गंधळगणा य निउणगंधळ्गीतरइणो ८, अणवण्णिय १, पणवण्णिय २, इसिवाइय ३, भूयवाइय ४, कंदित ५, महाकंदिया य ६, कुहंड ७, पयगदेवाण।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ८५ से ९५ तक

चंचलचलचवलचित्तकीलण-दवप्पिया गहिरहसिय-गीय-णच्चणरई वणमाला-मेल-मउल-कुंडल-सच्छंदविउव्वियाभरणाचारुभूसणधरा सव्वोउयसुरभिकुसुमरइयपलंबसोहं तकं तवियसंति-चित्तवणमालरइयवच्छा कामकामा^१ कामरूवदेहधारी णाणाविहवण्णरागवरवत्थचित्तचिल्ल [ल] गणियंसणा विविहदेसिणेवच्छगहियवेसा पमुइयकंदप्प-कलह-केलि-कोलाहलप्पिया हास बोलबहुला असि-मोग्गर-सत्ति-कोत-हत्था अणेगमणि-रयणविविहणिजुत्तविचित्तचिंधगया सुरूवा महिङ्कीया महज्जुतीया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडितथंभियभ्या अंगय-कंडल-मद्रगंडयलकन्नपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं मण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्डीए दिव्वाए जुतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं भोमेञ्जगणगरावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महतरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महयाऽहतणट्ट-गीय-वाइयतंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुइंगपड्प्यवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१८८ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! वाणव्यन्तर देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८८ उ.] गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर से एक सौ योजन अवगाहन (प्रवेश) करके तथा नीचे भी एक सौ योजन छोड़ कर, बीच में आठ सौ योजन (प्रदेश) में, वाणव्यन्तर देवों के तिरछे असंख्यात भौमेय (भूमिगृह के समान) लाखों नगरावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे भौमेयनगर बाहर से गोल और अंदर से चौरस तथा नीचे से कमल की कर्णिका के आकर में संस्थित हैं। (उन नगरवासों के चारों ओर) गहरी और विस्तीर्ण खाइयां एवं परिखाएं खुदी हुई हैं, जिनका अन्तर स्पष्ट (प्रतीत होता) है। (यथास्थान) प्राकारों, अट्टालकों, कपाटों, तोरणों प्रतिद्वारों से (वे नगरावास) युक्त हैं। तथा वे नगरावास विविध यन्त्रों, शतिष्टियों, मूसलों एवं मुसुण्ढी नामक शस्त्रों में परिवेष्टित (धिरे हुए) होते हैं। (वे शत्रुओं द्वारा) अयोध्य (युद्ध न कर सकने योग्य), सदाजयशील, सदागुप्त (सुरक्षित), अडतालीस कोष्टों (कमरों) से रचित, अडतालीस वनमालाओं से सुसज्जित, क्षेममय,

१. **पाठान्तर** —मलय वृत्ति में 'कामगमा' पाठ है, जिसका अर्थ किया है —काम-इच्छानुसार गम—प्रवृत्ति करने वाले अर्थात्—स्वेच्छाचारी।

शिव (मंगल) मय, और किंकर देवों के दण्डों से उपरक्षित हैं। लिपे-पुते होने के कारण (वे नगरावास) प्रशस्त रहते हैं। (उन नगरावासों पर) गोशीर्षचन्दन और सरस रक्तचन्दन से लिप्त पांचों अंगुलियों (वाले हाथ) के छापे लगे होते हैं। उनके तोरण और प्रतिद्वार-देश के भाग चन्दन के घड़ों से भलीभांति निर्मित होते हैं; (वे नगरावास) ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एवं गोलाकार पुष्पमालाओं के समूह से युक्त होते हैं। पांच वर्णों के सरस सुगन्धित मुक्त पुष्पपुंज से उपचार (अर्चन)-युक्त होते हैं। वे काले अगर, उत्तम चीड़ा, लोबान, गुग्गल आदि के धूप की महकती हुई सौरभ से रमणीय तथा सुगन्धित वस्तुओं की उत्तमगन्ध से सुगन्धित, मानो गन्धवट्टी (अगरबत्ती) के समान (वे नगरावास लगते हैं।) अप्सरागण के संघों से व्याप्त, दिव्य वाद्यों की ध्वनि से निनादित, पताकाओं की पंक्ति से मनोहर, सर्वरत्नमय, स्फटिकसम स्वच्छ, स्निग्ध, कोमल, घिसे, पौंछे, रजरहित, निर्मल, निष्पंक, आवरण-रहित छाया (कान्ति) वाले, प्रभायुक्त किरणों से युक्त, उद्योतयुक्त, (प्रकाशमन्न), प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप एवं प्रतिरूप होते हैं। इन (पूर्वोक्त नगरावासों) में पर्याप्त और अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवों के स्थान कहे गए हैं।

(वे स्थान) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं; जहाँ कि बहुत-से वाणव्यन्तरदेव निवास करते हैं। वे इस प्रकार हैं —

१—पिशाच, २—भूत, ३—यक्ष, ४—राक्षस, ५—िकन्नर, ६—िकम्पुरुष, ७—महाकाय भुजगपति तथा ८—िनपुणगन्धर्व-गीतों में अनुरक्त गन्धर्वगण। (इनके आठ अवान्तर भेद—)

१—अणपर्णिक, २—पणपर्णिक, ३—ऋषिवादित, ४—भूतवादित, ५—क्रन्दित, ६—महाक्रन्दित, ७—कृष्माण्ड और ८—पतंगदेव।

ये अनवस्थित चित्त के होने से अत्यन्त चपल, क्रीडा-तत्पर और परिहास—(द्रव) प्रिय होते हैं। गंभीर हास्य, गीत और नृत्य में इनकी अनुरिक्त रहती है। वनमाला, कलंगी, मुकुट, कुण्डल तथा इच्छानुसार विकुर्वित आभूषणों से वे भलीभांति मण्डित रहते हैं। सभी ऋतुओं में होने वाले सुगन्धित पुष्पों से सुरिचत, लम्बी, शोभनीय, सुन्दर एवं खिलती हुई विचित्र वनमाला से (उनका) वक्षस्थल सुशोभित रहता है। अपनी कामनानुसार काम-भोगों का सेवन करने वाले, इच्छानुसार रूप एवं देह के धारक, नाना प्रकार के वणों वाले, श्रेष्ठ विचित्र चमकीले वस्त्रों के धारक, विविध देशों की वेशभूषा धारण करने वाले होते हैं, इन्हें प्रमोद, कर्न्दर्प (कामक्रीड़ा) कलह, केलि (क्रीड़ा) और कोलाहल प्रिय है। इनमें हास्य और विवाद (बोल) बहुत होता है। इनके हाथों में खङ्ग, मुद्गर, शिवत और भाले भी रहते हैं। ये अनेक मिणयों और रत्नों के विविध चिह्न वाले होते हैं। ये महर्द्धिक, महाद्युतिमान, महायशस्वी, महाबली, महानुभाव या महासामर्थ्यशाली, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले हैं। कड़े और बाजूबंद से इनकी भुजाएँ मानो स्तब्ध रहती हैं अंगद और कुण्डल इनके कपोलस्थल को स्पर्श किये रहते हैं। ये कानों में कर्णपीठ धारण किये रहते हैं, इनके हाथों में विचित्र आभूषण एवं मस्तक में

विचित्र मालाएँ होती हैं। ये कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए तथा कल्याणकारी माला एवं अनुलेपन धारण किये रहते हैं। इनके शरीर अत्यन्त देदीप्यमान होते हैं। ये लम्बी वनमालाएँ धारण करते हैं तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान (आकृति) से, दिव्य ऋिं से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (कान्ति) से दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से एवं दिव्य लेश्या से दशों दिशाओं को उद्योतित एवं प्रभासित करते हुए वे (वाणव्यन्तर देव) वहाँ (पूर्वोक्त स्थानों में) अपने-अपने लाखों भौमेय नगरावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिक देवों का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सेनाधिपति देवों का, अपने-अपने आत्मरक्षक देवों का और अन्य बहुत-से वाणव्यन्तर देवों और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञैश्वरत्व एवं सेनापितित्व करते-कराते तथा उनका पालन करते-कराते हुए वे (वाणव्यन्तर देवगण) महान् उत्सव के साथ नृत्य, गीत और वीणा, तल, ताल (कांसा), नृटित, घनमृदंग आदि वाद्यों को बजाने से उत्पन्न महाध्विन के साथ दिव्य उपभोग्य भोगों को भोगते हुए रहते हैं।

१८९. [१] किह णं भंते! पिसायाणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! पिसाया देवा परिवसंति ?

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उविरं एगं जोयणसतं ओगाहित्ता हेट्टा वेगं जोयणसतं वज्जेत्ता मज्झे अट्टसु जोयणसएसु, एत्थ णं पिसायाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जणगरावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं भोमेज्जणगरा बाहिं वट्टा जहा ओहिओ भवणवज्जओ (सु. १७७) तहा भाणितव्यो जाव पिडरूवा। एत्थ णं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे पिसाया देवा परिवसंति महिड्ढिया जहा ओहिया जाव (सु. १८८) विहरंति।

[१८९-१ प्र.] भंते! पर्याप्तक और अपर्याप्तक पिशाच देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! पिशाच देव कहाँ रहते हैं ?

[१८९-१ उ.] गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर के एक सौ योजन (प्रदेश) को अवगाहन (पार) करके तथा नीचे एक सौ योजन (प्रदेश) को छोड़कर, बीच में आठ सौ योजन (प्रदेश) में, पिशाच देवों के तिरछे असंख्यात भूगृह के समान लाखों (भौमेय) नगरावास हैं, ऐसा कहा है।

वे भौमेय नगर (नगरावास) बाहर से गोल (वर्तुल) हैं इत्यादि सब वर्णन जैसे सू. १७७ से समान्य भवनों में कहा वैसा ही यहाँ यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक कहना चाहिए। इन (नगरावासों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक पिशाच देवों के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं; जहाँ कि बहुत-से पिशाच देव निवास करते हैं। जो महर्द्धिक हैं,

(इत्यादि सब वर्णन) जैसे (सू. १८८ में) सामान्य वाणव्यन्तरों का कहा गया है, वैसे ही यहाँ यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरंति)तक जान लेना चाहिए।

[२] काल-महाकाला यऽत्थ दुहे पिसायइंदा पिसायरायाणो परिवसंति महिड्ढिया महज्जुइया जाव (सु. १८८) विहरंति।

[१८९-२] इन्हीं (पूर्वोक्त नगरावासों) में जो दो पिशाचेन्द्र पिशाचराज—काल और महाकाल, निवास करते हैं, वे 'महर्द्धिक हैं, महाद्युतिमान हैं', इत्यादि आगे समस्त वर्णन, यावत् 'विचरण करते हैं' ('विहरंति') तक सू. १८८ के अनुसार कहना चाहिए।

१९०. [१] किह णं भंते! दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति ?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उविरं एगं जोयणसतं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसतं वज्जेता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जनगरावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भोमेञ्जणगरा बाहिं वट्टा जहा ओहिओ भवणवण्णओ (सु. १७७) तहा भाणियव्यो जाव पडिरूवा। एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्तणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेञ्जइभागे। तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति महिड्ढिया जहा ओहिया जाव (स. १८८) विहरंति।

[१९०-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य पिशाच देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! दाक्षिणात्य पिशाच देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९०-१ उ.] गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, सुमेरु पर्वत के दक्षिण में, इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर का एक सौ योजन (प्रदेश) अवगाहन (पार) करके तथा नीचे एक सौ योजन छोड़ कर बीच में जो आठ सौ योजन (प्रदेश) हैं, उनमें दाक्षिणात्य पिशाच देवों के तिरछे असंख्येय भूमिगृह- जैसे (भौमेय) लाखों नगरावास हैं, ऐसा कहा है।

वे (भौमेय) नगर बाहर से गोल हैं, इत्यादि सब कथन जैसे (सू. १७७ में) औघिक (सामान्य) भवनों का कहा, उसी प्रकार यहाँ भी यावत् — 'प्रतिरूप हैं' तक कहना चाहिए। इन (पूर्वोक्त नगरावासों) में पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य पिशाच देवों के स्थान कहे हैं। (ये स्थान) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। इन्हीं (स्थानों) में बहुत-से दाक्षिणात्य पिशाच देव निवास करते हैं, 'वे महर्द्धिक हैं', इत्यादि समग्र वर्णन जैसे (सू. १८८ में) सामान्य वाणव्यन्तर देवों का किया है, तदनुसार यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरंति) तक करना चाहिए।

[२] काले यऽत्थ पिसायइंदे पिसायराया परिवसित महिड्ढीए (सु. १८८) जाव पभासेमाणे। स्रे णं तत्थ तिरियमसंखेज्जाणं भोमेज्जगनगरावाससतसहस्साणं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हमग्गमिहसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं सोलसण्हं आतरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं (सु. १८८) जाव विहरति।

[१९०-२] इन्हीं (पूर्ववर्णित स्थानों) में पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल निवास करते हैं, जो महर्द्धिक है, (इत्यादि सब वर्णन सू. १८८ के अनुसार) यावत् प्रभासित करता हुआ ('पभासेमाणे') तक समझना चाहिए। वह (दिक्षणात्य पिशाचेन्द्र काल) तिरछे असंख्यात भूमिगृह जैसे लाखों नगरावासों का, चार हजार सामानिक देवों का, सपरिवार चार अग्रमिहिषयों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों का तथा और भी बहुत-से दिक्षण दिशा के वाणव्यन्तर देवों और देवियों का 'आधिपत्य करता हुआ' यावत् 'विचरण करता है' (विहरित) तक (आगे का सारा कथन सू. १८८ के अनुसार करना चाहिए)।

१९१. [१] उत्तरिल्लाणं पुच्छा।

गोयमा! जहेव दाहिणिल्लाणं वत्तव्वया (सु. १९० [१]) तहेव उत्तरिल्लाणं पि। नवरं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं।

[१९१-१ प्र.] भगवन्! उत्तर दिशा के पर्याप्त और अपर्याप्त पिशाच देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! उत्तर दिशा के पिशाच देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९१-१ उ.] गौतम! जैसे (सू. १९०-१ में) दक्षिण दिशा के पिशाच देवों का वर्णन किया है, वैसे ही उत्तर दिशा के पिशाच देवों का वर्णन समझना चाहिए। विशेष यह है कि (इनके नगरावास) मेरुपर्वत के उत्तर में हैं।

[२] महाकाले यऽत्थ पिसायइंदे पिसायराया परिवसित जाव (सु. १९० [२]) विहरित।

[१९१-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में (उत्तर दिशा का) पिशाचेन्द्र पिशाचराज—महाकाल निवास करता है, (जिसका सारा वर्णन) यावत् 'विचरण करता है' (विहरित) तक, सू. १९०-२ के अनुसार (समझना चाहिए।)

१९२. एवं जहा पियासाणं (सु. १८९-१९०) तहा भूयाणं पि जाव गंधव्वाणं। णवरं इंदेसु णाणत्तं भाणियव्वं इमेण विहिणा—भूयाणं सुरूव-पडिरूवा, जक्खाणं पुण्णभद्द-माणिभद्दा, रक्खसाणं भीम-महाभीमा, किण्णराणं किण्णर-किंपुरिसा, किंपुरिसाणं सप्पुरिस-महापुरिसा, महोरगाणं अइकायमहाकाया, गंधव्वाणं गीतरती-गीतजसे जाव (सु. १८८) विहरति।

काले य महाकाले १ सुरूव पडिरूव २ पुण्णभद्दे य। अमरवइ माणिभद्दे ३ भीमे य तहा महाभीमे ४ ॥ १४९॥ किण्णरं किंपुरिसे खलु ५ सप्पुरिसे खलु तहा महापुरिसे ६। अइकाय महाकाए ७ गीयरई चेव गीतजसे ८॥ १५०॥ [१९२] इस प्रकार जैसे (सू. १८९-१९० में) (दक्षिण और उत्तर दिशा के) पिशाचों और उनके इन्द्रों (के स्थानों) का वर्णन किया गया, उसी तरह भूत देवों का यावत् गन्धर्वों तक का वर्णन समझना चाहिए। विशेष —इनके इन्द्रों में इस प्रकार के भेद (अन्तर) कहना चाहिए। यथा—भूतों के (दो इन्द्र)—सूरूप और प्रतिरूप, यक्षों के (दो इन्द्र) —पूर्णभद्र और माणिभद्र, राक्षसों के (दो इन्द्र) —भीम और महाभीम, किन्नरों के (दो इन्द्र)—किन्नर और किम्पुरुष, किम्पुरुषों के (दो इन्द्र) सत्पुरुष और महापुरुष, महोरगों के (दो इन्द्र) —अतिकाय और महाकाय तथा गन्धर्वों के (दो इन्द्र) —गीतरित और गीतयश; (आगे का इनका सारा वर्णन) सूत्र १८८ के अनुसार, यावत् 'विचरण करता है,(विहरित)' तक समझ लेना चाहिए।

[संग्रहगाथाओं का अर्थ—] (आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देवों के प्रत्येक के दो-दो इन्द्र क्रमश: इस प्रकार हैं) — १. काल और महाकाल, २. सुरूप और प्रतिरूप, ३. पूर्णभद्र और माणिभद्र इन्द्र, ४. भीम और महाभीम, ५. किन्नर और किम्पुरुष, ६. सत्पुरुष और महापुरुष, ७. अतिकाय और महाकाय तथा ८. गीतरित और गीतयश।

१९३. [१] किह णं भंते! अणवित्रयाणं देवाणं [पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं] ठाणा पण्णत्ता? किह णं भंते! अणविण्णया देवा परिवसंति ?

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उविरं हेट्टा य एगं जोयणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्टसु जोयणसतेसु, एत्थ णं अणविण्णयाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा णगरावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं जाव (सु. १८८) पिडक्तवा। एत्थ णं अणविण्णयाणं देवाणं ठाणा। उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्टाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे अणवित्रया देवा परिवसंति महिंद्हुया जहा पिसाया (सु. १८९ [१]) जाव विहरंति।

[१९३-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक अणपर्णिक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! अणपर्णिक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९३-१ उ.] गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर और नीचे एक-एक सौ योजन छोड़ कर मध्य में आठ-सौ योजन (प्रदेश) में, अणपिणंक देवों के तिरछे असंख्यात लाख नगरावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे नगरावास (सू. १८८ के अनुसार) यावत् प्रतिरूप तक पूर्ववत् समझने चाहिए। इन (पूर्वोक्त स्थानों) में अणपिणंक देवों के स्थान हैं। (वे स्थान) उपपात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, सवस्थान की अपेक्षा से भी लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ बहुत-से अणपिणंक देव निवास करते हैं, वे महर्द्धिक हैं, (इत्यादि आगे का समग्र वर्णन) (सू. १८९-१ में) जैसे पिशाचों का वर्णन है, तदनुसार यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरंति) तक (समझना चाहिए।)

[२] सन्निहिय-सामाणा यऽत्थ दुवे अणवण्णिदा अणवण्णियकुमाररायाणो परिवसंति महिङ्कीया जहा काल-महाकाला (सु. १८९ [२])।

[१९३-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में दोनों अणपर्णिकेन्द्र अणपर्णिककुमारराज—सन्निहित और सामान निवास करते हैं, जो कि महर्द्धिक हैं, (इत्यादि सारा वर्णन सू. १८९-२ में वर्णित) काल और महाकाल की तरह (समझना चाहिए।)

१९४. एवं जहा काल-महाकालाणं दोण्हं पि दाहिणिल्लाणं उत्तरिल्लाण य भणिया (सु. १९० [२], १९१ [२]) तहा सन्निहिय-सामाणाई णं पि भाणियव्वा। संगहणिगाहा—

अणवित्रय १ पणवित्रय २ इसिवाइय ३ भूयवाइया चेव ४। कंद ५ महाकंदिय ६ कुहंडे ७ पययदेवा ८ इमे इंदा ॥ १५१॥ सण्णिहिया सामाणा १ धाय विधाए २ इसी य इसिपाले ३। ईसर महेसरे या ४ हवइ सुवच्छे विसाले य ५॥ १५२॥ हासे हासरई त्रि य ६ सेते य तहा भवे महासेते ७। पयते पययपई वि य ८ नेयव्वा आणुपुर्व्वीए॥ १५३॥

[१९४] इस प्रकार जैसे दक्षिण और उत्तर दिशा के (पिशाचेन्द्र) काल और महाकाल के सम्बन्ध में जैसे (क्रमश: सूत्र १९०-२ और १९१-२ में) कहा है, उसी प्रकार सिन्नहित और सामान आदि (दक्षिण और उत्तर दिशा के अणपर्णिक आदि देवों के समस्त इन्द्रों) के विषय में कहना चाहिए।

[संग्रहणी गाथाओं का अर्थ—] (वाणव्यन्तर देवों के आठ अवान्तर भेद—) १. अणपर्णिक, २. पणपर्णिक, ३. ऋषिवादिक, ४. भूतवादिक, ५. क्रन्दित, ६. महाक्रन्दित, ७. कुष्माण्ड और ८. पतंगदेव। इनके (प्रत्येक के दो-दो) इन्द्र ये हैं—॥१५१॥ १. सिन्निहित और सामान, २. धाता और विधाता, ३. ऋषि और ऋषिपाल, ४. ईश्वर और महेश्वर, ५. सुवत्स और विशाल ॥१५२॥ ६. हास और हासरित, तथा ७. श्वेत और महाश्वेत, और ८. पतंग और पतंगपित क्रमश: जानने चाहिए॥१५३॥

विवेचन—समस्त वाणव्यन्तर देवों के स्थानों का निरूपण—प्रस्तुत सात सूत्रों (सू. १८८ से १९४ तक) में सामान्य वाणव्यन्तर देवों तथा पिशाच आदि उनके मूल आठ भेदों तथा अणपणिंक आदि आठ अवान्तर भेदों एवं तत्पश्चात् इनके दक्षिण और उत्तर दिशा के देवों तथा इन सोलह के प्रत्येक के दो-दो इन्द्रों के स्थानों, उनकी विशेषताओं, उन सबकी प्रकृति, रुचि, शरीर-वैभव, तथा अन्य ऋद्धि आदि का स्पष्ट वर्णन किया गया है।

ज्योतिष्कदेवों के स्थानों की प्ररूपणा

१९५. [१] किह णं भंते! जोइसियाणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! जोइसिया देवा परिवसंति ?

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १., पृ. ६४ से ६७ तक (ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ९६-९७

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्ताणउते जोयणसते उड्ढं उप्पइत्ता दसुत्तरे जोयणसतबाहल्ले तिरियमसंखेज्जे जोतिसविसये, एत्थ णं जोइसियाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा जोइसियविमाणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं विमाणा अद्धकविट्ठगसंठाणसंठिता सव्वफिलयामया अब्भुग्गयमूसियपहिसया इव विविहमणि-कणग-रतणभित्तचित्ता वाउद्धुतिवजयवेजयंतीपडाग-छताइछत्तकिलया तुंगा गगणतलमणुलिहमाणसिहरा जालंतररतण-पंजरुम्मिलय व्य मिण-कणगथूभियागा वियसिय-सयवत्तपुंडरीया (य) तिलय-रयणद्धचंदचित्ता णाणामिणमयदामालंकिया अंतो बिह च सण्हा तविणिज्जरुइलवालुयापत्थडा सुहफासा सिस्सिरीया सुक्रवा पासाईया दिरसिणिज्जा अभिक्रवा पडिक्रवा।

एत्थ णं जोइसियाणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखिञ्जतिभागे।

तत्थ णं बहवे जोइसिया देवा परिवसंति, तं जहा—बहस्सती चंदा सूरा सुक्का सिणच्छरा राहू धूमकेउ बुहा अंगारगा तत्ततविणज्जकणगवण्णा, जे य गहा जोइसिम्म चारं चरंति केतू य गइरइया अट्ठावीसितिवहा य नक्खत्तदेवयगणा, ठाणासंठाणसंठियाओ य पंचवण्णाओ तारयाओ, ठितलेस्सा चारिणो अविस्साममंडलगई पत्तेयणामंकपागडियचिंधमउडा महिड्डिया जाव (सु. १८८) पभासेमाणा।

ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं अग्गमिहसीणं सपरिवाराणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव (सु. १८८) विहरंति।

[१९५-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक ज्योतिष्क देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? [१९५-१ उ.] गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यन्त सम एवं रमणीय भूभाग से सात सौ नव्वै (७९०) योजन की ऊंचाई पर एक सौ दस योजन विस्तृत एवं तिरछे असंख्यात योजन में ज्योतिष्क क्षेत्र है, जहाँ ज्योतिष्क देवों के तिरछे असंख्यात लाख ज्योतिष्कविमानावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे विमान (विमानावास) आधे कवीठ (किपत्थ) के आकार के हैं और पूर्णरूप से स्फिटिकमय हैं। वे सामने से चारों ओर ऊपर उठे (निकले) हुए, सभी दिशाओं में फैले हुए तथा प्रभा से श्वेत हैं। विविध मिणियों, स्वर्ण और रत्नों की छटा से वे चित्र-विचित्र हैं; हवा से उड़ी हुई विजय-वैजयन्ती, पताका, छत्र पर छत्र (अतिछत्र) से युक्त हैं, वे बहुत ऊँचे, गगनतलचुम्बी शिखरों वाले हैं। (उनकी) जालियों के बीच में लगे हुए रत्न ऐसे लगते हैं, मानो पींजरे से बाहर निकाले गए हों। वे मिणयों और रत्नों की स्तूपिकाओं से युक्त हैं। उनमें शतपत्र और पुण्डरीक कमल खिले हुए हैं। तिलकों तथा रत्नमय

अर्धचन्द्रों से वे चित्र-विचित्र हैं तथा नानामणिमय मालाओं से सुशोभित हैं। वे अंदर और बाहर से चिकने हैं। उनके प्रस्तट (पाथड़े) सोने की रुचिर बालू वाले हैं। वे सुखद स्पर्श वाले, श्री से सम्पन्न, सुरूप, प्रसन्नता-उत्पादक, दर्शनीय, अभिरूप (अतिरमणीय) एवं प्रतिरूप (अतिसुन्दर) हैं।

इन (विमानावासों) में पर्याप्त और अपर्याप्त ज्योतिष्कदेवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से—लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

वहाँ (ज्योतिष्क विमानावासों में) बहुत-से ज्योतिष्क देव निवास करते हैं। वे इस प्रकार हैं— वृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, शनैश्चर, राहु, धूमकेतु, बुध एवं अंगारक (मंगल), ये तपे हुए तपनीय स्वर्ण के समान वर्ण वाले हैं (अर्थात्—ये किञ्चित् रक्त वर्ण के हैं।) और जो ग्रह ज्योतिष्कक्षेत्र में गित (संचार) करते हैं तथा गित में रत रहने वाला केतु, अट्टाईस प्रकार के नक्षत्रदेवगण, नाना आकारों वाले, पांच वर्णों के तारे तथा स्थितलेश्या वाले, संचार करने वाले, अविश्रान्त (बिना रुके) मंडल (वृत्त, गोलाकार) में गित करने वाले, (ये सभी ज्योतिष्क देव हैं।) (इन सब में से) प्रत्येक के मुकुट में अपने-अपने नाम का चिह्न व्यक्त होता है। 'ये महर्द्धिक होते हैं,' इत्यादि सब वर्णन (सू. १८८ के अनुसार), यावत् प्रभासित करते हुए ('पभासेमाणे') तक (पूर्ववत् समझना चाहिए)।

वे (ज्योतिष्क देव) वहाँ (ज्योतिष्कविमानावासों में) अपने-अपने लाखों विमानावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिक देवों का, अपनी-अपनी सेनाओं का अपने-अपने सेनाधिपित देवों का, अपने-अपने हजारों आत्मरक्षक देवों का तथा और भी बहुत-से ज्योतिष्क देवों और देवियों का आधिपत्य, पुरोवत्तत्व (अग्रेसरत्व), करते हुए (आगे का समग्र वर्णन) यावत् विचरण करते हैं ('विहरंति') तक सू. १८८ के अनुसार समझना चाहिए।

[२] चंदिम-सूरिया यऽत्थ दुवे जोइसिंदा जोइसियरायाणो परिवसंति महिड्डिया जाव (सु. १८८) पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं सांण जोइसियविमाणावाससतसहस्साणं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं अग्गमिहसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव विहरंति।

[१९५-२] इन्हीं (पूर्वोक्त ज्योतिष्कविमानावासों) में दो ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज—चन्द्रमा और सूर्य—िनवास करते हैं; 'जो महर्द्धिक हैंं' (इत्यादि सब वर्णन सू. १८८ के अनुसार) यावत् प्रभासित करते हुए ('पभासेमाणे') (तक पूर्ववत् समझना चाहिए।) वे वहाँ अपने-अपने लाखों ज्योतिष्कविमानावासों का, चार हजार सामानिक देवों का, सपरिवार चार अग्रमिहिषयों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपित देवों का, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से ज्योतिष्क देवों और देवियों का आधिपत्य, पुरोवर्तित्व करते हुए यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—ज्योतिष्क देवों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (सू. १९५-१, २) में ज्योतिष्क

देवों तथा उनके परिवारों एवं उनके चन्द्र, सूर्य नामक दो इन्दों के स्थानों, उनकी प्रकृति, विशेषता, प्रभुता एवं ऐश्वर्य आदि की प्ररूपणा की गई है।

सर्व वैमानिक देवों के स्थानों की प्ररूपणा

१९६. किह णं भंते! वेमाणियाणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! वेमाणिया देवा परिवसंति ?

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो उड्ढं चंदिम-सूरिय-गह-णक्खत-तारारूवाणं बहुइं जोयणसताइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसयसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुत-गेवेज्ज-अणुत्तरेसु एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं चउरासीइ विमाणावाससतसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीति मक्खातं।

ते णं विमाणा सव्वरतणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्टा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सिस्सिरीया सउज्जोया पासादीया दिरसिणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा। एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता। तिसु वि लोयस्स असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे वेमाणिया देवा परिवसंति। तं जहा—सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोग-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-ऽच्चुय-गेवेज्जगा-ऽणुत्तरोववाइया देवा।

ते णं मिग १-मिहस २-वराह ३-सीह ४-छगल ५-दहुर ६-हय ७-गयवइ ८-भुयग ९-खग्ग १०-उसभंक ११-विडिम १२-पागिडयिचंधमउडा पसिढलवरमउड-किरीडधारिणो वर-कुंडलुज्जोइयाणणा मउडिदत्तिसिरया रत्ताभा पउमपम्हगोरा सेया सुहवण्ण-गंध फासा उत्तमवेउिव्वणो पवरवत्थ-गंध-मल्लाणुलेवणधरा मिहह्हीया महाजुइया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारिवराइयवच्छा कडय-तुडियथंभियभुया अंगद-कुंडल-मट्टगंडतलकण्णपीढधारी विचित्तहत्था-भरणा विचित्त-माला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाऽणुलेवणा भासरबोंदी पलंबवणमालधरा-दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इइडीए दिव्वाए जतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसगाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं आण्याधिवतीणं साणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहुणं

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ९९ (ख) पण्णवणासुत्तं भा. १ (मूलपाठ) पृ. ६७-६८

वेमाणियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महयाऽहतनट्ट-गीय-वाइततंती-तल-ताल-तुडित-घणमुइंगपडुप्पवाइतरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१९६ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्क वैमानिक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१९६ उ.] गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एवं रमणीय भूभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारक़रूप ज्योतिष्कों के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जा कर, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में वैमानिक देवों के चौरासी लाख, सत्तानवे हजार, तेईस विमान एवं विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे विमान सर्वरत्नमय, स्फटिक के समान स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने बनाए हुए, रजरिहत, निर्मल, पंक-(या कलंक) रिहत, निरावरण कान्ति वाले, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतसिहत, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, रमणीय-रूपसम्पन्न और प्रतिरूप (अप्रतिम सुन्दर) हैं। इन्हीं (विमानावासों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक वैमानिक देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

उनमें बहुत-से वैमानिक देव निवास करते हैं। वे (वैमानिक देव) इस प्रकार हैं—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, (नौ) ग्रैवेयक एवं (पांच) अनुत्तरौपपातिक देव।

वे (सौधर्म से अच्युत तक के देव क्रमशः)—१. मृग, २. मिहष, ३. वराह, (शूकर), ४. सिंह, ५. बकरा (छगल), ६. दर्दुर (मेंढक), ७. हय (अश्व), ८. गजराज, ९. भुजंग (सर्प), १०. खङ्ग (चौपाया वन्य जानवर या गैंडा), ११. वृषभ (बैल) और १२. विडिम के प्रकट चिह्न से युक्त मुकुट वाले, शिथिल और श्रेष्ठ मुकुट और किरीट के धारक, श्रेष्ठ कुण्डलों से उद्योतित मुख वाले, मुकुट के कारण शोभायुक्त, रक्त आभायुक्त, कमल के पत्र के समान गोरे, श्वेत, सुखद वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श वाले, उत्तम विक्रियाशक्तिधारी, प्रवर वस्त्र, गन्ध, माल्य और अनुलेपन के धारक महर्द्धिक, महाद्युतिमान् महायशस्वी, महाबली, महानुभाग, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले हैं। कड़े और बाजूबंदों से मानो भुजाओं को उन्होंने स्तब्ध कर रखा है, अंगद, कुण्डल आदि आभूषण उनके कपोलस्थल को सहला रहे हैं, कानों में वे कर्णपीठ और हाथों में विचित्र कराभूषण धारण किए हुए हैं। विचित्र पुष्पमालाएँ मस्तक पर शोभायमान हैं। वे कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए तथा कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन धारण किये हुए होते हैं उनका शरीर (तेज से) देदीप्यमान होता है। वे लम्बी वनमाला धारण किये हुए होते हैं। तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से, दिव्य लेश्या से दसों दिशाओं को उद्योतित एवं प्रभासित करते हुए; वे (वैमानिक देव)

वहाँ अपने-अपने लाखों विमानावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिक देवों का, अपने-अपने त्रायस्त्रिशक देवों का, अपने-अपने लोकपालों का, सपरिवार अपनी-अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सेनाधिपित देवों का, अपने-अपने हजारों आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से वैमानिक देवों और देवियों का आधिपत्य, पुरोवर्तित्व (अग्रेसरत्व), स्वामित्व, भर्तृत्व महत्तरकत्व, आज्ञैश्वरत्व तथा सेनापितत्व करते-कराते और पालते-पलाते हुए निरन्तर होने वाले महान् नाट्य, गीत तथा कुशल वादकों द्वारा बजाये जाते हुए वीणा, तल, ताल, त्रुटित घनमृदंग आदि वाद्यों की समुत्पन्न ध्विन के साथ दिव्य शब्दादि कामभोगों को भोगते हुए विचरण करते हैं।

१९७. [१] किह णं भंते! सोहम्मगदैवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! सोहम्मगदेवा परिवसंति ?

गोयमा! जंबुद्दीवे दोवे मंदरस्स पव्वतस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमर-मणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गह-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूणि जोयणसताणि बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसतसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं सोहम्मे णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायते उदीण-दाहिणवित्थिण्णे अद्धचंद-संठाणसंठिते अच्चिमालिभासरासिवण्णाभे असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ असंखेज्जओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खंभेणं, असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं, सव्वरयणामए अच्छे जाव (सु. १९६) पडिक्तवे। तत्थ णं सोहम्मगदेवाणं बत्तीसं विमाणावाससतसहस्सा हवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा जाव (सु. १०६) पडिक्तवा।

तेसि णं विमाणाणं बहुमञ्झदेसभागे पंच वडेंसया पण्णत्ता। तं जहा—असोगवडेंसए १ सित्तवण्णवडेंसए २ चंपगवडेंसए ३ चूयवडेंसए ४ मझे यऽत्थ सोहम्मवडेंसए ५। ते णं वडेंसया सव्वरयणामया अच्छा जाव (सु. १९६) पडिरूवा। एत्थ णं सोहम्मगदेवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तीसु वि लोगसस असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे सोहम्मगदेवा परिवसंति महिङ्कीया जाव (सु. १९६) पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहसीणं एवं जहेव ओहियाणं (सु. १९६) तहेव एतेसिं पि भाणितव्वं जाव आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं बहूणं सोहम्मग-कप्यवासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव (सु. १९६) विहरंति।

[१९७-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त सौधर्मकल्पगत देवों के स्थान कहाँ कहे हैं ? भगवन्! सौधर्मकल्पगत देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९७८-१ उ.] गौतम! जम्बूद्वीपनामक द्वीप में सुमेरु पर्वत के दक्षिण में, इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एवं रमणीय भूभाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारकरूप ज्योतिष्कों के अनेक

सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर जाने पर सौधर्म नामक कल्प कहा गया है। वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर दक्षिण में विस्तीर्ण, अर्द्ध चन्द्र के आकार में संस्थित, अर्चियों—ज्योतियों की माला तथा दीप्तियों की राशि के समान वर्ण—कान्ति वाला है। उसकी लम्बाई और चौड़ाई असंख्यात कोटि योजन ही नहीं, बल्कि असंख्यात कोटाकोटि योजन की है, तथा परिधि भी असंख्यात कोटाकोटि योजन की है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, (इत्यादि सब वर्णन), यावत् 'प्रतिरूप है' तक सू. १९६ के अनुसार (समझना चाहिए।) उस (सौधर्मकल्प) में सौधर्म देवों के बत्तीस लाख विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, (इत्यादि सब वर्णन) सू. १९६ के अनुसार यावत् प्रतिरूप हैं, तक, समझना चाहिए।

इन विमानों के बिलकुल मध्यदेशभाग में (ठीक बीचों-बीच) पांच अवतंसक कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१. अशोकावतंसक, २. सप्तपर्णावतंसक, ३. चंपकावतंसक, ४. चूतावतंसक और इन चारों के मध्य में ५-पांचवा सौधर्मावतंसक। ये अवतंसक रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, यावत 'प्रतिरूप हैं' तक सब वर्णन सू. १९६ के अनुसार समझ लेना चाहिए। इन्हीं (अवतंसकों) में पर्याप्त और अपर्याप्त सौधर्मक देवों के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। उनमें बहुत से सौधर्मक देव निवास करते हैं, जो कि 'महद्धिक हैं' (इत्यादि शेष वर्णन यावत् प्रभासित करते हुए ('पभासेमाणा') तक (सू. १९६ के अनुसार) (पूर्ववत् कहना चाहिए।) वे वहाँ अपने—अपने लाखों विमानों का, अपने—अपने हजारों सामानिक देवों का, इस प्रकार जैसे औघिक (सामान्य) वैमानिकों के विषय में (सू. १९६) में कहा है, वैसे ही इनके विषय में भी कहना चाहिए। यावत् हजारों आत्मरक्षक देवों का, तथा अन्य बहुत-से सौधर्मकल्पवासी वैमानिक देवों और देवियों का आधिपत्य, पुरोवर्त्तित्व इत्यादि यावत् विचरण करते हैं ('विहरंति') तक (सू. १९६ के अनुसार) करना चाहिए।

[२] सक्के यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसित वज्जपाणी पुरंदरे सतक्कतू सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढलोगाधिवती वत्तीसिवमाणावाससतसहस्साधिवती एरावणवाहणे सुरिंदे अरयंबरवत्थधरे आलइयमाल-मउडे णवहेमचारुचित्तचंचलकुंडलिविलिहिज्जमाणगंडे महिड्ढिए जाव (सु. १९६) पभासेमाणे।

से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससतसहस्साणं चंडरासीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चंडण्हं लोगपालाणं अट्टण्हं अग्गभिहसीणं सपिरवाराणं तिण्हं पिरसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चंडण्हं चंडरासीईणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं सोहम्मगकप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुळ्वमाणे जाव (सु. १९६) विरहइ।

[१९७-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में देवेन्द्र देवराज शक्र निवास करता है; जो वज्रपाणि पुरन्दर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मघवा, पाकशासन, दक्षिणार्द्धलोकाधिपति, बत्तीस लाख विमानों का अधिपति है। ऐरावत हाथी जिसका वाहन है, जो सुरेन्द्र है, रजरहित स्वच्छ वस्त्र का धारक है, संयुक्त माला और मुकुट पहनता है तथा जिसके कपोलस्थल नवीन स्वर्णमय, सुन्दर, विचित्र एवं चंचल कुण्डलों से विलिखित होते हैं। वह महद्धिक है, (इत्यादि आगे का सब वर्णन) यावत् प्रभासित करता हुआ, तक (सू. १९६ के अनुसार) पूर्ववत् (जानना चाहिए)।

वह (देवेन्द्र देवराज शक्र) वहाँ बत्तीस लाख विमानावासों का, चौरासी हजार सामानिक देवों का, तेतीस त्रायस्त्रिशक देवों का, चार लोकपालों का, आठ सपरिवार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, चार चौरासी हजार—अर्थात्—तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से सौधर्मकल्पवासी वैमानिक देवों और देवियों का आधिपत्य एवं अग्रेसरतव करता हुआ, (इत्यादि सब वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक पूर्ववत् (समझना चाहिए)।

१९८. [१] किह णं भंते! ईसाणगदेवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! ईसाणदेवा परिवसंति ?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वतस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिजाओ भूमिभागाओ उद्दं चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-तारारूवाणं बहू इं जोयणसताइं बहू इं जोयणसहस्साइं जाव (सु १९७ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं ईसाणे णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायते उदीण-दाहिणवित्थिण्णे एवं जहा सोहम्मे (सु. १९७ [१]) जाव पडिरूवे।

तत्थ णं ईसाणगदेवाणं अट्ठावीसं विमाणावाससतसहस्सा हवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा सळ्तरयणामया जाव पडिरूवा।

तेसि णं बहुमज्झदेसभाए पंच वडेंसगा पण्णत्ता, तं जहा—अंकवडेंसए १ फलिहवडेंसए २ रतणवडेंसए ३ जातरूववडेंसए ४ मज्झे एत्थ ईसाणवडेंसए ५। ते णं वडेंसया सव्वरयणामया जाव (सु. १९६) पडिरूवा।

एत्थ णं ईसाणग देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु व लोगस्स असंखेञ्जति-भागे। सेसं जहा सोहम्मगदेवाणं जाव (सु. १९७ [१]) विहरंति।

[१९८-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त ईशानक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! ईशानक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९८-१ उ.] गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सुमेरुपर्वत के उत्तर में, इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम और रमणीय भूभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्कों से अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाकर ईशान नामक कल्प (देवलोक) कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा और

द्वितीय स्थानपद] [१८९

. उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण है, इस प्रकार (शेष वर्णन) सौधर्म (कल्प के वर्णन) के समान (सू. १९७-१ के अनुसार) यावत्—'प्रतिरूप है' तक समझना चाहिए।

उस (ईशानकल्प) में ईशान देवों के अट्ठाईस लाख विमानावास हैं। वे विमान सर्वरत्नमय यावत् (पूर्ववत्) प्रतिरूप हैं।

उन विमानावासों के ठीक मध्यदेशभाग में पांच अवतंसक कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१-अंकावतंसक, २-स्फिटिकावतंसक, ३-रत्नावतंसक, ४-जातरूपावतंसक और इनके मध्य में ५-ईशानावतंसक। वे (सब) अवतंसक पूर्णरूप से रत्नमय यावत् प्रतिरूप हैं, (यह सब वर्णन सू. १९६ के अनुसार जानना चाहिए)।

इन्हीं (अवतंसकों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक ईशान देवों के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। शेष सब (वर्णन) सौधर्मक देवों के (सू. १९७-१ में कथित) (वर्णन के) अनुसार यावत् विचरण करते हैं ('विहरंति') तक (समझना चाहिए)।

[२१] ईसाणे यऽत्थ देविंदे देवराया पित्वसित सूलपाणी वसभावहणे उत्तरड्ढलोगाधिवती अद्वावीसिवमाणावाससतसहस्साधिवती अरयंबरवत्थधरे सेसं जहा सक्कस्स (सु. १९७ [२]) जाव पभासेमाणे।

से णं तत्थ अट्टावीसाए विमाणावाससतसहस्साणं असीतीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्टण्हं अग्गमिहसीणं सपिरवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्ह अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउण्हं असीतीणं आयरक्खेदेवसायस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं ईसाणकप्यवासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुळ्वमाणे जाव (१९६) विहरति।

[१९८-२] इस ईशानकल्प में देवेन्द्र देवराज ईशान निवास करता है, शूलपाणि, वृषभ-वाहन, उत्तरार्द्धलोकाधिपति, अट्ठाईस लाख विमानावासों का अधिपति, रजरिहत स्वच्छ वस्त्रों का धारक है; शेष वर्णन (सू. १९७-२ में अंकित) शक्र के (वर्णन के) समान, यावत् 'प्रभासित करता हुआ' तक (समझना चाहिए)।

वह (ईशानेन्द्र) वहाँ अट्ठाईस लाख विमानावासों का, अस्सी हजार सामानिक देवों का, तेतीस त्रायस्त्रिशक देवों का, चार लोकपालों का, आठ सपरिवार अग्रमिहिषयों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपित देवों का, चार अस्सी हजार, अर्थात्—तीन लाख बीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से ईशानकल्पवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, अग्रेसरत्व करता हुआ, (आगे का सब वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (पूर्ववत् समझना चाहिए)।

१९९. [१] किह णं भंते! सणंकुमारदेवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! सणंकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा! सोहम्मस्स कप्पस्स उप्पिं सपिक्खि सपिडिदिसिं बहूईं जोयणाईं बहूईं जोयणसताईं बहूईं जोयणसहस्साईं बहूईं जोयणसतसहस्साईं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडीओ उद्दं दूरं उप्पइत्ता एत्थणं सणंकुमारे णामं कप्पे पाईण-पडीणायते उदीण-दाहिण-वित्थिण्णे जहा सोहम्मे (सु. १९७ [१]) जाव पडिरूवे

एत्थ णं सणंकुमाराणं देवाणं बारस विमाणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा सव्वरयणामया जाव (सु. १९६) पिडरूवा। तेसि णं विमाणाणं बहुमञ्झदेसभागे पंच वडेंसगा पण्णत्ता। ते जहा—असोगवडेंसए १ सित्तवण्णवडेंसए २ चंपगवडेंसए ३ चूयवडेंसए ४ मञ्झे यऽत्थ सणंकुमारवडेंसए ५। ते णं वडेंसया सव्वरयणामया अच्छा जाव (सु. १९६) पिडरूवा। एत्थ णं सणंकुमारदेवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेञ्जइभागे। तत्थ णं बहवे सणंकुमारा देवा परिवसंति मिहिड्ढिया जाव (सु. १९६) पभासेमाणा विहरंति। णवरं अग्यमिहसीओ णित्थ।

[१९९-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक सनत्कुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! सनत्कुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९९-१ उ.] गौतम! सौधर्म-कल्प के ऊपर समान (पूर्वापर दक्षिणोत्तररूप) पक्ष (पार्श्व) और समान प्रतिदिशा (विदिशा) में बहुत योजन आदि अनेक सौ योजन अनेक हजार योजन दूर, सनत्कुमार नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण है, (इत्यादि सब वर्णन) सौधर्मकल्प के (सू. १९७-१ में उल्लिखित वर्णन के) अनुसार यावत् 'प्रतिरूप है' तक (समझना चाहिए)।

इसी (सनत्कुमारकल्प) में सनत्कुमार देवों के बारह लाख विमान हैं, ऐसा कहा गया है। वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय हैं, यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (सू. १९६ के अनुसार पूर्ववत् वर्णन समझना चाहिए)। उन विमानों के एकदम बीचोंबीच में पांच अवतंसक कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१— अशोकावतंसक, २—सप्तपर्णावतंसक, ३—चंपकावतंसक, ४—चूतावतंसक और इनके मध्य में ५— सनत्कुमारावतंसक है। वे अवतंसक सर्वरत्नमय, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं, (तक का वर्णन सू. १९६ के अनुसार) (पूर्ववत् समझना चाहिए)। इन (अवतंसको) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक सनत्कुमार देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। उन (स्थानों) में बहुत-से सनत्कुमार देव निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं, (इत्यादि सब वर्णन सू १९६ के अनुसार) यावत् 'प्रभासित करते हुए विचरण करते हैं' तक पूर्ववत् समझना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ अग्रमहिषयां नहीं हैं।

[२] सणंकुमारे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसित, अरयंबरवत्थधरे सेसं जहा सक्कस (सु. १९७ [२]) । से णं तत्थ बारसण्हं विमाणावाससतसहस्साणं बावत्तरीए समाणियसाहस्सीणं सेसं जहा सक्कस (सु. १९७ [२]) अग्गमिहसीवर्जा। णवरं चउण्हं बावत्तरीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं जाव (सु. १९६) विहरइ।

[१९९-२] यहीं देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार निवास करता है, जो रज से रहित वस्त्रों का धारक है, (इत्यादि) शेष वर्णन जैसे (सू. १९७-२ में) शक्र का कहा है, (उसी प्रकार इसका समझना चाहिए)। वह (सनत्कुमारेन्द्र) बारह लाख विमानावासों का, बहत्तर हजार सामानिक देवों का, (इत्यादि) शेष सब वर्णन (जैसे सू. १९७-२ में) शक्रेन्द्र का किया गया है, इसी प्रकार (यहाँ भी) 'अग्रमहिषियों को छोड़कर' (करना चाहिए)। विशेषता यह कि चार बहत्तर हजार, अर्थात्—दो लाख अठासी हजार आत्मरक्षक देवों का......यावत् 'विचरण करता है।' (यह कहना चाहिए)।

२००. [१] किह णं भंते! माहिंदाणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! माहिंदगदेवा परिवसंति ?

गोयमा! ईसाणस्स कप्पस्स उप्पं सपिकंख सपिडिदिसिं बहूई जोयणाई जाव (सु. १९९ [१]) बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं माहिंदे णामं कप्पे पायीण-पडीणायए एवं जहेव सणंकुमारे (सु. १९९ [१]), णवरं अट्ठ विमाणावाससतसहस्सा। वडेंसया जहा ईसाणे (सु. १९८ [१]), णवरं मज्झे यऽत्थ माहिंदवडेंसए। एवं सेसं जहा सणंकुमारगदेवाणं (सु. १९६) जाव विहरंति।

[२००-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक माहेन्द्र देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! माहेन्द्र देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२००-१ उ.] गौतम! ईशानकल्प के ऊपर समान पक्ष (पार्श्व या दिशा) और समान विदिशा में बहुत योजन, यावत्—(सू. १९९-१ के अनुसार) बहुत कोड़ाकोड़ी योजन ऊपर दूर जाने पर वहाँ माहेन्द्र नामक कल्प कहा गया है, पूर्व-पश्चिम में लम्बा इत्यादि वर्णन जैसे (सू. १९९-१ में) सनत्कुमारकल्प का किया गया है, वैसे इसका भी समझना चाहिए। विशेष यह है कि इस कल्प में विमान आठ लाख हैं। इनके अवतंसक (सू. १९८-१ में प्रतिपादित) ईशानकल्प के अवतंसकों के समान जानने चाहिए। विशेषता यह है कि इनके बीच में माहेन्द्रअवतंसक है। इस प्रकार शेष सब वर्णन (सू. १९६ में वर्णित) सनत्कुमार देवों के समान, यावत् 'विचरण करते हैं', तक समझना चाहिए।

[२] माहिंदे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसित अरयंबरवत्थधरे, एवं जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [२]) जाव विहरित। णवरं अट्ठण्हं विमाणावाससतसहस्साणं सत्तरीए सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं सत्तरीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं जाव (सु. १९६) विहरइ।

[२००-२] यहीं देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र निवास करता है; जो रज से रहित स्वच्छ—श्वेत वस्त्र-धारक है, इस प्रकार (आगे का समस्त वर्णन सू. १९९-२ में उक्त) सनत्कुमारेन्द्र के वर्णन की तरह यावत् 'विचरण करता है' तक समझना चाहिए। विशेष यह है कि माहेन्द्र आठ लाख विमानावासों का, सत्तर हजार सामानिक देवों का, चार सत्तर हजार अर्थात्—दो लाख अस्सी हजार आत्मरक्षक देवों का— (शेष सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' (तक समझना चाहिए)। २०१. [१] किह णं भंते! बंभलोगदेवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! बंभलोगदेवा परिवसंति? गोयमा! सणंकुमार-माहिंदाणं कप्पाणं उप्पं सपिकंख सपिडिदिसिं बहूइं जोयणाइं जाव (सु. १९९ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं बंभलोए णामं कप्पे पाईण-पडीणायए उदीणदाहिणवित्थिण्णे पिडिपुत्रचंदसंठाणसंठिते अच्चिमाली-भासरासिप्पभे अवसेसं जहा सणंकुमाराणं (सु १९९ [१]), णवरं चत्तारि विमाणावाससतसहस्सा। विडंसगा जहा सोहम्मवडेंसया (सु. १९७ [१]), णवरं मञ्झे यऽत्थ बंभलोयविडंसए। एत्थ णं बंभलोगाणं देवाणं ठाणा पन्नत्ता। सेसं तहेव जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०१-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त ब्रह्मलोक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! ब्रह्मलोक देव कहाँ निवास करते हैं?

[२०१-१ उ.] गौतम! सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पों के ऊपर समान पक्ष (पार्श्व या दिशा) और समान विदिशा में बहुत योजन यावत् ऊपर दूर जाने पर, वहाँ ब्रह्मलोक नामक कल्प है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण, परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार का, ज्योति-माला तथा दीप्तिराशि की प्रभा वाला है। शेष वर्णन, सनत्कुमारकल्प की तरह (सू. १९९-१ के अनुसार) समझना चाहिए। विशेष यह है कि (इस कल्प में) चार लाख विमानावास हैं। इनके अवतंसक (सू. १९७-१ में कथित) सौधर्म-अवतंसकों के समान समझने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारों अवतंसकों) के मध्य में ब्रह्मलोक अवतंसक है; जहाँ कि ब्रह्मलोक देवों के स्थान कहे गए हैं। शेष वर्णन उसी प्रकार (सू. १९६ में कथित वर्णन के अनुसार) यावत् 'विचरण करते हैं', तक समझना चाहिए।

[२] बंभे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसित अरयंबरवत्थधरे, एवं जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [२]) जाव विहरित। णवरं चउण्हं विमाणावाससतसहस्साणं सट्टीए सामाणियसाहस्सीणं चउण्ह य सट्टीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहुणं जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०१-२] ब्रह्मलोकावतंसक में देवेन्द्र देवराज ब्रह्म निवास करता है; जो रज-रहित स्वच्छ वस्त्रों का धारक है, इस प्रकार जैसे (सू. १९९-२ में) सनत्कुमारेन्द्र का वर्णन है, वैसे ही यहाँ यावत् 'विचरण करता है', तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि (यह ब्रह्मेन्द्र) चार लाख विमानावासों का, साठ हजार सामानिकों का, चार साठ हजार अर्थात्—दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत से ब्रह्मलोककल्प के देवों का आधिपत्य करता हुआ (इत्यादि शेष वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (समझना चाहिए)।

२०२. [१] किह णं भंते! लंतगदेवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! लंतगदेवा परिवसंति ?

गोयमा! बंभलोगस्स कप्पस्स उप्पं सपिवंख सपिडिदिसिं बहूइं जोयणसयाइं जाव (सु. १९९

१. 'जाव' और 'जहा' शब्द से तत्स्थानीय सारा बीच का पाठ ग्राह्य है।

[१]) बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उहुं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं लंतए णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायए जहा बंभलोए (सु. २०१ [१]), णवरं पण्णासं विमाणावाससहस्सा भवंतीति मक्खायं। वडेंसगा जहा ईसाणवडेंसगा (सु. १९८ [१]), णवरं मज्झे यऽत्थ लंतगवडेंसए। देवा तहेव जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०२-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त लान्तक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! लान्तक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०२-१ उ.] गौतम! ब्रह्मलोक कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में अनेक सौ योजन यावत् बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाने पर, लान्तक नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा है; (इत्यादि सब वर्णन) जैसे (सू. २०१-१ में) ब्रह्मलोक (कल्प) का (किया गया) है, (उसी तरह यहाँ भी करना चाहिए।) विशेष यह है कि (इस कल्प में) पचास हजार विमानावास हैं, (इनके) अवंतसक ईशानावतंसक (सू. १९८-१ में उक्त) के समान समझने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारों) के मध्य में (पांचवां) लान्तक अवतंसक है। (सू. १९६ में) (जिस प्रकार सामान्य वैमानिक देवों का वर्णन है,) उसी प्रकार (लान्तक) देवों का भी यावत् 'विचरण करते हैं', तक (वर्णन समझना चाहिए)।

[२] लंतए यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसित जहा सणंकुमारे। (सु. १९९ [२]) णवरं पण्णासाए विमाणावाससहस्साणं पण्णासाए सामाणियसाहस्सीणं चउण्ह य पण्णासाणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहुणं जाव (सु. १९६) विहरित।

[२०२-२] इस लान्तक अवतंसक में देवेन्द्र देवराज लान्तक निवास करता है, (इसका समग्र वर्णन) (सू. १९९-२ में अंकित) सनत्कुमारेन्द्र की तरह (समझना चाहिए)। विशेष यह है कि (लान्तकेन्द्र) पचास हजार विमानावासों का, पचास हजार सामानिकों का, चार पचास हजार अर्थात्—दो लाख आत्मरक्षक देवों का, तथा बहुत-से लान्तक देवों का आधिपत्य करता हुआ इत्यादि (शेष समग्र वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (समझ लेना चाहिए)।

२०३. [१] किह णं भंते! महासुक्काणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! महासुक्का देवा परिवसंति ?

गोयमा! लंतयस्स कप्पस्स उप्पं सपिकंख सपिडिदिसिं जाव (सु. १९९ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं महासुक्के णामं कप्पे पण्णत्ते-पायीण-पडीणायए उदीण-दाहिणिवित्थिण्णे जहा बंभलोए णवरं चत्तालीसं विमाणावाससहस्सा भवंतीति मक्खातं। वडेंसगा जहा सोहम्मवडेंसगा (सु. १९७ [१]), णवरं मज्झे यऽत्थ महासुक्कवडेंसए जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०३-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक महाशुक्र देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! महाशुक्र देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०३-१ उ.] गौतम! लान्तककल्प के ऊपर समान दिशा में (सू. १९९-१ के आगे का वर्णन) यावत् ऊपर जाने पर, महाशुक्र नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण है, इत्यादि, जैसे (सू. २०१-१ में) ब्रह्मलोक का वर्णन है, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। विशेष इतना ही है कि (इसमें) चालीस हजार विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है। इनके अवतंसक (सू. १९७-१ में उक्त) सौधर्मावतंसक के समान समझने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारों) के मध्य में (पांचवां) महाशुक्रावतंसक है, (इससे आगे का) यावत् 'विचरण करते हैं', तक (का वर्णन) (सू. १९६-१ के अनुसार) (कह देना चाहिए)।

[२] महासुक्के यऽत्थ देविंदे देवराया जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [२]), णवरं चत्तालीसाए विमाणावाससहस्साणं चत्तालीसाए सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं य चत्तालीसाणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं जाव (सु. १९६) विहरित।

[२०३-२] इस महाशुक्रावतंसक में देवेन्द्र देवराज महाशुक्र रहता है, (जिसका सर्व वर्णन सू. १९९ में उक्त) सनत्कुमारेन्द्र के समान समझना चाहिए। विशेष यह है कि (वह महाशुक्रेन्द्र) चालीस हजार विमानावासों का, चालीस हजार सामानिकों का, और चार चालीस हजार, अर्थात् एक लाख साठ हजार आत्मरक्षक देवों का अधिपतित्व करता हुआ......(आगे का वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (समझना चाहिए)।

२०४. [१] किह णं भंते! सहस्सारदेवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! सहस्सारदेवा परिवसंति ?

गोयमा! महासुक्कस्स कप्पस्स उप्पिं सपिकंख सपिडिदिसिं जाव (सु. १९९ [१]), उप्पइत्ता एत्थ णं सहस्सारे णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायते जहा बंभलोए (सु. २०१ [१]), णवरं छिव्वमाणावाससहस्सा भवंतीति मक्खातं। देवा तहेव (सु. १९७ [७]) जाव वडेंसगा जहा ईसाणस्स वडेंसगा (सु. १९८ [१]), णवरं मज्झे यऽत्थ सहस्सारवडेंसए जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०४-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त सहस्रार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! सहस्रार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०४-१ उ.] गौतम! महाशुक्र कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा से यावत् (सू. १९९-१ के अनुसार) ऊपर दूर जाने पर, वहाँ सहस्रार नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा है, (इत्यादि समस्त वर्णन) जैसे (सू. २०१-१ में) ब्रह्मलोक कल्प का है, (उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए।) विशेष यह है कि (इस सहस्रार कल्प में) छह हजार विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है। (सहस्रार) देवों का वर्णन सू. १९७-१ के अनुसार यावत् 'अवतंसक है' तक उसी प्रकार (पूर्ववत्) कहना चाहिए। इनके अवतंसकों के विषय में ईशान (कल्प) के अवतंसकों की तरह (सू. १९८-१ के

अनुसार) जानना चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारों) के बीच में (पांचवां) 'सहस्रारावतंसक' समझना चाहिए। (इससे आगे) यावत् 'विचरण करते हैं' तक का भी वर्णन (सू. १९६ के अनुसार) जान लेना चाहिए।

[२] सहस्सारे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसित जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [२]), णवरं छण्हं विमाणावाससहस्साणं तीसाए सामाणियसाहस्सीणं चउण्ह य तीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं जाव (सु. १९६) आहेवच्चं कारेमाणे विहरित।

[२०४-२] इसी स्थान पर देवेन्द्र देवराज सहस्रार निवास करता है। (उसका वर्णन) जैसे (१९२-२ में) सनत्कुमारेन्द्र का है, उसी प्रकार का वर्णन (समझना चाहिए)। विशेष यह है कि (सहस्रारेन्द्र) छह हजार विमानावासों का, तीस हजार सामानिक देवों का और चार तीस हजार, अर्थात्—एक लाख बीस हजार आत्मरक्षक देवों का यावत् (सू. १९६ के अनुसार बीच का वर्णन) आधिपत्य करता हुआ विचरण करता है।

२०५. [१] किह णं भंते! आणय-पाणयाणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! आणय-पाणय देवा परिवसंति ?

गोयमा! सहस्सारस्स कप्पस्स उप्पिं सपिकंख सपिडिदिसिं जाव (सु. १९९ [१]), उप्पइत्ता एत्थ णं आणय-पाणयनामेणं दुवे कप्पा पण्णत्ता पाईण-पडीणायता उदीण-दाहिणिवित्थिण्णा अद्धचंद-संठाणसंठिता अच्चिमाली-भासरासिप्पभा, सेसं जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [१]) जाव पिडिरूवा। तत्थ णं आणय-पाणयदेवाणं चत्तारि विमाणावाससता भवंतीति मक्खायं जाव पिडरूवा। विडंसगा जहा सोहम्मे (सु. १९७ [१]), णवरं मज्झे पाणयवडेंसए। ते णं वडेंसगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पिडरूवा (सु. १९६)। एत्थ णं आणय-पाणयदेवाणं पज्जत्ताऽज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे आणय-पाणयदेवा परिवसंति महिड्ढीया जाव (सु. १९६) पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससयाणं जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०५-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक आनत एवं प्राणत देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! आनत-प्राणत देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०५-१ उ.] गौतम! सहस्रार कल्प के ऊपर समान दिशा और विदिशा में, (इत्यादि सू. १९९-१ के अनुसार) यावत् ऊपर दूर जा कर, यहाँ आनत एवं प्राणत नाम के दो कल्प कहे गए हैं; जो पूर्व-पश्चिम में लम्बे और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण, अर्द्धचन्द्र के आकार में संस्थित, ज्योतिमाला और दीप्तिराशि की प्रभा के समान हैं, शेष सब वर्णन (सू. १९९-१ में उक्त) सनत्कुमारकल्प के वर्णन की तरह यावत् प्रतिरूप हैं, तक (समझना चाहिए।) उन कल्पों में आनत और प्राणत देवों के चार सौ विमानावास हैं, ऐसा कहा है; विमानावासों का वर्णन यावत् प्रतिरूप हैं, तक पूर्ववत् कहना चाहिए। जिस प्रकार सौधर्मकल्प के अवतंसक सू. १९७-१ में कहे हैं, इसी प्रकार इनके अवतंसक कहने चाहिए। विशेष यह है कि

इन (चारों) के बीच में (पांचवां) प्राणतावतंसक है। वे अवतंसक पूर्णरूप से रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, (बीच का वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक कहना चाहिए। इन (अवतंसकों) में पर्यात-अपर्यात्त आनत-प्राणत देवों के स्थान कहे गए हैं। ये स्थान तीनों अपेक्षाओं से, लोक के असंख्यातवें भाग में हैं; जहाँ बहुत-से आनत-प्राणत देव निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं, यावत् (बीच का पाठ सू. १९६ के अनुसार) 'प्रभासित करते हुए' तक समझ लेना चाहिए। वे (आनत-प्राणत देव) वहाँ अपने-अपने सैकड़ों विमानों का यावत् आधिपत्य करते हुए विचरते हैं।

[२] पाणए यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसित जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [२]), णवरं चउण्हं विमाणावाससयाणं वीसाए सामाणियसाहस्सीणं असीतीए आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहुणं जाव (सु. १९६) विहरित।

[२०५-२] यही देवेन्द्र देवराज प्राणत निवास करता है, जिस प्रकार (सू. १९९-२ में) सनत्कुमारेन्द्र का वर्णन है, (तदनुसार यहाँ भी प्राणतेन्द्र का समझना चाहिए।) विशेष यह है कि (यह प्राणतेन्द्र) चार सौ विमानावासों का, बीस हजार सामानिक देवों का तथा अस्सी हजार आत्मरक्षकदेवों का एवं अन्य बहुत-से देवों का अधिपतित्व करता यावत् 'विचरण करता है' तक (का वर्णन सू. १९६ के अनुसार समझना चाहिए)।

२०६. [१] किह णं भंते! आरण-ऽच्चुताणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! आरण-ऽच्चुता देवा परिवसंति ?

गोयमा! आणय-पाणयाणं कप्पाणं उप्पं सपिकंख सपिडिदिसिं एत्थ णं आरणऽच्च्या णामं दुवे कप्पा पण्णत्ता, पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणवित्थिण्णा अद्धचंदसंठाणसंठिता अच्चिमाली-भासरासिवण्णप्पभा असंखेज्जाओं जोयणकोडाकोडीओ आयाम विक्खंभेणं असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ पिरक्खेवेणं सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्टा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सिस्सिरीया सउज्जोया पासाईया दिरसणिज्जा अभिक्तवा, एत्थ णं आरण-ऽच्युताणं देवाणं तिन्नि विमाणावाससता हवंतीति मक्खायं।

ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा मट्टा नीरया निम्मला निष्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सिस्सिरीया सउज्जोता पासाईया दिरसिणिज्जा अभिरूवा पिडरूवा। तेसि णं विमाणाणं बहुमञ्झदेसभाए पंच वडेंसगा पण्णत्ता, तं जहा—अंकवडेंसए १ फिलहवडेंसए २ रयणवडेंसए ३ जायरूववडेंसए ४ मञ्झे यऽत्थ अच्चुतवडेंसए ५। ते णं वडेंसया सव्वरयणामया जाव (सु. २०६ [१]) पिडरूवा। एत्थ णं आरणऽच्चुयाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे आरणऽच्चुता देवा जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०६-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक आरण और अच्युत देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! आरण और अच्युत देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०६-१ उ.] गौतम! आनत-प्राणत कल्पों के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में, यहाँ आरण और अच्युत नाम के दो कल्प कहे गए हैं, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बे और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण हैं, अर्द्धचन्द्र के आकार में संस्थित और अर्चिमाली (सूर्य) की तेजोराशि के समान प्रभा वाले हैं। उनकी लम्बाई-चौड़ाई असंख्यात कोटा-कोटी योजन तथा परिधि भी संख्यात कोटा-कोटी योजन की है। वे विमान पूर्णत: रत्नमय, स्वच्छ, स्निग्ध, कोमल, घिसे हुए तथा चिकने किए हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्यंक, निरावरण कान्ति से युक्त, प्रभामय, श्रीसम्पन्न, उद्योतमय, प्रसन्नता-उत्पादक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप (अतीव सुन्दर) हैं। उन विमानों के ठीक मध्यप्रदेशभाग में पांच अवतंसक कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१. अंकावतंसक, २. स्फटिकावतंसक, ३. रत्नावतंसक, ४. जातरूपावतंसक और इन चारों के मध्य में, ५. अच्युतावतंसक है। ये अवतंसक सर्वरत्नमय हैं, (तथा सू. २०६-१ में कहे अनुसार) यावत् प्रतिरूप हैं। इनमें आरण और अच्युत देवों के पर्याप्तकों एवं अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। इनमें बहुत-से आरण और अच्युत देव यावत् (सू. १९६ के वर्णन के अनुसार) विचरण करते हैं।

[२] अच्चुते यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसित जहा पाणए (सु. २०५ [२]) जाव विहरित । णवरं तिण्हं विमाणावाससताणं दसण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तालीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं आहेवच्चं कुळ्यमाणे जाव (सु. १९६) विहरित ।

> बत्तीस अट्ठवीसा बारस अट्ठ चडरो सतसहस्सा। पण्णा चत्तालीसा छ च्च सहस्सा सहस्सारे॥१५४॥ आणय-पाणयकप्पे चत्तारि सयाऽऽरण-ऽच्चुए तिन्नि। सत्त विमाणसयाइं चडसु वि एएसु कप्पेसु॥१५५॥

सामाणियसंगहणीगाहा---

चउरासीइ १ असीई २ बावत्तरि ३ सत्तरी य ३ सट्टी य ५। पण्णा ६ चत्तालीसा ७ तीसा ८ वीसा ९-१० दस सहस्सा ११-१२॥१५६॥ एते चेव आयरक्खा चउगुणा।

[२०६-२] यहीं अच्युतावतंसक में देवेन्द्र देवराज अच्युत निवास करता है। इसका सारा वर्णन (सू. २०५-२ में अंकित) प्राणत की तरह, यावत् विचरण करता है, तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि अच्युतेन्द्र तीन सौ विमानावासों का, दस हजार सामानिक देवों का तथा चालीस हजार आत्मरक्षक देवों का आधिपत्य करता हुआ यावत् विचरण करता है।

(द्वादश कल्प-विमानसंख्या-संग्रहणीगाथाओं का अर्थ—क्रमश:) १. बत्तीस लाख, २. अट्टाईस लाख, २. बारह लाख, ४. आठ लाख, ५. चार लाख, ६. पचास हजार, ७. चालीस हजार, ८. सहस्रारकल्प में छह हजार, ९-१०. आनत-प्राणत कल्पों में चार सौ, तथा ११-१२ आरण-अच्युत कल्पों में तीन सौ

विमान होते हैं। अन्तिम इन चार कल्पों में (कुल मिलाकर ४०० + ३०० = ७००) सात सौ विमान होते हैं॥ १५४-१५५॥

(द्वादशकल्प) सामानिक (संख्या) — संग्रहणीगाथा (का अर्थ —) १. चौरासी हजार, २. अस्सी हजार, ३. बहत्तर हजार ४. सत्तर हजार, ५. साठ हजार, ६. पचास हजार, ७. (महाशुक्र में) चालीस हजार, ८. (सहस्रार में) तीस हजार, ९-१०. बीस हजार, ११-१२ (आरण-अच्युत में) दस हजार (क्रमश: हैं)। ॥ १५६॥

इन्हीं बारह कल्पों के आत्मरक्षक इन (सामानिकों) से (क्रमश:) चार-चार गुने हैं।

२०७. किह णं भंते! हेट्टिमगेवेज्जगदेवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! हेट्टिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति ?

गोयमा! आरणच्युताणं कप्पाणं उप्पं जाव (सु. २०६ [१] उड्ढं दूरं उप्पाइत्ता एत्थ णं हेट्टिमगेवेज्जगाणं देवाणं तओ गेवेज्जगिवमाणपत्थडा पण्णत्ता पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणिवित्थिण्णा पिडपुण्णचंदसंठाणसंठिता अिच्चमाली-भासरासिवण्णाभा सेसं जहा बंभलोग जाव (सु. २०१ [१]) पिडरूवा। तत्थं णं हेट्टिमगेवेज्जगाणं देवाणं एक्कारसुत्तरे विमाणावाससते हवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा सव्वरयणामया जाव (सु. २०६ [१]) पिडरूवा। एत्थ णं हेट्टिमगेवेज्जगाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखिज्जइ-भागे। तत्थ णं बहवे हेट्टिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति सव्वे समिड्ढिया सव्वे समज्जतीया सव्वे समजसा सव्वे समाणुभावा महोसोक्खा अणिंदा अप्येस्सा अपुरोहिया अहिमंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समगाउसो!।

[२०७ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त अधस्तन ग्रैवेयक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! अधस्तन ग्रैवेयक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०७ उ.] गौतम! आरण और अच्युत कल्पों के ऊपर यावत् (सू. २०६-१ के अनुसार) ऊपर दूर जाने पर अधस्तन-ग्रैवेयक देवों के तीन ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट कहे गए हैं; जो पूर्व-पश्चिम में लम्बे और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण हैं। वे परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार में संस्थित हैं,सूर्य की तेजोराशि के वर्ण की-सी प्रभा वाले हैं, शेष वर्णन (सू. २०१-१ में अंकित) ब्रह्मलोक-कल्प के समान यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (समझना चाहिए)। उनमें अधस्तन ग्रैवेयक देवों के एक-सौ ग्यारह विमान हैं, ऐसा कहा गया है। वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय हैं, (इत्यादि सब वर्णन) यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (सू. २०६-१ के अनुसार समझना चाहिए)। यहाँ पर्याप्तक और अपर्याप्तक अधस्तन-ग्रैवेयक देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। उनमें बहुत-से अधस्तन-ग्रैवेयक देव निवास करते हैं, वे सब समान ऋद्धि वाले, सभी समान द्युति वाले, सभी समान यशस्वी, सभी समान बली, सब समान अनुभाव (प्रभाव) वाले, महासुखी, इन्द्ररहित, प्रेष्य (दास) रहित, पुरोहितहीन हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! वे देवगण 'अहिमन्द्र' नाम से कहे गए हैं।

२०८ किहि णं भंते! मिन्झमगाणं गेवेञ्जगदेवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किहि णं भंते! मिन्झमगेवेञ्जगा देवा परिवसंति ?

गोयमा! हेट्टिमगेवेज्जगाणं उप्पं सपिक्ख सपिडिदिसिं जाव (सू. २०६ [१]) उपइत्ता एत्थ णं मिन्झमगेवेज्जगदेवाणं तओ गेविज्जगिवमाणपत्थडा पण्णत्ता। पाईण-पडीणायता जहा हेट्टिमगेवेज्जगाणं णवरं सत्तुत्तरे विमाणावाससते हवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा जाव (सु. २०६ [१]) पिडिरूवा। एत्थ णं मिन्झमगेवेज्जगाणं देवाणं जाव (सु. २०७) तिसु वि लोगस्स असंखेज्जितभागे। तत्थ णं बहवे मिन्झमगेवेज्जगा देवा परिवसंति जाव (सु. २०७) अहिमंदा नामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो ।

[२०८ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक मध्यम ग्रैवेयक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! मध्यम ग्रैवेयक देव कहाँ रहते हैं ?

[२०८ उ.] गौतम! अधस्तन ग्रैवेयकों के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में यावत् ऊपर दूर जाने पर, मध्यम ग्रैवेयक देवों के तीन ग्रैवेयकविमान-प्रस्तट कहे गए हैं; जो पूर्व-पश्चिम में लम्बे हैं; इत्यादि वर्णन जैसा अधस्तन ग्रैवेयकों का (सू. २०७ में) कहा गया है, वैसा ही यहाँ कहना चाहिए। विशेष यह है कि (इनके एक सौ सात विमानावास कहे गए हैं। वे विमान (विमानावास) (सू. २०६-१ के अनुसार) यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (समझना चाहिए)। यहाँ (इन विमानावासों में) पर्याप्त और अपर्याप्त मध्यम-ग्रैवेयक देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ बहुत-से मध्यम ग्रैवेयकदेव निवास करते हैं (इत्यादि शेष वर्णन सू. २०७ के अनुसार) यावत् हे आयुष्मन् श्रमणो! वे देवगण 'अहिमन्द्र' कहे गए हैं; (तक समझना चाहिए)।

२०९. किह णं भंते! उविरमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! उविरमगेवेज्जगा देवा परिवसंति ?

गोयमा? मिन्झिमगेवेज्जगदेवाणं उप्पिं जाव (सु. २०६ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं उविरमगेवेज्जगणं देवाणं तओ गेविज्जगिवमाणपत्थडापण्णत्ता पाईण-पडीणायता सेसं जहा हेट्टिमगेविज्जगणं (सु. २०७), नवरं एगे विमाणावाससते भवंतीति मक्खातं। सेसं तहेव भाणियव्वं (सु. २०७) जाव अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

एक्कारसुत्तरं हेट्टिमेसु सत्तुत्तरं च मिन्झिमए। सयमेगं उवरिमए पंचेव अणुत्तरविमाणा॥१५७॥

[२०९ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त उपरितन ग्रैवेयक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! उपरितन ग्रैवेयक देव कहाँ निवास करते हैं?

[२०९ उ.] गौतम! मध्यम ग्रैवेयकों के ऊपर यावत् (सू. २०६-१ अनुसार) दूर जाने पर, वहाँ उपरितन ग्रैवेयक देवों के तीन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट कहे गए हैं, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बे हैं; शेष वर्णन (सू. २०७ में कथित) अधस्तन ग्रैवेयकों के समान (जानना चाहिए।) विशेष यह है कि (इनके) विमानावास एक सौ होते हैं, ऐसा कहा है। शेष वर्णन (जैसा सू. २०७ में कहा गया है,) वैसा ही यहाँ यावत् हे यायुष्मन् श्रमणो! वे देवगण 'अहमिन्द्र' कहे गए हैं; तक कहना चाहिए।

[विमानसंख्याविषयक संग्रहणी गाथार्थ—] अधस्तन ग्रैवेयकों में एक सौ ग्यारह, मध्यम ग्रैवेयकों में एक सौ सात, उपरितन के ग्रैवेयकों में एक सौ और अनुत्तरौपपातिक देवों के पांच ही विमान हैं॥ १५७॥

२१०. किह णं भंते! अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! अणुत्तरोववाइया देवा परिवसंति ?

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिञ्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गह-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसतसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-सुक्क -सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुयकप्पा तिण्णि य अट्ठारस्त्तरे गेविञ्ज-विमाणावाससते वीतीवितत्ता तेण परं दूरं गता णीरया निम्मला वितिमिरा विसुद्धा पंचिदिसं पंच अणुत्तरा महितमहालया विमाणा पण्णत्ता। तं जहा—विजये १ वेजयंते २ जयंते ३ अपराजिते ४ सव्वट्ठसिद्धे ५।

ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्टा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सिस्सरीया सउज्जोया पासाइया दिरसणिज्जा अभिरूवा पिडरूवा, तत्थ णं अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं पज्जत्ताऽपजत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जितभागे। तत्थ णं बहवे अणुत्तरोववाइया देवा परिवसंति सव्वे सिमिट्टिया सव्वे समब्ला सव्वे समाणुभावा महासोक्खा अणिंदा अपेस्सा अपुरोहिता अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

[२१० प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक अनुत्तरौपपातिक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? अनुत्तरौपपातिक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२१० उ.] गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एवं रमणीय भूभाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्क देवों के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाकर, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों तथा तीनों ग्रैवेयकप्रस्तटों के तीन सौ अठारह विमानवासों को पार (उल्लंघन) करके उससे आगे सुदूर स्थित, पांच दिशाओं में रज से रहित, निर्मल अन्धकाररहित एवं विशुद्ध बहुत बड़े पांच अनुत्तर (महा) विमान कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१. विजय, २. वैजयन्त, ३. जयन्त, ४. अपराजित और ५. सर्वार्थसिद्ध।

वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय, स्फटिकमय स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने किये हुए,

रज से रहित, निर्मल, निष्मंक, निरावरण छायायुक्त, प्रभा से युक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतयुक्त, प्रसन्नताकारक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं। वहीं पर्याप्त और अपर्याप्त अनुत्तरौपपातिक देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ बहुत-से अनुत्तरौपपातिक देव निवास करते हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! वे सब समान ऋद्धिसम्पन्न, सभी समान बली, सभी समान अनुभाव (प्रभाव) वाले, महासुखी, इन्द्ररहित, प्रेष्यरहित, पुरोहितहहित हैं। वे देवगण 'अहमिन्द्र' कहे जाते हैं।

विवेचन—सर्व वैमानिक देवों के स्थानों की प्ररूपणा — प्रस्तुत पन्द्रह सूत्रों (सू. १९६ से २१० तक) में सामान्य वैमानिकों से लेकर सौधर्मादि विशिष्ट कल्पोपपन्नों एवं नौ ग्रैवेयक तथा पंच अनुत्तरौपपातिकरूप कल्पातीत वैमानिकों के स्थानों, विमानों, उनकी विशेषताओं, वहाँ बसने वाले देवों, इन्द्रों, अहमिन्द्रों आदि सबका स्फुट वर्णन किया गया है।

सामान्य वैमानिकों की विमानसंख्या—सौधर्म आदि विशिष्ट कल्पोपपन्न वैमानिकों के क्रमशः बत्तीस, अट्टाईस, बारह, आठ, चार लाख विमान आदि ही कुल मिला कर ८४ लाख ९७ हजार २३ विमान, सामान्य वैमानिकों के होते हैं।

द्वादश कल्पों के देवों के पृथक्-पृथक् मुकुटचिह्न—१. सौधर्म देवों के मुकुट में मृग का, २. ऐशान देवों के मुकुट में मिहष (भैंसे) का, ३. सनत्कुमार देवों के मुकुट में वराह (शूकर) का, ४. माहेन्द्र देवों के मुकुट में सिंह का, ५. ब्रह्मलोक देवों के मुकुट में छगल (बकरे) का, ६. लान्तक देवों के मुकुट में दर्दुर (मेंढक) का, ७. (महा) शुक्रदेवों के मुकुट में अश्व का, ८. सहस्रारकल्पदेवों के मुकुट में गजपित का, ९. आनतकल्पदेवों के मुकुट में भुजग (सर्प) का, १०. प्राणतकल्पदेवों के मुकुट में खङ्ग (वन्य पशु या गेंडे) का, ११. आरणकल्पदेवों के मुकुट में वृषभ (बैल) का और १२. अच्युत कल्पदेवों के मुकुट में विडिम का विडम का विडिम का विडिम का विडम का

सपिवंख सपिडिदिसिं की व्याख्या—जिनके पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिणरूप पक्ष अर्थात् पार्श्व समान हैं, वे 'सपक्ष' यानी समान दिशा वाले कहलाते हैं तथा जहाँ प्रतिदिशाएँ—विदिशाएँ समान हैं, वे 'सप्रतिदिश' कहलाते हैं। र

'अणिदा' आदि शब्दों की व्याख्या—'अणिदा'—जिन देवों के कोई इन्द्र यानी अधिपित नहीं है, वे अनिन्द्र। 'अपेस्सा'—जिनके कोई दास या भृत्य नहीं है, वे अप्रेष्य। 'अपुरोहिया'—जिनके कोई पुरोहित—शान्तिकर्म करने वाला नहीं होता, वे अपुरोहित हैं, क्योंकि इन कल्पातीत देवलोकों को किसी प्रकार की अशान्ति नहीं होती। 'अहमिंदा'—'अहमिन्द्र', जिनमें सबके सब स्वयं इन्द्र हों, वे अहमिन्द्र कहलाते हैं। वे

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १००

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १०५

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १०५-१०६

तात्पर्य यह है कि बारह कल्पों में जैसा स्वामी-सेवक आदि का भेद होता है, वैसा भेद नवग्रैवेयकों एवं अनुत्तरिवमानों के देवों में नहीं है। वहाँ के सभी देवों की ऋद्धि आदि समान है, अतएव सभी अपने को इन्द्र-जैसा (स्वाधीन) अनुभव करते हैं। हाँ, सर्वार्थसिद्ध विमान को छोड़कर उनकी आयु में अन्तर हो सकता है।

कल्पों के अवतंसकों का रेखाचित्र—

क्रम	कल्प का नाम	मध्य में	पूर्वदिशा में	दक्षिणदिशा में	पश्चिमदिशा में	उत्तरदिशा में
१	सौधर्मकल्प	सौधर्मावतंसक	अशोकावतंसक	सप्तपर्णावतंसक	चम्पकावतंसक	चूतावतंसक
3	सनत्कुमारकल्प	सनत्कुमारावतंसक	11	"	11	11
4	ब्रह्मलोककल्प	ब्रह्मलोकावतंसक	"	,,	"	2.9
9	महाशुक्रकल्प	महाशुक्रावतंसक	**	11	,,	٠,,
(१)	(आनत)प्राणतकल्प	प्राणतावतंसक	11	"	,,	. 11
१०						
२	ईशानकल्प	ईशानावतंसक	अंकावतंसक	स्फटिकावतंसक	रलावृतंसक	जातरूपावतंसक
४	माहेन्द्रकल्प	माहेन्द्रावतंसक	"	. 11	"	"
६	लान्तककल्प	लान्तकावतंसक	"	"	"	11
6	सहस्रारकल्प	सहस्रारावतंसक	**	**	"	,,
(११)	(आरण)अच्युतकल्प	अच्युतावतंसक	"	11,	,,	"
१२						

२११. किह णं भंते! सिद्धाणं ठाणा पण्णत्ता ? किह णं भंते! सिद्धा परिवसंति ?

गोयमा! सव्वष्टसिद्धस्स महाविमाणस्स उविरित्लाओ थूभियग्गाओ दुवालस जोयणे उद्ढं अबाहाए एत्थ णं ईसीपब्भारा णामं पुढवी पण्णत्ता, पणतालीसं जोयणसतसहस्साणि आयाम-विक्खंभेणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सतसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसते किंचि विसेसाहिए पिक्खेवेणं पण्णत्ता। ईसीपब्भाराए णं पुढविए बहुमञ्झदेसभाए अट्ठजोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, ततो अणंतरं च णं माताए माताए पएसपिरहाणीए पिरहायमाणी पिरहायमाणी सब्वेसु चिरमंतेसु मिच्छयपत्तातो तणुययरी अंगुलस्स असंखेज्जितभागं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

ईसीपब्भाराए णं पुढवीए दुवालस नामधिज्जा पण्णत्ता। तं जहा—ईसी ति वा १ इसीपब्भारा इ वा २ तणू ति वा ३ तणुतणू ति वा ४ सिद्ध ति वा ५ सिद्धालए त वा ६ मुत्ती इ वा ७ मुत्तालए ति वा ८ लोयग्गे इ वा ९ लोयग्गथूभिया ति वा १० लोयग्गपडिवुज्झणा इ वा ११ सळ्वपाण-भूत-जीवसत्तसुहावहा इ वा १२। द्वितीय स्थानपद] [२०३

ईसीपब्भारा णं पुढवी सेता संखदलविमलसोत्थिय-मुणाल-दगरय-तुसार-गोक्खीर-हारवण्णा उत्ताणयछत्तसंठाणसंठिता सळ्ज्जुणवण्णमई अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठानीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सिस्सरीया सउज्जोता पासादीया दिरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

ईसीपब्भाराए णं सीताए जोयणिम्म लोगंतो। तस्स णं जोयणस्से जे से उविरिल्ले गाउए तस्स णं गाउयस्स जे से उविरिल्ले छब्भागे एत्थ णं सिद्धा भगवंतो सादीया अपञ्जवसिता अणेगजाति- जरा-मरण-जोणिसंसारकलंकलीभाव-पुणब्भवगब्भवासवसहीपवंचसमितक्कंता सासयमणागतद्धं कालं चिट्ठंति।

तत्थ वि य ते अवेदा अवेदणा निम्ममा असंगा य। संसारविष्पम्क्का पदेसनिव्वत्तसंठाणा ॥ १५८ ॥ किंह पडिहता सिद्धा ? किंह सिद्धा पइद्विता ?। किंह बोंदि चइत्ता णं ? किंह गंतूण सिज्झई?॥ १५९॥ अलोए पडिहता सिद्धा, लोयग्गे य पइद्विया। इहं बोंदि चइत्ता णं तत्थ गंतूण सिज्झई॥१६०॥ दीहं वा हस्सं वा जं चरिमभवे हवेज्ज संठाणं। तत्तो तिभागहीणा सिद्धाणोगाहणा भणिया॥ १६१॥ जं संठाणं तु इहं भवं चयंतस्स चरिमसमयम्मि। आसी य पदेसघणं तं संठाणं तिहं तस्स॥ १६२॥ तिण्णि सया तेत्तीसा धणुत्तिभागो य होति बोधव्वो। एसा खलु सिद्धाणं उक्कोसोगाहणा भणिया॥ १६३॥ चत्तारि य रयणीओ रयणितिभागृणिया य बोद्धव्वा। एसा खलु सिद्धाणं मिन्झिम ओगाहणा भिणया॥ १६४॥ एगा य होइ रयणी अट्ठेव य अंगुलाइं साहीया। एसा खलु सिद्धाणं जहण्ण ओगाहणा भणिता॥ १६५॥ ओगाहणाए सिद्धा भवत्तिभागेण होंति परिहीणा। संठाणमणित्थंथं जरा-मरणविप्यमुक्काणं॥ १६६॥ जत्थ य एगो सिद्धो तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का। अण्णोण्णसमोगाढा पुद्रा सब्बे वि लोयंते 11 १६७॥ फुसइ अणंते सिद्धे सव्वपएसेहिं नियमसो सिद्धा। ते वि असंखेज्जग्णा देस-पदेसेहिं जे पुद्रा॥ १६८॥

असरीरा जीवघणा उवउत्ता दंसणे य नाणे य। सागारमणागारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं॥१६९॥ केवलणाणुवउत्ता जाणंती सव्वभावगुण-भावे। पासंति सव्वतो खलु के वलदिट्टीहऽणंताहिं ॥१७०॥ न वि अत्थि माणुसाणं तं सोक्खं न वि य सत्वदेवाणं। जं सिद्धाणं सोक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं॥ १७१॥ सुरगणसुहं समत्तं सव्वद्धापिंडितं अणंतग्णं। ण वि पावे मुक्तिसुहं णंताहिं वि वग्गवग्गूहिं॥ १७२॥ सिद्धस्स सुहो रासी सव्वद्धापिंडितो जइ हवेज्जा। सोऽणंतवगाभइतो सव्वागासे ण माएज्जा॥१७३॥ जह णाम कोइ मेच्छो णगरगुणे बहुविहे वियाणंती। न चएइ परिक हे उं उवमाए तहिं असंतीए॥ १७४॥ इय सिद्धाणं सोक्खं अणोवमं, णत्थि तस्स ओवम्मं। किंचि विसेसेणेत्तो सारिक्खमिणं सुणह वोच्छं॥१७५॥ जह सव्वकामगुणितं पुरिसो भोत्तृण भोयणं कोइ। तण्हा-छुहाविमुक्को अच्छेज्ज जहा अमियतित्तो॥१७६॥ इय सव्वकालितत्ता अतुलं णेव्वाणम्वगया सिद्धा। सासयमव्वाबाहं चिट् ठंति सुही सुहं पत्ता॥ १७७॥ सिद्ध त्ति य बुद्ध त्ति य पारगत त्ति स परंपरगत ति। उम्मुक्ककम्मकवया अजरा अमरा असंगा य ॥ १७८॥ णित्थिन्नसव्वदुक्खा जाति-जरा-मरणबंधणविमुक्का। अव्वाबाहं सोक्खं अणुहुंती सासयं सिद्धा॥ १७९॥१

॥ पण्णवणाए भगवईए बिइयं ठाणपयं समत्तं॥

[२११ प्र.] भगवन्! सिद्धों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन्! सिद्ध कहाँ निवास करते हैं ? [२११ उ.] गौतम! सर्वार्थसिद्ध महाविमान की ऊपरी स्तूपिका के अग्रभाग से बारह योजन ऊपर बिना व्यवधान के, ईषत्प्राग्भारा नामक पृथ्वी कही है, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई पैंतालीस लाख योजन है। उसकी परिधि एक करोड़ बयालीस लाख, तीस हजार, दो सौ उनचास योजन से कुछ अधिक है।

१. ग्रन्थाग्रम् १५००

ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी के बहुत (एकदम) मध्यभाग में (लम्बाई-चौड़ाई में) आठ योजन का क्षेत्र है, जो आठ योजन मोटा (ऊंचा) कहा गया है। उसके अनन्तर (सभी दिशाओं और विदिशाओं में) मात्रा-मात्रा से अर्थात् अनुक्रम से प्रदेशों की कमी होते जाने से, हीन (पतली) होती-होती वह सबसे अन्त में मक्खी के पंख से भी अधिक पतली, अंगुल के असंख्यातवें भाग मोटी कही गई है।

ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी के बारह नाम कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) ईषत्, (२) ईषत्प्राग्भारा, (३) तनु, (४) तनु-तनु, (५) सिद्धि, (६) सिद्धालय, (७) मुक्ति, (८) मुक्तालय (९) लोकाग्र, (१०) लोकाग्र-स्तूपिका, या (११) लोकाग्रप्रतिवाहिनी (बोधना) और (१२) सर्व-प्राण-भूत-जीव-सत्त्वसुखावहा।

ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी श्वेत है, शंखदल के निर्मल चूर्ण के स्वस्तिक, मृणाल, जलकण, हिम, गोदुग्ध तथा हार के समान वर्ण वाली, उत्तान (उलटे किए हुए) छत्र के आकार में स्थित, पूर्णरूप से अर्जुनस्वर्ण के समान श्वेत, स्फटिक-सी स्वच्छ, चिकनी, कोमल, घिसी हुई, चिकनी की हुई (मृष्ट), निर्मल, निष्मंक, निरावरण छाया (कान्ति) युक्त, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतमय, प्रसन्नताजनक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप (सर्वांगसुन्दर) है।

ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी से नि:श्रेणीगित से एक योजन पर लोक का अन्त है। उस योजन का जो ऊपरी गव्यूति है, उस गव्यूति का जो ऊपरी छठा भाग है, वहाँ सादि-अनन्त, अनेक जन्म, जरा, मरण, योनिसंसरण (गमन), बाधा (कलंकती भाव), पुनर्भव (पुनर्जन्म), गर्भवासरूप वसित तथा प्रपंच से अतीत (अतिक्रान्त) सिद्ध भगवान् शाश्वत अनागतकाल तक रहते हैं।

[सिद्धविषयक गाथाओं का अर्थ—] वहाँ (पूर्वोक्त सिद्धस्थान में) भी वे (सिद्ध भगवान्) वेदरिहत, वेदनारिहत, ममत्वरिहत, (बाह्य-आभ्यन्तर-) संग (संयोग या आसिक्त) से रिहत, संसार (जन्म-मरण) से सर्वथा विमुक्त एवं (आत्म) प्रदेशों से बने हुए आकार वाले हैं॥ १५८॥

'सिद्ध कहाँ प्रतिहत—रुक जाते हैं? सिद्ध किस स्थान में प्रतिष्ठित (विराजमान) हैं ? कहाँ शरीर को त्याग कर, कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं ? ॥ १५९॥

(आगे) अलोक के कारण सिद्ध (लोकाग्र में) रुके हुए (प्रतिहत) हैं। वे लोक के अग्रभाग (लोकाग्र) में प्रतिष्ठित हैं, तथा यहाँ (मनुष्य लोक में) शरीर को त्याग कर वहाँ (लोक के अग्रभाग में) जाकर सिद्ध (निष्ठितार्थ) हो जाते हैं॥ १६०॥

दीर्घ अथवा हस्व, जो अन्तिम भव में संस्थान (आकार) होता है, उससे तीसरा भाग कम सिद्धों की अवगाहना कही गई हैं॥ १६१॥

इस भव को त्यागते समय अन्तिम समय में (त्रिभागहीन जितने) प्रदेशों में सघन संस्थान (आकार) था, वहीं संस्थान वहाँ (लोकाग्र में सिद्ध अवस्था में) रहता है, ऐसा जानना चाहिए॥ १६२॥

(जिनकी यहाँ पाँच सौ धनुष की उत्कृष्ट अवगाहना थी, उनकी वहाँ) तीन सौ तेतीस धनुष

और एक धनुष के तीसरे भाग जितनी अवगाहना होती है। यह सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना कही गई है॥ १६३॥

(पूर्ण) चार रितं (मुण्ड हाथ) और त्रिभागन्यून एक रित्त, यह सिद्धों की मध्यम अवगाहना कही है, ऐसा समझना चाहिए॥ १६४॥

एक (पूर्ण) रित्न और आठ अंगुल अधिक जो अवगाहना होती है, यह सिद्धों की जघन्य अवगाहना कही है ॥ १६५ ॥

(अन्तिम) भव (चरम शरीर) से त्रिभाग हीन (कम) सिद्धों की अवगाहना होती है। जरा और मरण से सर्वथा विमुक्त सिद्धों का संस्थान (आकार) अनित्थंस्थ होता है। अर्थात् 'ऐसा है' यह नहीं कहा जा सकता॥ १६६॥

जहाँ (जिस प्रदेश में) एक सिद्ध है, वहाँ भवक्षय के कारण विमुक्त अनन्त सिद्ध रहते हैं। वे सब लोक के अन्त भाग (सिरे) से स्पृष्ट एवं परस्पर समवगाढ़ (पूर्णरूप से एक दूसरे में समाविष्ट) होते हैं॥ १६७॥

एक सिद्ध सर्वप्रदेशों से नियमत: अनन्तसिद्धों को स्पर्श करता (स्पृष्ट हो कर रहता) है। तथा जो देश-प्रदेशों से स्पृष्ट (होकर रहे हुए) हैं, वे सिद्ध तो (उनसे भी) असंख्यातगुणा अधिक हैं॥ १६८॥

सिद्ध भगवान् अशरीरी हैं, जीवघन (सघन आत्मप्रदेश वाले) हैं तथा ज्ञान और दर्शन में उपयुक्त (सदैव उपयोगयुक्त) रहते हैं; (क्योंकि) साकार (ज्ञान) और अनाकार (दर्शन) उपयोग होना, यही सिद्धों का लक्षण है॥ १६९॥

केवलज्ञान से (सदैव) उपयुक्त (उपयोगयुक्त) होने से वे समस्त पदार्थों को, उनके समस्त गुणों और पर्यायों को जानते हैं तथा अनन्त केवलदर्शन से सर्वत: [समस्त-पदार्थों को सर्वप्रकार से) देखते हैं ॥ १७० ॥

अव्याबाध को प्राप्त (उपगत) सिद्धों को जो सुख होता है, वह न तो (चक्रवर्ती आदि) मनुष्यों को होता है, और न ही (सर्वार्थसिद्धपर्यन्त) समस्त देवों को होता है॥ १७१॥

देवगण के समस्त सुख को सर्वकाल के साथ पिण्डित (एकत्रित या संयुक्त) किया जाय, फिर उसको अनन्त गुणा किया जाय तथा अनन्त वर्गों से वर्गित किया जाए तो भी वह मुक्ति-सुख को नहीं पा सकता (उसकी बराबरी नहीं कर सकता)॥ १७२॥

एक सिद्ध के (प्रतिसमय के) सुखों की राशि, यदि सर्वकाल से पिण्डित (एकत्रित) की जाए, और उसे अनन्तवर्गमूलों से भाग दिया (कम किया) जाए, तो वह (भाजित = न्यूनकृत) सुख भी (इतना अधिक होगा कि) सम्पूर्ण आकाश में नहीं समाएगा॥ १७३॥

जैसे कोई म्लेच्छ(आरण्यक अनार्य) अनेक प्रकार के नगर-गुणों को जानता हुआ भी उसके सामने कोई उपमा न होने से कहने में समर्थ नहीं होता॥ १७४॥ इसी प्रकार सिद्धों का सुख अनुपम है। उसकी कोई उपमा नहीं है। फिर भी कुछ विशेष रूप से इसकी उपमा (सदृशता) बताऊँगा, इसे सुनो॥ १७५॥

जैसे कोई पुरुष सर्वकामगुणित भोजन का उपभोग करके प्यास और भूख से विमुक्त होकर ऐसा हो जाता है, जैसे कोई अमृत से तृप्त हो। वैसे ही सर्वकाल में तृप्त अतुल (अनुपम), शाश्वत एवं अव्याबाध निर्वाण-सुख को प्राप्त सिद्ध भगवान् (सदैव) सुखी रहते हैं॥ १७६-१७७॥

वे मुक्त जीव सिद्ध हैं, बुद्ध हैं, पारगत हैं, परम्परागत हैं, कर्मरूपी कवच से उन्मुक्त हैं, अजर, अमर और असंग हैं। उन्होंने सर्वदु:खों को पार कर दिया है। वे जन्म, जरा, मरण के बन्धन से सर्वथा मुक्त, सिद्ध (होकर) अव्याबाध एवं शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं॥ १७८-१७९॥

विवेचन—सिद्धों के स्थान आदि का निरूपण—प्रस्तुत गाथाबहुल सूत्र (सू. २११) में शास्त्रकार ने सिद्धों के स्थान, उसकी विशेषता, उसके पर्यायवाचक नाम, सिद्धों के गुण, अवगाहना सुख तथा उनकी विशेषता आदि का निरूपण किया है।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के अन्वर्थक पर्यायवाची नाम—(१) संक्षेप में कहने के लिए 'इषत्' नाम है।(२) थोड़ी-सी आगे को झुकी हुई होने से ईषत्प्राग्भारा है।(३) शेष पृथ्वियों की अपेक्षा पतली होने से 'तनु' नाम है।(४) जगत् प्रसिद्ध पतली मक्खी की पांख से भी पतली होने से इसका 'तनुतन्वी' नाम है।(५) सिद्ध क्षेत्र के निकट होने से इसका नाम 'सिद्धि' है,(६) सिद्ध क्षेत्र के निकट होने से उपचार से इसका नाम 'सिद्धालय' भी है।(७-८) इसी प्रकार 'मुक्ति' और 'मुक्तालय' नाम भी सार्थक हैं।(९) लोक के अग्रभाग में स्थित होने से 'लोकाग्र' नाम है।(१०) लोकाग्र की स्तूपिका-समान होने से इसका नाम 'लोकाग्रस्तूपिका' भी है।(११) लोक के अग्रभाग में होने से उसके आगे जाना रुक जाता है, इसलिए एक नाम 'लोकाग्र-प्रतिवाहिनी' भी है।(१२) समस्त प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के लिए निरुपद्रवकारी भूमि होने से 'सर्व प्राण-भूत-जीव-सत्त्वसुखावहा' नाम भी सार्थक है।

सिद्धों के कुछ विशेषणों की व्याख्या—'सादीया अपज्जवसिता'= सादि-अपर्यवसित—अनन्त। प्रत्येक सिद्ध सर्वकर्मों का सर्वथा क्षय होने पर ही सिद्ध-अवस्था प्राप्त करता है; इस कारण से सिद्ध सादि (आदि युक्त) हैं, किन्तु सिद्धत्व प्राप्त कर लेने कर कभी उसका अन्त नहीं होता, इस कारण उन्हें अपर्यवसित—'अनन्त' कहा है। इस विशेषण के द्वारा 'अनादिशुद्ध' पुरुष की मान्यता का निराकरण किया गया है। सिद्धों के रागद्वेषादि विकारों का समूल विनाश हो जाने के कारण उनका सिद्धत्वदशा से प्रतिपात नहीं होता, क्योंकि पतन के कारण रागादि हैं, जो उनके सर्वथा निर्मूल हो चुके हैं। जैसे बीज के जल जाने पर उससे अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती, वैसे ही संसारबीज—रागद्वेषादि के विनष्ट हो जाने से पुन: संसार में आना और जन्ममरण पाना नहीं होता। इसीलिए उन्हें 'अणेगजाति-जरा-मरण-

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १०७

जोणि-संसार-कलंकलीभाव-पुण्णब्भव-गब्भवासवसही-पर्वचसमितक्कंता' कहा गया है। अर्थ स्पष्ट है। अवेदा - सिद्ध भगवान् स्त्रीवेद और नपुंसकवेद (काम) से अतीत होते हैं। अर्थात्—शरीर का अभाव होने से उनमें द्रव्यवेद नहीं रहता और नोकषायमोहनीय का अभाव हो जाने से भाववेद भी नहीं रहता; इसलिए इन्हें अवेदी कहा है। अवेदणा—साता और असातावेदनीय कर्म का अभाव होने से वे वेदना से रहित होते हैं। 'निम्ममा असंग़ा य'—ममत्व से तथा बाह्य एवं आभ्यन्तर संग (आसिक या परिग्रह) से रहित होने के कारण वे निर्मम और असंग होते हैं। संसारविप्पमुक्का—संसार से वे सर्वथा मुक्त और अलिप्त हैं, ऊपर उठे हुए हैं। पदेसनिव्वत्त-संठाणा—सिद्धों में जो आकार होता है, वह पौद्गलिक शरीर के कारण नहीं होता, क्योंकि शरीर का वहाँ सर्वथा अभाव है, अत: उनका संस्थान (आकार) आत्मप्रदेशों से ही निष्पन्न होता है। सव्वकालितता—सर्वकाल यानी सादि-अनन्तकाल तक वे तृप्त हैं, क्योंकि औत्सुक्य से सर्वथा निवृत्त होने से वे परमसंतोष को प्राप्त हैं। 'अतुलं सासयं अव्वाबाहं णेव्वाणं सुहं पत्ता'—सिद्ध भगवान् अतुल—उपमातीत—अनन्यसदृश शाश्वत तथा अव्याबाध (किसी प्रकार की लेशमात्र भी बाधा न होने से) निर्वाण (मोक्ष) संबंधी—सुख को प्राप्त हैं। 'सिद्धित्त य'— सित यानी बद्ध जो अष्टप्रकारके कर्म, उसे जिन्होंने ध्मात—भस्मीकृत कर दिया है, वे सिद्ध। सामान्यतया जो कर्म, शिल्प, विद्या, मंत्र, योग, आगम, अर्थ, यात्रा, अभिप्राय, तप और कर्मक्षय, इन सबसे सिद्ध होता है, र उसे भी उस-उस विशेषणयुक्त कहते हैं, किन्तु यहाँ इन सबकी विवक्षा न करके एक 'कर्मक्षयसिद्ध' की विवक्षा की गई है। शेष सबको निरस्त करने हेतु 'बुद्ध' शब्द का प्रयोग किया गया है। बद्ध का अर्थ है--अज्ञान-निद्रा में प्रसप्त जगत को स्वयं जिन्होंने तत्त्वबोध देकर जागृत किया है, सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी होने से उनका स्वभाव ही बोधरूप है। परोपदेश के बिना ही केवलज्ञान के द्वारा स्वत: वस्तुस्वरूप या जीवादितत्त्वों को जान लिया है। अर्हन्त भगवान् भी 'बुद्ध' होते हैं, इसलिए विशेषण दिया है—पारगता—जो संसार से या समस्त प्रयोजनों से पार हो चुके हैं। अतएव कृतकृत्य हैं। अक्रमसिद्धों का निराकरण करने के लिए यहाँ कहा गया है—'परंपरगता'—जो परम्परागत हैं। अर्थातु—जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप परम्परा से अथवा मिथ्यात्व से लेकर यथासंभव चतुर्थ, षष्ट, आदि गुणस्थानों को पार करके सिद्ध हुए हैं। अमरा—आयुकर्म से सर्वथा रहित होने से वे अजर-अमर हैं। देह के अभाव में जन्म, जरा, मरण आदि के बन्धनों से विमुक्त हैं। जन्मजरामरणादि ही दु:ख रूप हैं और सिद्ध इन सब दु:खों से पार हो चुके हैं। इसलिए कहा गया है—'णित्थिन्नसव्वदुक्खा-जाति-जरा-मरणबंधणो-विमुक्का'। सिद्धों के 'असरीरा, णेव्वाणमुवगया, उम्मुक्कक म्मकवचा, सव्वकालितत्ता' आदि विशेषण प्रसिद्ध हैं, इनके अर्थ भी स्पष्ट हैं। र

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १०८ से ११२ तक

२. (क) सितं बद्धं अष्टप्रकारं कर्मध्यातं भस्मीकृतं यैस्ते सिद्धाः।

⁽ख) 'कम्मे सिप्पे य विञ्जाए, मंते जोगे य आगमे। अत्थजत्ताभिप्पाए, तवे कम्मक्खए इ य॥'

'अलोए पडिहता सिद्धा' की व्याख्या—सिद्ध भगवान् लोकाग्र के आगे अलोकाकाश होने से अलोक के कारण प्रतिहत हो (रुक) जाते हैं। गित में निमित्त कारण धर्मास्तिकाय है। वह लोकाकाश में ही है, अलोकाकाश में नहीं होता। इसिलए ज्यों ही आलोकाकाश प्रारम्भ होता है। सिद्धों की गित में रूकावट आ जाती है। इस प्रकार वे धर्मास्तिकाय के अभाव के कारण प्रतिहत हो जाते हैं और मनुष्य क्षेत्र का परित्याग करके एक ही समय में अस्पृशद्गित से लोक के अग्रभाग (ऊपरी भाग) में स्थित हो जाते हैं।

चरमभव में सिद्धों का संस्थान—अन्तिम भव में जो भी दीर्घ (५०० धनुष), ह्रस्व (दो हाथ प्रमाण) अथवा विचित्र प्रकार का मध्यम संस्थान (आकार) उनका होता है, सिद्धावस्था में उससे तीसरा भाग कम आकार (संस्थान) रह जाता है, क्योंकि सिद्धावस्था में मुख, पेट, कान आदि के छिद्र भी भर जाते हैं; आत्मप्रदेश सघन हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि भवपरित्याग से कुछ पहले सूक्ष्मिक्रयाऽप्रतिपाती नामक तीसरे शुक्लध्यान के बल से मुख, उदर आदि के छिद्र भर जाने से जो त्रिभागन्यून संस्थान रह जाता है, वहीं संस्थान सिद्धावस्था में बना रहता है।

सिद्धों की अवगाहना—जिन सिद्धों की चरमभव में अन्तिम समय में ५०० धनुष की अवगाहना होती है, उनकी त्रिभागन्यून होने पर ३३३^१/_३ धनुष की होती है, यह सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना है। इस सम्बन्ध में एक शंका है, कि जैन इतिहासप्रसिद्ध नाभिकुलकर की पत्नी मरुदेवी सिद्ध हुई हैं। नाभिकुलकर के शरीर की अवगाहना ५२५ धनुष की थी, और इतनी ही अवगाहना मरुदेवी की थी; क्योंकि आगमिक कथन है—'संहनन, संस्थान और ऊंचाई कुलकरों के समान ही समझनी चाहिए।' अत: सिद्धिप्राप्त मरुदेवी के शरीर की अवगाहना में से तीसरा भाग कम किया जाए तो वह ३५० धनुष सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में ऊपर जो उत्कृष्ट अवगाहना ३३३^१/_३ धनुष बतलाई हैं, उसके साथ इसकी संगति कैसे बैठेगी ? इसका समाधान यह है कि मरुदेवी के शरीर की अवगाहना नाभिराज से कुछ कम होना सम्भव है; क्योंकि उत्तम संस्थान वाली स्त्रियों की अवगाहना उत्तम संस्थान वाले पुरुषों की अवगाहना से अपने अपने समय की अपेक्षा से कुछ कम होती है। इस उक्ति के अनुसार मरुदेवी की अवगाहना ५०० धनुष की मानी जाए तो कोई दोष नहीं। इसके अतिरिक्त मरुदेवी हाथी के हौदे पर बैठी-बैठी सिद्ध हुई थी, अतएव उनका शरीर उस समय सिकुड़ा हुआ था। इस कारण अधिक अवगाहना होना संभव नहीं है। इस प्रकार सिद्धों की जो उत्कृष्ट अवगाहना ऊपर कही गई है, उसमें विरोध नहीं आता।

सिद्धों की मध्यम अवगाहना चार हाथ पूर्ण और एक हाथ में त्रिभाग कम है। आगम में जघन्य सात हाथ की अवगाहना वाले जीवों को सिद्धि बताई गई है, इस दृष्टि से यह अवगाहना मध्यम न हो कर जघन्य सिद्ध होती है, इस शंका का समाधान यह है कि सात हाथ की अवगाहना वाले जीवों की

१. प्रज्ञापना, मलय. वृत्ति, पत्रांक १०८

जो सिद्धि कही गई है, वह तीर्थंकर की अपेक्षा से समझनी चाहिए। सामान्य केवली तो इससे कम अवगाहना वाले भी सिद्ध होते हैं। ऊपर जो अवगाहना बताई गई है, वह सामान्य की अपेक्षा से ही है, तीर्थंकरों की अपेक्षा से नहीं। सिद्धों की जघन्य अवगाहना एक हाथ और आठ अंगुल की है। यह जघन्य अवगाहना कूर्मापुत्र आदि की समझनी चाहिए, जिनके शरीर की अवगाहना दो हाथ की होती है।

भाष्यकार ने कहा है—'उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष वालों की अपेक्षा से, मध्यम अवगाहना ७ हाथ के शरीर वालों की अपेक्षा से और जघन्य अवगाहना दो हाथ के शरीर वालों की अपेक्षा से कही गई है,जो उनके शरीर से त्रिभागन्यून होती है।

सिद्धों का संस्थान अनियत—जरामरणरहित सिद्धों का आकार (संस्थान) अनित्थंस्थ होता है। जिस आकार को इस प्रकार का है, ऐसा न कहा जा सके, वह अनित्थंस्थ—यानी अनिर्देश्य कहलाता है। मुख एवं उदर आदि के छिद्रों के भर जाने से सिद्धों के शरीर का पहले वाला आकार बदल जाता है, इस कारण सिद्धों का संस्थान अनित्थंस्थ कहलाता है, यही भाष्यकार ने कहा है। आगम में जो यह कहा गया है कि 'सिद्धात्मा न दीर्घ हैं, न हस्व हैं' आदि कथन भी संगत हो जाता है। अत: सिद्धों के संस्थान की अनियतता पूर्वाकार की अपेक्षा से है, आकार का अभाव होने के कारण नहीं। क्योंकि सिद्धों में संस्थान का एकान्तत: अभाव नहीं है।

सिद्धों का अवस्थान जहाँ एक सिद्ध अवस्थित है, वहाँ अनन्त सिद्ध अवस्थित होते हैं। वे परस्पर अवगाढ़ होकर रहते हैं, क्योंकि अमूर्तिक होने से सिद्धों को परस्पर एक दूसरे में समाविष्ट होने में कोई बाधा नहीं पड़ती। जैसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय एक दूसरे में मिले हुए लोक में अवस्थित हैं, इसी प्रकार अनन्त सिद्ध एक ही परिपूर्ण अवगाहनक्षेत्र में परस्पर मिलकर लोक

१. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १०८ से ११० तक

⁽ख) कहं मरुदेवामाणं? नाभीतो जेण किंचिदूणा सा। तो किर पंचसयच्चिय अहवा संकोचओ सिद्धा॥—भाष्यकार

⁽ग) जेट्ठा उ पंचधणुसय-तणुस्स, मण्झा य सत्तहत्थस्स। देहितभागहीणा जहित्रया जा बिहत्थस्स॥ १॥ सत्तूसियं एसु सिद्धी जहन्नओ कहिमहं बिहत्थेसु ? सा किर तित्थयरेसु, सेयाणं सिण्झमाणाणं॥ २॥ ते पुण होण्ज बिहत्था कुम्मापुतादयो जहन्नेणं। अन्ने संविट्टिय सत्तहत्थ सिद्धस्स हीणित्त॥ ३॥—भाष्यकार

 ⁽घ) सुसिरपिरपूरणाओ पुट्यागारत्रहाववत्थाओ। संठाणमिणत्थंत्थं जं भिणय मिणययागारं।
 एतोच्चिय पिडस्सेही सिद्धाइगुणेसु दीहयाईणं। जमिणत्थंथं पुट्यागाराविक्खाए नाभावो॥ २॥
 दीहं वा हस्से वा।

में अवस्थित हैं। वे सभी सिद्ध लोकान्त से स्पृष्ट रहते हैं। नियम से अनन्त सिद्ध आत्मा के सर्वप्रदेशों से स्पृष्ट रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि अनन्त सिद्ध ऐसे हैं, जो पूर्ण रूप से एक दूसरे से मिले हुए रहते हैं और जिनका स्पर्श—(किंचित्) प्रदेशों से है ऐसे सिद्ध तो उनसे भी असंख्यात गुणे अधिक हैं। क्योंकि अवगाढ़ प्रदेश असंख्यात हैं।

सिद्ध, केवलज्ञान से सदैव उपयुक्त—सिद्ध भगवान् के केवलज्ञान-दर्शन का उपयोग सदैव लगा रहता है, इसलिए वे केवलज्ञानोपयुक्त होकर जानते हैं, अन्तःकरण आदि से नहीं, क्योंकि वे शुद्ध आत्ममय होने से अन्तःकरणादि से रहित हैं।

सिद्ध: जीवघन कैसे ?—सिद्धों को जीवघन अर्थात् सघन आत्मप्रदेशों वाला, इसलिए कहा गया है कि सिद्धावस्था प्राप्त करने से पूर्व तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम काल में उनके मुख, उदर आदि रन्ध्र आत्मप्रदेशों से भर जाते हैं, कहीं भी आत्मप्रदेशों से वे रिक्त नहीं रहते। १

॥ प्रज्ञापनासूत्र : द्वितीय स्थानपद समाप्त॥

१. प्रज्ञापना. म. वृत्ति पत्रांक ११०

तइयं बहुवत्तव्वयपयं (अप्पाबहुत्तपयं)

तृतीय बहुवक्तव्यपद [अल्पबहुत्वपद]

प्राथमिक

प्रज्ञापनासूत्र का यह तृतीय पद है, इसके दो नाम हैं—'बहुवक्तव्यपद' और 'अल्पबहुत्वपद'।
तत्त्वों या पदार्थों का संख्या की दृष्टि से भी विचार किया जाता है। उपनिषदों में वेदान्त का दृष्टिकोण बताया है कि विश्व में एक ही तत्त्व—'ब्रह्म' है, समग्र विश्व उसी का 'विवर्त्त' या 'परिणाम' है, दूसरी ओर सांख्यों का मत है कि जीव तो अनेक हैं, परन्तु अजीव एक ही है। बौद्धदर्शन अनेक 'चित्त' और अनेक 'रूप' मानता है। जैनदर्शन में षड्द्रव्यों की दृष्टि से संख्या का निरूपण ही नहीं, किन्तु परस्पर एक दूसरे से तारतम्य, अल्पबहुत्व का भी निरूपण किया गया है। अर्थात् कौन किससे
अल्प है, बहुत है, तुल्य है या विशेषाधिक है? इसका पृथक् पृथक् अनेक पहलुओं से विचार किया गया है। प्रस्तुत पद में यही वर्णन है।
इसमें दिशा, गित, इन्द्रिय, काय, योग आदि से लेकर महादण्डक तक सत्ताईस द्वारों के माध्यम से केवल जीवों का ही नहीं, यथाप्रसंग धर्मास्तिकाय आदि ६ द्रव्यों का, पुद्गलास्तिकाय का वर्गीकरण करके उनके अल्प-बहुत्व का विचार किया गया है। षट्खण्डागम में गित आदि १४ द्वारों से अल्पबहुत्व का विचार है।
सर्वप्रथम (सू. २१३-२२४ में) दिशाओं की अपेक्षा से सामान्यत: जीवों के, फिर पृथ्वीकायादि पांच स्थावरों के, तीन विकलेन्द्रियों के, नैरियकों के , सप्त नरकों के नैरियकों के, तिर्यंचपंचेन्द्रिय जीवों के, मनुष्यों के, भवनपित-वाणव्यन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिक देवों के पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व का एवं सिद्धों के भी अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।
तत्पश्चात् सू २२५ से २७५ तक दूसरे से तेईसवें द्वार तक के माध्यम से नरकादि चारों गितयों के, इन्द्रिय-अनिन्द्रिययुक्त जीवों के, पर्याप्तक-अपर्याप्तकों के, षट्कायिक-अकायिक, अपर्याप्तक-पर्याप्तक, पर्याप्तक-अपर्याप्तकों के, बादर-सूक्ष्मषट्कायिकों के, सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी काययोगी-अयोगी के, सवेदक-स्त्रीवेदक-पुरुषवेदक-नपुंसकवेदक-अवेदकों के, सकषायी-क्रोध-मान-माया-लोभ कषायी-अकषायी के, सलेश्य-षट्लेश्य-अलेश्य जीवों के, सम्यग् मिथ्या-मिश्र दृष्टि के, पांच ज्ञान-तीन अज्ञान से युक्त जीवों के, चक्षुर्दर्शनादि चार दर्शनों से युक्त जीवों के, संयत-असंयत संयतासंयत-

१. (क) पण्णवणासुत्तं भाग-2, प्रस्तावना पृष्ठ ५२

⁽ख) प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ११३

⁽ग) षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ. ५२०

⁽घ) प्रज्ञापना-प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. २०३

२. पण्णवणासुत्तं भाग-१, पृ. ८१ से ८४ तक

नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीवों के, साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त जीवों के, आहारक-अनाहारक जीवों के, भाषक-अभाषक जीवों के, परीत्त-अपरीत्त-नोपरीत्त-नोअपरीत्त जीवों के, पर्याप्त-अपर्याप्त-नोअपर्याप्तकों के, सूक्ष्म,बादर-नोसूक्ष्म-नोबादरों के, संज्ञी-असंज्ञी-नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों के, भविसिद्धिक अभविसिद्धिक-नोभविसिद्धिक-नोअभविसिद्धिक जीवों के, धर्मास्तिकाय आदि षट्द्रव्यों के द्रव्य, प्रदेश तथा द्रव्य-प्रदेश की दृष्टि से पृथक्-पृथक् एवं समुच्चय जीवों के, चरम-अचरम जीवों के, जीव-पुद्गल-काल-सर्वद्रव्य सर्वप्रदेश-सर्वपर्यायों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

- □ इसके पश्चात् सू. २७६ से ३२३ तक चौबीसवें क्षेत्रद्वार के माध्यम से ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यक्लोक, ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक, अधोलोक-तिर्यक्लोक एवं त्रैलोक्य में सामान्य जीवों के, तथा नैरियक, तिर्यंचयोनिक पुरुष-स्त्री, मनुष्यपुरुष-स्त्री, देव-देवी, भवनपित देव-देवी, वाणव्यन्तर देव-देवी, ज्योतिष्क देव-देवी, वैमानिक देव-देवी, एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों के तथा षट्कायिक पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।
- □ पच्चीसवें बन्धद्वार (सू. ३२५) में आयुष्यकर्मबन्धक-अबन्धक, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, सुप्त-जागृत, समवहत-असमवहत, सातावेदक-असातावेदक, इन्द्रियोपयुक्त-नोइन्द्रियोयुक्त, एवं साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त जीवों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा है।
- □ छळ्वीसवें पुद्गलद्वार में क्षेत्र और दिशाओं की अपेक्षा से पुद्गलों तथा द्रव्यों का एवं द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा से परमाणु पुद्गलों एवं संख्यात, असंख्यात और अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का तथा एक प्रदेशावगाढ़ संख्यातप्रदेशावगाढ़ एवं असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गलों का, एकसमयस्थितिक, संख्यातसमयस्थितिक और असंख्यातसमयस्थितिक पुद्गलों का एवं एकगुण काला, संख्यातगुण काला, असंख्यातगुण काला और अनन्तगुण काला आदि पुद्गलों का अल्पबहुत्व प्ररूपित किया गया है।
- □ सत्ताईसवें महादण्डकद्वार में समग्रभाव से पृथक्-पृथक् सिवशेष जीवों के अल्पबहुत्व का ९८ क्रमों में कथन किया गया है। षट्खण्डागम के महादण्डक द्वार में भी सर्वजीवों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।
- □ महादण्डक द्वार में समग्ररूप से जीवों की अल्पबहुत्व-प्ररूपणा की है। इस लम्बी सूची पर से फिलत होता है कि उस युग में भी आचार्यों ने जीवों की संख्या का तारतम्य बताने का प्रयत्न किया है तथा मनुष्य हो, देव हो या तिर्यच हो, सभी में पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक मानी गई है। अधोलोक में पहली से सातवीं नरक तक क्रमश: जीवों की संख्या घटती जाती है, जबिक ऊर्ध्वलोक में इससे उलटा क्रम है, वहाँ सबसे ऊपर के अनुत्तर विमानवासी देवों की संख्या सबसे

१. (क) पण्णवणासुत्तं भा. १, पृ. ८४ से १०१ तक (ख) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक ११३ से १६८ तक

२. (क) पण्णवणासुत्तं भा. १, पृ. १०१ से ११२ तक (ख) पण्णवणासुत्तं भा. २, पृ. ५२-५३ (प्रस्तावना)

कम है, फिर नीचे के देवों में क्रमश: बढ़ते-बढ़ते सौधर्म देवों की संख्या सबसे अधिक बताई गई है। पर मनुष्य लोक के नीचे भवनपित देव हैं, उनकी संख्या सौधर्म से अधिक है, उससे ऊँचे होते हुए भी व्यन्तर तथा ज्योतिष्क देवों की संख्या उत्तरोत्तर अधिक है। सबसे कम संख्या मनुष्यों की है, इसी कारण मनुष्यभव दुर्लभ माना जाता है। जैसे-जैसे इन्द्रियां कम हैं, वैसे-वैसे जीवों की संख्या अधिक होती है, अर्थात् विकसित जीवों की अपेक्षा अविकसित जीवों की संख्या अधिक है। सिद्ध (पूर्णताप्राप्त) जीवों की संख्या एकेन्द्रिय जीवों से कम है। सबसे नीची सातवें नरक में और सर्वोच्च अनुत्तर देवलोक में सबसे कम जीव हैं, इस पर से ध्वनित होता है, जैसे अत्यन्त पुण्यशाली कम होते हैं, वैसे अत्यन्त पापी भी कम हैं।

१. (क) पण्णवणासुत्तं भा. २, प्रस्तावना पृ. ५४ (ख) षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ. ५७५

तइयं बहुवत्तव्वयपयं (अप्पाबहुत्तपयं)

तृतीय बहुवक्तव्यतापद (अल्पबहुत्वपद)

द्वारसंग्रह-गाथाएँ

दिशादि २७ द्वारों के नाम

२१२. दिसि १ गित २ इंदिय ३ काए ४ जोगे ५ वेदे ६ कसाय ७ लेस्सा य ८। सम्मत्त ९ णाण १० दंसण ११ संजय १२ उवओग १३ आहारे १४॥ १८०॥ भासग१५ पित्त १६ पञ्जत्त १७ सुहुम १८ सण्णी१९भवऽत्थिए २०-२१चिरमे २२। जीवे य २३ खेत्त २४ बंधे २५ पोग्गल २६ महदंडए २७ चेव॥ १८१॥

[२१२ गाथार्थ—] १. दिक् (दिशा), २. गित, ३. इन्द्रिय, ४. काय, ५. योग, ६. वेद, ७. कषाय, ८. लेश्या, ९. सम्यक्त्व, १०. ज्ञान, ११. दर्शन, १२. संयत, १३. उपयोग, १४. आहार, १५. भाषक, १६. परीत, १७. पर्याप्त, १८. सूक्ष्म, १९. संज्ञी, २०. भव, २१. अस्तिक, २२. चरम, २३. जीव, २४. क्षेत्र, २५. बन्ध, २६. पुद्गल और २७. महादण्डक; (तृतीय पद में ये २७ द्वार हैं, जिनके माध्यम से पृथ्वीकाय आदि जीवों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की जाएगी)॥ १८१-१८२॥

प्रथम दिशाद्वार : दिशा की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

- २१३. दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा जीवा पच्चित्थिमेणं, पुरित्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।
- [२१३] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े जीव पश्चिमदिशा में हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्विदशा में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिणदिशा में हैं, (और उनसे) विशेषाधिक (जीव) उत्तरदिशा में है।
- २१४. [१] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा पुढिवकाइया दाहिणेणं, उत्तरेणं विसेसाहिया, पुरित्थमेणं विसेसाहिया, पच्चित्थमेणं विसेसाहिया।
- [२१४-१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े पृथ्वीकायिक जीव दक्षिणदिशा में हैं, (उनसे) उत्तर में विशेषाधिक हैं, (उनसे) पूर्विदशा में विशेषाधिक हैं, (उनसे भी) पश्चिम में (पृथ्वीकायिक) विशेषाधिक हैं।
- [२] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा आउक्काइया पच्चित्थिमेणं, पुरित्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।
- [२१४-२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े अप्कायिक जीव पश्चिम में हैं, उनसे विशेषाधिक पूर्व में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण में है और (उनसे भी) विशेषाधिक उत्तरदिशा में हैं।

- [३] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा तेउक्काइया दाहिणुत्तरेणं, पुरित्थमेणं संखेज्जगुणा, पच्चित्थमेणं विसेसाहिया।
- [२१४-३] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े तेजस्कायिक जीव दक्षिण और उत्तर में हैं, पूर्व में (उनसे) संख्यातगुणा अधिक हैं,(और उनसे भी)पश्चिम में विशेषाधिक हैं।
- [४] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा वाउकाइया पुरित्थमेणं, पच्चित्थमेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया।
- [२१४-४] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम वायुकायिक जीव पूर्विदशा में हैं, उनसे विशेषाधिक पश्चिम में हैं, उनसे विशेषाधिक उत्तर में हैं और उनसे भी विशेषाधिक दक्षिण में हैं।
- [५] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया पच्चित्थिमेणं, पुरित्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।
- [२१४-५] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े वनस्पतिकायिक जीव पश्चिम में हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्व में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण में हैं, (और उनसे भी) विशेषाधिक उत्तर में हैं।
- २१५ [१] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा बेइंदिया पच्चित्थिमेणं, पुरित्थिमेणं विसेसाहिया, दिक्खणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।
- [२१५-१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम द्वीन्द्रिय जीव पश्चिम में हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्व में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण में हैं, (और उनसे भी) विशेषाधिक उत्तरदिशा में हैं। .
- [२] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा तेइंदिया पच्चित्थिमेणं, पुरितथमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।
- [२१५-२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम त्रीन्द्रिय जीव पश्चिमदिशा में हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्व में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण में हैं और (उनसे भी) विशेषाधिक उत्तर में हैं।
- [३] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा चउरिंदिया पच्चित्थिमेणं, पुरित्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।
- [२१५-३] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम चतुरिन्द्रिय जीव पश्चिम में हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्व दिशा में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण में हैं (और उनसे भी) विशेषाधिक उत्तरदिशा में हैं।
- २१६. [१] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा नेरइया पुरित्थम-पच्चित्थम-उत्तरेणं, दाहिणेणं, असंखेज्जगुणा।
- [२१६-१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े नैरियक पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं, (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।
- [२] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा रयणप्पभापुढविनेरइया पुरित्थम-पच्चित्थम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।

- [२१६-२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम रत्नप्रभापृथ्वी के नैरियक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर में है और (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिण दिशा में हैं।
- [३] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा सक्करप्पभापुढविनेरइया पुरित्थम-पच्चित्थम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।
- [२१६-३] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं और (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।
- [४] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा वालुयप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चित्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।
- [२१६-४] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं (और उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।
- [५] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा पंकप्पभापुढविनेरइया पुरितथम-पच्चितथम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेञ्जगुणा।
- [२१६-५] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प पंकप्रभापृथ्वी के नैरियक जीव पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में हैं (और उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।
- [६] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा धूमप्पभापुढिविनेरइया पुरितथम-पच्चित्थम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।
- [२१६-६] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं, एवं (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।
- [७] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा तमप्पभापुढिविनेरइया पुरितथम-पच्चित्थम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।
- [२१६-७] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम तम:प्रभावपृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में हैं और (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।
- [८] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा अहेसत्तमापुढिवनेरइया पुरितथम-पच्चित्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेजगुणा।
- [२१६-८] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े अध:सप्तमा (तमस्तम:प्रभा) पृथ्वी के नैरियक जीव पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में हैं और (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।
- २१७. [१] दहिणिल्लेहिंतो अहेसत्तमापुढिवनेरइएहिंतो छट्टीए तमाए पुढवीए नेरइया पुरित्थम-पच्चित्थम-उत्तरेणं असंखेञ्जगुणा, दाहिणेणं असंखेञ्जगुणा।
- [२१७-१] दक्षिणदिशा के अध:सप्तमपृथ्वी के नैरियकों से छठी तम:प्रभापृथ्वी के नैरियक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में असंख्यातगुणे हैं, और (उनसे भी) असंख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं।

- [२] दाहिणिल्लेहिंतो तमापुढविणेरइहिंतो पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरित्थम-पच्चित्थम-उत्तरेणं असंखेञ्जगुणा, दाहिणेणं असंखेञ्जगुणा।
- [२१७-२] दक्षिणदिशावर्ती तम:प्रभापृथ्वी के नैरियकों से पांचवी धूमप्रभापृथ्वी के नैरियक पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और (उनसे भी) असंख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं।
- [३] दाहिणिल्लेहिंतो धूमप्पभापुढविनेरइएहिंतो चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरित्थम-पच्चित्थम-उत्तरेणं असंखेञ्जगुणा, दाहिणेणं असंखेञ्जगुणा।
- [२१७-३] दक्षिणदिशावर्ती धूमप्रभापृथ्वी के नैरियकों से चौथी पंकप्रभापृथ्वी के नैरियक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में असंख्यातगुणे हैं; (उनसे) असंख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं।
- [४] दाहिणिल्लेहिंतो पंकप्पभापुढिवनेरइएहिंतो तइयाए वालुयप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरित्थम-पच्चित्थम-उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखिज्जगुणा।
- [२१७-४] दक्षिणात्य पंकप्रभापृथ्वी के नैरियकों से तीसरी वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरियक पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और दक्षिणदिशा में (उनसे भी) असंख्यातगुणे हैं।
- [५] दाहिणिल्लेहिंतो वालुयप्पभापुढिविनेरइएहिंतो दुइयाए सक्करप्पभाए पुढवीए णेरइया पुरत्थिम-पच्चित्थम-उत्तरेणं असंखिञ्जगुणा, दाहिणेणं असंखिञ्जगुणा।
- [२१७-५] दक्षिणदिशा के बालुकाप्रभापृथ्वी के नैरियकों से दूसरी शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरियक पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और दक्षिणादिशा में उनसे भी असंख्यातगुणे हैं।
- [६] दाहिणिल्लेहिंतो सक्करप्पभापुढिवनेरइएहिंतो इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरितथम-पच्चितथम-उत्तरेणं असंखेञ्जगुणा, दाहिणेणं असंखेञ्जगुणा।
- [२१७-६] दक्षिणदिशा के शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरियकों से इस पहली रत्नप्रभापृथ्वी के नैरियक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और उनसे भी दक्षिणदिशा में असंख्यातगुणे हैं।
- २१८. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया पच्चित्थिमेणं, पुरित्थिमेणं विसेसा-हिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।
- [२१८] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव पश्चिम में हैं। पूर्व में (इनसे) विशेषाधिक हैं, दक्षिण में (इनसे) विशेषाधिक हैं और उत्तर में (इनसे भी) विशेषाधिक हैं।
- २१९. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा मणुस्सा दाहिणउत्तरेणं, पुरित्थमेणं संखेज्जगुणा, पच्चित्थ-मेणं विसेसाहिया।
- [२१९] दिशाओं की अपेक्षा सबसे कम मनुष्य दक्षिण एवं उत्तर में हैं, पूर्व में (उनसे) संख्यातगुणे अधिक हैं और पश्चिमदिशा में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।
- २२०. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा भवणवासी देवा पुरित्थम-पच्चित्थिमेणं, उत्तरेणं असंखेज्ज-गुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।

- [२२०] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े भवनवासी देव पूर्व और पश्चिम में हैं। (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक उत्तर में हैं और (उनसे भी) असंख्यातगुणे दक्षिण दिशा में हैं।
- २२१. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा वाणमंतरा देवा पुरित्थमेणं, पच्चित्थिमेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।
- [२२१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प वाणव्यन्तर देव पूर्व में हैं, उनसे विशेषाधिक पश्चिम में हैं, उनसे विशेषाधिक उत्तर में है और उनसे भी विशेषाधिक दक्षिण में हैं।
- २२२. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा जोइसिया देवा पुरित्थम-पच्चित्थिमेणं, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।
- [२२२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े ज्योतिष्क देव पूर्व एवं पश्चिम में हैं, दक्षिण में उनसे विशेषाधिक हैं और उत्तर में उनसे भी विशेषाधिक हैं।
- २२३. [१] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा सोहम्मे कप्पे पुरित्थम-पच्चित्थमेणं, उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं विसेसाहिया।
- [२२३-१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प देव सौधर्मकल्प में पूर्व तथा पश्चिम दिशा में हैं, उत्तर में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं और दक्षिण में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।
- [२] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा ईसाणे कप्पे पुरत्थिम-पच्चित्थिमेणं, उत्तरेणं असंखेज्ज-गुणा, दाहिणेणं विसेसाहिया।
- [२२३-२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम देव ईशान-कल्प में पूर्व एवं पश्चिम में है। उत्तर में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं और दक्षिण में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।
- [३] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा सणंकुमारे कप्पे पुरिश्यम-पच्चित्थिमेणं, उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं विसेसाहिया।
- [२२३-३] दिशाओं की अपेक्षा सबसे अल्प देव सनत्कुमारकल्प में पूर्व और पश्चिम में हैं, उत्तर में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं और दक्षिण में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।
- [४] दिसाणुवातेणं सक्वत्थोवा देवा माहिंदे कप्पे पुरितथम-पच्चित्थमेणं, उत्तरेणं असंखेज्ज-गुणा, दाहिणेणं विसेसाहिया।
- [२२३-४] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प देव माहेन्द्रकल्प में पूर्व तथा पश्चिम में हैं, उत्तर में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं और दक्षिण में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।
- [५] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा देवा बंभलोए कप्पे पुरित्थम-पच्चित्थम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेञ्जगुणा।
- [२२३-५] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम देव ब्रह्मलोककल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं; दक्षिणदिशा में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं।

[६] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा लंतए कप्पे पुरितथम-पच्चितथम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।

[२२३-६] दिशाओं को लेकर सबसे थोड़े देव लान्तककल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं। (उनसे) असंख्यातगुणे दक्षिण में हैं।

[७] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा देवा महासुक्के कप्पे पुरित्थम-पच्चित्थम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।

[२२३-७] दिशाओं की दृष्टि से सबसे कम देव महाशुक्रकल्प में पूर्व, पश्चिम एवं उत्तर में हैं। दक्षिण में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं।

[८] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा सहस्सारे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेञ्जगुणा।

[२२३-८] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम देव सहस्रारकल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं। दक्षिण में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं।

[९] तेण परं बहुसमोववण्णगा समणाउसो!।

[२२३-९] हे आयुष्मन् श्रमणो! उससे आगे (के प्रत्येक कल्प में, प्रत्येक ग्रैवेयक में तथा प्रत्येक अनुत्तरिवमान में चारों दिशाओं में) बहुत (बिल्कुल) सम उत्पन्न होने वाले हैं।

२२४. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा सिद्धा दाहिणुत्तरेणं, पुरित्थमेणं संखेज्जगुणा, पच्चित्थिमेणं विसेसाहिया। दारं १॥

[२२४] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प सिद्ध दक्षिण और उत्तरदिशा में हैं। पूर्व में (उनसे) संख्यातगुणे हैं और पश्चिम में (उनसे) विशेषाधिक हैं। ——प्रथमद्वार ॥१॥

विवेचन—प्रथम दिशाद्वार: दिशाओं की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत बारह सूत्रों (सू. २१३ से २२४ तक) में से प्रथमसूत्र में दिशा की अपेक्षा से अधिक जीवों के अल्पबहुत्व की और शेष ११ सूत्रों में पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीवों से लेकर अनुत्तर विमानवासी वैमानिक देवों तक के पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है।

दिशाओं की अपेक्षा में—आचारांग प्रथम श्रुतस्कन्ध में द्रव्यदिशा और भावदिशा के अनेक भेद बताए गए हैं, किन्तु यहाँ उनमें से क्षेत्रदिशाओं का ही ग्रहण किया गया है, क्योंकि अन्य दिशाएँ यहाँ अनुपयोगी हैं और प्राय: अनियत हैं। क्षेत्रदिशाओं की उत्पत्ति (प्रभव) तिर्यक्लोक के मध्य में स्थित आठ रूचकप्रदेशों से है। वहीं सब दिशाओं का केन्द्र है।

औधिक जीवों का अल्पबहुत्व—दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प जीव पश्चिम दिशा में हैं, क्योंिक उस दिशा में बादर वनस्पित की अल्पता है। यहाँ बादर जीवों की अपेक्षा से ही अल्पबहुत्व का विचार किया गया है, सूक्ष्म जीवों की अपेक्षा से नहीं, क्योंिक सूक्ष्मजीव तो समग्र लोक में व्याप्त हैं,

इसलिए प्राय: सर्वत्र समान ही हैं। बादर जीवों में वनस्पतिकायिक जीव सबसे अधिक हैं। ऐसी स्थिति में जहाँ वनस्पति अधिक है, वहाँ जीवों की संख्या अधिक है, जहाँ वनस्पति की अल्पता है, वहाँ जीवों की संख्या भी अल्प है। वनस्पति वहीं अधिक होती है, जहाँ जल की प्रचुरता होती है। '**जत्थ जलं तत्थ** वणं' इस उक्ति के अनुसार जहाँ जल होता है, वहाँ वन अर्थात् पनक, शैवाल आदि वनस्पति अवश्य होती हैं। बादरनामकर्म के उदय से पनक आदि की गणना बादर वनस्पतिकाय में होने पर भी उनकी अवगाहना अतिसूक्ष्म होने तथा उनके पिण्डीभूत हो कर रहने के कारण सर्वत्र विद्यमान होने पर भी वे नेत्रों से ग्राह्म नहीं होते। 'जहाँ अप्काय होता है, वहाँ नियमत: वनस्पति-कायिक जीव होते हैं;' इस वचनानुसार समुद्र आदि में प्रचुर जल होता है और समुद्र द्वीपों की अपेक्षा दुगुने विस्तार वाले हैं। उन समुद्रों में भी प्रत्येक में पूर्व और पश्चिम में क्रमश: चन्द्रद्वीप और सूर्यद्वीप हैं। जितने प्रदेश में चन्द्र-सूर्यद्वीप स्थित हैं, उतने प्रदेश में जल का अभाव है। जहाँ जल का अभाव है, वहाँ वनस्पतिकायिक जीवों का अभाव होता है। इसके अतिरिक्त पश्चिमदिशा में लवण-समुद्र के अधिपति सुस्थित नामक देव का आवासरूप गौतमद्वीप है, जो लवणसमुद्र से भी अधिक विस्तृत है। वहाँ भी जल का अभाव होने से वनस्पतिकायिकों का अभाव है। इसी कारण पश्चिम दिशा में सबसे कम जीव पाए जाते हैं। पश्चिमदिग्वर्ती जीवों से पूर्व दिशा में विशेषाधिक जीव हैं, क्योंकि पूर्व दिशा में गौतमद्वीप नहीं है, अतएव वहाँ उतने जीव अधिक हैं, दक्षिणदिशा में पूर्वदिग्वर्ती जीवों से विशेषाधिक जीव हैं, क्योंकि दक्षिण में चन्द्र-सूर्यद्वीप न होने से प्रचुर जल है, इस कारण वनस्पतिकायिक जीव भी बहुत हैं। उत्तर में दक्षिणदिग्वर्ती जीवों की अपेक्षा विशेषाधिक जीव हैं, क्योंकि उत्तरदिशा में संख्यात योजन वाले द्वीपों में से एक द्वीप में संख्यातकोटि-योजन-प्रमाण लम्बा-चौड़ा एक मानस-सरोवर है, उससे जल की प्रचुरता होने से वनस्पतिकायिक जीवों की बहुलता है। इसी प्रकार जलाश्रित शंखादि द्वीन्द्रिय जीव, समुद्रादितटोत्पन्न शंख आदि के आश्रित चींटी(पिपीलिका) आदि त्रीन्द्रिय जीव, कमल आदि में निवास करने वाले भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव तथा जलचर मत्स्य आदि पंचेन्द्रिय जीव भी उत्तर में विशेषाधिक हैं। १

विशेषरूप से दिशाओं की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—(१) पृथ्वीकायिकों का अल्पबहुत्व—दिक्षणिदिशा में सबसे कम पृथ्वीकायिक इसिलए हैं कि पृथ्वीकायिक जीव वहीं अधिक होते हैं, जहाँ ठोस स्थान होता है, जहाँ छिद्र या पोल होती है, वहाँ बहुत कम होते हैं। दिक्षणिदिशा में बहुत-से भवनपितयों के भवन और नरकावास होने के कारण छिद्रों और पोली जगहों की अल्पता है। दिक्षणि दिशा की अपेक्षा उत्तरदिशा में पृथ्वीकायिक जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि उत्तरदिशा में भवनपितयों

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ११३-११४

⁽ख) अट्टपएसो रुयगो तिरियलोयस्स मण्झयारंग्मि। एस पभवो दिसाणं, एसेव भवे अणुदिसाणं॥ १॥

⁽ग) 'ते णं बालग्गा सुहुमपणग जीवस्स सरीरोगाहणाहिंतो असंखेज्जगुणा।' —अनुयोद्वारसूत्र

⁽घ) 'जत्थ आउकाओ, तत्थ नियमा वणस्सइकाइया।'

के भवन और नरकावास कम हैं। अत: वहाँ सघन स्थान अधिक है। पूर्विदशा में चन्द्र-सूर्यद्वीप होने से पृथ्वीकायिक जीव विशेषाधिक हैं। इसकी अपेक्षा भी पश्चिम में पृथ्वीकायिकजीव विशेषाधिक हैं क्योंकि वहाँ चन्द्र-सूर्यद्वीप के अतिरिक्त लवणसमुद्रीय गौतमद्वीप भी है।

- (२) अप्कायिकों का अल्पबहुत्व—पश्चिम में वे सब से कम हैं, क्योंकि पश्चिम में गौतमद्वीप होने के कारण जल कम है। पूर्व में गौतमद्वीप नहीं होने से अप्कायिक विशेषाधिक हैं, दक्षिण में चन्द्र- सूर्यद्वीप न होने से अप्कायिक विशेषाधिक हैं और उत्तर में मानससरोवर होने से जल की प्रचुरता है, इसलिए वहाँ अप्कायिक विशेषाधिक हैं।
- (३) तेजस्कायिकों का अल्पबहुत्व—दक्षिण और उत्तर दिशा में अग्निकायिक जीव सबसे कम इसलिए हैं कि मनुष्यक्षेत्र में ही बादर तेजस्कायिक जीवों का अस्तित्व होता है, अन्यत्र नहीं। उनमें भी जहाँ मनुष्यों की संख्या अधिक होती है, वहाँ पचन-पाचन की प्रवृत्ति अधिक होने से तेजस्कायिक जीवों की अधिकता होती है। दक्षिण में पांच भरत क्षेत्रों तथा उत्तर में पांच ऐरवत क्षेत्रों में क्षेत्र की अल्पता होने से मनुष्य कम है, अतएव वहां तेजस्कायिक भी कम हैं। स्वस्थान में (अर्थात् दोनों में) प्राय: समान हैं। इन दोनों दिशाओं की अपेक्षा पूर्व में क्षेत्र संख्यातगुण अधिक होने से तेजस्कायिक पूर्व में संख्यातगुणे अधिक हैं, तथा उनमें भी विशेषाधिक तेजस्कायिक पश्चिमदिशा में हैं, क्योंकि वहाँ अधोलौकिक ग्राम होते हैं, जहाँ मनुष्यों की बहुलता होती है।
- (४) वायुकायिक जीवों का अल्पबहुत्व—सब से अल्प वायुकायिक जीव पूर्व में हैं, क्योंकि जहाँ पोल होती है वहीं वायु का संचार होता है, सघन स्थान में नहीं। पूर्व में सघन (ठोस) स्थान अधिक होने से वायु अल्प है। पूर्व की अपेक्षा पश्चिम में वायुकायिक जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ अधोलौकिक ग्राम होते हैं। उत्तर में उससे विशेषाधिक हैं, क्योंकि नारकावासों की वहाँ बहुलता होने से पोल अधिक है। दक्षिण में उत्तर की अपेक्षा पोल अधिक है, क्योंकि दक्षिण में भवनों और नारकावासों की प्रचुरता है, इसलिए दक्षिण में वे विशेषाधिक हैं।
- (५) वनस्पितकायिक जीवों का अल्पबहुत्व—वे सबसे कम पश्चिम में हैं, क्योंकि पश्चिम में गौतमद्वीप होने से जल की अल्पता है और जल अल्प होने से वनस्पितकायिक जीव भी कम हैं। पश्चिम की अपेक्षा पूर्व में वनस्पितकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि पूर्व में गौतमद्वीप न होने से जल अधिक है। उनसे दक्षिणिदशा में वनस्पितकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ चन्द्र-सूर्य द्वीप का अभाव होने से जल की प्रचुरता है।
- (६) द्वीन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे कम द्वीन्द्रिय पश्चिमदिशा में हैं, क्योंकि वहाँ गौतमद्वीप होने से जल कम है और जल कम होने से शंख आदि द्वीन्द्रिय जीव कम हैं। उनसे पूर्व दिशा में विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ गौतमद्वीप का अभाव होने से जल का प्राचुर्य है, इस कारण शंख आदि द्वीन्द्रिय जीवों की अधिकता है। दक्षिण में उनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ चन्द्र-सूर्य द्वीप न होने

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [२२३

से जल अधिक है और इस कारण शंखादि भी अधिक हैं। उत्तर में मानस-सरोवर होने से जलाधिक्य है ही, इसलिए वहाँ द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं।

- (७) **त्रीन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व**—कुंथुआ, चींटी आदि त्रीन्द्रिय शंखादि-कलेवरों के आश्रित होने से द्वीन्द्रिय जीवों की तरह जलाधिक्य पर निर्भर हैं। इसलिए इनके अल्पबहुत्व का समाधान भी द्वीन्द्रिय की तरह समझ लेना चाहिए।
- (८) चतुरिन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व—भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव भी प्रायः कमल आदि के आश्रित होते हैं और कमल (जलज) भी जलजन्य होने से चतुरिन्द्रिय जीवों की अल्पता-अधिकता भी जलाभाव-जलप्राचुर्य पर निर्भर है। अतः इनके अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण भी द्वीन्द्रियों की तरह समझना चाहिए।
- (१) नारकों का अल्पबहुत्व—पूर्व, पश्चिम और उत्तर में सबसे कम नारक हैं, क्योंकि इन दिशाओं में पुष्पावकीर्ण नरकावास थोड़े हैं, और वे प्राय: संख्यात योजन विस्तृत हैं। इन दिशाओं की अपेक्षा दक्षिणदिशा में असंख्यात-गुणा नारक हैं, क्योंकि दक्षिण में पुष्पावकीर्णनरकावासों की बहुलता है और वे प्राय: असंख्यात योजन विस्तृत हैं। इसके अतिरिक्त कृष्णपाक्षिक जीवों की उत्पत्ति दक्षिणदिशा में बहुत होती है। संसार में दो प्रकार के जीव हैं-कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक। जिनका संसार (भवभ्रमण) कुछ कम अपार्द्ध पुद्गलपरावर्तन मात्र ही शेष है, वे शुक्लपाक्षिक हैं और जिनका संसार (भवभ्रमण) इससे बहुत अधिक है, वे कृष्णपाक्षिक हैं। शुक्लपाक्षिक (परिमित-संसारी) जीव अल्प होते हैं, जबिक कृष्णपाक्षिक जीव अत्यधिक होते हैं। वे क्रूरकर्मा एवं दीर्घतर भवभ्रमणकर्ता जीव स्वभावत: दक्षिणदिशा में उत्पन्न होते हैं। प्राय: क्रूरकर्मा भवसिद्धिक जीव भी दक्षिणदिशा में स्थित नारकों, तिर्यंचों, मनुष्यों और असुरों आदि के स्थानों में उत्पन्न होते हैं।
- (१०) विशेषरूप से रत्नप्रभादि के नारकों का अल्पबहुत्व—रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक-भूमि से तमतम:प्रभा नामक सप्तम नरकभूमि तक के नारक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में सबसे कम हैं, किन्तु दक्षिण दिशा में उनसे असंख्यातगुणे अधिक हैं। इसका कारण पहले बतलाया जा चुका है।
- (११) सातों नरकपृथ्वियों के जीवों का परस्पर अल्पबहुत्व—सप्तम नरकपृथ्वी के पूर्व-पश्चिमोत्तरिदग्वर्ती नारकों की अपेक्षा इसी पृथ्वी के दिक्षणिदग्वर्ती नारक असंख्यातगुणे अधिक हैं, इसका कारण पहले बताया जा चुका है। सप्तम नरकपृथ्वी के दिक्षणिदग्वर्ती नैरियकों की अपेक्षा छठी नरकपृथ्वी (तम:प्रभा) के पूर्वोत्तरपश्चिमिदग्वर्ती नैरियक असंख्यातगुणे हैं, इसका कारण यह है कि संसार में सबसे अधिक पापकर्मकारी संज्ञीपंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य सप्तम नरकपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं, किञ्चित् हीन, हीनतर पापकर्मकारी छठी, पांचवी आदि पृथ्वियों में उत्पन्न होते हैं। सर्वोत्कृष्ट पापकर्मकारी सबसे थोड़े हैं; इसलिए सप्तम नरकपृथ्वी के दिक्षण में सबसे कम नारक हैं, उनसे छठी नरकपृथ्वी के पूर्व-पश्चिम-उत्तरदिग्वर्ती नारकों की अपेक्षा दिक्षणिदग्वर्ती नारक असंख्यातगुणे हैं। कारण

पहले बताया जा चुका है। उनसे क्रमश: पंचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय और प्रथम नरक के पूर्वपश्चिमोत्तरिदग्वर्ती तथा दक्षिणदिग्वर्ती नैरियक अनुक्रम से असंख्यातगुणे समझ लेने चाहिए।

- (१२) तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व—तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व अप्कायिक सूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।
- (१३) मनुष्यों का अल्पबहुत्व—सबसे कम मनुष्य दक्षिण और उत्तर दिशा में हैं, क्योंकि इन दिशाओं में पांच भरत और पांच ऐरावत क्षेत्र छोटे ही हैं। उनसे पूर्विदशा में संख्यातगुणे हैं, क्योंकि वहाँ क्षेत्र संख्यातगुणे बड़े हैं। पश्चिम दिशा में इनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ अधोलौकिक ग्राम हैं, जिनमें स्वभावत: मनुष्यों की बहुलता है।
- (१४) भवनवासी देवों का अल्पबहुत्व—सबसे अल्प भवनवासी देव पूर्व और पश्चिम में हैं, क्योंकि इन दोनों दिशाओं में उनके भवन थोड़े हैं। इनकी अपेक्षा उत्तर में असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि स्वस्थान होने से वहाँ भवन बहुत हैं। दक्षिणदिशा में इनसे भी असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वहाँ प्रत्येक निकाय के चार-चार लाख भवन अधिक हैं तथा बहुत-से कृष्णपाक्षिक इसी दिशा में उत्पन्न होते हैं, अत: वे असंख्यातगुणे अधिक हैं।
- (१५) वाणव्यन्तर देवों का अल्पबहुत्व—जहाँ पोले स्थान हैं, वहीं प्राय: व्यन्तरों का संचार होता है, पूर्विदशा में ठोस स्थान अधिक हैं, इस कारण वहाँ व्यन्तर थोड़े ही हैं। पश्चिमदिशा में उनसे विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ अधोलौकिक ग्रामों में पोल अधिक हैं, उनकी अपेखा उत्तरदिशा में विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ उनके स्वस्थान होने से नगरावासों की बहुलता है। उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में विशेषाधिक हैं, क्योंकि दक्षिणदिशा में उनके नगरावास अत्यधिक हैं।
- (१६) ज्योतिष्क देवों का अल्पबहुत्व—सबसे कम ज्योतिष्क देव पूर्व एवं पश्चिम दिशाओं में होते हैं, क्योंकि इन दोनों दिशाओं में चन्द्र और सूर्य के उद्यान जैसे द्वीपों में ज्योतिष्क देव अल्प ही होते हैं। दक्षिण में उनकी अपेक्षा विशेषाधिक हैं, क्योंकि दक्षिण में उनके विमान अधिक हैं और कृष्णपिक्षिक दिक्षिणिदिशा में ही होते हैं। उत्तरदिशा में उनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योंकि उत्तर में मानससरोवर में ज्योतिष्क देवों के क्रीड़ास्थल बहुत हैं। क्रीड़ारत होने के कारण वहाँ ज्योतिष्क देव सदैव रहते हैं। मानससरोवर के मत्स्य आदि जलचरों को अपने निकटवर्ती विमानों को देख कर जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न होता है, जिससे वे किंचित् व्रत अंगीकार कर अशनादि का त्याग करके निदान के कारण वहाँ उत्पन्न होते हैं। इस कारण उत्तर में दक्षिण की अपेक्षा ज्योतिष्क देव विशेषाधिक हैं।
- (१७) सौधर्म आदि वैमानिक देवों का अल्पबहुत्व—वैमानिक देव सौधर्मकल्प में सबसे कम पूर्व और पश्चिम में हैं, क्योंकि आविलकाप्रविष्ट विमान तो चारों दिशाओं में समान हैं, किन्तु बहुसंख्यक और असंख्यातयोजन-विस्तृत पुष्पावकीर्ण विमान दिक्षण और उत्तर में ही हैं, पूर्व और पश्चिम में नहीं। इसी कारण पूर्व और पश्चिम में सबसे कम वैमानिक देव हैं। इनकी अपेक्षा उत्तर में वे

असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि उत्तर में असंख्यात योजन-विस्तृत पुष्पावकीर्ण विमान बहुत हैं और उनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योंकि कृष्णपाक्षिकों का वहाँ अधिकतर गमन होता है। ईशान, सनत्कुमार एवं माहेन्द्र कल्प के देवों का भी दिशा की अपेक्षा से अल्पबहुत्व इसी प्रकार है और उसका कारण भी पूर्ववत् ही समझ लेना चाहिए। ब्रह्मलोककल्प के देव सबसे कम पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं, क्योंकि बहुसंख्यक कृष्णपाक्षिक दक्षिणदिशा में उत्पन्न होते हैं और शुक्लपाक्षिक थोड़े ही होते हैं। दक्षिणदिशा में उनकी अपेक्षा असंख्यातगुणे देव हैं, क्योंकि वहाँ बहुत कृष्णपाक्षिक उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार लान्तक, महाशुक्र एवं सहस्रार कल्प के देवों का (दिशाओं की अपेक्षा) अल्पबहुत्व एवं कारण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए। सहस्रारकल्प के बाद ऊपर के कल्पों के तथा नौ ग्रैवेयक एवं पांच अनुत्तर विमानों के देव चारों दिशाओं में समान हैं, क्योंकि वहाँ मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं।

(१८) सिद्धजीवों का अल्पबहुत्व—सबसे अल्प सिद्ध दक्षिण और उत्तर में हैं, क्योंकि मनुष्य ही सिद्ध होते हैं, अन्य जीव नहीं। सिद्ध होने वाले मनुष्य चरम समय में जिन आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ (स्थित) होते हैं, उन्हीं आकाशप्रदेशों की दिशा में ऊपर जाते हैं, उसी सीध में ऊपर जाकर वे लोकाग्र में स्थित हो जाते हैं। दक्षिणदिशा में पांच भरतक्षेत्रों में तथा उत्तर में पांच ऐरावत क्षेत्रों में मनुष्य अल्प हैं, क्योंकि सिद्धक्षेत्र अल्प है। फिर सुषम-सुषमा आदि आरों में सिद्धि प्राप्त नहीं होती। इस कारण दक्षिण और उत्तर में सिद्ध सबसे कम हैं। पूर्वदिशा में उनसे असंख्यातगुणे हैं; क्योंकि भरत और ऐरावत क्षेत्र की अपेक्षा पूर्वविदेह संख्यातगुणा विस्तृत है, इसिलए वहाँ मनुष्य भी संख्यातगुणे हैं, और वहाँ से सर्वकाल में सिद्धि होती रहती है। उनसे भी पश्चिम दिशा में विशेषाधिक हैं; क्योंकि अधोलौकिक ग्रामों में मनुष्यों की अधिकता है।

द्वितीय गतिद्वार : पांच या आठ गतियों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व

२२५. एएसि णं भंते! नेरइयाणं तिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं देवाणं सिद्धाणं य पंचगित^२ समासेणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सा १, नेरइया असंखेज्जगुणा २, देवा असंखेज्जगुणा ३, सिद्धा अणंतगुणा ४, तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ५।

[२२५ प्र.] भगवन्! नारकों, तिर्यंचों, मनुष्यों, देवों और सिद्धों की पाँच गतियों की अपेक्षा से संक्षेप में कौन किनसे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२२५ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े मनुष्य हैं, २. (उनमें) नैरियक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) देव असंख्यातगुणे हैं, ४. उनसे सिद्ध अनन्तगुणे है और ५. (उनसे भी) तिर्यंचयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ११६ से ११९ तक

२. 'पंचगति अणुवाएणं समासेणं' यह पाठान्तर मिलता है। -सं.

२२६. एतेसि णं भंते! नेरइयाणं तिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीणं मणुस्साणं मणुस्सीणं देवाणं देवीणं सिद्धाण य^१ अट्टगति समासेणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ १, मणुस्सा असंखेज्जगुणा २, नेरइया असंखेज्जगुणा ३, तिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ४, देवा असंखेज्जगुणा ५, देवीओ संखेज्जगुणाओ ६, सिद्धा अणंतगुणा ७, तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ८। दारं २॥

[२२६ प्र.] भगवन्! इन नैरियकों, तिर्यञ्चों, तिर्यचिनियों, मनुष्यों, मनुष्यस्त्रियों, देवों देवियों और सिद्धों का आठ गतियों को अपेक्षा से, संक्षेप में, कौन किनसे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२२६ उ.] गौतम! १. सबसे कम मानुषी (मनुष्यस्त्री) हैं, २. (उनसे) मनुष्य असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) नैरियक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) तिर्यञ्चिनयां असंख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) देव असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) देवियां संख्यातगुणी हैं, ७ (उनसे) सिद्ध अनन्तगुणे हैं, और ८. (उनसे भी) तिर्यञ्चयोनिक अनन्तगुणे हैं। दितीय द्वार ॥ २॥

विवेचन—द्वितीय गितद्वार-पांच या आठ गितयों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. २२५-२२६) में नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और सिद्धि, इन पांच गितयों की अपेक्षा से तथा नारक, तिर्यंच, तिर्यंचनी, मनुष्य, मानुषी, देव, देवी और सिद्ध, इन आठ गितयों की अपेक्षा से जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

पांच गितयों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—गितयों की अपेक्षा से सबसे थोड़े मनुष्य हैं, क्योंकि वे ९६ छेदनक-छेद्यरिशप्रमाण ही हैं। उनसे नैरियक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे अंगुलप्रमाण क्षेत्र के प्रदेशों की राशि के प्रथम वर्गमूल का द्वितीय वर्गमूल से गुणाकार करने पर जो प्रदेशरिश होती है, उतनी ही घनीकृतलोक की एकप्रादेशिकी क्षेणियों में जितने आकाशप्रदेश होते हैं, उतना ही नारकों का प्रमाण है। नैरियकों की अपेक्षा देव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि व्यन्तर और ज्योतिष्क देव प्रतर की असंख्यातभागवर्ती श्रेणियों के आकाशप्रदेशों की राशि के तुल्य हैं। सिद्ध उनसे भी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वे अभव्यों से अनन्तगुणे हैं। सिद्धों से तिर्यञ्च अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अकेले वनस्पितकायिक जीव ही सिद्धों से अनन्तगुणे हैं।

आठ बोलों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—पांच गितयों के ही अवान्तर भेद करके प्रस्तुत आठ गितयां बताकर उनकी दृष्टि से अल्पबहुत्व का निरूपण करते हैं—सबसे कम मानुषी (मनुष्यस्त्रियां) हैं, क्योंकि उनकी संख्या संख्यातकोटाकोटी प्रमाण है। उनसे मनुष्य असंख्यातगुणे अधिक हैं; क्योंकि

१. **'अट्टगति अणुवाएणं समासेणं**' यह पाठान्तर मिलता है। -सं.

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति पत्रांक ११९

इनमें वेद की विवक्षा न करने से सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का भी समावेश हो जाता है और सम्मूर्च्छिनज मनुष्य उच्चार, प्रस्नवण, वमन आदि से लेकर नगर की नालियों (मोरियों) आदि (१४ स्थानों) में असंख्येय उत्पन्न होते हैं। मनुष्यों की अपेक्षा नारक असंख्यातगुणे हैं, कयोंकि मनुष्य उत्कृष्ट संख्या में क्षेणी के असंख्यातवें भागगत प्रदेशों की राशि प्रमाण पाए जाते हैं, जबिक नारक अंगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशों की राशिवर्ती तृतीय वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूलप्रमाण-श्रेणिगत आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर हैं। अत: वे उनसे असंख्यातगुणे हैं। नारकों से तिर्यंचिनी असंख्यातगुणी हैं, क्योंकि वे प्रतरासंख्येय भाग में रहे हुए असंख्यातश्रेणियों के आकाशप्रदेशों के समान हैं। देव इनसे भी असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे असंख्येयगुणप्रतर के असंख्येयभागवर्ती असंख्येय श्रेणिगतप्रदेशों की राशि-प्रमाण हैं। देवों की अपेक्षा देवियां संख्येयगुणी अधिक हैं, क्योंकि वे देवों से बत्तीसगुणी हैं। देवियों की अपेक्षा सिद्ध अनन्तगुणे हैं और सिद्धों से तिर्यञ्च अनन्तगुणे अधिक हैं। इनकी अधिकता का कारण पहले बताया जा चुका है। है

तृतीय इन्द्रियद्वार : इन्द्रियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

२२७. एतेसि णं भंते! सइंदियाणं एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं अणिंदियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा पंचेंदिया १, चउरिंदिया विसेसाहिया २, तेइंदिया विसेसाहिया ३, बेइंदिया विसेसाहिया ४, अणिंदिया अणंतगुणा ५, एगिंदिया अणंतगुणा ६, सइंदिया विसेसाहिया ७।

[२२७ प्र.] भगवन्! इन इन्द्रिययुक्त, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रियों में कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं?

[२२७ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय जीव हैं, २. (उन से) चतुरिन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) त्रीन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) द्वीन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) अनिन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं, ६. (उनसे) एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं और ७. उनसे इन्द्रिय सिंहत जीव विशेषाधिक हैं।

२२८. एतेसि णं भंते! सइंदियाणं एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं अपञ्जत्तगाणं कतरे कतरेहिंतो अप्या वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया ?

गोयमा! सत्वत्थोवा पंचेंदिया अपञ्जत्तगा १, चउरिंदिया अपञ्जत्तया विसेसाहिया २, तेइंदिया अपञ्जत्तया विसेसाहिया ३, बेइंदिया अपञ्जत्तया विसेसाहिया ४, एगिंदिया अपञ्जत्तया अणंतगुणा ५, सइंदिया अपञ्जत्तया विसेसाहिया ६।

[२२८ प्र.] भगवन्! इन इन्द्रियसिंहत, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प, बहुत तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२२८ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं, २. (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १२०

विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ६. (उनसे भी) इन्द्रिय सहित अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२२९. एतेसि णं भंते! सइंदियाणं एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं पज्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पञ्जत्तगा १, पंचेंदिया पञ्जत्तगा विसेसाहिया २, बेंदिया पञ्जत्तगा विसेसाहिया ३, तेंदिया पञ्जत्तगा विसेसाहिया ४, एगिंदिया पञ्जत्तगा अणंतगुणा ५, सइंदिया पञ्जत्तगा विसेसाहिया ६।

[२२९ प्र.] भगवन्! इन इन्द्रियसिंहत, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

[२२९ उ.] गौतम! १. सबसे कम चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक जीव हैं, २. उनसे पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ६. उनसे भी इन्द्रियसहित पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२३०. [१] एतेसि णं भंते! सइंदियाणं पञ्जत्ताऽपञ्जाताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा सइंदिया अपञ्जत्तगा, सइंदिया पज्जत्तगा संखेञ्जगुणा।

[२३०-१ प्र.] भगवन्! इन्द्रिययुक्त (सेन्द्रिय) पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प, बहुत तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-१ उ.] गौतम! सबसे थोड़े सेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सेन्द्रिय पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे

[२] एतेसि णं भंते! एगिंदियाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा एगिंदिया अपञ्जत्तगा, एगिंदिया पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा।

[२३०-२ प्र.] भगवन्! इन एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-२ उ.] गौतम! सबसे अल्प एकेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं, (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[३] एतेसि णं भंते! बेंदियाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा वेंदिया पञ्जत्तगा, बेंदिया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा।

[२३०-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

[२३०-३ उ.] गौतम! सबसे कम द्वीन्द्रिय पर्याप्तक हैं, (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[४] एतेसि णं भंते! तेइंदियाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा तेंदिया पञ्जत्तगा, तेंदिया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा।

[२३०-४ प्र.] भगवन्! इन त्रीन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-४ उ.] गौतम! सबसे थोड़े त्रीन्द्रिय पर्याप्तक हैं, (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे

[५] एतेसि णं भंते! चउरिंदियाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पञ्जत्तगा, चउरिंदिया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा।

[२३०-५ प्र.] भगवन्! इन चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-५ उ.] गौतम! सबसे थोड़े चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं, (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[६] एएसि णं भंते! पंचेंदियाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा पंचेंदिया पञ्जत्तगा, पंचेंदिया अप्पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ।

[२३०-६ प्र.] भगवन्! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०- उ.] गौतम! सबसे अल्प पर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीव हैं, उनसे अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीव असंख्यातगुणे हैं।

२३१. एएसि णं भंते! सइंदियाणं एगिंदियाणं बेंदियाणं तेंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पञ्जत्तगा १, पंचेंदिया पञ्जत्तगा विसेसाहिया २, बेंदिया

पञ्जत्तगा विसेसाहिया ३, तेइंदिया पञ्जत्तगा विसेसाहिया ४, पंचेंदिया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ५, चउरिंदिया अपञ्जत्तगा विसेसाहिया ६, तेइंदिया अपञ्जत्तगा विसेसाहिया ७, बेंदिया अपञ्जत्तगा विसेसाहिया ७, एगेंदिया अपञ्जत्तगा अणंतगुणा ९, सइंदिया अपञ्जत्तगा विसेसाहिया १०, एगिंदिया पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा ११, सइंदिया पञ्जत्तगा विसेसाहिया १२, सइंदिया विसेसाहिया १३। दारं ३॥

[२३१ प्र.] भगवन्! इन सेन्द्रिय, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३१ उ.] गौतम! १, सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं। २. (उनसे) पंचेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ३. (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ४. (उनसे) त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ५. (उनसे) पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ६. (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ७. (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ९. (उनसे) ह्वीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ९. (उनसे) एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं। १०. (उनसे) सेन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ११. (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं १२, (और उनसे) सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं १३. (तथा उनसे भी) सेन्द्रिय (इन्द्रियवान्) विशेषाधिक हैं।

विवेचन—तृतीय इन्द्रियद्वार : इन्द्रियों की अपेखा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत पांच सूत्रों (सू. २२७ से २३१ तक) में इन्द्रियों की अपेक्षा से सेन्द्रिय, अनिन्द्रिय तथा एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों तक के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा विभिन्न पहलुओं से की गई है।

- (१) सेन्द्रिय अिनन्द्रिय तथा एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों का अल्पबहुत्व सबसे कम पंचेन्द्रिय (पांच इन्द्रियों वाले नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव) जीव हैं, क्योंकि वे संख्यात कोटा-कोटी-योजनप्रमाण विष्कम्भसूची से प्रमित प्रतर के असंख्येयभागवर्ती असंख्येय श्रेणीगत आकाशप्रदेशों की राशि-प्रमाण हैं। उनसे विशेषाधिक चार इन्द्रियों वाले भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव हैं; क्योंकि वे विष्कम्भसूची के प्रचुर संख्येयकोटाकोटीयोजनप्रमाण हैं। उनसे त्रीन्द्रिय (चींटी आदि तीन इन्द्रियों वाले) जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे विष्कम्भसूची से प्रचुरतर संख्यातकोटाकोटीयोजनप्रमाण हैं। द्वीन्द्रिय (शंख आदि दो इन्द्रियों वाले) जीव उनकी अपेक्षा विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे विष्कम्भसूची के प्रचुरतम संख्येयकोटाकोटीयोजनप्रमाण हैं। द्वीन्द्रियों से अनिन्द्रिय (सिद्ध) जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वे अनन्त हैं। अनिन्द्रियों से एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव सिद्धों से अनन्तगुणे अधिक हैं। एकेन्द्रिय जीवों से भी सेन्द्रिय (सभी इन्द्रियों वाले) जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि द्वीन्द्रिय आदि सभी जीवों का उसमें समावेश हो जाता है। यह समुच्चय जीवों का अल्पबहुत्व हुआ।
 - (२) अपर्याप्त समुच्चय जीवों का अल्पबहुत्व—अपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव सबसे थोड़े हैं, क्योंकि

वे एक प्रतर में जितने भी अंगुल के असंख्यात भागमात्र खण्ड होते हैं, उतने ही हैं। उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक इसलिए हैं कि वे प्रचुर अंगुल के असंख्यातभाग खण्डप्रमाण हैं। उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक हैं; क्योंकि वे प्रचुरतरप्रतरांगुल के असंख्यातभागखण्ड-प्रमाण हैं। द्रीन्द्रिय अपर्याप्त उनसे विशेषाधिक हैं; क्योंकि वे प्रचुरतम प्रतरांगुल के असंख्यातभागखण्डप्रमाण हैं। एकेन्द्रिय अपर्याप्त उनसे अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अपर्याप्त वनस्पतिकायिक सदैव अनन्त पाए जाते हैं। इनसे विशेषाधिक सेन्द्रिय अपर्याप्त जीव हैं; क्योंकि सेन्द्रिय सामान्य जीवों में एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि सभी इन्द्रियवान् जीवों का समावेश हो जाता है।

- (३) पर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व—चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक जीव सबसे अल्प हैं, क्योंिक चतुरिन्द्रिय जीवों की आयु बहुत अल्प होती है, इसलिए अधिक काल तक न रहने से प्रश्न के समय थोड़े ही पाये जाते हैं। उनकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंिक वे प्रचुर प्रतरांगुल के असंख्येयभाग-खण्ड-प्रमाण हैं। उनसे द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंिक वे प्रचुर प्रतरांगुल के असंख्येयभाग-खण्ड-प्रमाण हैं। उनसे द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंिक वे प्रचुरतर प्रतरांगुल के असंख्यातभाग-प्रमाण खण्डों के बराबर हैं। उनकी अपेक्षा त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक होते हैं, क्योंिक वे स्वभावत: प्रचुरतम प्रतरांगुल के संख्यातभागप्रमाण खण्डों के बराबर हैं। उनसे अनन्तगुणे ऐकेन्द्रिय पर्याप्तक हैं, क्योंिक अकेले वनस्पतिकायिक जीव अनन्त होते हैं। सेन्द्रिय-पर्याप्तक उनसे भी विशेषाधिक हैं क्योंिक उनमें पर्याप्तक द्वीन्द्रिय आदि का भी समावेश हो जाता है।
- (४) पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे कम सेन्द्रिय अपर्याप्तक जीव हैं, क्योंकि सेन्द्रियों में सूक्ष्म-एकेन्द्रिय ही सर्वलोकव्याप्त होने के कारण बहुत हैं, किन्तु उनमें अपर्याप्त सबसे कम होते हैं। उनकी अपेक्षा सेन्द्रिय-पर्याप्त संख्यातगुणे अधिक हैं। इसी प्रकार एकेन्द्रिय अपर्याप्त सबसे कम और पर्याप्त उनसे संख्यातगुणे अधिक हैं। द्वीन्द्रियों में पर्याप्तक सबसे कम हैं, क्योंकि वे प्रतरंगुल के संख्येयभागमात्रखण्ड-प्रमाण हैं, जबिक द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक प्रतरवर्ती अंगुल के असंख्येयभागखण्ड-प्रमाण होते हैं। इसके पश्चात् त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों में प्रत्येक में पर्याप्तक सबसे कम हैं, अपर्याप्तक उनसे असंख्यातगुणे हैं, कारण वही पूर्ववत् समझना चाहिए।
- (५) समुच्चय में सेन्द्रिय आदि समुदित पर्याप्त-अपर्याप्त जीवों का अल्पबहुत्व—इनमें सबसे कम चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं, कारण पहले बताया जा चुका है। उनसे पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, द्वीन्द्रिय पर्याप्तक, व्रीन्द्रिय पर्याप्तक, ये तीनों क्रमशः उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं। उनसे पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, व्रीन्द्रिय अपर्याप्त, व्रत्रोत्तर असंख्यातगुणे, विशेषाधिक, विशेषाधिक एवं विशेषाधिक हैं। आगे क्रमशः एकेन्द्रिय अपर्याप्त उनसे अनन्तगुणे सेन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक, एकेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणे, सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक तथा सेन्द्रिय जीव इनसे भी विशेषाधिक होते हैं। इसके अल्पबहुत्व का कारण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए। १

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १२१, १२२

चतुर्थं कायद्वारः काय की अपेक्षा से सकायिक, अकायिक एवं षट्कायिक जीवों का अल्पबहुत्व २३२. एएसि णं भंते! स्काइयाणं पुढिवकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सितिकाइयाणं तसकाइयाणं अकाइयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयाम! सव्वत्थोवा तसकाइया १, तेउकाइया असंखेन्जगुणा २, पुढविकाइया विसेसाहिया ३, आउकाइया विसेसाहिया ४, वाउकाइया विसेसाहिया ५, अकाइया अणंतगुणा ६, वण्णस्सइकाइया असंखगुणा ७, सकाइया विसेसाहिया ८।

[२३२ प्र.] भगवन्! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३२ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प त्रसकायिक हैं, २. (उनसे) तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) अप्कायिक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) वायु-कायिक विशेषाधिक हैं, ६. (उनसे) अकायिक अनन्तगुणे हैं, ७. (उनसे) वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, ८. और (उनसे भी) सकायिक विशेषाधिक हैं।

२३३. एतेसि णं भंते! सकाइयाणं पुढिवकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सितिकाइयाणं तसकाइयाणं य अपञ्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा तसकाइया अपज्जत्तगा १, तेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेजगुणा २, पुढिविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ३, आउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ४, वाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ५, वणप्फइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा ६, सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ७।

[२३३ प्र.] भगवन्! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

[२३३ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े त्रसकायिक अपर्याप्तक हैं, २. (उनसे) तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंखतगुणे हैं, ३. (उनसे) पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६. (उनसे) वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, ७. और (उनसे भी) सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

२३४. एतेसि णं भंते! सकाइयाणं पुढिवकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सइकाइयाणं तसकाइयाण य पञ्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्या वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा तसकाइया पञ्जत्तगा १, तेउकाइया पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा २, पुढिविकाइया पञ्जत्तगा विसेसाहिया ३, आउकाइया पञ्जत्तगा विसेसाहिया ४, वाउकाइया पञ्जत्तगा विसेसाहिया ५, वणप्फइकाइया पञ्जत्तगा अणंतगुणा ६, सकाइया पञ्जत्तगा विसेसाहिया ७।

[२३४ प्र.] भगवन्! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, तुल्य, बहुत अथवा विशेषाधिक हैं?

[२३४ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प त्रसकायिक पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) तेजस्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६. (उनसे) वनस्पति-कायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ७. (उनसे भी) सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

२३५. [१] एतेसि णं भंते! सकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा सकाइया अपञ्जत्तगा, सकाइया, पञ्जत्तगा संखिञ्जगुणा।

[२३५-१ प्र.] भगवन्! इन पर्याप्त और अपर्याप्त सकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य, अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३५-१ उ.] गौतम! सबसे थोड़े सकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[२] एतेसि णं भंते! पुढिवकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा पुढविकाइया अपञ्जत्तगा, पुढविकाइया पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा।

[२३५-२ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक पृथ्वीकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विषेषाधिक हैं ?

[२३५-२ उ.] गौतम! सबसे अल्प पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

· [३] एतेसि णं भंते! आउकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा आउकाइया अपज्जत्तगा आउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

[२३५-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक अप्कायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३५-३ उ.] गौतम! सबसे कम अप्कायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[४] एतेसि णं भंते! तेउकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा तेउकाइया अपज्जत्तगा, तेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

- [२३५-४ प्र.] भगवन्! तेजस्कायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?
- [२३५-४ उ.] गौतम! सबसे कम अपर्याप्तक तेजस्कायिक हैं। (उनसे) अपर्याप्तक तेजस्कायिक संख्यातगुणे हैं।
- [५] एतेसि णं भंते! वाउकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा वाउकाइया अपञ्जत्तगा, वाउकाइया पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा

[२३५-५ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक वायुकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३५-५ उ.] गौतम! सबसे अल्प अपर्याप्तक वायुकायिक हैं, (उनसे) पर्याप्तक वायुकायिक संख्यातगुणे हैं।

[६] एएसि णं भंते! वणस्सइकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्तगाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा वणप्फइकाइया अपज्जत्तगा, वणप्फइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

[२३५-६ प्र.] भगवन्! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक वनस्पतिकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३५-६ उ.] गौतम! सबसे थोड़े अपर्याप्तक वनस्पतिकायिक हैं, (उनसे) पर्याप्तक वनस्पति-कायिक संख्यातगुणे हैं।

[७] एतेसि णं भंते! तसकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा तसकाइया पञ्जत्तगा, तसकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा।

[२३५-७ प्र.] भगवन्! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रसकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३-५-७ उ.] गौतम! सबसे कम पर्याप्तक त्रसकायिक हैं, (उनसे) अपर्याप्तक त्रसकायिक असंख्यातगुणे हैं।

२३६. एतेसि णं भंते! सकाइयाणं पुढविकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [२३५

वणस्सइकाइयाणं तसकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला त्रा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा तसकाइया पञ्जत्तगा १, तसकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा २, तेउकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ३, पुढिविकाइया अपञ्जत्तगा विसेसाहिया ४, आउकाइया अपञ्जत्तगा विसेसाहिया ५, वाउकाइया अपञ्जत्तगा विसेसाहिया ६, तेउकाइया पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा ७, पुढिविकाइया पञ्जत्तगा विसेसाहिया ८, आउकाइया पञ्जत्तगा विसेसाहिया ९, वाउकाइया पञ्जत्तगा विसेसाहिया १०, वणस्सइकाइयां अणंतगुणा ११, सकाइया अपञ्जत्तगा विसेसाहिया १२, वणप्फितकाइया पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा १३, सकाइया अपञ्जत्तगा विसेसाहिया १३, सकाइया विसेसाहिया १५।

[२३६ प्र.] भगवन्! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३६ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प त्रसकायिक पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६. (उनसे) वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७. (उनसे) तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ९. (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १०. (उनसे) वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ११. (उनसे) सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १३. (उनसे) वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, १४. (उनसे) सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १५. और (उनसे) सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १५. और (उनसे भी) सकायिक विशेषाधिक हैं।

विवेचन—चतुर्थं कायद्वार : काय की अपेक्षा से सकायिक, अकायिक एवं षट्कायिक जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत पांच सूत्रों (सू. २३२ से २३६ तक) में काय की अपेक्षा षट्कायिक, सकायिक, तथा अकायिक जीवों का समुच्चयरूप में, इनके अपर्याप्तकों तथा पर्याप्तकों का एवं पृथक्-पृथक् एवं समुदित पर्याप्तक, अपर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादित किया गया है।

(१) षट्कायिक, सकायिक, अकायिक जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े त्रसकायिक हैं, क्योंकि त्रसकायिकों में द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव हैं, वे अन्य कायों (पृथ्वीकायादि) की अपेक्षा अल्प हैं। उनसे तेजस्कायिक असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि वे असंख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रचुर असंख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे अप्कायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रचुरतर असंख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे वायुयिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रचुरतर असंख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनकी अपेक्षा अकायिक

(सिद्ध भगवान्) अनन्तगुण हैं, क्योंकि सिद्ध जीव अनन्त हैं। उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वे अनन्त लोकाकाशप्रदेशराशि-प्रमाण हैं। उनसे भी सकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें पृथ्वीकायिक आदि सभी कायवान् प्राणियों का समावेश हो जाता है।

- (२) सकायिक आदि अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—इनमें सबसे अल्प त्रसकायिक अपर्याप्तक से लेकर क्रमश: सकायिक अपर्याप्तक पर्यन्तिवशेषाधिक हैं। यहाँ तक के अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।
- (३) सकायिक आदि पर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—इनका अल्पबहुत्व भी पूर्ववत् युक्ति से समझ लेना चाहिए।
- (४) सकायिकादि प्रत्येक के पर्याप्तक-अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े सकायिक अपर्याप्तक हैं, उनसे सकायिक पर्याप्तक संख्येयगुणे हैं। इसी तरह आगे के सभी सूत्रपाठ सुगम हैं। इन सब में अपर्याप्तक सबसे थोड़े और उनकी अपेक्षा पर्याप्तक संख्यातगुणे बताए गए हैं, इसका कारण यह है कि पर्याप्तकों के आश्रय से अपर्याप्तकों का उत्पाद होता है। अर्थात् पर्याप्तक अपर्याप्तकों के आधारभूत हैं।
- (५) समुच्चय में सकायिक आदि समुदित पर्याप्तकों-अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—इनमें सबसे कम त्रसकायिक पर्याप्तक हैं, उनसे त्रसकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि पर्याप्त द्वीन्द्रियादि से अपर्याप्त द्वीन्द्रियादि असंख्यातगुणे अधिक हैं। उनसे तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि वे असंख्यात लोकाकाशप्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक एवं वायुकायिक अपर्याप्तक क्रमशः विशेषाधिक हैं। पृथ्वीकाय के अपर्याप्तकों की आयु अधिक होने से वे तेजस्कायिक अपर्याप्त से अधिक हैं। उनसे अप्काय के अपर्याप्त बहुत अधिक होने से विशेषाधिक हैं। उनसे वायुकायिक अपर्याप्त पूर्वोक्त युक्ति से विशेषाधिक हैं। उनसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वायुकायिक पर्याप्तक क्रमशः विशेषाधिक हैं, क्योंकि अपर्याप्तकों की अपेक्षा पर्याप्तक विशेषाधिक होते हैं। आगे वनस्पति काय के अपर्याप्तक अनन्तगुणे पर्याप्तक संख्यातगुणे तथा सकायिक पर्याप्त उनसे संख्यातगुणे हैं। इसका कारण पहले बता चुके हैं। यद्यपि इस सूत्र (सू. २३६) के अल्पबहुत्व में १५ पद हैं, जिनका उल्लेख अन्य प्रतियों में है, किन्तु वृत्तिकार ने प्रज्ञापनावृत्ति में केवल १२ पदों का ही निर्देश किया है। अतः प्रज्ञापनासूत्र (मूलपाठ-टिप्पणसहित) में अन्य प्रतियों के अनुसार तीन पद अधिक अंकित किये गए हैं—यथा १३. सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १४. (उनसे) सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं। के वनस्पति कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, के पश्चात् विशेषाधिक हैं, तथा १५. सकायिक विशेषाधिक हैं।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १२३

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १२४ (ख) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा. १. पृ. ८८ (ग) प्रज्ञापनासुत्र (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग. २, पृ. ७४ एवं ९२

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [२३७

कायद्वार के अन्तर्गत सूक्ष्म-बादरकायद्वार

२३७. एतेसि णं भंते! सुहुमाणं सुहुमपुढिविकाइयाणं सुहुमआउकाइयाणं सुहुमतेउक्काइयाणं सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणप्फइकाइयाणं सुहुमणिओयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया १. सुहुमपुढिविकाइया विसेसाहिया २, सुहुमआउकाइया विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया ४, सुहुमिनगोदा असंखेज्जगुणा ५, सुहुमवणप्फइकाइया अणंतगुणा ६, सुहुमा विसेसाहिया ७।

[२३७ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एवं सूक्ष्मिनगोदों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३७ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प सूक्ष्म तेजस्कायिक हैं, २. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) सूक्ष्म निगोद असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अनन्त-गुणे हैं और ७. (उनसे भी) सूक्ष्म जीव विशेषाधिक हैं।

२३८. एतेसि णं भंते! सुहुमअपज्जत्तगाणं सुहुमपुढिविकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमआउकाइया-पज्जत्तयाणं सुहुमतेउकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमवाउकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमवणप्फइकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमणिगोदापज्जत्तयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपञ्जत्तया १, सुहुमपुढिवकाइया अपञ्जत्तया विसेसा-हिया २, सुहुमआउकाइया अपञ्जत्तया विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया अपञ्जत्तया विसेसाहिया ४, सुहुमिनगोदा अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ५, सुहुमवणप्फितिकाइया अपञ्जत्तगा अणंतगुण ६, सुहुमा अपञ्जत्तगा विसेसाहिया ७।

[२३८-प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३८ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक हैं, २. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक, अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं; ४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) सूक्ष्म विगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ७. (उनसे भी) सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२३९. एतेसि णं भंते! सुहुमपञ्जत्तगाणं सुहुमपुढिविकाइयपञ्जत्तगाणं सुहुआउकाइय-पञ्जत्तगाणं सुहुमतेउकाइयपञ्जत्तगाणं सुहुमवाउकाइयपञ्जत्तगाणं सुहुमवणप्फइकाइयपञ्जत्तगाणं सुहुमिनगोदपञ्जत्तगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्या वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमतेउक्काइया पञ्जत्तगा १, सुहुमपुढिवकाइया पञ्जत्तगा विसेसाहिया २, सुहुमआउकाइया पञ्जत्तगा विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया पञ्जत्तगा विसेसाहिया ४, सुहुमणिओया पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ५, सुहुमवणप्फइकाइया पञ्जत्तया अणंतगुणा ६, सुहुमा पञ्जत्तगा विसेसाधिया ७।

[२३९ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक और सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३९ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक असंख्यात-गुणे हैं, ६. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ७. (उनसे भी) विशेषाधिक सूक्ष्म पर्याप्तक जीव हैं।

२४०. [१] एतेसि णं भंते! सुहुमाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमा अपञ्जत्तगा, सुहुमा पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा ।

[२४०-१ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों में कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-१ उ.] गौतम! सबसे अल्प सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव हैं, उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

[२] एतेसि णं भंते! सुहुमपुढिवकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमपुढिविकाइया अपञ्जत्तगा, सुहुमपुढिविकाइया पञ्जत्तगा संखेञ्ज-गुणा।

[२४०-२ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं!

[२४०-२ उ.] गौतम! सबसे अल्प सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[३] एतेसि णं भंते! सुहुमआउकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमआउकाइया अपञ्जत्तया, सुहुमआउकाइया पञ्जत्तया संखेञ्जगुणा।

[२४०-३ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-३ उ.] गौतम! सबसे कम सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[४] एतेसि णं भंते! सुहुमतेउकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ल वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपञ्जत्तया, सुहुमतेउकाइया पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा।

[२४०-४ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तकों में से कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-४ उ.] गौतम! सबसे कम सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[५] एएसि णं भंते! सुहुमवाउकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमवाउकाइया अपञ्जत्तया, सुहुमवाउकाइया पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा।

[२४०-५ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-५ उ.] गौतम! सबसे थोड़े सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक जीव हैं, (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक जीव संख्यातगृणे हैं।

[६] एएसि णं भंते! सुहुमवणप्फइकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमवणप्फइकाइया अपञ्जत्तगा, सुहुमवणप्फइकाइया पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा।

[२४०-६ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं।

[२४०-६ उ.] गौतम! सबसे अल्प सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[७] एएसि णं भंते! सुहुमनिगोदाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमनिगोदा अपञ्जत्तगा, सुहुमनिगोदा पञ्जत्तया संखेञ्जगुणा।

[२४०-७ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म निगोद के पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-७ उ.] गौतम! सबसे थोड़े सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

१४१. एतेसि णं भंते! सुहुमाणं सुहुमपुढिवकाइयाणं सुहुमआउकाइयाणं सुहुमतेउकाइयाणं सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणस्सइकाइयाणं सुहुमिनगोदाण य पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया १, सुहुमपुढिविकाइया अपज्जत्तया विसेसािहया २, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया विसेसािहया ३, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया विसेसािहया ४, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ५, सुहुमपुढिविकाइया पज्जत्तया विसेसािहया ६, सुहुमआउकाइया पज्जत्तया विसेसािहया ७, सुहुमवाउकइया पज्जत्तया विसेसािहया ८, सुहुमिनगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ९, सुहुमिनगोदा पज्जत्तया संखेज्जगुणा १०, सुहुमवणप्फइकाइया अपज्जत्तया अणंतगुणा ११, सुहुमा अपज्जत्तया विसेसािहया १२, सुहुमवणप्फइकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा १३, सुहुमा पज्जत्तया विसेसािहया १४, सुहुमा विसेसािहया १५।

[२४१ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म जीव, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एवं सूक्ष्म निगोदों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[२४१ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक हैं, २. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ८. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ९. (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १०. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ११. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, १२. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, १३. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, १४. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं और १५. (उनसे भी) सूक्ष्म जीव विशेषाधिक हैं।

२४२ एतेसि णं भंते! बादराणं बादरपुढिविकाइयाणं बादरआउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकाइयाणं बादरवणस्सइकाइयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयाणं बादरिनगोदाणं बादरतसकाइयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ? गोयमा! सव्वत्थोवा बादरा तसकाइया १, बादरा तेउकाइया असंखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीर-बादरवणप्फइकाइया असंखेज्जगुणा ३, बादरा निगोदा असंखेज्जगुणा ४, बादरा पुढविकाइया असंखेज्जगुणा ५, बादरा आउकाइया असंखेज्जगुणा ६, बादरा वाउकाइया असंखेज्जगुणा ७, बादरा वणप्फइकाइया अणंतगुणा ८, बादरा विसेसाहिया ९।

[२४२ प्र.] भगवन्! इन बादर जीवों, बादर पृथ्वीकायिकों, बादर अप्कायिकों, बादर तेजस्कायिकों, बादर वायुकायिकों, बादर वनस्पतिकायिकों, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिकों, बादरू निगोदों और बादर त्रसकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४२ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े बादर त्रसकायिक हैं, २. (उनसे) बादर, तेजस्कायिक असंख्येयगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक असंख्येयगुणे हैं, ४. (उनसे) बादर निगोद असंख्येयगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक असंख्येयगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर अप्कायिक असंख्येयगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर वायुकायिक, असंख्येयगुणे हैं, ८. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, और ९. (उनसे भी) बादर जीव विशेषाधिक हैं।

२४३. एतेसि णं भंते! बादरअपञ्जत्तगाणं बादरपुढिविकाइयअपञ्जत्तगाणं बादरआउकाइय-अपञ्जत्तगाणं बादरतेउकाइयअपञ्जत्तगाणं बादरवाउकाइयअपञ्जत्तगाणं बादरवणप्फइकाइयअपञ्जत्त-गाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयअपञ्जत्तगाणं बादरिनगोदापञ्जत्तगाणं बादर तसकाइयापञ्जत्ताण य कतरे कतरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया अपञ्जत्तगा १, बादरतेउकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा ३, बादरिनगोदा अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ४, बादरपुढिविकाइयाअपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ५, बादरआउकाइया, अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ६, बादरवाउकाइयाअपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ७, बादरवणप्फइकाइया, अपञ्जत्तगा अणंतगुणा ८, बादरअपञ्जत्तगा विसेसाहिया ९।

[२४३ प्र.] भगवन्! इन बादर अपर्याप्तकों, बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों, बादर अप्कायिक-अपर्याप्तकों, बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तकों, बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तकों, बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तकों, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों, बादर निगोद-अपर्याप्तकों एवं बादर त्रसकायिक-अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४३ उ.] गौतम! १. सबसे कम बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) बादर िनगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ९. (उनसे) बादर अपर्याप्तक अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२४४. एतेसि णं भंते! बादरपञ्जत्तयाणं बादरपुढिविकाइयपञ्जत्तयाणं बादरआउकाइय-पञ्जत्तयाणं बादरतेउकाइयपञ्जत्तयाणं बादरवाउकाइयपञ्जत्तयाणं बादरवणप्फाइकाइयपञ्जत्तयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयपञ्जत्तयाणं बादरिनगोदपञ्जत्तयाणं बादरतमायाणं बादरतसकाइयपञ्जत्तयाणं पत्तेयसरीबादरवणप्फइकाइयपञ्जत्तयाणं बादरिनगोदपञ्जत्तयाणं बादरतसकाइयपञ्जत्तयाणं यकतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरतेउक्काइया पञ्जत्तया १, बादरतसकाइया पञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा २, पत्तेयसरीरबायरवणप्फइकाइया पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ३, बायरिनगोदा पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ४, बादरपुढिवकाइया पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ५, बादरआउकाइया पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ६, बादरवाउकाइया पञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा ७, बादरवणप्फइकाइया पञ्जत्तया अणंतगुणा ८, बायरपञ्जत्तया विसेसाहिया ९।

[२४४ प्र.] भगवन्! इन बादर पर्याप्तकों, बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों, बादर अप्कायिक-पर्याप्तकों, बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तकों, बादर वायुकायिक-पर्याप्तकों, बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों, प्रत्येक-शरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों, बादर निगोद-पर्याप्तकों एवं बादर त्रसकायिक-पर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४४ उ.] गौतम! १. सबसे कम बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर अप्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ९. बादर पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२४५. [१] एतेसि णं भंते! बादराणं पञ्जत्ताऽपञ्जताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरा पञ्जत्तगा, बायरा अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ।

[२४५-१ प्र.] भगवन्! इन बादर पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-१ उ.] गौतम! सबसे अल्प बादर पर्याप्तक जीव हैं, (उनसे) बादर अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[२] एतेसि णं भंते! बादरपुढिवकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरपुढिवकाइया पञ्जत्तगा, बादरपुढिवकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा । [२४५-२ प्र.] भगवन्! इन बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-२ उ.] गौतम! सबसे थोड़े बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[३] एतेसि णं भंते! बादरआउकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरआउकाइया पञ्जत्तगा, बादरआउकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा।

[२४५-३ प्र.] भगवन्! इन बादर अप्कायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-३ उ.] गौतम! सबसे कम बादर अप्कायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[४] एतेसि णं भंते! बादरतेउकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पञ्जत्तया, बादरतेउकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा। [२४५-५ प्र.] भगवन्! इन बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-४ उ.] गौतम! सबसे अल्प बादर तेज्स्कायिक-पर्याप्तक हैं,(उनसे) बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[५] एतेसि णं भंते! बादरवाउकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरवाउकाइया पञ्जत्तगा, बादरवाउकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा। [२४५-५ प्र.] भगवन्! इन बादर वायुकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-५ उ.] गौतम! सबसे अल्प बादर वायुकायिक-पर्याप्तक हैं और (उनसे) बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[६] एतेसि णं भंते! बादरवणप्फइकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरवणप्फइकाइया पञ्जत्तगा, बादरवणप्फइकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा। [२४५-६ प्र.] भगवन्! इन बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२४५-६ उ.] गौतम! सबसे कम बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[७] एतेति णं भंते! पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्बत्थोवा पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया पञ्जत्तगा, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा।

[२४५-७ प्र.] भगवन्! प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५- ७ उ.] गौतम! सबसे थोड़े प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[८] एतेसि णं भंते! बादरिनगोदाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरिनगोदा पञ्जत्तगा, बादरिनगोदा अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा।

[२४५-८ प्र.] भगवन्! इन बादर निगोद-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[२४५-८ उ.] गौतम! सबसे अल्प बादर निंगोद-पर्याप्तक हैं, (उनसे) असंख्यातगुणे बादर निगोद-अपर्याप्तक हैं।

[९] एएसि णं भंते! बादरतसकाइयाणं पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया पञ्जत्तगा, बादरतसकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा। [२४५-९ प्र.] भगवन्! इन बादर त्रसकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-९ उ.] गौतम! सबसे कम बादर त्रसकायिक-पर्याप्तक हैं (और उनसे) बादर त्रसकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

२४६. एएसि णं भंते! बादराणं बादरपुढिविकाइयाणं बादरआउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकाइयाणं बादरवणस्सइकाइयाणं पत्तेयसरीबादरवणप्फइकाइयाणं बादरिनगोदाणं बादर-तसकाइयाण य पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [२४५

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पञ्जत्तया १, बादरतसकाइया पञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा २, बादरतसकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ३, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ४, बादरिनगोदा पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ५, बादरपुढिविकाइया पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ६, बादरआउकाइया पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ७, बादरवाउकाइया पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ७, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा १०, बादरिनगोदा अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा ११, बादरपुढिविकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा १२, बादरपुढिविकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा १२, बादरआउकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा १३, बादरवाउकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा १४, बादरपञ्जत्तगा विसेसाहिया १६, बादरवणस्सइकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा १७, बादरअपञ्जत्तगा विसेसाहिया १६, बादरवणस्सइकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा १७, बादरअपञ्जत्तगा विसेसाहिया १८, बादरा विसेसाहिया १९।

[२४६ प्र.] भगवन्! इन बादर-जीवों, बादर-पृथ्वीकायिकों, बादर-अप्कायिकों, बादर-तेजस्कायिकों, बादर-वायुकायिकों, बादर-वनस्पितकायिकों, प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पितकायिकों, बादर निगोदों और बादर त्रसकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

[२४६ उ.] गौतम!१. सबसे थोड़े बादर-तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं।२. (उनसे) बादर-त्रसकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।३. (उनसे) बादर-त्रसकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।४. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पितकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।५. (उनसे) बादर-िनगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।६. (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।७. (उनसे) बादर-अप्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।८. (उनसे) बादर-वायुकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।९. (उनसे) बादर-तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।१०. (उनसे) प्रत्येक-शरीर-बादर-वनस्पितकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।१९. (उनसे) बादर-निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।१२. (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।१३. (उनसे) बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।१४. (उनसे) बादर-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।१४. (उनसे) बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।१५. (उनसे) बादर-वनस्पितकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं।१६. (उनसे) बादर-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।१७. (उनसे) बादर वनस्पितकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।१८. (उनसे) बादर-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं।१९. (उनसे) बादर वनस्पितकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।१८. (उनसे) बादर-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं।१९. (उनसे)

२४७. एतेसि णं भंते! सुहुमाणं सुहुमपुढिविकाइयाणं सुहुमआउकाइयाणं सुहुमतेउकाइयाणं सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणप्फइकाइयाणं सुहुमिनगोदाणं बादराणं बादरपुढिविकाइयाणं बादरआउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकाइयाणं बादरवणप्फइकाइयाणं पत्तेयसरीरबायर-वणप्फइकाइयाणं बादरिणगोदाणं बादरतसकाइयाण य कतरे कतरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया १, बादरतेउकाइया असंखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीर-बादरवणप्फइकाइया असंखेज्जगुणा ३, बादरिनगोदा असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढिविकाइया असंखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया असंखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया असंखेज्जगुणा ७, सुहुमतेउकाइया असंखेज्जगुणा ८, सुहुमपुढिविकाइया विसेसाहिया ९, सुहुमआउकाइया विसेसाहिया १०, सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया ११, सुहुमणिगोदा असंखेज्जगुणा १२, बादरवणस्सइकाइया अणंतगुणा १३, बादरा विसेसाहिया १४, सुहुमवणस्सइकाइया असंखेज्जगुणा १५, सुहुमा विसेसाहिया १६।

[२४७ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्मजीवों, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिकों, सूक्ष्म-अप्कायिकों, सूक्ष्म-तेजस्कायिकों, सूक्ष्मवनस्पतिकायिकों, सूक्ष्मिनगोदों तथा बादरजीवों, बादर-पृथ्वीकायिकों, बादर-अप्कायिकों, बादर-तेजस्कायिकों, बादर-वनस्पतिकायिकों, प्रत्येकशरीर-बादर-वनस्पतिकायिकों, बादर-निगोदों और बादर-त्रसकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४७ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े-बादर-त्रसकायिक हैं, २. (उनसे) बादर तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) बादर-विभाव असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) बादर-अप्कायिक असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर-अप्कायिक असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) सूक्ष्म-तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) सूक्ष्म-तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं, ९. (उनसे) सूक्ष्म-अप्कायिक विशेषाधिक हैं, १०. (उनसे) सूक्ष्म-अप्कायिक विशेषाधिक हैं, १२. (उनसे) सूक्ष्म-निगोद असंख्यातगुणे हैं, १३. (उनसे) बादर-वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं १४. (उनसे) बादर-जीव विशेषाधिक हैं, १५. (उनसे) सूक्ष्म-वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणे हैं १६. (और उनसे) सूक्ष्म-जीव विशेषाधिक हैं, १५.

२४८. एतेसि णं भंते! सुहुमअपज्जत्तयाणं सुहुमपुढिविकाइयाणं अपज्जत्तगाणं सुहुमआउका-इयाणं अपज्जत्ताणं सुहुमतेउकाइयाणं अपज्जत्तयाणं सुहुमवाउकाइयाणं अपज्जत्तयाणं सुहुमवणप्फ-इकाइयाणं अपज्जत्तगाणं बादरतेउकाइयापज्जत्तयाणं बादरवाउकाइयापज्जत्तयाणं बादरवणप्फ-इकाइयापज्जत्तयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयापज्जत्तयाणं बादरिणगोदापज्जत्तयाणं बादरतसकाइयापज्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुस्न वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया अपज्जत्तगा १. बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, बादरिणगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढिविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, बादरआउक्काइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६, सहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ८, सहुमपुढिविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १, सहुमआउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १०, सहुमणागोदा

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [२४७

अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा १२, बादरवणप्फइकाइया अपञ्जत्तगा अणंतगुणा १३, बादर अपञ्जत्तगा विसेसाहिया १४, सुहुमवणप्फइकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा १५, सुहुमा अपञ्जत्तगा विसेसाहिया १६।

[२४८ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-अप्कायिक अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-तेजस्कायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-वायुकायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-वनस्पितकायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-निगोद-अपर्याप्तकों, बादर-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों, बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तकों, बादर-तेजस्कायिक-अपर्याप्तकों, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तकों, बादर-वनस्पितकायिक-अपर्याप्तकों, प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पितकायिक-अपर्याप्तकों, बादर-निगोद-अपर्याप्तकों, बादर निगोद-अपर्याप्तकों एवं बादर-त्रसकायिक-अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४८ उ.] गौतम!१. सबसे थोड़े बादरत्रसकायिक-अपर्याप्तक हैं, २. (उससे) बादर-तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर-बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यात-गुणे हैं, ७. (उनसे) बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) सूक्ष्मतेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ९. (उनसे) सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १०. (उनसे) सूक्ष्म-अप्कायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ११. (उनसे) सूक्ष्म-निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १३. (उनसे) बादरवनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, १४. (उनसे) बादर-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १५. (उनसे) सूक्ष्म-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) १६. सूक्ष्म-अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२४९. एतेसि णं भंते! सुहुमपज्जत्तयाणं सुहुमपुढिविकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमआउकाइय-पज्जत्तयाणं सुहुमतेउकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमवाउकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमिनगोयपज्जत्तयाणं बादरपज्जत्तयाणं बादरपुढिविकाइयपज्जत्तयाणं बादरआउकाइयपज्जत्तयाणं बादरतेउकाइयपज्जत्तयाणं बादरवाउकाइयपज्जत्तयाणं बादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं पत्तेयसरीर-बादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं बादरिनगोदपज्जत्तयाणं बादरतसकाइयपज्जत्तयाणं य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पञ्जत्तगा १, बादरतसकाइया पञ्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीबादरवणेष्फइकाइया पञ्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, बादरिनगोदा पञ्जत्तया असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढिवकाइया पञ्जत्तया असंखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया पञ्जत्तया असंखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया पञ्जत्तया असंखेज्जगुणा ७, सुहुमतेउकाइया पञ्जत्तया असंखेज्जगुणा ८, सुहुमपुढिवकाइया पञ्जत्तया विसेसाहिया १, सुहुमभुढिवकाइया पञ्जत्तया विसेसाहिया १०,

सुहुमवाउकाइया पञ्जत्तया विसेसाहिया ११, सुहुमिनगोदा पञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा १२, बादरवणप्फइकाइया पञ्जत्तया अणंतगुणा १३, बादरा पञ्जत्तया विसेसाहिया १४, सुहुमवणस्सइकइया पञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा १५, सुहुमा पञ्जत्तया विसेसाहिया १६।

[२४९ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-अप्कायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-तेजस्कायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-वायुकायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-वनस्पितकायिक पर्याप्तकों, सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तकों, बादर-पर्याप्तकों, बादर-पर्याप्तकों, बादर-पर्याप्तकों, बादर-वनस्पितकायिक-पर्याप्तकों बादर-तेजस्कायिक-पर्याप्तकों, बादर-वनस्पितकायिक-पर्याप्तकों, प्रत्येक-शरीर बादर-वनस्पितकायिक-पर्याप्तकों, बादर-निगोद-पर्याप्तकों और बादरत्रसकायिक-पर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४९ उ.] गौतम!१. सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर त्रसकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर-बादरवनस्पितकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।४. (उनसे) बादर-निगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,५. (उनसे) बादरपृथ्वीकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,६. (उनसे) बादर-वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,६. (उनसे) बादर-वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,८. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,१०. (उनसे) सूक्ष्म-अप्कायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,१९. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,१२. (उनसे) सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,१३. (उनसे) बादर पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं,१४. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी)१६. सूक्ष्म-पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२५०. [१] एएसि णं भंते! सुहुमाणं बादराण य पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरा पञ्जत्तगा १, बादरा अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा २, सुहुमा अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा २, सुहुमा पञ्जत्तगासंखेञ्जगुणा ४।

[२५०-१ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म और बादर जीवों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-१ उ.] गौतम! १. (इनमें) सबसे थोड़े बादर पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं और ४. (उनसे भी) सूक्ष्म पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[२] एएसि णं भंते! सुहुमपुढिवकाइयाणं बादरपुढिवकाइयाण य पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरपुढविकाइया पञ्जत्तगा १, बादरपुढविकाइया अपञ्जत्तया

असंखेज्जगुणा २, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४।

[२५०-२ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों और बादर पृथ्वीकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-२ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) ४. सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[३] एएसि णं भंते! सुहुमआउकाइयाणं बादरआउकाइयाण य पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे करतेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरआउकाइया पञ्जत्तया १, बादरआउकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा २, सुहुमआउकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा ३, सुहुमआउकाइया पञ्जत्तया संखेञ्जगुणा ४।

[२५०-३ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म अप्कायिकों और बादर अप्कायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-३ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प बादर अप्कायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं; ३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। (और उनसे भी) ४. सूक्ष्म अप्कायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[४] एएसि णं भंते! सुहुमतेउकाइयाणं बादरतेउकाइयाण य पज्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पञ्जत्तगा १, बादरतेउकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा २, सुहुमतेउकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ३, सुहुमतेउकाइया पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा ४।

[२५०-४ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म तेजस्कायिकों और बादर तेजस्कायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-४ उ.] गौतम! १. सबसे कम बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे भी) सूक्ष्म तेजस्कायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[५] एएसि णं भंते सुहुमवाउकाइयाणं बादरवाउकाइयाण य पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरे-हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरवाउकाइया पञ्जत्तया १, बादरवाउकाइया अपञ्जत्तया

असंखेज्जगुणा २, सुहुमवाउकाइया अपञ्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमवाउकाइया पञ्जत्तया संखेज्जगुणा ४।

[२५०-५ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म वायुकायिकों तथा बादर वायुकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-५ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े बादर वायुकायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे अधिक हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यात गुणे हैं, ४. (और उनसे भी) सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[६] एएसि णं भंते! सुहुमवणस्सितिकाइयाणं बादरवणस्सितिकाइयाण य पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरवणस्सइकाइया पञ्जत्तया १, बादरवणस्सितकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा २, सुहुमवणस्सइकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ३, सुहुमवणस्सइकाइया पञ्जत्तया संखेञ्जगुणा ४।

[२५०-६ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों तथा बादर वनस्पतिकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२५०-६ उ.] गौतम! १. सबसे कम बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक जीव असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) ४. सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[७] एतेसि णं भंते! सुहुमनिगोदाणं बादरनिगोदाणं य पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरिनगोदा पञ्जत्तगा १, बायरिनगोदा अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा २, सुहुमिनगोया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा ३, सुहुमिनगोदा पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा ४।

[२५०-७ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म निगोदों एवं बादर निगोदों के पर्याप्तकों तथा अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-७ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े बादर निगोद-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, (और उनसे भी) ४. सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

२५१. एएसि णं भंते! सुहुमाणं सुहुमपुढिविकाइयाणं सुहुमआउकाइयाणं सुहुमतेउकाइयाणं सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणस्सइकाइयाणं सुहुमिनगोदाणं बादराणं बादरपुढिविकाइयाणं बादरआउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकाइयाणं वादरवाउकाइयाणं सुहुमतेउकाइयाणं

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [२५१

वणस्सइकाइयाणं बादरिनगोदाणं बादरतसकाइयाण य पञ्जत्ताऽपञ्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पञ्जत्तया १, बादरतसकाइया पञ्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, बादरतसकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा ३, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया पञ्जत्तया असंखेज्जगुणा ४, बादरनिगोदा पञ्जत्तया असंखेज्जगुणा ५, बादरपुढविकाइया पञ्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६, बादरआउकाइया पञ्जत्तगा असंखेज्जगुणा ७, बादरवाउकाइया पञ्जत्तया असंखेज्जगुणा ८, बादर-तेउक्काइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ९, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा १०, बायरणिगोया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा ११, बादरपुढविकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा १२, बायरआउकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा १३, बादरवाउकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा १४, सुहुमतेउकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा १५, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १६, सहमआउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया १७, सहमवाउकाइया अपञ्जत्तया विसेसाहिया १८, सुहुमतेउकाइया पञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा १९, सुहुमपुढविकाइया पञ्जत्तगा विसेसाहिया २०, सुहुमआउकाइया पञ्जत्तया विसेसाहिया २१, सुहुमवाउकाइया पञ्जत्तया विसेसाहिया २२, सुहुमनिगोदा अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा २३, सुहुमनिगोदा पञ्जत्तया संखेञ्जगुणा २४, बादरवणप्फइकाइया पञ्जत्तया अणंतगुणा २५, बादरपञ्जत्तगा विसेसाहिया २६, बादरवणप्फइकाइयाअपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा २७, बादरअपञ्जत्तया विसेसाहिया २८, बादरा विसेसाहिया २९, सुहुमवणप्फितिकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ३०, सुहुमा अपञ्जत्तया विसेसाहिया ३१, सुहमवणप्फतिकाइया पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा ३२, सुहमपञ्जत्तया विसेसाहिया ३३, सुहुमा विसेसाहिया ३४। दारं ४ ॥

[२५१ प्र.] भगवन्! इन सूक्ष्म-जीवों, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिकों, सूक्ष्म-अप्कायिकों, सूक्ष्म-तेजस्कायिकों, सूक्ष्म-वायुकायिकों, सूक्ष्म-वनस्पतिकायिकों, सूक्ष्म-निगोदों, बादर-जीवों, बादर-पृथ्वीकायिकों, बादर-अप्कायिकों, बादर-तेजस्कायिकों, बादर-वायुकायिकों, बादर-वनस्पतिकायिकों, प्रत्येक शरीर-बादर-वनस्पतिकायिकों, बादर-निगोदों और बादर-त्रसकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५१ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) बादर प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यात गुणे हैं ५. उनसे बादर निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर-अप्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ९. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १०. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे

हैं, ११. (उनसे) बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १२. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १३. (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १४. (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १५. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १६. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १७. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १८. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १९, (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक असंख्यात-गुणे हैं, २०. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, २१. (उनमें सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, २२. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, २३. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, २६. (उनसे) बादर पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, २५. (उनसे) बादर पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, २७. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, २८. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, २७. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, ३०. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, ३०. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, ३२. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ३३. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं; ३२. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ३३. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, (और उनसे भी) ३४. सूक्ष्म जीव विशेषाधिक हैं।

विवेचन—कायद्वार के अन्तर्गत सूक्ष्म-बादर-कायद्वार—प्रस्तुत १५ सूत्रों (सू. २३७ से २५१ तक) में सूक्ष्म और बादर को लेकर कायद्वार के माध्यम से विभिन्न पहलुओं से अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

- १. समुच्चय में सूक्ष्म जीवों का अल्पबहुत्व—सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव सबसे अल्प हैं, वे असंख्यात लोकाकाश प्रदेश के बराबर हैं। इनकी अपेक्षा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंिक वे प्रचुर असंख्यात लोकाकाश प्रदेशों के बराबर हैं। इनसे सूक्ष्म अप्कायिक विशेषाधिक हैं, क्योंिक वे प्रचुर असंख्येय लोकाकाश प्रदेशों के बराबर हैं। इनसे सूक्ष्म वायुकायिक विशेषाधिक हैं; क्योंिक वे प्रचुरतम असंख्यात लोकाकाश प्रदेश-प्रमाण हैं। उनकी अपेक्षा सूक्ष्म निगोद असंख्यातगुणे हैं। जो अनन्तजीव एक शरीर के आश्रय में रहते हैं, वे निगोद जीव कहलाते हैं। निगोद दो प्रकार के होतें हैं—सूक्ष्म और बादर। सूरणकन्द आदि में बादर निगोद हैं, सूक्ष्म निगोद समस्त लोक में व्याप्त हैं। वे एक-एक गोलक में असंख्यात-असंख्यात होते हैं। इसलिए वे वायुकायिकों से असंख्यात-गुणे हैं। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, क्योंिक प्रत्येक निगोद में अनन्त-अनन्त जीव होते हैं। उनकी अपेक्षा सामान्य सूक्ष्मजीव विशेषाधिक हैं, क्योंिक सूक्ष्म पृथ्वीकाय आदि का भी उनमें समावेश हो जाता है।
- २. सूक्ष्म-अपर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व सूक्ष्म अपर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व भी पूर्वोक्त क्रम से समझ लेना चाहिए।
 - ३. सूक्ष्म पर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व—इसके अल्पबहुत्व का क्रम भी पूर्ववत् है।

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [२५३

४. सूक्ष्म से लेकर सूक्ष्मिनिगोद तक के पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों का पृथक्-पृथक् अल्प बहुत्व—इनके प्रत्येक के अल्पबहुत्व में सूक्ष्म अपर्याप्तक सबसे कम हैं और उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं। सूक्ष्म जीवों में अपर्याप्तकों की अपेक्षा पर्याप्तक जीव चिरकालस्थायी रहते हैं। इसलिए वे सदैव अधिक संख्या में पाए जाते हैं।

- 4. समुदितरूप में सूक्ष्म पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे अल्प सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त हैं, कारण पहले बता चुके हैं। उनसे उत्तरोत्तर क्रमशः सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक हैं, विशेषाधिक का अर्थ है—थोड़ा अधिकः न दुगुना, न तिगुना। इनकी विशेषाधिकता का कारण पहले कहा जा चुका है। उनकी (सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त की) अपेक्षा सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, अपर्याप्त से पर्याप्त संख्यातगुणे अधिक होते हैं। यह पहले कहा जा चुका है। अतः उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक सूक्ष्म जप्याप्तिक असंख्यातगुणे हैं, वयोंकि वे अतिप्रचुर संख्या में हैं। उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं क्योंकि सूक्ष्म जीवों में अपर्याप्तकों से पर्याप्त सामान्यतः संख्यातगुणे अधिक होते हैं। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक निगोद में वे अनन्त-अनन्त होते हैं। उनसे सामान्यतः सूक्ष्म अपर्याप्त जीव विशेषाधिक हैं; क्योंकि प्रत्येक निगोद में वे अनन्त-अनन्त होते हैं। उनसे सामान्यतः सूक्ष्म अपर्याप्त जीव विशेषाधिक हैं; क्योंकि प्रत्येक निगोद में वे अनन्त-अनन्त होते हैं। उनसे आप्ता है। उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि सूक्ष्म पृथ्वीकायिक का भी उनमें समावेश हो जाता है। उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि त्रस्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तकों का भी उनमें समावेश है। उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें सूक्ष्म पर्याप्तकों, सभी का समावेश हो जाता है। इस प्रकार सूक्ष्म प्रित पांच सूत्र हुए। अब बादराश्रित पांच सूत्र इस प्रकार हैं-
- ६. समुच्चय में बादर जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे कम बादर त्रसकायिक है, क्योंकि द्वीन्द्रियादि ही बादर तरा हैं, और वे शेष कार्यों से अल्प हैं। उनसे बादर तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे असंख्यात लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि बादर तेजस्कायिक तो सिर्फ मनुष्यक्षेत्र में ही होते हैं, जबिक प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिकों का क्षेत्र उनसे असंख्यातगुणा अधिक है। प्रज्ञापनासूत्र के द्वितीय स्थानपद में बताया है कि स्वस्थान में ७ घनोदिध, ७ घनोदिधवलय, इसी तरह अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिरछे लोक आदि में जहाँ-जहाँ जलाशय होते हैं, वहाँ सर्वत्र बादर वनस्पतिकायिक पर्यासकों के स्थान हैं। जहाँ बादर वनस्पतिकायिक पर्यासकों के स्थान हैं, वहीं इनके अपर्यासकों के स्थान होते हैं। अत: क्षेत्र असंख्यातगुणा होने से वे भी असंख्यातगुणे हैं। उनसे बादर निगोद असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे अत्यन्त सूक्ष्म अवगाहनावाले होने के कारण जल में शैवाल आदि के रूप में सर्वत्र पाए जाते हैं। इनकी अपेक्षा बादर पृथ्वीकायिक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे आठों पृथ्वियों में तथा विमानों, भवनों एवं पर्वतों आदि में विद्यमान हैं। बादर अप्कायिक उनसे भी

अनन्तगुणे अधिक हैं, क्योंकि समुद्रों में जल की प्रचुरता होती है। उनकी अपेक्षा बादर वायुकायिक असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि बादर निगोद में अनन्त जीव होते हैं। बादर जीव उनसे विशेषाधिक होते हैं, क्योंकि बादर द्वीन्द्रिय आदि सभी जीवों का उनमें समावेश होता है।

- ७-८. बादर अपर्याप्तकों तथा पर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—बादर जीवों के अपर्याप्तकों एवं पर्याप्तकों के अल्पबहुत्व का क्रम भी प्राय: पूर्वसूत्र (सू. २४२) के समान है। बादर पर्याप्तकों के अल्पबहुत्व में सिर्फ प्रारम्भ में अन्तर हैं-वहाँ सबसे अल्प बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक के बदले बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं। शेष सब पूर्ववत् ही है। इनके अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण भी पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।
- **९. बादर पर्याप्तक-अपर्याप्तकों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व**—बादर जीवों में एक-एक पर्याप्तक के आश्रित असंख्येय बादर अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं, इस नियम से बादर जीवों, बादर पृथ्वीकायिकों आदि में सर्वत्र पर्याप्तकों से अपर्याप्तक असंख्यातगुणे अधिक होते हैं।
- १०. समुदित रूप से बादर, बादर पृथ्वीकायिकादि पर्याप्तक -अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व-सबसे कम बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं। बादर त्रसकायिक पर्याप्तक उनसे असंख्यातगुणे हैं, बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक, बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, बादर निगोद पर्याप्तक, बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक, बादर अप्कायिक पर्याप्तक एवं बादर वायुकायिक पर्याप्तक क्रमशः उत्तरोत्तर असंख्यगुणे हैं। इनके अल्पबहुत्व को पूर्वोक्त युक्तियों से समझ लेना चाहिए। उनसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक बादरिनगोद में वे अनन्त-अनन्त होते हैं। उनकी अपेक्षा समुच्च्य बादर पर्याप्त विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें बादर तेजस्कायिक आदि सभी का समावेश हो जाता है। बादर पर्याप्तों की अपेक्षा बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्येयगुणे हैं, उनसे बादर अपर्याप्तक एवं बादर क्रमशः उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं, इसका कारण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।
- ११. समुच्चय में सूक्ष्म-बादरों का अल्पबहुत्व—(सू. २४७ के अनुसार) सबसे कम बादर त्रसकायिक हैं, उसके बाद बादर वायुकायिकपर्याप्त बादरगत विकल्पों का अल्पबहुत्व पूर्ववत् समझना चाहिए। तदनन्तर सूक्ष्म निगोदपर्यान्त सूक्ष्मगत विकल्पों का अल्पबहुत्व पूर्ववत् जान लेना चाहिए। उसके पश्चात् बादर वतस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक बादरिनगोद में अनन्त-अनन्त जीव होते हैं। उनसे बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि बादर तेजस्कायिक आदि का भी उनमें समावेश हो जाता हैं। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणे हैं; क्योंकि बादर निगोदों से सूक्ष्म निगोद असंख्यातगुणे हैं। उनसे सामान्यत: सूक्ष्म विशेषाधिक हैं, क्योंकि सूक्ष्म तेजस्कायिकादि का भी उनमें समावेश हो जाता है।
- १२-१३. सूक्ष्म-बादर के पर्याप्तकों एवं अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—(सू. २४८ में अनुसार) अपर्याप्तकों में सबसे अल्प बादर त्रसकायिक अपर्याप्त हैं। उसके पश्चात् बादर तेजस्कायिक, प्रत्येक-शरीर बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर वायुकायिक

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [२५५

अपर्याप्त उत्तरोत्तर क्रमशः असंख्यातगुणे हैं। इसका स्पष्टीकरण द्वितीय अपर्याप्तकसूत्र की तरह समझना चाहिए। बादर वायुकायिक अपर्याप्तकों से सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे अतिप्रचुर असंख्यात लोकाकाशप्रदेशों के बराबर हैं, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमशः असंख्यातगुणे हैं; इसका समाधान सूक्ष्मपंचसूत्री में द्वितीयसूत्रवत समझ लेना चाहिए। सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तकों से बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक बादरनिगोद में अनन्त जीवों का सद्भाव है। उनसे सामान्यत: बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि बादर त्रसकायिक अपर्याप्तकों का भी उनमें समावेश है। उनसे सृक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि बादर निगोद-अपर्याप्तकों से सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। उनसे सामान्यतः सूक्ष्मापर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तकों का भी समावेश हो जाता है। पर्याप्तकों में (सू. २४९ के अनुसार) बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक सबसे थोडे हैं। उसके पश्चात् बादर त्रसकायिक, बादर प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक एवं बादर वायुकायिक-पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश: असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि बादर वायुकायिक असंख्यातप्रतर-प्रदेश-राशिप्रमाण हैं। उसके पश्चात् सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश: विशेषाधिक हैं। सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तकों से सूक्ष्मिनगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे अतिप्रचुर होने से प्रत्येक गोलक में विद्यमान हैं। उनसे बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक बादरिनमोद में अनन्त-अनन्त जीव होते हैं। उनसे सामान्यत: सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें सूक्ष्म तेजस्कायिकादि पर्याप्तकों का भी समावेश होता है।

- १४. सूक्ष्म-बादर पर्याप्तक-अपर्याप्तकों, का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—(सूत्र २५० के अनुसार) सबसे कम बादर पर्याप्तक हैं, क्योंिक वे परिमित क्षेत्रवर्ती हैं, उनसे बादर अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंिक एक-एक बादर पर्याप्तक के आश्रित असंख्यात बादर अपर्याप्तक उत्पन्न होते है; उनसे सूक्ष्म अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंिक सर्वलोक में व्याप्त होने के कारण उनका क्षेत्र असंख्यातगुणा है; उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, क्योंिक चिरकालस्थायी रहने के कारण वे सदैव संख्यातगुणे पाए जाते हैं। इसी प्रकार आगे सूक्ष्म-बादर पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक वनस्पतिकायिक एवं निगोदों के पर्याप्तकों-अपर्याप्तकों के पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व की घटना कर लेनी चाहिए।
- १५. समुदितरूप में सूक्ष्म-बादर के पर्याप्तक-अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—(सू. २५१ के अनुसार) सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक हैं, क्योंकि कुछ समय कम आविलका-समयों से गुणित आविलका-समयवर्ग में जितनी समयराशि होती है, वे उतने प्रमाण हैं। उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि प्रतर में जितने अंगुल के संख्यातभाग-मात्र खण्ड होते हैं, ये उतने प्रमाण हैं। उनसे बादरत्रसकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं। जो पूर्ववत् युक्ति से समझना चाहिए। उनसे प्रत्येक

बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक और बादर वायुकायिक पर्याप्तक यथोत्तरक्रम से असंख्यातगुणे हैं। इसके समाधान के लिए पूर्ववत् युक्ति सोच लेनी चाहिए। उनसे बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं; क्योंकि वे असंख्यात लोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं। उसके बाद प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादरपृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रम से असंख्यातगुणे हैं। उनसे सुक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश: विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त संख्यातगुणे है, क्योंकि सूक्ष्मों में अपर्याप्तों की अपेक्षा पर्याप्त ओघत: ही संख्येयगुणे होते हैं। उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक एवं सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रम से विशेषाधिक हैं। उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि वे अतिप्रचुररूप में सर्वलोक में होते हैं। उनसे पूर्व नियमानुसार सूक्ष्मिनगोद-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं। उनसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे है; यह भी पूर्वोक्त युक्ति से समझ लेना चाहिए। उनसे बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं; क्योंकि उनमें बादर पर्याप्त तेजस्कायिकादि का भी समावेश हो जाता है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक बादर निगोद के आश्रित असंख्यात बादर निगोद-अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं। उनकी अपेक्षा सामान्यतया बादर विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें पर्याप्तकों का समावेश भी होता है। उनसे सुक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि बादरनिगोदों से सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असुंख्यातगुणे होते ही हैं। उनसे सामान्यतया सूक्ष्म-अपर्याप्तक संख्यातगुणे हैं; क्योंकि सुक्ष्म पृथ्वीकायादि के अपर्याप्तकों का भी उनमें समावेश होता है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि इनके अपर्याप्तों से पर्याप्त संख्यातगुणे होते हैं। उनसे सामान्यत: सुक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें पर्याप्तक सुक्ष्म पृथ्वीकायिकादि का भी समावेश होता है। उनकी अपेक्षा पर्यात-अपर्यातविशेषण रहित केवल सूक्ष्म (सामान्य) विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें पर्यात-अपर्यात दोनों का समावेश हो जाता है। इस प्रकार सूक्ष्म-बादर-समुदायगत अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए। ॥ चतुर्थ कायद्वार समाप्त॥

पंचम योगद्वार : योगों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

२५२. एतेसि णं भंते! जीवाणं सजोगीणं मणजोगीणं वइजोगीणं कायजोगीणं अजोगीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मणजोगी १, वइजोगी असंखेज्जगुणा २, अजोगी अणंतगुणा ३, कायजोगी अणंतगुणा ४, सजोगी विसेसाहिया ५। दारं ५॥

१. (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ युक्त) भा. १, पृ. ८८ से ९६ तक

⁽ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक पृ. १२४ से १३४ तक

[२५२ प्र.] भगवन्! इन सयोगी (योगसिहत), मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५२ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प जीव मनोयोग वाले हैं, २. (उनसे) वचनयोग वाले जीव असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) अयोगी अनन्तगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा)काययोगी अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ५. सयोगी विशेषाधिक हैं।

विवेचन—पंचम योगद्वार : योगों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—(प्रस्तुत सूत्र (२५२) में सयोगी, अयोगी, मनो-वचन-काययोगी की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।)

सबसे कम मनोयोगी जीव हैं, क्योंकि संज्ञीपर्याप्त जीव ही मनोयोग वाले होते हैं और वे थोड़े ही हैं। उनसे वचनयोगी अंख्यातगुणे हैं, क्योंकि द्वीन्द्रिय आदि वचनयोगी संज्ञीजीवों से असंख्यातगुणे हैं, उनकी अपेक्षा अयोगी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्धजीव अनन्त हैं। उनसे काययोग वाले जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अकेले वनस्पतिकायिकजीव ही सिद्धों से अनन्त हैं। यद्यपि अनन्त निगोदजीवों का एक शरीर होता है, तथापि उसी शरीर से सभी आहारादि ग्रहण करते हैं, इसलिए उन सभी के काययोगी होने के कारण उनके अनन्तगुणत्व में कोई बाधा नहीं आती। उनकी अपेक्षा सामान्यत: सयोगी विशेषाधिक हैं, क्योंकि सयोगी में द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव आ जाते हैं।

छठा वेदद्वार : वेदों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

२५३. एएसि णं भंते! जीवाणं सवेदगाणं इत्थीवेदगाणं पुरिसवेदगाणं नपुंसकवेदगाणं अवेदगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेदगा १, इत्थीवेदगा संखेज्जगुणा २, अवेदगा अणंतगुणा ३, नपुंसकगवेदगा अणंतगुणा ४, सवेयगा विसेसाहिया ५। दारं ६॥

[२५३ प्र.] भगवन्! इन सवेदी (वेदसहित), स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अवेदी जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२५३ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े जीव पुरुषवेदी हैं, २. (उनसे) स्त्रीवेदी संख्यातगुणे हैं; ३. (उनसे) अवेदी अनन्तगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) नपुसंकवेदी अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ५. सवेदी विशेषाधिक हैं।

विवेचन—छठा वेदद्वार : वेदों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व — प्रस्तुत सूत्र (२५३) में वेदद्वार के माध्यम से जीवों के अल्पबहुत्व का प्रतिपादन किया गया है। सबसे थोड़े पुरुषवेदी हैं, क्योंिक संज्ञी तिर्यञ्चों, मनुष्यों और देवों में ही पुरुषवेद पाया जाता है। उनसे स्त्रीवेदी जीव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंिक जीवाभिगमसूत्र मे कहा हैं— ''तिर्यंचयोनिक पुरुषों की अपेक्षा तिर्यंचयोनिक'' स्त्रियाँ तीन गुणी और त्रि-अधिक होती हैं तथा मनुष्यपुरुषों से मनुष्यस्त्रियाँ सत्तावीसगुणी एवं सत्तावीस अधिक होती

१. प्रज्ञापनासूत्र. मलय वृत्ति, पत्रांक १३४

हैं; एवं देवों से देवियां (देवांगनाएं) बत्तीसगुणी तथा बत्तीस अधिक होती हैं।" इनकी अपेक्षा अवेदक (सिद्ध) अनन्तगुणे होते हैं, क्योंकि स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद से रहित, नौवें गुणस्थान के कुछ ऊपरी भाग से आगे के सभी जीव तथा सिद्ध जीव; ये सभी जीव अवेदी कहलाते हैं, और सिद्ध जीव अनन्त हैं। अवेदकों की अपेक्षा नपुसंकवेदी अनन्तगुणे हैं। क्योंकि नारक, एकेन्द्रिय जीव आदि सब नपुंसकवेदी होते हैं और अकेले वनस्पतिकायिक जीव अनन्त हैं, जो सब नपुंसकवेदी ही हैं। उनकी अपेक्षा सामान्यत: सवेदी जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदी सभी जीवों का उनमें समावेश हो जाता है।

सप्तम कषायद्वार : कषायों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

२५४. एतेसि णं भंते! जीवाणं सकसाईणं कोहकसाईणं माणकसाईणं मायाकसाईणं लोभ-कसाईणं अकसाईण य कतरे कतरेहिंतो अप्या व बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा अकसायी, १. माणकसायी अणंतगुणा २, कोहकसायी विसेसाहिया ३, मायकसाई विसेसाहिया ४, लोहकसाई विसेसाहिया ५, सकसाई विसेसाहिया ६। दारं ७॥

[२५४ प्र.] भगवन्! इन सकषायी, क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५४ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े जीव अकषायी हैं, २. (उनसे) मानकषायी जीव अनन्तगुणे हैं, ३. (उनसे) क्रोधकषायी जीव विशेषाधिक हैं, ४. उनसे मायाकषायी जीव विशेषाधिक हैं, ५. उनसे लोभकषायी विशेषाधिक हैं और (उनसे भी) ६. सकषायी जीव विशेषाधिक हैं।

विवेचन—सप्तम कषायद्वार : कषायों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५४) में कषाय की अपेक्षा से जीवों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

कषायों की अपेक्षा जीवों की न्यूनाधिकता—अकषायी—कषायपरिणाम से रहित जीव सबसे कम हैं, क्योंकि कितपय क्षीणकषायी आदि गुणस्थानवर्ती मनुष्य एवं सिद्ध जीव ही कषाय से रहित होते हैं। उनसे मानकषायी जीव अनन्तगुणे इसिलए हैं कि छहों जीव-निकायों में मानकषाय पाया जाता है। उनसे क्रोधकषाय वाले, मायाकषाय वाले एवं लोभकषाय वाले क्रमशः उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं, क्योंकि क्रोधिदकषायों के परिणाम का काल यथोत्तर विशेषाधिक है। पूर्व-पूर्व कषायों का उत्तरोत्तर कषायों में

१. (क) प्रज्ञापनसूत्र मलय, वृत्ति, पत्रांक १३४-१३५

⁽ख) तिरिक्खजोणियपुरिसेहिंतो तिरिक्खजोणिय-इत्थीओ तिगुणीओ, तिरूवाहियाओ य। तहा मणुस्सपुरिसेहिंतो मणुस्सइत्थीओ सत्तावीसगुणीओ सत्तावीसरूवुत्तराओ य, तथा देवपुरिसेहिंतो देवित्थीओ बत्तीसगुणाओ बत्तीसरूवुत्तराओ॥ — जीवाभिगमसूत्र

क्रमश: सद्भाव है ही तथा लोभकषायी की अपेक्षा सकषायी जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि सामान्य कषायोदय वाले जीव कुछ अधिक ही हैं, उनमें मानादि कषायोदय वाले सभी जीवों का समावेश हो जाता है।

सकषायी शब्द का विशेषार्थ—कषाय शब्द से कषायोदय अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इस दृष्टि से सकषाय का अर्थ होता है—कषायोदयवान् या जिसमें वर्तमान में कषाय विद्यमान है वह, अथवा जिसमें विपाकावस्था को प्राप्त कषायकर्म के परमाणु अपने उदय को प्रदर्शित कर रहे हैं, वह जीव।

अष्टम लेश्याद्वार : लेश्या की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व

२५५. एएसि णं भंते! जीवाणं सलेस्साणं किण्हलेस्साणं नीललेस्साणं काउलेस्साणं तेउ-लेस्साण पम्हलेस्साणं सुक्कलेस्साणं अलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा? सव्वत्थोवा जीवा सुक्कलेस्सा १, पम्हलेस्सा संखेज्जगुणा २, तेउलेस्सा संखेज्जगुणा ३, अलेस्सा अणंतगुणा ४, काउलेस्सा अणंतगुणा ५, णीललेस्सा विसेसाहिया ६, किण्हलेस्सा विसेसाहिया ७, सलेस्सा विसेसाहिया ८। दारं ८॥

[२५५ प्र.] भगवन्! इन सलेश्यों, कृष्णलेश्या वालों, नीललेश्या वालों कापोतलेश्या वालों तेजोलेश्या वालों, पद्मलेश्या वालों शुक्ललेश्या वालों एवं लेश्यारहित (अलेश्य)जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५५ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले जीव हैं, २. (उनसे) पद्मलेश्या वाले संख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) तेजोलेश्या वाले जीव संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) लेश्यारहित जीव अनन्तगुणे हैं, ५. (उनसे) कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणे हैं, ६. (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं; ७. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं, ८. (उनसे) सलेश्य जीव विशेषाधिक हैं। अष्टमद्वार॥८॥

विवेचन—अष्टम लेश्याद्वार : लेश्या की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५५) में सलेश्य, पृथक्-पृथक् षट्लेश्यायुक्त एवं अलेश्य जीवों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है।

लेश्याओं की अपेक्षा से अल्पबहुत्व— सबसे अल्प शुक्ललेश्या वाले जीव हैं, क्योंकि शुक्ललेश्या लान्तक से लेकर अनुत्तर वैमानिक देवों तक में, कितपय गर्भज कर्मभूमि के संख्यातवर्ष की आयु वाले मनुष्यों में तथा कितपय संख्यातवर्ष की आयुवाले तिर्यंच-स्त्रीपुरुषों में ही पाई जाती है। उनकी अपेक्षा पद्मलेश्या वाले जीव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि पद्मलेश्या सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक-कल्पवासी देवों में, बहुसंख्यक गर्भज-कर्मभूमिज संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य-स्त्रीपुरुषों में तथा गर्भज-तिर्यंच-स्त्रीपुरुषों में पाई जाती है और ये समुदित सनत्कुमार देव आदि, लान्तकदेव आदि से संख्यातगुणे

१. प्रज्ञापनसूत्र मलय, वृत्ति, पत्रांक १३५

अधिक हैं। उनसे तेजोलेश्या वाले संख्यातगुणे हैं क्योंकि समस्त सौधर्म, ईशान कल्प के वैमानिक देवों में, सभी ज्योतिष्क देवों में तथा कितपय भवनपित, वाणव्यन्तर, गर्भज, तिर्यंञ्चपंचेन्द्रियों और मनुष्यों में, बादर-पर्याप्त-एकेन्द्रियों में तेजोलेश्या पाई जाती है। यद्यपि ज्योतिष्कदेव भवनवासी देवों तथा सनत्कुमार आदि देवों से असंख्यातगुणे होने से तेजोलेश्या वाले जीव असंख्यातगुणे कहने चाहिए, तथापि पद्मलेश्या वालों से तेजोलेश्या वाले जीव संख्यातगुणे ही हैं। यह कथन केवल देवों की लेश्याओं को लेकर नहीं नहीं किया गया है, अपितु समग्रजीवों को लेकर किया गया है, इसलिए पद्मेश्या वालों में देवों के अतिरिक्त बहुत-से तिर्यंञ्च भी सिम्मिलत हैं। इसी तरह तेजोलेश्या वालों में भी हैं। और पद्मलेश्या वाले तिर्यंञ्च भी बहुत हैं। अतएव उनसे तेजोलेश्या वाले संख्यातगुणे ही अधिक हो सकते हैं असंख्यातगुणे नहीं। तेजोलेश्या वालों से अलेश्य (लेश्यारहित—सिद्ध) अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्धजीव अनन्त हैं। उनसे कापोतलेश्या वाले जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक है, क्योंकि नीललेश्या वाले जीव कापोतलेश्या वालों से प्रचुरतर होते हैं। उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं, क्योंकि नीललेश्या वाले जीव कापोतलेश्या वालों से प्रचुरतर होते हैं। उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं, क्योंकि सलेश्य में नीललेश्याद वाले सभी लेश्यावान् जीवों का समावेश हो जाता है। है

नौवां दृष्टि (सम्यक्त्व) द्वार : तीन दृष्टियों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व

२५६. एतेसि णं भंते! जीवाणं सम्मिद्दिष्टीणं मिच्छछिट्टीणं सम्मामिच्छादिट्टीणं च कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा सम्मामिच्छिद्दिही १, सम्मद्दिही अणंतगुणा २, मिच्छिद्दिही अणंतगुणा ३। दारं ९।

[२५६ प्र.] भगवन्? सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५६ उ.] गौतम!१. सबसे थोड़े सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं,२.(उनसे) सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं और, ३.(उनसे भी) मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं। नौवां दृष्टिद्वार है॥९॥

विवेचन—नौवां दृष्टिद्वार: तीन दृष्टियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५६) में सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि की अपेक्षा जीवों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

सबसे थोड़े सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दृष्टि जीव हैं, क्योंकि मिश्रदृष्टि के परिणाम का काल अन्तर्मुहूर्त्त

१. (क) प्रज्ञापनसूत्रा मलय. वृत्ति, पत्रांक १३५-१३६

⁽ख) '······पम्हलेसा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा, तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ, तेउलेसा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा, तेउलेसाओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ।'

[—] प्रज्ञापना. महादण्डक (म. वृ. पृ.१३६)।

प्रमाण ही है, अतएव बहुत ही अल्पकाल होने से प्रश्न के समय वे थोड़े से पाए जाते हैं। उनकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंिक सिद्ध अनन्त हैं और वे सम्यग्दृष्टियों में ही सिम्मिलित हैं। सम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंिक वनस्पतिकायिक आदि जीव सिद्धों से अनन्तगुणे हैं और वनस्पतिकायिक मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। है

दसवाँ ज्ञानद्वार : ज्ञान और अज्ञान की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व

२५७. एतेसि णं भंते! जीवाणं आभिणिबोहियणाणीणं सुतणाणीणं ओहिणाणीणं मणपज्ज-वणाणीणं केवलणाणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्या वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मणपञ्जवणाणी १, ओहिणाणी असंखेञ्जगुणा २, आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी दो वि तुल्ला विसेसाहिया ३, केवलणाणी अणंतगुणा ४ ।

[२५७ प्र.] भगवन्! आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन:पर्यवज्ञानी और केवलज्ञानी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य, अथवा विशेषाधिक है ?

[२५७ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प मन: पर्यवज्ञानी हैं, २. (उनसे) अवधिज्ञानी असंख्यात-गुणे हैं, ३. आभिनिबोधिक (मित) ज्ञानी और श्रुतज्ञानी; ये दोनों तुल्य हैं और (अवधिज्ञानियों से) विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं।

२५८. एतेसि णं भंते! जीवाणं मइअण्णाणीणं सुतअण्णाणीणं विहंगणाणीण य कसरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा विभंगणाणी १, मइअण्णाणी सुतअण्णाणी दो वि तुल्ला अणंतगुणा २।

[२५८ प्र.] भगवन्! इन मित-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते हैं ?

[२५८ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े विभंगज्ञानी हैं, २. मित-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी दोनों तुल्य हैं और (विभंगज्ञानियों से) अनन्तगुणे हैं।

२५९. एतेसि णं भंते! जीवाणं आभिणिबोहियणाणीणं सुयणाणीणं ओहिणाणीणं मणपज्ज-वणाणीणं केवलणाणीणं मतिअण्णाणीणं सुतअण्णाणींण विभंगनाणीण य कतरे कत्तरेहितो अप्पा बा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मणपञ्जवणाणी १, ओहिणाणी असंखेञ्जगुणा २, आभिणिबोहियणाणी सुतणाणी य दो वि तुल्ला विसेसाहिया ३, विहंगणाणी असंखेञ्जगुणा ४, केवलणाणी अणंतगुणा ५, मइअण्णाणी सुतअण्णाणी य दो वि तुल्ला अणंतगुणा ६॥ दारं १०॥

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति पत्रांक १३७

[२५९ प्र.] भगवन्! इन आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन:पर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, मितअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५९ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प मन: पर्यवज्ञानी जीव हैं, २. (उनसे) अवधिज्ञानी असंख्यातगुणे हैं, ३. आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों तुल्य हैं और (अवधिज्ञानियों से) विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) विभंगज्ञानी असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं, ६. मित-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी, दोनों तुल्य हैं और (केवलज्ञानियों से) अनन्तगुणे हैं।दशम (ज्ञान) द्वार ॥ १०॥

विवेचन—दसवां ज्ञानद्वार : ज्ञान-अज्ञान की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत तीन सूत्रों (२५७ से २५९ तक) में पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान की दृष्टि से जीवों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

ज्ञान की अपेक्षा से अल्पबहुत्व — सबसे थोड़े मन: पर्यायज्ञानी हैं,क्योंकि मन:पर्यायज्ञान आमर्ष-औषिध आदि ऋद्भिप्राप्त संयमी पुरुषों को ही होता है। उनकी अपेक्षा अविधज्ञानी असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि अविधज्ञान, नारकों, तिर्यंञ्चपंचेन्द्रियों, मनुष्यों और देवों को भी होता है। उनसे आभिनिबोधिक-ज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों विशेषाधिक हैं, क्योंकि जिन संज्ञी-तिर्यंञ्चपंचेन्द्रियों और मनुष्यों को अविधज्ञान नहीं होता है, उन्हें भी आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान हो सकते हैं। इन दोनों ज्ञानों को परस्पर तुल्य कहने का कारण यह है कि ये दोनों ज्ञान परस्पर सहचर हैं। इन दोनों ज्ञानियों से केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध केवलज्ञानी होते हैं और वे अनन्त हैं।

अज्ञान की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े विभंगज्ञानी हैं, क्योंकि विभंगज्ञान मिथ्यादृष्टि नैरियकों व देवों और किन्हीं-किन्हीं तिर्यंचपंचेन्द्रियों और मनुष्यों को ही होता है। विभंगज्ञान की अपेक्षा मित-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान दोनों अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पितकायिक जीव भी मित-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी होते हैं, और वे अनन्त होते हैं। स्वस्थान में मित अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी दोनों तुल्य हैं, क्योंकि ये दोनों अज्ञान परस्पर सहचर हैं।

ज्ञानी और अज्ञानी दोनों का सामुदायिकरूप से अल्पबहुत्व — सबसे थोड़े मन: पर्यवज्ञानी है, तथा उनसे आगे का अल्पबहुत्व पूर्ववत् ही पूर्वोक्त युक्ति से समझ लेना चाहिए। मित-श्रुतिज्ञानियों से विभंगज्ञानी जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि देवगित और मनुष्यगित में सम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असख्यातगुणे हैं। तथा देवों और नारकों में जो सम्यग्दृष्टि होते हैं वे अवधिज्ञानी और मिथ्यादृष्टि

१. 'जत्थ मइनाणं, तत्थ सुयनाणं, जत्थ सुयनाणं, तत्थ मइनाणं'

२. 'जत्थ मइ-अन्नाणं, तत्थ सुय अन्नाणं, जत्थ सुय-अन्नाणं तत्थ मइ-अन्नाणं।'

⁻⁻⁻⁻प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १३७

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति पत्रांक १३७

विभंगज्ञानी होते हैं, इस दृष्टि से विभगज्ञानी उनसे असंख्यातगुणे हैं। उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त होते हैं। उनसे मित-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि मित-श्रुतअज्ञानी वनस्पितकायिक भी होते हैं, और वे सिद्धों से भी अनन्तगुणे हैं। स्वस्थान में ये दोनों अज्ञान परस्पर तुल्य हैं।

ग्यारहवाँ दर्शनद्वार : दर्शन की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व

२६०. एतेसि णं भंते! जीवाणं चक्खुदंसणीणं अचक्खुदंसणीणं ओहिदंसणीणं केवलदंसणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा ओहिदंसणी १, चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा २, केवलदंसणी अणंतगुणा ३, अचक्खुदंसणी अणंतगुणा ४। दारं ॥ ११॥

[२६० प्र.] भगवन्! इन चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य, अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६० उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े अवधिदर्शनी जीव हैं, २. (उनसे) चक्षुदर्शनी जीव असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) केवलदर्शनी अनन्तगुणे हैं, (और उनसे भी) ४. अचक्षुदर्शनी जीव अनन्तगुणे हैं। ग्यारहवां (दर्शन) द्वार ॥ ११॥

विवेचन—ग्यारहवाँ दर्शनद्वार: दर्शन की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व प्रस्तुत सूत्र (२६०) में चार दर्शनों की अपेक्षा से जीवों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है। सबसे थोड़े अवधिदर्शनी जीव इसिलए हैं कि अवधिदर्शन देवों, नारकों और कितपय संज्ञीतिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों और मनुष्यों को ही होता है। उनकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि चक्षुदर्शन सभी देवों, नारकों, गर्भज मनुष्यों, संज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रियों, असंज्ञी तिर्यचपंचेन्द्रियों और चतुरिन्द्रिय जीवों को भी होता है। उनकी अपेक्षा केवलदर्शनी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त हैं। उनकी अपेक्षा भी अचक्षुदर्शनी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अचक्षुदर्शनियों में वनस्पितकायिक भी हैं, जो अकेले ही सिद्धों से अनन्तगुणे हैं।

बारहवां संयतद्वार : संयत आदि की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व

२६१. एतेसि णं भंते! जीवाणं संजयाणं असंजयाणं संजयासंजयाणं नोसंजयनोअसंजयनो-संजतासंजताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा संजता १, संजयासंजता असंखेञ्जगुणा २, नोसंजतनोअसंजत-नोसंजतासंजता अणंतगुणा ३, असंजता अणंतगुणा ४। दारं॥ १२॥

[१६१ प्र.] भगवन्! इन संयतों, असंयतों, संयतासंयतों और नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयता-संयत

१. प्रज्ञापना . म. वृत्ति , पत्रांक १३८

जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं।

[१६१ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प संयत जीव हैं, २. (उनसे) संयतासंयत असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीव अनन्तगुणे हैं (और उनसे भी) ४. असंयत जीव अनन्तगुणे हैं। बारहवां (संयत) द्वार ॥ १२ ॥

विवेचन—बारहवाँ संयतद्वार : संयत आदि की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६१) में संयत, असंयत, संयतासंयत, एवं नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत की दृष्टि से जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

सबसे थोड़े संयत हैं, क्योंकि मनुष्यलोक में वे उत्कृष्टत: (अधिक से अधिक), कोटिसहस्र-पृथक्त्व, अर्थात्- दो हजार करोड़ से नौ हजार करोड़ तक ही पाए जाते हैं। उनकी अपेक्षा संयतासंयत (देशविरत) असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि मनुष्य के अतिरिक्त असंख्यात निर्यंचपंचेन्द्रियों में भी देशविरित पाई जाती है। उनसे नोसंयत-नोअसंयत (नोसंयतासंयत)अनन्तगुणे हैं, क्योंकि जो संयत, असंयत तथा संयतासंयत तीनों नहीं कहे जा सकते, ऐसे सिद्ध जीव अनन्त हैं। उनसे असंयत अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव भी असंयत हैं और वे अकेले ही सिद्धों से अनन्तगुणे हैं।

तेरहवाँ उपयोगद्वार : उपयोगद्वार की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व

२६२. एतेसि णं भंते! जीवाणं सागारोवउत्ताणं अणागारोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा अणागारोवउत्ता १, सागरोवउत्ता संखेज्जगुणा २। दारं १३॥

[२६२ प्र.] भगवन्! इन साकारोपयोग-युक्त और अनाकारोपयोग-युक्त जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६२ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प अनाकारोपयोग वाले जीव हैं, २. (उनसे) साकारोपयोग वाले जीव संख्यातगुणे हैं।

विवेचन—तेरहवाँ उपयोगद्वार : उपयोग की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६२) में साकारोपयोगयुक्त और अनाकारोपयोगयुक्त जीवों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है।

अनाकारोपयोग का काल थोड़ा होता है, जबिक साकारोपयोगकाल उससे असंख्यातगुणा अधिक होता है। इसीलिए कहा गया है कि पृच्छासमय में अनाकारोपयोग- (दर्शनोपयोग) काल थोड़ा होने से वे बहुत थोड़े पाए जाते हैं, उनकी अपेक्षा साकारोपयोग-(ज्ञानोपयोग), जीव संख्यातगुणे होते हैं। क्योंकि साकारोपयोगकाल लम्बा होने से पृच्छा के समय वे बहुत संख्या में पाये जाते हैं। है

१. प्रज्ञापना . म. वृत्ति , पत्रांक १३५

२. ''कोडिसहस्सपुहुत्तं मणुयलोए संजयाणं'' — प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पृ. १३८

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति पत्रांक १३८

चौदहवाँ आहारद्वार : आहारक-अनाहारक जीवों का अल्पबहुत्व

२६३. एतेसि णं भंते! जीवाणं आहारगाणं अणाहारगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा अणाहारगा १, आहारगा असंखेन्जगुणा २। दारं १४॥

[२६३ प्र.] भगवन्! इन आहारकों और अनाहारक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६३ उ.] गौतम! १. सबसे कम अनाहारक जीव हैं, २. (उनसे) आहारक जीव असंख्यातगुणे है। चौदहवाँ (आहार) द्वार ॥ १४॥

विवेचन—चौदहवाँ आहारद्वार : आहार की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६३) में आहारक-अनाहारक जीवों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है।

सबसे थोड़े अनाहारक जीव हैं, क्योंकि विग्रहगित करते हुए जीव, समुद्घातप्राप्त केवली और अयोगी सिद्ध जीव ही अनाहारक होते हैं। उनकी अपेक्षा आहारक जीव असंख्यातगुणे हैं। प्रश्न हो सकता है कि आहारक जीवों में वनस्पतिकायिक भी हैं और वे सिद्धों से अनन्त हैं, तो अनाहारकों से वे अनन्तगुणे क्यों नहीं बताए गए ? असंख्यातगुणे ही क्यों बताए गए ? इसका समाधान यह है कि सूक्ष्म निगोद सब मिलकर भी असंख्यात हैं, उनमें भी अन्तर्मुहूर्त समय की राशि के तुल्य हैं, तथा सदैव विग्रहगित में ही रहते हैं, इसलिए उनमें अनाहारक भी बहुत अधिक होते हैं। और वे समग्रजीवराशि के असंख्येयभाग के तुल्य होते हैं। अत: उनकी अपेक्षा आहारकजीव असंख्यात-गुणे ही हैं, अनन्तगुणे नहीं।

पन्द्रहवाँ भाषकद्वार : भाषा की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

२६४. एतेसि णं भंते! जीवाणं भासगाणं अभासगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया का तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा भासगा १, अभासना अणंतगुणा २। बारं १५॥

[२६४ प्र.] भगवन्! इन भाषक और अभाषक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक होते हैं ?

[२६४ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प भाषक जीव हैं, २. (उनसे) अनन्तगुणे अभाषक हैं। पन्द्रहवाँ (भाषक) द्वार ॥१५॥

१. विग्गहगइमावन्ना केवलिणो समुहया अजोगी य। सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारगा जीवा॥—प्रज्ञापना, म. वृत्ति पत्रांक १३८

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति पत्रांक १३८

विवेचन—पन्द्रहवाँ भाषकद्वार : भाषा की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र में भाषक और अभाषक जीवों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है।

भाषक और अभाषक की व्याख्या-जो जीव भाषालब्धि-सम्पन्न हैं, वे भाषक और जो भाषालब्धि-विहीन हैं, वे अभाषक कहलाते हैं।

भाषकों की अपेक्षा अभाषक अनन्तगुणे क्यों ?—भाषक जीव द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव हैं, जबिक अभाषकों में एकेन्द्रिय जीव हैं, जिनमें अकेले वनस्पतिकायिक जीव ही अनन्त हैं, इसिलए भाषकों से अभाषक अनन्तगुणे कहे गए हैं।

सोलहवाँ परित्तद्वार : परित्त आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व

२६५. एतेसि णं भंते! जीवाणं परित्ताणं अपरित्ताणं नोपरित्तनाोअपरित्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा परित्ता १, नोपरित्त-नोअपरित्ता अणंतगुणा २, अपरित्ता अणंतगुणा ३, । दारं १६॥

[२६५ प्र.] भगवन्! इन परीत, अपरीत और नोपरीत-नोअपरीत जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६५ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े परीत जीव हैं, २. (उनसे) नोपरीत-नोअपरीत जीव अनन्तगुणे हैं और ३. (उनसे भी) अपरीत जीव अनन्तगुणे हैं। -सोलहवाँ (परीत्त) द्वार ॥१६॥

विवेचन—सोलहवाँ परीतद्वार: परीत आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६५) में परीत, अपरीत और नोपरीत-नोअपरीत जीवों की न्यूनाधिकता का प्रतिपादन किया गया है। परीत आदि की व्याख्या—परीत का सामान्यतया अर्थ होता है—परिमित या सीमित। इस दृष्टि से 'परीत' दो प्रकार के बताए गए हैं—भवपरीत और कायपरीत। भवपरीत उन्हें कहते हैं, जिनका संसार (भवभ्रमण) कुछ कम अपार्द्ध-पुद्गलपरावर्तनमात्र रह गया है। 'कायपरीत' कहते हैं—प्रत्येकशरीरी को। भवपरीत शुक्लपाक्षिक होते हैं और कायपरीत प्रत्येकशरीरी होते हैं। अपरीत उन्हें कहते हैं—जिनका संसार परीत—परिमित न हुआ हो, ऐसे जीव कृष्णपाक्षिक होते हैं।

परीत आदि की दृष्टि से अल्पबहुत्व-पूर्वोक्त दोनों प्रकार के परीत जीव सबसे थोड़े हैं, क्योंकि समस्त जीवों की अपेक्षा शुक्लपाक्षिक एवं प्रत्येकशरीरी कम हैं। उनकी अपेक्षा नोपरीत-नोअपरीत अर्थात् इन दोनों से अलग सिद्ध भगवन् हैं, जो कि अनन्त हैं, इसलिए अनन्तगुणे हैं और उनसे अपरीत यानी कृष्णपाक्षिक जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव ही अनन्त हैं। वे सिद्धों से अनन्तगुणे हैं। वे

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

सत्रहवां पर्याप्तद्वार : पर्याप्ति की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

२६६. एएसि णं भंते! जीवाणं पञ्जत्ताणं अपञ्जत्ताणं नोपञ्जत्तनोअपञ्जत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा नोपञ्जत्तगनोअपञ्जत्तगा १, अपञ्जत्तगा अणंतगुणा २, पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा ३, । दारं १७॥

[२६६ प्र.] भगवन्! इन पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६६ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव हैं, २. (उनसे) अपर्याप्तक जीव अनन्तगुणे हैं, (और उनसे भी) ३. पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

सत्रहवाँ (पर्याप्त) द्वार ॥१७॥

विवेचन—सत्रहवाँ पर्याप्तद्वार: पर्याप्ति की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत (२६६वें) सूत्र में पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

पर्याप्ति की अपेक्षा से जीवों की न्यूनाधिकता—सबसे कम नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव हैं, क्योंकि पर्याप्ति और अपर्याप्ति से रहित सिद्ध हैं, जो पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों से कम हैं। उनकी अपेक्षा अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि साधारणवनस्पतिकायिक सिद्धों से अनन्तगुणे हैं, जो सर्वकाल में अपर्याप्तक ही पाए जाते हैं। उनकी अपेक्षा पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

अठारहवाँ सूक्ष्मद्वार : सूक्ष्म आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व

२६७. एएसि णं भंते! जीवाणं सुहुमाणं बादराणं नोसुहुमनोबादराण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा णोसुहुमणोबादरा १, बादरा अणंतगुण २, सुहुमा असंखेज्जगुणा ३,। दार १८॥

[२६७ प्र.] भगवन्! सूक्ष्म, बादर और नोसूक्ष्म-नोब्रादर जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

[२६७ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प नोसूक्ष्म-नोबादर जीव हैं, २. (उनसे) बादर जीव अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ३. सूक्ष्म जीव असंख्यातगुणे हैं। अठारहवाँ (सूक्ष्म) द्वार॥ १८॥

विवेचन—अठारहवाँ सूक्ष्मद्वार—प्रस्तुत सूत्र (२६७) में सूक्ष्म, बादर एवं नोसूक्ष्म-नोबादर जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

सूक्ष्मद्वार के माध्यम से अल्पबहुत्व—सबसे अल्प नोसूक्ष्म-नोबादर अर्थात् सिद्धजीव हैं, क्योंकि वे सूक्ष्म जीवराशि और बादर जीवराशि के अनन्तभाग के बराबर हैं। उनसे बादरजीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि बादर निगोदजीव सिद्धों से अनन्तगुणे हैं। उनसे सूक्ष्म जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि बादरिनगोदों की अपेखा सूक्ष्मिनगोद असंख्यातगुणे अधिक हैं। १

उन्नीसवाँ संज्ञीद्वार : संज्ञी आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व

२६८. एतेसि णं भंते! जीवाणं सण्णीणं असण्णीणं नोसण्णीनोअसण्णीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा सण्णी १, णोसण्णीणोअसण्णी अणंतगुणा २, असण्णी अणंतगुणा ३। दारं १९॥

[२६८ प्र.] भगवन्! संज्ञी, असंज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६८ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प संज्ञी जीव हैं, २. (उनसे) नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव अनन्तगुणे हैं (और उनसे भी) ३. असंज्ञीजीव अनन्तगुणे हैं। उन्नीसवाँ (संज्ञी) द्वार॥१९॥

विवेचन—उन्नीसवाँ संज्ञीद्वार : संज्ञी आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६८) में संज्ञी, असंज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

सबसे कम संज्ञी जीव हैं, क्योंकि विशिष्ट मन वाले जीव ही संज्ञी होते हैं और ऐसे जीव सबसे कम हैं। संज्ञियों की अपेक्षा नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी (सिद्ध) जीव अनन्तगुणे हैं, उनकी अपेक्षा असंज्ञीजीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पतिकाय आदि जीव अनन्त हैं, जो सिद्धों से भी अनन्तगुणे हैं।

बीसवां भवसिद्धिकद्वार : भवसिद्धिकद्वार के माध्यम से अल्पबहुत्व

२६९. एतेसि णं भंते! जीवाणं भवसिद्धियाणं अभवसिद्धियाणं णोभवसिद्धियणो-अभवसिद्धियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा अभवसिद्धिया १, णोभवसिद्धियणोअभवसिद्धिया अणंतगुणा २, भवसिद्धिया अणंतगुणा ३। दारं २०॥

[२६९ प्र.] भगवन्! इन भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धि-नोअभवसिद्धिक जीवों में से कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

[२६९ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े अभवसिद्धिक जीव हैं, २. (उनसे) नोभवसिद्धिक-

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

नोअभवसिद्धिक जीव अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ३. भवसिद्धिक जीव अनन्तगुणे हैं। बीसवाँ (भव) द्वार ॥२०॥

विवेचन—बीसवाँ भवसिद्धिकद्वार: भवसिद्धिकद्वार के माध्यम से जीवों का अल्पबहुत्व— प्रस्तुत सूत्र (२६९) में भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादित किया गया है।

सबसे कम अभवसिद्धिक—अभव्य—मोक्षगमन के अयोग्य जीव हैं, क्योंकि वे जघन्य युक्तानन्तक प्रमाण वाले हैं। अनुयोगद्वार के अनुसार-'उत्कृष्ट परीतानन्त में एक रूप (संख्या) मिलाने से' 'जघन्य युक्तानन्तक' होता है; अभवसिद्धिक उतने ही हैं। उनकी अपेक्षा नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि जो भव्य भी नहीं और अभव्य भी नहीं, ऐसे जीव सिद्ध हैं और वे अजघन्योत्कृष्ट युक्तानन्तक-परिमाण हैं, इस कारण वे अनन्त हैं। उनकी अपेक्षा भवसिद्धिक—भव्य—मोक्षगमनयोग्य जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध एक भव्यनिगोदराशि के अनन्तभागकल्प होते हैं और ऐसी भव्य जीवनिगोदराशियाँ लोक में असंख्यात हैं। र

इक्कीसवाँ अस्तिकायद्वार : अस्तिकायद्वार के माध्यम से षड्द्रव्य का अल्पबहुत्व

२७०. एतेसि णं भंते! धम्मित्थकाय-अधम्मित्थकाय-आगासित्थकाय-जीवित्थकाय-पोग्गलित्थकाय-अद्धसमयाणं दव्बट्टयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! धम्मत्थिकाय अधम्मत्थिकाय आगासत्थिकाय य एए तिन्नि वि तुल्ला दव्बहुयाए सव्बत्थोवा १, जीवत्थिकाय दव्यहुयाए अणंतगुणे २, पोग्गलत्थिकाए दव्बहुयाए अणंतगुणे ३, अद्धसमए दव्बहुयाए अणंतगुणे।

[२७० प्र.] भगवन्! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धा-समय (काल) इन द्रव्यों में से, द्रव्य की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२७० उ.] गौतम! १. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, ये तीनों ही तुल्य हैं तथा द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प हैं; २. (इनकी अपेक्षा) जीवास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं; ३. (इससे) पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुण है; ४. (और इससे भी) अद्धा-समय (कालद्रव्य) द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुण है।

२७१. एएसि णं भंते! धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय-आगासत्थिकाय-जीवत्थिकाय-

१. 'उक्कोसए परित्ताणंतए रूवे पक्खित्ते जहन्नयं जुत्ताणंतयं होई, अभवसिद्धिया वि तत्तिया चेवं--अनुयोगद्वार'

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १४०

पोग्गलिश्वकाय-अद्धासमयाणं पदेसट्टयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए य एते णं दो वि तुल्ला पदेसद्वायाए सव्वत्थोवा १, जीवत्थिकाए पदेसद्वताए अणंतगुणे २, पोग्गलत्थिकाए पदेसद्वाए अणंतगुणे ३, अद्धासमए पदेसद्वयाए अणंतगुणे ४, आगासत्थिकाए पदेसद्वताए अणंतगुणे ५।

[२७१ प्र.] हे भगवन्! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय; इन (द्रव्यों) में से प्रदेश की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२७१ उ.] गौतम! १. धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, ये दोनों प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य हैं और सबसे थोड़े हैं, २ (इनकी अपेक्षा) जीवास्तिकाय प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुण हैं, ३. (इसकी अपेक्षा) पुद्गलास्तिकाय प्रदेशों की अपेखा से अनन्तगुण है, ४. (इसकी अपेक्षा) अद्धा-समय (काल) प्रदेशापेक्षया अनन्तगुण है; ५. (इससे) आकाशास्तिकाय प्रदेशों की दृष्टि से अनन्तगुण है।

२७२. [१] एतस्स णं भंते! धम्मित्थकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्बत्थोवा एगे धम्मत्थिकाए दव्बहुताए, से चेव पदेसहुताए असंखेज्जगुणे।

[२७२-१ प्र.] भगवन्! इस धर्मास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत तुल्य अथवा विशेषाधिक है।

[२७२-१ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से एक धर्मास्तिकाय (द्रव्य) है और २. वहीं प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणा है।

[२] एतस्स णं भंते! अधम्मित्थकायस्स दव्बट्ट-पदेसट्टताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा एगे अधम्मत्थिकाए दव्वट्ठताए, से चेव पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणे ।

[२७२-२ प्र.] भगवन्! इस अधर्मास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-२ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से एक अधर्मास्तिकाय (द्रव्य) है; और २. वहीं प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणा है।

[३] एतस्स णं भंते! आगासित्थिकायस्स दव्बट्ट-पदेसट्टताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्बत्थोवा एगे आगासित्थकाए दव्बहुताए, से चेव पदेसहुताए अणंतगुणे।

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [२७१

[२७२-३ प्र.] भगवन्! इस आकाशास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-३ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से एक आकाशास्तिकाय (द्रव्य) है और २. वही प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुण है।

[४] एतस्स णं भंते! जीवत्थिकायस्स दव्बट्ट-पदेसट्टताए कतरे कतरेहिंतो अण्या वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवत्थिकाए दव्वट्टयाए, से चेव पदेसट्टताए असंखेज्जगुणे।

[२७२-४ प्र.] भगवन्! इस जीवास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-४ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से जीवास्तिकाय है और २. वही प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुण है।

[५] एतस्स णं भंते! पोग्गलिथकायस्स दव्बट्ट-पदेसट्टताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा पोग्गलिखकाए दव्वट्टयाए, से चेव पदेसट्टयाए असंखेज्जगुणे।

[२७२-५ प्र.] भगवन्! इस पुद्गलास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशों की दृष्टि से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-५ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से है, २. प्रदेशों की अपेक्षा से वही असंख्यातगुणा है।

[६] अद्धासमए ण पुच्छिज्जइ पदेसाभावा ।

[२७२-६] काल (अद्धा-समय) के सम्बन्ध में प्रश्न नहीं पूछा जाता, क्योंकि उसमें प्रदेशों का अभाव है।

२७३. एतेसि णं भंते! धम्मित्थकाय-अधम्मित्थकाय-आगासित्थकाय-जीवित्थकाय-पोग्गलित्थकाय-अद्धासमयाणं दव्वट्ट-पदेसट्टताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए य एते णं तिण्णि वि तुल्ला दव्वहयाए सव्वत्थोवा १, धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए य एते णं दोण्णि वि तुल्ला पदेसहताए असंखेज्जगुणा २, जीवत्थिकाए दव्वहयाए अणंतगुणे ३, से चेव पदेसहताए असंखेज्जगुणे ४, पोग्गलत्थिकाए दव्वहयाए अणंतगुणे ५, से चेव पदेसहयाए असंखेज्जगुणे ६, अद्धासमए दव्वह-पदेसहयाए अणंतगुणे ७, आगासत्थिकाए पएसहयाए अणंतगुणे ८। दारं २१॥

[२७३ प्र.] भगवन्! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धा-समय (काल), इनमें से द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७३ उ.] गौतम! १. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, और आकाशास्तिकाय, ये तीन (द्रव्य) तुल्य हैं तथा द्रव्य की अपेक्षा से सबसे अल्प हैं, २. (इनसे) धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ये दोनों प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य हैं तथा असंख्यातगुणे हैं, ३. (इनसे) जीवास्तिकाय, द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुण हैं, ४. वह प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुण है, ५. (इससे) पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणा है, ६. वही (पुद्गलास्तिकाय) प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुण है। ७. अद्धा-समय (काल) (उससे) द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुणा है, ८. और (इससे भी) आकाशास्तिकाय प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुण है। इक्कीसवाँ (अस्तिकाय) द्वार ॥२१॥

विवेचन—इक्कीसवाँ अस्तिकायद्वार:अस्तिकायद्वार के माध्यम से षड्द्रव्यों का अल्पबहुत्व— प्रस्तुत चार सूत्रों (सू. २७० से २७३ तक) में द्रव्य, प्रदेशों व द्रव्य और प्रदेशों—दोनों की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय आदि षड्द्रव्यों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

द्रव्य की अपेक्षा से षड्द्रव्यों का अल्पबहृत्व—(१) धर्मास्तिकायादि तीन द्रव्य, द्रव्य रूप से एक-एक संख्या वाले होने से सबसे अल्प हैं। जीवास्तिकाय इन तीनों से द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, क्योंकि जीव अनन्त हैं और वे प्रत्येक पृथक्-पृथक् द्रव्य हैं। उससे भी पुद्गलास्तिकाय द्रव्यापेक्षया अनन्तगुणा है, क्योंकि परमाणु, द्विप्रदेशीस्कन्ध आदि पृथक्-पृथक् द्रव्य स्वतन्त्र द्रव्य हैं, और वे सामान्यतया तीन प्रकार के हैं—प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्नसापरिणत। इनमें से सिर्फ प्रयोगपरिणत पुद्गल, जीवों की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक जीव अनन्त-अनन्त ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय आदि कर्मपरमाणुओं (स्कन्धों) से आवेष्टित-परिवेष्टित (सम्बद्ध) है, जैसा कि व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) में कहा है^१ - 'सबसे थोड़े प्रयोगपरिणत पुद्गल हैं, उनसे मिश्रपरिणत पुद्ग्ल अनन्तगुणे हैं और उनसे भी विस्नसापरिणत अनन्तगुणे हैं।'१ अत: यह सिद्ध हुआ कि पुद्गलास्तिकाय, द्रव्य की अपेक्षा से जीवास्तिकाय द्रव्य से अनन्तगुणा है। पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा अद्धा-काल द्रव्यरूप से अननतगुणा है; क्योंकि एक ही परमाणु के भिवष्यत् काल में द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् दशप्रदेशी संख्यातप्रदेशी असंख्यातप्रदेशी, और अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के साथ परिणत होने के कारण एक ही परमाणु के भावीसंयोग अनन्त हैं और पृथक्-पृथक् कालों में होने वाले वे अनन्त संयोग केवलज्ञान से ही जाने जा सकते हैं। जैसे एक परमाणु के अनन्त संयोग होते हैं, वैसे द्विप्रदेशीस्कन्ध आदि सर्वपरमाणुओं के प्रत्येक के अनन्त-अनन्त संयोग भिन्न-भिन्न कालों में होते हैं। ये सब परिणमन मनुष्यलोक (क्षेत्र) के अन्तर्गत होते हैं। इसलिए क्षेत्र की दृष्टि से एक-एक परमाणु के भावी संयोग अननत हैं। जैसे—यह परमाणु

१. 'सव्बत्थोवा पुग्गला पयोगपरिणया, मीसपरिणया अणंतगुणा, वीससापरिणया अणंतगुणा।'—व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र

अमुक काल में अमुक आकाश-प्रदेश में अवगाहन करेगा, दूसरे समय में किसी दूसरे आकाश-प्रदेश में। जैसे--एक परमाणु के क्षेत्र की दृष्टि से विभिन्न कालवर्ती अनन्त भावीसंयोग हैं, वैसे ही अनन्तप्रदेशस्कन्थपर्यन्त द्विप्रदेशी आदि स्कन्धों के प्रत्येक के एक-एक आकाशप्रदेश में अवगाहन-भेद से भिन्न-भिन्न कालों में होने वाले भावी संयोग अनन्त हैं। इसी प्रकार काल की अपेक्षा भी यह परमाणु इस आकाशप्रदेश में एक समय की स्थिति वाला, दो आदि समयों की स्थिति वाला हैं, इस प्रकार एक परमाणु के एक आकाशप्रदेश में असंख्यात भावीसंयोग होते हैं, इसी तरह सभी आकाशप्रदेशों में प्रत्येक परमाणु के असंख्यात-असंख्यात भावीसंयोग होते हैं, भावीसंयोग होते हैं, फिर पुन: पुन: उन आकाशप्रदेशों में काल का परावर्तन होने पर और काल अनन्त होने से, काल की अपेक्षा से भावीसंयोग अनन्त होते हैं। जैसे एक परमाणु के क्षेत्र एवं काल की अपेक्षा से भावीसंयोग होते हैं तथा सभी द्विप्रदेशी स्कन्धादि परमाणुओं के प्रत्येक के पृथक्-पृथक् अनन्त-अनन्त संयोग होते हैं। इसी प्रकार भाव की अपेक्षा से भी समझ लेना चाहिए। यथा---यह परमाणु अमुक काल में एक गुण काला होगा। इस प्रकार एक ही परमाणु के भाव की अपेक्षा से भिन्न-भिन्नकालीन अनन्त संयोग समझ लेने चाहिए। एक परमाणु की तरह सभी परमाणुओं एवं द्विप्रदेशी अदि स्कन्धों के पृथक-पृथक अनन्त संयोग भाव की अपेक्षा से भी होते हैं। इस प्रकार विचार करने पर एक ही परमाणु के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव-विशेष के सम्बन्ध से अनन्त भावी समय सिद्ध होते हैं और जो बात एक परमाणु के विषय में है, वही सब परमाणुओं एवं द्विप्रदेशिक आदि स्कन्धों के सम्बन्ध में भी समझ लेनी चाहिए। यह सब परिणमनशील काल नामक वस्तु के बिना और परिणमनशील पुद्गलास्तिकाय आदि वस्तुओं के बिना संगत नहीं हो सकता। १

जिस प्रकार परमाणु, द्विप्रदेशिक अदि स्कन्धों में से प्रत्येक के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावविशेष के सम्बन्ध से अनन्त भावी अद्धाकाल प्रतिपादित किये गए हैं, इसी प्रकार भूत अद्धाकाल भी समझ लेने चाहिए।

(२) धर्मास्तिकाय आदि का प्रदेशों की अपेखा से अल्पबहुत्व—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, ये दोनों प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य हैं, क्योंकि दोनों के प्रदेश लोकाकाश के प्रदेशों के जितने ही हैं। अत: अन्य द्रव्यों से इनके प्रदेश सबसे कम हैं। इन दोनों से जीवास्तिकाय प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुण है, क्योंकि जीव द्रव्य अनन्त हैं, उनमें से प्रत्येक जीवद्रव्य के प्रदेश लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर हैं। उससे भी पुद्गलास्तिकाय प्रदेशों को अपेक्षा से अनन्तगुण है। क्योंकि पुद्गल की अन्य वर्गणाओं को छोड़ दिया जाय और केवल कर्मवर्गणाओं को ही लिया जाए तो भी जीव का एक-

१. संयोगपुरस्कारश्च नाम भाविनि हि युज्यते काले।न हि संयोगपुरस्कारो ह्यसतां केचिदुपपन्नः॥१॥

[—]प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १४१.

२. प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्रांक १४१

एक प्रदेश अनन्त-अनन्त कर्मपरमाणुओं (कर्मस्कन्ध प्रदेशों) से आवृत है। कर्मवर्गणा के अतिरिक्त औदारिक, वैक्रिय आदि अन्य अनेक वर्गणाएँ भी हैं। अतएव सहज ही यह सिद्ध हो जाता है कि जीवास्तिकाय के प्रदेशों से पुद्गलास्तिकाय के प्रदेश अनन्तगुणे हैं। पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा भी अद्धाकाल के प्रदेश अनन्तगुणे हैं, क्योंकि पहले कहे अनुसार एक-एक पुद्गलास्तिकाय के उस-उस (विभिन्न) द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के साथ सम्बन्ध के कारण अतीत और अनागत का काल अनन्त-अनन्त है। अद्धाकाल की अपेक्षा आकाशास्तिकाय प्रदेशों की दृष्टि से अनन्तगुण है, क्योंकि अलोकाकाश सभी ओर अनन्त और असीम है।

द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय आदि का अल्पबहुत्व—धर्मास्तिकाय, अधर्मासितकाय ये दोनों द्रव्य की दृष्टि से थोड़े हैं, क्योंकि ये दोनों एक-एक द्रव्य ही हैं। किन्तु प्रदेशों की अपेक्षा से द्रव्य से असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि दोनों असंख्यातप्रदेशी हैं। आकाशास्तिकाय द्रव्य की दृष्टि से सबसे कम है, क्योंकि वह एक है, मगर प्रदेशों की अपेक्षा से वह अनन्तगुण है क्योंकि उसके प्रदेश अनन्तानन्त हैं। जीवास्तिकाय द्रव्य की दृष्टि से अल्प है और प्रदेशों की दृष्टि से असंख्यातगुण है, क्योंकि एक-एक जीव के लोकाकाश के प्रदेशों के तुल्य असंख्यात-असंख्यात प्रदेश हैं। द्रव्य की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय कम है, क्योंकि प्रदेश से द्रव्य कम ही होते हैं, प्रदेशों की दृष्टि से पुद्गलास्तिकाय असंख्यातगुणे हैं। यह प्रश्न हो सकता है कि लोक में अनन्तप्रदेशी पुद्गलस्कन्ध बहुत हैं, अतएव पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा प्रदेशों से अनन्तगुण होना चाहिए, इसका समाधान यह है कि द्रव्य की दृष्टि से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध सबसे स्वल्प हैं, परमाणु आदि अत्यधिक हैं। आगे प्रज्ञापनासूत्र में कहा जाएगा'--''सबसे कम द्रव्य की दृष्टि से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध हैं, द्रव्यदृष्टि से परमाणुपुद्गल अनन्तगुणे हैं। द्रव्यदृष्टि से संख्यातप्रदेशी स्कन्ध संख्यातगुणे हैं और असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध असंख्यातगुणे हैं।" इस पाठ के अनुसार जब समस्त पुद्गलास्तिकाय का प्रदेशदृष्टि से चिन्तन किया जाता है, तब अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अत्यन्त कम और परमाणु अत्यधिक तथा पृथक्-पृथक् द्रव्य होने से असंख्यप्रदेशी स्कन्ध परमाणुओं की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं। अत: प्रदेशों की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय असंख्यातगुणा ही हो सकता है, अनन्तगुणा नहीं।

कालद्रव्य के विषय में द्रव्य और प्रदेशों के अल्पबहुत्व को लेकर प्रश्न ही नहीं उठाना चाहिए, क्योंकि काल के प्रदेश नहीं होते। काल सिर्फ द्रव्य ही है, उसके प्रदेश नहीं होते, क्योंकि जब परमाणु परस्पर सापेक्ष (एकमेक) होकर परिणत होते हैं, तभी उनका समूह स्कन्ध कहलाता है और उसके अवयव प्रदेश कहलाते हैं। यदि वे परमाणु परस्पर निरपेक्ष हों तो उनके समूह को स्कन्ध नहीं कह सकते। अद्धा-समय (काल) परस्पर निरपेक्ष है, स्कन्ध के समान परस्पर (पिंडित) सापेक्ष द्रव्य नहीं है।

१. 'सब्बत्थोवा अणंतपएसिया खंधा दब्बहुयाए परमाणुपोग्गला, दब्बहुयाए, अणंतगुणा, संखेज्जपएसिया खंधा दब्बहुयाए संखेज्जगुणा, असंखेज्जपएसिया खंधा दब्बहुयाए असंखेज्जगुणा।'—प्रज्ञापनाः पद ३, सू. ३३०

जब वर्तमान समय होता है। तो उसके आगे पीछे के समय का अभाव होता है। अतएव उनमें स्कन्धरूप परिणाम का अभाव है। अतएव अद्धा-समय (कालद्रव्य) के प्रदेश नहीं होते।

धर्मास्तिकायादि का एक साथ द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व--सबसे कम द्रव्य-दृष्टि से धर्मास्तिकाय आदि तीनों द्रव्य हैं, क्योंकि तीनों एक-एक द्रव्य हैं। इनकी अपेक्षा प्रदेशों की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय दोनों तुल्य व असंख्यातगुणे हैं क्योंकि दोनों के प्रदेश असंख्यात-असंख्यात हैं। इन दोनों से जीवास्तिकाय द्रव्यदृष्टि से अनन्तगुणा है। क्योंकि जीवद्रव्य अनन्त हैं। उनसे जीवास्तिकाय प्रदेशदृष्टि से असंख्यातगुणा है, क्योंकि प्रत्येक जीव के असंख्यात-असंख्यात प्रदेश होते हैं। प्रदेशरूप जीवास्तिकाय से द्रव्यरूप पुद्गलास्तिकाय अनन्तगुणा है, क्योंकि जीव के एक-एक प्रदेश के साथ अनन्त-अनन्त कर्मपुद्गलद्रव्य सम्बद्ध हैं। द्रव्यरूप पुद्गलास्तिकाय से प्रदेशरूप पुद्गलास्तिकाय असंख्यातगुणा है। इसका कारण पहले बताया जा चुका है। प्रदेशरूप पुदुगलास्तिकाय की अपेक्षा अद्धा-समय (काल) द्रव्य और प्रदेश की दृष्टि से पूर्वीक्त युक्ति के अनुसार अनन्तगुणा हैं, इसकी अपेक्षा आकाशास्तिकाय प्रदेशों की दृष्टि से अनन्तगुणा है। क्योंकि आकाशास्तिकाय सभी दिशाओं में अनन्त है, उसकी कहीं सीमा नहीं है; जबिक अद्धा-समय(काल) सिर्फ मनुष्यक्षेत्र में होता है। १

बाईसवाँ चरमद्वार : चरम और अचरम जीवों का अल्पबहुत्व

२७४. एतेसिं णं भंते! जीवाणं चरिमाणं अचरिमाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा अचरिमा १, चरिमा अणंतगुणा २। दारं २२॥

[२७४ प्र.] भगवन्! इन चरम और अचरम जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२७४ उ.] गौतम! अचरम जीव सबसे थोड़े हैं, (उनसे) चरम जीव अनन्तगुणे है। बावीसवाँ (चरम) द्वार ॥ २२॥

विवेचन—बावीसवाँ चरमद्वार—चरम और अचरम जीवों का अल्पबहुत्व—चरम और अचरम को व्याख्या—जिन जीवों का इस संसार में चरम—अन्तिम भव (जन्म-मरण) संभव है, वे चरम कहलाते हैं, अथवा जो जीव योग्यता से भी चरम भव (निश्चित् रूप से मोक्ष)के योग्य हैं, वे भव्य भी चरम कहलाते हैं। अचरम (चरमभव के अभाव वाले) अभव्य हैं या जिनका अब चरमभव (शेष) नहीं हैं, वे अचरम- सिद्ध कहलाते हैं।

चरम और अचरम का अल्पबहुत्व—सबसे कम अचरम जीव हैं, क्योंकि अभव्य और सिद्ध दोनों प्रकार के अचरम मिलकर भी अजघन्योत्कृष्ट अनन्त होते हैं; जबिक उभयविध चरम (चरमशरीरी तथा भव्यजीव) उनकी अपेक्षा अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वे अजघन्योत्कृष्ट अनन्तानन्तपरिमाण हैं।^२

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति , पत्रांक १४२-१४३ २. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १४३

तेईसवाँ जीवद्वार : जीवादि का अल्पबहुत्व

२७५. एतेसि णं भंते! जीवाणं पोग्गलाणं अद्धासमयाणं सव्वदव्वाणं सव्वपदेसाणं सव्वपज्जवाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा १, पोग्गला अणंतगुणा २, अद्धासमया अणंतगुणा ३, सव्वदव्व विसेसाहिया, ४ सव्वपदेसा अणंतगुणा ५, सव्वपञ्जवा अणंतगुणा ६। दारं २३॥

[२७५ प्र.] भगवन्! इन जीवों, पुद्गलों, अद्धा-समयों, सर्वप्रदेशों और सर्वपर्यायों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२७५ उ.] गौतम! १. सबसे अल्प जीव हैं, २. (उनसे) पुद्गल अनन्तगुण हैं, ३. (उनसे) अद्धा-समय अनन्तगुणे हैं, ४. (उनसे) सर्वद्रव्य विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) सर्वप्रदेश अनन्तगुण हैं (और उनसे भी) ६. सर्वपर्याय अनन्तगुणे हैं। तेईसवां (जीव) द्वार ॥ २३॥

विवेचन—तेईसवाँ जीवद्वार —प्रस्तुत सूत्र (२७५) में जीव, पुद्गल, काल, सर्वद्रव्य, सर्वप्रदेश, और सर्वपर्याय, इनके परस्पर अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

जीवादि के अल्पबहुत्व की युक्तिसंगतता—सबसे कम जीव, उनसे अनन्तगुणे पुद्गल तथा उनसे भी अनन्तगुणे (अद्धासमय), इस सम्बन्ध में पूर्वोक्त युक्ति से विचार कर लेना चाहिए। अद्धासमयों से सर्वद्रव्य विशेषाधिक हैं, क्योंकि पुद्गलों से जो अद्धासमय अनन्तगुणे कहे गए हैं, वह प्रत्येक अद्धासमय द्रव्य हैं, अत: द्रव्य के निरूपण में वे भी ग्रहण किये जाते हैं। साथ ही अनन्त जीव-द्रव्यों, समस्त पुद्गल द्रव्यों, धर्म, अधर्म एवं आकाशास्तिकाय, इन सभी का द्रव्य में समावेश हो जाता है, ये सभी मिल कर भी अद्धासमयों से अनन्तवें भाग होने से उन्हें मिला देने पर भी सर्वद्रव्य, अद्धासमयों से विशेषाधिक हैं। उनकी अपेक्षा सर्वप्रदेश अनन्तगुणे हैं, क्योंकि आकाश अनन्त है। प्रदेशों से सर्वपर्याय अनन्तगुणे हैं, एक-एक आकाशप्रदेश में अनन्त-अनन्त अगुरुलघुपर्याय होते हैं।

चौबीसवाँ क्षेत्रद्वार : क्षेत्र की अपेक्षा से ऊर्ध्वलोकादिगत विविध जीवों का अल्पबहुत्व

२७६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा जीवा उड्ढलोयितरियलोए १, अहेलोयितरियलाए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अहेलोए विसेसाहिया ६।

[२७६] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक में हैं, २. (उनसे) अधोलोक-तिर्यग्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यग्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य में (तीनों लोकों में अर्थात् तीनों लोकों का स्पर्श करने वाले असंख्यातगुणे हैं ५. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक में असंख्येयगुणे हैं, ६. (उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १४३

२७७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा नेरइया तेलोक्के १, अहेलोकतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, अहेलोए असंखेज्जगुणा ३।

[२७७] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े नैरयिकजीव त्रैलोक्य में हैं, २. (उनसे) अधोलोक-तिर्यकुलोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (और उनसे भी) अधोलोक में असंख्यातगुणे हैं।

२७८. खेत्ताणुवाएणं सव्बत्थोवा तिरिक्खजोणिया उड्ढलोयितिरियलोए १, अहेलोयितिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

(२७८) क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प तिर्यंचयोनिक (पुरुष) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) विशेषाधिक अधोलोक-तिर्यक्लोक में हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२७९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओं तिरिक्खजोणिणीओं उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोएं असंखज्जेगुणाओं २, तेलोक्के संखेज्जगुणाओं ३, अधेलोयितिरियलोएं संखेज्जगुणाओं ४, अधेलोएं, संखेज्जगुणाओं ५, तिरियलोएं संखेज्जगुणाओं ६।

[२७९] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम तिर्यंचनी (तिर्यंचस्त्री) ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं, ६. (और उनसे) भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं।

२८०. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ मणुस्सा तेलोक्के १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणा २, अधोलोयितिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२८०] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़े मनुष्य त्रैलोक्य में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुण हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

२८१. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ तेलोक्के १, उड्ढलोयितिरयलोए असंखेज्जगुणाओ २, अधोलोयितिरियलोए संखेज्जगुणाओ ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए संखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए संखेज्जगुणाओ ६।

[२८१] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़ी मनुष्यस्त्रियाँ (नारियाँ) त्रैलोक्य में हैं, २. ऊर्ध्वलोक-

तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं, ३. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं।

२८२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरयलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधेलोयितिरयलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२८२] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़े देव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) असंख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

२८३. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखेज्जगुणाओ ३, अधेलोयितिरियलोए संखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए संखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए संखेज्जगुणाओ ६।

[२८३] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम देवियाँ ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) असंख्यातगुणी ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं।

२८४. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ भवणवासी देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधेलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ५, अधोलोए असंखेज्जगुणा ६।

[२८४] क्षेत्रानुसार १. सबसे थोड़े भवनवासी देव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी)अधोलोक में असंख्यातगुणे हैं।

२८५. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ भवणवासिणीओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरिय लोए असंखेञ्जगुणाओ २, तेलोक्के संखेञ्जगुणाओ ३, अधोलोयितिरियलोए असंखेञ्जगुणाओ ४, तिरियलोए असंखेञ्जगुणाओ ५, अधोलोए असंखेञ्जगुणाओ ६।

[२८५] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़ी भवनावासिनी देवियाँ ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ६. (और

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [२७९

उनसे भी) अधोलोक में असंख्यातगुणी हैं।

२८६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वाणमंतरा देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेञ्जगुणा २, तेलोक्के संखेञ्जगुणा ३, अधोलोयितिरियलोए संखेञ्जगुणा ४, अहेलोए संखेञ्जगुणा ५, तिरियलोए संखेञ्जगुणा ६।

[२८६] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे अल्प वाणव्यन्तर देव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

२८७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ वाणमंतरीओ देवीओ उड्ढलोए १. उड्ढलोयितिरियलोए असंखिज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखिज्जगुणाओ ३, अधोलोयितिरियलोए असंखिज्जगुणाओ ४, अधोलोए संखिज्जगुणाओ ५, तिरियलोए संखिज्जगुणाओ ६।

[२८७] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़ी वाणव्यन्तर देवियाँ ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं, ६. (उनसे भी) तिर्यक् में संख्यातगुणी हैं।

२८८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा जोइसिया देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधेलोयितिरियलोए संखेज्जगुणा ४, अधोलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[२८८] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम ज्योतिष्क देव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

२८९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ जोइसिणीओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखेज्जगुणाओ ३, अधोलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणाओ ४, अधोलोए संखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ ६।

[२८९] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम ज्योतिष्क देवियाँ ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं, ६. (उनसे भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं। २९०. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा^१ उड्ढलोयितिरियलोए १, तेलोक्के संखेज्जगुणा २, अधोलोयितिरियलोए संखेज्जगुणा ३, अधेलोए संखेज्जगुणा ४, तिरियलोए संखेज्जगुणा ५, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ६।

[२९०] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) उर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं।

२९१. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ वेमाणिणीओ देवीओ उहुलोयितिरियलोए १. तेलोक्के संखेज्जगुणाओ २, अधेलोयितिरियलोए संखेज्जगुणाओ ३, अधेलोए संखिज्जगुणाओ ४, तिरियलोए संखेज्जगुणाओ ६।

[२९१] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम वैमानिक देवियाँ ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं, ३. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं। (और उनसे भी) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणी हैं।

२९२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा उड्ढलोयितिरियलोए १, अधेलोयितिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधोलोए विसेसाहिया ६।

[२९२] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम एकेन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक्-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अर्धालोक में असंख्यातगुणे हैं और ६. और (उनसे) भी अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२९३. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा अपञ्जत्तगा उड्ढलोयितिरियलोए १, अधेलोयितिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधोलोए विसेसाहिया ६।

[२९३] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम एकेन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक्-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और ६. और (उनसे) भी अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२९४. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा पज्जत्तगा उड्ढलोयितिरियलोए १,

१. ग्रन्थाग्रम् २०००

अधोलोयितिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अहोलोए विसेसाहिया ६।

[२९४] क्षेत्र की अपेक्षा से १. एकेन्द्रिय-पर्याप्तक सबसे थोड़े ऊर्ध्वलोक्-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और ६. (उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२९५. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा बेइंदिया उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९५] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम द्वीन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे)अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६, (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

२९६. खेत्ताणुवाएणं सव्बत्थोवा बेइंदिया अपज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखिज्जगुणा ३, अधेलोयितिरियलोए असंखिज्जगुणा ४, अधोलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९६] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे)अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६, और (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

२९७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा बेइंदिया पज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखिज्जगुणा ३, अधोलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९७] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे)अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६, और (उनसे)भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

२९८. खेत्ताणुवाएणं सव्बत्थोवा तेइंदिया उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

- [२९८] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े त्रीन्द्रिय ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे)अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६, और (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।
- २९९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेइंदिया अपन्जत्तगा उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेन्जगुणा २, तेलोक्के असंखेन्जगुणा ३, अधेलोयितिरियलोए असंखेन्जगुणा ४, अधोलोए संखेन्जगुणा ५, तिरियलोए संखेन्जगुणा ६।
- [२९९] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम त्रीन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे)अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६, और (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।
- ३००. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेइंदिया पञ्जत्तया उड्ढूलोए १, उड्ढूलोयितिरियलोए असंखेञ्जगुणा २, तेलोक्के असंखेञ्जगुणा ३, अधेलोयितिरियलोए असंखेञ्जगुणा ४, अधेलोए संखेञ्जगुणा ५, तिरियलोए संखेञ्जगुणा ६।
- [३००] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प त्रीन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे)अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६, और (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।
- ३०१. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयितिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधोलोए संखेज्जगुणा ६, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।
- [३०१] क्षेत्र की दृष्टि से १. सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा)अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६, और (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।
- ३०२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा अपञ्जत्तगा उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेञ्जगुणा २, तेलोक्के असंखेञ्जगुणा ३, अधेलोयितिरियलोए असंखेञ्जगुणा ४, अधेलोए संखेञ्जगुणा ५, तिरियलोए संखेञ्जगुणा ६।
- [३०२] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े चतुरिन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. और (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

३०३. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा पञ्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए संखेञ्जगुणा २, तेलोक्के असंखेञ्जगुणा ३, अहेलोयितिरियलोए असंखेञ्जगुणा ४, अहोलोए संखेञ्जगुणा ५, तिरियलोए संखेञ्जगुणा ६।

[३०३] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम चतुरिन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. और (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

३०४. खेत्ताणुवातेणं सव्वत्थोवा पंचिंदिया तेलोक्के १, उड्ढलोयितिरियलोए संखेज्जगुणा २, अधोलोयितिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[३०४] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प पंचेन्द्रिय त्रैलोक्य में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

३०५. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पंचिंदिया अपन्जत्तया तेलोक्के १, उड्ढलोयितिरियलोए संखेन्जगुणा २, अधेलोयितिरियलोए संखेन्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेन्जगुणा ४, अधेलोए संखेन्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेन्जगुणा ६।

[३०५] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम पंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक त्रैलोक्य में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

३०६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पंचिंदिया पञ्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेञ्जगुणा २, तेलोक्के संखेञ्जगुणा ३, अधोलोयितिरियलोए संखेञ्जगुणा ४, अधेलोए संखेञ्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेञ्जगुणा ६।

[३०६] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं ६. और (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

३०७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पुढिवकाइया उड्ढलोयितिरियलोए १, अधोलोयितिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा, ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३०७] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़े पृथ्वीकायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोकातिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं, और ६. (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३०८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पुढिवकाइया अपञ्जत्तया उड्ढलोयितिरयलोए १, अधोलोयितिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेञ्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेञ्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेञ्जगुणा ५, अहोलोए विसेसाधिया ६।

[३०८] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३०९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पुढिवकाइया पञ्जत्तया उड्ढलोयितिरियलोए १, अधेलोयितिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेञ्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेञ्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेञ्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाधिया ६।

[३०९] क्षेत्र के अनुसार १. पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव सबसे अल्प ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३१०. खेत्ताणुवाएणं सव्बत्थोवा आउकाइया उड्ढलोयितिरियलोए १, अधेलोयितिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अहेलोए विसेसाहिया ६।

[३१०] क्षेत्र के अनुसर १. सबसे थोड़े अप्कायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्ष) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५. ऊर्ध्वलोक में (इनसे) असंख्यातगुणे हैं, ६. (और इनसे भी) विशेषाधिक अधोलोक में हैं।

३११. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा आउकाइया अपञ्जत्तया उड्ढलोयितिरियलोए १, अधेलोयितिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेञ्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेञ्जगुण ४,

उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३११] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम अप्कायिक-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक - तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा भी) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५, (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और ६. अधोलोक में (उनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक हैं।

३१२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा आउकाइया पज्जत्तया उड्ढलोयितिरियलोए १, अधेलोयितिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसािहया ६।

[३१२] क्षेत्र की अपेक्षा से १. अप्कायिक-पर्याप्त जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में सबसे कम हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक से विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ६. और (उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३१३. खेत्ताणुवाएणं सव्बत्थोवा तेउकाइया उड्ढलोयितिरियलोए १, अधेलोयितिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१३] क्षेत्र की अपेक्षा से १. तेजस्कायिक जीव सबसे कम ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. ऊर्ध्वलोक में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, और ६. अधोलोक में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

३१४. खेताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेउकाइया अपञ्जत्तगा उड्ढलोयितिरियलोए १. अधेलोयितिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेञ्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेञ्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेञ्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाधिया ६।

(३१४) क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प तेजस्कायिक-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (उनसे) विशेषाधिक हैं, ३. तिर्यक्लोक में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ५. ऊर्ध्वलोक में (इनसे) असंख्यातगुणे हैं, ६. और (इनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक अधोलोक में हैं।

३१५. खेत्ताणुवाएणं सव्बत्थोवा तेउक्काइया पञ्जत्तया उड्ढलोए १, अधेलोएतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेञ्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेञ्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेञ्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६। [३१५] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम तेजस्कायिक-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. [उनकी अपेक्षा] अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. तिर्यक्लोक में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और (उनकी अपेक्षा भी) ६. अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३१६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वाउकाइया उड्ढलोयितिरियलोए १, अधेलोयितिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१६] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे अल्प वायुकायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (इनसे) विशेषाधिक हैं, ३. तिर्यक्लोक में (इनसे) असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (इनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५. (इनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं, ६. और (इनसे भी) विशेषाधिक अधोलोक में हैं।

३१७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वाउकाइया अपञ्जत्तया उड्ढलोयितिरियलोए १, अधेलोयितिरियलोए विसेसाहिया २. तिरियलोए असंखेञ्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेञ्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेञ्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१७] क्षेत्र की अपेक्षा से १. वायुकायिक-अपर्याप्तक जीव सबसे कम ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (उनकी अपेक्षा) विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में अर्थात् तीनों लोकों का स्पर्श करने वाले जीव (उनकी अपेक्षा भी) असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) उर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३१८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वाउकाइया पञ्जत्तया उड्ढलोयितिरियलोए १, अधेलोयितिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेञ्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेञ्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेञ्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१८] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े वायुकायिक-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (इनकी अपेक्षा) विशेषाधिक हैं, ३. (इनकी अपेक्षा) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (इनकी अपेक्षा) त्रसंख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक में हैं और (इनकी अपेक्षा भी) ६. अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३१९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया उड्ढलोयितिरियलोए १, अधेलोयितिरियलोए विसेसाथिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाथिया ६। तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [२८७

[३१९] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे अल्प वनस्पतिकायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) विशेषाधिक अधोलोक-तिर्यक्लोक में हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५. ऊर्ध्वलोक में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं. ६. और अधोलोक में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

- ३२०. खेत्ताणुवाएणं सव्बत्थोवा वणस्सइकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयितिरियलोए १, अधोलोयितिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।
- [३२०] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ५. ऊर्ध्वलोक में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं तथा ६. अधोलोक में (इनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक हैं।
- ३२१. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया पञ्जत्तया उड्ढलोयितिरयलोए १, अधेलोयितिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेञ्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेञ्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेञ्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।
- [३२१] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (उनसे) विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) असंख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक में हैं, ६. (और उनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक अधोलोक में हैं।
- ३२२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तसकाइया तेलोक्के १, उड्ढलोयितिरियलोए संखेज्जगुणा २, अहेलोयितिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।
- [३२२] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े त्रसकायिक जीव त्रैलोक्य में हैं, २. ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में (इनकी अपेक्षा) संख्यातगुणे हैं, ३. (इनकी अपेक्षा) संख्यातगुणे अधोलोक-तिर्यक्लोक हैं, ४. ऊर्ध्वलोक में (इनसे) संख्यातगुणे हैं, ५. अधोलोक में (इनकी अपेक्षा) संख्यातगुणे हैं, ६. और (इनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।
- ३२३. खेत्ताणुवाएणं सव्बत्थोवा तसकाइया अपञ्जत्तया तेलोक्के१, उड्ढलोयितिरियलोए संखेञ्जगुणा २, अधेलोएितिरियलोए संखेञ्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेञ्जगुणा ४, अधेलोए संखेञ्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेञ्जगुणा ६।
- [३२३] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम त्रसकायिक अपर्याप्तक जीव त्रैलोक्य में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) संख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, ३. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (उनकी अपेक्षा)

संख्यातगुणे हैं, ४. ऊर्ध्वलोक में (उनसे) संख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

३२४. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तसकाइया पञ्जत्तया तेलोक्के १, उड्ढलोयितिरियलोए असंखेञ्जगुणा २, अधेलोयितिरियलोए संखेञ्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेञ्जगुणा ४. अधोलोए संखेञ्जगुणा ५, तिरियलोए संखेञ्जगुणा ६। दारं २४॥

[३२४] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प त्रसकायिक-पर्याप्तक जीव त्रैलोक्य में हैं, २. ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ३. अधोलोक तिर्यक्लोक में (उनकी अपेक्षा) संख्यातगुणे हैं, ४. ऊर्ध्वलोक में (उनसे) संख्यातगुणे हैं, ५. अधोलोक में (उनसे) संख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) ६. तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं। -चौवीसवाँ (क्षेत्र) द्वार ॥२४॥

विवेचन—चौवीसवाँ क्षेत्रद्वार : क्षेत्र की अपेक्षा से ऊर्ध्वलोकादिगत विविध जीवों का अल्प बहुत्व—प्रस्तुत ४९ सूत्रों (सू. २७६ से ३२४ तक) में क्षेत्र के अनुसार ऊर्ध्व, अध:, तिर्यक् तथा त्रैलोक्यादि विविध लोकों में चौवीसदण्डकवर्ती जीवों के अल्पबहुत्व की विस्तार से चर्चा की गई है।

'खेत्ताणुवाएणं' की व्याख्या—क्षेत्र के अनुपात अर्थात् अनुसार अथवा क्षेत्र की अपेक्षा से विचार करना क्षेत्रानुपात कहलाता है।

उध्वंलोक—तिर्यक्लोक आदि पदो की व्याख्या—जैनशास्त्रानुसार सम्पूर्ण लोक चतुर्दश रज्जूपरिमित है। उसके तीन विभाग किए जाते हैं—ऊर्ध्वलोक, तिर्यग्लोक (मध्यलोक) और अधोलोक। रुचकों के अनुसार इनके विभाग (सीमा) निश्चित होते हैं। जैसे—रुचक के नौ सौ योजन नीचे और नौ सौ योजन उपर तिर्यक्लोक है। तिर्यक्लोक के नीचे अधोलोक है और तिर्यक्लोक के उपर उध्वंलोक है। उध्वंलोक कुछ न्यून सात रज्जू प्रमाण है और अधोलोक कुछ अधिक सात रज्जू-प्रमाण है। इन दोनों के मध्य में १८०० योजन ऊँचा तिर्यग्लोक है। उध्वंलोक का निचला आकाश-प्रदेशप्रतर और तिर्यक्लोक का सबसे उपर का आकाश-प्रदेशप्रतर है, वही उध्वंलोक-तिर्यक्लोक कहलाता है; अर्थात् रुचक के समभूभाग से नौ सौ योजन जाने पर, ज्योतिश्चक्र के उपर तिर्यग्लोकसम्बन्धी एक-प्रदेशी आकाशप्रतर है, वह तिर्यग्लोक का प्रतर है। इसके उपर का एकप्रदेशी आकाशप्रतर उध्वंलोक-प्रतर कहलाता है। इन दोनों प्रतरों को उध्वंलोक-तिर्यग्लोक कहते हैं। अधोलोक के उपर का एकप्रदेशी आकाशप्रतर और तिर्यग्लोक के नीचे का एकप्रदेशी आकाशप्रतर अधोलोक-तिर्यक्लोक कहलाता है। त्रैलोक्य का अर्थ है-तीनों लोक; यानी तीनों लोकों को स्पर्श करने वाला। इस प्रकार क्षेत्र (समग्रलोक) के ६ विभाग समझने के लिए कर दिये हैं- (१) उध्वंलोक, (२) तिर्यग्लोक, (३) अधोलोक, (४) उध्वंलोक-तिर्यग्लोक-तिर्यक्लोक और (६) त्रैलोक्य। है

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक १४४

क्षेत्रानुसार लोक के उक्त छह विभागों में जीवों का अल्पबहुत्व—ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक में सबसे कम जीव हैं, क्योंकि यहाँ का प्रदेश (क्षेत्र) बहुत थोड़ा है। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक में जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि विग्रहगति करते हुए या वहीं पर स्थित जीव विशेषाधिक ही हैं। उनकी अपेक्षा तिर्यक्लोक में जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि ऊपर जिन दो क्षेत्रों का कथन किया गया है, उनकी अपेक्षा तिर्यक्लोक का विस्तार असंख्यातगुणा है। तिर्यग्लोक के जीवों की अपेक्षा तीनों लोकों का स्पर्श करने वाले जीव असंख्यातगुणे हैं। जो जीव विग्रहगति करते हुए तीनों लोकों को स्पर्श करते हैं, उनकी अपेक्षा यह कथन समझना चाहिए। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे जीव इसलिए हैं कि उपपातक्षेत्र की वहाँ अत्यन्त बहुलता है। उनकी अपेक्षा अधोलोकवर्ती जीव विशेषाधिक हैं; क्योंकि अधोलोक का विस्तार सात रज्जू से कुछ अधिक प्रमाण है।

क्षेत्रानुसार चार गतियों के जीवों का अल्पबहुत्व—(१) नरकगतीय अल्पबहुत्व—सबसे कम नरकगति के जीव त्रैलोक्य में अर्थात्-तीनों लोक को स्पर्श करने वाले हैं। यह शंका हो सकती है, कि नारक जीव तीनों लोकों को स्पर्श करने वाले कैसे हो सकते है, क्योंकि वे तो अधोलोक में ही स्थित हैं, तथा वे सबसे कम कैसे हैं ? इसका समाधान यह है कि मेरुपर्वत के शिखर पर अथवा अंजन या दिधमुखपर्वतादि के शिखर पर जो वापिकाएँ हैं, उनमें रहने वाले जो मत्स्य आदि नरक में उत्पन्न होने वाले हैं, वे मरणकाल में इलिकागित से अपने आत्मप्रदेशों को फैलाते हुए तीनों लोकों का स्पर्श करते हैं, और उस समय वे नारक ही कहलाते हैं, क्योंकि तत्काल ही उनकी उत्पत्ति नरक में होने वाली होती है, और वे नरकायु का वेदन करते हैं। ऐसे नारक थोड़े ही होते हैं, इसलिए उन्हें सबसे कम कहा है। त्रिलोकस्पर्शी नारकों की अपेक्षा पूर्वोक्त अधोलोकतिर्यग्लोक में असंख्यातगुणे नारक हैं; क्योंकि असंख्यात द्वीप-समुद्रों में रहने वाले बहुत-से पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च जब नरकों में उत्पन्न होते हैं, तब इन दो प्रतरों का स्पर्श करते हैं, इस कारण वे त्रैलोक्यस्पर्शी नारकों से असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि उनका क्षेत्र असंख्यातगुणा है। मेरु आदि क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात द्वीप-समुद्ररूप क्षेत्र असंख्यातगुणा है। (२) तिर्यंचगतिक अल्पबहुत्व---सबसे कम तिर्यञ्च ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, क्योंकि ये तिर्यग्लोक के उपरिलोकवर्ती और ऊर्ध्वलोक के अधोलोकवर्ती दो प्रतरों में हैं, उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक में—अधोलोक के ऊपरी और तिर्यग्लोक के निचले दो प्रतरों में—विशेषाधिक हैं। इनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक, त्रैलोक्य एवं ऊर्ध्वलोक में उत्तरोत्तर क्रमश: असंख्यातगुणे हैं। त्रैलोक्यसंस्पर्शी तिर्यंचों की अपेक्षा ऊर्ध्वलोक (ऊर्ध्वलोकसंज्ञक प्रतर में) असंख्यातगुणे तिर्यञ्च हैं। इनकी अपेक्षा अधोलोक में विशेषाधिक हैं। तिर्यंचिस्त्रयाँ—क्षेत्र की अपेक्षा से सबसे कम तिर्यंचिनी ऊर्ध्वलोक का स्पर्श करने

१. (क) वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक १४४

⁽ত্ত) 'सव्वत्थोवा जीवा नोपञ्जत्ता-नोअपञ्जता, अपञ्जत्ता अणंतगुणा, पञ्जत्ता संखेञ्जगुणा'

⁻प्रज्ञापना. मूलपाठ टिप्पण भा. १, पद ३

वाली हैं, क्योंकि मेरु आदि की वापी आदि में भी पंचेन्द्रिय स्त्रियाँ विद्यमान हैं। उनका क्षेत्र अल्प है। अतएव वे सबसे कम कही गई हैं, इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यकुलोक में (ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक के दो प्रतरों को स्पर्श करने वाली) तिर्यंचिस्त्रयाँ असंख्यातगुणी हैं। इसका कारण यह है कि सहस्रार देवलोक तक के देव, गर्भजपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च स्त्रियों में उत्पन्न हो सकते हैं और शेष काया के जीव भी उनमें उत्पन्न हो सकते हैं। जब सहस्रार देवलोक तक के देव या शेष काया के जीव ऊर्ध्वलोक से तिर्यक्लोक में पंचेन्द्रिय तिर्यंचस्त्री के रूप में उत्पन्न होने वाले होते हैं, तब वे तिर्यंचस्त्री की आयु का वेदन करते हैं। इसके अतिरिक्त तिर्यक्लोकवर्ती पंचेन्द्रिय-तिर्यंचस्त्रियाँ जब ऊर्ध्वलोक में देवरूप से या अन्य किसी रूप में उत्पन्न होने वाली होती हैं, तब वे मारणान्तिक समुद्धात करके अपने उत्पत्तिदेश तक अपने आत्मप्रदेशों को फैलाती हैं। उस समय वे पूर्वोक्त दोनों प्रतरों को स्पर्श करती हैं। उस समय वे तिर्यंचयोनिक स्त्रियाँ कहलाती हैं, अतएव असंख्यातगुणी कही गई हैं। इनकी अपेक्षा त्रैलोक्य में—त्रिलोक का स्पर्श करने वाली स्त्रियाँ तिर्यंचस्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं। जब अधोलोक से भवनवासी, वाणव्यन्तर, नैरियक तथा अन्यकायों के जीव ऊर्ध्वलोक में पंचेन्द्रियितर्यंचस्त्री के रूप में उत्पन्न होते हैं, अथवा ऊर्ध्वलोक से कोई देवादि अधोलोक में तिर्यंचस्त्री के रूप में उत्पन्न होते हैं और वे समृद्घात करके अपने आत्मप्रदेशों को दण्डरूप में फैलाते हुए तीनों लोकों का स्पर्श करते हैं। ऐसे जीव बहुत हैं, अतएव त्रैलोक्य में तिर्यंचस्त्री को संख्यातगृणी कहना सूसंगत है। इनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यकुलोक का स्पर्श करने वाली तिर्यग्योनिकस्त्रियाँ संख्यातगुणी अधिक हैं। बहुत-से नैरियक आदि समुद्धात किये बिना ही तिर्यकलोक में तिर्यञ्चपंचेन्द्रियस्त्री के रूप में उत्पन्न होते हैं; तथा तिर्यग्लोकवर्ती जीव अधोलौकिक ग्रामों में तिर्यंचस्त्री के रूप में उत्पन्न होते हैं, उस समय वे पूर्वोक्त दो प्रतरों का स्पर्श करते हैं और तिर्यंचस्त्री के आयुष्य का वेदन करते हैं, अत: उन्हें संख्यातगुणी कहा है। इनकी अपेक्षा भी अधोलो्कू में अर्थात्-अधोलोक के प्रतर में विद्यमान तिर्यञ्वस्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं। अधोलौकिकग्राम और सभी समुद्र एक हजार योवन अवगाह वाले हैं। अत: नौ सौ योजन से नीचे मत्सी आदि तिर्यञ्चयोनिकस्त्रियों के स्वस्थान होने से वे प्रचुर संख्या में हैं। इस कारण उन्हें संख्यातगुणी कहा है। उनका क्षेत्र भी संख्यातगुणा अधिक है। अधोलोक की अपेक्षा तिर्यक्लोक में तिर्यञ्चिस्त्रयाँ संख्यातगुणी अधिक हैं। (३) मनुष्यगतिविषयक अल्पबहुत्व-क्षेत्रापेक्षया विचार करने पर त्रैलोक्य में (त्रिलोकस्पर्शी) मनुष्य सबसे कम हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोक से अधोलौकिक ग्रामों में उत्पन्न होने वाले और मारणान्तिक समुद्घात करने वालों में से कोई-कोई समुद्घातवश बाहर निकाले हुए स्वात्मप्रदेशों से तीनों लोकों का स्पर्श करते हैं। कोई-कोई वैक्रिय या आहारक समुद्घात को प्राप्त होकर विशेष प्रयत्न के द्वारा बहुत दूर तक ऊपर और नीचे अपने आत्मप्रदेशों को फैलाते हैं, केवली-समुद्घात को प्राप्त थोड़े से मानव तीनों लोकों को स्पर्श करते हैं। इस कारण सबसे कम मनुष्य त्रिलोक में हैं। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक संज्ञक दो प्रतरों को स्पर्श करने वाले मनुष्य असंख्यातगुणे हैं।

वैमानिक देव अथवा अन्य काय वाले जीव यथासम्भव ऊर्ध्वलोक से तिर्यक्लोक में मनुष्यरूप में उत्पन्न होते हैं, तब वे पूर्वोक्त दो प्रतरों का स्पर्श करते हैं। इसके अतिरिक्त विद्याधर आदि भी जब मेरु आदि पर गमन करते हैं, तब उनके शुक्र, शोणित आदि पुद्गलों में सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति होती है और वे विद्याधर रुधिरादिपुद्गलों के साथ सिम्मिश्र होकर जब लौटते हैं, तब पूर्वोक्त दो प्रतरों का स्पर्श करते हैं, वे संख्या में अधिक होते हैं, इस कारण असंख्यातगुणे हैं। इनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यक्लोक नामक दो प्रतरों को स्पर्श करने वाले मनुष्य असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि अधोलौकिक ग्रामों में स्वभावत: ही बहुत-से मनुष्यों का सद्भाव है। अत: जो तिर्यक्लोक से मनुष्यों या अन्य कायों से आकर अधोलौकिक ग्रामों में गर्भज मनुष्य या सम्मूर्च्छिम मनुष्य के रूप में उत्पन्न होने वाले हैं, अथवा अधोलौकिक ग्रामों से या अधोलोकवर्ती किसी अन्य स्थान से तिर्यक्लोक में गर्भज या सम्मूर्च्छिम मनुष्य के रूप में उत्पन्न होते हुए मनुष्य पूर्वोक्त दो प्रतरों का स्पर्श करते हैं। अतएव इन्हें संख्यातगुणा कहा है। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में मनुष्य संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि सौमनस आदि वनों में क्रीउ़ा आदि करने के लिए प्रचुरतर विद्याधरों एवं चारणमुनियों का गमनागमन होता है, और उनके यथायोग रुधिरादिपुद्गलों के योग से सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति होती है। इनकी अपेक्षा भी अधोलोक में संख्यातगुणे मनुष्य हैं; क्योंकि अधोलोकं स्वस्थान होने से वहाँ अधिकता होनी स्वाभाविक है। इनकी अपेक्षा भी तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे मनुष्य अधिक हैं, क्योंकि तिर्यग्लोक का क्षेत्र संख्यातगुणा अधिक है, और मनुष्यों का वह स्वस्थान है, इस कारण अधिकता सम्भव है।

मनुष्यस्त्रियों का क्षेत्र की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे कम मनुष्यस्त्रियाँ तीनों लोक को स्पर्श करने वाली हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में उत्पन्न होने वाली मारणान्तिक-समुद्धातवश जब वे अपने आत्मप्रदेशों को बाहर निकालती हैं, अथवा जब वे वैक्रियसमुद्धात या केवलीसमुद्धात करती हैं, तब तीनों लोकों का स्पर्श करती हैं और ऐसी मनुष्यस्त्रियाँ अत्यन्त कम होती हैं, इस कारण सबसे थोड़ी मनुष्यस्त्रियाँ त्रैलोक्य में बताई गई हैं। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोकसंज्ञक दो प्रतरों का स्पर्श करने वाली स्त्रियाँ संख्यातगुणी होती हैं। वैमानिकदेव अथवा शेष कायवाले कोई जीव जब ऊर्ध्वलोक से तिर्यग्लोक में मनुष्यस्त्री के रूप में उत्पन्न होने वाले होते हैं, तथा तिर्यग्लोकगत मनुष्यस्त्रियाँ जब ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होते समय मारणान्तिक समुद्धात करती हैं, तब दूर तक ऊपर अपने आत्मप्रदेशों को फैलाती हैं, फिर भी जब तक जो कालगत नहीं हुई हैं, वे पूर्वोक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करती हैं, और वे दोनों प्रकार की स्त्रियाँ बहुत अधिक होती हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोकसंज्ञक पूर्वोक्त प्रतरद्वय का स्पर्श करने वाली मनुष्यस्त्रियाँ संख्यातगुणी होती हैं, क्योंकि तिर्यग्लोक से मनुष्यस्त्रीपर्याय से या अन्य पर्याय से अधोलौकिक ग्रामों में अथवा अधोलौकिक ग्राम से तिर्यग्लोक में मनुष्यस्त्री के रूप में उत्पन्न होने वाली होती हैं, उनमें से कई अधोलौकिक ग्रामों में अवस्थान करके भी उक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करती हैं। ऐसी स्त्रियां पूर्वोक्तप्रतरद्वय की स्त्रियों से बहुत अधिक होती हैं। इनकी

अपेक्षा भी वे ऊर्ध्वलोक में (ऊर्ध्वलोक नामक प्रतरगत) मनुष्यस्त्रियाँ संख्यातगुणी अधिक हैं; क्योंकि सौमनस आदि वनों में क्रीड़ार्थ बहुत-सी विद्याधरियों का गमन सम्भव है। अधोलोक में उनकी अपेक्षा भी संख्यातगुणी हैं, क्योंकि वहाँ स्वस्थान होने में प्रचुरतर होती हैं। उनकी अपेक्षा भी तिर्यग्लोक में वे संख्यातगुणी हैं, क्योंकि वहाँ क्षेत्र भी संख्यातगुणा अधिक है, और स्वस्थान भी है। (४) देवगित के जीवों का अल्पबहुत्व —क्षेत्र की अपेक्षा से सबसे कम देव ऊर्ध्वलोक में हैं, क्योंकि वहाँ वैमानिक जाति के देव ही रहते हैं, और वे थोड़े हैं, और जो भवनपति आदि तीर्थंकरों के जन्मोत्सवादि पर मन्दरपर्वतादि पर जाते हैं, वे भी स्वल्प ही होते हैं, इस कारण सबसे थोड़े देव ऊर्ध्वलोक में हैं। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोकसंज्ञक दो प्रतरों में संख्यातगुणे देव हैं; ये दोनों प्रतर ज्योतिष्कदेवों के निकटवर्ती हैं, अतएव उनके स्वस्थान हैं। इसके अतिरिक्त भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्येतिष्कदेव सुमेरु आदि पर गमन करते हैं; अथवा सौधर्म आदि कल्पों के देव अपने स्थान में आते-जाते हैं; या सौधर्म आदि देवलोकों के देवरूप में उत्पन्न होने वाले देव, जो देवायु का वेदन कर रहे हैं, वे जब अपने उत्पत्तिदेश में जाते हैं, तब पूर्वीक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श उन्हें होता है। ऐसे देव पूर्वीक्त देवों से असंख्यतगुणे अधिक होते हैं। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्य में (लोकत्रयस्पर्शी) देव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि भवनपित, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव तथारूप विशेष प्रयत्न से जब वैक्रियसमुद्धात करते हैं. तब तीनों लोकों का स्पर्श करते हैं। वे पूर्वोक्त प्रतरद्वय-संस्पर्शी देवों से संख्यातगुणे अधिक होते हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक प्रतरद्वय का स्पर्श करने वाले देव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि ये दोनों प्रतर भवनपति और वाणव्यन्तर देवों के निकटवर्ती होने से स्वस्थान हैं, तथा बहुत-से स्वभवनस्थित भवनपतिदेव तिर्यग्लोक में गमनागमन करते हैं, उद्वर्तन करते हैं; तथा वैक्रिय समुद्घात करते हैं; अथवा तिर्यग्लोकवर्ती पंचेन्द्रियतिर्यञ्च या मनुष्य भवनपतिरूप में उत्पन्न होने वाले होते हैं, और भवनपति की आयु का वेदन करते हैं, तब उनके पूर्वीक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श होता हैं। ऐसे जीव बहुत होने के कारण संख्यातगुणे कहे गए हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक में देव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि अधोलोक भवनपतिदेवों का स्वस्थान है। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में रहने वाले देव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि तिर्यग्लोक ज्योतिष्क और वाणव्यन्तरदेवों का स्वस्थान है। देवियों का अल्पबहुत्व —देवियों का अल्पबहुत्व भी सामान्यतया देवसूत्र की तरह समझ लेना चीहिए।

भवनपति आदि देव-देवियों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व — (१) भवनपतिदेव सबसे कम ऊर्ध्वलोक में हैं; क्योंकि, कोई-कोई भवनपतिदेव अपने वैभव के संगतिकदेव की निश्रा से सौधर्मादि देवलोकों में जाते हैं। कई-कई मेरुपर्वत पर तीर्थंकरजन्ममहोत्सवादि के निमित्त से तथा अंजन, दिधमुख आदि पर्वतों पर अष्टाह्रिक महोत्सव के निमित्त से एवं कई मन्दरादि पर क्रीड़ा के निमित्त जाते हैं। परन्तु ये सब स्वल्प होते हैं; इसलिए ऊर्ध्वलोक में भवनपतिदेव सबसे कम हैं।

१. प्रज्ञापनाासूत्र. मलय. वृत्ति, पत्रांक १४६ से १४८ तक

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [२९३

उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोकतिर्यग्लोक नामक दो प्रतरों में असंख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि तिर्यग्लोकस्थभवनपतिदेव वैक्रियसमुद्घात करते हैं, तब वे ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक का स्पर्श करते हैं, तथा तिर्यग्लोकस्थ जो भवनपति मारणान्तिकसमृद्घात करके ऊर्ध्वलोक में सौधर्मादि देवलोकों में बादरपर्याप्त-पृथ्वीकायिक, बादरपर्याप्त-अप्कायिक एवं बादरपर्याप्त-वनस्पतिकायिक रूप से अथवा शुभमणि-प्रकारों में उत्पन्न होने वाले होते हैं, तब वे अपने भव की ही आयु का वेदन करते हैं, पारभविक पृथ्वीकायिकादि की आयु का नहीं: तब वे भवनपति ही कहलाते है उस समय वे ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक का स्पर्श करते हैं। इस प्रकार के वे भवनपतिदेव ऊर्ध्वलोक में गमनागमन करने से और दोनों प्रतरों के समीपवर्ती उनका क्रीडास्थान होने से वे पूर्वोक्त दोनों प्रतरों को स्पर्श करते हैं, इसलिए ये पूर्वोक्त देवों से असंख्यातगुणे हैं। इनकी अपेक्षा त्रिलोकस्पर्शी भवनपति देव संख्यातगुणे होते हैं। ऊर्ध्वलोक में रहे हुए जो तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय भवनपति रूप से उत्पन्न होने वाले होते हैं, वे तथा स्वस्थान में तथाविध प्रयत्न विशेष से वैक्रिय समुद्धात या मारणान्तिक समुद्धात करते हैं तब वे त्रैलोक्यस्पर्श करते है। वे संख्यातगुणे इसलिए हैं कि अन्य स्थान में समुद्रुचात करने वालों की अपेक्षा स्वस्थान में समुद्रघात करने वाले संख्यातगुणे होते हैं। अधोलोक-तिर्यग्लोक संज्ञक प्रतरद्वय में इनकी अपेक्षा भी वे असंख्यातगुणे होते हैं। तिर्यग्लोक इनके स्वस्थान से निकटवर्ती होने से गमनागमन होने के कारण तथा स्वस्थान में स्थित रहते हुए भी क्रोधादि कषायसमुद्घातवश गमन होने से बहुत-से भवनपतिदेव पूर्वोक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में वे असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि तीर्थंकर समवसरणादि में वन्दननिमित्त, रमणीय द्वीपों में क्रीड़ा के निमित्त वे तिर्थग्लोक में आते हैं, और आते हैं तो चिरकाल तक भी रहते हैं। उनकी अपेक्षा भी अधोलोक में असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि अधोलोक तो भवनवासियों का स्वस्थान है। भवनवासीदेवों की तरह ही भवनवासीदेवियों का अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए। व्यन्तरदेव-देवियों का पृथक-पृथक अल्पबहुत्व-क्षेत्रानुसार चिन्तन करने पर व्यन्तर देव सबसे कम ऊर्ध्वलोक में हैं, पाण्डकवन आदि में कुछ ही व्यन्तरदेव पाये जाते हैं। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यकुलोक रूप दो प्रतरों में असंख्यातगुणे हैं कुछ व्यन्तरों के स्वस्थान के अन्तर्गत होने से तथा कई व्यन्तरों के स्वस्थान के निकट होने से तथा बहत-से व्यन्तरों के मेरु आदि पर गमनागमन होने से उनके पूर्वोक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श होता है। इन सब की सामूहिक रूप से विचारणा करने पर वे अत्यधिक हो जाते हैं। उनकी अपेक्षा त्रिलोकवर्ती व्यन्तर संख्यातगुणे हैं, क्योंकि तथाविध प्रयत्नविशेष से वैक्रिय समुद्धात करने पर वे आत्मप्रदेशों से तीनों लोकों को स्पर्श करते हैं, और ऐसे व्यन्तरदेव पूर्वोक्त देवों से अत्यधिक हैं, इसलिए संख्यातगुणे हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक तियग्लोक-संज्ञक प्रतरद्वय में असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि ये दोनों प्रतर बहुत-से व्यन्तरों के स्वस्थान हैं, इसलिए इनका स्पर्श करने वाले व्यन्तर बहुत अधिक होने से असंख्यातगुणे हैं। इनकी अपेक्षा अ<mark>धोलोक में</mark> वे संख्यातगुणे हैं, क्योंकि अधोलौकिक ग्रामों में उनका स्वस्थान है, तथा अधोलोक में बहुत से व्यन्तरों का क्रीडानिमित्त

गमन भी होता है। इनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में वे संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि तिर्यग्लोक तो उनका स्वस्थान है ही। इसी प्रकार व्यन्तरदेवियों का अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए। ज्योतिष्कदेव- देवियों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व —क्षेत्र की अपेक्षा विचार करने पर सबसे कम ज्योतिष्क देव ऊर्ध्वलोक में हैं, क्योंकि कुछ ही ज्योतिष्क देवों का तीर्थंकरजन्ममहोत्सव निमित्त, या अंजन-दिधमुखादि पर अष्टाह्निका-निमित्त अथवा कतिपय देवों का मन्दराचलादि पर क्रीडानिमित्त गमन होता है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक प्रतरद्वय में असंख्यातगुणे हैं, उन दोनों प्रतरों को कोई ज्योतिष्कदेव स्वस्थान में स्थित रहे हुए स्पर्श करते हैं, कोई वैक्रियसमुद्घात करके आत्मप्रदेशों से उनका स्पर्श करते हैं, कोई ऊर्ध्वलोक में जाते-आते उनका स्पर्श करते हैं। इस कारण दोनों प्रतरों का स्पर्श करने वाले ऊर्ध्वलोकगत देवों से असंख्यातगुणे हैं। उनसे त्रैलौक्यवर्ती ज्योतिष्क देव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि जो ज्योतिष्कदेव तथाविध तीव्र प्रयत्नवश वैक्रियसमुद्घात करते हैं, वे तीनों लोकों को अपने आत्मप्रदेशों से स्पर्श करते हैं; वे स्वभावत: अत्यधिक हैं, इस कारण पूर्वोक्त देव संख्यातगुणे हैं। उनसे अधोलोक-तिर्यग्लोक प्रतरद्वय-संस्पर्शी ज्योतिष्कदेव असंख्यातगुणे हैं; क्योंकि बहुत-से देव अधोलौकिक ग्रामों में समवसरणादिनिमित्त या अधोलोक में क्रीड़ानिमित्त जाते-आते हैं, तथा बहुत-से देव अधोलोक से ज्योतिष्कदेवों में उत्पन्न होने वाले होते हैं, तब वे पूर्वीक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं। इसलिए पूर्वीक्त देवों से ये देव असंख्यातगुणे हो जाते हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक में संख्यातगुणे हैं; क्योंकि बहुत-से देव अधोलोक में क्रीड़ा के लिए या अधोलौकिक ग्रामों में समवसरणादि के लिए चिरकाल तक रहते हैं। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि तिर्यग्लोक तो उनका स्वस्थान है। इसी प्रकार ज्योतिष्कदेवियों के अल्पबहत्व का भी विचार कर लेना चाहिए। वैमानिक देव-देवियों का पृथक्-पृथ्क् अल्पबहुत्व श —क्षेत्रानुसार विचार करने पर सबसे अल्प वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक संज्ञक प्रतरद्वय में हैं, क्योंकि अधोलोक-तिर्यग्लोकवर्ती जो जीव वैमानिकों में उत्पन्न होते हैं, तथा जो वैमानिक तिर्यग्लोक में गमनागमन करते हैं. एवं जो उक्त दोनों प्रतरों में स्थित क्रीडास्थान में आश्रय लेकर रहते हैं, और जो तिर्यग्लोक में रहे हए ही वैक्रिय समुद्घात या मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, वे तथाविध प्रयत्नविशेष से अपने आत्मप्रदेशों को ऊर्ध्विदिशा में निकालते हैं, तब पूर्वोक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं, ऐसे वैमानिक देव बहुत ही अल्प होते हैं, इसलिए सबसे कम वैमानिक देव पूर्वोक्तप्रतरद्वय में हैं। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्यवर्ती वैमानिक पूर्वीक्त युक्ति के अनुसार संख्यातगुणे अधिक हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक तिर्यग्लोक-संज्ञक दो प्रतरों में सख्यातगुणे हैं, क्योंकि उनका अधोलौकिक ग्रामों में तीर्थकर समवसरणादि में गमनागमन होने से तथा उक्त दो प्रतरों में होने वाले समवसरणादि में अवस्थान के कारण बहुत-से देवों के उक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श होता है, उनकी अपेक्षा अधोलोक तथा तिर्यग्लोक में उत्तरोत्तर क्रमश: संख्यातगुणे हैं, पूर्वीक्त युक्ति के अनुसार बहुत से देवों का उभयत्र समवसरणादि तथा क्रीडा-स्थानों में अवस्थान होता है।

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १४९ से १५१

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [२९५

उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोक तो उनका स्वस्थान ही है, वहाँ तो अत्यधिक होना स्वाभाविक है।

वैमानिक देवियों का अल्पबहुत्व भी देवसूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।

क्षेत्रानुसार एकेन्द्रियादि जीवों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व— (१) एकेन्द्रिय जीवों का अल्पबहृत्व-क्षेत्रानुसार चिन्तन करने पर एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय अपर्याप्तक एवं एकेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव सबसे कम ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोकसंज्ञक प्रतरद्वय में हैं। कई एकेन्द्रिय जीव वहीं स्थित रहते हैं. कई ऊध्वलोक से तिर्यग्लोक में तथा तिर्यग्लोक से ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होने वाले जब मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं, तब वे उक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं, वे बहुत अल्प होते हैं, इसलिए सबसे अल्प उक्त प्रतरद्वय में बताये गए हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक में विशेषाधिक हैं, क्योंकि अधोलोक से तिर्यग्लोक में या तिर्यग्लोक से अधोलोक में इलिकागित से उत्पन्न होने वाले एकेन्द्रिय उक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं। वहीं रहने वाले एकेन्द्रिय भी ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में अधिक होते हैं, उनसे भी अधिक अधोलोक से तिर्यग्लोक में उत्पन्न होने वाले जीव पाए जाते हैं। इस कारण उक्त दोनों प्रतरों में विशेषाधिक हैं। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में एकेन्द्रिय असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि उक्त प्रतरद्वय के क्षेत्र से तिर्यग्लोक का क्षेत्र असंख्यातगुणा अधिक है। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्यस्पर्शी असंख्यातगुणे हैं। क्योंकि बहत-से एकेन्द्रिय ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में और अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होते हैं, और उनमें से बहुत-से मारणान्तिक-समुद्धातवश अपने आत्मप्रदेश-दण्डों को फैला कर तीनों लोकों को स्पर्श करते हैं, इस कारण वे असंख्यातगुणे हो जाते हैं। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में वे असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि उपपातक्षेत्र अत्यधिक है। उनसे अधोलोक में विशेषाधिक हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोकगत क्षेत्र से अधोलोकगत क्षेत्र विशेषाधिक है। एकेन्द्रिय अपर्याप्तक तथा पर्याप्तक के विषय में भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

(२) द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक पर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व — क्षेत्रानुसार विचार करने पर सबसे कम द्वीन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोक में एकदेश — मेरुशिखर की वापी आदि में ही शंख आदि द्वीन्द्रिय पाये जाते हैं, उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक निर्यंग्लोक संज्ञक प्रतरद्वय में असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि जो ऊर्ध्वलोक से तिर्यंग्लोक में या तिर्यंग्लोक से ऊर्ध्वलोक में द्वीन्द्रियरूप से उत्पन्न होने वाले होते हैं, द्वीन्द्रियायु का अनुभव कर रहे होते हैं, तथा इलिकागित से उत्पन्न होते हैं, अथवा जो द्वीन्द्रिय तिर्यग्लोक से ऊर्ध्वलोक में, या ऊर्ध्वलोक से तिर्यंग्लोक में द्वीन्द्रियरूप से या अन्य किसी रूप से उत्पन्न होने वाले हों, जिन्होंने पहले मारणान्तिकसमुद्धात किया हो, अतएव जो द्वीन्द्रियायु का वेदन कर रहे हों, समुद्धातवश अपने आत्मप्रदेशों को जिन्होंने दूर तक फैलाया हो, और जो प्रतरद्वय के अधिकृतक्षेत्र में ही रह रहे हैं, ऐसे जीब उक्त प्रतरद्वय का स्पर्श करते हैं, और वे अत्यधिक होते हैं, इसलिए पूर्वोक्त से असंख्यातगुणे अधिक कहे गए हैं। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्यस्पर्शी

२९६] [प्रज्ञापना सूत्र

द्वीन्द्रिय असंख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि द्वीन्द्रियों के उत्पत्तिस्थान अधोलोक में बहुत हैं, तिर्यग्लोक में और भी अधिक हैं। उनमें से अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में द्वीन्द्रिय रूप से या अन्यरूप से उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रिय पहले मारणान्तिक समुद्घात किये होते हैं वे समुद्घातवश अपने उत्पत्तिदेश तक अपने आत्मप्रदेशों को फैला देते हैं, तथा द्वीन्द्रियायु का वेदन करते हैं तथा जो द्वीन्द्रिय या शेष काय वाले ऊर्ध्वलोक में द्वीन्द्रियरूप से उत्पन्न होते हुए द्वीन्द्रियायु का अनुभव करते हैं, वै त्रैलाक्यस्पर्शी और अत्यधिक होते हैं, इसलिए पूर्वोक्त से असंख्यातगुणे हैं। उनकी अपेक्षा पूर्वोक्तयुक्ति के अनुसार अधोलोक-तिर्यग्लोक-प्रतरद्वय में असंख्यातगुणे हैं। उनसे उत्तरोत्तर-क्रमशः अधोलोक एवं तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे हैं। जैसे औघिक द्वीन्द्रिय-बल्पबहुत्वसूत्र कहा गया है, वैसे ही त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय का तथा इन सबके अपर्याप्तकों एवं पर्याप्तकों के अल्पबहुत्व का विचार कर लेना चाहिए।

औधिक पंचेन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व — क्षेत्रानुसार चिन्तन करने पर सबसे कम पंचेन्द्रिय त्रैलोक्यसंस्पर्शी हैं, क्योंकि वे ही पंचेन्द्रियजीव तीनों लोकों का स्पर्श करते हैं, जो ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में या अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न हो रहे हों, पंचेन्द्रियायु का वेदन कर रहे हों और इलिकागति से उत्पन्न होते हों. अथवा ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में या अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में पंचेन्द्रियरूप से या अन्यरूप से उत्पन्न होते हुए जिन्होंने मारणान्तिक समुद्धात किया हो, उस समुद्धात के समय अपने उत्पत्तिदेशपर्यन्त जिन्होंने आत्मप्रदेशों को फैलाया हो और जो पंचेन्द्रियायु का अनुभव करते हों, वे बहुत अल्प होते हैं, इसलिए उन्हें सब से थोड़े कहा गया है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक-प्रतरद्वय में असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि उपपात या समुद्धात के द्वारा इन दो प्रतरों का स्पर्श करने वाले अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे हैं, क्योंकि अत्यधिक उपपात या समुद्धात द्वारा इन दोनों प्रतरों का अत्यधिक स्पर्श होता है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वहाँ वैमानिकों का अवस्थान है। उनकी अपेक्षा अधोलोक में संख्यातगुणे अधिक इसलिए हैं कि वहाँ नैरियकों का अवस्थान है। उनसे तिर्यालोक में संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वहाँ सम्मुर्च्छिम, जलचर, खेचर आदि का, व्यन्तर व ज्योतिष्क देवों का तथा सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का बाहुल्य है। इसी तरह **पंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक जीवों** के अल्पबहुत्व का विचार कर लेना चाहिए। पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव सबसे कम हैं---ऊर्ध्वलोक में, क्योंकि वहाँ प्राय: वैमानिक देवों का ही निवास है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक-रूप प्रतरद्वय में असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि उक्त प्रतरद्वय के निकटवर्ती ज्योतिष्कदेवों का तद्गतक्षेत्राश्रित व्यन्तर देवों का तथा तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों का, एव वैमानिक, व्यन्तर, ज्योतिष्कों, तथा विद्याधर—चारणमुनियों तथा तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय जीवों का ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक में गमनागमन होता है, तब इन दोनों प्रतरों का स्पर्श होता है। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्यस्पर्शी संख्यातगुणे हैं, क्योंकि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक तथा अधोलोकस्थ विद्याधर जब तथाविध प्रयत्नविशेष से वैक्रियसमुद्घात करते हैं और अपने आत्मप्रदेशों

को ऊर्ध्वलोक में फैलाते हैं, तब वे तीनों लोकों का स्पर्श करते हैं। इस कारण वे संख्यातगुणे कहे गए हैं। उनसे अधोलोक-तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे हैं। बहुत-से व्यन्तरदेव, स्वस्थान निकटवर्ती होने से भवनपित, तिर्यग्लोक या ऊर्ध्वलोक में व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव अधोलौकिक ग्रामों में समवसरणादि में या, अधोलोक में क्रीड़ार्थ गमनागमन करते हैं, तथा समुद्रों में किन्हीं-किन्हीं पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों का स्वस्थान निकट होने से तथा कितपय तिर्यञ्चपंचेन्द्रियजीवों के वहीं रहने के कारण उक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श होता हैं। अतएव ये संख्यातगुणे कहे गए हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, क्योंकि वहाँ नैरियकों तथा भवनपितयों का अवस्थान है। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वहाँ तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों, मनुष्यों, ज्योतिष्कों और व्यन्तरों का निवास हैं।

पृथ्वीकायिक आदि पांच स्थावरों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व — पृथ्वीकायिक आदि के औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक मिल कर १५ सूत्र हैं। इन १५ ही सूत्रों में उल्लिखित अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पूर्वीक्त एकेन्द्रिय सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

त्रसकायिक जीवों का अल्पबहुत्व — त्रसकायिक औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक जीवों के अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पंचेन्द्रियसूत्र की तरह समझ लेना चाहिए। र

पच्चीसवाँ बन्धद्वार : आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक आदि जीवों का अल्पबहुत्व

३२५. एतेसि णं भंते! जीवाणं आउयस्स कम्मस्स बंधगाणं अबंधगाणं पञ्जताणं अपञ्जताणं सुत्ताणं जागराणं समोहयाणं असमोहयाणं सातावेदगाणं असातावेदगाणं इंदियउवउत्ताणं नोइंदियउवउत्ताणं सागारोवउत्ताणं अणागारोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीव आउयस्स कम्मस्स बंधगा १, अपञ्जत्तया संखेञ्जगुणा २, सृत्ता संखेञ्जगुणा ३, समोहतो संखेञ्जगुणा ४, सातावेदगा संखेञ्जगुणा ५, इंदिओवउत्ता संखेञ्जगुणा ६, अणागारोवउत्ता संखेञ्जगुणा ७, सागारोवउत्ता संखेञ्जगुणा ८, नोइंदियउवउत्ता विसेसाहिया १, असातावेदगा विसेसाहिया १०, असमोहया विसेसाहिया ११, जागरा विसेसाहिया १२, पञ्जत्तया विसेसाहिया १३, आउयस्स कम्मस्स अबंधगा विसेसाहिया १४। दारं २५॥

[३२५ प्र.] भगवन्! इन आयुष्यकर्म के बन्धकों और अबन्धकों, पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों, सुप्त और जागृत जीवों, समुद्घात करने वालों और न करने वालों, सातावेदकों और असातावेदकों, इन्द्रियोपयुक्तों और नो-इन्द्रियोपयुक्तों, साकारोपयोग में उपयुक्तों और अनाकारोपयोग में उपयुक्त जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

१. प्रज्ञापनासूत्र. मलय. वृत्ति, पत्रांक १५१ से १५४ तक

२. वही, मलय., वृत्ति, पत्रांक १५५

[३२५ उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े आयुष्यकर्म के बन्धक जीव हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अपर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) सुप्तजीव संख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) समुद्घात वाले संख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) सातावेदक संख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) इन्द्रियोपयुक्त संख्यातगुणे हैं, ७. (उनकी अपेक्षा) अनाकारोपयुक्त संख्यातगुणे हैं, ९. (उनकी अपेक्षा) आनाकारोपयुक्त संख्यातगुणे हैं, ९. (उनकी अपेक्षा) नो-इन्द्रियोपयुक्त जीव विशेषाधिक हैं, १०. (उनकी अपेक्षा)असातावेदक विशेषाधिक हैं, ११. (उनकी अपेक्षा) समुद्घात न करते हुए जीव विशेषाधिक हैं, १२. (उनकी अपेक्षा) जागृत विशेषाधिक हैं, १३. (उनसे) पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, १४. (और उनकी अपेक्षा भी) आयुष्यकर्म के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विवेचन—पच्चीसवाँ बन्धद्वर — बन्धद्वार के माध्यम से आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक आदि जीवों का अल्पबहुत्व — प्रस्तुत सूत्र (३२५) में आयुष्कर्म के बन्धक-अबन्धक, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, सुप्त-जागृत, समुद्घात-कर्ता, अकर्ता, सातावेदक-असातावेदक, इन्द्रियोपयुक्त-नो-इन्द्रियोपयुक्त एवं साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त; सामूहिक रूप से इन सात युगलों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण - आयुष्यकर्म के बन्धक जीव सबसे अल्प इसलिए हैं कि आयुष्यकर्म के बन्ध का काल प्रतिनियत और स्वल्प है। अनुभूयमान भव के आयुष्य का तीसरा भाग अवशेष रहने पर अथवा उस तीसरे भाग में से तीसरा भाग आदि अवशेष रहने पर ही जीव परभव का आयुष्य बांधते हैं। अत: त्रिभागों में से दो भाग अबन्धकाल और एक भाग बन्धकाल है और वह बन्धकाल भी अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होता है। आयुष्यकर्म-बन्धकों की अपेक्षा अपर्याप्तक संख्यातगुणे कहे गए हैं। अपर्याप्तकों से सुप्त जीव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि सुप्तजीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक, दोनों में पाये जाते हैं, और अपर्याप्तक की अपेक्षा पर्याप्तक संख्यातगुणे अधिक हैं। सुप्त जीवों की अपेक्षा समवहत (समुद्घात वाले) जीव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि बहुत-से पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीव सदा मारणान्तिक समुद्रघात करते हुए पाए जाते हैं। समवहत जीवों से सातावेदक जीव संख्यातगुणे हैं: क्योंकि आयुष्यबन्धक. अपर्याप्तक और सुप्त जीवों में भी साता का वेदन करने वाले उपलब्ध होते हैं। सातावेदकों की अपेक्षा इन्द्रियोपयुक्त जीव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि इन्द्रियों का उपयोग लगाने वाले सातावेदकों के अतिरिक्त असातावेदकों में भी पाए जाते हैं। उनकी अपेक्षा अनाकारोपयोगयुक्त जीव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि इन्द्रियोपयोग वालों और नो-इन्द्रियोपयोग वालों; दोनों में अनाकारोपयोग पाया जाता है। अनाकारोपयुक्तों की अपेक्षा साकारोपयुक्त जीव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि अनाकारोपयोग की अपेक्षा साकारोपयोग का काल अधिक है। साकारोपयुक्त जीवों की अपेक्षा नो-इन्द्रियोपयोग-उपयुक्त जीव विशेषाधिक हैं; क्योंकि इनमें नो-इन्द्रियोपयोग और अनाकारोपयोग वाले दोनों सम्मिलित हैं। इनकी अपेक्षा असातावादेक विशेषाधिक हैं, क्योंकि इन्द्रियोपयोग युक्त जीव भी असातावेदक होते हैं। असातावेदकों से असमवहत

(समुद्घात न किए हुए) विशेषाधिक होते हैं; क्योंकि सातावेदक भी असमवहत होते हैं, इस कारण समवहतों की विशेषाधिकता है। इनकी अपेक्षा जागृत विशेषाधिक हैं, क्योंकि कितपय समहवत जीव भी जागृत होते हैं। जागृतों की अपेक्षा पर्याप्तक विशेषाधिक हैं; क्योंकि कितपय सुप्तजीव भी पर्याप्तक हैं। बहुत-से जीव ऐसे भी हैं, जो जागृत न होते हुए — अर्थात् सुप्त होते हुए भी पर्याप्तक हैं। जो जागृत हैं, वे तो पर्याप्त ही होते हैं, किन्तु सुप्त जीवों के विषय में ऐसा नियम नहीं है। पर्याप्तक जीवों की अपेक्षा आयुकर्म के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि अपर्याप्तक भी आयुकर्म के अबन्धक होते हैं। हैं

प्रत्येक युगल का अल्पबहुत्व — (१) आयुष्यकर्म के बन्धक कम हैं, अबन्धक उनसे असंख्यातगुणे अधिक है; पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार बन्धकाल की अपेक्षा अबन्धकाल अधिक है। बन्धकाल सिर्फ तीसरा भाग और वह भी अन्तर्मुहूर्त्त मात्र होता है। इस कारण बन्धकों की अपेक्षा अबन्धक संख्यातगुणे अधिक है। (२) अपर्याप्तक जीव अल्प हैं, पर्याप्तक उनसे संख्यातगुणे अधिक हैं; यह कथन सूक्ष्म जीवों की अपेक्षा से समझना चाहिए; क्योंकि सूक्ष्म जीवों में बाह्य व्याघात न होने से बहुसंख्यक जीवों की निष्पत्ति (उत्पत्ति) और अल्प जीवों की अनिष्पत्ति (अनुत्पत्ति) होती है। (३) सुप्त जीव कम हैं, जागृत जीव उनकी अपेक्षा संख्यातगुणे अधिक हैं। यह कथन सूक्ष्म एकेन्द्रियों की अपेक्षा से समझना चाहिए; क्योंकि अपर्याप्त जीव तो सुप्त ही पाए जाते हैं, जबकि पर्याप्तक जागृत भी होते हैं। (४) समवहत जीव थोड़े हैं, उनकी अपेक्षा असमवहत जीव असंख्यातगुणे अधिक हैं। यहाँ मारणान्तिक समुद्घात में समवहत ही लिए गए हैं, और मारणान्तिक समुद्घात मरणकाल में ही होता है, शेष समय में नहीं; वह भी सब जीव नहीं करते। अतएव समवहत थोड़ें ही कहे गए हैं; असमवहत अधिक, क्योंकि उनका जीवनकाल अधिक है। (५) इसी प्रकार सातावेदक जीव कम हैं, क्योंकि साधाराण शरीरी जीव बहुत हैं और प्रत्येकशरीरी अल्प हैं। अधिकांश साधारणशरीरी जीव असातावेदक होते हैं, इस कारण सातावेदक कम हैं। प्रत्येकशरीर जीवों में तो सातावेदकों की बहुलता है और असातावेदकों की अल्पता है। अतएव सातावेदक कम और असातावेदक उनसे संख्यातगुणे अधिक हैं। (६) इन्द्रियोपयुक्त कम हैं, नो-इन्द्रियोपयुक्त संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि इन्द्रियोपयोग तो वर्तमानविषयक भी होता है, इस कारण उसका काल स्वल्प है। नो-इन्द्रिपयोग अतीत-अनागतकाल-विषयक भी होता है। अत: उसका समय बहुत है, इस कारण नो-इन्द्रियोपयुक्त संख्यातगुणे कहे गए हैं। (७) अनाकार (दर्शन) उपयोग का काल अल्प होने से अनाकारोपयोग वाले अल्प हैं, उनको अपेक्षा साकारोपयोग वाले का काल संख्यातगुणा होने से साकारोपयोग वाले संख्यातगुणे अधिक हैं।^२

छळीसवाँ पुद्गलद्वार : पुद्गलों, द्रव्यों आदि का द्रव्यादि विविध अपेक्षाओं से अल्पबहुत्व ३२६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पोग्गला तेलोक्के १, उड्डलोयतिरियलोए अणंतगुणा २,

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १५६-१५७

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १५६

३००] [प्रज्ञापना सूत्र

अधेलोयितिरिलोए विसेसाहिया ३, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३२६] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम पुद्गल त्रैलोक्य में हैं, २. ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक में (उनसे) अनन्तगुणे हैं, ३. अधोलोक-तिर्यग्लोक में विशेषाधिक हैं, ४. तिर्यग्लोक में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ५. ऊर्ध्वलोक में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ६. (और उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३२७. दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा पोग्गला उड्ढिदिसाए १, अधेदिसाए विसेसाहिया २, उत्तरपुरित्थिमेणं दाहिणपच्चित्थिमेण य दो वि तुल्ला असंखेज्जगुणा ३, दाहिणपुरित्थिमेणं उत्तरपच्चित्थिमेण य दो वि तुल्ला विसेसाहिया ४, पुरित्थिमेणं असंखेज्जगुणा ५, पच्चित्थिमेणं विसेसाहिया ६, दाहिणेणं विसेसाहिया ७, उत्तरेणं विसेसाहिया ८।

[३२७] दिशाओं के अनुसार १. सबसे कम पुद्गल ऊर्ध्विदिशा में हैं, २. (उनसे) अधोदिशा में विशेषाधिक हैं, ३. उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम दोनों में तुल्य हैं, (पूर्वोक्त दिशा से) अंख्यातगुणे हैं, ४. दक्षिण-पूर्व और उत्तर-पश्चिम दोनों में तुल्य हैं और (पूर्वोक्त दिशाओं से) विशेषाधिक हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) पूर्विदशा में असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनकी अपेक्षा) पश्चिमदिशा में विशेषाधिक हैं, ७. (उनकी अपेक्षा) दक्षिण में विशेषाधिक हैं।

३२८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाइं दव्वाइँ तेलोक्के १, उड्ढलोयितिरयलोए अणंतगुणाइं २, अधेलोयितिरियलोए विसेसाहियाइं ३, उड्ढलोए असंखेज्जगुणाइं ४, अधेलोए अणंतगुणाइं ५, तिरियलोए संखेज्जगुणाइं ६।

[३२८] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम द्रव्य त्रैलोक्य में (त्रिलोकस्पर्शी) हैं, २. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में अनन्तगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे अधिक हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक में अनन्तगुणे हैं, ६. (और उनकी अपेक्षा भी) तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे हैं।

३२९. दिसाणुवाएणं सव्बत्थोवाइं दव्वाइं अधेदिसाए १, उड्ढिदसाए अणंतगुणाइं २, उत्तरपुरित्थमेणं दाहिणपच्चित्थिमेण य दो वि तुल्लाइं असंखेज्जगुणाइं ३, दाहिणपुरित्थिमेणं उत्तरपच्चित्थिमेण य दो वि तुल्लाइं विसेसाहियाइं ४, पुरित्थमेणं असंखेज्जगुणाइं ५, पच्चित्थिमेणं विसेसाहियाइं ६, दाहिणेणं विसेसाहियाइं ७, उत्तरेणं विसेसाहियाइं ८।

[३२९] दिशाओं के अनुसार, १. सबसे थोड़े द्रव्य अधोदिशा में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वदिशा में अनन्तगुणे हैं, ३. उत्तरपूर्व और दिक्षण-पश्चिम दोनों में तुल्य हैं, (पूर्वोक्त ऊर्ध्वदिशा से) असंख्यातगुणे हैं, ४. दिक्षणपूर्व और उत्तरपश्चिम, दोनों में तुल्य हैं तथा (पूर्वोक्त दो दिशाओं से) विशेषाधिक हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) पूर्व में असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनकी अपेक्षा) पश्चिम में विशेषाधिक हैं, ७. (उनसे)

दक्षिण में विशेषाधिक हैं, ८. (और उनकी अपेक्षा भी) उत्तर में विशेषाधिक हैं।

३३०. एतेसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं संखेज्जपदेसियाणं असंखेज्जपदेसियाणं अणंतपदेसियाणं अणंतपदेसियाणं य दखंधाणं दव्बट्टयाए पदेसट्टयाए दव्बट्टपदेसट्टताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्बत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा दव्बद्वयाए १, परमाणुपोग्गला दव्बद्वताए अणंतगुणा २, संखेज्जपदेसिया खंधा दव्बद्वयाए संखेज्जगुणा ३, असंखेज्जपएसिया खंधा दव्बद्वयाए असंखेज्जगुणा ४; पदेसद्वायाए — सव्बत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा पएसद्वयाए १, परमाणुपोग्गला अपदेसद्वयाए अणंतगुणा २, संखेज्जपदेसिया खंधा पदेसद्वयाए संखेज्जगुणा ३, असंखेज्जपदेसिया खंधा पएसद्वयाए असंखेज्जगुणा ४; दव्बद्वपदेसद्वयाए — सव्बत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा दव्बद्वयाए १, ते चेव पदेसद्वयाए अणंतगुणा ३, संखेज्जपएसिया खंधा दव्बद्वयाए संखेज्जगुणा ४, ते चेव पदेसद्वयाए संखेज्जगुणा ५, असंखेज्जपएसिया खंधा दव्बद्वयाए असंखेज्जगुणा ६, ते चेव पएसद्वयाए असंखेज्जगुणा ७।

[३३० प्र.] भगवन्! इन १. परमाणुपुद्गलों तथा २. संख्यातप्रदेशिक, ३. असंख्यातप्रदेशिक और ४. अनन्तप्रदेशिक स्कन्धों में से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से, और द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३० उ.] गौतम! १. सबसे थोड़े द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध हैं, २. (उनकी अपेक्षा) परमाणुपुद्गल द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध प्रदेशापेक्षया हैं, २. (उनकी अपेक्षा) परमाणुपुद्गल अप्रदेशों से अनन्तगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं। द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व —१. सबसे अल्प, द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध हैं, २. (उनकी अपेक्षा) वे (अनन्तप्रदेशी स्कन्ध) ही प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) परमाणुपुद्गल, द्रव्य एवं अप्रदेश की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशों स्कन्ध, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) वे (संख्यातप्रदेशी स्कन्ध) ही प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातपुणे हैं, ६. (उनसे) असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातप्रपेक्ष से असंख्यातपुणे हैं।

३३१. एतेसि णं भंते! एगपदेसोगाढाणं संखेज्जपएसोगाढाणं असंखेज्जपएसोगाढाण य पोग्गलाणं दव्बट्टयाए पदेसट्टयाए दव्बट्टपदेसट्टताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ? गोयमा! सव्वत्थोवा एगपदेसोगाढा पोग्गला दव्वहुयाए १, संखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला दव्वहुयाए संखेज्जगुणा २, असंखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वहुयाए असंखेज्जगुणा ३; पएसहुयाए — सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला पएसहुयाए १, संखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पदेसहुयाए संखेज्जगुणा २, असंखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पएसहुयाए असंखेज्जगुणा ३; दव्वहुपएसहुयाए — सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला दव्वहुपएसहुयाए १, संखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वहुयाए संखेज्जगुणा २, ते चेव पएसहुयाए संखेज्जगुणा ३, असंखेज्जपदेसागाढा पोग्गला दव्वहुयाए असंखेज्जगुणा ४, ते चेव पदेसहुयाए असंखेज्जगुणा ५।

[३३१ प्र.] भगवन्! इन एकप्रदेशावगाढ़, संख्यातप्रदेशावगाढ़ और असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गलों में द्रव्य की अपेक्षा से प्रदेशों की अपेक्षा से और द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३१ उ.] गौतम! १. सबसे कम द्रव्य की अपेक्षा से एक प्रदेश_में अवगाढ़ पुद्गल हैं, २. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशों में अवगाढ़ पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ३, (उनकी अपेक्षा) द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातप्रदेशों में अवगाढ़ पुद्गल असंख्यात हैं। प्रदेशों की दृष्टि से अल्पबहुत्व —१. सबसे कम, प्रदेशों की अपेक्षा से, एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल हैं, २. (उनकी अपेक्षा) संख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्गल, प्रदेशों की अपेक्षा से, संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल, प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं। द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व —१. सबसे कम एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल, द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से हैं, २. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) वे (संख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल) ही प्रदेश की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) वे (असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल) ही, प्रदेश की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) वे (असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल) ही, प्रदेश की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं।

३३२. एतेसि णं भंते! एगसमयठितीयाणं संखेज्जसमयठितीयाणं असंखेज्जसमयठितीयाण य पोग्गलाणं दव्बट्टयाए पदेसट्टयाए दव्बट्टपएसट्टयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सळ्तथोवा एगसमयिवतीया पोग्गला दळ्ड्याए १, संखेज्जसमायिवतीया पोग्गला दळ्ड्याए संखेज्जगुणा २, असंखेज्जसमयिवतीया पोग्गला दळ्ड्याए असंखेज्जगुणा ३; पदेसहुयाए—सळ्तथोवा एगसमयिवतीया पोग्गला पदेसहुयाए १, संखेज्जसमयिवतीया पोग्गला पदेसहुयाए असंखेज्जगुणा २, असंखेज्जसमयिवतीया पोग्गला पदेसहुयाए असंखेज्जगुणा ३; दळ्ड्ठपदेसहुयाए — सळ्तथोवा एगसमयिवतीया पोग्गला दळ्ड्ठपदेसहुयाए १, संखेज्जसमयिवतीया पोग्गला दळ्ड्ठयाए संखेज्जगुणा २, ते चेव पदेसहुयाए संखेज्जगुणा ३, असंखेज्जसमयिवतीया पोग्गला दळ्ड्ठयाए असंखेज्जगुणा ४, ते चेव पदेसहुयाए असंखेज्जगुणा ५।

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [३०३

[३३२ प्र.] भगवन्! इन एक समय की स्थिति वाले, संख्यात समय की स्थिति वाले और असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों में से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से एवं द्रव्य तथा प्रदेश की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

[३३२ उ.] गौतम! १. द्रव्य की अपेक्षा से सबसे अल्प एक समय की स्थिति वाले पुद्गल हैं, २. (उनकी अपेक्षा) संख्यात समय को स्थिति वाले पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं। प्रदेशों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व — १. सबसे कम, एक समय की स्थिति वाले पुद्गल, प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ३ (उनकी अपेक्षा) संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं। द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं। द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व — १. द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से सबसे कम पुद्गल, एक समय की स्थिति वाले पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ३. (इनकी अपेक्षा) वे संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल) ही प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ४. (इनके) असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ४. (इनसे) असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं, ५. (और इनसे) वे (असंख्यात-समयस्थितिक पुद्गल) ही प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

३३३. एतेसि णं भंते! एगगुणकालगाणं संखेज्जगुणकालगाणं असंखेज्जगुणकालगाणं अणंतगुणकालगाण य पोग्गलाणं दव्बट्टयाए पदेसट्टयाए दव्बट्टपदेसट्टयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! जहा परमाणुपोग्गला (सु. ३३०) तह भाणितव्वा। एवं संखेज्जगुणकालयाण वि। एवं सेसा वि वण्ण-गंध-रसा भाणितव्वा। फासाणं कक्खड-मउय - गरुय-लहुयाणं जधा एगपदेसोगाढाणं (सु. ३३१) भणितं तहा भाणितव्वं। अवसेसा फासा जधा वण्णा भणिता तथा भाणितव्वा। दारं २६।

[३३३ प्र.] भगवन्! इन एकगुण काले, संख्यातगुणे काले, असंख्यातगुणे काले और अनन्तगुण काले पुद्गलों में से, द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से और द्रव्य तथा प्रदेश की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३३ उ.] गौतम! जिस प्रकार परमाणुपुद्गल के विषय में (सू. ३३० में) कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। इसी प्रकार संख्यातगुणे काले (एवं असंख्यातगुण काले तथा अनन्तगुण काले) पुद्गलों के विषय में भी (पूर्ववत् सू. ३३० के अनुसार) समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार शेष वर्ण (नीले, लाल, पीले आदि) तथा (समस्त) गन्ध एवं रस के (एकगुण से अनन्तगुण तक के) पुद्गलों के अल्पबहुत्व के सम्बन्ध में कहना चाहिए तथा कर्कश, मृदु (कोमल), गुरु और लघु स्पर्शों के (अल्पबहुत्व के) विषय में भी जिस प्रकार (सू. ३३१ में) एक प्रदेशावगाढ़ आदि का (अल्पबहुत्व)

कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। अवशेष (चार) स्पर्शों के विषय में जैसे वर्णों का (अल्पबहुत्व) कहा है, वैसे ही कहना चाहिए। छच्चींसवाँ (पुद्गल) द्वार॥ २६॥

विवेचन—छव्वीसवाँ पुद्गलद्वार — प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. ३२६ से ३३३ तक) में पुद्गलाद्वार के माध्यम से क्षेत्र एवं दिशा की अपेक्षा से पुद्गलों और द्रव्यों के तथा द्रव्य, प्रदेश, एवं द्रव्यप्रदेश की दृष्टि से परमाणुपुद्गल, संख्यातप्रदेशी आदि के एकप्रदेशावगाढ़ से असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गलों तक के एकसमयस्थितिक से असंख्यातसमयस्थितिक पुद्गलों तक तथा विविध वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श के पुद्गलों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

क्षेत्रानुसार पुद्गलों का अल्पबहुत्व — त्रैलोक्यस्पर्शी पुद्गल द्रव्य सबसे थोड़े इसिलए बताए हैं कि महास्कन्ध ही त्रैलोक्यव्यापी होते हैं और वे अल्प ही हैं। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यंग्लोकसंज्ञक प्रतरद्वय में अनन्तगुणे पुद्गलद्रव्य हैं, क्योंकि इन दोनों प्रतरों में अनन्त संख्यातप्रदेशी, अनन्त असंख्यातप्रदेशी और अनन्त अनन्तप्रदेशी स्कन्ध स्पर्श करते हैं, इसिलए द्रव्यार्थतया वे अनन्तगुणे हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यंग्लोक नामक दो प्रतरों में वे विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनका क्षेत्र आयाम विष्कम्भ (लम्बाई-चौड़ाई) में कुछ विशेषाधिक है। उनसे तिर्यंग्लोक में पुद्गल असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि इसका क्षेत्र (पूर्वोक्त से) असंख्यातगुणा है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणा है, क्योंकि तिर्यंग्लोक के क्षेत्र से ऊर्ध्वलोक का क्षेत्र असंख्यातगुणा अधिक है। उनसे अधोलोक में विशेषाधिक पुद्गलद्रव्य हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोक से अधोलोक का क्षेत्र कुछ अधिक है। ऊर्ध्वलोक कुछ कम ७ रज्जूप्रमाण हैं, जबिक अधोलोक कुछ अधिक ७ रज्जूप्रमाण है।

दिशाओं के अनुसार पुद्गलद्रव्यों का अल्पबहुत्व — सबसे कम पुद्गल ऊर्ध्विदशा में हैं, क्योंकि रत्नप्रभापृथ्वी के समतल भूभाग वाले मेरुपर्वत के मध्य में जो अष्टप्रदेशात्मक रुचक से निकली हुई और लोकान्त को स्पर्श करने वाली चतु:प्रदेशात्मक (चार प्रदेश वाली) ऊर्ध्विदशा है। उसमें सबसे कम पुद्गल हैं। अधोदिशा भी रुचक से निकलती है और वह चतु:प्रदेशात्मक और लोकान्त तक भी है, किन्तु ऊर्ध्विदशा की अपेक्षा वह कुछ विशेषाधिक हैं, इसलिए वहाँ पुद्गल विशेषाधिक हैं। उनसे उत्तरपूर्व तथा दक्षिणपश्चिम में प्रत्येक में असंख्यातगुणे अधिक पुद्गल हैं, स्वस्थान में तो दोनों तुल्य हैं, यद्यपि ये दोनों दिशाएं रुचक से निकली है तथा मुक्तावली के आकार की हैं, तथापि ये तिर्यग्लोक, अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के अन्त तक जा कर समाप्त होती हैं, इसलिए इनका क्षेत्र असंख्यातगुणा होने से वहाँ पुद्गल भी असंख्यातगुणे हैं। इनसे दक्षिणपूर्व और उत्तरपश्चिम दोनों में प्रत्येक में विशेषाधिक पुद्गल हैं, स्वस्थान में तो ये परस्पर तुल्य हैं। इनमें विशेषाधिक पुद्गल होने का कारण यह है कि सौमनस एवं गंधमादन पर्वतों के सात-सात कूटों (शिखरों) पर तथा विद्युत्प्रभ और माल्यवान पर्वतों के नौ-नौ कूटों पर कोहरे, ओस आदि के सूक्ष्मपुद्गल बहुत होते हैं, इसलिए इन दोनों दिशाओं में पूर्वोक्त दिशाओं से पुद्गल विशेषाधिक हैं। इनसे पूर्व दिशा में असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि पूर्व में क्षेत्र असंख्येयगुणा है। उनसे पश्चम में विशेषाधिक हैं, परिश्रम की अपेक्षा दिक्षण में विशेषाधिक हैं, क्योंकि

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [३०५

वहाँ भवन तथा पोल अधिक है। उनसे उत्तर दिशा में विशेषाधिक हैं, क्योंकि अधोलोकिक ग्रामों में पोलार होने से वहाँ पुद्गल बहुत होते हैं। पश्चिम की अपेक्षा दक्षिण में विशेषाधिक हैं, क्योंकि उत्तर में संख्यातकोटा-कोटी योजन-लम्बा-चौड़ा मानससरोवर है, जहाँ जलचर तथा काई, शैवाल आदि बहुत प्राणी हैं, उनके तैजस-कार्मणशरीर के पुद्गल अत्यधिक पाए जाते हैं। इस कारण पश्चिम से उत्तर में विशेषाधिक पुद्गल कहे गए हैं। १

क्षेत्रानुसार सामान्यतः द्रव्यविषयक अल्पबहुत्व—क्षेत्र की अपेक्षा से सबसे कम द्रव्य त्रैलोक्यस्पर्शी हैं, क्योंकि धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकशास्तिकाय, महास्कन्ध और जीवास्तिकाय में से मारणान्तिक समुद्धात से अतीव समवहत जीव ही त्रैलोक्यस्पर्शी होते हैं और वे अल्प हैं। इसलिए ये सबसे कम हैं। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक नामक दो प्रतरों में अनन्तगुणे द्रव्य हैं, क्योंकि इन दोनों प्रतरों को अनन्त पुद्गलद्रव्य और अनन्त जीवद्रव्य स्पर्श करते हैं। इन दोनों प्रतरों की अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक नामक प्रतरों में कुछ अधिक द्रव्य हैं। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे द्रव्य अधिक हैं। क्योंकि वह क्षेत्र असंख्यातगुणा विस्तृत है। उनकी अपेक्षा अधोलोक में अनन्तगुणे अधिक द्रव्य हैं, क्योंकि अधोलोकिक ग्रामों में काल है, जिसका सम्बन्ध विभिन्न परमाणुओं, संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी, अनन्तप्रदेशी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के पर्यायों के साथ होने के कारण प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्य अनन्त प्रकार का होता है। अधोलोक की अपेक्षा तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे द्रव्य हैं, क्योंकि अधोलोकिक ग्राम-प्रमाण खण्ड कालद्रव्य के आधारभृत मनुष्यलोक में संख्यात पाए जाते हैं।

दिशाओं की अपेक्षा से सामान्यतः द्रव्यों का अल्पबहुत्व — सामान्यतया सबसे कम द्रव्य अधोदिशा में हैं, उनकी अपेक्षा ऊर्ध्विदिशा में अनन्तगुणे हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोक में मेरपर्वत का पाँच सौ योजन का स्फिटिकमय काण्ड है, जिसमें चन्द्र और सूर्य की प्रभा के होने से तथा द्रव्यों के क्षण आदि काल का प्रतिभाग होने से तथा पूर्वोक्त नोति से प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्यों के साथ काल अनन्त होने से द्रव्य का अनन्तगुणा होना सिद्ध है। ऊर्ध्विदशा की अपेक्षा उत्तरपूर्व—ईशानकोण में तथा दिक्षणपश्चिम—नैर्ऋयकोण में असंख्यातगुणे द्रव्य हैं, क्योंकि वहाँ के क्षेत्र असंख्यातगुणा हैं, किन्तु इन दोनों दिशाओं में बराबर-बरार ही द्रव्य हैं, क्योंकि इन दोनों की अपेक्षा दिक्षणपूर्व — आग्नेयकोण में तथा उत्तरपश्चिम — वायव्यकोण में द्रव्य विशेषाधिक हैं, क्योंकि इन दिशाओं में विद्युत्प्रभ एवं माल्यवान् पर्वतों के कूट के आश्रित कोहरे, ओस आदि श्लक्ष्ण पुद्गलद्रव्य बहुत होते हैं। इनकी अपेक्षा पूर्विदशा से असंख्यातगुणा क्षेत्र अधिक होने से द्रव्य भी असंख्यातगुणे अधिक है। पूर्व की अपेक्षा पश्चिम दिशा में द्रव्य विशेषाधिक हैं, क्योंकि यहाँ अधोलोकिक ग्रामों में पोल होने के कारण बहुत-से पुद्गलद्रव्यों का सद्भाव है। उसकी अपेक्षा दिक्षण में विशेषाधिक द्रव्य हैं, क्योंकि वहाँ बहुसंख्यक भुवनों में स्म्र (पोल) हैं। दिक्षण से उत्तरदिशा में विशेषाधिक द्रव्य हैं, क्योंकि वहाँ मानससरोवर में रहने वाले जीवों के आश्रित तैजस और कार्मण वर्गणा के पुद्गलस्कन्ध द्रव्य बहुत हैं।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १५८-१५९

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १५९

संख्यात-असंख्यात-अनन्तप्रदेशी-परमाणुपुद्गलों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्रों में द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश की दृष्टि से अल्पबहुत्व का विचार किया गया है। पाठ सुगम है। यहाँ सर्वत्र अल्पबहुत्व-भावना में पुद्गलों का वैसा स्वभाव ही कारण माना गया है।

क्षेत्र की प्रधानता से पुद्गलों का अल्पबहुत्व — एकप्रदेश में अवगाढ़ (आकाश के एक प्रदेश में स्थित) पुद्गल (द्रव्यापेक्षया) सबसे कम हैं। यहाँ क्षेत्र की प्रधानता से विचार किया गया है। इसिलए आकाश के एक प्रदेश में जो भी परमाणु, संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी तथा अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अवगाढ़ हैं, उन सब को एक ही राशि में पिरगणित करके 'एकप्रदेशावगाढ़' कहा गया है। इस दृष्टि से संख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल पूर्वोक्त की अपेक्षा द्रव्यविवक्षा से संख्यातगुणे हैं। यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि आकाश में दो प्रदेशों में द्वयणुक भी रहता है, त्र्यणुक भी और असंख्यात प्रदेशी अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी रहता है, किन्तु क्षेत्र की अपेक्षा से उन सबकी एक ही राशि है। इसी प्रकार तीन प्रदेशों में त्र्यणुक से लेकर अनन्ताणुक स्कन्ध तक रहते हैं, उनकी भी एक राशि समझनी चाहिए। इस दृष्टि से एकप्रदेशावगाढ़ पुद्गलों की अपेक्षा द्विप्रदेशावगाढ़, द्विप्रदेशावगाढ़ की अपेक्षा विप्रदेशावगाढ़ पुद्गल द्रव्य, इसी प्रकार चारप्रदेशावगाढ़, पंचप्रदेशावगाढ़, यावत् संख्यात-प्रदेशावगाढ़ पुद्गल द्रव्य की विवक्षा से उत्तरोत्तर संख्यातगुणे अधिक है। उनकी अपेक्षा असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल द्रव्यविवक्षा से असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि असंख्यात के असंख्यात भेद कहे गए हैं। इसी प्रकार द्रव्यावित्रसून, प्रदेशार्थतासून, एवं द्रव्यप्रदेशार्थतासून, सून सुगम होने से सर्वत्र घटित कर लेना चाहिए।

काल एवं भाव की दृष्टि से पुद्गलों का अल्पबहुत्व—काल की अपेक्षा से—एक समय की स्थित से लेकर अनन्तसमयों तक की स्थित वाले पुद्गलों का अल्पबहुत्व भी यथायोग्य समझ लेना चाहिए। भाव की अपेक्षा से—काले आदि ५ वर्ण, दो गन्ध, तिक्त, कटु आदि पांच रस और शीत, उष्ण स्निग्ध और रूक्ष दन बोलों का अल्पबहुत्व मूलपाठ में कथित काले वर्ण के समान समझ लेना चाहिए। एकगुण काले पुद्गलों के अल्पबहुत्व की वक्तव्यता सामान्य पुद्गलों की तरह कहनी चाहिए। यथा —१. सबसे कम अनन्तप्रदेशी स्कन्ध एकगुण काले हैं, २. द्रव्य की अपेक्षा से परमाणुपुद्गल एकगुण काले अनन्तगुणे हैं, (उनसे) संख्यातप्रदेशी स्कन्ध एकगुण काले संख्यातगुणे हैं, उनसे असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध एकगुण काले असंख्यातपुणे हैं। इसी प्रकार प्रदेश की अपेक्षा से समझना चाहिए। कर्कश, मृदु, गुरु और लघु स्पर्श का प्रत्येक का अल्पबहुत्व एकप्रदेश—अवगाढ़ के समान समझना चाहिए। यथा—एकप्रदेशावगाढ़ एक गुण कर्कशस्पर्श द्रव्यार्थरूप से सबसे कम हैं, उनसे संख्यातप्रदेशावगाढ़ एकगुण कर्कशस्पर्श द्रव्यार्थरूप से संख्यातगुणे हैं, इत्यादि। इसी प्रकार संख्यातगुण कर्कशस्पर्श असंख्यातगुण कर्कशस्पर्श द्रव्यार्थरूप से असंख्यातगुण कर्कशस्पर्श असंख्यातगुण कर्कशस्पर्श एवं अनन्तगुण कर्कशस्पर्श के अल्पबहुत्व के विषय में समझ लेना चाहिए।

१. प्रज्ञापनसूत्र, मलय. वृत्ति, पंत्राक १६१

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [३०७

सत्ताईसवाँ महादण्डकद्वार : विभिन्न विवक्षाओं से सर्वजीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण —

३३६. अह भंते! सळ्जीवप्पबहुं, महदंडयं वत्तइस्मामि — सळ्वत्थोवा गब्भवक्कंतिया मणुस्सा १, मणुस्सोओ संखेज्जगुणाओ २, बादरतेउक्काइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, अण्तरोववाइया देवा असंखेज्जगुणा ४, उवरिमगेवेज्जगा देवा संखेज्जगुणा ५, मन्झिमत्रेवेज्जगा देवा संखेज्जगुणा ६, हेट्टिमगेवेज्जगा देवा संखेज्जगुणा ७, अच्चते कप्पे देवा संखेज्जगुणा ८, आरणे कप्पे देवा संखेज्जगुणा ९, पाणए कप्पे देवा संखेज्जगुणा १०, आणए कप्पे देवा संखेज्जगुणा ११, अधेसत्तमाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा १२, छट्टीए तमाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा १३, सहस्सारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा १६, लंतए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा १७, चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा १८, बंभलोए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा १९, तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा २०, माहिंदकप्पे देवा असंखेज्जगुणा २१, सणंकुमारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा २२, दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा २३, सम्मुच्छिममणुस्सा असंखेज्जगुणा २४, ईसाणे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा २५, ईसाणे कप्पे देवीओ संखेज्जगुणाओ २६, सोहम्मे कप्पे देवा संखेज्जगुणा २७, सोहम्मे कप्पे देवीओ संखेज्जगुणाओ २८, भवणवासी देवा असंखेज्जगुणा २९, भवणवासिणीओ देवीओ संखेज्जगुणओ ३०, इमीसे रतणप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा ३१, खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा असंखेज्जगुणा ३२, खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणओ थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा संखेज्जगुणा ३४, थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ ३५, जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया प्रिसा संखेज्जगुणा ३६, जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणओ ३७, वाणमंतरा देवा संखेज्जगुणा ३८, वाणमंतरीओ देवीओ संखेज्जगुणओ ३९, जोइसिया देवा संखेज्जगुणा ४०, जोइसिणीओ देवीओ संखेज्जगुणा ४१, खहयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया णपुंसया संखेज्जगुणा ४२, थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णपुंसया संखेज्जगुणा ४३, जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णपुंसया संखेज्जगुणा ४४, चउरिंदिया पञ्जत्तया संखेज्जगुणा ४५, पंचेंदिया पञ्जत्तया विसेसाहिया ४६, बेइंदिया पञ्जत्तया विसेसाहिया ४७, तेइंदिया पञ्जतया विसेसाहिया ४८, पंचिंदिय अपञ्जत्तया असंखेज्जगुणा ४९, चउरिंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ५०, तेइंदिया अपज्ज्तया विसेसाहिया ५१, बेइंदिया अपञ्च्तया विसेसाहिया ५२, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाया पञ्जत्तया असंखेज्जगुणा ५३, बादरणिगोदा पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ५४, बादरपुढविकाइया पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ५५, बादरओउकाइया पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ५६,बादरवाउकाइया पञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ५७ बादरतेउकाइया अपञ्जत्तगा असंखेञ्जगुणा ५८, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपञ्जत्तगा असंखेज्जगुण ५९ बादरणिगोदा अपञ्जत्तया असंखेज्जगुणा ६०, बादरपुढविकाइया अपञ्जत्तया

असंखेञ्जगुणा ६१, बादरआउकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा ६२, बादरवाउकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा ६३, सुहुमतेउकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा ६४, सुहुमपुढविकाइया अपञ्जत्तगा विसेसाहिया ६५, स्हुमआउकाइया अपञ्जत्तगा विसेसाहिया ६६, सुहुमवाउकाइया अपञ्जत्तगा विसेसाहिया ६७, सुहुमतेउकाइया पञ्जत्तगा संखेञ्जगुणा ६८, सुहुमपुढविकाइया पञ्जत्तया विसेसाहिया ६९, सुहुमआउकाइया पञ्जत्तया विसेसाहिया ७०, सुहुमवाउकाइया पञ्जत्तया विसेसाहिया ७१, सुहुमणिगोदा अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा ७२, सुहुमणिगोदा पञ्जत्तया संखेज्जगुणा ७३, अभवसद्धिया अणंतगुणा ७४, परिवडितसम्मत्ता^९ अणंतगुणा ७५, सिद्धा अणंतगुणा ७६, बादरवणस्सितिकाइया पञ्जत्तगा अणंतगुणा ७७, बादरपञ्जत्तया विसेसाहिया ७८, बादरवणस्सइकाइया अपञ्जत्तया असंखेञ्जगुणा ७९, बादरअपज्जत्तया विसेसाहिया ८०, बादरा विसेसाहिया ८१, सुहुमवणस्सतिकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ८२, सुहुमा अपज्जत्तया विसेसाहिया ८३, सुहुमवणस्सइकाइया पञ्जत्तयसंखेञ्जगुणा ८४, सुहुमपञ्जत्तया विसेसाहिया ८५, सुहुमा विसेसाहिया ८६, भवसिद्धिया विसेसाहिया ८७, निगोदजीवा विसेसाहिया ८८, वणप्फतिजीवा विसेसाहिया ८९, एगिंदिया विसेसाहिया ९०, तिरिक्खजोणिया विसेसाहिया ९१, मिच्छादिद्वी विसेसाहिया ९२, अविरता विसेसाहिया ९३, सकसाई विसेसाहिया ९४, छउमत्था विसेसाहिया ९५, सजोगी विसेसाहिया ९६, संसारत्था विसेसाहिया ९७, सव्वजीवा विसेसाहिया ९८। दारं २७॥

॥ पण्णवणाए भगवईए तइयं बहुवत्तव्वयपयं समत्तं॥

[३३४] हे भगवन्! अब मैं समस्त जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले महादण्डक का वर्णन करूंगा — १. सबसे कम गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज) हैं, २. (उनसे) मानुषी (मनुष्यस्त्री) संख्यातगुणी अधिक हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) बादर तेजस्कायिक— पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अनुत्तरोपपातिक देव असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) ऊपरी ग्रैवेयकदेव संख्यातगुणे हैं, ६. (उनकी अपेक्षा) मध्यमग्रैवेयकदेव संख्यातगुणे हैं, ७. (उनकी अपेक्षा) निचले ग्रैवेयकदेव संख्यातगुणे हैं, ८. अच्युत्कल्प-देव (उनसे) संख्यातगुणे हैं, ९. आरणकल्प के देव (उनसे) संख्यातगुणे हैं, १०. (उनसे) प्राणतकल्प के देव संख्यातगुणे हैं, ११. (उनकी अपेक्षा) सबसे नीची सप्तम पृथ्वी के नैरियक असंख्यातगुणे हैं, १३. (उनसे) छठी तम:प्रभा पृथ्वी के नैरियक संख्यातगुणे हैं, १४. (उनकी अपेक्षा) महाशुक्रकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, १६. (उनकी अपेक्षा) महाशुक्रकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, १६. (उनकी अपेक्षा) पांचवीं धूमप्रभापृथ्वी के नैरियक असंख्यातगुणे हैं, १७. (उनको अपेक्षा) चौथी पंकप्रभापृथ्वी के नैरियक असंख्यातगुणे हैं, १९. (उनको अपेक्षा) चौथी पंकप्रभापृथ्वी के नैरियक असंख्यातगुणे हैं, १९. (उनके) ब्रह्मलोककल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, १९. (उनके)

पाठान्तर—'सम्मत्ता' के स्थान में 'सम्मिहृद्गी' पद मिलता है।

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [३०९

२०. (उनसे) तीसरी बालुका प्रभापृथ्वी के नैरियक असंख्यातगुणे हैं, २१. (उनसे) माहेन्द्रकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, २२. (उनकी अपेक्षा) सनत्कुमारकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, २३. (उनसे) दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं, २४. (उनकी अपेक्षा) सम्मूर्च्छिम मनुष्य असंख्यात गुणे हैं, २५. (उनसे) ईशानकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, २६. ईशानकल्प की देवियां (उनसे) संख्यातगुणी हैं, २७. (उनकी अपेक्षा) सौधर्मकल्प के देव संख्यातगुणे हैं, २८. (उनकी अपेक्षा) सौधर्म कल्प की देवियां संख्यातगुणी हैं, २९. (उनकी अपेक्षा) सौधर्मकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, ३०. (उनसे) भवनवासी देवियां संख्यातगुणी हैं, ३१. (उनसे) प्रथम रत्नप्रभापृथ्वी के नैरियक असंख्यातगुणे हैं, ३२. (उनकी अपेक्षा) खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-पुरुष असंख्यातगुणे हैं, ३३. (उनसे) खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यचयोनिक स्त्रियाँ असंख्यातगुणी हैं, ३४. (उनसे) स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक पुरुष संख्यातगुणे हैं, ३५ (उनसे) स्थलचर—पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं, ३६. (उनकी अपेक्षा) जलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक पुरुष संख्यातगुणे हैं, ३७. उनसे जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यचयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं, ३८. (उनसे) वाणव्यन्तर देव संख्यातगुणे हैं, ३९, (उनकी अपेक्षा) वाणव्यन्तर स्त्रियां सख्यातगुणी हैं, ४०. (उनकी अपेक्षा) ज्योतिष्क-देव संख्यातगुणे हैं, ४१. (उनकी अपेक्षा) ज्योतिष्क-देवियां संख्यातगुणी हैं, ४२. (उनसे) खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक संख्यातगुणे हैं, ४३. (उनकी अपेक्षा) स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक संख्यातगुणे हैं, ४४. (उनसे) जलचर-पंचेद्रिय-तिर्यञ्चयोनिकनपुंसक संख्यातगुणे अधिक हैं, ४५. (उनकी अपेक्षा) चतुरिन्द्रिय-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ४६. (उनकी अपेक्षा) पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४७. (उनकी अपेक्षा) द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४८. (उनकी अपेक्षा) त्रीन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४९. (उनकी अपेक्षा) पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५०. (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५१. (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं. ५२. (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५३. (उनकी अपेक्षा) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५४. बादर निगोद-पर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५५. (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक -पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५६. (उनसे) बादर-अप्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५७. (उनसे) बादर-वायुकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५८. बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५९. प्रत्येकशरीर-बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ६०. (उनसे) बादरनिगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६१. बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ६२. बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ६३. (उनकी अपेक्षा) बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६४ (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म तेजस्कायिक - अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६५. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६६. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म अप्कायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं ६७. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक, अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६८. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म तेजस्कायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ६९. (उनकी

अपेक्षा) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७०. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७१. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७२. (उनसे) सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ७३. (उनसे) सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ७४. (उनकी अपेक्षा) अभवसिद्धिक (अभव्य) अनन्तगुणे हैं, ७५. (उनसे) सम्यक्त्व से भ्रष्ट (प्रतिपतित) अनन्तगुणे हैं, ७६. (उनकी अपेक्षा) सिद्ध अनन्तगुणे हैं, ७७. (उनकी अपेक्षा) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, ७८. (उनसे) बादरपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७९. (उनकी अपेक्षा) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८०. (उनकी अपेक्षा) बादर-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ८१. (उनसे) बादर विशेषाधिक है, ८२. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८३. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ८४. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ८५. (उनसे) सूक्ष्म- पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ८६. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म विशेषाधिक हैं, ८७. (उनसे) भवसिद्धिक (भव्य) विशेषाधिक हैं, ८८. (उनकी अपेक्षा) निगोद के जीव विशेषाधिक हैं, ८९. (उनसे) वनस्पति जीव विशेषाधिक हैं, ९०. (उनसे) एकेन्द्रिय-जीव विशेषाधिक हैं, ९१. (उनसे) तिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक हैं, ९२. (उनसे) मिथ्यादृष्टि-जीव विशेषाधिक हैं, ९३. (उनसे) अविरत जीव विशेषाधिक हैं, ९४. (उनकी अपेक्षा) सकषायी जीव विशेषाधिक हैं, ९५. (उनसे) छद्मस्थ जीव विशेषाधिक हैं, ९६. (उनकी अपेक्षा) सयोगी जीव विशेषाधिक हैं, ९७. (उनकी अपेक्षा) संसारस्थ जीव विशेषाधिक हैं, ९८. (उनकी अपेक्षा) सर्वजीव विशेषाधिक हैं। –सत्ताईसवॉॅं (महादण्डक) द्वार ॥२७॥

विवेचन—सत्ताईसवाँ महादण्डकद्वार : सर्व जीवों के अल्पबहुत्व का विविध विवक्षाओं से निरूपण—प्रस्तुत सूत्र (३३४) में महादण्डकद्वार के निमित्त से विविध विवक्षाओं से समस्त जीवों के अल्पबहुत्व का प्रतिपादन किया गया है।

महादण्डक के वर्णन की अनुज्ञा — शिष्य को गुरु की अनुज्ञा लेकर की शास्त्र प्ररूपणा या व्याख्या करनी चाहिए। इस दृष्टि से भी श्री गौतमस्वामी महादण्डक का वर्णन करने की अनुमित लेकर कहते हैं कि —भगवन्! मैं जीवों के अल्पबहुत्व के प्रतिपादक महादण्डक का वर्णन करता हूँ अथवा रचना करता हूँ।

समस्त जीवों के अल्पबहुत्व का क्रम — (१) गर्भज जीव सबसे कम इसिलए हैं कि उनकी संख्या संख्यात-कोटाकोटि परिमित हैं।(२) उनकी अपेक्षा मनुष्यस्त्रियाँ संख्यातगुणी अधिक हैं, क्योंिक मनुष्यपुरुषों की अपेक्षा सत्ताईसगुणी और सत्ताईस अधिक होती हैं। (३) उनसे बादर तेजस्कायिक पर्याप्त असंख्येयगुणे हैं, क्योंिक वे कितपय वर्ग कम आविलिकाघन-समय-प्रमाण हैं।(४) उनकी अपेक्षा अनुत्तरौपातिक देव असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंिक वे क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भागवर्ती आकशप्रदेशों

१. प्रज्ञापनसूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १६३

२. 'सत्तावीसगुणा पुण मणुयाणं तदहिआ चेव' — प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १६३ से उद्धृत

की राशि के बराबर है। (५) उनकी अपेक्षा उपरितन ग्रैवेयकत्रिक के देव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वे बृहत्तर क्षेत्रपल्योपम के संख्यातवें भाग में रहे हुए आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर हैं। इसे जानने का मापदण्ड है उत्तरोत्तर विमानों की अधिकता। अनुत्तर देवों के ५ विमान हैं, किन्तु ऊपर के तीन ग्रैवेयकों में सौ विमान हैं और प्रत्येक विमान में असंख्यात देव हैं। नीचे-नीचे के विमानों में अधिक-अधिक देव होते हैं, इसीलिए अनुत्तरिवमानवासी देवों की अपेक्षा ऊपरी तीन ग्रैवेयकों के देव संख्यातगुणे हैं। आगे भी आनतकल्प के देवों (६ से ११) तक उत्तरोत्तर संख्यातगुणे हैं, कारण पहले बताया जा चुका है। यद्यपि आरण और अच्युत कल्प समश्रेणी में स्थित हैं और दोनों की विमान संख्या समान है तथापि स्वभावत: कृष्णपक्षी जीव प्राय: दक्षिणादिशा में उत्पन्न होते हैं, उत्तरदिशा में नहीं और कृष्णपाक्षिक जीव शुक्लपाक्षिकों की अपेक्षा अधिक होते है। इसीलिए अच्युत से आरण प्राणत, और आनत कल्प के देव उत्तरोत्तर संख्यातगुणे अधिक हैं। (१२) उनकी अपेक्षा सप्तम नरकपृथ्वी के नैरियक असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि वे श्रेणी के असंख्यातवें भाग में स्थित आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर हैं। उनसे उत्तरोत्तर क्रमश: (१३) छठी नरक के नारक, (१४) सहस्रारकल्प के देव, (१५) महाशुक्रकल्प के देव, (१६) पंचम धूमप्रभा नरक के नारक, (१७) लान्तककल्प के देव, (१८) चतुर्थ पंकप्रभानरक के नारक, (१९) ब्रह्मलोककल्प के देव, (२०) तृतीय बालुकाप्रभा नरक के नारक, (२१) माहेन्द्रकल्प के देव, (२२) सनत्कुमारकल्प के देव, (२३) दूसरी शर्कराप्रभा नरक के नारक असंख्यात-असंख्यातगुणे हैं। सातवीं पृथ्वी से लेकर दूसरी पृथ्वी तक के नारक प्रत्येक अपने स्थान में प्ररूपित किये जाएँ तो सभी घनीकृत लोकश्रेणी के असंख्यातवें भाग में स्थित आकाश प्रदेशों की रााशि के बराबर हैं, मगर श्रेणी के असंख्यातवें भाग के भी असंख्यात भेद होते हैं। अत: इनसे सर्वत्र उत्तरोत्तर असंख्यातगृणा अल्पबहुत्व कहने में कोई विरोध नहीं आता। शेष सब युक्तियाँ पूर्ववत् समझनी चाहिए। (२४) उनकी अपेक्षा सम्मुर्च्छिम मनुष्य असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि अंगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशों की राशि के द्वितीय वर्गमुल से गुणित तीसरे वर्गमूल में जितनी प्रदेशराशि होती है, उतने प्रमाण में सम्मुर्च्छिम मनुष्य होते हैं। (२५) उनसे ईशानकल्प देव संख्यातगुणे हैं, यह पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार समझ लेना चाहिए। (२६) ईशानकल्प की देवियाँ उनसे संख्यातगुणी अधिक हैं, क्योंकि देवियाँ देवों से बत्तीस गुणी और बत्तीस अधिक होती हैं।(२७) इनसे सौधर्मकल्प के देव संख्यातगुणे विमान हैं,(२८) पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार सौधर्मकल्प की देवियाँ देवों से बत्तीस गुणी एवं बत्तीस अधिक होने से संख्यातगुणी हैं। (२९) इनकी अपेक्षा भवनवासी देव असंख्यातगुणे हैं। अंगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशों की राशि के तीसरे वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूल में जितने प्रदेशों की राशि होती है, उतनी प्रमाण वाली घनीकृत लोक की एक प्रदेश वाली श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश होते हैं, उतनी ही संख्या भवनपित देवों और देवियों की है। (३०) देवों की अपेक्षा देवियाँ बत्तीस गुणी एवं बत्तीस अधिक होती है, इस कारण भवनवासी देवियाँ संख्यातगुणी

१. (क) 'बत्तीसगुणा बत्तीसरूवअहिया उ होंति देवीओ।' (ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १६४

हैं। (३१) उनकी अपेक्षा रत्नप्रभापृथ्वी के नारक असंख्यातगुणे हैं। वे अंगुलमात्र परिमित क्षेत्र के प्रदेशों की राशि के द्वितीय वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूल की जितनी प्रदेशराशि होती है उतनी श्रेणियों में रहे हुए आकाशप्रदेशों के बराबर हैं। (३२) उनकी अपेक्षा खेचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्च पुरुष असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यात श्रेणियों के आकाशप्रदेशों के बराबर हैं। (३३) उनकी अपेक्षा खेचर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं, क्योंकि तिर्यञ्चों में पुरुष की अपेक्षा स्त्रियां तीन गुणी और तीन अधिक होती हैं। १ (३४) इनकी अपेक्षा स्थलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक पुरुष संख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे बृहत्तर प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यात श्रेणियों की आकाश-प्रदेशराशि के बराबर हैं। (३५) इनकी अपेक्षा स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचिस्त्रियाँ पूर्वोक्त युक्ति से संख्यातगुणी हैं। (३६) उनकी अपेक्षा जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यचपुरुष संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वे बृहत्तम प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यातश्रेणियों की आकाशप्रदेशराशि के तुल्य हैं। (३७) उनकी अपेक्षा जलचर-तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्त्रियाँ पूर्वोक्त युक्ति से संख्यातगुणी हैं। (३८-३९) उनकी अपेक्षा वाणव्यन्तर देव एवं देवी उत्तरोत्तर क्रमश: संख्यातगुण हैं। क्योंकि संख्यात योजन कोटाकोटीप्रमाण सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर में होते हैं, उतने ही सामान्य व्यन्तरदेव हैं। देवियाँ देवों से बत्तीसगुणा और बत्तीस अधिक होती हैं। (४०) उनक़ी अपेक्षा ज्योतिष्क देव (देवी सहित) संख्यातगुणे अधिक है, क्योंकि वे सामान्यत: २५६ अंगुल प्रमाण सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर में होते हैं, उतने हैं। र (४१) पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार इनसे ज्योतिष्क देवियाँ संख्यातगुणी हैं। (४२) इनकी अपेक्षा पर्याप्त चतुरिन्द्रिय संख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर में होते हैं, उतने हैं। (४३-४४-४५) उनकी अपेक्षा स्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यंच नपुंसक, जलचर पंचेन्द्रियतिर्यंचनपुंसक, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक, क्रमश: उत्तरोत्तर संख्यातगुणे हैं। (४६ से ५२) उनकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक, चतुरिन्द्रिय-अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय-अपर्याप्तक और द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश: विशेषाधिक हैं, क्योंकि ये सब अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रत्तर में होते हैं, उतने प्रमाण में होते हैं, किन्तु अंगुल के असंख्यातभाग के असंख्यात भेद होते हैं। अतः अपर्यात्त-द्वीन्द्रिय पर्यन्त उत्तरोत्तर अंगुल का असंख्यातवां भागकम अंगुल का असंख्यातवां भाग लेने पर कोई दोष नहीं। (५३ से ६८ तक) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक, बादर निगोद- पर्याप्तक, बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक, बादर अप्कायिक-पर्याप्तक, बादर वायुकायिक-पर्याप्तक, बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक, प्रत्येक शरीर बादर वनस्पति-कायिक-अपर्याप्तक बादर निगोद-अपर्याप्तक, बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक बादर अप्कायिक अपर्याप्तक, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक और सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश: असंख्यातगुणे हैं,

१. (क) 'तिगुणा तिरूवअहिआ तिरियाणं इत्थिओ मुणेयव्वा।' (ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २६५

२. (क) 'छपन्नदोसयंगुल सूइपएसेहिं भाइयं पयरं। जोइसिएहिं हीरइ।' (ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १६६

तृतीय बहुवक्तव्यतापद] [३१३

उनकी अपेक्षा सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक, अप्कायिक-अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, यह पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार समझ लेना चाहिए तथा अपर्याप्तक सूक्ष्म जीवों की अपेक्षा पर्याप्तक सूक्ष्म स्वभावत: अधिक होते हैं। प्रज्ञापना की संग्रहणी में कहा गया है — बादर जीवों में अपर्याप्त अधिक होते हैं, तथा सूक्ष्म जीवों में समुच्चयरूप से पर्याप्तक अधिक होते हैं। (६९ से ७३ तक) उनकी अपेक्षा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक-पर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश: विशेषाधिक है। उनको अपेक्षा सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं तथा उनसे सुक्ष्म निगोद पर्याप्तक-संख्यातगुणे अधिक हैं। यद्यपि अपर्याप्त तेजस्कायिक से लेकर पर्याप्त सुक्ष्म निगोद पर्यन्त जीव सामान्यरूप से असंख्यात लोकाकाशों की प्रदेशराशि प्रमाण (तुल्य) अन्यत्र कहे गए हैं, तथापि लोक का असंख्येमत्व भी असंख्यात भेदों से युक्त होने के कारण यह अल्पबहुत संगत ही है। (७४) उनकी अपेक्षा अभव्य अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वे जघन्य युक्त-अनन्तक प्रमाण हैं। (७५) उनसे भ्रष्टसम्यग्दृष्टि अनन्तगुणे हैं, (७६) उनसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं, (७७) उनसे बादर वनस्पतिकायिकपर्याप्तक अनन्तगृणे हैं। (७८) उनकी अपेक्षा सामान्यत: बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें बादर पर्याप्तक-पृथ्वीकायिकादि का भी समावेश हो जाता है। (७९) उनसे बादर वनस्पति कायिक-अपर्याप्तक असंख्येगुणे हैं, क्योंकि एक एक बादर निगोद पर्याप्त के आश्रय से असंख्यात-असख्यांत बादर निगोद-अपर्याप्त रहते हैं।(८०) उनकी अपेक्षा बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें बादर अपर्याप्त पृथ्वीकायिक आदि का भी समावेश हो जाता है। (८१) उनसे सामान्यत: बादर विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें पर्यात-अपर्यातक दोनों का समावेश हो जाता है। (८२) उनकी अपेक्षा सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। (८३) उनसे सामान्यत: सूक्ष्म अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें सूक्ष्म अपर्याप्तक पृथ्वीकायादि का भी समावेश हो जाता है। (८४) उनसे सुक्ष्म वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, क्योंकि पर्याप्तक सुक्ष्म, अपर्याप्तक सुक्ष्म में स्वभावत: सदैव संख्यातगुणे पाये जाते है। (८५) उनकी अपेक्षा सामान्यरूप से सुक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें सुक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि भी सम्मिलित हैं। (८६) उनसे भी पर्याप्त-अपर्याप्त विशेषणरहित (सामान्य) सुक्ष्म विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें अपर्याप्त सुक्ष्म पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक के जीव सम्मिलित हैं। (८९) उनकी अपेक्षा भव्य जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि जघन्य युक्त अनन्तक प्रमाण अभव्यों को छोडकर शेष सभी भव्य हैं। (८८) उनकी अपेक्षा निगोद जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि भव्य और अभव्य अतिप्रचुरता से सुक्ष्म और बादर निगोद जीवराशि में ही पाए जाते हैं अन्यत्र नहीं। अन्य सभी मिलकर असंख्यात लोकाकाशप्रदेशों की राशि-प्रमाण ही होते हैं। (८९) उनकी अपेक्षा वनस्पतिजीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि सामान्य वनस्पतिकायिकों में प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीव भी सिम्मिलित हैं। (९०) वनस्पति जीवों की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें सूक्ष्म एवं बादर पृथ्वीकायिक आदि का भी समावेश है। (९१) एकेन्द्रियों की अपेक्षा तिर्यञ्चजीव

विशेषाधिक हैं, क्योंकि तिर्यञ्च सामान्य में द्वीन्त्रिय, त्रीन्त्रिय, चतुरिन्त्रिय और पंचेन्त्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त सभी तिर्यञ्च सिम्मिलित हैं। (९२) तिर्यञ्चों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि विशेषाधिक हैं, क्योंकि थोड़े-से अविरत सम्यग्दृष्टि आदि संज्ञी तिर्यञ्चों को छोड़कर शेष सभी तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि हैं, इसके अतिरिक्त अन्य गतियों के मिथ्यादृष्टि भी यहाँ सिम्मिलित हैं, जिनमें असंख्यात नारक भी हैं। (९३) मिथ्यादृष्टि जीवों की अपेक्षा अविरत जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें अविरत सम्यग्दृष्टि भी समाविष्ट हैं। (९४) अविरत जीवों की अपेक्षा सकषाय जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि सकषाय जीवों में देशविरत और दशम गुणस्थान तक के सर्वविरत जीव भी सिम्मिलित हैं। (९५) उनकी अपेक्षा छद्यस्थ विशेषाधिक हैं, क्योंकि उपशान्तमोह आदि भी छद्यस्थों में सिम्मिलित हैं। (९६) सकषाय जीवों की अपेक्षा सयोगी विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें सयोगीकेवली गुणस्थान तक के जीवों का समावेश हो जाता है। (९७) सयोगियों की अपेक्षा संसारी जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि संसारी जीवों में अयोगीकेवली भी हैं और (९८) संसारी जीवों की अपेक्षा सर्वजीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि सर्वजीवों में सिद्धों का भी समावेश हो जाता है।

॥ प्रज्ञापनासूत्र : तृतीय बहुवक्तव्यतापद समाप्त॥

१. (क) 'तत्तो नपुंसग खहयरा सं<mark>खेज्ज थलयर-जलयर-नपुंसगा चउरिन्दिय तओ पणवि</mark>तिपज्जत किंचि अहिआ।' ——प्रज्ञापना. म. वृत्ति, प. १६६ में उ**द्ध**त

⁽ख) 'जीवाणमपञ्जत्ता बहुतरगा बायराण विन्नेया। सुहमाण य पञ्जता ओहेण य केवली बिंति॥'

⁻⁻⁻ प्रज्ञापना. म. वृत्ति, प. १६७ में उद्भृत

⁽ग) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति पत्रांक १६६ से १६८ तक।

चउत्थं ठिइपयं

चतुर्थ स्थितिपद

पाथमिक

- □ प्रज्ञापनासूत्र के इस चतुर्थपद में जीवों के जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त नारक आदि पर्यायों में अव्यविच्छन्न रूप से कितने काल तक अवस्थान (स्थिति या टिकना) होता है?, इसका विचार किया गया है। अर्थात् इस पद में जीवों के जो नारक, तिर्यच, मनुष्य देव आदि विविध पर्याय हैं, उनकी आयु का विचार है। यों तो जीवद्रव्य (आत्मा) नित्य है, परन्तु वह जो नानारूप (नाना जन्म) धारण करता है। वे पर्यायें अनित्य हैं। वे कभी न कभी तो नष्ट होती ही हैं। इस कारण उनकी स्थिति का विचार करना पड़ता है। यही तथ्य यहां प्रस्तुत किया गया है। 'स्थिति' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी इस प्रकार का है आयुकर्म की अनुभूति करता हुआ जीव जिस (पर्याय) में अवस्थित रहता है, वह स्थिति है। इसलिए स्थिति आयु:कर्मानुभूति और जीवन, ये तीनों पर्यायवाची शब्द हैं। है
- □ यद्यपि मिथ्यात्विद से गृहीत तथा ज्ञानावरणीयादि रूप से परिणत कर्मपुद्गलों का जो अवस्थान है, वह भी 'स्थिति' नाम से प्रसिद्ध हैं, तथापि यहाँ नारक आदि व्यपदेश की हेतु 'आयुष्यकर्मिनुभूति' ही 'स्थिति' के शब्द का वाच्य है, क्योंकि नरकगित आदि तथा पंचेन्द्रियजाति आदि नामकर्म के उदय से आश्रित नारकत्व आदि पर्याय कहताती है, किन्तु यहाँ नरक आदि क्षेत्र को अप्राप्त जीव नरकायु आदि के प्रथम समय कं संवेदनकाल से ही नारकत्व आदि कहलाने लगता है। अतः उस-उस गित के आयुष्यकर्म की अनुभूति को ही स्थिति मानी गई है। आयुष्यकर्म की अनुभूति (आयु) सिर्फ संसारी जीवों को ही होती है, इसिलए इस पद में संसारी जीवों को स्थिति का विचार किया गया है। सिद्ध तो सादि-अपर्यवसित होते हैं, अतः उनकी आयु का विचार अप्राप्त होने से नहीं किया गया है तथा अजीवद्रव्य के पर्यायों की स्थिति का भी विचार इस पद में नहीं किया गया है, क्योंकि अजीवों के पर्याय जीवों की तरह आयु की अनुभूति पर आश्रित नहीं हैं और न उनके पर्याय जीवों की आयु की तरह काल की दृष्टि से अमुक सीमा में निर्धारित किये जा सकते हैं।
- 🗖 स्थिति (आयु) का विचार यहाँ सर्वत्र जघन्य और उत्कृष्ट, दो प्रकार से किया गया है।
- ☐ प्रस्तुत पद में स्थिति का निर्देशक्रम इस प्रकार है सर्वप्रथम जीव की उन-उन सामान्य पर्यायों को लेकर, तत्पश्चात् उनके पर्याप्तक और अर्पाप्तक भेद करके आयु का विचार किया गया है। रि

१. 'स्थीयते-अवस्थीयते अनया आयुःकर्मानुभूत्येति स्थितिः।'
 स्थितिरायुः कर्म्मानुभूतिर्जीवनिमिति पर्यायः।—प्रज्ञापना, म. वृत्ति, पृ. १६९

२. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १६९ (ख) पण्णवणा, भा. २ प्रस्तावना, पृ. ५८

□ इस पद में सर्वप्रथम सामान्य नारक, तत्पश्चात् रत्नप्रभादि विशिष्ट नारकों की, भवनवासी देवों की, पृथ्वीकायादि पांच स्थावरों की, द्वीन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रियों की, विभिन्न पंचेन्द्रियतियंचों की, फिर विविध मनुष्यों की, समस्त वाणाव्यन्तर देवों की, समस्त ज्योतिष्कदेवों की, तत्पश्चात् वैमानिक देवों की एवं नौ ग्रैवेयक तथा पंच अनुत्तरिवमानवासी देवों की स्थिति का निरूपण किया गया है। स्थिति विषयक पाठ पर से फिलत होता है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री की स्थिति (आयु) कम है। नारकों और देवों की स्थिति मनुष्य और तिर्यंच की अपेक्षा अधिक है। एकेन्द्रिय में तेजस्कायिक की सबसे कम और पृथ्वीकायिक की स्थिति सबसे अधिक है। द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय की तथा चतुरिन्द्रिय से भी त्रीन्द्रिय की स्थिति कम मानी गई है, रहस्य केविलगम्य है।

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. ११२ से (ख) पण्णवणासुत्तं भा. २, परिशिष्ट पृ. ५८

चउत्थं ठिइपयं

चतुर्थ स्थितिपद

नैरियकों की स्थित की प्ररूपणा

३३५. [१] नेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

[३३५-१ प्र.] भगवन्! नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३५-१ उ.] गौतम! उनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही गई है।

[२] अपञ्जत्तयनेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३३५-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३५-२ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

[३] पञ्जत्तयणेरइयाणं भंते! केवतियं काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहूत्तूणाइं।

[३३५-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३५-३ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है।

३३६. [१] रयणप्पभापुढिवनेरइयाणं भंते! केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सागरोवमं।

[३३६-१ प्र.] भगवन्! रत्नप्रभापृथ्वी के नारकों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३३६-१ उ.] गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम की कही गई है।

[२] अपञ्जत्तयस्यणप्यभापुढविनेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३३६-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक-रत्नाप्रभापृथ्वी के नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३६-२ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की कई गई है। [३] पञ्जत्तयरयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहत्तूणाइं, उक्कोसेणं सागरोवमं अंतोमहत्त्तणं।

[३३६-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी के नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३६-३] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की कही गई है।

३३७. [१] सक्करप्पभापुढिवनेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं सागरोवमं, उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं।

[३३७-१ प्र.] भगवन्! शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरियकों की कितने काल की स्थिति कही गई है ? [३३७-१ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य सागरोपम की और उत्कृष्ट तीन सागरोपम की कही गई है।

[२] अपञ्जत्तयसक्करप्पभापुढिवनेरइयाणं भंते! केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

[३३७-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकों की कितने काल की स्थिति कही गई है?

[३३७-२] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयसक्करप्पभापुढिवनेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमं अंतोमुहूत्तूणं, उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३३७-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक- शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३७-३] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन सागरोपम की (कही गई) है।

३३८. [१] वालुयप्पभापुढिविनेरइयाणं भंते! केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं।

[३३८-१ प्र.] भगवन्! वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३३७-१] गौतम! जघन्य तीन सागरोपम की और उत्कृष्ट सात सागरोपम की है।

[२] अपञ्जत्तयवालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

[३३८-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक-वालुकाप्रभापृथ्वी के नारकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३८-२] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहुर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयवालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३३८-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक-वालुकाप्रभापृथ्वी के नारकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३८-३] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की है।

३३९. [१] पंकप्पभापुढिवनेरइयाणं भंते! केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं।

[३३९-१ प्र.] भगवन्! पंकप्रभापृथ्वी के नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३९-१] गौतम! जघन्य सात सागरोपम की और उत्कृष्ट दस सागरोपम की है।

[२] अपञ्जत्तयपंकप्पभापुढिविनेरइयाणं भंते! केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं , उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

[३३९-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक-पंकप्रभापृथ्वी के नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३९-२] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयपंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३३९-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक-पंकप्रभापृथ्वी के नारकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३८-३] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की है।

३४०. [१] धूमप्पभापुढिवनेरइयाणं भंते! केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं।

[३४०-१ प्र.] भगवन्! धूमप्रभापृथ्वी के नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४०-१] गौतम! जघन्य दस सागरोपम की और उत्कृष्ट सत्रह सागरोपम की है।

[२] अपञ्जत्तयधूमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

[३४०-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त धूमप्रभापृथ्वी के नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४०-२] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयधूमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४०-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक धूमप्रभापृथ्वी के नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई

[३४०-३] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहुर्त्त कम दस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्तरह सागरोपम की है।

३४१. [१] तमप्पभापुढिवनेरइयाणं भंते! केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं।

[३४१-१ प्र.] भगवन्! तप:प्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४१-१] गौतम! जघन्य सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की है।

[२] अपञ्जत्तयतमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

[३४१-२ प्र.] भगवन्! तम:प्रभापृथ्वी अपर्याप्तक नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४१-२] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहुर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयतमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४१-३ प्र.] भगवन्! तम: प्रभापृथ्वी पर्याप्तक नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४१-३] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहुर्त्त कम सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की है। चतुर्थं स्थितिपद] [३२१

३४२. [१] अधेसत्तमपुढिविनेरइयाणं भंते! केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

[३४२-१ प्र.] भगवन्! अधःसप्तम (तमस्तमः प्रभा)के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३४२-१] गौतम! जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की (कही गई)है। [२] अपज्जत्तयअधेसत्तमपुढिवनेरइयाणं भंते! केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

[३४२-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक अध:सप्तम (तमस्तम:प्रभा) पृथ्वी के नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४२-२] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयअधेसत्तपुढिवनेरइयाणं भंते! केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४२-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक अध:सप्तमपृथ्वी के नैरियकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४२-३] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहुर्त्त कम बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है।

विवेचन—नैरियकों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. ३३५ से ३४२ तक) में सामान्य नारकों, सात नरकभूमियों में रहने वाले नारकों और फिर उनके अपर्याप्तकों तथा पर्याप्तकों की स्थिति पृथक्-पृथक् प्ररूपित की गई है।

अपर्याप्तदशा और पर्याप्तदशा—अन्य संसारी जीवों की तरह नैरियकों की भी दो दशाएँ हैं — अपर्याप्तदशा और पर्याप्तदशा। अपर्याप्तदशा दो प्रकार से होती है—लब्धि से और करण से। नारक, देव तथा असंख्यातवर्षों की आयु वाले तिर्यंञ्च एवं मनुष्य करण से ही अपर्याप्त होते हैं, लब्धि से नहीं। ये उपपात काल में ही कुछ काल तक करण से अपर्याप्त समझने चाहिए। शेष तिर्यञ्च या मनुष्य लब्धि और करण—दोनों प्रकार से उपपातकाल में अपर्याप्तक हो सकते हैं। यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अपर्याप्तक अवस्था जघन्यत और उत्कृष्टतः अन्तर्मृहूर्त्त तक ही रहती है। उसके बाद पर्याप्तदशा आ जाती है। इसलिए सामान्य स्थिति में से अपर्याप्तदशा की अन्तर्मृहूर्त्त की स्थिति को कम कर देने पर शेष स्थिति पर्याप्तकों की रह जाती है। जैसे—प्रथम नरकपृथ्वी में सामान्य स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक सारोगपम की है। इसमें से अपर्याप्तदशा की अन्तर्मृहूर्त्त की स्थिति कम कर देने पर

पर्याप्त अवस्था की जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की होती है। आगे भी सर्वत्र इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।^१

पूर्व-पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति, आगे-आगे की जघन्य—पहले-पहले की नरकपृथ्वी की जो उत्कृष्ट स्थिति है, वही अगली-अगली नरकपृथ्वी की जघन्य स्थिति है। जैसे—प्रथम रत्नप्रभापृथ्वी की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की है, वही द्वितीय शर्कराप्रभापृथ्वी की जघन्य स्थिति है।

देवों और देवियों की स्थित की प्ररूपणा

३४३. [१] देवाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्पात्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

[३४३-१ प्र.] भगवन् ! देवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३४३-१ उ.] गौतम! (देवों की स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

[२] अपञ्जत्तयदेवाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४३-२ प्र.] भगवन! अपर्याप्तक देवों की कितने काल की स्थित कही गई है ?

[३४३-२] गौतम! जघन्य अन्तर्मृहुर्त्त की है, उत्कृष्ट भी अन्तर्मृहुर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयदेवाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४३-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक-देवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३४३-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है।

३४४. [१] देवीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं।

[३४४-१ प्र.] भगवन् ! देवियों की स्थिति कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १७०

⁽ख) नारगदेवा तिरिमणुयगब्भजा जे असंखवासाऊ। एए अप्पञ्जता उववाए चेव बोद्धव्वा ॥१॥

ऐसेसा य तिरियमणुया लद्धिं पप्पोववायकाले य। दुहओ वि य भयइयव्वा पञ्जत्तियरे य जिणवयणे॥ २॥

—प्रज्ञापना. मलय् वृत्ति, प. १७० उद्धृत

२. प्रज्ञापनासूत्र, प्रमेयबोधिनी टीका भा. २ पृ. ४५०

चतुर्थ स्थितिपद] [३२३

[३४३-१ उ.] गौतम! (देवियों की स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है।

[२] अपञ्जत्तयदेवीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४४-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल तक की स्थिति कही गई है?

[३४४-२] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयदेवीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पणपण्णं पिलओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४४-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक-देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४४-३ उ.] गौतम! (पर्याप्तक देवियों की स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की है।

विवेचन—देवों और देवियों की स्थित का निरूपण— प्रस्तुत दो सूत्रों [सू. ३४३-३४४] द्वारा देवों, देवियों और उनके अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों की स्थित का निरूपण किया गया है।

निष्कर्ष—देवों की अपेक्षा देवियों की स्थिति (आयु) कम है, यह इस पाठ पर से फलित होता है।

भवनवासियों की स्थिति की परूपणा

३४५. [१] भवणवासीणं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं।

[३४५-१ प्र.] भगवन् ! भवनवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४५-१ उ.] गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सागरोपम की है।

[२] अपञ्जत्तयभवणवासीणं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४५-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक भवनवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३४५-२] गौतम! जघन्य अन्तर्मृहुर्त्त की और, उत्कृष्ट भी अन्तर्मृहुर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयभवणवासीणं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणाइं। [३४५-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक भवनवासी देवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है? [३४३-३ उ.] गौतम! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक सागरोपम की है।

३४६. [१] भवणवासिणीणं भंते! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं।

[३४६-१ प्र.] भगवन् ! भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४६-१ उ.] गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट साढे चार पल्योपम की है।

[२] अपञ्जित्तयाणं भंते! भवणवासिणीणं देवीणं केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४६-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है? [३४६-२] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जित्तयाणं भंते! भवणवासिणीणं देवीणं केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४६-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है? [३४६-३ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की, और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम साढ़े चार पल्योपम की है।

३४७. [१] असुरकुमाराणं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं।

[३४७-१ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३४७-१ उ.] गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम की है।

[२] अपञ्जत्तयअसुरकुमाराणं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४७-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त असुरकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है? [३४७-२] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तअसुरकुमाराणं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणं। [३४७-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक असुरकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ? [३४७-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की, और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक सागरोपम की है।

३४८. [१] असुरकुमाराणं भंते! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं ।

[३४८-१ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४८-१ उ.] गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट साढ़े चार पल्योपम की है।

[२] अपञ्जित्तयाणं असुरकुमारीणं भंते! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४८-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त असुरकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है? [३४८-२] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की हैं, और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जित्तयाणं असुरकुमारीणं भंते! देवीणं केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४८-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक असुरकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है? [३४८-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की, और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम साढे चार पल्योपम की है।

३४९. [१] णागकुमाराणं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसुणाइं।

[३४९-१ प्र.] भगवन्! नागकुमार देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४९-१ उ.] गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) दो पल्योपमों की है।

[२] अपञ्जत्तयाणं भंते! णागकुमाराणं देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४९-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त नागकुमारों की स्थिति कितने काल तक की कही गई हैं ?

[३४९-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयाणं भंते! णागकुमाराणं देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणाइं अंतोमुहुत्तूणाइं। [३४९-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त नागकुमारों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ? [३४९-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन दो पल्योपम की है।

३५०. [१] नागकुमारीणं भंते! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं ।

[३५०-१ प्र.] भगवन् ! नागकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[३५०-१ उ.] गौतम? जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की है।

[२] अपञ्जित्तयाणं णागकुमारीणं भंते! देवीणं केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५०-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त नागकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कहीं गई है? [३५०-२ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जित्तयाणं णागकुमारीणं भंते! देवीणं केवितयं काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३५०-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त नागकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[३५०-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम में अन्तर्मुहूर्त्त कम की है।

३५१. [१] सुवण्णकुमाराणं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणाइं।

[३५१-१ प्र.] भगवन्! सुपर्ण (सुवर्ण) कुमार देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[३५१-१ उ.] गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की है।

[२] अपञ्जत्तियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५१-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक सुपर्णकुमार देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है? [३५१-२ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दो पिलओवमाइं देसूणाइं अंतोमुहुत्तूणाइं। [३५१-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक सुपर्णकुमार देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५१-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन दो पल्योपम की है।

३५२. [१] सुवण्णकुमारीणं भंते! देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं।

[३५२-१ प्र.] भगवन्! सुपर्णकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५२-१ उ.] गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की है।

[२] अपञ्जत्तियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५२-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५२-२ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] पञ्जत्तियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[३५२-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त सुपर्णकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५२-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन पत्योपम की है।

३५३. एवं एएणं अभिलावेणं ओहिय-अपज्जत्त-पञ्जत्तसुत्तत्तयं देवाण य देवीण य णेयव्वं जाव थणियकुमाराणं जहा णागकुमाराणं (सु. ३४९)।

[३५३] इस प्रकार इस अभिलाष से (इसी कथन के अनुसार) औधिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक के तीन-तीन सूत्र (आगे के भवनवासी) देवों और देवियों के विषय में, यावत् स्तनितकुमार तक नागकुमारों (के कथन) की तरह समझ लेना चाहिए।

विवेचन—सामान्य देव-देवियों तथा भवनवासी देव-देवियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों (सू. ३४३ से ३५३ तक) में सामान्य देव-देवियों, औधिक भवनवासी देव-देवियों तथा असुरकुमार से स्तनितकुमार देव-देवियों (पर्याप्तक-अपर्याप्तकसहित) तक की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया गया है।

एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा

३५४. [१] पुढविकाइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहूत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं।

[३५४-१ प्र.] भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति बताई गई हैं ?

[३५४-१ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है।

[२] अपञ्जत्तयपुढिवकाइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिणी पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५४-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति बताई गई है ?

[३५४-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयपुढविकाइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३५४-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों की कितने काल तक कि स्थिति कही गई

[३५४-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस हजार वर्ष की है।

३५५. [१] सुहुमपुढिवकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५५-१ प्र.] भगवन्! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है? [३५५-१ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहर्त्त की है।

[२] अपञ्जत्तयसुहुमपुढविकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५५-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५५-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयसुहुमपुढिवकाइग्राणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५५-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५५-३ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

३५६. [१] बादरपुढिवकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं ।

[३५६-१ प्र.] भगवन्! बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[३५६-१ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है ।

[२] अपञ्जत्तयबादरपुढिवकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५६-२ प्र.] भगवन्! बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक जीवों की स्थित कितने काल की कही गई है?

[३५६-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मृहर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयबादरपुढिवकाइयाणं पुच्छा।

. गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३५६-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५६-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहुर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस हजार वर्ष की है। ३५७. [१] आउकाइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं।

[३५७-१ प्र.] भगवन्! अप्कायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३५७-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है।

[२] अपञ्जत्तयआउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५७-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त अप्कायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३५७-२ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयआउकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३५७-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

है।

है।

[३५७-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात हजार वर्ष की है।

३५८. सुहुमआउकाइयाणं ओहियाणं अपञ्जत्तयाण पञ्जत्तयाण य जहा सुहुमपुढिवकाइयाणं (सु. ३५५) तहा भाणितव्वं।

[३५८] सूक्ष्म अप्कायिकों के औधिक (सामान्य), अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों की स्थिति जैसी सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों की (सू. ३५५ में) कही, वैसी कहनी चाहिए।

३५९. [१] बादरआउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं।

[३५९-१ प्र.] भगवन्! बादर अप्कायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५९-१ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की

[२] अपञ्जत्तयबादरआउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५९-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई

[३५९-२ उ.] गौतम (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है। [३] पञ्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३५९-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है? [३५९-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात हजार वर्ष की

३६०. [१] तेउकाइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि रातिंदियाइं।

[३६०-१ प्र.] भगवन्! तेजस्कायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ? [३६०-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन रात्रि-दिन (अहोरात्र) की है।

[२] अपञ्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६०-२ प्र.] भगवन्! तेजस्कायिक अपर्याप्तकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३६०-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है। [३] पञ्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहूत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि रातिंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६०-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६०-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त को तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन रात्रि-दिन की है। ३६१. सुहुमतेउकाइयाणं ओहियाणं अपञ्जत्तयाणं पञ्जत्तयाण य जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६१] सूक्ष्म तेजस्कायिकों के औषिक (सामान्य), अपर्याप्त और पर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मृहूर्त्त की है।

३६२. [१] बादरतेउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि रातिंदियाइं।

[३६२-१ प्र.] भगवन्! बादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है? [३६२-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहुर्त्त की और उत्कृष्ट तीन रात्रिदिन की है।

[२] अपज्जत्तयबादरतेउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६२-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है।

[३६२-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि रातिंदियाईं अंतोमुहुत्तूणाईं।

[३६२-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६२-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन रात्रि-दिन की है। ३६३. [१] वाउकाइयाणं भंते! केवितयं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं।

[३६३-१ प्र.] भगवन्! वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ? [३६३-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है।

[२] अपञ्जत्तयवाउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६३-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है? [३६३-२ उ.] गौतम! (उनकी) जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६३-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ? [३६३-३ उ.] गौतम! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन हजार वर्ष की है।

३६४. [१] सुहुमवाउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६४-१ प्र.] भगवन्! सूक्ष्म वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है। [३६४-१ उ.] गौतम! (उनकी) जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[२] अपञ्जत्तयसुहुमवाउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६४-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है? [३६४-२ उ.] गौतम! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट (स्थिति) भी अन्तर्मुहुर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६४-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६४-३ उ.] गौतम! उनकी जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

३६५. [१] बादरवाउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि वाससहस्साइं।

[३६५-१ प्र.] भगवन्! बादर वायुकायिकों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ? [३६५-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है।

[२] अपञ्जत्तबादरवाउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६५-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६५-२ उ.] गौतम! जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त्त तक की होती है।

[३] पञ्जत्तयबादरवाउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६५-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६५-३ उ.] गौतम! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन हजार वर्ष की है।

३६६ [१] वणप्फइकाइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं।

[३६६-१ प्र.] भगवन्! वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[३६६-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।

[२] अपञ्जत्तवणप्फइकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोम्हत्तं।

[३६६-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-२ उ.] गौतम! उनकी जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयवणप्फइकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३६६-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक वनस्पितकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-३ उ.] गौतम! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है।

३६७. सुहुमवणप्फड़काइयाणं ओहियाणं अपञ्जत्ताणं पञ्जत्ताण य जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहृत्तं। [३६७] सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों के औधिक, अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों की स्थिति जघन्यत: और उत्कृष्टत: अन्तर्मुहूर्त्त की है।

३६८. [१] बादरवणप्फइकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं।

[३६८-१ प्र.] भगवन्! बादर वनस्पतिकृियक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है? [३६८-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।

[२] अपञ्जत्तबादरवणप्फइकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६८-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही है?

[३६८-२ उ.] गौतम! उनकी जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तबादरवणप्फइकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६८-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६८-३ उ.] गौतम! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है।

विवेचन—एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति की प्ररूपणा—प्रस्तुत १५ सूत्रों (सू. ३५४ से ३६८ तक) में पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय तक औधिक, अपर्याप्तक, पर्याप्तक, सूक्ष्य, बादर आदि भेदों की स्थिति की पृथक्-पृथक् प्ररूपणा की गई है।

इनमें तेजस्कायिक जीवों की तीन अहोरात्रि की उत्कृष्ट स्थिति बताई गई है, उसका रहस्य यह है कि तेजस्कायिक जीव अग्नि के रूप में जलते और बुझते प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। इसी कारण अन्य एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा आयुष्य अत्यन्त अल्प है।

द्वीन्द्रिय जीवों की स्थित-प्ररूपणा

३६९. [१] बेइंदियाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पप्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहत्तं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं।

[३६९-१ प्र.] भगवन्! द्वीन्द्रिय जीवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३६९-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बारह वर्ष की है।

[२] अपञ्जत्तबेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६९-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है?

[३६९-२ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मृहूर्त की है।

[३] पञ्जत्तबेइंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६९-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६९-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बारह वर्ष की है।

त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा

३७०. [१] तेइंदियाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं एगूणवण्णं रातिंदियाई ।

[३७०-१ प्र.] भगवन्! त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७०-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट उनपचास रात्रि दिन की है।

[२] अपज्जत्ततेइंदियाणं पच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोम्हत्तं।

[३७०-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७०-२ उ.] गौतम! (उनकी) जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्ततेइंदियाणं पच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं एगूणवण्णं रातिंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३७०-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[३७०-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम उनपचास रात्रि-दिन की है।

चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा

३७१. [१] चउरिंदियाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छम्मासा।

[३७१-१ प्र.] भगवन्! चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७१-१ उ.] गौतम! इनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति छह मास की है।

[२] अपञ्जत्तयचरिदियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७१-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ? [३७१-२ उ.] गौतम! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयचउरिदियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छम्मासा अंतोमुहुत्तूणा।

[३७१-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है? [३७१-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहुर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहुर्त्त कम छह मास की है।

विवेचन—विकलेन्द्रियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. ३६९ से ३७१ तक) में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के औधिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया गया है।

पंचेंन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति-प्ररूपणा

३७२. [१] पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहृत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

[३७२-१ प्र.] भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई

[३७२-१ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

[२] अपञ्जत्तयपंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७२-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[३७२-२ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तगपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३७२-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७२-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

३७३. [१] सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

[३७३-१ प्र.] भगवन्! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७३-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि (करोड़ पूर्व) की है।

[२] अपञ्जत्तयसम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७३-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७३-२ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयसम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३७३-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७३-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३७४. [१] गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

[३७४-१ प्र.] भगवन्! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७४-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

[२] अपञ्जत्तयगब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७४-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तगर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७४-२ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

[३] पञ्जत्तयगब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तृणाइं।

[३७४-३ प्र.] भगवन्! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की है?

[३७४-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की कही गई है।

३७५. [१] जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहत्तं, उक्कोसेणं पुळाकोडी।

[३७५-१ प्र.] भगवन्! जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की कितने काल की स्थिति कही गई है?

[३७५-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है।

[२] अपञ्जत्तयजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७५-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की कितनी स्थिति कही गई है?

[३७५-२ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुळ्कोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३७५-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७५-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३७६. [१] सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[३७६-१ प्र.] भगवन्! सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७६-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है।

[२] अपञ्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७६-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७६-२ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३७६-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७६-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है। ३७७. [१] गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा। गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[३७७-१ प्र.] भगवन्! गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७७-१ उ.] गौतम! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि (करोड़ पूर्व) की है।

[२] अपञ्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहूत्तं।

[३७७-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही है ?

[३७७-२ उ.] गौतम! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा। गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३७७-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३७७-३ उ.] गौतम! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की एवं उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३७८. [१] चडप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

[३७८-१ प्र.] भगवन्! चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७८-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

[२] अपञ्जत्तयचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७८-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७८-२ उ.] गौतम! जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] पञ्जत्तयचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३७८-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७८-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है। ३७९. [१] सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं चउरासीइं वाससहस्साइं।

[३७९-१ प्र.] भगवन्! सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७९-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की एवं उत्कृष्ट चौरासी हजार वर्ष की है।

[२] अपञ्जत्तयसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा। गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७९-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३७९-२ उ.] गौतम! जघन्य स्थिति भी और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मृहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहत्तं, उक्कोसेणं चउरासीइं वाससहस्साइं अंतोमुहतूणाइं।

[३७९-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक सम्मूर्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम चौरासी हजार वर्ष की है।

३८०. [१] गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खरजोणियाणं पुच्छा। गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

[३८०-१ प्र.] भगवन्! गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[३८०-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

[२] अपज्जतयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा। गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं

[३८०-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३८०-२ उ.] गौतम! जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तगगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा। गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३८०-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्धञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३८०-३ उ.] गौतम! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है और उत्मृष्ट अन्तर्मूहूर्त कम तीन पल्योपम की है।

३८१. [१] उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुळ्कोडी।

[३८१-१ प्र.] भगवन्! उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८१-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है ।

[२] अपञ्जत्तयउरपरिसप्पथलयरपंचेदियतिरिक्खजेणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३८१-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८१-२ उ.] गौतम! उनकी जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तगउरपरिसप्पथलयरपंचेदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा। गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३८१-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८१-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की, और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३८२. [१] सम्मुच्छिमसामण्णपुच्छा कायव्वा ।

गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं ।

[३८२-१ प्र.] भगवन्! सामान्य सम्मूर्च्छिम उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

- [३८२-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट तिरेपन हजार वर्ष की है ।
- [२] सम्मुच्छिमअपञ्जत्तगउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३८२-२ प्र.] भगवन्! सम्मूर्च्छिम अपर्याप्तक उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८२-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] पञ्जत्तगसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा। गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहृत्तं, उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं अंतोमुहृत्तूणाइं।

[३८२-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की स्थिति कितने काल की कही गर्ड्स है ?

[३८२-३ उ.] गौतम! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तिरेपन हजार वर्ष की है।

३८३. [१] गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहृत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

[३८३-१ प्र.] भगवन्! गर्भज उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८३-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि (करोड़पूर्व) की है।

[२] अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा। गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३८३-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त गर्भज उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३८३-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३८३-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त गर्भज उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है।

[३८३-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३८४. [१] भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुळ्कोडी।

[३८४-१ प्र.] भगवन्! भुजपिरसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८४-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है।

[२] अपञ्जत्तयभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३८४-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८४-२ उ.] गौतम! (उनकी) जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहणेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुळ्कोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

·[३८४-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८४-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३८५. [१] सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं।

[३८५-१ प्र.] भगवन्! सम्मूर्च्छिम भुजपिरसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८५-१ उ.] गौतम! (उनकी) जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा उत्कृष्ट स्थिति बयालीस हजार वर्ष की है।

[२] अपञ्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहृत्तं।

[३८५-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपिरसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८५-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बायालीसं बाससहस्साई अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३८५-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों

की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८५-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बयालीस हजार वर्ष की है।

३८६. [१] गब्भक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा। गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुळकोडी।

[३८६-१ प्र.] भगवन्! गर्भज भुजपिरसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३८६-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है।

[२] अपञ्जत्तयगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३८६-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८६-२ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३८६-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८६-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मृहूर्त्त की है, उत्कृष्ट अन्तर्मृहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है। ३८७. [१] खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पिलओवमस्स असंखेज्जइभागो।

[३८७-१ प्र.] भगवन्! खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[३८७-१उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्येयभाग की है।

[२] अपञ्जत्तयखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३८७-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही है ?

[३८७-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है। [६] पज्जत्तयखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो अंतोमुहुत्तूणो।

[३८७- ३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[३८७-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है।

३८८. [१] सम्मुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावत्तरि वाससहस्साइं।

[३८८-१ प्र.] भगवन्! सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८८-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहुर्त्त की है और उत्कृष्ट बहत्तर हजार वर्ष की है।

[२] अपञ्जत्तयसम्मुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३८८-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८८-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है, और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[६] पज्जत्तयखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावत्तरि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३८८-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८८-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तमुहुर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बहत्तर हजार वर्ष की है।

३८९. [१] गब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागो।

[३८९-१ प्र.] भगवन्! गर्भज-खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८९-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है।

[२] अपञ्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहत्तं।

[३८९-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८९-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उंत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पिलओवमस्स असंखेन्जइभागो अंतोमुहुत्तूणो ।

[३८९-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८९-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है।

विवेचन—तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों की स्थित का निरूपण—प्रस्तुत १८ सूत्रों (सू. ३७२ से ३८९) में तिर्यञ्च जीवों के विभिन्न प्रकारों की स्थित का निरूपण किया गया है।

मनुष्यों की स्थिति की प्ररूपणा

३९०. [१] मणुस्साणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

[३९०-१ प्र.] भगवन्! मनुष्यों की कितने काल तक की स्थित कही गई है ?

[३९०-१ उ.] गौतम! (मनुष्यों की स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

[२] अपञ्जत्तगमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९०-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक मनुष्यों की स्थिति कितने काल की है ?

[३९०-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयमणुस्साणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३९०-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९०-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

३९१. सम्मुच्छिममणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

[३९१ प्र.] भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९१ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है। ३९२. [१] गब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमृहत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

[३९२-१ प्र.] भगवन्! गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९२-१ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

[२] अपन्जत्तयगब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९२-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९२-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयगब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पिलओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३९२-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

ं [३९२-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

विवेचन—मनुष्यों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. ३९० से ३९२ तक) में सामान्य, अपर्याप्तक, पर्याप्तक, सम्मूर्च्छिम तथा गर्भज (औधिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक) मनुष्यों की स्थिति का निरूपण किया गया है।

वाणव्यंतर देवों की स्थिति-प्ररूपणा

३९३. [१] वाणमंतराणं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं पलिओवमं।

[३९३-१ प्र.] भगवन्! वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९३-१ उ.] गौतम! (वाणव्यन्तर देवों की स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की है, उत्कृष्ट एक पल्योपम की है।

[२] अपञ्जत्तयवाणमंतराणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९३-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[३९३-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहुर्त्त की है ।

[३] पञ्जत्तयाणं वाणमंतराणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९३-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है? [३९३-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है।

३९४. [१] वाणमंतरीणं भंते! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं।

[३९४-१ प्र.] भगवन्! वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९४-१ उ.] गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम की है।

[२] अपञ्जत्तियाणं भंते! वाणमंतरीणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९४-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ? [३९४-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मृहर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मृहर्त्त की है।

[३] पञ्जित्तयाणं भंते! वाणमंतरीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९४-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९४-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्ध पल्योपम की है।

विवेचन—वाणव्यन्तर देव-देवियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ३९३-३९४) में वाणव्यन्तर देवों तथा देवियों (औधिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक) की स्थिति का निरूपण किया गया है।

ज्योतिष्क देवों की स्थिति-प्ररूपणा

३९५. [१] जोइसियाणं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमट्टभागो, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भिहियं।

[३९५-१ प्र.] भगवन्! ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३९५-१ उ.] गौतम! (उनकी) जघन्य स्थिति पल्योपम का आठवां भाग है और उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम की है।

[२] अपञ्जत्तयजोइसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९५-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ? [३९५-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयजोइसियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं पिलओवमट्टभागो अंतोमुहुत्तूणो, उक्कोसेणं पिलओवमं वाससतसहस्स-मन्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९५-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९५-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।

३९६. [१] जोइसिणीणं भंते! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं पिलओवमट्टभागो, उक्कोसेणं अद्भपितओवमं पण्णासबा-ससहस्समब्भिहियं।

[३९६-१ प्र.] भगवन्! ज्योतिष्क देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९६-१ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है।

[२] अपञ्जत्तियाणं जोइसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहत्तं।

[३९६-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्त ज्योतिष्क देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९६-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तियाणं जोइसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं पिलओवमट्टभागो अंतोमुहुत्तूणो, उक्कोसेणं अद्धपिलओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भिहियं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९६-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त ज्योतिष्क देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९६-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है।

३९७. [१] चंदविमाणे णं भंते! देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं , उक्कोसेणं, पलिओवमं वाससतसहस्समब्भिहयं ।

[३९७-१ प्र.] भगवन्! चन्द्रविमान में देवों की स्थिति कितने काल की है?

[३९७-१ उ.] गौतम! जघन्य पल्योपम का चौथाई भाग है, उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम का है।

[२] चंदिवमाणे णं भंते! अपज्जत्तयदेवाणं पुच्छा। गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमहत्तं। [३९७-२ प्र.] भगवन्! चन्द्रविमान में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३९७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] चंदविमाणे णं पजन्तयाणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपिलओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पिलओवमं वाससतसहस्स-मब्भिहिय अंतोमुर्हुतूणं।

[३९७-३ प्र.] भगवन्! चन्द्रविमान में पर्याप्त देवों की स्थिति कितनी कही गई है ?

[३९७-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।^१

३९८. [१] चंदविमाणे णं भंते! देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपिलओवमं, उक्कोसेणं अद्धपिलओवमं पण्णासाए वाससहस्से-हिमब्भिहियं ॥

[३९८-१ प्र.] भगवन्! चन्द्रविमान में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३९८-१ उ.] गौतम! जघन्य पल्योपम का चतुर्थ भाग है और उत्कृष्ट पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है।

[२] चंदविमाणे णं भंते! अपञ्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमहत्तं।

[३९८-२ प्र.] भगवन्! चन्द्रविमान में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३९८-२ उ.] गौतम! (उनकी) जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] चंदविमाणे णं पज्जित्तयाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपिलओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपिलओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भिहियं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९८-३ प्र.] भगवन्! चन्द्रविमान में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९८-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है।

३९९. [१] सुरविमाणे णं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

१. चन्द्रविमान में चन्द्रमा उत्पन्न होता है, इसलिए वह चन्द्रविमान कहलाता है। चन्द्रविमान में चन्द्र के अतिरिक्त सभी उसके परिवारभूत देव होते हैं। उन परिवारभूत देवों की जघन्य स्थित पल्योपम का चतुर्थभाग और उत्कृष्ट किन्हीं इन्द्र, सामानिक आदि की लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है। चन्द्रदेव की उत्कृष्ट स्थिति तो मूलपाठ में उक्त है ही। इसी प्रकार सूर्यादि के विमानों के विषय में समझ लेना चाहिए।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपिलओवमं, उक्कोसेणं पिलओवमं वाससहस्समब्भिहियं।

[३९९-१ प्र.] भगवन्! सूर्यविमान में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९९-१ उ.] गौतम! जघन्य पल्योपम के चौथाई भाग की और उत्कृष्ट एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।

[२] सूरविमाणे अपन्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९९-२ प्र.] भगवन्! सूर्यविमान में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ? [३९९-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सूरविमाणे पञ्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणां चउभागपितओवमं अंतोमुहुत्तूणां, उक्कोसेणां पितओवमं वाससहस्समब्भिहियं अंतोमुहुत्तूणां।

[३९९-३ प्र.] भगवन्! सूर्यविमान में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९९-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थभाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।

४०० [१] सूरविमाणे देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णोणं चउभागपिलओवमं, उक्कोसेणं अद्धपिलओवमं पंचिहं वाससतेहिमञ्भिहयं।

[४००-१ प्र.] भगवन्! सूर्यविमान में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४००-१ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) पत्योपम के चतुर्थभाग की है और उत्कृष्ट पांच सौ वर्ष अधिक अर्द्धपत्योपम की है।

[२] सूरविमाणे अपञ्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहत्तं।

[४००-२ प्र.] भगवन्! सूर्यविमान में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है? [४००-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मृहुर्त्त की है।

[३] सूरविमाणे पञ्जित्तयाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपिलओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपिलओवमं पंचिहं वाससतेहिं अब्भिहियं अंतोमुहुत्तूणं।

[४००-३ प्र.] भगवन्! सूर्यविमान में पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है? [४००-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहुर्त्त कम पल्योपम के चौथाई भाग की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहुर्त्त कम पांच सौ वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम की है।

४०१. [१] गहविमाणे देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं।

[४०१-१ प्र.] भगवन्! ग्रहविमान में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[४०१-१ उ.] गौतम! जघन्य पल्योपम के चौथाई भाग की है और उत्कृष्ट एक पल्योपम की है।

[२] गहविमाणे अपञ्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०१-२ प्र.] भगवन्! ग्रहविमान में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०१-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] गहविमाणे पञ्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[४०१-३ प्र.] भगवन्! ग्रहविमान में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[४०१-३ उ.] गौतम! (उनकी) जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है।

४०२. [१] गहविमाणे देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं।

[४०२-१ प्र.] भगवन्! ग्रहविमान में देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०२-१ उ.] गौतम! जघन्य पल्योपम के चतुर्थभाग की और उत्कृष्ट अर्द्धपल्योपम की है।

[२] गहविमाणे अपञ्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०२-२ प्र.] भगवन्! ग्रहविमान में कितने काल की स्थिति अपर्याप्त देवियों की कही है ? [४०२-२] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहुर्त्त की है।

[३] पञ्जित्तयाणं गहविमाणे देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[४०२-३ प्र.] भगवन्! ग्रहविमान में पर्याप्तक देवियों की कितने काल तक की स्थिति कही है?

[४०२-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्धपल्योपम की है।

४०३. [१] णक्खत्तविमाणे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं।

[४०३-१ प्र.] भगवन्! नक्षत्रविमान में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०३-१ उ.] गौतम! जघन्य पल्योपम के चतुर्थभाग की और उत्कृष्ट अर्द्धपल्योपम की है।

[२] णक्खत्तविमाणे अपञ्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमृहत्तं।

[४०३-२ प्र.] भगवन्! नक्षत्रविमान में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[४०३-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] णक्खत्तविमाणे पञ्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपिलओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपितओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[४०३-३ प्र.] भगवन्! नक्षत्रविमान में अपर्याप्त देवों की स्थित कितने काल तक की कही गई है ?

[४०३-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौथाई पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्ध-पल्योपम की है।

४०४. [१] नक्खत्तविमाणे देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं सातिरेगं चउभागपलिओवमं।

[४०४-१ प्र.] भगवन्! नक्षत्रविमान में देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[४०४-१ उ.] गौतम! जघन्य पल्योपम का चतुर्थभाग है और उत्कृष्ट कुछ अधिक चौथाई पल्योपम की है।

[२] णक्खत्तविमाणे अपञ्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहत्तं।

[४०४-२ प्र.] भगवन्! नक्षत्रविमान में अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[४०४-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] नक्खत्तविमाणे पञ्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपिलओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं साितरेगं चउभागपिलओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[४०४-३ प्र.] भगवन्! नक्षत्रविमान में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[४०४-३ उ.] गौतम! जघन्यत: अन्तर्मुहूर्त्त कम चौथाई पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चौथाई भाग से कुछ अधिक की है।

४०५. [१] ताराविमाणे देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अट्टभागपलिओवमं, उक्कोसेणं चउभागपलिओवमं।

[४०५-१ प्र.] भगवन्! ताराविमान में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०५-१ उ.] गौतम! जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट चौथाई पल्योपम की है।

[२] ताराविमाणे अपञ्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

[४०५-२ प्र.] भगवन्! ताराविमान में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०५-२ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] ताराविमाणे पञ्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठभागपिलओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं चउभागपिलओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[४०५-३ प्र.] भगवन्! ताराविमान में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०५-३ उ.] गौतम! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का आठवाँ भाग है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौथाई पल्योपम की है।

४०६. [१] ताराविमाणे देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अटुभागपलिओवमं, उक्कोसेणं सातिरेगं अटुभागपलिओवमं।

[४०६-१ प्र.] भगवन्! ताराविमान में देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०६-१ उ.] गौतम! जघन्य पल्योपम का आठवाँ भाग और उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक की है।

[२] ताराविमाणे अपञ्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४०६-२ प्र.] भगवन्! ताराविमान में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[४०६-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] ताराविमाणे पञ्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अटुभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं सातिरेगं अटुभागपलिओवमं अंतोमुहृत्तूणं।

[४०६-३ प्र.] भगवन्! ताराविमान में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०६-३ उ.] गौतम! जघन्यत: अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग की है और उत्कृष्टत: अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक है। विवेचन—ज्योतिष्क देव-देवियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत बारह सूत्रों (सू. ३९५ से ४०६ तक) में ज्योतिष्क देवों और देवियों के (औधिक, अपर्याप्तकों एवं पर्याप्तकों) की तथा चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा के विमानों के देव-देवियों (औधिक, अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों) की स्थिति का निरूपण किया गया है।

वैमानिक देवों की स्थिति की प्ररूपणा

४०७. [१] वेमाणियाणं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

[४०७-१ प्र.] भगवन्! वैमानिक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०७-१ उ.] गौतम! (वैमानिक देवों की स्थिति) जघन्य एक पल्यापम की है और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

[२] अपञ्जत्तयवेमाणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०७-२ प्र.] भगवन्! अपर्याप्तक वैमानिक देवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[४०७-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पञ्जत्तयवेमाणियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणां, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४०७-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त वैमानिक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[४०७-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है।

४०८. [१] वेमाणिणीणं भंते! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं ।

[४०८-१ प्र.] भगवन्! वैमानिक देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०८-१ उ.] गौतम! जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट पचपन पल्योपमों की है।

[२] अपञ्जत्तियाणं वेमाणिणीणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०८-२ प्र.] भगवन्! वैमानिक अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०८-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] पञ्जित्तयाणं वेमाणिणीणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं पिलओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पणपण्णं पिलओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४०८-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्त वैमानिक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०८-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्यापम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपमों की है।

४०९. [१] सोहम्मे णं भंते! कप्पे देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं दो सागरावमाइं।

[४०९-१ प्र.] भगवन्! सौधर्मकल्प (देवलोक) में, देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०९-१ उ.] गौतम! जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट दो सागरोपम की है।

[२] सोहम्मे कप्पे अपञ्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०९-२ प्र.] भगवन्! सौधर्मकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ? [४०९-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहर्त्त की है।

[३] सोहम्मे कप्पे पञ्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणां, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४०९-३ प्र.] भगवन्! सौधर्मकल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[४०९-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम की है।

४१०. [१] सोहम्मे कप्पे देवीणं पच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेण पण्णासं पलिओवमाइं।

[४१०-१ प्र.] भगवन्! सौधर्मकल्प में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१०-१ उ.] गौतम! जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट पचास पल्योपमों की है।

[२] सोहम्मे कप्पे अपज्जित्तयाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहत्तं।

[४१०-२ प्र.] भगवन्! सौधर्मकल्प में अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१०-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मृहर्त्त की है।

१. ग्रन्थाग्रम् २५००

[३] सोहम्मे कप्पे पञ्जतियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१०-३ प्र.] भगवन्! सौधर्मकाल की पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१०-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास पल्योपमों की है।

४११. [१] सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं।

[४११-१ प्र.] भगवन्! सौधर्मकल्प में परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४११-१ उ.] गौतम! जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट सात पल्योपम की है।

[२] सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं अपन्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहत्तं।

[४११-२ प्र.] भगवन्! सौधर्मकल्प में परिगृहीता अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४११-२ उ.] गौतम! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं पञ्जितयाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४११-३ प्र.] भगवन्! सौधर्मकल्प में परिगृहीता पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४११-३ उ.] गौतम! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात पल्योपम की है।

४१२. [१] सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं।

[४१२-१ प्र.] भगवन्! सौधर्मकल्प में अपिरगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१२-१ उ.] गौतम! जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट पचास पल्योपमों की है।

[२] सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं अपञ्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४१२-२ प्र.] भगवन्! सौधर्मकल्प में अपरिगृहीता अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१२-२ उ.] गौतम! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं पञ्जित्तयाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१२-३ प्र.] भगवन्! सौधर्मकल्प में अपरिगृहीता पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१२-३ उ.] गौतम! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास पल्योपमों की है।

४१३. [१] ईसाणे कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं।

[४१३-१ प्र.] भगवन्! ईशानकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१३-१ उ.] गौतम! जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागरोपम की है।

[२] ईसाणे कप्पे अपन्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४१३-२ प्र.] भगवन्! ईशानकाल में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ? [४१३-२ उ.] गौतम! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] ईसाणे कप्पे पञ्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण सातिरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१३-३ प्र.] भगवन्! ईशानकल्प के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ? [४१३-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम से कुछ अधिक की है।

४१४. [१] ईसाणे कप्पे देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं।

[४१४-१ प्र.] भगवन्! ईशानकल्प में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१४-१ उ.] गौतम! जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है।

[२] ईसाणे कप्पे देवीणं अपञ्जत्तियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४१४-२ प्र.] भगवन्! ईशानकल्प में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१४-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] ईसाणे कप्पे पञ्जित्तयाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१४-३ प्र.] भगवन्! ईशानकल्प में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१४-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की है।

४१५. [१] ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगं पत्तिओवमं, उक्कोसेणं णव पत्तिओवमाइं।

[४१५-१ प्र.] भगवन्! ईशानकल्प में परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१५-१ उ.] गौतम! जघन्य पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट नौ पल्योपम की है।

[२] ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं अपज्जित्तयाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहत्तं।

[४१५-२ प्र.] भगवन्! ईशानकल्प में परिगृहीता अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१५-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं पञ्जित्तयाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं नव पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१५-३ प्र.] भगवन्! ईशानकल्प में परिगृहीता पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१५-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम नौ पल्योपम की है।

४१६. [१] ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं।

[४१६-१ प्र.] भगवन्! ईशानकल्प में अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है? [४१६-१ उ.] गौतम! जघन्य पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है।

[२] ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं अपञ्जित्तयाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४१६-२ प्र.] भगवन्! ईशानकल्प में अपरिगृहीता अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१६-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीणं पञ्जित्तयाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१६-३ प्र.] भगवन्! ईशानकल्प में अपरिगृहीता पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१६-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सातिरेक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की है।

४१७. [१] सणंकुमारे कप्पे देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं दो सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ।

[४१७-१ प्र.] भगवन्! सनत्कुमारकल्प में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१७-१ उ.] गौतम! जघन्य दो सागरोपम की और उत्कृष्ट सात सागरोपम की है।

[२] सणंकुमारे कप्पे अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४१७-२ प्र.] भगवन्! सनत्कुमारकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१७-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सणंकुमारे कप्पे पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१७-३ प्र.] भगवन्! सनत्कुमार कल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१७-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की है।

४१८. [१] माहिंदे कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्त साहियाइं सागरोवमाइं।

[४१८-१ प्र.] भगवन्! माहेन्द्रकल्प के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है।

[४१८-१ उ.] गौतम! जघन्य दो सागरोपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट सात सागरोपम से कुछ अधिक की है।

[२] माहिंदे अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४१८-२ प्र.] भगवन्! माहेन्द्रकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१८-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] माहिंदे पञ्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सातिरेगाइं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१८-३ प्र.] भगवन्! माहेन्द्रकल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१८-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम से कुछ अधिक की है ।

४१९. [१] बंभलोए कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ।

[४१९-१ प्र.] भगवन्! ब्रह्मलोककल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१९-१ उ.] गौतम! जघन्य सात सागरोपम की और उत्कृष्ट दस सागरोपम की है।

[२] बंभलोए अपञ्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहत्तं।

[४१९-२ प्र.] भगवन्! ब्रह्मलोककल्प में अपर्यापक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१९-२ उ.] गौतम! (उनकी) जघन्य (स्थिति) भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट (स्थिति) भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] बंभलोए पञ्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१९-३ प्र.] भगवन्! ब्रह्मलोक में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१९-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की है।

४२०. [१] लंतए कप्पे देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं चउदस सागरोवमाइं।

[४२०-१ प्र.] भगवन्! लान्तककल्प में द़ेवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२०-१ उ.] गौतम! जघन्य दस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौदह सागरोपम की है।

[२] लंतए अपञ्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२०-२ प्र.] भगवन्! लान्तककल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२०-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] लंतए पञ्जत्ताणं पुच्छा

गोयमा! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं चोद्दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२०-३ प्र.] भगवन्! लान्तककल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२०-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौदह सागरोपम की है।

४२१. [१] महासुक्के देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण चोद्दस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं।

[४२१-१ प्र.] भगवन्! महाशुक्रकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२१-१ उ.] गौतम! जघन्य चौदह सागरोपम की तथा उत्कृष्ट सत्तरह सागरोपम की है।

[२] महासुक्के अपन्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२१-२ प्र.] भगवन्! महाशुक्रकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[४२१-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] महासुक्के पञ्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं चोद्दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२१-३ प्र.] भगवन्! महाशुक्रकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

चतुर्थं स्थितिपद] [३६३

[४२१-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौदह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्रह सागरोपम की है।

४२२. [१] सहस्सारे देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं।

[४२२-१ प्र.] भगवन्! सहस्रारकल्प में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२२-१ उ.] गौतम! जघन्य सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अठारह सागरोपम की है।

[२] सहस्सारे पञ्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२२-२ प्र.] भगवन्! सहस्रारकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई

[४२२-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सहस्सारे पञ्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२२-३ प्र.] भगवन्! सहस्रारकल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई

[४२२-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अठारह सागरोपम की है।

४२३. [१] आणए देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं।

[४२३-१ प्र.] भगवन्! आनतकल्प के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२३-१ उ.] गौतम! जघन्य अठारह सागरोपम की और उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम की है।

[२] आणए अपञ्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

[४२३-२ प्र.] भगवन्! आनतकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ? [४२३-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] आणए पञ्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं। [४२३-३ प्र.] भगवन्! आनतकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई

[४२३-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम अठारह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम उन्नीस सागरोपम की है।

४२४. [१] पाणए कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं ।

[४२४-१ प्र.] भगवन्! प्राणतकल्प में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२४-१ उ.] गौतम! जघन्य उन्नीस सागरोपम की है और उत्कृष्ट वीस सागरोपम की है।

[२] पाणए अपञ्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२४-/२ प्र.] भगवन्! प्राणतकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२४-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] पाणए पञ्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२४-३ प्र.] भगवन्! प्राणतकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२४-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम उन्नीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम वीस सागरोपम की है।

४२५. [१] आरणे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं।

[४२५-१ प्र.] भगवन्! आरणकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२५-१ उ.] गौतम! जघन्य वीस सागरोपम की और उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम की है।

[२] आरणे अपञ्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२५-२ प्र.] भगवन्! आरणकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ? [४२५-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] आरणे पञ्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं। [४२५-३ प्र.] भगवन्! आरणकल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है?

[४२५-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम वीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम इक्कीस सागरोपम की है।

४२६. [१] अच्चुए कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं ।

[४२६-१ प्र.] भगवन्! अच्युतकल्प में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२६-१ उ.] गौतम! जघन्य इक्कीस सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की है।

[३] अच्चए अपन्जत्ताणं देवाणं पच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२६-२ प्र.] भगवन्! अच्युतकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२६-२ उ.] गौतम! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] अच्चुते पञ्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२६-३ प्र.] भगवन्! अच्युतकल्प में पर्याप्तकदेवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई

[४२६-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम इक्कीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की है।

४२७. [१] हेट्टिमहेट्टिमगेवेज्जदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं।

[४२७-१ प्र.] भगवन्! अधस्तन-अधस्तन (सबसे निचले ग्रैवेयकत्रिक में नीचे वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२७-१ उ.] गौतम! (सबसे निचली ग्रैवेयकत्रिक के नीचे के देवों की स्थिति) जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेईस सागरोपम की है।

[२] हेट्टिमहेट्टिमअपञ्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२७-२ प्र.] भगवन्! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक के अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की है ?

[४२७-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] हेट्टिमहेट्टिमपञ्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२७-३ प्र.] भगवन्! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२७-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेईस सागरोपम की है।

४२८. [१] हेट्टिममन्झिमगेवेज्जदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं ।

[४२८-१ प्र.] भगवन्! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२८-१ उ.] गौतम! जघन्य तेईस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौवीस सागरोपम की है।

[२] हेट्टिममञ्झिमअपञ्जत्तयदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२८-२ प्र.] भगवन्! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२८-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] हेद्विममञ्झिमगेवेज्जदेवाणं पञ्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२८-३ प्र.] भगवन्! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[४२८-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम तेईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौवीस सागरोपम की है।

४२९. [१] हेट्टिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं पणुवीसं सागरोवमाइं।

[४२९-१ प्र.] भगवन्! अधस्तन-उपरितन (सबसे नीचे के त्रिक में ऊपर वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२९-१ उ.] गौतम! जघन्य चौवीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट पच्चीस सागरोपम की है।

[२] हेद्रिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२९-२ प्र.] भगवन्! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२९-२ उ.] गौतम! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] हेट्टिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं चउवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पणुवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२९-३ प्र.] भगवन्! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२९-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौवीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पच्चीस सागरोपम की है।

४३०. [१] मज्झिमहेट्टिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं पण्वीणं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं।

[४३०-१ प्र.] भगवन्! मध्यम-अधस्तन (बीच के त्रिक में सबसे निचले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३०-१ उ.] गौतम! जघन्य पच्चीस सागरोपम की और उत्कृष्ट छव्वीस सागरोपम की है।

[२] मञ्झिमहेद्विमगेवेज्जगदेवाणं अपञ्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४३०-२ प्र.] भगवन्! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३०-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] मज्झिमहेद्विमगेवेज्जगदेवाणं पञ्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं पणुवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३०-३ प्र.] भगवन्! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही है ?

[४३०-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पच्चीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम छळ्वीस सागरोपम की है।

४३१. [१] मञ्झिममञ्झिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणणं छव्वीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं।

[४३१-१ प्र.] भगवन्! मध्यम-मध्यम (बीच के त्रिक के बिचले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३१-१ उ.] गौतम! जघन्य छव्वीस सागरोपम की और उत्कृष्ट सत्ताईस सागरोपम की है।

[२] मञ्झिममञ्झिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४३१-२ प्र.] भगवन्! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३१-२ उ.] गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] मज्झिममञ्झिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं छळ्वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३१-३ प्र.] भगवन्! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है।

[४३१-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम छव्वीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्ताईस सागरोपम की है।

४३२. [१] मन्झिमउवरिमगेवेज्जाणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं अद्वावीसं सागरोवमाइं ।

[४३२-१ प्र.] भगवन्! मध्यम-उपरितन (बीच के त्रिक में सबसे ऊपर वाले) ग्रैवेयक देवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[४३२-१ उ.] गौतम! जघन्य सत्ताईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अट्ठाईस सागरोपम की है।

[२] मन्झिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४३२-२ प्र.] भगवन्! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३२-२ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] मज्झिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३२-३ प्र.] भगवन्! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की कितने काल की स्थिति कही है ?

[४३२-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्ताईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अट्ठाईस सागरोपम की है।

४३३. [१] उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं।

[४३३-१ प्र.] भगवन्! उपरितन-अधस्तन (ऊपर के त्रिक के निचले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३३-१ उ.] गौतम! जघन्य अट्ठाईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट उनतीस सागरोपम की है।

[२] उवरिमहेद्विमगेवेञ्जगदेवाणं अपञ्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३३-२ प्र.] भगवन्! उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३३-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] उवरिमहेद्विमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं, अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३३-३ प्र.] भगवन्! उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३३-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम अट्ठाईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम उनतीस सागरोपम की है।

४३४. [१] उवरिममिञ्झमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं।

[४३४-१ प्र.] भगवन्! उपरितन-मध्यम (ऊपर के त्रिक में बीच वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३४-१ उ.] गौतम! जघन्य उनतीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट तीस सागरोपम की है।

[२] उवरिममञ्झिमगेवेज्जगदेवाणं अपञ्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[४३४-२ प्र.] भगवन्! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३४-२ उ.] गौतम! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] उवरिममञ्झिमगेवेञ्जगदेवाणं पञ्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३४-३ प्र.] भगवन्! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३४-३ उ.] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम उनतीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीस सागरोपम की है।

४३५. [१] उवरिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं।

[४३५-१ प्र.] भगवन्! उपरितन-उपरितन (ऊपर के त्रिक के सबसे ऊपर वाले) ग्रैवेयक-देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३५-१ उ.] गौतम! जघन्य तीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट इकतीस सागरोपम की है।

[२] उवरिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४३५-२ प्र.] भगवन्! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३५-२ उ.] गौतम! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] उवरिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३५-३ प्र.] भगवन्! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३५-३ उ.] गौतमं! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम तीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम इकतीस सागरोपम की है।

४३६. [१] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिएसु णं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

[४३६-१ प्र.] भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३६-१ उ.] गौतम! (इन सब देवों की स्थिति) जघन्य इकतीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

[२] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवाणं अपञ्जत्ताणं पुच्छा । गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमृहत्तं।

[४३६-२ प्र.] भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में (स्थित) अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३६-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवाणं पञ्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३६-३ प्र.] भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित विमानों में स्थित पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४३६-३ उ.] गौतम! (इनकी स्थिति) जघन्य अन्तमुहूर्त्त कम इकतीस सागरोपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है।

४३७. [१] सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ?

[४३७-१ प्र.] भगवन्! सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[४३७-१ उ.] गौतम! अजघन्य अनुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से रहित) तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है।

[२] सव्बद्वसिद्धगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा! जहपूणेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३७-२ प्र.] भगवन्! सर्वार्थसिद्ध विमानवासी अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३७-२ उ.] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सव्बट्टसिद्धगदेवाणं पज्जत्ताणं [भंते!] केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ठिती पण्णत्ता । ।। पण्णवणाए भगवई चउत्थं ठिइपयं समत्तं ।।

[४३७-३ प्र.] भगवन्! सर्वार्थसिद्ध-विमानवासी पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३७-३ उ.] गौतम! इनकी स्थिति अजघन्य-अनुत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है ।

विवेचन—वैमानिक देवगणों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत इकतीस सूत्रों (सू. ३०७ से ३३७ तक) में वैमानिक देवों के निम्नोक्त प्रकार से स्थिति का निरूपण किया गया है—(१) वैमानिक देवों (औषिक, अपर्याप्त एवं पर्याप्त) की, (२) वैमानिक देवियों (औषिक, अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक) की (३) तथा सौधर्मकल्प से लेकर अच्युतकल्प तक के देवों (औषिक, अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक) की तथा सौधर्म एवं ईशान कल्प की देवियों (औषिक, अपर्याप्तक, पर्याप्तक, परिगृहीता, अपिरगृहीता) की और (४) नौ सूत्रों में नौ प्रकार के ग्रैवेयकों (औषिक, अपर्याप्तक एवं पर्याप्त) की तथा (५) विजय, वैजयन्त, जयन्त एवं अपराजित देवों एवं सर्वार्थसिद्ध देवों (औषिक, अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक) की स्थित।

॥ प्रज्ञापनासूत्र : चतुर्थ स्थितिपद समाप्त॥

पंचमं विसेसपयं (पज्जवपयं)

पंचम विशेषपद (पर्यायपद)

प्राथमिक

u	प्रज्ञापनासूत्र का यह पचम विशेषपद अथवा पयायपद है।
	'विशेष' शब्द के दो अर्थ फलित होते हैं(१) जीवादि द्रव्यों के विशेष अर्थात्प्रकार और
	(२) जीवादि द्रव्यों के विशेष अर्थात्—पर्याय।
	प्रथम पद में जीव और अजीव, इन दो द्रव्यों के प्रकार, भेद-प्रभेद सहित बताये गए हैं। उसकी
	यहाँ भी संक्षेप में (सू. ४३९ एवं ५००-५०१ में) पुनरावृत्ति की गई है। वह इसलिए कि प्रस्तुत पव
	में यह बात स्पष्ट करनी है कि जीव और अजीव के जो प्रकार हैं, उनमें से प्रत्येक के अनन्त पर्याय
	हैं। यदि प्रत्येक के अनन्त पर्याय हों तो समग्र जीवों या समग्र अजीवों के अनन्त पर्याय हों, इसमे
	कहना ही क्या ?
	इस पद का नाम 'विशेषपद' रखा जाने पर भी पद के सूत्रों में कहीं भी विशेष शब्द का प्रयोग नहीं
	किया गया, समग्र पद में 'पर्याय' शब्द उनके लिए प्रयुक्त हुआ है। जैनशास्त्रों में भी यत्र-तत्र
	'पर्याय' शब्द को अधिक महत्त्व दिया गया है। इससे ग्रन्थकार ने एक बात सूचित कर दी है—
	वह यह है कि पर्याय या विशेष में कोई अन्तर नहीं है। जो नाना प्रकार के जीव या अजीव दिखाई
	देते हैं, वे सब द्रव्य के ही पर्याय हैं। फिर भले ही वे सामान्य के विशेषरूप-प्रकाररूप हों य
	द्रव्यविशेष के पर्याय रूप हों। जीव के जो नारकादि भेद बताए हैं, वे सभी प्रकार उस-उस जीव
	द्रव्य के पर्याय हैं, क्योंकि अनादिकाल से जीव अनेक बार उस-उस रूप में उत्पन्न होता है। जैसे
	किसी एक जीव के वे पर्याय हैं, वैसे समस्त जीवों की योग्यता समान होने से उन सब ने नरक
	तिर्यञ्च आदि रूप में जन्म लिया ही है। इस प्रकार जिसे प्रकार या भेद अथवा विशेष कहा जाता
	है, वह प्रत्येक जीवद्रव्य की अपेक्षा से पर्याय ही है, वह जीव की एक विशेष अवस्था, पर्याय य
	परिणाम ही है।
	प्रस्तुत में 'पर्याय' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—(१) प्रकार या भेद अर्थ में तथा (२) अवस्था
	या परिणाम अर्थ में। जीवसामान्य के नारक आदि अनेक भेद-विशेष हैं, अत: उन्हें जीव के पर्याय
	कहे हैं और जीवसामान्य के अनेक परिणाम — पर्याय भी हैं, इस कारण उन्हें भी जीव के पर्याय
	कहे हैं। इसी प्रकार अजीव के विषय में भी समझ लेना चाहिए। इस प्रकार शास्त्रकार से 'पर्याय
	शब्द का दो अर्थों में प्रयोग किया है तथा पर्याय और विशेष दोनों एकार्थक माने हैं। जैनागमों में पर्याय

शब्द ही प्रचलित था, किन्तु वैशेषिकदर्शन में 'विशेष' शब्द का प्रयोग होने लगा था, अत: उस शब्द

१. देखो तर्कसंग्रह तथा वैशेषिकदर्शन

का प्रयोग अर्थ में एवं वस्तु के भेद अर्थ में भी हो सकता है, यह सूचित करने हेतु आचार्य ने इस पद का नाम 'विशेषपद' रखा हो, यह भी संभव है।

- □ शास्त्रकारों ने पर्याय शब्द का प्रयोग करके सूचित किया है कि कोई भी द्रव्य पर्यायशून्य कदापि नहीं होता। प्रत्येक द्रव्य किसी न किसी पर्यायावस्था में ही होता है। जिसे द्रव्य कहा जाता है, उस का भी प्रस्तुत पद में पर्याय के नाम से ही परिचय कराया गया है। सारांश यह है कि द्रव्य और पर्याय में अभेद है, इसे ध्वनित करने के लिए शास्त्रकार ने द्रव्य के प्रकार के लिए भी पर्याय शब्द का प्रयोग (सू. ४३९, ५०१ में) किया है।
- ☐ यों द्रव्य और पर्याय का कथंचित् अभेद होते हुए भी शास्त्रकार को यह स्पष्ट था कि द्रव्य और पर्याय में भेद भी है। ये सब पर्याय या परिणाम किसी एक ही द्रव्य के नहीं हैं, इसकी सूचना पृथक्-पृथक् द्रव्यों की संख्या और पर्यायों की संख्या में अन्तर बताकर की है। जैसे कि शास्त्रकार ने नारक असंख्यात (सू. ४३९) कहे, परन्तु नारक के पर्याय अनन्त कहे हैं। जीवों के जो अनेक प्रकार हैं, उनमें वनस्पित अनन्त कहा जा सकता है, परन्तु उन-उन प्रकारों में उक्त दो के सिवाय सभी द्रव्य असंख्यात हैं, अनन्त नहीं। फिर भी उन सभी प्रकारों के पर्यायों की संख्या अनन्त है, यह इस पद में स्पष्ट प्रतिपादित है। ९
- □ वेदान्तदर्शन की तरह जैनदर्शन के अनुसार जीव द्रव्य एक नहीं, िकन्तु अनन्त हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि इस दृष्टि से जीवसामान्य जैसी कोई स्वतंत्र एक वस्तु (इकाई) नहीं है, परन्तु अनेक जीवों में जो चैतन्यधर्म दिखाई देते हैं, वे ही हैं, तथा वे नाना हैं और उस-उस जीव में ही व्याप्त हैं और वे धर्म अजीव से जीव को भिन्न करने वाले हैं। इसिलए अनेक होते हुए भी समानरूप से अजीव से जीव को भिन्न सिद्ध करने का कार्य करने वाले होने से सामान्य कहलाते हैं। यह सामान्य तिर्यक्सामान्य है जो एक समय में अनेक व्यक्तिनिष्ठ होता है। जैनदर्शनानुसार एक द्रव्य अनेकरूप में परिणत हो जाता है, जैसे—कोई एक जीव (द्रव्य) नारक आदि अनेक परिणामों (पर्यायों) को धारण करता है। ये परिणाम कालक्रम से बदलते रहते हैं, िकन्तु जीव-द्रव्य ध्रुव है, उसका कभी नाश नहीं होता, नारकादि-पर्यायों के रूप में उसका नाश होता है। नारकादि अनेक पर्यायों को धारण करते हुए भी वह कभी अचेतन नहीं होता। इस जीवद्रव्य को सामान्य ऊर्ध्वतासामान्य कहा है, जो अनेक कालों में एक व्यक्ति में निष्ठ होता है और उस सामान्य के नाना पर्याय-परिणाम या विशेष अथवा भेद हैं। इस अपेक्षा से व्यक्तिभेदों का सामान्य तिर्यक्सामान्य है, जबिक कालिकभेदों का सामान्य उर्ध्वतासामान्य है; जो द्रव्य के नाम से जाना जाता है और एक है तथा अभेदज्ञान में निमित्त बनता है, जबिक तिर्यक्सामान्य अनेक है, और समानता में निमित्त बनता है। निष्कर्म यह है कि

१. (क) पण्णवणासुत्तं मूल, सू. ४३८ से ४५४, (ख) प्रज्ञा

⁽ख) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १७९-२०२

जीवसामान्य अनेक जीवों की अपेक्षा से तिर्यक्सामान्य है, जबकि एक ही जीव नानापर्यायों की अपेक्षा से ऊर्ध्वतासामान्य है।^१

इसी प्रकार अजीवद्रव्य कोई पृथक् एक ही द्रव्य नहीं है, परन्तु अनेक अजीव (अचेतन) द्रव्य हैं, वे सब जीव से भिन्न हैं, अत: उस अर्थ में उनकी समानता (एकता नहीं, अमुक अपेक्षा से एकता) अजीवद्रव्य कहने से व्यक्त होती है। इस कारण वह सामान्य अजीवद्रव्यतिर्यक्सामान्य है। तथा इस तिर्यक्सामान्य के पर्याय, विशेष या भेद वे ही प्रस्तुत में जीव और अजीव के पर्याय, विशेष या भेद हैं, यह समझना चाहिए। इस समझना चाहिए।

- □ संसारी जीवों में कर्मकृत जो अवस्थाएँ, जिनके आधार से जीव पुद्गलों से सम्बद्ध होता है, उस सम्बन्ध को लेकर जीव की विविध अवस्थाएँ—पर्याय बनती हैं। वे पौद्गलिक पर्यायें भी व्यवहारनय से जीव की पर्याय मानी गई हैं। संसारी अवस्था में जीव और पुद्गल अभिन्न—से प्रतीत होते हैं, यह मानकर जीव के पर्यायों का वर्णन है। जैसे स्वतंत्र रूप से वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की विविधता के कारण पुद्गल के अनन्त पर्यार्थ (सू. ५१९ में) बताए हैं, वैसे ही जब वे ही पुद्गल जीव से सम्बद्ध होते हैं, तब वे सब जीव के पर्याय (सू. ४४० में) माने गए हैं, क्योंिक जब वे जीव के साथ सम्बद्ध होते हैं, तब पुद्गल में होने वाले परिणमन में जीव भी कारण है, इस कारण वे पर्याय पुद्गल के होते हुए भी जीव के माने गए हैं। संसारी अवस्था में अनादिकाल से प्रचलित जीव और पुद्गल का कथंचित् अभेद भी है। कर्मोदय के कारण ही जीवों में आकार, रूप आदि की विविधता है, और नाना पर्यायों का सर्जन होता है। अत: जीव ज्ञानादिस्वरूप होते हुए भी वह अनन्तपर्यायुक्त है।
- □ प्रस्तुत पद में जीव और अजीव द्रव्यों के भेदों और पर्यायों का निरूपण है। जीव-अजीव के भेदों के विषय में तो प्रथमपद में निरूपण था ही, किन्तु उन प्रत्येक भेदों में जो अनन्तपर्याय हैं, उनका प्रतिपादन करना इस पंचम पद की विशेषता है। प्रथम पद में भेद बताए गए, तीसरे पद में उनकी संख्या बताई गई, किन्तु तृतीयपद में संख्यागत तारतम्य का निरूपण मुख्य होने से किस विशेष की कितनी संख्या है, यह बताना बाकी था, अत: प्रस्तुत पद में उन-उन भेदों की तथा बाद में उन-उन भेदों के पर्यायों की संख्या भी बता दी गई है। संभी द्रव्यभेदों की पर्यायसंख्या तो अनन्त है, किन्तु भेदों की संख्या में कितने ही संख्यात हैं, असंख्यात हैं, तो कई अनन्त (वनस्पतिकायिक और सिद्धजीव) भी हैं। हैं

१. न्यायावतार वार्तिक वृत्ति-प्रस्तावना पृ. २५-३१, आगम युग का जैनदर्शन, पृ. ७६-८६,

२. 'एगे आया' इत्यादि स्थानांगसूत्र वाक्य कल्पित एकता के हैं।

३. पण्णवणासुत्तं मूल. सू. ४३९, ५९१

४. पण्णवणा. मूल, सू. ४४०

🔲 जीवद्रव्य के नारक आदि भेदों के पर्यायों का विचार अनेक प्रकार से, अनेक दृष्टियों से किया गया है, और उनमें जैनदर्शनसम्मत अनेकान्त दृष्टि का उपयोग स्पष्ट है। जैसे—जीव के नारकादि जिन भेदों के पर्यायों का निरूपण है, उसमें निम्नोक्त दस दृष्टियों का सापेक्ष वर्णन किया गया है, अर्थात्— नारकादि जीवों के अनन्तपर्यायों की संगति बताने के लिए दसों दृष्टियों से असंख्यात और कई दृष्टियों से अनन्त संख्या होती है। अनन्तदर्शक दृष्टि को ध्यान में रखते हुए शास्त्रकार ने नारकादि प्रत्येक के पर्यायों को अनन्त कहा है, क्योंकि उस दृष्टि से सबसे अधिक पर्याय घटित होते हैं। तथा उन-उन संख्याओं का सीधा प्रतिपादन नहीं किया गया, किन्तु एक नारक की दूसरे नारक के साथ तुलना करके वह संख्या फलित की गई है। जैसे कि दस दृष्टियों का क्रम से वर्णन इस प्रकार है—(१) द्रव्यार्थता---द्रव्य दृष्टि से कोई नारक, अन्य नारकों से तुल्य है। अर्थात्---द्रव्यापेक्षया कोई नारक एक द्रव्य है, वैसे ही अन्य नारक भी एक द्रव्य है। निष्कर्ष यह कि किसी भी नारक को द्रव्य दृष्टि से एक ही कहा जाता है, उसकी संख्या एक से अधिक नहीं होती, अत: वह संख्यात है। (२) प्रदेशार्थता—प्रदेश की अपेक्षा से भी नारक जीव परस्पर तुल्य हैं। अर्थात्—जैसे एक नारक जीव के प्रदेश असंख्यात हैं, वैसे अन्य नारक के प्रदेश भी असंख्यात हैं, न्यूनाधिक नहीं। (३) अवगाहनार्थता—अवगाहना (जीव के शरीर की ऊँचाई) की दृष्टि से विचार किया जाए तो एक नारक अन्य नारक से हीन, तुल्य या अधिक भी होता है, और वह असंख्यात-संख्यात भाग हीनाधिक या संख्यात-असख्यातगुण हीनाधिक होता है। निष्कर्ष यह है कि अवगाहना की दृष्टि से नारक के असंख्यात प्रकार के पर्याय बनते हैं। (५) स्थित की अपेक्षा से—विचारणा भी अवगाहना की तरह ही है। अर्थात्—वह पूर्वोक्त प्रकार से चतु:स्थान हीनाधिक या तुल्य होती है। निष्कर्ष यह है कि स्थिति की दृष्टि से भी नारक के असंख्यात प्रकार के पर्याय बनते हैं। (५ से ८) कृष्णादि वर्ण, तथा गन्ध, रस, एवं स्पर्श की अपेक्षा से —वर्णादि की अपेक्षा से भी नारक के अनन्तपर्याय बनते हैं, क्योंकि एकगुण कृष्ण आदि वर्ण तथैव गन्ध, रस और स्पर्श से लेकर अनन्तगुण कृष्णादि वर्ण, तथा गन्ध, रस, और स्पर्श होना सम्भव है। इस प्रकार वर्णादि चारों के प्रत्येक प्रकार की दृष्टि से नारक के अनन्त पर्याय घटित होना सम्भव है। इस प्रकार वर्णादि चारों के प्रत्येक प्रकार की दृष्टि से नारक के अनन्त पर्याय घटित हो सकने से उसके अनन्त पर्याय कहे हैं। (९.१०) ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से—ज्ञान (अज्ञान) और दर्शन की दृष्टि से भी नारक के अनन्त पर्याय हैं, ऐसा शास्त्रकार कहते हैं। आचार्य मलयगिरि कहते हैं--इन दसों दृष्टियों का समावेश चार दृष्टियों में किया जा सकता है। जैसे इव्यार्थता और प्रदेशार्थता का द्रव्य में, अवगाहना का क्षेत्र में, स्थित का काल में तथा वर्णादि एवं ज्ञानादि का भाव में समावेश हो सकता है।^१

१. पण्णवणासुत्तं मू. पा. सू. ४५५ से ४९९ तक तथा पण्णवणासुत्तं भा. २ पंचमपद-प्रस्तावना पृ. ६३-६४

- □ इसी प्रकार आगे जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना, स्थिति, वर्णादि और ज्ञानादि को लेकर चौबीस दण्डक जीवों के पर्यायों की विचारणा की गई है।
- □ इसके पश्चात्—अजीव के दो भेद—अरूपी अजीव और रूपी अजीव करके रूपी अजीव के परमाणु, स्कन्ध, देश और स्कन्धप्रदेश, यों चार प्रकार होते हुए भी यहाँ मुख्यतया परमाणुपुद्गल (निरंशी अंश) और स्कन्ध (अनेक परमाणुओं का एकत्रित पिण्ड) दो के ही पर्यायों का निरूपण किया गया है।
- □ प्रथमपद में पुद्गल (रूपी अजीव), जो नाना प्रकारों में परिणत होता है, उसका निरूपण है, जबिक इस पद में, बताए गए रूपी अजीव-भेदों के पर्यायों की संख्या का निरूपण है। सर्वप्रथम समग्रभाव से रूपी अजीव के पर्यायों की संख्या अनन्त बता कर फिर परमाणु द्विप्रदेशी स्कन्ध, त्रिप्रदेशी स्कन्ध, यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध, संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के प्रत्येक के अनन्त पर्याय कहे हैं। इन सबके पर्यायों का विचार जीव की तरह द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव अथवा पूर्वोक्त दस दृष्टियों से किया गया है। परमाणु से लेकर अनन्त प्रदेशी पुद्गलस्कन्ध तक के पर्यायों का निरूपण करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है, तथापि अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी एक से लेकर असंख्यातप्रदेश में समा सकता है। इसे प्रदीप के दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है। इस प्रकार परमाणु की तरह स्कन्धों की स्थिति एक समय से लेकर असंख्यात काल से अधिक नहीं है। वर्णादि पर्याय भी अनन्त हैं। तदनन्तर स्थिति, अवगाहना और वर्णादिकृत भेंदों में भी जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम, इन तीन प्रकारों की अपेक्षा से भी पर्याय का विचार किया है। किया है।
- * अन्य दर्शनीय मान्यता से अन्तर—यह है कि द्रव्य के यदि पर्याय (परिणाम) होते हैं तो वह द्रव्य कूटस्थिनित्य नहीं, किन्तु परिणामिनित्य मानना चाहिए। परमाणुवादी नैयायिक वैशेषिक परमाणु को कूटस्थिनित्य मानते हैं जबिक जैनदर्शन परिणामिनित्य मानता है। तथा स्कन्ध और परमाणु में अवयव-अवयवी का आत्यन्तिक भेद भी जैनदर्शन नहीं मानता, न ही परमाणु में पार्थिवपरमाणु आदि के रूप में जाति-भेद मानता है, तथा परमाणु में रूप रसादि चारों का होना अनिवार्य मानता है।

१. पण्णवणासुत्तं मूल. पा. सू. ५१९, ४४० तथा पण्णवणासुत्तं भा. २ पंचमपद की प्रस्तावना पृ. ६२

२. पण्णवणासुत्तं मू. पा सू. ५०० से ५५८ तक तथा प्रज्ञापना. म वृत्ति पत्रांक २४२

३. पण्णवणासुत्तं भा. २, पंचमपद प्रस्तावना, पृ. ६७

पंचमं विसेसपयं (पञ्जवपयं)

पांचवाँ विशेषपद (पर्यायपद)

पर्यायों के प्रकार और अनन्तजीवपर्याय का संयुक्तिक निरूपण

४३८. कतिविहा णं भंते! पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! दुविहा पञ्जवा पण्णत्ता। तं जहा—जीवपञ्जवा य अजीवपञ्जवा य।

[४३८ प्र.] भगवन्! पर्यव या पर्याय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[४३८ उ.] गौतम! पर्यव (पर्याय) दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार—(१) जीवपर्याय और (२) अजीवपर्याय।

जीव-पर्याय

४३९. जीवपञ्जवा णं भंते! किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

गोयमा! णो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित जीवपञ्जवा नो संखेञ्जा नो असंखेञ्जा अणंता ?

गोयमा! असंखेज्जा नेरइया, असंखेज्जा असुरा, असंखेज्जा णागा, असंखेज्जा सुवण्णा, असंखेज्जा विज्जुकुमारा, असंखेज्जा अग्गिकुमारा, असंखेज्जा दीवकुमारा, असंखेज्जा उदिहकुमारा, असंखेज्जा दिसाकुमारा, असंखेज्जा वाउकुमारा, असंखेज्जा थिणयकुमारा, असंखेज्जा पुढिविकाइया, असंखेज्जा आउकाइया, असंखेज्जा तेउकाइया, असंखेज्जा वाउकाइया, अणंता वणप्फइकाइया, असंखेज्जा बेइंदिया, असंखेज्जा तेइंदिया, असंखेज्जा चउरिंदिया, असंखेज्जा पंचिंदियितिरिक्खजोणिया, असंखेज्जा मणुस्सा, असंखेज्जा वाणमंतरा, असंखेज्जा जोइसिया, असंखेज्जा वेमाणिया, अणंता सिद्धा, से एएणद्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चित ते णं णो संखेज्जा णो असंखेज्जा. अणंता।

[४३९ प्र.] भगवन्! जीवपर्याय क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

[४३९ उ.] गौतम! (वे) न (तो) संख्यात हैं, और न असंख्यात हैं, (किन्तु) अनन्त हैं।

[प्र.] भगवन्! यह किस कारण से कहा जाता है कि जीवपर्याय, न संख्यात हैं, न असंख्यात हैं। (किन्त्) अनन्त हैं?

[उ.] गौतम! असंख्यात नैरियक हैं, असंख्यात असुर (असुरकुमार) हैं, असंख्यात नाग (नागकुमार) हैं, असंख्यात सुवर्ण (सुपर्ण) कुमार हैं, असंख्यात विद्युत्कुमार हैं, असंख्यात अग्निकुमार हैं, असंख्यात द्वीपकुमार हैं, असंख्यात वायुकुमार हैं, असंख्यात

स्तिनतकुमार हैं, असंख्यात पृथ्वीकायिक हैं, असंख्यात अप्कायिक हैं, असंख्यात तेजस्कायिक हैं, असंख्यात वायुकायिक हैं, अनन्त वनस्पितकायिक हैं, असंख्यात द्वीन्द्रिय हैं, असंख्यात त्रीन्द्रिय हैं, असंख्यात चतुरिन्द्रिय हैं, असंख्यात पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक हैं, असंख्यात मनुष्य हैं, असंख्यात वाणव्यन्तर देव हैं, असंख्यात ज्योतिष्क देव हैं, असंख्यात वैमानिक देव हैं और अनन्त सिद्ध हैं।

हे गौतम! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि वे (जीवपर्याय) संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, (किन्तु) अनन्त हैं।

विवेचन—पर्याय के प्रकार और अनन्त जीवपर्याय का सयुक्तिक निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ४३८-४३९) में पर्याय के दो प्रकारों तथा जीवपर्याय की अनन्तता का युक्तिपूर्वक निरूपण किया गया है।

पर्याय: स्वरूप और समानार्थक शब्द—यद्यपि पिछले पद में नैरियक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव आदि के रूप में जीवों की स्थितिरूप पर्याय का प्रतिपादन किया गया है, तथापि औदियक, क्षायोपशिमक तथा क्षायिक भावरूप जीवपर्यायों का तथा पुद्गल आदि अजीव-पर्यायों का निश्चय करने के लिए इस पद का प्रतिपादन किया गया है। जीव और अजीव दोनों द्रव्य हैं। द्रव्य का लक्षण 'गुण-पर्यायवत्त्व' कहा गया है। इसीलिए इस पद में जीव और अजीव दोनों के पर्यायों का निरूपण किया गया है। पर्याय, पर्यव, गुण, विशेष और धर्म; ये प्राय: समानार्थक शब्द हैं।

पर्यायों का परिमाण जानने की दृष्टि से गौतम स्वामी इस प्रकार का प्रश्न करते हैं कि जीव के पर्याय संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हें? भगवान् ने जीव के पर्याय अनन्त इसलिए बताए कि जब पर्याय वाले (वनस्पतिकायिक, सिद्ध जीव आदि) अनन्त हैं तो पर्याय भी अनन्त हैं। यद्यपि वनस्पतिकायिकों और सिद्धों को छोड़ कर नैरियक आदि सभी असंख्यात-असंख्यात हैं, किन्तु उक्त दोनों अनन्त हैं, इस अपेक्षा से जीव के पर्याय समुच्चय रूप से अनन्त ही कहे जाएंगे। संख्यात या असंख्यात नहीं।

नैरियकों के अनन्तपर्यायः क्यों और कैसे ?

४४०. नेरइयाणं भंते! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित नेरइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णता ?

गोयमा! नेरइए नेरइयस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसदुताए, तुल्ले; ओगाहणदुताए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भिहए—जित हीणे असंखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जिगुणहीणे वा असंखेज्जिगुणहीणे वा, अह अब्भिहिए असंखेज्जिइभागमब्भिहिए वा संखेज्जिगुणमब्भिहिए वा असंखेज्जिगुणमब्भिहिए वा असंखेज्जिगुणमब्भिहिए वा असंखेज्जिगुणमब्भिहिए वा; ठिईए सिय हीणे सिय

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १७९

तुल्ले सिय अब्भिहए—जइ हीणे असंखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जिगणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भिहिए असंखेज्जइभागमब्भिहिए वा संखेज्जगुणभागमब्भिहिए वा संखेज्जइगुणमब्भिहए वा असंखेज्जइगुणमब्भिहए वा; कालवण्णपज्जवेहिं सिय हीणे सिय तल्ले सिय अब्भहिए—जदि हीणे अणंतभागहीणे वा असंखेज्जडभागहीणे वा संखेज्जडभागहीणे वा संखिज्जइगुणहीणे वा असंखिज्जइगुणहीणे वा अणंतगुणहीणे वा, अह अब्भहिए अणंतभाग-मब्भिहिए असंखेज्जतिभागमब्भिहए वा संखेज्जतिभागमब्भिहए वा संखेज्जगणमब्भिहए वा असंखेज्जगुणमब्भिहए वा अणंतगुणमब्भिहए वा; णीलवण्णपञ्जवेहिं लोहियवण्णपञ्जवेहिं हालिद्दवण्ण-पञ्जवेहिं सुक्किलवण्णपञ्जवेहि य छट्टाणविडए; सुब्भिगंधपञ्जवेहिं दुब्भिगंधपञ्जवेहि य छट्टाणविडए ; तित्तरसपञ्जवेहिं कडुयरस-कसायरस-अंबिलरस-महररसपज्जवेहिय छट्ढाणविडए, कक्कखडफास-पज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफासपञ्जवेहिं लहुयफासपञ्जवेहिं सीयफासपञ्जवेहिं उसिणफासपञ्जवेहिं कड्नयरसपञ्जवेहिं कसायरसपञ्जवेहिं अंबिलरसपञ्जवेहिं महररसपञ्जवेहि य छट्ठाणवडिए; कक्खडफासपञ्जवेहिं निद्धफासपज्जवेहिं लुक्खफासपञ्जवेहि य छट्ठाणवडिए; आभिणिबोहियणाणपञ्जवेहिं सुयणाणपञ्जवेहिं ओहिणाणपञ्जवेहिं मतिअण्णाणपञ्जवेहिं सयअण्णाणपञ्जवेहिं अचक्खुदंसणपञ्जवेहिं विभंगणाणपञ्जवेहिं चक्खुदंसणपञ्जवेहिं ओहिदंसणपञ्जवेहि य छट्ठाणविडते, एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चित नेरइयाणं नो संखेञ्जा, नो असंखेज्जा, अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

[४४० प्र.] भगवन्! नैरियकों के कितने पर्याय (पर्यव) कहे गए हैं ?

[४४० उ.] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन्! आप किस हेत् से ऐसा कहते हैं कि नैरियकों के पर्याय अनन्त हैं ?

[उ.] गौतम! एक नारक दूसरे नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है। प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है अवगाहना की अपेक्षा से-कथंचित् (स्यात्) हीन, कथंचित् तुल्य और कथंचित् अधिक (अभ्यधिक) है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है अथवा संख्यातभाग हीन है; या संख्यातगुणा हीन है, अथवा असंख्यातगुणा हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक है या संख्यातभाग अधिक है; अथवा संख्यातगुणा अधिक या असंख्यातगुणा अधिक है।

स्थिति की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन या संख्यातभाग हीन है; अथवा संख्यातगुण हीन या असंख्यातगुण हीन है। अगर अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक या संख्यातभाग अधिक है; अथवा संख्यातगुण अधिक या असंख्यातगुण अधिक या असंख्यातगुण अधिक है।

कृष्णवर्ण-पर्यायों की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है, तो अनन्तभाग हीन, असंख्यातभाग हीन या संख्यातभाग हीन होता है; अथवा संख्यातगुण हीन, असंख्यातगुण हीन या अनन्तगुण हीन होता है। यदि अधिक है तो अनन्तभाग अधिक, असंख्यातभाग अधिक या संख्यातभाग अधिक होता है; अथवा संख्यातगुण अधिक, असंख्यातगुण अधिक या अनन्तगुण अधिक होता है।

नीलवर्णपर्यायों, रक्तवर्णपर्यायों, पीतवर्णपर्यायों, हारिद्रवर्णपर्यायों और शुक्लवर्णपर्यायों की अपेक्षा से—(विचार किया जाए तो एक नारक, दूसरे नारक से) षट्स्थानपितत हीनाधिक होता है। सुगन्धपर्यायों और दुर्गन्धपर्यायों की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपितत हीनाधिक है। तिक्तरसपर्यायों, कटुरसपर्यायों, काषायरसपर्यायों, आम्लरसपर्यायों तथा मधुररसपर्यायों की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपितत हीनाधिक होता है। कर्कशस्पर्श-पर्यायों, मृदु-स्पर्शपर्यायों, गुरुस्पर्शपर्यायों, लघुस्पर्शपर्यायों, शीतस्पर्शपर्यायों, उष्णस्पर्शपर्यायों, स्निग्धस्पर्श-पर्यायों तथा रूक्ष-स्पर्शपर्यायों की अपेक्षा से-(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपितत हीनाधिक होता है।

(इसी प्रकार) आभिनिबोधिकज्ञानपर्यायों, श्रुतज्ञानपर्यायों, अविधज्ञानपर्यायों, मित-अज्ञान-पर्यायों, श्रुत-अज्ञानपर्यायों, विभंगज्ञानपर्यायों, चक्षुदर्शनपर्यायों, अचक्षुदर्शनपर्यायों तथा अविधदर्शनपर्यायों की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपितत हीनाधिक होता है।

है गौतम! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है, कि 'नारकों के पर्याय संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, किन्तु अनन्त कहे हैं।'

विवेचन—नैरियकों के अनन्त पर्याय : क्यों और कैसे ?—प्रस्तुत सूत्र में अवगाहना, स्थिति, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं क्षायोपशमिकभावरूप ज्ञानादि के पर्यायों की अपेक्षा से हीनाधिकता का प्रतिपादन करके नैरियकों के अनन्तपर्यायों को सिद्ध किया गया है।

प्रश्न का उद्भव और समाधान—सामान्यत: जहाँ पर्यायवान् अनन्त होते हैं, वहाँ पर्याय भी अनन्त होते हैं, िकन्तु जहाँ पर्यायवान् (नारक) अनन्त न हों (असंख्यात हों), वहाँ पर्याय अनन्त कैसे होते हैं ? इस आशय से यह प्रश्न श्रीगौतमसवामी द्वारा उठाया गया है। भगवान् के द्वारा उसका समाधान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के पर्यायों की अपेक्षा से किया गया है।

द्रव्य की अपेक्षा से नारकों में तुल्यता—प्रत्येक नारक दूसरे नारक से द्रव्य की दृष्टि से तुल्य है, अर्थात्—प्रत्येक नारक एक-एक जीव-द्रव्य है। द्रव्य की दृष्टि से उनमें कोई भेद नहीं है। इस कथन के द्वारा यह भी सूचित किया है कि प्रत्येक नारक अपने आप में पिरपूर्ण एवं स्वतंत्र जीव द्रव्य है। यद्यपि कोई भी द्रव्य, पर्यायों से सर्वथा रहित कदापि नहीं हो सकता, तथापि पर्यायों की विवक्षा न करके केवल शुद्ध द्रव्य की विवक्षा की जाए तो एक नारक से दूसरे नारक में कोई विशेषता नहीं है।

प्रदेशों की अपेक्षा से भी नारकों में तुल्यता—प्रदेशों की अपेक्षा से भी सभी नारक परस्पर तुल्य हैं, क्योंकि प्रत्येक नारक जीव लोकाकाश के बराबर असंख्यातप्रदेशी होता है। किसी भी नारक के जीवप्रदेशों में किञ्चित् भी न्यूनाधिकता नहीं है। सप्रदेशी और अप्रदेशी का भेद केवल पुद्गलों में

है, परमाणु अप्रदेशी होता है, तथा द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी आदि स्कन्ध सप्रदेशी होते हैं।

क्षेत्र (अवगाहना) की अपेक्षा से नारकों में हीनाधिकता—अवगाहना का अर्थ सामान्यतया: आकाशप्रदेशों को अवगाहन करना—उनमें समाना होता है। यहाँ उसका अर्थ है—शरीर की ऊँचाई। अवगाहना (शरीर की ऊँचाई) की अपेक्षा से सब नारक तुल्य नहीं है। जैसे रत्नप्रभापृथ्वी के नैरियकों के वैक्रियशरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल की है। आगे-आगे की नरकपृथ्वियों में उत्तरोत्तर दुगुनी-दुगुनी अवगाहना होती है। सातवीं नरकपृथ्वी में अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की है। इस दृष्टि से किसी नारक से किसी नारक की अवगाहना हीन है, किसी की अधिक है, जबकि किसी की तुल्य भी है। यदि कोई नारक अवगाहना से हीन (न्यून) होगा तो वह असंख्यातभाग या संख्यातभाग हीन होगा, अथवा संख्यातगुण हीन या असंख्यातगुण हीन होगा, किन्तु यदि कोई नारक अवगाहना में अधिक होगा तो असंख्यातभाग या संख्यातभाग अधिक होगा, अथवा संख्यातगुण अधिक या असंखतगुण अधिक होगा। यह हीनाधिकता चतुःस्थानपतित कहलाती है। नारक असंख्यातभाग हीन या संख्यातभाग हीन अथवा संख्यातभाग अधिक या असंख्यातभाग अधिक इस प्रकार से होते हैं, जैसे — एक नारक की अवगाहना ५०० धनुष की है और दूसरे की अवगाहना है — अंगुल के असंख्यातवें भाग कम पांच सौ धनुष की। अंगुल का असंख्यातवाँ भाग पांच सौ धनुष का असंख्यातवाँ भाग है। अत: जो नारक अंगुल के असंख्यातवें भाग कम पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला है, वह पांच सौ धनुष की अवगाहना वाले नारक की अपेक्षा **असंख्यातभाग हीन** हैं, और पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला दूसरे नारक से असंख्यातभाग अधिक है। इसी प्रकार एक नारक ५०० धनुष की अवगाहना वाला है, जबिक दूसरा उससे दो धनुष कम है, अर्थात् ४९८ धनुष की अवगाहना वाला है। दो धनुष पांच सौ धनुष का संख्यातवाँ भाग है। इस दृष्टि से दूसरा नारक पहले नारक से संख्यातभव हीन हुआ, जबिक पहला (पांच सौ धनुष वाला) नारक दूसरे नारक (४९८ धनुष वाले) से संख्यातभाग अधिक हुआ । इसी प्रकार कोई नारक एक सौ पच्चीस धनुष की अवगाहना वाला है और दूसरा पूरे पांच -सौ धनुष की अवगाहना वाला है। एक सौ पच्चीस धनुष के चौगुने पांच सौ धनुष होते है। इस दृष्टि से १२५ धनुष की अवगाहना वाला, ५०० धनुष की अवगाहना वाले नारक से **संख्यातगुण हीन** हुआ और पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला, एक सौ पच्चीस धनुष की अवगाहना वाले नारक से संख्यातगुण अधिक हुआ। इसी प्रकार कोई नारक अपर्याप्त अवस्था में अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना वाला है और दूसरा नारक पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला है। अंगुल का असंख्यातवाँ भाग असंख्यात से गुणित होकर पांच सौ धनुष बनता है। अत: अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना वाला नारक परिपूर्ण पांच सौ धनुष की अवगाहना वाले नारक से असंख्यातगुण हीन हुआ और पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला नारक, अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना वाले नारक से असंख्यातगुण अधिक हुआ।

काल (स्थिति) की अपेक्षा से नारकों की न्यूनाधिकता — स्थिति (आयुष्य की अनुभूति) की अपेक्षा से कोई नारक किसी दूसरे नारक से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। अवगाहना की तरह स्थिति की अपेक्षा से भी एक नारक दूसरे नारक से असंख्यातभाग या संख्यातभाग हीन अथवा संख्यातगुणा या असंख्यातगुणा हीन होता है, अथवा असंख्यातभाग या संख्यातभाग अधिक अथवा संख्यातगुणा या असंख्यातगुणा अधिक स्थिति वाला चतुःस्थानपतित होता है। उदाहरणार्थ — एक नारक पूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है, जबिक दूसरा नारक एक-दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है। अत: एक-दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला नारक, पूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारक से असंख्यातभाग हीन हुआ, जबिक परिपूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला नारक, एक दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारक से असंख्यातभाग अधिक हुआ; क्योंकि एक-दो समय, सागरोपम के असंख्यातवें भाग मात्र हैं। इसी प्रकार एक नारक तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है, और दूसरा है — पल्योपम कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला। दस कोटाकोटी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। इस दृष्टि से पल्योपमों से हीन स्थिति वाला नारक, पूर्ण तेतीस सागरोपम स्थिति वाले नारक से संख्यातभाग हीन स्थिति वाला हुआ, जबिक दुसरा, पहले से संख्यातभाग अधिक स्थिति वाला हुआ। इस प्रकार एक नारक तेतीस सोगरोपम की स्थिति वाला है, जबिक दूसरा — एक सागरोपम की स्थिति वाला। इनमें एक सागरोपम-स्थिति वाला, तेतीस सागरोपम-स्थिति वाले नारक से संख्यातगुण-हीन हुआ, क्योंकि एक सागर को तेतीस सागर से गुणा करने पर तेतीस सागर होते हैं। इसके विपरीत तेतीस सागरोपम-स्थिति वाला नारक एक सागरोपम स्थिति वाले नारक से संख्यातगुण अधिक हुआ। इसी प्रकार एक नारक दस हजार वर्ष की स्थिति वाला है, जबिक दूसरा नारक है — तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला। दस हजार को असंख्यात वार गुणित करने पर तेतीस सागरोपम होते हैं। अतएव दस हजार वर्ष की स्थिति वाला नारक, तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारक की अपेक्षा असंख्यातगुण हीन स्थिति वाला हुआ, जबिक उसकी अपेक्षा तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला असंख्यातगुण अधिक स्थिति वाला हुआ।

भाव की अपेक्षा से नारकों की षट्स्थानपित हीनाधिकता —(१) कृष्णादि वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से—पुद्गल-विपाकी नामकर्म के उदय से होने वाले औदियक भाव का आश्रय लेकर वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की हीनाधिकता की प्ररूपणा की गई है। यथा—(१) कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से एक नारक दूसरे नारक से अनन्तभागहीन, असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन होता है, अथवा संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुणहीन या अनन्तभाग, असंख्यातभाग या संख्यातभाग अधिक होता है अथवा संख्यातगुण, असंख्यातगुण या अनन्तगुण अधिक होता है। यह षट्स्थानपितत हीनाधिकता है। इस षट्स्थानपितत हीनाधिकता में जो जिससे अनन्तभाग-हीन होता है, वह सर्वजीवानन्तक से भाग करने पर जो लब्ध हो, उसे अनन्तवें भाग से हीन समझना

चाहिए। जो जिससे असंख्यातभाग हीन है, असंख्यात लोकोकाशप्रदेश प्रमाणराशि से भाग करने पर जो लब्ध हो, उतने भाग कम समझना चाहिए। जो जिससे संख्यातभाग हीन हो, उसे उत्कृष्टसंख्यक से भाग करने पर जो लब्ध हो, उससे हीन समझना चाहिए। गुणनसंख्या में जो जिससे संख्येयगुणा होता है, उसे उत्कृष्टसंख्यक के साथ गुणित करने पर जो (गुणनफल) राशिलब्ध हो, उतना समझना चाहिए। जो जिससे असंख्यातगुणा है, उसे असंख्यातलोकाकाश प्रदेशों के प्रमाण जितनी राशि से गुणित करना चाहिए और गुणाकार करने पर जो राशिलब्ध हो, उतना समझना चाहिए। जो जिससे अनन्तगुणा है, उसे सर्वजीवानन्तक से गुणित करने पर जो संख्या लब्ध हो, उतना समझना चाहिए। इसी तरह नीलादि वर्णों के पर्यायों की अपेक्षा से एक नारक से दूसरे नारक, की षट्स्थानपितत हीनाधिकता घटित कर लेनी चाहिए।

इसी प्रकार सुगन्ध और दुर्गन्ध के पर्यायों की अपेक्षा से भी एक नारक दूसरे नारक की अपेक्षा षट्स्थानपितत हीनाधिक होता है। वह भी पूर्ववत् समझ लेना चाहिए। तिक्तादिरस के पर्यायों की अपेक्षा से भी एक नारक दूसरे नारक से षट्स्थानपितत हीनाधिक होता है, इसी तरह कर्कश आदि स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा भी हीनाधिकता होती है, यह समझ लेना चाहिए।

क्षायोपशिमक भावरूप पर्यायों की अपेक्षा से हीनाधिकता — मित आदि तीन ज्ञान, मित अज्ञानादि तीन अज्ञान और चक्षुदर्शनादि तीन दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से भी कोई नारक किसी अन्य नारक से हीन, अधिक या तुल्य होता है। इनकी हीनाधिकता भी वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से उक्त हीनाधिकता की तरह षट्स्थानपितत के अनुसार समझ लेनी चाहिए। आशय यह है कि जिस प्रकार पुद्गलिवपाकी नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले औदियकभाव को लेकर नारकों को षट्स्थानपितत कहा है, उसी प्रकार जीविवपाकी ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले क्षायोपशिमक भाव को लेकर आभिनिबोधिक ज्ञान आदि पर्यायों की अपेक्षा भी षट्स्थानपितत हानि-वृद्धि समझ लेनी चाहिए।

षद्स्थानपितत्व का स्वरूप — यद्यपि कृष्णवर्ण के पर्यायों का पिरमाण अनन्त है, तथापि असत्कल्पना से उसे दस हजार मान लिया जाए और सर्वजीवानन्तक को सौ मान लिया जाए तो दस हजार में सौ का भाग देने पर सौ की संख्या लब्ध होती है। इस दृष्टि से एक नारक के कृष्ण वर्णपर्यायों का पिरमाण मान लो दस सहस्र है और दूसरे के सौ कम दस सहस्र है। सर्वजीवानन्तक में भाग देने पर सौ की संख्या लब्ध होने से वह अनन्तवाँ भाग है, अत: जिस नारक के कृष्णवर्ण के पर्याय सौ कम दस सहस्र हैं वह पूरे दस सहस्र कृष्णवर्णपर्यायों वाले नारक की अपेक्षा अनन्तभागहीन कहलाता है। उसकी अपेक्षा से दूसरा पूर्ण दस सहस्र कृष्णवर्णपर्यायों वाला नारक अनन्तभाग-अधिक है। इसी प्रकार दस सहस्र परिमित कृष्णवर्ण के पर्यायों में लोकाकाश के प्रदेशों के रूप में किल्पत पचास से

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १८१-१८२

भाग दिया जाए तो दो सौ संख्या आती है, यह असंख्यातवाँ भाग कहलाता है। इस दृष्टि से किसी नारक के कृष्ण वर्ण-पर्याय दो सौ कम दस हजार हैं और किसी के पूरे दस हजार हैं। इनमें से दो सौ कम दस हजार कृष्णवर्ण-पर्याय वाला नारक पूर्ण दस हजार कृष्णवर्णपर्याय वाले नारक से असंख्यात-भागहीन कहलाता है और परिपूर्ण कृष्ण वाला नारक, दो सौ कम दस सहस्र वाले की अपेक्षा असंख्यातभागअधिक कहलाता है। इसी प्रकार पूर्वोक्त दस सहस्रसंख्यक कृष्णवर्ण-पर्यायों में संख्यातपरिमाण के रूप में किल्पत दस संख्या का भाग दिया जाए तो एक सहस्र संख्या लब्ध होती है। यह संख्या दस हजार का संख्यातवाँ भाग है। मान लो, किसी नारक के कृष्णवर्णपर्याय में संख्यात परिमाण के रूप में कल्पित दस संख्या का भाग दिया जाए तो एक सहस्र संख्या लब्ध होती है। यह संख्या दस हजार का संख्यातवाँ भाग है। मान लो, किसी नारक के कृष्णवर्णपर्याय ९ हजार हैं और दूसरे नारक के दस हजार हैं, तो नौ हजार कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक, पूर्ण दस हजार कृष्ण वर्ण पर्यायवाले नारक से संख्यातभागहीन हुआ; तथा उसकी अपेक्षा परिपूर्ण दस हजार कृष्णवर्णपर्यायवाला नारक **संख्यातभाग-अधिक** है। इसी प्रकार एक नारक के कृष्णपर्यायों का परिमाण दो सौ है, और दूसरे के कृष्णवर्णपर्यायों का परिमाण दस हजार है। दो सौ का यदि असंख्यात रूप से कल्पित पचास के साथ गुणा किया जाए तो दस हजार होता है। अत: दो सौ कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक दस हजार कृष्णवर्णपर्याय वाले नारक की अपेक्षा असंख्यातगुणहीन है और उसकी अपेक्षा दस हजार कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक असंख्यातगुणा अधिक है। इसी प्रकार मान लो, एक नारक के कृष्णवर्णपर्याय सौ हैं. और दूसरे के दस हजार हैं। सर्वजीवानन्तक परिमाण के रूप में परिकल्पित सौ को सौ से गणाकार किया जाय तो दस हजार संख्या होती है। अतएव सौ कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक दस हजार कृष्ण वर्णवाले नारक से अनन्तगुणा हीन हुआ और उसकी अपेक्षा दूसरा अनन्तगुणा अधिक हुआ।१

निष्कर्ष — यहाँ कृष्णवर्ण आदि पर्यायों को लेकर जो षट्स्थानपितत हीनाधिक्य बताया गया है, उससे स्पष्ट ध्वनित हो जाता है कि जब एक कृष्णवर्ण को लेकर ही अनन्तपर्याय होते हैं तो सभी वर्णों के पर्यायों का तो कहना ही क्या ? इसके द्वारा यह भी सूचित कर दिया है कि जीव स्वनिमित्तक एवं परिनिमित्तक विविध परिणामों से युक्त होता है। कर्मोदय से प्राप्त शरीर के अनुसार उसके (जीव के) आत्मप्रदेशों में संकोच-विस्तार तो हुआ है, किन्तु हीनधिकता नहीं होती।२

असुरकुमार आदि भवनवासी देवों के अनन्त पर्याय

४४१. असुरकुमाराणं भंते! केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १८२ (ख) वही मलय, वृत्ति पत्रांक १८३

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १८४

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ असुरकुमाराणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! असुरकुमारे असुरकुमारस्स दवट्टयाए तुल्ले, पदेसट्टयाए तुल्ले ओगाहणट्टयाए चउट्टाणविडए, ठितीए चउट्टाणविडए, कालवण्णपञ्जवेहिं छट्टाणविडए, एवं णीलवण्णपञ्जवेहिं लोहियवण्णपञ्जवेहिं हालिद्दवण्णपञ्जवेहिं सुक्किलवण्णपञ्जवेहिं, सृब्भिगंधपञ्जवेहिं दुब्भिगंधपञ्जवेहिं तित्तरसपञ्जवेहिं कडुयरसपञ्जवेहिं कसायरसपञ्जवेहिं अंबिलरसपञ्जवेहिं महुररसपञ्जवेहिं तित्तरसपञ्जवेहिं मउयफासपञ्जवेहिं गरुयफासपञ्जवेहिं लहुयफासपञ्जवेहिं सीतफासपञ्जवेहिं तिक्षणासपञ्जवेहिं मउयफासपञ्जवेहिं तिक्षणासपञ्जवेहिं सीतफासपञ्जवेहिं उसिणफासपञ्जवेहिं निद्धफासपञ्जवेहिं लुक्खफासपञ्जवेहिं, आभिणिबोहियणाणपञ्जवेहिं सुतणाणपञ्जवेहिं ओहिणाणपञ्जवेहिं , मतिअण्णाणपञ्जवेहिं सुयअण्णणपञ्जवेहिं विभंगणाणपञ्जवेहिं, चक्खुदंसणपञ्जवेहिं अचक्खुदंसणपञ्जवेहिं अगुरकुमाराणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

[४४१ प्र.] भगवन्! असुरकुमारों के कितने पर्याय कहे हैं ?

[४४१ उ.] गौतम! उनके अनन्तपर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'असुरकुमारों के पर्याय अनन्त हैं ?'

[उ.] गौतम! एक असुरकुमार दूसरे असुरकुमार से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है; (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थित की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, कृष्णवर्णपर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है; इसी प्रकार नीलवर्ण-पर्यायों, रक्त (लोहित) वर्ण-पर्यायों, हारिद्रवर्ण-पर्यायों, शुक्लवर्ण-पर्यायों की अपेक्षा से; तथा सुगन्ध और दुर्गन्ध के पर्यायों की अपेक्षा से; तिक्तरस-पर्यायों, कटुरस-पर्यायों, कषायरस-पर्यायों आम्लरस-पर्यायों एवं मधुररस-पर्यायों की अपेक्षा से; तथा कर्कशस्पर्श-पर्यायों, मृदुस्पर्श-पर्यायों, गुरुस्पर्श-पर्यायों, लघुस्पर्श-पर्यायों, शीतस्पर्श-पर्यायों, उष्णस्पर्श-पर्यायों, सिनग्धस्पर्श-पर्यायों, और रूक्षस्पर्श-पर्यायों की अपेक्षा से तथा आभिनिबोधिकज्ञान-पर्यायों, श्रुतज्ञान-पर्यायों, अविध्ञान-पर्यायों, मित-अज्ञानपर्यायों, श्रुत-अज्ञान-पर्यायों, विभंगज्ञान-पर्यायों, चक्षुदर्शनपर्यायों, अचक्षुदर्शन-पर्यायों और अविध-दर्शन-पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत (हीनाधिक) है। हे गौतम! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि असुरकुमारों के पर्याय अनन्त कहे हैं।

४४२. एवं जहा नेरइया जहा असुरकुमारा तहा नागकुमारा वि जाव थणियकुमारा।

[४४२] इसी प्रकार जैसे नैरियकों के (अनन्तपर्याय कहे गए हैं,) और असुरकुमारों के कहे हैं, उसी प्रकार नागकुमारों से लेकर यावत् स्तनितकुमारों के (अनन्तपर्याय कहने चाहिए।)

विवेचन — असुरकुमार आदि भवनपतिदेवों के अनन्तपर्याय — प्रस्तुत दो सूत्रों (४४१-४४२) में असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भवनपतियों के अनन्तपर्यायों का, नैरियकों के अतिदेशपूर्वक सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

असुरकुमारों के पर्यायों की अनन्तता — एक असुरकुमार दूसरे असुरकुमार से पूर्वोक्त सूत्रानुसार द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना और स्थिति के पर्यायों की दृष्टि से पूर्ववत् चतुःस्थानपितत हीनाधिक है तथा कृष्णादिवर्ण, सुगन्ध-दुर्गन्ध, तिक्त आदि रस, कर्कश आदि स्पर्श एवं ज्ञान, अज्ञान एवं दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से पूर्ववत् षट्स्थानपितत हैं। आशय यह है कि कृष्णवर्ण को लेकर अनन्तपर्याय होते हैं, तो सभी वर्णों के पर्यायों का तो कहना ही क्या ? इस हेतु से असुरकुमारों के अनन्तपर्याय सिद्ध हो जाते हैं।

पांच स्थावरों (एकेन्द्रियों) के अनन्तपर्यायों की प्ररूपणा

४४३. पुढविकाइयाणं भंते! केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित पुढिवकाइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! पुढिवकाइए पुढिविकाइयस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेउसद्वयाए तुल्ले; ओगाहणद्वयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भइए—जिद हीणे असंखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जितभागहीणे वा असंखेज्जितभागअब्भिहए वा संखेज्जितभाग अब्भिहए वा संखेज्जिभागहीणे वा संखेज्जिभागहीणे वा, संखेज्जिभागहीणे वा संखेज्जिभागहीणे वा, संखेज्जिभागहीणे वा अह अब्भितिए असंखेज्जिभागअब्भितिए वा संखेज्जभागअब्भितिए वा संखेज्जभागअब्भितिए वा संखेज्जिभागअब्भितिए वा संखेज्जिभागअब्भितिए वा; वण्णेहिं गंधेहिं रसेहिं फासेहिं, मितअण्णणपञ्जवेहिं सुयअण्णाणपञ्जवेहिं अचक्खुदंसणपञ्जवेहि छट्ठाणविडिते।

[४४३ प्र.] भगवन्! पृथ्वीकायिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४३ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, (आत्म) प्रदेशों की अपेक्षों से (भी) तुल्य है, (िकन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यातभागहीन है अथवा संख्यातभाग हीन है, अथवा संख्यातगुण हीन है, अथवा असंख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक है या संख्यातभाग अधिक है, अथवा संख्यातगुण अधिक है अथवा असंख्यातगुण अधिक है। स्थित की अपेक्षा से कदाचित् हीन है कदाचित् तुल्य है, कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है, या संख्यातभाग हीन है, अथवा संख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक है,

१. प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका, भा-2, पृ. ५७६ से ५७९ तक

या संख्यात भाग अधिक है, अथवा संख्यातगुण अधिक है। वर्णों (के पर्यायों) गन्धों, रसों और स्पर्शों (के पर्यायों) की अपेक्षा से, मित-अज्ञान-पर्यायों, श्रुत-अज्ञानपर्यायों एवं अचक्षुदर्शनपर्यायों की अपेक्षा से (एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से) षट्स्थानपितत है।

४४४. आउकाइयाणं भंते! केवतिया पञ्जवा पण्णता ?

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चित आउकाइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! आउकाइए आउकाइयस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वताए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए चउद्वाणविक्ते, ठितीए तिद्वाणविक्ते, वण्ण-गंध-रस-फास-मितआण्णाण-सुतअण्णाण-अचक्खुदंसणपञ्जवेहि य छट्ठाणविक्ते।

[४४४ प्र.] भगवन्! अप्कायिक जीवों के कितने पर्याय कहे हैं ?

[४४४ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए है।

, [प्र.] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि अप्कायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं?

[उ.] गौतम! एक अप्कायिक दूसरे अप्कायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श मित-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४४५. तेउक्काइयाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित तेउकाइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! तेउक्काइए तेउक्काइयस्स दव्बहुयाए तुल्ले, पदेसहुयाए तुल्ले, ओगाहणहुयाए चउहुगणविडते, ठितीए तिहुगणविडते, वण्ण-गंध-रस-फास-मितअण्णाण सुयअण्णाण-अचक्खुदंसणपञ्जवेहि य छुद्राणविडते।

[४४५ प्र.] भगवन्! तेजस्कायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४५ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए है।

[प्र.] भगवन्! ऐसा किस हेतु से कहा जाता है कि तेजस्कायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं?

[उ.] गौतम! एक तेजस्कायिक, दूसरे तेजस्कायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) है, तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मित-अज्ञान, श्रुतज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४४६. वाउक्काइयाणं पुच्छा ।

गोयमा! वाउकाइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित वाउकाइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! वाउकाइए वाउकाइयस्स दव्बट्टयाए तुल्ले, पदेसट्टयाए तुल्ले, ओगाहणट्टयाए चउट्टाणविडते, ठितीए तिट्टाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फास-मितअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदंसणपञ्जवेहि य छट्टाणविडते।

[४४६ प्र.] भगवन्! वायुकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४६ उ.] गौतम! (वायुकायिक जीवों के) अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि 'वायुकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?'

[उ.] गौतम! एक वायुकायिक, दूसरे वायुकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत (हीनाधिक) है। स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपितत (हीनाधिक) है। वर्ण,गन्ध, रस, स्पर्श तथा मित-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत (हीनाधिक) है।

४४७. वणप्फइकाइयाणं भंते! केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित वणप्फइकाइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! वणप्फइकाइए वणप्फइकाइयस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए तिट्ठाणविडए, वण्ण-गंध-रस-फास-मितअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदंसणपञ्जवेहि य छट्ठाणविडते, से तेणट्ठेणं, गोयमा! एवं वुच्चित वणस्सितकाइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

[४४७ प्र.] भगवन्! वनस्पतिकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४७ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वनस्पतिकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक वनस्पतिकायिक दूसरे वनस्पतिकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है तथा स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपितत है किन्तु वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के तथा मित-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत (हीनाधिक) है। इस कारण से गौतम! ऐसा कहा जाता है कि वनस्पतिकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

विवेचन—पांच स्थावरों के अनन्तपर्यायों की प्ररूपणा—प्रस्तुत पांच सूत्रों (सू. ४४३ से ४४७ तक) में पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक पांचों एकेन्द्रिय स्थावरों के प्रत्येक के पृथक्-पृथक् अनन्त-अनन्त पर्यायों का निरूपण किया गया है।

पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों के पर्यायों की अनन्तताः विभिन्न अपेक्षाओं से — मूलपाठ में पूर्ववत् अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत, स्थिति की अपेक्षा से विस्थानपितत तथा समस्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से एवं मित-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से पूर्ववत् षट्स्थानपितत हीनाधिकता बता कर इन सब एकेन्द्रिय जीवों के प्रत्येक के पृथक्-पृथक् अनन्तपर्याय सिद्ध किये गए हैं। जहाँ (अवगाहना में) चतुःस्थानपितत होनाधिकता है, वहाँ एक पृथ्वीकायिक आदि दूसरे पृथ्वीकायिक आदि से असंख्यातभाग, संख्यातभाग अथवा संख्यातगुण या असंख्यात गुण हीन होता है, अथवा असंख्यातभाग, संख्यातभाग, या संख्यातगुण अथवा असंख्यातगुण अधिक होता है। यद्यपि पृथ्वीकायिक जीवों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है, किन्तु अंगुल के असंख्यातवें भाग के भी असंख्यात भेद होते हैं, इस कारण पृथ्वीकायिक जीवों की पूर्वोंकत चतुःस्थानपितत हीनाधिकता में कोई विरोध नहीं है।

जहाँ (स्थिति में) त्रिस्थानपतित हीनाधिकता होती है, वहाँ पृथ्वीकायिकादि में हीनाधिकता इस प्रकार समझनी चाहिए —एक एकेन्द्रिय दूसरे एकेन्द्रिय से असंख्यातभाग या संख्यातभाग हीन अथवा संख्यातगुणा हीन होता है अथेवा असंख्यातभाग अधिक, संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुण अधिक होता है। इनकी स्थिति में चतुःस्थानपतित हीनाधिकता नहीं होती, क्योंकि इनमें असंख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणवृद्धि सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि पृथ्वीकायिक आदि की सर्वजघन्य आयु क्षल्लकभवग्रहणपरिमित है। क्षुल्लकभव का परिमाण दो सौ छप्पन आवलिकामात्र है। दो घड़ी का एक मुहूर्त होता है और इस एक मुहूर्त में ६५५३६ भव होते हैं। इसके अतिरिक्त पृथ्वीकाय आदि की उत्कृष्ट स्थिति भी संख्यात वर्ष की होती है। अत: इनमें असंख्यातगुणा हानि-वृद्धि (न्यूनाधिकता) नहीं हो सकती। अब रही बात असंख्यातभाग, संख्यातभाग और संख्यातगुणा हानिवृद्धि की, वह इस प्रकार है। जैसे — एक पृथ्वीकायिक की स्थिति परिपूर्ण २२ हजार वर्ष की है, और दूसरे की एक समय कम २२००० वर्ष की है, इनमें से परिपूर्ण २२००० वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक की अपेक्षा, एक समय कम २२००० वर्ष की स्थिति वाला पृथ्वीकायिक असंख्यातभाग हीन कहलाएगा, जबिक दूसरा असंख्यातभाग अधिक कहलाएगा। इसी प्रकार एक की परिपूर्ण २२००० वर्ष की स्थिति है, जबिक दूसरे की अन्तर्मुहूर्त्त आदि कम २२००० वर्ष की है। अन्तर्मुहूर्त्त आदि बाईस हजार वर्ष का संख्यातवाँ भाग है। अत: पूर्ण २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले की अपेक्षा अन्तर्मूहूर्त कम २२ हजार वर्ष की स्थिति वाला संख्यातभाग हीन है और उसकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त्त कम २२००० वर्ष की स्थिति वाला संख्यातभाग अधिक है। इसी प्रकार एक-एक पृथ्वीकायिक की पूरी २२००० वर्ष की स्थिति है, और दूसरे की अन्तर्मुहूर्त्त की, एक मास की, एक वर्ष की या एक हजार वर्ष की है। अन्तर्मुहूर्त्त आदि किसी नियत संख्या से गुणाकार करने पर २२००० वर्ष की संख्या होती है। अत: अन्तर्मुहूर्त्त आदि की आयुवाला पृथ्वीकायिक, पूर्ण बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले की अपेक्षा संख्यातगुण-हीन है और इसकी अपेक्षा २२००० वर्ष की स्थिति वाला पृथ्वीकायिक संख्यातगुण अधिक है। इसी प्रकार अप्कायिक वनस्पतिकायिक तक के एकेन्द्रिय जीवों की अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार त्रिस्थानपतित न्यूनाधिकता समझ लेनी चाहिए।

भावों (वर्णादि या मित-अज्ञानादि के पर्यायों) की अपेक्षा से षट्स्थानपितत न्यूनाधिकता होती है, वहाँ उसे इस प्रकार समझना चाहिए — एक पृथ्वीकायिक आदि, दूसरे पृथ्वीकायिक आदि से अनन्तभागहीन, असंख्यातभागहीन और संख्यातभागहीन अथवा संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुणहीन और अनन्तगुणहीन तथा अनन्तभाग-अधिक, असंख्यातभाग-अधिक और संख्यातभाग-अधिक तथा संख्यातगुणा, असंख्यातगुणा और अनन्तगुणा अधिक है।

इसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीव के वर्णादि या मितअज्ञानादि विभिन्न भावपर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत हीनाधिकता की तरह अप्कायिक आदि एकेन्द्रियजीवों की षट्स्थानपितत हीनाधिकता समझ लेनी चाहिए।

इन सब दृष्टियों से पृथ्वीकायिक प्रत्येक एकेन्द्रिय जीव के पर्यायों की अनन्तता सिद्ध होती है। विकलेन्द्रिय एवं तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्यायों का निरूपण

४४८. बेइंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित बेइंदियाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! बेइंदिए बेइंदियस्स दव्बहुयाए तुल्ले, पदेसहुयाए तुल्ले, ओगाहणहुयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भिहए—जित हीणे असंखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जिगुणहीणे वा असंखेज्जिगुणहीणे वा, अह अब्भिहिए असंखेज्जिभागमब्भिहिए वा संखेज्जिभागमब्भिहिए वा संखेज्जिभागमब्भिहिए वा संखेज्जिभागमब्भिहिए वा असंखेज्जिगुणमब्भिहिए वा; ठितीए तिट्ठाणविडते; वणण-गंध-रस-फास-आभिणिबोहियणाण-सुतणाण-मितअण्णाण-सुतअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जेवेहि य छट्ठाणविडते।

[४४८ प्र.] भगवन्! द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४८ उ.] गौतम! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

- [प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय हैं ?
- [उ.] गौतम! एक द्वीन्द्रिय जीव दूसरे द्वीन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा

से तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है। यदि हीन होता है, (तो) या तो असंख्यातभाग हीन होता है, या संख्यातभागहीन होता है, अथवा संख्यातगुण हीन या असंख्यातगुण हीन होता है। अगर अधिक होता है तो असंख्यातभाग अधिक, या संख्यातभाग अधिक, अथवा संख्यातगुण या असंख्यातगुण अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थान-पितत हीनाधिक होता है, तथा वर्ण-गन्ध-रस-स्पूर्श के तथा आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, मित-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत (हीनाधिक) है।

४४९. एवं तेइंदिया वि ।

[४४९] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवों के (पर्यायों की अनन्तता के) विषय में समझना चाहिए। ४५०. एवं चउरिंदिया वि। णवरं दो दंसणचक्खुदंसणं अचक्खुदंसण च ।

[४५०] इसी तरह चतुरिन्द्रिय जीवों (के पर्यायों) की अनन्तता होती है। विशेष यह है कि उनमें चक्षुदर्शन भी होता है। (अतएव इनके पर्यायों की अपेक्षा से भी चतुरिन्द्रिय की अनन्तता समझ लेनी चाहिए)।

४५१. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पञ्जवा जहा नेरइयाणं तहा भाणितव्वा।

[४५१] पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों के पर्यायों का कथन नैरियकों के समान (४४० सूत्रानुसार) कहना चाहिए।

विवेचन — विकलेन्द्रिय एवं तिर्यंचपंचेन्द्रिय जीवों के अनन्तपर्यायों का निरूपण — प्रस्तुत चार सूत्रों (सू. ४४८ से ४५१ तक) में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्यायों का सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

विकलेन्द्रिय एवं तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय जीवों के अनन्तपर्यायों के हेतु — इन सब में द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा परस्पर समानता होने पर भी अवगाहना की दृष्टि से पूर्ववत् चतुःस्थानपितत, स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपितत एवं वर्णादि के तथा मितज्ञानादि के पर्यायों की दृष्टि से षट्स्थानपितत न्यूनाधिकता होती है, इस कारण इनके पर्यायों की अनन्तता स्पष्ट है।

मनुष्यों के अनन्तपर्यायों की सयुक्तिक प्ररूपणा

४५२. मणुस्साणं भंते! केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चित मणुस्साणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! मणुस्से मणुस्सस्स दव्वद्वयाए तुल्ले, पएसद्वयाए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए चउद्वाणविडते, वितीए चउद्वाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फास-अभिणिबोहियणाण-सुतणाण-ओहिणाण-

१. प्रज्ञापनासूत्र. म. वृत्ति, पत्रांक १८६

मणपञ्जवणापञ्जवेहि य छट्ठाणविडते, केवलणाणपञ्जवेहि तुल्ले, तिर्हि अण्णाणेहि तिर्हि दंसणेहि छट्ठाणविडते, केवलदंसणपञ्जवेहि तुल्ले।

[४५२ प्र.] भगवन्! मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४५२ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मनुष्यों के अनन्त पर्याय है?'

[3.] गौतम! द्रव्य की अपेक्षा से एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपितत (हीनाधिक) है, स्थिति की दृष्टि से भी चतुःस्थानपितत (हीनाधिक) है, तथा वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श, आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान एवं मनःपर्यवज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपितत (हीनाधिक) है, तथा केवलज्ञान के पर्यायों की दृष्टि से तुल्य है, तीन अज्ञान तथा तीन दर्शन (के पर्यायों) की दृष्टि से षट्स्थानपितत है, और केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है।

विवेचन—मनुष्यों के अनन्त पर्यायों की सयुक्तिक प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (४५२) में अवगाहना और स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपितत तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आभिनिबोधिक आदि चार ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत हीनाधिकता बता कर तथा द्रव्य, प्रदेश तथा केवलज्ञान–केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से परस्पर तुल्यता बता कर मनुष्यों के अनन्त पर्याय सिद्ध किए गए हैं।

चार ज्ञान, तीन अज्ञान, और तीन दर्शनों की हीनाधिकता — पांच ज्ञानों में से चार ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन क्षायोपशिमक हैं। वे ज्ञानावरण और दर्शनावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न होते हैं, किन्तु सब मनुष्यों का क्षयोपशम समान नहीं होता। क्षयोपशम में तरतमता को लेकर अनन्त भेद होते हैं। अतएव इनके पर्याय षट्स्थानपितत हीनाधिक कहे गए हैं, किन्तु केवलज्ञान और केवलदर्शन क्षायिक हैं। वे ज्ञानावरण और दर्शनावरण के सर्वथा क्षीण होने पर ही उत्पन्न होते हैं, अतएव उनमें किसी प्रकार की न्यूनाधिकता नहीं होती। जैसा एक मनुष्य का केवलज्ञान या केवलदर्शन होता है, वैसा ही सभी का होता है, इसीलिए केवलज्ञान और केवलदर्शन के पर्याय तुल्य कहे हैं।

स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपित कैसे — पंचेन्द्रियितर्यं और मनुष्यों की स्थिति अधिक से अधिक तीन पल्योपम की होती है। पल्योपम असंख्यात हजार वर्षों का होता है। अतः उसमें असंख्यातगुणी वृद्धि और हानि सम्भव होने से उसे चतुःस्थानपितत कहा गया है।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के अनन्त पर्यायों की प्ररूपणा

४५३. वाणमंतरा ओगाहणद्वयाए ठितीए य चउट्टाणविडया, वण्णादीहिं छट्टाणविडता।

१. पणवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण युक्त), पृ. १३९-१४०

२. (क) प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्रांक १८६. (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ. ६१२-६१३

[४५३] वाणव्यन्तर देव अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपितत (हीनाधिक) कहे गए हैं तथा वर्ण आदि (के पर्यायों) की अपेक्षा से षट्स्थानपितत (हीनाधिक) हैं।

४५४. जोइसिय-वेमाणिया वि एवं चेव। णवरं ठितीए तिट्ठाणविडता।

[४५४] ज्योतिष्क और वैमानिक देवों (के पर्यायों) की हीनाधिकता भी इसी प्रकार (पूर्वसूत्रानुसार समझनी चाहिए।) विशेषता यह है कि इन्हें स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपितत (हीनाधिक) समझना चाहिए।

विवेचन—वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के अनन्त पर्यायों की प्ररूपणा — प्रस्तुत दो सूत्रों (४५३, ४५४) में वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के अनन्त पर्याय बताने हेतु उनकी यथायोग्य चतुःस्थानपितत षट्स्थानपितत तथा त्रिस्थानपितत न्यूनाधिकता का प्रतिपादन किया गया है।

वाणव्यन्तरों की चतुःस्थानपितत तथा ज्योतिष्क-वैमानिकों की त्रिस्थानपितत हीनाधिकता — वाणव्यन्तरों की स्थित जघन्य १० हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक पल्योपम की होती है, अत: वह भी चतुःस्थानपितत हो सकती है, किन्तु ज्योतिष्कों और वैमानिकों की स्थिति में त्रिस्थान पितत हीनाधिकता ही होती है; क्योंकि ज्योतिष्कों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम की है। अतएव उनमें असंख्यातगुणी हानि-वृद्धि सम्भव नहीं है। वैमानिकों की स्थिति जघन्य पल्योपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। एक सागरोपम दस कोडाकोड़ी पल्योपम का होता है। अतएव वैमानिकों में भी संख्यातगुणी हानि वृद्धि सम्भव नहीं है। इसी कारण ज्योतिष्क और वैमानिकदेव स्थिति को अपेक्षा से त्रिस्थानपितत हीनाधिक ही होते हैं।

विभिन्न अपेक्षाओं से जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले नारकों के पर्याय

४५५. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते! नेरइयाणं केवितया पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित जहण्णोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णोगाहणए नेरइए जहण्णोगाहणगस्स नेरइयस्स दब्बट्टयाए तुल्ले, पएसट्टयाए तुल्ले, ओगाहणट्टयाए तुल्ले, ठितीए चउट्टाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहि य छट्टाणविडते।

[४५५ प्र.] भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले नैरियकों के कितने पयार्य कहे गए है ? [४५५ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

१. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ. १४०

२. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १८६

- [प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य अवगाहना वाले नारकों के अनन्त पर्याय हैं ?'
- [उ.] गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला नैरियक, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले नैरियक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है; अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य है; (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थान पितत (हीनाधिक) है, और वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों, तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।
 - [२] उक्कोसोगाहणयाणं भंते! नेरइयाणं केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित उक्कोसोगाहणयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! उक्कोसोगाहणए णेरइए उक्कोसोगाहणगस्स नेरइयस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए तुल्ले, ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भिहए—जित हीणे असंखेज्जभाग-हीणे वा संखेज्जभागहीणे वा, अह अब्भिहए असंखेज्जइभागअब्भिहए वा संखेज्जभागअब्भिहए वा, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छद्वाणविडते।

[४५५-२ प्र.] भगवन्! उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरियकों के कितने पर्याय कहे गए है ? [४५५-२ उ.] गौतम! अनन्त पर्याय कहे गए है।

- [प्र.] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं ?
- [उ.] गौतम! एक उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक, दूसरे उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य हैं; किन्तु स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है या संख्यातभाग हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक है, अथवा संख्यातभाग अधिक है। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तथा तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।
 - [३] अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! अजहण्णुक्कोसोगाहणए णेरइए अजहण्णुक्कोसोगाहणगस्स णेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्टयाए तुल्ले, ओगाहणट्टयाए सिय हीणे सिये तुल्ले सिय अब्भहिए—जित हीणे असंखेज्जभागहीणे वा संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भिहए असंखेज्जितभागअब्भितिए वा संखेज्जितभागअब्भितिए वा संखेज्जितभागअब्भितिए वा असंखेज्जगुणअब्भितिए वा, ितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भितिए—जित हीणे असंखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जितभागि वा संखेज्जितभागअब्भिहए वा असंखेज्जितभागअब्भिहए वा संखेज्जितभागअब्भिहए वा संखेज्जितभागअब्भिहए वा असंखेज्जितभागअब्भिहए वा संखेज्जितभागअब्भिहए वा असंखेज्जगुणअब्भिहए वा, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणविडते, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चित अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

[४५५-३ प्र.] भगवन्! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले नैरियकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५५-३ उ.] गौतम! अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मध्यम अवगाहना वाले नैरियकों के अनन्त पर्याय है ?'

[3.] गौतम! मध्यम अवगाहना वाला एक नारक, अन्य मध्य अवगाहना वाले नैरियक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो, असंख्यातभाग हीन है अथवा संख्यातभाग हीन है, या संख्यातगुण हीन है, अथवा असंख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक है अथवां संख्यातभाग अधिक है, अथवा संख्यातगुण अधिक है, या असंख्यातगुण अधिक है। स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है, अथवा संख्यातगुण हीन है, या असंख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक है अथवा संख्यातभाग अधिक है, या संख्यातगुण अधिक है, अथवा असंख्यातगुण अधिक है। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, तीनों ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

हे गौतम! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मध्यम अवगाहना वाले नैरियकों के अनन्त पर्याय कहे हैं।'

४५६. [१] जहण्णिठतीयाणं भंते! नेरइयाणं केवितया पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णद्वितीयाणं नेरइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णद्वितीए नेरइए जहण्णद्वितीयस्स नेरइयस्स दव्वद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए चउट्टाणविडते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहि य छट्टाणविडते।

[४५६-१ प्र.] भगवन्! जघन्य स्थिति वाले नारकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५६-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले नैरियकों के अनन्त पर्याय है ?

[3.] गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला नारक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है; स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तथा तीन ज्ञान, तीन अज्ञान एवं तीन दर्शनों की अपेक्षा षट्स्थानपितत (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसट्ठितीए वि।

[४५६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले नारक के विषय में भी यथायोग्य तुल्य चतुःस्थानपतित, षट्स्थानपतित, आदि कहना चाहिए।

[३] अजहण्णुक्कोसिट्टतीए वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे चउट्टाणविडते।

[४५६-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले नारक के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में चतुःस्थानपतित है।

४५७. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते! नेरइयाणं केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चित जहण्णगुणकालयाणं नेरइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णगुणकालए नेरइए जहण्णगुणकालगस्स नेरइयस्स दव्बद्धयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए चउद्घाणविद्यते, ठितीए चउद्घाणविद्यते, कालवण्णपञ्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहि य छद्घाणविद्यते, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चित जहण्णगुणकालयाणं नेरइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ।

[४५७-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुण काले नैरियकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५७-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं ?

[3.] गौतम! एक जघन्यगुण काला नैरियक, दूसरे जघन्यगुण काले नैरियक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है किन्तु अविशिष्ट वर्ण,

गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा गया कि 'जघन्यगुण काले नारकों के अनन्त पर्याय कहे हैं।'

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[४५७-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (नारकों के पर्यायों के विषय में भी) समझ लेना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। णवरं कालवण्णपञ्जवेहिं छट्ठाणविडते।

[४५७-३] इसी प्रकार अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले नैरियक के पर्यायों के विषय में जान लेना चाहिए। विशेष इतना ही है कि काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपितत (हीनाधिक) होता है।

४५८. एवं अवसेसा चत्तारि वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा भाणितव्वा।

[४५८] यों काले वर्ण के पर्यायों की तरह शेष चारों वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श की अपेक्षा से भी (समझ लेना चाहिए।)

४५९. [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते! नेरइयाणं केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं णेरइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णाभिणिबोहियणाणी णेरइए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स नेरइयस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वताए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फास-पञ्जवेहिं छट्ठाणविडते, आभिणिबोहियणाणपञ्जवेहिं तुल्ले, सुतणाणओहिणाणपञ्जवेहिं छट्ठाणविडते, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणविडते।

- [४५९-१ प्र.] भगवन्! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरियकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [४५९-१ उ.] गौतम! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरियकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
- [प्र.] भगवन्! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरियकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?'
- [उ.] गौतम! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी, दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरियक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से (भी) चतुःस्थानपितत है, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है तथा तीन दर्शनों की अपेक्षा (भी) षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि।

[४५९-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरियकों के (पर्यायों के विषय में समझ लेना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि एवं चेव नवरं आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं सद्वाणे छद्वाणविडते।

[४५९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि वह आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से भी स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

४६०. एवं सुतणाणी ओहिणाणी वि। णवरं जस्स णाणा तस्स अण्णाणा णित्थ।

[४६०] श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी नैरियकों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार (आभिनिबोधिकज्ञानीपर्यायवत्) जानना चाहिए। विशेष यह है कि जिसके ज्ञान होता है, उसके अज्ञान नहीं होता।

४६१. जहा नाणा तहा अण्णाणा वि भाणितव्वा। नवरं जस्स अण्णाणा तस्स नाणा न भवंति।

[४६१] जिस प्रकार त्रिज्ञानी नैरियकों के पर्यायों के विषय में कहा, उसी प्रकार त्रिअज्ञानी नैरियकों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए। विशेष यह है कि जिसके अज्ञान होते हैं, उसके ज्ञान नहीं होते।

४६२. [१] जहण्णचक्खुदंसणी णं भंते! नेरइयाणं केवितया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित जहण्णचक्खुदंसणी णं नेरइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णचक्खुदंसणी णं नेरइए जहण्णचक्खुदंसिणस्स नेरइयस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए चउद्वाणविडते, ठितीए चउद्वाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं छट्ठाणविडते, चक्खुदंसणपञ्जवेहिं तुल्ले, अचक्खुदंसणपञ्जवेहिं ओहिदंसणपञ्जवेहिं य छट्ठाणविडते।

[४६२-१ प्र.] भगवन्! जघन्य चक्षुदर्शनी नैरियकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४६२-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य चक्षुदर्शनी नैरियक के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम! एक जघन्य चक्षुदर्शनी नैरियक, दूसरे जघन्य चक्षुदर्शनी नैरियक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है; वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, तथा तीन ज्ञान और

तीन अज्ञान की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। चक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसचक्खुदंसणी वि।

[४६२-२] इसी प्रकार उत्कृष्टचक्षुदर्शनी नैरियकों (के पर्यायों के विषय में भी समझना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसर्चक्खुदंसणी वि चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणविडते।

[४६२-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) चक्षुदर्शनी नैरियकों के (पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।) विशेष इतना ही है कि स्वस्थान में भी वह षट्स्थानपतित होता है।

४६३. एवं अचक्खुदंसणी वि ओहिदंसणी वि।

[४६३] चक्षुदर्शनी नैरियकों के पर्यायों की तरह ही अचक्षुदर्शनी नैरियकों एवं अवधिदर्शनी नैरियकों के पर्यायों के विषय में जानना चाहिए।

विवेचन — जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले नारकों के विभिन्न अपेक्षाओं से पर्याय — प्रस्तुत ९ सूत्रों (सू. ४५५ से ४६३ तक) में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना आदि से युक्त नारकों के पर्यायों का कथन किया गया है।

जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक द्रव्य, प्रदेश और अवगाहना की दृष्टि से तुल्य जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना वाला एक नारक, दूसरे नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, क्योंकि 'प्रत्येक द्रव्य अनन्त पर्याय वाला होता है' इस प्रकार से नारक जीवद्रव्य एक होते हुए भी अनन्त पर्याय वाला हो सकता है। अनन्त पर्याय वाला होते हुए भी वह द्रव्य से एक है, जैसे कि अन्य नारक एक-एक हैं। इसी प्रकार प्रत्येक नारक जीव लोकाकाशप्रमाण असंख्यात प्रदेशों वाला होता है, इसलिए प्रदेशों की अपेक्षा से भी वह तुल्य है; तथा अवगाहना की दृष्टि से भी तुल्य है, क्योंकि जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना का एक ही स्थान है, उसमें तरतमता-हीनाधिकता संभव नहीं है।

स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपितत — जघन्य अवगाहना वाले नारकों की स्थिति में समानता का नियम नहीं है। क्योंकि एक जघन्य अवगाहना वाला नारक १० हजार वर्ष की स्थितिवाला रत्नप्रभापृथ्वी में होता है और एक उत्कृष्ट स्थितिवाला नारक सातवीं पृथ्वी में होता है। इसिलए जघन्य या उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक स्थिति की अपेक्षा असंख्यातभाग या संख्यातभाग हीन अथवा संख्यातगुण या असंख्यातगुण हीन भी हो सकता है। अथवा असंख्यातभाग या संख्यातभाग अधिक अथवा संख्यातगुण या असंख्यातगुण अधिक भी हो सकता है। इसिलए स्थिति की अपेक्षा से नारक चतुःस्थानपितत होते हैं।

जघन्य अवगाहना वाले नारक को तीन ज्ञान या तीन अज्ञान कैसे ? — कोई गर्भज-संज्ञी-पंचेन्द्रिय जीव नारकों में उत्पन्न होता है, तब वह नरकायु के वेदन के प्रथम समय में ही पूर्वप्राप्त औदारिकशरीर का परिशाटन करता है, उसी समय सम्यग्दृष्टि को तीन ज्ञान और मिथ्यादृष्टि को तीन अज्ञान उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् अविग्रह से या विग्रह से गमन करके वह वैक्रियशरीर धारण करता है, किन्तु जो सम्मूर्च्छिम असंज्ञीपंचेन्द्रिय जीव नरक में उत्पन्न होता है, उसे उस समय विभंगज्ञान नहीं होता। इस कारण जघन्य अवगाहना वाले नारक को भजना से दो या तीन अज्ञान होते हैं, ऐसा समझ लेना चाहिए।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक स्थित की अपेक्ष्ना से द्विस्थानपतित — उत्कृष्ट अवगाहना वाले सभी नारकों की स्थिति समान ही हो, या असमान ही हो, ऐसा नियम नहीं है। असमान होते हुए यदि हीन हो तो वह या तो असंख्यातभागहीन होता है या संख्यातभागहीन और अगर अधिक हो तो असंख्यातभाग अधिक या संख्यातभाग अधिक होता है। इस प्रकार स्थिति की अपेखा के द्विस्थानपतित हीनाधिकता समझनी चाहिए। यहाँ संख्यातगुण और असंख्यातगुण हीनाधिकता नहीं होती, इसिलए चतुःस्थानपतित सम्भव नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक ५०० धनुष्य की ऊंचाई वाले सप्तम नरक में ही पाए जाते हैं; और वहाँ जघन्य बाईस और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की स्थिति है। अतएव इस स्थिति में संख्यात-असंख्यातभाग हानि वृद्धि हो सकती है, किन्तु संख्यात-असंख्यातगुण हानि-वृद्धि की संभावना नहीं हैं। है

उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारकों में तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियम से— उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारकों में तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियमित: होते हैं, भजना से नहीं क्योंकि उत्कृष्टत: अवगाहना वाले नारकों में सम्मूर्च्छिम असंज्ञीपंचेन्द्रिय की उत्पत्ति नहीं होती। अत: उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक यदि सम्यग्दृष्टि हो तो तीन ज्ञान और मिथ्यादृष्टि हो तो तीन अज्ञान नियमित: होते हैं।

मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) अवगाहना का अर्थ — जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के बीच की अवगाहना अजघन्य-अनुत्कृष्ट या मध्यम अवगाहना कहलाती है। इस अवगाहना का जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के समान नियत एक स्थान नहीं हैं। सर्वजघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की ओर उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष्य की होती है। इन दोनों के बीच की जितनी भी अवगाहनाएं होती हैं, वे सब मध्यम अवगाहना की कोटि में आती हैं। तात्पर्य यह है कि मध्यम अवगाहना सर्वजघन्य अंगुल के असंख्यावतें भाग अधिक से लेकर अंगुल के असंख्यावतें भाग कम पांच सौ धनुष की समझनी चाहिए। यह अवगाहना सामान्य नारक की अवगाहना के समान चतु:स्थानपतित हो सकती है।

जघन्य स्थिति वाले नारक स्थिति की अपेक्षा से तुल्य — जघन्य स्थिति वाले एक नारक से, जघन्यस्थिति वाला दूसरा नारक स्थिति की दृष्टि से समान होता है; क्योंकि जघन्य स्थिति का एक ही स्थान होता है, उसमें किसी प्रकार की हीनाधिकता संभव नहीं है।

जघन्य स्थिति वाले नारक अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित — एक जघन्य स्थिति वाला नारक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले नारक से अवगाहना में पूर्वोक्त व्याख्यानुसार चतुःस्थानपतित

१. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १८८

⁽ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ६३२ से ६३८

२. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १८८

⁽ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ. ६३८ से ६३९

हीनाधिक होता है, क्योंकि उनमें अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर उत्कृष्ट ७ धनुष तक पाई जाती है।

मध्यम स्थिति वाले नारकों की स्थिति की अपेक्षा सें चतुःस्थानपितत हीनाधिकता — जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति वाले नारकों की स्थिति तो परस्पर तुल्य कही गई है, मगर मध्यम स्थिति वाले नारकों की स्थिति में परस्पर चतुःस्थानपितत हीनाधिक्य है, क्योंकि मध्यम स्थिति तारतम्य से अनेक प्रकार की है। मध्यमस्थिति में एक समय अधिक दस हजार वर्ष से लेकर एक समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति परिगणित है। इसलिए इसका चतुःस्थानपितत हीनाधिक होना स्वाभाविक है।

कृष्णवर्णपर्याय की अपेक्षा से नारकों की तुल्यता — जिस नारक में कृष्णवर्ण का सर्वजघन्य अंश पाया जाता है, वह दूसरे सर्वजघन्य अंश कृष्णवर्ण वाले के तुल्य ही होता है, क्योंकि जघन्य का एक ही रूप है, उसमें विविधता या हीनाधिकता नहीं होती।

ज्ञान और अज्ञान दोनों एक साथ नहीं रहते — जिस नारक में ज्ञान होता है, उसमें अज्ञान नहीं होता और जिसमें अज्ञान होता है उसमें ज्ञान नहीं होता, क्योंकि ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान और मिथ्यादृष्टि को अज्ञान होता है। जो सम्यग्दृष्टि होता है, वह मिथ्यादृष्टि नहीं होता और जो मिथ्यादृष्टि होता है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं होता। र

जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले असुरकुमारादि भवनपति देवों के पर्याय

४६४. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते! असुरकुमाराणं केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्टेणं भंते! एवं वृच्चित जहण्णोगाहणगाणं असुरकुमाराणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णोगाहणए असुरकुमारे जहण्णोगाहणगस्स असुरकुमारस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्ठ्याए तुल्ले, ओगाहणद्ठ्याए तुल्ले, ठितीए चउद्ठाणविडते, वन्नादीहिं छद्ठाणविडते, आभिणिबोहियणाण- सुतणाण- ओहिणाणपञ्जवेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहि य छद्ठाणविडिते।

[४६४-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमारों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [४६४-१ उ.] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण ऐसा कहा जाता है कि जघान्य अवगाहना वाले असुरकुमारों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ.] गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला असुरकुमार, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमार

१. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १८९

⁽ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ. ६४४ से ६४७

१. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १८९

⁽ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ. ६४९, ६५४

से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से भी तुल्य है; (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है, वर्ण आदि की दृष्टि से षटस्थानपतित है; आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान एवं अवधिज्ञान के पर्यायों, तीन अज्ञानों तथा तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसोगाहणाए वि। एवं अजहन्नमणुक्कोसोगाहणाएवि। नवरं उक्कोसोगाहणए वि असुरकुमारे ठितीए चउट्ठाणविडते।

[४६४-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले असुरकुमारों के (पर्यायों के) विषय में (समझ लेना चाहिए) तथा इसी प्रकार मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) अवगाहना वाले असुरकुमारों के (पर्यायों के सम्बन्ध में जान लेना चाहिए।) विशेष यह है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले असुरकुमार स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित (हीनाधिक) हैं।

४६५. एवं जाव थणियकुमारा।

[४६५] असुरकुमारों (के पर्यायों की वक्तव्या) की तरह ही यावत् स्तनितकुमारों तक (के पर्यायों को वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए।)

विवेचना — जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले असुरकुमारादि भवनवासियों के पर्याय — प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ४६४-४६५) में असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना वाले दशविध भवनपतियों के अनन्त पर्यायों का सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

जघन्यादियुक्त अवगाहनादि विशिष्ट एकेन्द्रियों के पर्याय

४६६. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते! पुढिविकाइयाणं केवितया पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित जहण्णोगाहणगाणं पुढिवकाइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णोगाहणए पुढिविकाइए जहण्णोगाहणगस्स पुढिविकाइयस्स दव्बट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्टयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपञ्जवेहि य छट्ठाणविडते।

[४६६-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के कितने पर्याय प्ररूपित किये गए हैं ?

[४६६-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय प्ररूपित किये गए हैं।

- [प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्तपर्याय हैं ?
 - [उ.] गौतम! जघन्य अवगाहना वाला एक पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक

से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, दो अज्ञानों की अपेक्षा से एवे अचक्षुदर्शन के पर्यायों की दृष्टि से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि।

[४६६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों का कथन भी करना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे चउट्ठाणविडते।

[४६६-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में भी ऐसा समझना चाहिए। विशेष यह है कि मध्यम अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीव स्वस्थान में अर्थात् अवगाहना की अपेक्षा से भी चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) हैं।

४६७. [१] जहण्णद्वितीयाणं भंते ! पुढिवकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित जहण्णिहितीयाणं पुढिविकाइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णता ? गोयमा! जहण्णिठितीए पुढिविकाइए जहण्णिठितीयस्स पुढिविकाइयस्स दव्बहुयाए तुल्ले, पदेसहुयाए तुल्ले, ओगाहणहुताए चउहाणविडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं मित-अण्णाण-सुतअण्णाण-अचक्खुदंसणपञ्जवेहिं य छट्ठाणविडिते।

[४६७-१ प्र.] भगवन्! जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्याय कितने कहे गए है? [४६७-१ उ.]गौतम! (उनके) अनन्तपर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे हैं?'

[उ.] गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपितत (हीनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों, मित-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षु-दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसिठतीए वि।

[४६७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले (पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में भी समझ लेना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसिठतीए वि एवं चेव। णवरं सद्वाणे तिद्वाणविडते।

[४६७-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में इसी

प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि वे स्वस्थान में त्रिस्थानपतित हैं।

४६८. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ! पुढविकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एव वुच्चित जहण्णगुणकालयाणं पुढिविकाइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णगुणकालए पुढिविकाइए जहण्णगुणकालगस्स पुढिविकाइयस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए चउद्वाणविडिते, ठितीए तिद्वाणविडिते, कालवण्णपञ्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं छट्ठाणविडिते, दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपञ्जवेहि य छट्ठाणविडिते।

[४६८-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुण काले पृथ्वीकायिक जीवों (के पर्यायों के परिमाण) की पृच्छा है। [४६८-१ उ.] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

- [प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'
- [उ.] गौतम! जघन्य गुण काला एक पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्यगुण काले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों को अपेक्षा से तुल्य है; काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है; तथा अविशष्ट वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है; एवं दो अज्ञानों और अचक्षुदर्शन के पर्यायों से भी षट्स्थानपितत (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[४६८-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के (पर्यायों के विषय में कथन करना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे छट्ठाणविडते।

[४६८-२] मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) गुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

४६९. एवं पंच वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्र फासा भाणितव्वा।

[४६९] इसी प्रकार (पृथक्-पृथक् जघन्य-मध्यम-उत्कृष्टगुण वाले) पांच वर्णों, दो गन्धों, पांच रसों आठ स्पर्शों (से युक्त पृथ्वीकायिकों के पर्यायों) के विषय में (पूर्वोक्तसूत्रानुसार) कहना चाहिए।

४७०. [१] जहण्णमतिअण्णाणीणं भंते! पुढविकाइयाए पुच्छा ।

गीयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एव वुच्चित जहण्णमितअण्णाणीणं पुढिवकाइयाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णमितअण्णाणी पुढिविकाइए जहण्णमितअण्णाणिस्स पुढिविकाइयस्स दव्वहुयाए तुल्ले, पदेसहुयाए तुल्ले, ओगाहणहुयाए चउड्डाणविडते, ठितीए तिट्ठाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं छट्ठाणविडते, मितअण्णाणेहिं पञ्जवेहिं तुल्ले, सुयअण्णाणपञ्जवेहिं अचक्खुदंसणपञ्जवेहि य छट्ठाणविडते।

[४६८-१ प्र.] भगवन्! जघन्य मित-अज्ञानी पृथ्वीकायिक के कितने पर्याय कहे गए हैं?

[४६८-१ उ.] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

- [प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य मित-अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'
- [उ.] गौतम! जघन्य मित-अज्ञानी पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य मित-अज्ञानी पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों को अपेक्षा से तुल्य है; (किन्तु)अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपितत है; तथा वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है; मित-अज्ञानी के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है; (किन्तु) श्रतु-अज्ञान के पर्यायों तथा अचक्षुदर्शन के पर्यायों की दृष्टि से षट्स्थानपितत (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसमितअण्णाणी वि।

[४६८-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट मित-अज्ञानी (पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में कथन करना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसमइअण्णाणी वि एवं चेव। नवरं सट्टाणे छट्टाणविडते।

[४७०-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट-मित-अज्ञानी (पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों) के विषय में भी इसी प्रकार (कहना चाहिए।) विशेष यह है कि यह स्वस्थान अर्थात् मित-अज्ञान के पर्यायों में भी षट्स्थानपितत (हीनाधिक) है।

४७१. एवं सुयअण्णाणी वि। अचक्खुदंसणी वि एवं चेव।

[४७१] (जिस प्रकार जघन्यादियुक्त मित-अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में कहा गया है) उसी प्रकार श्रुत-अज्ञानी तथा अचक्षुदर्शनी पृथ्वीकायिक जीवों का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।

४७२. एवं जाव वणप्फइकाइयाणं ।

[४७२] (जिस प्रकार जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम-मित श्रुतज्ञानी एवं अचक्षुदर्शनी पृथ्वीकायिक पर्यायों के विषय में कहा गया है,) उसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक का (पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।)

विवेचन — जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहनादियुक्त पृथ्वीकायिक आदि पंच स्थावरों की पर्यायविषयक प्ररूपणा — प्रस्तुत सात सूत्रों (सू. ४६६ से ४७२ तक) में जघन्य मध्यम एवं उत्कृष्ट

अवगाहना से लेकर अचक्षुदर्शन तक से युक्त पृथ्वीकायिक आदि पांच एकेन्द्रिय जीवों का पर्यायविषयक कथन किया गया है।

जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक आदि का अवगाहना की दृष्टि से पर्याय-परिमाण — जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनावाले दो पृथ्वीकाायिकादि एकेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से परस्पर तुल्य होते हैं। किन्तु मध्यम अवगाहना वाले दो पृथ्वीकायिकादि अवगाहना की अपेक्षा से स्वस्थान में परस्पर चतुःस्थानपतित होते हैं। अर्थात् — एक मध्यम अवगाहना वाला पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय, दूसरे मध्यम अवगाहनावाले पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय से अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होता है, क्योंकि सामान्यरूप से मध्यम अवगाहना होने पर भी वह विविध प्रकार की होती है। जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना की भाँति उसका एक ही स्थान नहीं होता। कारण यह है कि पृथ्वीकायिक आदि के भव में पहले उत्पत्ति हुई हो, उसे स्वस्थान कहते हैं। इस प्रकार के स्वस्थान में असंख्यातवर्षों का आयुष्य संभव होने से असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन अथवा संख्यातगुणहीन या असंख्यातगुणहीन होता है, अथवा असंख्यातभाग अधिक, संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुण अधिक अथवा असंख्यातगुण अधिक होता है; इस प्रकार चतुःस्थानपतित होता है। इसी प्रकार स्थिति, वर्णादि, मित-श्रुतज्ञान एवं अचशुदर्शन से युक्त पृथ्वीकायिकादि की हीनाधिकता अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होती हैं।

जघन्य आदि स्थित वाले पृथ्वीकायिकादि का विविध अपेक्षाओं से पर्याय-परिमाण — स्थित की अपेक्षा से एक पृथ्वीकायिक आदि दूसरे पृथ्वीकायिक आदि से तुल्य होता है, किन्तु अवगाहना, वर्णादि, तथा मित-श्रुतज्ञान के एवं अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य नहीं होता हैं; क्योंकि पृथ्वीकायिक आदि की स्थित संख्यातवर्ष की होती है, यह बात पहले समुच्चय पृथ्वीकायिकों की वक्तव्यता के प्रसंग में कही जा चुकी है। इसिलए जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले पृथ्वीकायिक आदि परस्पर यदि हीन हो तो असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन अथवा संख्यातगुणहीन होता है, यदि अधिक हो तो असंख्यातभाग-अधिक, संख्यातभाग-अधिक अथवा संख्यातगुण-अधिक होता होता है। वह पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार असंख्यातगुण हीन या अधिक नहीं होता।

पूर्वोक्त पृथ्वीकायिक आदि में दो अज्ञान और अचक्षुदर्शन की ही प्ररूपणा क्यों ? — पृथ्वीकायिक आदि में सभी मिथ्यादृष्टि होते हैं, इनमें सम्यक्त्व नहीं होता, और न सम्यग्दृष्टि जीव पृथ्वीकायिकादि में उत्पन्न होता है। अतएव उनमें दो अज्ञान ही पाए जाते हैं। इसी कारण यहाँ दो अज्ञानों की ही प्ररूपणा की गई है। इसी प्रकार पृथ्वीकायिकादि में चक्षुरिन्द्रिय का अभाव होने से चक्षुदर्शन नहीं होता। इसलिए यहां केवल अचक्षुदर्शन की ही प्ररूपणा की गई है। इसी प्रकार पृथ्वीकायिकादि में चक्षुरिन्द्रिय का अभाव होने से

२. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १९३ (ख) प्रज्ञापना, प्रमेयबोधिनी टीका, भा. २, पृ. ६७९-६८०

३. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९३ (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका, भा-२, पृ. ६८२

मध्यम वर्णादि से युक्त गुण वाले पृथ्वीकायिकादि का पर्यायपिरमाण — जैसे जघन्य और उत्कृष्ट कृष्ण वर्ण आदि का स्थान एक ही होता है, उनमें न्यूनाधिकता का सम्भव नहीं, उस प्रकार से मध्यम कृष्णवर्ण का स्थान एक नहीं है। एक अंश वाला कृष्णवर्ण आदि जघन्य होता है और सर्वाधिक अंशों वाला कृष्ण वर्ण आदि उत्कृष्ट कहलाता है। इन दोनों के मध्य में कृष्णवर्ण आदि के अनन्त विकल्प होते हैं। जैसे — दो गुण काला, तीन गुण काला, चार गुण काला, दस गुण काला, संख्यातगुण काला, असंख्यातगुण काला, अनन्तगुण काला। इसी प्रकार अन्य वर्णों तथा गन्ध, रस और स्पर्शों के बारे में समझ लेना चाहिए। अतएव जघन्य गुण काले से ऊपर और उत्कृष्ट गुण काले से नीचे कृष्ण वर्ण के मध्यम पर्याय अनन्त हैं। तात्पर्य यह है कि जघन्य और उत्कृष्टगुण वाले कृष्णादि वर्ण रस इत्यादि का पर्याय एक है, किन्तु मध्यम गुण कृष्णवर्ण आदि के पर्याय अनन्त हैं। यही कारण है कि दो पृथ्वीकायिक जीव यदि मध्यमगुण कृष्णवर्ण हों, तो भी उनमें अनन्तगुणहीनता और अधिकता हो सकती है। इसी अभिप्राय से यहाँ स्वस्थान में भी सर्वत्र षट्स्थानपतित न्यूनाधिकता बताई है। इसी प्रकार आगे भी सर्वत्र षट्स्थानपतित समझ लेना चाहिए।

पृथ्वीकायिकों की तरह अन्य एकेन्द्रियों का पर्याय-विषयक निरूपण — सूत्र ४७२ में बताये अनुसार पृथ्वीकायिक सूत्र की तरह अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक जीवों के जघन्य, उत्कृष्ट एवं मध्यम, द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि तथा ज्ञान-अज्ञानादि की दृष्टि से पर्यायों की यथायोग्य हीनाधिकता समझ लेनी चाहिए।

जघन्यादियुक्त अवगाहनादि विशिष्ट विकलेन्द्रियों के पर्याय

४७३. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते! बेइंदियाणं पच्छा ।

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित जहण्णोगाहणगाणं बेइंदियाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णोगाहणए बेइंदिए जहण्णोगाहणस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खदंसणपञ्जवेहि य छट्ठाणविडते।

[४७३-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [४७२-१ उ.] गौतम! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन्! किस हेत् से ऐसा कहा जाता है कि द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ.] गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीव से,

१. (क) प्रज्ञापना, म. वृत्ति, पत्रांक १९३ (ख) प्रज्ञापना, प्रमेयबोधिनी टीका, भा-३, पृ. ६८२ से ६८४

२. (क) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका, भा. २, पृ. ६८८

द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपितत है, वर्ण, गंध रस एवं स्पर्श के पर्यायों, दो ज्ञानों, दो अज्ञानों तथा अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि। णवरं णाणा णित्थ।

[४७३-२] इसी प्रकार उत्कृट अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए। किन्तु उत्कृष्ट अवगाहना वाले में ज्ञान नहीं होता, इतना अन्तर है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए जहा जहण्णोगाहणए। णवरं सट्ठाणे ओगाहणाए चउट्ठाण-विडते।

[४७३-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों के पर्यायों के विषय में जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों के पर्यायों की तरह कहना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान में अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है।

४७४. [१] जहण्णिठतीयाणं भंते! बेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित जहण्णिठतीयाणं बेइंदियाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णिठतीए बेइंदिए जहण्णिठतीयस्स बेइंदियस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउठ्ठाणविडते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं दोहिं अणाणेहिं अचक्खुदंसणपञ्जवेहि य छट्ठाणविडते।

[४७४-१ प्र.] भगवन्! जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय हैं ?

[४७४-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस दृष्टि से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ.] गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य स्थित वाले द्वीन्द्रिय से द्रव्यापेक्षया तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है; तथा वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श के पर्यायों, दो अज्ञानों एवं अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसिठतीए वि। णवरं दो णाणा अब्भिहिया।

[४७४-२] इसी प्रकार खत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रियजीवों का भी (पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।) विशेष यह है कि इनमें दो ज्ञान अधिक कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसिठतीए जहा उक्कोसिठतीए । णवरं ठितीए तिट्ठाणविडते।

[४७४-३] जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों के पर्याय के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार मध्यम स्थिति वाले द्वीन्द्रियों के पर्याय के विषय में कहना चाहिए। अन्तर इतना ही है कि स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित हैं।

४७५. [१] जहण्णगुणकालयाणं बेइंदियाणं पुच्छा ।

मोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित जहण्णगुणकालयाणं बेइंदियाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णगुणकालए बेइंदिए जहण्णगुणकालयस्स बेइंदियस्स दव्बट्टयाए तुल्ले, पदेसट्टयाए तुल्ले, ओगाहणट्टयाए चउट्टाणविडते, ठितीए तिट्टाणविडते, कालवण्णपञ्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपञ्जवेहि य छट्टाणविडते।

[४७५-१ प्र.] जघन्यगुण कृष्णवर्ण बाले द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [४७५- १ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्यगुणकाले द्वीन्द्रियों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम! एक जघन्यगुण कालद्वीन्द्रिय जीव, दूसरे जघन्यगुणकाले द्वीन्द्रिय जीव से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपितत (न्यूनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपितत है, कृष्णवर्णपर्याय की अपेक्षा से तुल्य है, शेष वर्णों तथा गंध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से; दो ज्ञान, दो अज्ञान एवं अचक्षुदर्शन पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[४७५-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले द्वीन्द्रिय के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे छट्ठाणविडते।

[४७५-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट गुण काले द्वीन्द्रिय जीवों का (पर्यायविषक कथन भी) इसी प्रकार (कहना चाहिए।) विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित (हीनाधिक) होता है।

४७६. एवं पंच वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ट फासा भाणितव्वा।

[४७६] इसी तरह पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्शों का (पर्याय विषयक) कथन करना चाहिए।

४७७. [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते! बेंदियाणं केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणड्रेणं भंते! एवं वुच्चति ?

गोयमा! जहणाभिणिबोहियणाणी बेइंदिए जहणाभिणिबोहियणाणिस्स बेइंदियस्स दळ्ड-याए तुल्ले, पएसट्टयाए तुल्ले, ओगाहणट्टयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए तिट्ठाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं छट्ठाणविडते, आभिणिबोहियणाणपञ्जवेहिं तुल्ले, सुयणाणपञ्जवेहिं छट्ठाणविडते, अचक्खुदंसणपञ्जवेहिं छट्ठाणविडते।

[४७७-१ प्र.] भगवन्! जघन्य-आभिनिबोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए है ? [४७७-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ.] गौतम! एक जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय से द्रव्यापेक्षया तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षया तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है। आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है; श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, तथा अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि।

[४७७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवों के (पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि एवं चेव। णवरं सद्वाणे छद्वाणविहते।

[४७७-३] मध्यम-आभिनिबोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय का पर्यायविषयक कथन भी इस प्रकार से करना चाहिए किन्तु वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

४७८. एवं सुतणाणी वि, सुतअण्णाणी वि, मतिअण्णाणी वि, अचक्खुदंसणी वि। णवरं जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि। जत्थ दंसणं तत्थ णाणा वि। वि

[४७८] इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी, मित-अज्ञानी और अचक्षुदर्शनी द्वीन्द्रिय जीवों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए। विशेषता यह है कि जहाँ ज्ञान होता है, वहाँ अज्ञान नहीं होते, जहाँ अज्ञान होता है, वहाँ ज्ञान नहीं होते। जहाँ दर्शन होता है, वहाँ ज्ञान भी हो सकता हैं और अज्ञान भी।

४७९. एवं तेइंदियाण वि।

[४७९] द्वीन्द्रिय के पर्यायों के विषय में कई अपेक्षाओं से कहा गया है, उसी प्रकार त्रीन्द्रिय के पर्याय-विषय में भी कहना चाहिए।

४८०. चउरिंदियाण वि एवं चेव। णवरं चक्खुदंसणं अब्भहियं।

[४८०] चतुरिन्द्रिय जीवों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। अन्तर केवल इतना है कि इनके चक्षुदर्शन अधिक है। (शेष सब बातें द्वीन्द्रिय की तरह हैं।)

विवेचन — जघन्यादि विशिष्ट विकलेन्द्रियों का विविध अपेक्षाओं से पर्याय-परिमाण — प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. ४७३ से ४८० तक) में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय के अनन्तपर्यायों की सयुक्तिक प्ररूपणा की गई है।

मध्यम अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय चतुःस्थानपतित क्यों ? — मध्यम अवगाहना वाला एक द्वीन्द्रिय, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले दूसरे द्वीन्द्रिय से अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य नहीं होता, अपितु चतुःस्थानपतित होता है, क्योंकि मध्यम अवगाहना सब एक-सी∕नहीं होती, एक मध्यम अवगाहना दूसरी मध्यम अवगाहना से संख्यातभाग हीन, असंख्यातभाग हीन, संख्यातगुण हीन या असंख्यातगुण हीन तथा इसी प्रकार चारों प्रकार से अधिक भी हो सकती है। मध्यम अवगाहना अपर्याप्त अवस्था के प्रथम समय के अनन्तर ही प्रारम्भ हो जाती है। अतएव अपर्याप्तदशा में भी उसका सद्भाव होता है। इस कारण सास्वादनसम्यक्त्व भी मध्यम अवगाहना के समय संभव है। इसी से यहाँ दो ज्ञानों का भी सद्भाव हो सकता है। जिन द्वीन्द्रियों से सास्वादन सम्यक्त्व नहीं होता, उनमें दो अज्ञान होते हैं।

जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रियों में दो अज्ञान की ही प्ररूपणा — जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों में दो अज्ञान ही पाए जाते हैं, दो ज्ञान नहीं, क्योंकि जघन्य स्थिति वाला द्वीन्द्रिय जीव लिब्ध अपर्याप्तक होता है, लिब्ध-अपर्याप्तकों के सास्वादनसम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता, इसका कारण यह है कि लिब्धअपर्याप्तक जीव अत्यन्त संक्लिष्ट होता है और सास्वादनसम्यक्त्व किंचित् शुभ-परिणामरूप है। अतएव सास्वादन सम्यग्दृष्टि का जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय रूप में उत्पाद नहीं होता।

उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों में दो ज्ञानों की प्ररूपणा — उत्कृष्टस्थितिक द्वीन्द्रिय जीवों में सास्वादनसम्यक्त्व वाले जीव भी उत्पन्न हो सकते हैं। अतएव जो वक्तव्यता जघन्यस्थितिक द्वीन्द्रियों के पर्यायविषय में कही हैं, वही उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रियों की भी समझनी चाहिए, किन्तु उनमें दो ज्ञानों के पर्यायों की भी प्ररूपणा करना चाहिए।

मध्यमस्थित वाले द्वीन्द्रियों की वक्तव्यता — इनसे सम्बन्धित पर्यायपरिमाण की वक्तव्यता उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रियों के समान समझनी चाहिए, किन्तु इनमें स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपितत कहना चाहिए, क्योंकि सभी मध्यमस्थिति वालों की स्थिति तुल्य नहीं होती।

जघन्यगुणकृष्ण द्वीन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित — एक जघन्यगुण कृष्ण, दूसरे जघन्यगुण कृष्ण से स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित होता है, क्योंकि द्वीन्द्रिय की स्थिति संख्यातवर्षों की होती है, इसलिए वह चतुःस्थानपतित नहीं हो सकता।

मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय की पर्याय-प्ररूपणा — इसकी और सब प्ररूपणा तो जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी के समान ही है, किन्तु विशेषता इतनी ही है कि वह स्वस्थान में भी षट्स्थानपितत हीनाधिक होता है। जैसे उत्कृष्ट और जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय का एक-एक ही पर्याय हैं, वैसे मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय का नहीं, क्योंकि उसके तो अनन्त हीनाधिकरूप पर्याय होते हैं। त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की प्ररूपणा यथायोग्य द्वीन्द्रियों की तरह समझ लेना चाहिए।

जघन्य अवगाहनादि वाले पंचेन्द्रियतिर्यंचों की विविध अपेक्षाओं से पर्याय प्ररूपणा

४८१. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं केवइया पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित जहण्णोगाहणगाणं पंचेंदियितिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णोगाहणए पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णोगाहणयस्स पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणविडते।

[४८१-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रियतिर्यंचों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [४८१-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

- [प्र.] भगवन्! ऐसा किस अपेक्षा से कहा जाता कि 'जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के अनन्त पर्याय हैं ?'
- [उ.] गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला पंचेन्द्रिय तिर्यंच्र दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपितत है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों, दो ज्ञानों, दो अज्ञानों और दो दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।
- [२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव। णवरं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणविडते।

[४८१-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों का (पर्याय-विषयक कथन) भी इसी प्रकार कहना चाहिए, विशेषता इतनी ही है कि तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[३] जहा उक्कोसोगाहणए तहा अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि। णवरं ओगाहणट्ठयाए

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १९३ (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी भा. २, पृ. ७०१ से ७०७

चउट्टाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए।

[४८१-३] जिस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले पंचेन्द्रियतिर्यंचों का (पर्यायविषयक) कथन (किया गया) है, उसी प्रकार अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों (से सम्बन्धित पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।) विशेष यह है कि ये अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित हैं, तथा स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है।

४८२. [१] जहण्णिठतीयाणं भंते! पंचेंदियितिरिक्खजोणियाणं केवितया पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित ?

गोयमा! जहण्णिठतीए पंचेंदियितिरिक्खजोणिए जहन्निठितीयस्स पंचिंदियितिरिक्खजोणियस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्ठयाए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए चउद्वाणविडते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणविडते।

[४८२-१ प्र.] भगवन्! जघन्य स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [४८२-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि 'जघन्य स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?'

[उ.] गौतम! एक जघन्यस्थिति वाला पंचेन्द्रियतिर्यंञ्च दूसरे जघन्यस्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों, दो अज्ञान एवं दो दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] उक्कोसिठतीए वि एवं चेव। नवरं दो नाणा दो अन्नाणा दो दंसणा ।

[४८२-२] उत्कृष्टस्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का पर्याय-विषयक कथनी भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेष यह है कि इनमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शनों (की प्ररूपणा करनी चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसिठतीए वि एवं चेव। नवरं ठितीए चउट्टाणविडते, तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा, तिण्णि दंसणा।

[४८२-२] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों का (पर्याय विषयक कथन भी) इसी प्रकार (पूर्ववत करना चाहिए।) विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से (यह) चतु:स्थानपतित हैं, तथा (इनमें) तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शनों (की प्ररूपणा करनी चाहिए)।

४८३. [१] जहण्णगुणकालगाणं भंते! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा । गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति ?

गोयमा! जहण्णगुणकालए पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णगुणकालगस्स पंचेंदियतिरिक्ख-जोणियस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पएसद्वयाए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए चउट्ठाणविडते ठितीए, चउट्ठाणविडते, कालवण्णपञ्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणविडते।

[४८३-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुणकृष्ण पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के कितने पर्याय हैं ?

[४८३-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि 'जघन्यगुणकृष्ण पंचेन्द्रियतिर्यंचों के अनन्त पर्याय हैं ?'

[3.] गौतम! एक जघन्यगुण काला पंचेन्द्रियितर्यंञ्च, दूसरे जघन्यगुण काले पंचेन्द्रियितर्यञ्च से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहनों की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष वर्ण, गंध, रस, स्पर्श तथा तीन ज्ञान, तीन अज्ञान एवं तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[४८३-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के पर्याय के विषय में भी समझना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे छट्ठाणविडते।

[४८३-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों के (पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।) विशेष यह है कि वे स्वस्थान (कृष्णगुणपर्याय) में भी षट्स्थानपतित हैं।

४८४. एवं पंच वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा।

[४८४] इस प्रकार पांचों वर्णों, दो गन्धों, पांच रसों और आठ स्पर्शों से (युक्त तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।)

४८५. [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित ?

गोयमा! जहणाभिणिबोहियणाणी पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्टयाए तुल्ले, पदेसट्टयाए तुल्ले, ओगाहणट्टयाए चउट्टाणविडते, ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं छट्ठाणविडते, आभिणिबोहियणाणपञ्जवेहिं तुल्ले, सुयणाणपञ्जवेहिं छट्ठाणविडते, चक्खुदंसणपञ्जवेहिं अचक्खुदंसणपञ्जवेहि य छट्ठाणविडते।

[४८५-१ प्र.] भगवन्! जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८५-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

- [प्र.] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि 'जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'
- [3.] गौतम! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च, दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, तथा चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, तथा चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।
- [२] एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि। णवरं ठितीए तिट्ठाणविडते, तिण्णि णाणा, तिण्णि दंसणा, सञ्चाणे तुल्ले, सेसेसु छट्ठाणविडते।

[४८५-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित हैं, तीन ज्ञान, तीन दर्शन तथा स्वस्थान में तुल्य हैं, शेष सब में षट्स्थानपतित (हीनाधिक) हैं।

[३] अजहण्णुक्कोसाभिणिबोहियणाणी जहा उक्कोसाभिणिबोहियणाणी। णवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते, सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[४८५-३] मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों का पर्यायविषयक कथन, उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों की तरह समझना चीहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित हैं; तथा स्वस्थान में षट्स्थानपतित हैं।

४८६. एवं सुतणाणी वि।

[४८६] जिस प्रकार (जघन्यादिविशिष्ट) आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय के पर्यायों के विषय में कहा है, उसी प्रकार (जघन्यादियुक्त) श्रुतज्ञानी तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

४८७. जहण्णोहिणाणीणं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा। गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति ?

गोयमा! जहण्णोहिणाणी पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहणोहिणाणिस्स पंचेंदियतिरिक्ख-जोणियस्स दव्वद्वयाते तुल्ले, पदेसद्वयाते तुल्ले, ओगाहणद्वयाते चउद्वाणविडते, ठितीए तिद्वाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं आभिणिबोहियणाण-सुतणाणपञ्जवेहि य छट्ठाणविडते, ओहिणाण-पञ्जवेहिं तुल्ले, अण्णाणा णित्थ, चक्खुदंसणपञ्जवेहिं अचक्खुदंसणपञ्जवेहिं य छट्ठाणविडते।

[४८७-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८७-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं 'जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रियितर्यञ्चों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[3.] गौतम! एक जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक, दूसरे जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है; स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है तथा वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के पर्यायों और आभिनिबोधिकज्ञान तथा श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। अवधिज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है। (इनमें) अज्ञान नहीं कहना चाहिए। चक्षुदर्शन-पर्यायों और अचक्षुदर्शन पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसोहिणाणी वि।

[४८७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवधिज्ञानी पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों का (पर्याय विषयक कथन करना चाहिए।)

[३] अजहण्णुक्कोसोहिणाणी वि एवं चेव। नवरं सट्टाणे छट्टाणविडते।

[४८७-३] मध्यम अवधिज्ञानी (पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों) की (भी पर्यायप्ररूपणा) इसी प्रकार करनी चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित (हीनाधिक) हैं।

४८८. जहा आभिणिबोहियणाणी तहा मइअण्णाणी स्यअण्णाणी य। जहा ओहिणाणी तहा विभंगणाणी वि चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी य जहा आभिणिबोहियणाणी। ओहिदसणी जहा ओहिणाणी। जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णित्थ, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णित्थ, जत्थ दंसणा तत्थ णाणा वि अल्थि त्ति भाणितव्वं।

[४८८] जिस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता है, उसी प्रकार मित-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञन्नी की है; जैसी अविधज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याय-प्ररूपणा है, वैसी

ही विभंगज्ञानी की है। चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी की (पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता) आभिनिबोधिकज्ञानी की तरह है। अविधदर्शनी की (पर्याय-वक्तव्यता) अविधज्ञानी की तरह है। (विशेष बात यह है कि) जहाँ ज्ञान है, वहाँ अज्ञान नहीं है; जहाँ अज्ञान है; वहाँ ज्ञान नहीं है; जहाँ दर्शन है, वहँ ज्ञान भी हो सकते हैं, अज्ञान भी हो सकते हैं, ऐसा कहना चाहिए।

विवेचन — जयन्य-अवगाहनादि विशिष्ट पंचेन्द्रियतिर्यंचों की विविध अपेक्षाओं से पर्यायप्ररूपणा — प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. ५८१ से ५८८) में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना आदि वाले पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों की, द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि, ज्ञानाज्ञानदर्शनयुक्त आदि विभिन्न अपेक्षाओं से पर्यायों की प्ररूपणा की गई है।

जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपितत — जघन्य अवगाहना वाला तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय आयु सम्बन्धी काल मर्यादा (स्थिति) की अपेक्षा से त्रिस्थानपितत होता है, चतुःस्थानपितत नहीं; क्योंकि जघन्य अवगाहना वाला पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च संख्यात वर्षों की आयु वाला ही होता है, असंख्यातवर्षों की आयु वाले के जघन्य अवगाहना नहीं होती। इसी कारण यहां जघन्य अवगाहनावान् तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपितत कहा गया है, जिसका स्वरूप पहले बताया जा चुका है।

जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय में अविध या विभंगज्ञान नहीं — जघन्य अवगाहना वाला पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्त होता है, और अपर्याप्त होकर अल्पकाल वाले जीवों में उत्पन्न होता है, इसिलए उसमें अविधज्ञान या विभंगज्ञान संभव नहीं। इस कारण से यहाँ दो ज्ञानों और दो अज्ञानों का ही उल्लेख है। यद्यपि आगे कहा जाएगा कि कोई जीव विभंगज्ञान के साथ नरक से निकलकर संख्यात वर्षों की आयु वाले पंचेन्द्रियतिर्यंचों में उत्पन्न होता है, किन्तु वह महाकायवालों में ही उत्पन्न हो सकता है, अल्पकाय वालों में नहीं। इसिलए कोई विरोध नहीं समझना चाहिए। अवगाहना में षट्स्थानपितत होता नहीं है।

मध्यम अवगाहना वाला पंचेन्द्रिय तिर्यंच अवगाहना एवं स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपितत — चूंकि मध्यम अवगाहना अनेक प्रकार की होती है; अतः उसमें संख्यात-असंख्यातगुण हीनाधिकता हो सकती है तथा मध्यम अवगाहना वाला असंख्यात वर्ष की आयुवाला भी हो सकता है, इसलिए स्थिति की अपेक्षा से भी वह चतुःस्थानपितत है।

उत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय की पर्यायवक्तव्यता — उत्कृष्ट स्थितिवाले पंचेन्द्रियिव तीन पल्योपम की स्थिति वाले होते हैं, अत: उनमें दो ज्ञान, दो अज्ञान होते हैं। जो ज्ञान वाले होते हैं, वे वैमानिक की आयु बाँध लेते हैं, तब दो ज्ञान होते हैं। इस आशय से उनमें दो ज्ञान अथवा दो अज्ञान कहे हैं। है

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, म. वृत्ति, पत्रांक १९३-१९४ (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी. भा. २, पृ. ७२१ से ७२७ तक

मध्यम स्थिति वाला तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित — मध्यम स्थिति वाला तिर्यंचपंचेन्द्रिय संख्यात अथवा असंख्यात वर्ष की आयु वाला भी हो सकता है, क्योंकि एक समय कम तीन पल्योपम की आयुवाला भी मध्यमस्थितिक कहलाता है। अतः वह चतुःस्थानपतित है।

आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपितत — असंख्यात वर्ष की आयु वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंञ्च में भी अपनी भूमिका के अनुसार जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान पाए जाते हैं। इसी प्रकार संख्यातवर्ष की आयु वालों में जघन्य मित-श्रुतज्ञान संभव होने से यहाँ स्थिति की अपेक्षा से इसे चतुःस्थानपितत कहा है।

मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा से षट्स्थानपतित — क्योंकि आभिनिबोधिक ज्ञान के तरतमरूप पर्याय अनन्त होते हैं। अतएव उनमें अनन्तगुणहीनता-अधिकता भी हो सकती है।

मध्यम अविधज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्वस्थान में षट्स्थानपितत — इसका मतलब है — वह स्वस्थान अर्थात् मध्यम अविधज्ञान में षट्स्थानपितत होता है। एक मध्यम अविधज्ञानी दूसरे मध्यम-अविधज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय से षट्स्थानपितत हीन अधिक हो सकता है।

विभंगज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित — चूंकि अवधिज्ञान और विभंगज्ञान असंख्यातवर्ष की आयु वाले को नहीं होता, अतः अवधिज्ञान और विभंगज्ञान में नियम से^१ त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) होता है।

जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहनादि वाले मनुष्यों की पर्यायप्ररूपणा

४८९. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते! मणुस्साणं केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहणोगाहणगाणं मणुस्साणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ? गोयमा! जहणोगाहणए मणूसे जहण्णोगाहणस्स मणूसस्स दव्बट्टयाते तुल्ले, पदेसट्टयाए तुल्ले, ओगाहणट्टयाए, तुल्ले, ठितीए तिट्टाणविडते, वण्ण-गन्ध-रस-फासपञ्जवेहिं तिहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणविडते।

[४८९-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

[४८९-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि 'जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपितत है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्ष के पर्यायों की अपेक्षा से, एवं तीन ज्ञान, दो अज्ञान और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] उक्कोसागाहणए वि एवं चेव। नवरं ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते— जित हीणे असंखेज्जितभागहीणे, अह अब्भिहए असंखेज्जितभागमब्भिहिते; दो णाणा दो अण्णाणा दो दंसणा।

[४८९-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो असंख्यातभागहीन होता है, यदि अधिक हो तो असंख्यातभाग अधिक होता है। उनमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन होते हैं।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणाए वि एचं चेव। णवरं ओगाहणद्वयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए चउट्ठाणविडते, आइल्लिहं चउिंहं नाणेहिं छट्ठाणविडते, केवलणाणपञ्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं तिहं दंसणेहिं छट्ठाणविडते, केवलदंसणपञ्जवेहिं तुल्ले।

[४८९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले मनुष्यों का (पर्याय-विषयक कथन) भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेष यह है कि अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, तथा आदि के चार ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, तथा तीन अज्ञान और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है।

४९०. [१] जहण्णिठतीयाणं भंते! मणुस्साणं केवितया पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित ?

गोयमा! जहण्णिठतीए मणुस्से जहण्णिठतीयस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणाड्टयाए चउड्डाणविडते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गन्ध-रस-फासपञ्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्टाणविडते।

[४९०-१ प्र.] भगवन्! जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९०-१ उ.] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला मनुष्य, दूसरे जघन्य स्थिति वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, दो अज्ञानों और दो दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसिठतीए वि। नवरं दो णाणा, दो अण्णाणा, दो दंसणा।

[४९०-२] उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यों के (पर्यायों के विषय में) भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि (उनमें) दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन (पाए जाते) हैं।

[३] अजहण्णमणुक्कोसिठतीए वि एवं चेव। नवरं ठितीए चउट्ठाणविडते ओगाहणद्वयाए चउट्ठाणविडए, आदिल्लेहिं चउनाणेहिं छट्ठाणविडते, केवलनाणपञ्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणविडते, केवलदंसणपञ्जवेहिं तुल्ले।

[४९०-३] मध्यमस्थिति वाले मनुष्यों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, तथा आदि के चार ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, एवं तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है।

४९१. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते! मणुस्साणं केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पञ्जवपण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति ?

गोयमा! जहण्णगुणकालए मणूसे जहण्णगुणकालगस्स मणूसस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसहुयाए तुल्ले, ओगाहणहुयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए चउट्ठाणविडते कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गन्ध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणविडते, चउहिं णाणेहिं छट्ठाणविडते, केवलणाणपज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणविडते, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले।

[४९१-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुण काले मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९१ -१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

- [प्र.] भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि जघन्यगुण काले मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं ?
- [उ.] गौतम! एक जघन्यगुण काला मनुष्य दूसरे जघन्यगुण काले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है; तथा अविशष्ट वर्णों, गन्धों, रसों और स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है; चार ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, केवलज्ञान के पर्यायों को अपेक्षा से तुल्य है, तथा तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है जि

और केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[४९१-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले मनुष्यों के (पर्यायों के) विषय में भी (समझना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणविडते।

[४९१-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले मनुष्यों का पर्याय-विषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित हैं।

४९२. एवं पंच वण्णा दो गंधपंच रसा अट्ठा फासा भाणितव्वा।

[४९२] इसी प्रकार पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस एवं आठ स्पर्श वाले मनुष्यों का (पर्याय-विषयक) कथन करना चाहिए।

४९३. [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते! मणुस्साणं केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता? गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वृच्चित ?

गोयमा! जहण्णाभिणिबोहियणाणी मणूसे जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स मणूसस्स दव्बट्टयाए तुल्ले, पदेसट्टयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं छट्ठाणविडते, आभिणिबोहियणाणपञ्जवेहिं तुल्ले, सुतणाणपञ्जवेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणविडते।

[४९३-१ प्र.] भगवन्! जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९३-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण ऐसा कहा जाता है ?

[3.] गौतम! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्य दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक-ज्ञानी मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है तथा आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से, दो दर्शनों से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि। नवरं आभिणिबोहियणाणपञ्जवेहिं तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणविडते, तिहिं णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणविडते।

[४९३-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी (मनुष्यों की पर्यायों के विषय में जानना चाहिए।) विशेष यह है कि वह आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा तीन ज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। [३] अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी जहा उक्कोसाभिणिबोहियणाणी। णवरं ठितीए चउट्ठाणविडते, सट्ठाणे छट्ठाणविडते।

[४९३-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यों की तरह ही कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत हैं, तथा स्वस्थान में षट्स्थानपितत हैं।

४९४. एवं सुतणाणी वि।

[४९४] इसी प्रकार (जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम) श्रुतज्ञानी (मनुष्यों) के (पर्यायों के) विषय में (सारा पाठ कहना चाहिए।)

४९५. [१] जहण्णोहिणाणीणं भंते! मणुस्साणं केवितया पञ्जवा पण्णत्ता ?
 गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वृच्चित ?

गोयमा! जहण्णोहिणाणी मणुस्से जहण्णोहिणाणिस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणविडते, ठिईए तिट्ठाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं दोहिं नाणिहं छट्ठाणविडए, ओहिणाणपञ्जवेहिं तुल्ले, मणपञ्जवणाणपञ्जवेहिं छट्ठाणविडए, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणविडए।

[४९५-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९५-१ उ.] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते हैं (कि जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं) ?

[3.] गौतम! एक जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्य, दूसरे जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत (पाठान्तर की दृष्टि से 'त्रिस्थानपितत') है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपितत है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों एवं दो ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवधिज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसोहिणाणी वि।

[४९५-२] इसी प्रकार का (कथन) उत्कृष्ट अवधिज्ञानी (मनुष्यों के पर्यायों) के विषय में (कहना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसोहिणाणी वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे छट्ठाणविडए।

[४९५-३] इसी प्रकार मध्यम अवधिज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि पाठान्तर की अपेक्षा से-'अवगाहना' की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्वस्थान में वह षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४९६. जहा ओहिणाणी तहा मणपञ्जवणाणी वि भाणितव्वे। नवरं ओगाहणट्टयाए तिट्ठाणविडए। जहा आभिणिबोहियणाणी तहा मितअण्णाणी सुतअण्णाणी य भाणितव्वे। जहा ओहिणाणी तहा विभंगणाणी वि भाणियव्वे। चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी य जहा आभिणिबोहियणाणी। ओहिदंसणी जहा ओहिणाणी। जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णित्थ, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णित्थ, जत्थ दंसणा तत्थ णाणा वि अण्णाणा वि।

[४९६] जैसा (जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम) अवधिज्ञानी (मनुष्यों के पर्यायों) के विषय में कहा, वैसा ही (जघन्यादियुक्त) मन:पर्यायज्ञानी (मनुष्यों) के (पर्यायों के) विषय में कहना चाहिए। विशेषता यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से (वह) त्रिस्थानपितत है। जैसा (जघन्यादियुक्त) आभिनिबोधिक ज्ञानियों के पर्यायों के विषय में कहा है, वैसा ही मित-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी (मनुष्यों के पर्यायों) के विषय में (कहना चाहिए) जिस प्रकार (जघन्यादिविशिष्ट) अवधिज्ञानी (मनुष्यों) का (पर्याय-विषयक) कथन करना चाहिए।

चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी (मनुष्यों) का (पर्यायविषयक) कथन आभिनिबोधिकज्ञानी (मनुष्यों के पर्यायों) के समान है। अविधदर्शनी का (पर्यायविषयक) कथन अविधज्ञानी (मनुष्यों के पर्यायविषयक कथन) के समान है। जहाँ ज्ञान होते हैं, वहाँ अज्ञान नहीं होते जहाँ अज्ञान होते हैं, वहां ज्ञान नहीं होते और जहाँ दर्शन हैं, वहाँ ज्ञान एवं अज्ञान दोनों में से कोई भी संभव है।

४९७. केवलणाणीणं भंते! मणुस्साणं केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ केवलणाणीणं मणुस्साणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! केवलनाणी मणूसे केवलणाणिस्स मणूसस्स दव्वट्टयाए तुल्ले, पदेसट्टयाए तुल्ले, ओगाहणट्टयाए चउट्टाणविडते, ठितीए तिट्टाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं छट्टाणविडते, केवलणाणपञ्जवेहिं केवलदंसणपञ्जवेहिं य तुल्ले।

[४९७ प्र.] भगवन्! केवलज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९७ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि 'केवलज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम! एक केवलज्ञानी मनुष्य, दूसरे केवलज्ञानी मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित

है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, एवं केवलज्ञान के पर्यायों और केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है।

४९८. एवं केवलदंसणी वि मणूसे भाणियव्वे।

[४९८] (जैसे केवलज्ञानी मनुष्यों के पर्याय के विषय में कहा गया,) वैसे ही केवलदर्शनी मनुष्यों के (पर्यायों के) विषय में कहना चाहिए।

विवेचन—मनुष्यों के पर्यायों की विभिन्न अपेक्षाओं से प्ररूपणा—प्रस्तुत दस सूत्रों (सू. ४८९ से ४९८ तक) में जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहना, स्थिति, वर्णादि तथा ज्ञान आदि वाले मनुष्य के पर्यायों की विविध अपेक्षाओं से प्ररूपणा की गई है।

जघन्य-अवगाहनायुक्त मनुष्य स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाला मनुष्य नियम से संख्यातवर्ष की आयु वाला ही होता है, इस दृष्टि से वह त्रिस्थानपतित हीनाधिक ही होता है, अर्थात् वह असंख्यात-संख्यातभाग एवं संख्यातगुण हीनाधिक ही होता है।

जघन्य-अवगाहनायुक्त मनुष्यों में तीन ज्ञानों और दो अज्ञानों की प्ररूपणा—िकसी तीर्थकर का अथवा अनुत्तरौपपातिक देव का अप्रतिपाती अवधिज्ञान के साथ जघन्य अवगाहना में उत्पाद होता है, तब जघन्य अवगाहना में भी अवधिज्ञान पाया जाता है। अत्तएवं यहाँ तीन ज्ञानों का कथन किया गया है, किन्तु नरक से निकले हुए जीव का जघन्य अवगाहना में उत्पाद नहीं होता, क्योंकि उसका स्वभाव ही ऐसा है। इसलिए जघन्य अवगाहना में विभंगज्ञान नहीं पाया जाता; इस कारण यहाँ (मूलपाठ में) दो अज्ञानों की ही प्ररूपणा की गई है।

उत्कृष्ट अवगाहनावाले मनुष्य की स्थिति की दृष्टि से हीनाधिक-तुल्यता—उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों की अवगाहना तीन गव्यूति (कोस) की होती है और उनकी स्थिति होती है-जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम तीन पल्योपम की और उत्कृष्ट पूरे तीन पल्योपम की। तीन पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग, तीन पल्योपमों का असंख्यातवाँ ही भाग है। अतएव पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम तीन पल्योपम वाला मनुष्य, तीन पल्योपम की स्थिति वाले मनुष्य से असंख्यात भाग हीन होता है और पूर्ण तीन पल्योपम वाला मनुष्य उससे असंख्यातभाग अधिक स्थिति वाला होता है। इनमें अन्य किसी प्रकार की हीनता या अधिकता सम्भव नहीं है। इस प्रकार के किन्हीं दो मनुष्यों में कदाचित् स्थिति की तुल्यता भी होती है।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों में दो ज्ञान और दो अज्ञान की प्ररूपणा—उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों में मित और श्रुत, ये दो ही ज्ञान अथवा मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान, ये दो ही अज्ञान और दो ही दर्शन पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्य असंख्यातवर्ष की आयु वाले होते हैं, और असंख्यातवर्ष की आयुवाले मनुष्य में न तो अवधिज्ञान ही हो सकता है और न ही विभंगज्ञान, क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा है।

मध्यम अवगाहना वाले मनुष्य अवगाहनापेक्षया चतुःस्थानपितत—मध्यम अवगाहना संख्यातवर्ष की आयु वाले की भी हो सकती है और असंख्यातवर्ष की आयु वाले की भी हो सकती है। असंख्यातवर्ष की आयु वाला मनुष्य भी एक या दो गव्यूत (गाऊ) की अवगाहना वाला होता है। अतः अवगाहना की अपेक्षा से इसे चतुःस्थानपितत कहा गया है।

चारों ज्ञानों की अपेक्षा से मध्यम-अवगाहनायुक्त मनुष्य षट्स्थानपितत—मित, श्रुत, अविध और मन:पर्यव, ये चारों ज्ञान द्रव्य आदि की अपेक्षा रखते हैं तथा क्षयोपशमजन्य हैं। क्षयोपशम में विचित्रता होती है, अतएव उनमें तरतमता होना स्वाभाविक है। इसी कारण चारों ज्ञानों की अपेक्षा से मध्यम अवगाहनायुक्त मनुष्यों में षट्स्थानपितत हीनाधिकता बताई गई है।

केवलज्ञान के पर्याय की अपेक्षा से वे तुल्य हैं—संमस्त आवरणों के पूर्णतया क्षय से उत्पन्न होने वाले केवलज्ञान में किसी प्रकार की तरतमता नहीं होती; इसलिए केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से मध्यम अवगाहनायुक्त मनुष्य तुल्य है।

जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों में दो अज्ञान ही क्यों ?—सिद्धान्तानुसार सम्मूर्च्छिम मनुष्य ही जघन्य स्थिति के होते हैं और वे नियमत: मिथ्यादृष्टि होते हैं। इस कारण जघन्यस्थिति वाले मनुष्यों में दो अज्ञान ही हो सकते हैं, ज्ञान नहीं। अत: यहाँ ज्ञानों का उल्लेख नहीं किया गया है।

उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यों में दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन क्यों ?—उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यों की आयु तीन पल्योपम की होती है। अतएव उनमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और हो दर्शन ही पाए जाते हैं। जो ज्ञान वाले होते हैं वे वैमानिक की आयु का बन्ध करते हैं, तब उनमें दो ज्ञान होते हैं। असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में अवधिज्ञान, अवधिदर्शन या विभंगज्ञान का अभाव होता है। इस कारण इनमें दो ज्ञानों, दो अज्ञानों और दर्शनों का उल्लेख किया गया है; तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों का नहीं।

मध्यमगुण कृष्ण मनुष्य स्वस्थान में षट्स्थानपतित—मध्यमगुण कृष्णवर्ण के अनन्त तर तम रूप होते हैं, इस कारण वह स्वस्थान में भी षट्स्थानपतित होता है।

जघन्य और उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यों में ज्ञानादि का अन्तर—जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य के प्रबल ज्ञानावरणीय कर्म का उदय होने से उसमें अवधिज्ञान और मन:पर्यायज्ञान नहीं होते जबिक उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य में तीन ज्ञान और तीन दर्शन होते हैं।

उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य स्वस्थान में षट्स्थानपतित— चूंकि उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य नियमत: संख्यातवर्ष की आयु वाला ही होता है। संख्यातवर्ष की आयुवाला मनुष्य स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित होता है; किन्तु जो असंख्यातवर्ष की आयुवाला होता है, उसे भवस्वभाव के कारण उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञान नहीं होता।

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १९४ (ख) प्रज्ञापनाधिनी प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ७५३ से ७५९ तक

मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य स्वस्थान में षट्स्थानपतित— जैसे एक उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य, दूसरे उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी से तुल्य होता है, वैसे मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी के तुल्य ही हो, ऐसा नियम नहीं है। इसलिए उनमें स्वस्थान में षट्स्थानपतित हीनाधिकता सम्भव है।

जघन्य और उत्कृष्ट अवधिज्ञानी मनुष्य अवगाहना की अपेक्षा से त्रिस्थानपितत क्यों ? — मनुष्यों में सर्वजधन्य अवधिज्ञान पारभविक (पूर्वभय से साथ आया हुआ) नहीं होता, किन्तु वह तद्भव (उसी भव) सम्बन्धी होता है और वह भी पर्याप्त-अवस्था में, अपर्याप्त अवस्था में उसके योग्य विशुद्धि नहीं होती तथा उत्कृष्ट अवधिज्ञान भाव से चारित्रवान् मनुष्य को होता है। इस कारण जघन्यावधिज्ञानी और उत्कृष्टावधिज्ञानी मनुष्य अवगाहना की अपेक्षा त्रिस्थानपितत ही होते हैं, किन्तु मध्यम अवधिज्ञानी चतुःस्थानपितत होता है, क्योंकि मध्यम अवधिज्ञान पारभविक भी हो सकता है, अतएव अपर्याप्त अवस्था में भी सम्भव है।

स्थिति की अपेक्षा से जघन्यादियुक्त मनुष्य त्रिस्थानपितत क्यों ?—अवधिज्ञान असंख्यातवर्ष की आयु वाले मनुष्यों में सम्भव नहीं, वह संख्यातवर्ष की आयु वालों को ही होता है। अत: जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवधिज्ञानी मनुष्यों में संख्यातवर्ष की आयु की दृष्टि से त्रिस्थानपितत हीनाधिकता ही हो सकती है, चतु:स्थानपितत नहीं।

जघन्यादियुक्त मनःपर्यवज्ञानी स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित—मनःपर्यायज्ञान चारित्रवान् मनुष्यों को ही होता है, और चारित्रवान् मनुष्य संख्यातवर्ष की आयुवाले ही होते हैं। अतः जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट मनःपर्यायज्ञानी मानव स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित ही होते हैं।

केवलज्ञानी मनुष्य अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपितत क्यों और कैसे ?—यह कथन केवलीसमुद्घात की अपेक्षा से है, क्योंकि केवलीसमुद्घात करता हुआ केवलज्ञानी मनुष्य, अन्य केवली मनुष्यों की अपेक्षा असंख्यातगुणी अधिक अवगाहना वाला होता है और उसकी अपेक्षा अन्य केवली असंख्यातगुणहीन अवगाहना वाले होते हैं। अतः अवगाहना की दृष्टि से केवलज्ञानी मनुष्य चतुःस्थानपितत होते हैं।

स्थिति की अपेक्षा केवलीमनुष्य त्रिस्थानपितत—सभी केवली संख्यातवर्ष की आयुवाले ही होते हैं, अतएव उनमें चतुःस्थानपितत हीनाधिकता संभव नहीं है। इस कारण वे त्रिस्थानपितत हीनाधिक हैं। वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की पर्याय-प्ररूपणा

४९९. [१] वाणमंतरा जहा असुरकुमारा।

१. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९४-१९५-१९६ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, भा-२, पृ. ७६०-७७०

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९६, (ख) प्रज्ञापना प्र. बोध. टीका भा-२, पृ. ७७२

[४९९-१] वाणव्यन्तर देवों में (पर्यायों की प्ररूपणा) असुरकुमारों के समान (समझ लेनी चाहिए्)

[२] एवं जोइसिया वेमाणिया। नवरं सट्ठाणे ठितीए तिट्ठाणविडते भाणितव्वे। से तं जीवपञ्जवा।

[४९९-२] ज्योतिष्कों और वैमानिक देवों में (पर्यायों की प्ररूपणा भी इसी प्रकार की समझनी चाहिए)। विशेष बात यह है कि वे स्वस्थान में स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) हैं। यह जीव के पर्यायों की प्ररूपणा समाप्त हुई।

विवेचन-वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के पर्यायों की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (४९९) में पूर्वाक्तसूत्रानुसार तीनों प्रकार के देवों के पर्यायों का कथन अतिदेशपूर्वक किया गया है।

अजीव-पर्याय

अजीवपर्याय के भेद-प्रभेद और पर्यायसंख्या

५००. अजीवपञ्जवा णं भंते कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—रूविअजीवपञ्जवा य अरूविअजीवपञ्जवा य ।

[५०० प्र.] भगवन्! अजीपपर्याय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[५०० उ.] गौतम! (अजीवपर्याय) दो प्रकार के कहे है; वे इस प्रकार हैं-(१) रूपी अजीव के पर्याय और अरूपी अजीव के पर्याय।

५०१. अरूविअजीवपञ्जवा णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा! दसिवहा पण्णत्ता। तं जहा-धम्मित्थकाए १, धम्मित्थिकायस्स देसे २, धम्मित्थिकायस्स पदेसा ३, अधम्मित्थिकाए ४, अधम्मित्थिकायस्स देसे ५, अधम्मित्थिकायस्स पदेसा ६, आगासित्थिकाए ७, आगासित्थिकायस्स देसे ८, आगासित्थिकायस्स पदेसा १, अद्धासमए १०।

[५०१ प्र.] भगवन्! अरूपी अजीव के पर्याय कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[५०१ उ.] गौतम! वे दस प्रकार के कहे हैं। यथा—(१) धर्मास्तिकाय, (२) धर्मास्तिकाय का देश, (३) धर्मास्तिकाय के प्रदेश, (४) अधर्मास्तिकाय, (५) अधर्मास्तिकाय का देश, (६) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, (७) आकाशास्तिकाय, (८) आकाशास्तिकाय का देश, (९) आकाशास्तिकाय के प्रदेश और (१०) अद्धासमय (काल) के पर्याय।

५०२. रूविअजीवपञ्जवा णं भंते। कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा! चडिवहा पण्णत्ता। तं जहा-खंधा १, खंधदेसा २, खंधपदेसा ३, परमाणुपोग्गले ४। [५०२ प्र.] भगवन्! रूपी अजीव के पर्याय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[५०२ उ.] गौतम! वे चार प्रकार के कहे हैं। यथा-(१) स्कन्ध, (२) स्कन्धदेश, (३) स्कन्ध-प्रदेश और (४) परमाणुपुद्गल (के पर्याय)। ५०३. ते णं भंते! कि संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ?

गोयमा! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ?

गोयमा। अणंता परमाणुपोग्गला अणंता, दुपदेसिया खंधा जाव अणंता दसपदेसिया खंधा, अणंता संखेज्जपदेसिया खंधा, अणंता असंखेज्जपदेसिया खंधा, अणंता अणंतपदेसिया खंधा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चिति—ते णं नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।

[५०३ प्र.] भगवन्! क्या वे (पूर्वोक्त रूपीअजीवपर्याय-चतुष्टय) संख्यात हैं, असंख्यात हैं, अथवा अनन हैं ?

[५०३ उ.] गौतम! वे संख्यात नहीं असंख्यात नहीं (किन्तु) अनन्त हैं।

[प्र.] भगवन्! किस हेतु से आप ऐसा कहते हैं कि वे (पूर्वोक्त चतुर्विध रूपी अजीवपर्याय संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, (किन्तु) अनन्त हैं?

[उ.] गौतम! परमाणु-पुद्गल अनन्त हैं; द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, यावत् दशप्रदेशिक-स्कन्ध हैं, संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं। हे गौतम! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वे न संख्यात हैं, न ही असंख्यात हैं किन्तु अनन्त हैं।

विवेचन—अजीवपर्याय के भेद-प्रभेद और पर्यायसंख्या—प्रस्तुत चार सूत्रों (सू. ५०० से ५०३ तक) में अजीवपर्याय, उसके मुख्य दो प्रकार, तथा अरूपी और रूपी अजीव-पर्याय के भेद एवं रूपी अजीवपर्यायों की संख्या का निरूपण किया गया है।

रूपी और अरूपी अजीवपर्याय की परिभाषा—रूपी—जिसमें रूप हो, उसे रूपी कहते हैं। यहाँ 'रूप' शब्द से रूप' के अतिरिक्त 'गन्ध', रस और स्पर्श का भी उपलक्षण से ग्रहण किया जाता है। आशय यह है कि जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श हो, वह रूपी कहलाता है। रूपयुक्त अजीव को रूपी अजीव कहते हैं। रूपी अजीव पुद्गल ही होता है, इसिलए रूपी अजीव के पर्याय का अर्थ हुआ—पुद्गल के पर्याय। अरूपी का अर्थ है—जिसमें रूप (रस, गन्ध और स्पर्श) का अभाव हो, जो अमूर्त हो। अत: अरूपी अजीव-पर्याय का अर्थ हुआ—अमूर्त अजीव के पर्याय।

धर्मास्तिकायादि की व्याख्या—धर्मास्तिकाय—धर्मास्तिकाय का असंख्यातप्रदेशों का सम्पूर्ण (अखण्डित) पिण्ड (अवयवी द्रव्य)। धर्मास्तिकायदेश—धर्मास्तिकाय का अर्द्ध आदि भाग। धर्मास्तिकायप्रदेश—धर्मास्तिकाय के निरंकश (सूक्ष्मतम) अंश। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय आदि के त्रिकों को समझ लेना चाहिए। अद्धासमय अप्रदेशी कालद्रव्य। १

१. प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्रांक २०२

द्रव्यों का कथन या पर्याय का ?—पर्यायों की प्ररूपणा के प्रसंग में यहाँ पर्यायों का कथन करना उचित था, उसके बदले द्रव्यों का कथन इसलिए किया गया है कि पर्याय और पर्यायी (द्रव्य) कथंचित् अभिन्न हैं, इस बात की प्रतीति हो। वस्तुत: धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकायदेश आदि पदों के उल्लेख से उन-उन धर्मास्तिकायदि त्रिकों तथा अद्धासमय के पर्याय ही विवक्षित हैं, द्रव्य नहीं। १

परमाणुपुद्गल आदि की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता

५०४. परमाणुपोग्गलाणं भंते! केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! परमाणुपोग्गलाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित परमाणुपोग्गलाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गलस्स दव्यद्ठयाते तुल्ले, पदेसद्ठयाते तुल्ले, ओगाहणद्ठयाते तुल्ले; ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भिहते—जित हीणे असंखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जितगुणहीणे वा असंखेज्जितगुणहीणे वा, अह अब्भिहए असंखेज्जितभागअब्भिहए वा संखेज्जितभागमब्भिहए वा संखेज्जितभागअब्भिहए वा असंखेगुणअब्भिहते वा; कालवण्णपज्जवेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भिहए—जित हीणे अणंतभागहीणे वा असंखेज्जितभागहीणे वा संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जितभागहीणे वा, अह अब्भिहए अणंतभागमब्भिहते वा असंखेज्जितभागमब्भिहिए वा संखेज्जभागमब्भिहते वा असंखेज्जितभागमब्भिहए वा संखेज्जभागमब्भिहि वा संखेज्जिगुणमब्भिहए वा असंखेज्जिगुणमब्भिहए वा अणंतगुणमब्भिहए वा; एवं अवसेस वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणविडते, फासा णं सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खेहिं छट्ठाणविडते, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चित परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

[५०४ प्र.] भगवन्! परमाणुपुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५०४ उ.] गौतम! परमाणुपुदुगलों के अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक परमाणुपुद्गल, दूसरे परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है; अवगाहना की दृष्टि से (भी) तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, कदाचित् अभ्यधिक है। यदि हीन है, तो असंख्यातभाग हीन है, संख्यातभाग हीन है अथवा संख्यातगुण हीन है, अथवा असंख्यातगुण हीन है, यदि अधिक है, तो असंख्यातभाग अधिक है, अथवा संख्यातभाग अधिक है, या संख्यातगुण अधिक है, अथवा असंख्यातगुण अधिक है। यदि कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है। यदि

१. वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक २०२

हीन है तो अनन्तभाग हीन है, या असंख्यातभाग हीन है अथवा संख्यातभाग हीन है; अथवा संख्यातगुण हीन है, असंख्यातगुण हीन है या अनन्तगुण-हीन है। यदि अधिक है तो अनन्तभाग अधिक है, असंख्यातभाग अधिक है, अथवा संख्यातभाग अधिक है। अथवा संख्यातगुण अधिक है, असंख्यातगुण अधिक है, या अनन्तगुण अधिक है। इसी प्रकार अविशष्ट (काले वर्ण के सिवाय बाकी के) वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। स्पर्शों में शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। हे गौतम! इस हेतु से ऐसा कहा गया है कि परमाणु-पुद्गलों के अनन्त पर्याय प्ररूपित हैं।

५०५. दुपदेसियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति ?

गोयमा! दुपदेसिए दुपदेसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्टयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भिहिते—जित हीणे पदेसहीणे, अह अब्भिहिते पदेसमब्भिहिते; ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्णादीहिं उविरिल्लेहिं चउिंह फासेहि य छट्ठाणविडते।

[५०५ प्र.] भगवन्! द्विप्रदेशिक स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५०५ उ.] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा गया है कि द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[3.] गौतम! एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध, दूसरे द्विप्रदेशिक स्कन्ध से, द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन हो तो एक प्रदेश हीन होता है। यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक होता है। स्थित की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत होता है, वर्ण आदि की अपेक्षा से और उपर्युक्त चार (शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष) स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत होता है।

५०६. एवं तिपएसिए वि। नवरं ओगाहणट्टयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते जित हीणे पएसहीणे वा दुपएसहीणे वा, अह अब्भहिते पएसमब्भहिते वा दुपएसमब्भहिते वा।

५०६. इसी प्रकार त्रिप्रदेशिक स्कन्धों के (पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।) विशेषता यह है कि अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन्, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एक प्रदेशहीन या द्विप्रदेशों से हीन होता है। यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक अथवा दो प्रदेश अधिक होता है।

५०७. एवं जाव दसपएसिए। नवरं ओगाहणाए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दसपएसिए णवपएसहीणे त्ति। [५०७] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशिक स्कन्धों तक का पर्याायविषयक कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि अवगाहना की दृष्टि से प्रदेशों की (क्रमश:) वृद्धि करना चाहिए; यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध नौ प्रदेश-हीन तक होता है।

५०८. संखेज्जपदेसियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति ?

गोयमा! संखेज्जपएसिए खंधे संखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले; पदेसहुयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भिहते—जित हीणे संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भिहए एवं चेव; ओगाहणट्ठयाए वि दुट्टाणविडते, ठितीए चउट्टाणविडते, वण्णादि-उविरल्लचउफासपज्जवेहि य छट्ठाणविडते।

[५०८ प्र.] भगवन्! संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५०८ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो, संख्यातभाग हीन या संख्यातगुण हीन होता है। यदि अधिक हो तो संख्यातभाग अधिक या संख्यात गुण अधिक होता है। अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित होता है। स्थित की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होता है। वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित होता है।

५०९. असंखेज्जपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति ?

गोयमा! असंखेज्जपएसिए खंधे असंखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वद्वयाए तुल्ले, पएसद्वयाए चउट्ठाणविडते, ओगाहणद्वयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्णादि-उविरल्लचउफासेहि य छट्ठाणविडते।

[५०९ प्र.] भगवन्! असंख्यातप्रदेशिक स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५०९ ज.] गौतम! अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि असंख्यातप्रदेशिक स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, दूसरे असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति को अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५१०. अणंतपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति ?

गोयमा! अणंतपएसिए खंधे अणंतपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणविडते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्ण-गंध-रस-फासप्जवेहिं छट्ठाणविडते ।

[५१० प्र.] भगवन्! अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१० उ.] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[3.] गौतम! एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत (हीनाधिक) है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, तथा वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

५११. एगपएसोगाढाणं पोग्गलाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वृच्चति ?

गोयमा! एगपएसोगाढपोग्गले एगपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्बट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणविडते, ओगाहणट्ठयाते तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्णादि-उवित्लचउफासेहि य छट्ठाणविडते।

[५११ प्र.] भगवन्! एक प्रदेश में अवगाढ पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५११ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक प्रदेश में अवगाढ पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[3.] गौतम! एक प्रदेश में अवगाढ एक पुद्गल, दूसरे प्रदेश में अवगाढ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

५१२. एवं दुपएसोगाढे वि जाव दसपएसोगाढे।

[५१२] इसी प्रकार द्विप्रदेशावगाढ से दसप्रदेशावगाढ स्कन्धों तक के पर्यायों की वक्तव्यता समझ लेना चाहिए। ५१३. संखेज्जपएसोगाढाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति ?

गोयमा! संखेज्जपएसोगाढे पोग्गले संखेज्जपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणविडते, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणविडते, ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्णाइ- उविरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणविडते।

[५१३ प्र.] भगवन्! संख्यातप्रदेशावगाढ स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१३ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन्! किस हेतु से कहा जाता है कि संख्यातप्रदेशावगाढ स्कन्धों (पुद्गलों) के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल, दूसरे संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपितत है, स्थित की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

५१४. असंखेज्जपएसोगाढाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता पज्जवा।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति ?

गोयमा! असंखेज्जपएसोगाढे पोग्गले असंखेज्जपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वद्वाए तुल्ले, पदेसद्वयाए छट्ठाणविडते, ओगाहणद्वयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्णादि-अट्ठफासेहिं छट्ठाणविडते।

[५१४ प्र.] भगवन्! असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१४ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल, दूसरे असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है।

५१५. एगसमयिठतीयाणं पुच्छा । गोयमा! अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति ?

गोयमा! एगसमयठितीए पोग्गले एगसमयठितीयस्स पोग्गलस्स दव्वद्वयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणविडते, ओगाहणद्वयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-अट्ठफासेहि छट्ठाणविडते।

[५१५ प्र.] भगवन्! एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१५ उ.] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

- [प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?
- [उ.] गौतम! एक समय की स्थिति वाला एक पुद्गल, दूसरे एक समय की स्थिति वाले पुद्गल के द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

५१६. एवं जाव दससमयठिईए।

[५१६] इस प्रकार यावत् दस समय की स्थिति वाले पुद्गलों की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए।

५१७. संखेञ्जसमयिठतीयाणं एवं चेव। नवरं ठितीए दुट्ठाणविडते।

[५१७] संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि वह स्थिति की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है।

५१८. असंख्येज्जसमयितितीयाणं एवं चेव। नवरं ठिईए चउट्ठाणविडते।

[५१८] असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार है। विशेषता यह है कि वह स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है।

५१९. एगगुणकालगाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता पञ्जवा।

से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चति ?

गोयमा! एगगुणकालए पोग्गले^१ एगगुणकालगस्स पोग्गलस्स दव्वद्ठयाए तुल्ले, पएसद्ठयाए छट्ठाणविक्ते, ओगाहणद्ठयाए चउद्ठाणविक्ते, ठितीए चउद्ठाणविक्ते, कालवण्णपञ्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपञ्जवेहिं छट्ठाणविक्ते, अट्ठिं फासेहिं छट्ठाणविक्ते।

[५१९ प्र.] भगवन्! एकगुण काले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१९ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक गुण काले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

१. ग्रन्थाग्रम् ३०००

[उ.] गौतम! एक गुण काला एक पुद्गल, दूसरे एक गुण काले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है तथा अविशष्ट (कृष्णवर्ण के अतिरिक्त अन्य) वर्णों, गन्धों, रसों और स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है एवं अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से (भी) षट्स्थानपितत है।

५२०. एवं जाव दसगुणकालए।

[५२०] इसी प्रकार यावत् दश गुण काले (पुद्गलों) की (पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए।)

५२१. संखेज्जगुणकालए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे दुट्ठाणविडते।

[५२१] संख्यातगुण काले (पुद्गलों) का (पर्याय विषयक कथन) भी इसी प्रकार (जानना चाहिए।) विशेषता यह है कि (वे) स्वस्थान में द्विस्थानपितत हैं।

५२२. एवं असंख्येन्जगुणकालए वि। णवरं सट्ठाणे चउट्ठाणविंडते।

[५२२] इसी प्रकार असंख्यातगुण काले (पुद्गलों) की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए। विशेष यह है कि (वे) स्वस्थान में चतु:स्थानपतित हैं।

५२३. एवं अणंतगुणकालए वि। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणविडते।

[५२३] इसी तरह अनन्तगुणे काले (पुद्गलों) की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेष यह है कि (वे) स्वस्थान में षट्स्थानपतित हैं।

५२४. एवं जहा कालवण्णस्स वत्तव्वया भणिया तहा सेसाण वि वण्ण-गंध-रस-फासाणं वत्तव्वया भाणितव्वा जाव अणंतगुणलुक्खे।

[५२४] इसी प्रकार जैसे कृष्णवर्ण वाले (पुद्गलों) की (पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता कही है,) वैसे ही शेष सब वर्णों, गन्धों रसों और स्पर्शों (वाले पुद्गलों) की (पर्यायसम्बन्धी) वक्तव्यता यावत् अनन्तगुण रूक्ष (पुद्गलों) की (पर्यायों सम्बन्धी) वक्तव्यता तक कहनी चाहिए।

विवेचन—परमाणुपुद्गल आदि की पर्यायसम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत इक्कीस सूत्रों (सू. ५०४ से ५२४ तक) में विविध प्रकार के पुद्गलों की विभिन्न अपेक्षाओं से पर्यायसम्बन्धी प्ररूपणा की गई है।

रूपी-अजीव-पर्यायप्ररूपणा का क्रम—(१) परमाणुपुद्गल तथा द्वि-त्रि-दश-संख्यात-असंख्यात-अनन्तप्रदेशिक पुद्गलों के विषय में, (२) आकाशीय एकप्रदेशावगाढ से लेकर असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलों के विषय में, (३) एकसमयस्थितिक से असंख्यातसमयस्थितिक पुद्गलों के विषय में, (४) एकगुण कृष्ण से अनन्तगुण कृष्ण पुद्गलों के विषय में तथा शेष वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श पुद्गलों के विषय में पर्याय-प्ररूपणा क्रमशः की गई है।

परमाणुपुद्गलों में अनन्तपर्यायों की सिद्धि—प्रस्तुत में यह प्रतिपादन किया गया है कि परमाणु द्रव्य और प्रत्येक द्रव्य अनन्त पर्यायों से युक्त होता है। एक परमाणु दूसरे परमाणु से द्रव्य, प्रदेश और अवगाहना की दृष्टि से तुल्य होता है, क्योंकि प्रत्येक परमाणु एक-एक स्वतन्त्र द्रव्य है। वह निरंश ही होता है तथा नियमत: आकाश के एक ही प्रदेश में अवगाहना करके रहता है। इसलिए इन तीनों की अपेक्षा से वह तुल्य है। किन्तु स्थिति की अपेक्षा से एक परमाणु दूसरे परमाणु से चतु:स्थानपतित हीनाधिक होता है, क्योंकि परमाणु की जघन्य स्थिति एक समय की और उत्कृष्ट असंख्यातकाल की है, अर्थात्—कोई पुद्गल परमाणुरूप पर्याय में कम से कम एक समय तक रहता है और अधिक से अधिक असंख्यात काल तक रह सकता है। इसलिए सिद्ध है कि एक परमाणु दूसरे परमाणु से चतु:स्थानपतित हीन या अधिक होता है तथा वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श, विशेषत: चतु:स्पर्शों की अपेक्षा से परमाणु-पुद्गल में षट्स्थानपतित हीनधिकता होती है। अर्थात्—वह असंख्यात-संख्यात अनन्तभागहीन या संख्यात-असंख्यात-अनन्तगुण हीन अथवा असंख्यात-संख्यात-अनन्तभाग अधिक अथवा संख्यात-असंख्यात-अनन्तगुण अधिक है।

प्रेदेशहीन परमाणु में अनन्त पर्याय कैसे ?—परमाणु को जो 'अप्रदेशी' कहा गया है, वह द्रव्य की अपेक्षा से है, काल और भाव की अपेक्षा से वह अप्रदेशी या निरंश नहीं है।

परमाणु : चतुःस्पर्शी और षट्स्थानपित—एक परमाणु में आठ स्पर्शी में से सिर्फ चार स्पर्श हो होते हैं। वे ये हैं—शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष। बल्कि असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध तक में ये चार ही स्पर्श होते हैं। कोई-कोई अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी चार स्पर्श वाले होते हैं। इसी प्रकार एकप्रदेशावगाढ से लेकर संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल (स्कन्ध) भी चार स्पर्शी वाले होते हैं। अत: इन अपेक्षाओं से परमाणु को षट्स्थानपितत समझना चाहिए।

द्विप्रदेशी स्कन्ध अवगाहना की दृष्टि से हीन, अधिक और तुल्य : क्यों और कैसे—जब दो द्विप्रदेशी स्कन्ध आकाश के दो-दो प्रदेशों या दोनों-एक-एक प्रदेश में अवगाढ हों, तब उनकी अवगाहना तुल्य होती है। किन्तु जब एक द्विप्रदेशी स्कन्ध एक प्रदेश में अवगाढ हो और दूसरा दो प्रदेशों में, तब उनमें अवगाहना की दृष्टि से हीनाधिकता होती है। जो एक प्रदेश में अवगाढ है, वह दो प्रदेशों में अवगाढ स्कन्ध की अपेक्षा एकप्रदेश हीन अवगाहना वाला कहलाता है, जबिक दो प्रदेशों में अवगाढ स्कन्ध एकप्रदेशावगाढ की अपेक्षा एकप्रदेश-अधिक अवगाहना वाला कहलाता है। द्विप्रदेशी स्कन्धों की अवगाहना में इससे अधिक हीनाधिकता संभव नहीं है।

१. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठटिप्पणयुक्त) भाग १, पृ. १५१ से १५४ तक

२. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०१ (ख) प्रज्ञापना. प्रमेय्बोधिनी पृ. ७९८-८०१

त्रिप्रदेशी स्कन्धों में हीनाधिकता: अवगाहना की दृष्टि से—तीन प्रदेशों का पिण्ड त्रिप्रदेशी स्कन्ध कहलाता है। वह आकाश के एक प्रदेश में भी रह सकता है, दो प्रदेशों में भी और तीन आकाश प्रदेशों में भी रह सकता है। तीन आकाशप्रदेशों से अधिक में उसकी अवगाहना संभव नहीं। ऐसी स्थिति में यदि त्रिप्रदेशी स्कन्धों की अवगाहना में हीनता और अधिकता हो तो एक या दो आकाशप्रदेशों की ही हो सकती है, अधिक की नहीं।

दशप्रदेशी स्कन्ध तक की हीनाधिकता: अवगाहना की दृष्टि से—जब दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध तीन-तीन प्रदेशों में, दो-दो प्रदेशों में या एक-एक प्रदेश में अवगाढ होते हैं, तब वे अवगाहना की दृष्टि से परस्पर तुल्य होते हैं, किन्तु जब एक त्रिप्रदेशीस्कन्ध त्रिप्रदेशावगाढ और दूसरा द्विप्रदेशावगाढ होता है, तब वह एकप्रदेशहीन होता है। यदि दूसरा एकप्रदेशावगाढ़ होता है तो वह द्विप्रदेशहीन होता है। और वह त्रिप्रदेशावगाढ़ द्विप्रदेशावगाढ़ से एकप्रदेशाधिक और एकप्रदेशावगाढ़ से द्विप्रदेशाधिक होता है। इस प्रकार एक-एक प्रदेश बढ़ा कर चारप्रदेशी से दशप्रदेशी तक के स्कन्धों में अवगाहना की अपेक्षा से हानि वृद्धि का कथन कर लेना चाहिए। इस दृष्टि से दशप्रदेशी स्कन्ध में हीनाधिकता इस प्रकार कही जाएगी—दशप्रदेशी स्कन्ध जब हीन होता है तो एकप्रदेशहीन, द्विप्रदेशहीन यावत् नौप्रदेशहीन होता है और अधिक हो तो एकप्रदेशाधिक यावत् नवप्रदेशाधिक होता है।

संख्यातप्रदेशी स्कन्ध की अनन्तपर्यायता—संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य-दृष्टि से तुल्य होता है। वह द्रव्य है, इस कारण अनन्तपर्याय वाला भी है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अनन्तपर्याययुक्त होता है। प्रदेशों की दृष्टि से वह हीन, तुल्य या अधिक भी हो सकता है। यदि हीन या अधिक हो तो संख्यातभाग हीन या संख्यातगुण हीन अथवा संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुण अधिक होता है। इसीलिए इसे द्विस्थानपतित कहा है। अवगाहना की दृष्टि से भी वह द्विस्थानपतित है। स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है। वर्णादि में तथा पूर्वोक्त चतुःस्पर्शों में षट्स्थानपतित समझना चाहिए।

अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपितत ही क्यों ?—अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत ही होता है, षट्स्थानपितत नहीं, क्योंकि लोकाकाश के असंख्यातप्रदेश ही हैं और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी अधिक से अधिक असंख्यात प्रदेशों में ही अवगाहन करता है। अतएव उसमें अनन्तभाग एवं अनन्तगुण हानि-वृद्धि की सम्भावना नहीं है। इस कारण वह षट्स्थानपितत नहीं हो सकता। हाँ, वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से वर्णादि की दृष्टि से अनन्त-असंख्यात-संख्यातभाग हीन, अथवा सांख्यातगुण या असंख्यातगुण हीन, अनन्तगुण हीन और इसी प्रकार अधिक भी हो सकता है। इसिलए इनमें षट्स्थानपितत हो सकता है।

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०१ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका पृ. ८०६-८०७

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक २०२ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, पृ. ८११ से ८१३

एक प्रदेशवगाढ़ परमाणु प्रदेशों की दृष्टि से षट्स्थानपितत हानि-वृद्धिशील—द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य होने पर भी प्रदेशों की अपेक्षा से इसमें षट्स्थानपितत हीनाधिकता है; क्योंकि एक प्रदेशी परमाणु भी एक प्रदेश में रहता है और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी एक ही प्रदेश में रह सकता है। किन्तु अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है। स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है तथा वर्णादि एवं चतुःस्पर्शों की दृष्टि से षट्स्थानपितत होता है।

असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल स्ववगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपितत—चूंकि लोकाकाश के असंख्यात ही प्रदेश हैं, जिनमें पुद्गलों का अवगाहन है। अतः अनन्तप्रदेशों में किसी भी पुद्गल की अवगाहना संभव नहीं है।

संख्यातगुण काला पुद्गल स्वस्थान में द्विस्थानपितत—संख्यातगुण काला पुद्गल या तो संख्यातभाग हीन कृष्ण होता है अथवा संख्यातगुण हीन कृष्ण होता है। अगर अधिक हो तो संख्यातभाग अधिक या असंख्यातगुण अधिक होता है।

अनन्तगुण काला पुद्गल स्वस्थान में षट्स्थानपितत—अनन्तगुण काले एक पुद्गल में दूसरा अनन्तगुण काला पुद्गल अनन्तभाग हीन, असंख्यातभाग हीन, संख्यातभाग हीन, अथवा संख्यातगुण हीन, असंख्यातगुण हीन अनन्तगुण हीन होता है। यानी वह षट्स्थानपितत होता है।

जघन्यादि विशिष्ट अवगाहना एवं स्थिति वाले द्विप्रदेशी से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक की पर्यायप्ररूपणा

५२५. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते! दुपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चित?

गोयमा! जहण्णोगाहणए दुपएसिए खंधे जहण्णोगाहणगस्स दुपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्टयाए तुल्ले ओगाहणट्टयाए तुल्ले, ठितीए चउट्टाणविडते, कालवण्णपञ्जवेहिं छट्टाणविडते, सेसवण्ण-गंध-रसपञ्जवेहिं छट्टाणविडते, सीय-उसिण-णिद्ध-लुक्खफासपञ्जवेहिं छट्टाणविडते, से तेणट्टेणं गोतमा! एवं वुच्चित जहण्णोगाहणगाणं दुपएसियाणं पोग्गलाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

[५२५-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [५२५-१ उ.] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

१. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक २०३

⁽ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, पृ. ८१४ से ८१९

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक २०३-२०४

⁽ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, पृ. ८२१-८२२

[प्र.] भगवन्! किस कारण ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, कृष्ण वर्ण के पर्यायों के दृष्टि से षट्स्थानपितत हैं, शेष वर्ण, गन्ध और रस के पर्यायों की दृष्टि से षट्स्थानपितत है तथा शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है। हे गौतम! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशिक पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे हैं।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव।

[५२५-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले [द्विप्रदेशी पुद्गल-(स्कन्धों) के पर्यायों] के विषयों में भी इसी प्रकार (कहना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणओ नत्थि।

[५२५-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम)अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध नहीं होते।

५२६. [१] जहण्णोगाहणयाणं भंते! तिपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता पञ्जवा।

से केणट्टेणं भंते! एवं वुच्चित ?

गोयमा! जहा दुपएसिते जहण्णोगाहणते।

[५२६-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं? [५२६-१ उ.] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन्! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं।

[उ.] गौतम! जैसे जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी [पुद्गलों की पर्यायविषयक वक्तव्यता कही है,] वैसी ही (वक्तव्यता) जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के विषय में कहनी चाहिए।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव।

[५२६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

[३] एवं अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि।

[५२६-३] इसी तरह मध्यम अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के (पर्यायों के) विषय में (कहना चाहिए)।

[५२७-१] जहण्णोगाहणयाणं भंते ! चउपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहा जहण्णोगाहणए दुपएसिते तहा जहण्णोगाहणए चउपएसिते।

[५२७-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी पुद्गलों के पर्याय कितने कहे हैं? [५२७-१] गौतम! जघन्य अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी पुद्गल-पर्याय जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के पर्याय की तरह (समझना चाहिए)।

[२] एवं जहा उक्कोसोगाहणए दुपएसिए तहा उक्कोसोगाहणए चउप्पएसिए वि।

[५२७-२] जिस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के पर्यायों का कथन किया गया है, उसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले चतु:प्रदेशी पुद्गल -पर्यायों का कथन करना चाहिये।

[३] एवं अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि चउप्पएसिते। णवरं ओगाहणद्वयाते सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भइए—जित हीणे पएसहीणे, अहऽब्भइते पएसब्भितिए।

[५२७-३] इसी प्रकार मध्यम अवगाहना वाले चतु:प्रदेशी स्कन्ध का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित्, तुल्य, कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एक प्रदेश हीन होता है, यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक होता है।

५२८. एवं जाव दसपएसिए णेयव्वं। णवरमजहण्णुक्कोसोगाहणए पदेसपरिवुट्टी कातव्वा, जाव दसपएसियस्स सत्त पएसा परिविट्टिज्जंति।

[५२८] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक का (पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।) विशेष यह है कि मध्यम अवगाहना वाले में एक-एक प्रदेश की परिवृद्धि करनी चाहिए। इस प्रकार यावत् दशप्रदेशी तक सात प्रदेश बढ़ते हैं।

५२९ [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ? संखेज्जपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणट्टेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा! जहण्णोगाहणगे संखेज्जपएसिए जहण्णोगाहणगस्स संखेज्जपएसियस्स दव्वड्ठयाते तुल्ले, पएसड्ठयाते दुट्ठाणविडते, ओगाहणट्ठयाते तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणविडए, वण्णादि-चउफासपञ्जवेहि य छट्ठाणविडते।

[५२९-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [५२९-१ उ.] गौतम! अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य अवगाहना वाले संख्यात-प्रदेशी पुद्गलों (स्कन्धों) के अनन्त पर्याय हैं?

[3.] गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला संख्यप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से द्विस्थानपितत है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपितत है और वर्णादि चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि ।

[५२९-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले (संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे दुट्टाणविडते।

[५२९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्याय-विषयक कथन भी ऐसा ही समझना चाहिए। विशेष यह है कि वह स्वस्थान में (अवगाहना की अपेक्षा से) द्विस्थानपतित है।

५३०. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ? असंखेन्जपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणड्रेणं भंते! एवं वुच्चति ?

गोयमा! जहण्णोगाहणए असंखेज्जपएसिए खंधे जहण्णोगाहणगस्स असंखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्टयाए तुल्ले, पएसट्टयाते चउट्टाणविडते, ओगाहणट्टयाते तुल्ले, ठितीए चउट्टाणविडते, वण्णादि-उवित्लफासेहि य छट्टाणविडते।

[५३०-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३०-१ उ.] गौतम! अनन्त पर्याय कहे हैं।

- [प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले असंख्यात-प्रदेशी पुद्गलों (स्कन्धों) के अनन्त पर्याय हैं।
- [उ.] गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य अवगाहना वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है और वर्णीद तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि।

[५३०-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले (असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय) के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे चउट्ठाणविडते।

[५३०-३] मध्यम अवगाहना वाले (असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों) का (पर्याय विषयक कथन भी) इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि (वह) स्वस्थान में चतुःस्थानपतित है।

५३१. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! अणंतपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणड्डेणं भंते! एवं वुच्चति ?

गोयमा! जहण्णोगाहणए अणंतपएसिए खंधे जहण्णोगाहणगस्स अणंतपएसियस्स खंधस्स दव्बट्टयाए तुल्ले, पएसट्टयाए छट्टाणविडते, ओगाहणट्टयाए तुल्ले, ठितीए चउट्टाणविडते, वण्णादि-उवित्ल्लचउफासेहि य छट्टाणविडते।

[५३१-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [५३१-१ उ.] गौतम! (उनके)अनन्त पर्याय कहे हैं।

- [प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं।
- [उ.] गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव। नवरं ठितीए वि तुल्ले।

[५३१-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का (पर्यायविषयक कथन) भी इसी प्रकार (समझना चाहिए)। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा भी तुल्य है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते ! अणंतपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणद्वेणं?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए अणंतपएसिए खंधे अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगस्स अणंतपदेसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणविडए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणविडए, ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्णादि अट्ठाणफासेहिं छट्ठाणविडते।

[५३१-३ प्र.] भगवन्! मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं? [५३१-१ उ.] गौतम! (उनके)अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के अनन्त पर्याय हैं?

[उ.] गौतम! मध्यम अवगाहना वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवगाहना की दृष्टि चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

५३२. [१] जहण्णिठतीयाणं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं पुच्छा !

गोयमा! अणंता।

से केणड्डेणं?

गोयमा! जहण्णिठतीए परमाणुपोग्गले जहण्णिठतीयस परमाणुपोग्गलस्स दव्वद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए तुल्ले, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-दुफासेहिं य छट्ठाणविडते।

[५३२-१ प्र.] भगवन्! जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गल के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३२-१ उ.] गौतम! (उनके)अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्य स्थिति वाले परमाणु पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है तथा स्थिति की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, एवं वर्णादि तथा दो स्पर्शों की अपेक्षा से षटस्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसिठतीए वि।

[५३२-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले (परमाणुपुद्गलों के पर्यायों) के विषय में (समझना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसिंठतीए वि एवं चेव। नवरं ठितीए चउट्टाणविडते।

[५३२-३ प्र.] मध्यम स्थिति वाले (परमाणुपुद्गलों के पर्यायों) के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है।

५३३. [१] जहण्णिठतीयाणं दुपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणट्रेणं भंते !

गोयमा! जहण्णिठतीए दुपएिसते जहण्णिठतीयस्स दुपएिसयस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भिहिए। जित हीणे पदेसहीणे, अह अब्भितिए पदेसब्भितिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-चउप्फासेहिं य छट्टाणविडते।

[५३३-१ प्र.] भगवन्! जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३३-१ उ.] गौतम! (उनके)अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक जघन्य स्थित वाला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एकप्रदेश हीन और यदि अधिक हो, तो एक प्रदेश अधिक है। स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है और वर्णादि तथा चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसिठतीए वि।

[५३२-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसिठतीए वि एवं चेव। नवरं ठितीए चउट्टाणविडते।

[५३३-३ प्र.] मध्यम स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेषता यह है कि स्थिति की अपेक्षा से वह चतुःस्थानपतित हीनाधिक है।

५३४. एवं जाव दसपदेसिते। नवरं पदेसपरिवुड्डी कातव्वा। ओगाहणट्टयाए तिसु वि गमएसु जाव दसपएसिए णव पएसा विहुज्जंति ।

[५३४] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक के पर्यायों के विषय में समझ लेना चाहिए। विशेष यह है कि इसमें एक-एक प्रदेश की क्रमश: परिवृद्धि करनी चाहिए। अवगाहना के तीनों गमों [आलापकों] में यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक ऐसे ही कहना चाहिए। (क्रमश:) नौ प्रदेशों की वृद्धि हो जाती है।

५३५. [१] जहण्णिठतीयाणं भंते! संखेज्जपदेसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणट्टेणं?

गोयमा! जहण्णिठतीए संखेज्जपदेसिए खंधे जहण्णिठतीयस्स संखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए दुट्ठाणबिडते, ओगाहणद्वयाए दुट्ठाणबिडते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-चउफासेहि य छट्ठाणबिडते।

[५३५-१ प्र.] जघन्य स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३३-१ उ.] गौतम! (उनके)अनन्त पर्याय (कहे गए हैं।)

[प्र.] भगवन्! किस कारण ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से द्विस्थानपितत है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा चतुःस्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसिठतीए वि।

[५३५-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसिठतीए वि एवं चेव। नवरं ठितीए चउट्ठाविडते।

[५३५-३ प्र.] मध्यम स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेषता यह है कि स्थिति की अपेक्षा से वह चतु:स्थानपतित है।

५३६. [१] जहण्णिठतीयाणं असंखेज्जपदेसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणड्ठेणं ?

गोयमा! जहण्णिठतीए असंखेन्जपएसिए जहण्णिठतीयस्स असंखेन्जपदेसियस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाते चउट्ठाणविडते, ओगाहणद्वयाते चउट्ठाणविडते, ठितीए तुल्ले, वर्णादि उवित्ल- चउप्फासेहि य छट्ठाणविडते।

[५३६-१ प्र.] भगवन्! जघन्य स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [५३६-१ उ.] गौतम! (उनके)अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले असंख्याप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा चतुःस्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसिठतीए वि।

[५३६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसिठतीए वि एवं चेव। नवरं ठितीए चउट्टाणविडते।

[५३६-३ प्र.] मध्यम स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है।

५३७. [१] जहण्णिठतीयाणं अणंतपदेसियाणं पुच्छा । गोयमा! अणंता।

से केणड्रेणं?

गोयमा! जहण्णिठितीए अणंतपएिसए जहण्णिठितीयस्स अणंतपएिसयस्स दव्बहुयाए तुल्ले, पदेसहुयाए छहाणविडते, ओगाहणहुयाए चउहाणविडते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-अहाफासेहि य छहाणविडते।

[५३७-१ प्र.] भगवन्! जघन्य स्थिति वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गये हैं ? [५३७-१ उ.] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं।

[उ.] गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से तुल्य है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] **एवं उक्कोसिठतीए विक्र**ाहर के लक्षात्र प्रकार स्कृत कर का का का का का का

[५३७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के पर्यायों के विषय में समझना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसिंठतीए वि एवं चेव। नवरं ठितीए चउट्टाणविंडते।

[५३७-३ प्र.] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेषता यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित होता है।

विवेचन—जघन्यादिविशिष्ट अवगाहना एवं स्थिति वाले द्विप्रदेशी से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक के पर्यायों की प्ररूपणा — प्रस्तुत तेरह सूत्रों (सू. ५२५ से ५३७ तक) में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना एवं स्थिति वाले परमाणु पुद्गलों तथा द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक, यावत् संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों की प्ररूपणा की गई है।

जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित — जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों में शीत, उष्ण, रूक्ष और स्निग्ध, ये चार स्पर्श ही पाए जाते हैं, इनमें शेष कर्कश, कठोर, हल्का (लघु) और भारी (गुरु) ये चार स्पर्श नहीं पाए जाते। इनमें षट्स्थानपतित हीनाधिकता पाई जाती है।

द्विप्रदेशीस्कन्ध में मध्यम अवगाहना नहीं होती—दो परमाणुओं का पिण्ड द्विप्रदेशी स्कन्ध कहलाता है। उसकी अवगाहना या तो आकाश के एक प्रदेश में होगी अथवा अधिक से अधिक दो आकाशप्रदेशों में होगी। एक प्रदेश में जो अवगाहना होती है, वह जघन्य अवगाहना है और दो प्रदेशों में जो अवगाहना है, वह उत्कृष्ट है। इन दोनों के बीच की कोई अवगाहना नहीं होती। अतएव मध्यम अवगाहना का अभाव है।

मध्यम अवगाहना वाले चतु:प्रदेशी स्कन्धों की हीनाधिकता— चर्तु:प्रदेशी स्कन्ध की जघन्य अवगाहना एक प्रदेश में और उत्कृष्ट अवगाहना चार प्रदेशों में होती है। मध्यम अवगाहना दो प्रकार की है—दो प्रदेशों में और तीन प्रदेशों में। अतएव मध्यम अवगाहना वाले एक चतु:प्रदेशी स्कन्ध से दूसरा चतु:प्रदेशी स्कन्ध यदि अवगाहना से हीन होगा तो एकप्रदेशहीन ही होगा और अधिक होगा तो एकप्रदेशाधिक ही होगा। इससे अधिक हीनाधिकता उनमें नहीं हो सकती।

मध्यमावगाहनाशील चतुःप्रदेशी से लेकर दशप्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर एक -एक प्रदेशवृद्धि-हानि मध्यम अवगाहना वाले चतुप्रदेशी स्कन्ध से लेकर दशप्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर एक-एक प्रदेश की वृद्धि हानि होती है। तदनुसार चतुःप्रदेशी स्कन्ध में एक, पंचप्रदेशी स्कन्ध में दो, षट्प्रदेशी स्कन्ध में तीन, सप्तप्रदेशी स्कन्ध में चार, अष्टप्रदेशी स्कन्ध में पाँच, नवप्रदेशी स्कन्ध में छह और दशप्रदेशी स्कन्ध में सात प्रदेशों की वृद्धि-हानि होती है।

जघन्य अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों से द्विस्थानपितत— जघन्य अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी एक स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से संख्यातभाग प्रदेशहीन या संख्यातगुण प्रदेशहीन होता है, यदि अधिक हो तो संख्यातभागप्रदेशाधिक अथवा संख्यातगुणप्रदेशाधिक होता है। इसीलिए इसे प्रदेशों की दृष्टि से द्विस्थानपितत कहा गया है।

मध्यम अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध स्वस्थान में द्विस्थानपतित—एक मध्यम अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध दूसरे मध्यम अवगाहना वाले संख्यात प्रदेशी स्कन्ध से अवगाहना की दृष्टि से संख्यातभाग हीन या संख्यातगुण हीन होता है, अथवा संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुण अधिक होता है।

मध्यम अवगाहना वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध की पर्याय-प्ररूपणा—इसकी पर्याय-प्ररूपणा जघन्य अवगाहना वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध की पर्याय-प्ररूपणा के समान ही है। मध्यम अवगाहना वाले अर्थात्—आकाश के दो से लेकर असंख्यात प्रदेशों में स्थित पुद्गलस्कन्ध की पर्यायप्ररूपणा इसी प्रकार है, किन्तु विशेष बात यह है कि स्वस्थान में चतुःस्थानपतित है।

मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध का अर्थ—आकाश के दो आदि प्रदेशों से लेकर असंख्यातप्रदेशों में रहे हुये मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध कहलाते हैं।

जघन्यस्थितिक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों की दृष्टि से द्विस्थानपितत—यदि हीन हो तो संख्यातभाग हीन या संख्यातगुण हीन होता है, यदि अधिक हो तो संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुण अधिक होता है। इसलिए यह द्विस्थानपितत है।

१. (क) प्रज्ञानपनासूत्र. म. वृत्ति पत्रांक २०३ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका. पृ. ८४१ से ८५८ तक

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक २०४ (ख) प्रज्ञापना. प्र बो. टीका. पृ. ८५९-८६०

जघन्यादियुक्त वर्णादियुक्त पुद्गलों की पर्याय-प्ररूपणा

५३८. [१] जहण्णगुणकालयाणं परमाणुपोग्गलाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा! जहण्णगुणकालए परमाणुपोग्गले जहण्णगुणकालगस्स परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्टयाए तुल्ले, पदेसट्टयाएतुल्ले, ओगाहणट्टयाए तुल्ले, ठितीए चउट्टाणवडिते, कालवण्णपञ्जेवेहिं तुल्ले, अवसेसा वण्णा णत्थि, गंध-रस-फासपञ्जवेहि य छट्टाणवडिते।

[५३८-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [५३८-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक जघन्यगुण काला परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, शेष वर्ण नहीं होते तथा गन्ध, रस और स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[५३८-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (परमाणुपुद्गलों की पर्याय-प्ररूपणा समझनी चाहिए।)

[३] एवमजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि। णवरं सट्ठाणे छट्ठाणविडते।

[५३८-३] इसी प्रकार मध्यमगुण काले परमाणुपुद्गलों की भी पर्याय-प्ररूपणा समझ लेनी चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

५३९. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते? दुपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा! जहण्णगुणकालए दुपएसिए जहण्णगुणकालगस्स दुपएसियस्स दव्बट्टयाए तुल्ले, पएसट्टयाए तुल्ले, ओगाहणट्टयाए सिय हीणे सिए तुल्ले सिय अब्भितते— जित हीणे पदेसहीणे, अह अब्भितिए पएसमब्भितिए; ठितीए चउट्टाणविडते, कालवण्णपञ्जविह तुल्ले, अवसेसवण्णादि-उवित्ल-चउफासेहि य छट्टाणविडते।

[५३९-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुण काले द्विप्रदेशिक स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [५३९-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

- [प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जम्मगुण काले हिप्रदेशिक समधों के अनन्त पर्याय हैं ?
- [उ.] गौतम! एक जघन्यगुण काला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे द्विप्रदेशिक स्कन्ध से द्रव्या की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित होना कदाचित होना है, यदि हीन हो तो एक प्रदेश अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक होतो है, स्थित की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होता है, कृष्णवर्ण के पर्यासों की अपेक्षा से तुल्य है और शेष वर्णादि उपर्युक्त चार स्पर्शों के पर्यासों की अपेक्षा से तुल्य है और

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[५३९-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (परमाणुपुदगुली की पर्याय_नप्ररूपणा समझनी चाहिए।)

्या [३] एवमजहूणणमणुक्कोसगुणकालए वि। णवरं सद्युणे छट्टाणवृहिते।

[५३९-३] इसी प्रकार मध्यमगुण काले परमाणुपुद्गलों की भी पर्याय-प्ररूपणा समझ_{्लेनी} चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित_ाकहना चाहिए।

ार्च ५४० पुत्रं जाव दसपएसिते। णवरं पएसपितुङ्की, ओसाहणा तहेव ।

पह है कि प्रदेश की उत्तरोत्तर वृद्धि करनी चाहिए। अवग्रह्माः से उसी प्रकार हैं।

५४१. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ? संखेज्जप्रहेस्याणं **युक्ता**

ा गोयमा! अणंता

से केणट्ठेण शिहा

ज्ञानायमा! जहण्णमुणकालए संखेजपएसिए जहण्णमुणकालमस्स संखेजपएसियस्स दव्बद्वयाते तुल्ले, पएसद्वयाते दुट्टाणविडते, ओगाहणद्वयाएं दुट्टाणविडते, ठितीए चउँद्वाणविडते, कालवण्ण-पञ्जवेहि तुल्ले अवसेसेहि वण्णादि-उविश्ल्लचउपासेहि व छट्टाणविडते।

[५४१-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुण काले संख्यातप्रदेशी पुद्गलों के कितके क्रिया क्रहे गए हैं ? [५३९-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

्रिप्रः]ाभगवन्। किसे)कारणः से ऐसाः कहते हैं। किः जघन्यगुणः काले असंख्यातप्रदेशी के अनत पर्याय हैं। १

जिं [उ.] मौतमा एक जैंघन्यगुण काला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जबन्बगुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध है दूसरे जबन्बगुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध है दूसरे जबनाहना की अपेक्षा से दूस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से दूस्थानपतित है, तथा स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और अवशिष्ट वर्ण आदि तथा ऊपर के चार स्पर्शों की अपेक्षा से षद्स्थानपतित है।

🌃 [२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[488-2] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों की पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणविडते।

[५४१-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

५४२. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते! असंखेज्जपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणड्डेणं ?

गोयमा! जहण्णगुणकालए असंखेज्जपएसिए जहण्णगुणकालगस्स असंखेज्जपएसियस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पएसद्वयाए चउद्वाणविडते, ठितीए चउद्वाणविडते, ओगाहणद्वयाए चउद्वाणविडए, कालवण्णपञ्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्णादि-उविरल्लचउफासेहि य छद्वाणविडते।!!

[५४२-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [५४२-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

- [प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि (जघन्यगुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं) ?
- [उ.] गौतम! एक जघन्यगुण काला असंख्यातप्रदेशी पुद्गल स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले असंख्यातप्रदेशी पुद्गलस्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और शेष वर्ण आदि तथा ऊपर के चार स्पर्शी से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[५४२-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्याय-विषयक कथन करना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। णवरं सद्वाणे छद्वाणविहते।

[५४२-३] इसी प्रकार मध्यमगुण वाले (असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए)। विशेष इतना है कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

५४३. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते! अणंतपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणद्रेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा! जहण्णगुणकालए अणंतपएसिए जहण्णगुणकालयस्स अणंतपएसियस्स दव्वद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए छट्ठाणविडते, ओगाहणद्वयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए चउट्ठाणविडते, काल-वण्णपञ्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्णादि-अट्ठफासेहि य छट्ठाणविडते।

[५४३-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [५४३-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र.] भगवन्! किस हेतु आप ऐसा कहते हैं कि जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक जघन्यगुण काला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य तथा अवशिष्ट वर्ण आदि अष्टस्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[५४३-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय के विषय में जानना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं र्चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणविडते।

[५४३-३] इसी प्रकार (का पर्याय-विषयक कथन)मध्यमगुण काले (अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का करना चाहिए।) स्वस्थान की अपेक्षा षट्स्थान पतित है।

५४४. एवं नील-लोहित-हालिद्द-सुक्किल्ल-सुब्भिगंध-दुब्भिगंध-तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल-महुर-रसपञ्जवेहि य वत्तव्वया भाणियव्वा। नवरं परमाणुपोग्गलस्स सुब्भिगंधस्स दुब्भिगंधो न भण्णति, दुब्भिगंधस्स सुब्भिगंधो न भण्णति, तित्तस्स, अवसेसा ण भण्णति। एवं कडुयादीण वि। सेसं तं चेव।

[५४४] इसी प्रकार नील, रक्त हारिद्र (पीत), शुक्ल (श्वेत), सुगन्ध, दुर्गन्ध, तिक्त (तीखा), कटु, काषाय, आम्ल (खट्टा), मधुर रस के पर्यायों से भी अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि सुगन्धवाले परमाणुपुद्गल में दुर्गन्ध नहीं कहा जाता है और दुर्गन्ध वाले परमाणुपुद्गल में सुगन्ध नहीं कहा जाता। तिक्त (तीखे) रस वाले में शेष रस का कथन नहीं करना चाहिए, कटु आदि रसों के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए। शेष सब बातें उसी तरह पूर्ववत् ही हैं।

५४५. [१] जहण्णगुणकक्खडाणं अणंतपएसियाणं पुच्छा । गोयमा! अणंता।

से केणट्रेणं ?

गोयमा! जहण्णगुणकक्खडे अणंतपएसिए जहण्णगुणकक्खडस्स अणंतपदेसियस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए छट्ठाणविडते, ओगाहणद्वयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्ण-गंध-रसेहिं छट्ठाणविडते, कक्खडफासपञ्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं सत्तफासपञ्जवेहिं छट्ठाणविडते।

[५४५-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे हैं ? [५४५-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

- [प्र.] भगवन्! किस आशय से ऐसा कहते हैं कि जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्थों के अनन्त पर्याय हैं ?
- [उ.] गौतम! एक जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थित की दृष्टि से चतुःस्थानपितत है, एवं वर्ण, गंध, रस की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, कर्कशस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और अविशिष्ट सात स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसगुणकक्खर्डे वि।

[५४५-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणकर्कश (अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में समझना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकक्खडे वि एवं चेव। नवरं सट्टाणे छट्टाणविहते ।

[५४५-३] मध्यमगुणकर्कश (अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी) इसी प्रकार (करना चाहिए।) विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

५४६. एवं मउय-गरुय-लहुए वि भाणितव्वे।

[५४६] मृदु, गुरु (भारी) और (लघु) (हल्के) स्पर्श वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के पर्याय-विषय में भी इसी प्रकार कथन करना चाहिए।

५४७. [१] जहण्णगुणसीयाणं भंते! परमाणुपोग्गलाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणट्टेणं ?

गोयमा! जहण्णगुणसीते परमाणुपोग्गले जहण्णगुणसीतस्स परमाणुपोग्गलस्स दव्वड्ठयोए तुल्ले, पदेसट्टयाए तुल्ले, ओगाहणट्टयाए तुल्ले, ठितीए चउट्टाणविडते, वण्ण-गंध-रसेहिं छट्टाणविडते, सीतफासपञ्जवेहि य तुल्ले, उसिणफासो न भण्णित, णिद्ध-लुक्खफासपञ्जवेहिं छट्टाणविडते।

[५४७-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गलों के कितने पर्याय कहे हैं 🗦 🖙 🙉 :['﴿aux-it::3.] गौतम्।(उनके) व्यन्ततः पूर्यायः(कहे रहें) हि

म्प्राः अगवन् िकस् कारणः ऐसा कहा जाता है कि जघन्यमुणशीत प्रमाणपुदगली के अमन्त उण्या-संध-स्मेहि छहाणसीडते, कदछाडफाएरकसंहि सहो पर्याय हैं।?

[उ.] गौतम! एक जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशी की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहमा की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध और रसी की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, शीतस्पर्श के पर्यायों से तुल्य है। इसमें उष्णस्पर्श का कथन नहीं करना चाहिए। स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शी के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसगुणसीतेवि ।

[५४७-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत (परमाणुपुदगली) के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए। [३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एवं चेव। नवरं सट्टाणे छट्टाणविडते।

िर्दे कि विकास के जीवार होंवें प्राथनिक होंवें के एक में निर्माण कि के विकास के कि कि कि विकास के कि कि कि कि [५४७-३] मध्यमगुणशीत (परमाणुपुद्गलों) के (पर्यायों के सम्बन्ध में भी) इसी प्रकार (कहना चाहिए) विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है (हीनाधिक) है।

[५४८][१] जहण्णगुणसीयाणं दुपणिसयाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केण्डेणं शहर भारत का मार्थ मार्थ स्थान का स्थान का मार्थ अवस्य गोयमा। जहन्त्रगुणसीते दुपएसिए जहण्णगुणसीयस्य दुपएसियस्य द्वव्बद्वयाए तुल्ले, पएसद्वयाए तुल्ले, ओगाहणद्वयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अन्धिहिते जड़ ही पएसहीणे, अह अन्धिहिए पएसमन्भतिए, ठिईए चउट्टाणविडए, वण्ण-गंध_{ारसप्र}ज्ञवेहिं छ्ट्टाणबिडए, स्तिफासप्रज्ञवेहिं तुल्ले, उसिए। निद्धः लुक्खफ़ासपुरुववेहिं छद्वापाविहए। ्हारा प्रांट (आर क्षा हिस्सी

[५४८-१प्र.] भगवन्! जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशिक स्कन्धों के कितने प्रयाम कहे सए हैं 🔞 🖂

[५४८-२उ.] गौतम! (छुनक्रे) अनुनत् (प्रसिद्धः)(कहे हैं) तेपहर्ना प्राप्त विकास । १ ी. १४८

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा गया है कि जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ? indicas s

गाः [इ.] भौतम्। एक ज्ञानन्यगुणश्रीत द्विप्रदेशी स्कन्धः दूसरे ज्ञानन्यगुणशीत द्विप्रदेशी स्कन्धः से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुत्स और महाचित् अधिक होता है। यदि तीन हो तो एकप्रदेश हीन होता है, यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक होता है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है तथा वर्ण, गंध और रस के अर्थामों की

अपेक्षा से षट्स्थानपतित है एवं शीतस्पर्श के प्रयायों की अपेक्षा तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध तथा रूक्ष पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसगुणसीए वि।

[५४८-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत (द्विप्रदेशी स्कन्धों की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चीहए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एवं चेव। नवरं सट्टाणे छट्टाणविडए। 💛 💯

[५४८-३] मध्यमगुणशीत (द्विप्रदेशी स्कन्धों) का पर्यायसम्बन्धी कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

ा [३] एवं जाव दसपएसिए। नवरं ओगाहगद्वयाएं पदेसपरिवड्डी कायव्या जाव दसपएसियस्स णवः पएसा ब्रह्डिण्जंति।

[५४९:] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्धों तक का (पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्य समझ लेना चाहिए।) विशेषता यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से पर्याय की वृद्धि करनी चाहिए। (इस दृष्टि से) यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक नौ प्रदेश बढ़ते हैं।

५५०. [१] जहण्णगुणसीयाणं संखेज्जपएसियाणं भंते! पुच्छा ।

ागेयमा! अणंता।

से केणड्रेणं ?

गोयमा! जहण्णगुणसीते संखेज्जपएसिए जहण्णगुणसीयस्स संखेज्जपएसियस्स दव्बहुयाए तुल्ले, पएसहुयाए दुहुाणविडए, ओगाहणहुयाए दुहुाणविडते, ठितीए चउहुाणविडते, वण्णाईहि छहुाणविडए, सीतफासपञ्जवेहि तुल्ले, उसिण-निद्ध-लुक्खेहि छहुाणविडए।

[५५०-१प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणशीत संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं? [५५०-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

- [प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?
- [उ.] गौतम! एक जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से द्विस्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, शीतस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध एवं रूक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसगुणसीए वि।

[५५०-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण शीत (संख्यातप्रदेशी स्कन्धों की भी पर्यायसम्बन्धी प्ररूपणा समझनी चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीए वि एवं चेव। नवरं छट्ठाणविडए।

[५५०-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुणशीत संख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्याय सम्बन्धी कथन भी ऐसा ही समझना चाहिए। विशेष यह कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

५५१[१] जहण्णगुणसीताणं असंखेजपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं ।

गोयमा! जहण्णगुणसीते असंखेज्जपएसिए जहण्णगुणसीयस्स असंखेज्जपएसियस्स दव्बहुयाए तुल्ले, पएसह्रयाए चउट्ठाणविडते ओगाहणह्रयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्णादिपज्जवेहिं छट्ठाणविडते, सीतफासपज्जवेहिं तुल्ले, उसिण-निद्ध-लुक्खफासपज्जेवेहिं छट्ठाणविडते।

[५५१-१ प्र.]भगवन् ! जघन्यगुण शीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [५५१-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम! एक जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपितत है, स्थित की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, शीतस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध एवं रूक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसगुणसीते वि।

[५५१-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों की पर्याय-सम्बन्धी प्ररूपणा करनी चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणविडते।

[५५१-३] मध्यमगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित होता है।

५५२. [१] जहण्णगुणसीताणं अणंतपदेसियाणं पुच्छा । गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा! जहण्णगुणसीते अणंतपदेसिए जहण्णगुणसीतस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्टयाए छट्टाणविडते, ओगाहणट्टयाए चउट्टाणविडते, ठितीए चउट्टाणविडते वण्णिदपञ्जवेहिं छट्टाणविडते, सीतफासपञ्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं सत्तफासपञ्जवेहिं छट्टाणविडते।

[५५२-१प्र.] भगवान्! जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [५५-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है; शीतस्पर्श के पर्यायों अपेक्षा से तुल्य है और शेष सात स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसगुणसीते वि।

[५५२-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एवं चेव। नवरं छट्ठाणविडते।

[५५२-३] मध्यमगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की पर्याय-सम्बन्धी प्ररूपणा भी इसी प्रकार करनी चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपितत है।

५५३. एवं उसिणे निद्धे लुक्खे जहा सीते। परमाणुपोग्गलस्स तहेव पडिवक्खो, सळेसिं न भण्णइ त्ति भाणितळं।

[५५३] जिस प्रकर (जघन्यादियुक्त) शीतस्पर्श-स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शों (वाले उन-उन -स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।) इसी प्रकर परमाणुपुद्गल में इन सभी का प्रतिपक्ष नहीं कहा जाता, यह कहना चाहिए।

विवेचना—जघन्यादियुक्त वर्णादि-पुद्गलों की पर्याय-प्ररूपणा— प्रस्तुत सोलह सूत्रों (सू. ५३७ से ५५३ तक) में कृष्णादि वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के परमाणुपुद्गलों, द्विप्रदेशी से संख्यात-असंख्यात-अनन्त प्रदेशी स्कन्धों तक के पर्यायों की प्ररूपणा की गई है।

कृष्णदि वर्णों तथा गन्ध-रस स्पर्शों के पर्याय —कृष्ण, नील आदि पांच वर्णों, दो प्रकार के गन्धों, पांच प्रकार के रसों और आठ प्रकार के स्पर्शों के प्रत्येक के तरतमभाव की अपेक्षा से अनन्त-अनन्त विकल्प होते हैं। तदनुसार कृष्ण आदि अनन्त-अनन्त प्रकार के हैं।

जघन्यगुण उत्कृष्टगुण एवं मध्यमगुण कृष्णादि वर्ण की व्याख्या— कृष्णवर्ण की सबसे कम

मात्रा जिसमें पाई जाती है, वह पुद्गल जघन्यगुण काला कहलाता है। यहाँ गुणशब्द अंश या मात्रा के अर्थ में प्रयुक्त है। जघन्यगुण का अर्थ है— सबसे कम अंशा दूसरे अब्दों में त्यों कह सकते हैं कि जिस पुद्गल में केवल एक डिग्री का कालापन हो— जिससे कम आवापन का सम्भव ही न हो, वह जघन्यगुण काला समझना चाहिए। जिसमें कालेपन के सबसे अधिक अंश पाए बाएँ, वह जिल्ह प्रण काला है। एक अंश कालेपन से अधिक और सबसे अधिक (अतिम) कालेपन से एक अंश कम तक का काला मध्यमगुणकाला कहलाता है। कृष्णवर्ण की तरह ही जघन्य-उत्कृष्ट मध्यमगुणयुक्त नीलादि वर्णों, तथा गन्धों, रसों एवं स्पर्शों के विषय में समझना चहिए।

अवगाहना की अपेक्षा से द्विप्रदेशी स्कन्ध की हीनधिकता— एक दिप्रदेशी स्कन्ध दूसरे द्विप्रदेशी स्कन्ध से अवगाहना की अपेक्षा से यदि हीन हो तो एक-एक प्रदेश कम अवगाहना वाला हो सकता है और यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक अवगाहना वाला हो सकता है ति वालार्य यह है कि द्विप्रदेशी स्कन्ध की अवगाहना में एक प्रदेश से अधिक न्यूनाधिक अवगाहना का सम्भव नहीं है।

द्विप्रदेशी स्कन्ध से दशप्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर प्रदेशवृद्धि इनकी पर्याय-वक्तव्यता द्विप्रदेशी, स्कन्ध के समान है, किन्तु उनमें उत्तरोत्तर प्रदेशों की वृद्धि करनी चाहिए। अर्थात् दशप्रदेशी स्कन्ध तक क्रमशः नौ प्रदेशों की वृद्धि कहनी चाहिए।

जघन्यगुण कृष्ण संख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेश एवं अवगाहना की दृष्टि से द्विस्थानपतित
— प्रदेशों की अपेक्षा से वह द्विस्थानपतित होता है; अर्थात — वह संख्यातभागहीन अथवा
संख्यातगुणहीन या संख्यातभाग-अधिक अथवा संख्यातगुण-अधिक होता है। इसी प्रकार अवगाहना
की दृष्टि से दिस्थानपतित है।

की दृष्टि से द्विस्थानपतित है। परस्पर विरोधी गन्ध, रस और स्पर्श का परमाणुपुद्गल में अभाव — जिस परमाणुपुद्गल में सुरिभगन्ध होती है, उनमें दुरिभगन्ध नहीं होती, और जिसमें दुरिभगन्ध होती है, उसमें सुरिभगन्ध नहीं होती, क्योंकि परमाणु एक गन्ध वाला ही होता है। इसिलए जिस गन्ध का कथन किया जाए, वहां दूसरी गन्ध का अभाव कहना चाहिए। इसी प्रकार जहाँ एक रस का कथन हो, वहाँ दूसरे रसों का अभाव समझना चाहिए। अर्थात् — जहाँ तिक्त रस हो, वहाँ शेष कटु आदि रस नहीं होते; क्योंकि उनमें परस्पर विरोध है। इसी प्रकार जहाँ पुद्गल परमाणु में शीतस्पर्श का कथन हो, वहाँ उष्णस्पर्श का कथन नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये दोनों स्पर्श विरोधी हैं। इसी प्रकार अन्यान्य स्पर्शों के बारे में समझ लेना चाहिए। जैसे — स्निग्ध और रूक्ष, मृदु और कर्कश, लघु और गुरु परस्पर विरोधी स्पर्श हैं। एक ही परमाणु में ये परस्पर विरोधी स्पर्श भी नहीं रहते। अतएव परमाणु में इनका उल्लेख नहीं करना चीहिए। परमाणु में ये परस्पर विरोधी स्पर्श भी नहीं रहते। अतएव परमाणु में इनका उल्लेख नहीं करना चीहिए। परमाणु में ये परस्पर विरोधी स्पर्श भी नहीं रहते। अतएव परमाणु में इनका उल्लेख नहीं करना चीहिए। परमाणु में विरोधी हैं। इसी प्रकार करना चीहिए। विराधी हैं। एक ही परमाणु में ये परस्पर विरोधी स्पर्श भी नहीं रहते। अतएव परमाणु में इनका उल्लेख नहीं करना चीहिए। विराधी हैं। इसी प्रकार करना चीहिए। विराधी हैं। एक ही परमाणु में ये परस्पर विरोधी स्पर्श भी नहीं रहते। अतएव परमाणु में इनका उल्लेख नहीं करना चीहिए। विराधी हैं। इसी प्रकार करना चीहिए। विरा

१. प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा. २,पू. ८८५-८८६

२. प्रज्ञापनासूत्र प्र. बी. टीका, भा. २,पृ.८८७ से ८९०

इ. प्रजीपनासूत्र प्र. बी. टीका भी. २,पृ. ८९६ कि जो एक

जघन्यादि सामान्य पुद्गल स्कन्धों की विविध अपेक्षाओं से पर्यायप्ररूपणा

५५४. [१] जहण्णपदेसियाणं भंते! खंधाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

ः से केण्ड्रेणं ?ः

गोयमा! जहण्णपदेसिते खंधे जहण्णपएसियस्स खंधस्य दव्बहुयाएं तुल्ले; पदेसहुयाएं तुल्ले, ओगाहणहुयाएं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते, जित हीणे पदेसहीणे, अह अब्भितिए पदेसमब्भितिए; ठितीए चउड्डाणविडते, वण्ण-गंध-रस उवरिल्लचउफासपण्जवेहिं छट्टाणविडते।

[५५४-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

ं [५५४-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र.] भगवान् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि जघन्यप्रदेशी स्कन्ध के अनन्त पर्याय हैं) ?

[3.] गौतम ! एक जघन्यप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्यप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य हैं और कदाचित् अधिक है। यदि हीन हो तो एक प्रदेशहीन होता है, और यदि अधिक हो तो भी एक प्रदेश अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है और वर्ण, गन्ध, रस तथा ऊपर के चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] उक्कोसपएसियाणं भंते। खंधाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणट्टेणं ?

गोयमा! उक्कोसपएसिए खंधे उक्कोसपएसियस्स खंधस्स दव्बहुयाए तुल्ले, पएसहुयाए तुल्ले, ओगाहणहुयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्णादि-अट्ठफासपञ्जवेहि य छट्ठाणविडते।

ःः [५५४=२ंप्र.] भगवन्! उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

ं [५५४-२ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

िप्र.]भगवन्ः! किस अपेक्षा से आप ऐसा कहते हैं (कि उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं) ?

[उ.] गौतम ! उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से भी चतुःस्थानपतित है, किन्तु वर्णादि तथा अष्टस्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसपदेसियाणं भंते! खंधाणं केवतिया पञ्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसपदेसिए खंधे अजहण्णमणुक्कोसपदेसियस्य खंधस्य दव्वड्ठयाए तुल्ले, पदेसड्डयाए छड्डाणविडते, ओगाहणड्डयाए चउड्डाणविडते, ठितीए चउड्डाणविडते, वण्णादि-अडुफासपञ्जवेहि य छड्डाणविडते।

[५५४-३ प्र.] भगवन्! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मघ्यम) प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [५५४-३ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

- [प्र] भगवन्! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है (कि मध्यमप्रदेशी स्कन्धों के अनन्तपर्याय हैं) ?
- [उ.] गौतम! एक मध्यमप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे मध्यमप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है,अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

५५५.[१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! पोग्गलाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता।

से केणड्रेणं ?

गोयमा! जहण्णोगाहणए पोग्गले जहण्णोगाहणगस्स पोग्गलस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए छट्ठाणविडते, ओगाहणद्वयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणविडते, वण्णादि-उविरल्लफासेहि य छट्ठाणविडते।

[५५५-१प्र.] भगवान् ! जघन्य अवगाहना वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ? [५५५-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

- [प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहनावाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं) ?
- [उ.] 'गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला पुद्गल दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, तथा वर्णादि और ऊपर के स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] उक्कसोगाहणए वि एवं चेव। नवरं ठितीए तुल्ले।

[५५५-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले पुद्गल-पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है। [३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते! पोग्गलाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणद्ठेणं ?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए पोग्गले अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगस्स पोग्गलस्स दब्बट्टयाए तुल्ले, पदेसट्टयाए छट्टाणविडते, ओगाहणट्टयाए चउट्टाणविडते, ठितीए चउट्टाणविडते, वण्णादि-अट्टफासपञ्जवेहिं छट्टाणविडते।

[५५५-३ प्र.] भगवान्! मध्यम अवगाहन वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५५-३ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि मध्यम अवगाहना वाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं) ?

[उ.] गौतम! एक मध्यम अवगाहना वाला पुद्गल, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है; स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

५५६. [१] जहण्णद्वितीयाणं भंते ! पोगगलाणं पुच्छा ।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा! जहण्णिठतीए पोग्गले जहण्णिठितीयस्स पोग्गलस्स दव्बद्वयाए तुल्ले, पदेसद्वयाए छट्ठाणविडते, ओगाहणद्वयाए चउट्ठाणविडते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-अट्ठफासपञ्जवेहि य छट्ठाणविडते।

[५५६-१प्र.] भगवन्! जघन्य स्थिति वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे हैं ?

[५५६-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[उ.] गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला पुद्गल, दूसरे जघन्य स्थिति वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है; प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है; अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपितत है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपितत है।

[२] एवं उक्कोसिठतीए वि।

[५५६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले (पुद्गलों के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसिठतीए एवं चेव। नवरं ठितीए वि चतुद्वाणविडते।

[५५६-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले पुद्गलों की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता भी

इसी प्रकार कहनी चाहिए। विशेष पह है कि स्थिति की अपेक्षा से भी वह चतुःस्थानपतित है।

५५७. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते! पोग्गलाणं केवतिया पञ्जवानपण्णजाहाहा

गोयमा! अणंता।

'से केणट्ठेणं ?

गोयमा! अहण्णगुणकोलए पोग्गले अहण्णगुणकालयस्य पोग्गलस्य दब्बहुवाए तुल्ले, पदेसहुयाए छट्टाणविडते, ओगाहणहुयाए चउट्टाणविडते, ठितीए चेउट्टाणविडते, कलिवणणपञ्जविहि तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस फासपञ्जवेहि य छट्टाणविडते, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति जहण्णगुणकालयाणं पोग्गलाणं अणंता पञ्जवा पण्णत्ता।

[449-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणं काले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५७-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्तपर्याय (कहे हैं)।

्रिप्ता भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि जघन्यग्रुण काले पुद्गालों के अनन्त पर्याय हैं?)

[उ.] गौतम! एक जघन्यगुण काला पुद्गल, दूसरे जघन्यगुण काले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से ष्ट्स्थान्प्रतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थान्प्रतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की दृष्टि से तुल्य है, शेषु वर्ण, गन्ध, उस और स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। हे गौतम! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहें हैं।

पार हो है कि अनन्त पर्याय कहें हैं।

[५५७-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले पुद्गलों की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। नवां सहाणे छद्वाणविहते।

[५५७-३] मध्यमगुण काले पुद्गलों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना वाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

ा ५५८. <mark>एवं जहा कालब</mark>ण्णपञ्जवाणं क्तव्वया भूणिता तहा सेसाम्ना विःवण्ण-गंध-रस-फासपन्जवाणं वत्तव्वसा भाणितव्वा, जाव अजहण्यमणुक्कोसलुक्खे सद्वाणे छद्वापावितते। से तं स्क्रिविअजीवपञ्जवा। से सं अजीवपञ्जवा।

॥ पण्णवणाए भगवईए पंचमं विसेसपयं (पञ्जवपूर्व) समक्तं॥ 💎

ं ः [५५८] जिसं प्रकर कृष्णवर्ण के वर्षायों के विषय में विक्रयता कही है उसी प्रकार शेष वर्णी, गन्धों, रसों और स्पर्शी की मर्यायसम्बन्धी वक्तंव्यता कहनी चाहिए यावत् अजयय अनुत्कृष्ट (मध्यम) भुणारूक्षस्पर्शास्त्रस्थानामें षद्स्थानपतित है, यहाँ तीक कहना चाहिए।

यह हुई रूपी-अजीवपर्यायों की प्ररूपणा। और इस प्रकार अजीवपर्याय-सम्बन्धी निरूपण भी पूर्ण हुआ।

विवेचन—जघन्यादियुक्त सामान्य पुद्गल-स्कन्धों की विभिन्न अपेक्षाओं से पर्याय-प्ररूपणा— प्रस्तुत पांच सूत्रों (सू. ५५४ से ५५८ तक) में जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों, तथा जघन्यादि गुण विशिष्ट अवगाहना, स्थिति तथा कृष्णादि वर्णों, गन्ध-रस-स्पर्शों के पर्यायों की विभिन्न अपेक्षाओं से प्ररूपणा की गई है।

मध्यमगुण काले पुद्गल स्वस्थान में षद्स्थानपतित हीनाधिक — एक मध्यमगुण काले पुद्गल से दूसरे मध्यमगुण काले पुद्गल में कृष्णवर्ण की अनन्तभागहीनता या अनन्तगुणहीनता, तथैव अनन्तभाग-अधिकता अथवा अनन्तगुण-अधिकता भी हो सकती है, क्योंकि मध्यमगुण के अनन्त विकल्प हैं।

इसी तरह मध्यमगुण वाले सभी वर्णादि स्पर्शपर्यन्त स्वस्थान में षट्स्थानपतित होते हैं। १

उत्कृष्ट अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कंध की स्थिति तुल्य क्यों ?— उत्कृष्ट अवगाहना वाला,अनन्तप्रदेशी स्कंध सर्वलोकव्यापी होता है। वह या तो उचित महास्कंध होता है अथवा केवली समुद्धांत की अवस्था में कर्मस्कंध हो सकता है। इन दोनों का काल दण्ड, कपाट, प्रतर और अन्तर-पूरण रूप चार समय का ही होता है। अतएव इसकी स्थिति समान कही गई है।

॥ प्रज्ञापनासूत्र : पंचम विशेषपद (पर्यायपद) समाप्त ॥

छट्ठं वक्कंतिपयं

छठा व्युत्क्रान्तिपद

प्राथमिक

प्रज्ञापनासूत्र का यह छठा व्युत्क्रान्तिपद है।
प्रस्तुत पद का विषय नाना प्रकार के जीवों की 'व्युत्क्रान्ति'— अर्थात्— उस-उस गति में उत्पत्ति
और उस-उस गति में से अन्यत्र उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रश्नों की चर्चा करना है। संक्षेप में, जीवों की
गति और आगति से सम्बन्धित विचारणा इस पद में की गई है।
यह विचारण निम्नोक्त आठ द्वारों के माध्यम से प्रस्तुत पद में की गई है— (१)द्वादश द्वार (उपपात
और उद्वर्तना का विरह काल), (२) चतुर्विशतिद्वार— (जीव के प्रभेदों के उपपात और उद्वर्तन
का विरहकाल),(३) सान्तरद्वार (जीवप्रभेदों का सान्तर एवं निरन्तर उपपात और उद्वर्तन-सम्बन्धी
विचार), (४) एकसमयद्वार (एक समय में कौनसे कितने जीवों का उपपात और उद्वर्तन होता है,
यह विचार),(५) कुतः द्वार—(जीव उन-उन पर्यायों में कहाँ-कहाँ से मरकर उत्पन्न होता है,
इसकी प्ररूपणा), (६) उद्वर्तनाद्वार—(जीव वर्तमान भव से मर कर किस-किस भव में जाता
है, इसकी विचारणा), (७) पारभविकायुष्यद्वार— (आगामी नये भव का आयुष्य जीव वर्तमान
भव में कब बांधता है? इसका चिन्तन, और) (८) आकर्षद्वार— (आयुष्यबन्ध के ६ प्रकार,
कितने आकर्षों में जीव जाति आदि नाम विशिष्ट आयुकर्म बांधता है? तथा न्यूनाधिक आकर्षों वाले
जीवों के अल्पबहुत्व का विचार)। ^१
प्रथम द्वार का नाम 'बारस' (द्वादश) इसलिए रखा गया है कि इसमें नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और
देव, इन चारों गतियों के जीवों का उपपातिवरह (नरकादि जीव उस-उस रूप में उत्पन्न होते रहते
हैं, उनमें बीच में उत्पत्तिशून्य (काल तथा उद्वर्तनाविरह (नरकादि जीव मरते रहते हैं, उनमें बीच
में मरणशून्य) काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट १२ मुहूर्त्त का है।
द्वितीय द्वार का नाम 'चडवीसा' (चतुर्विंशति) इसलिए रखा गया है कि नरकादि गतियों के प्रभेदों
की दृष्टि से प्रथम नरक में उपपातिवरहकाल और उद्वर्तनािवरहकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट
२४ मुहूर्त्त हैं। यद्यपि चतुर्गतिक जीवों के प्रभेदों में सबका उपपातिवरहकाल और उद्वर्त्तनािवरहकाल
२४ मुहूर्त का नहीं है, किन्तु प्रथम रत्नप्रभा नरक के उपपात एवं उद्वर्तन के विरह का काल
चौबीस ही मुहूर्त है, इस दृष्टि से प्रारम्भ का पद पकड़ कर इस द्वार का नाम 'चौबीस' रखा गया है।

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त)भा. १, पृ. १६३

⁽ख) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०५

⁽ग) पण्णवणासुत्तं भा. २, छठे पद की प्रस्तावना, पृ ६७

- ☐ तृतीय सान्तर द्वार उन-उन जीवों प्रभेदों के जीवों का उपपात और उद्वर्तन निरन्तर होता रहता है या उसमें बीच में व्यवधान (अन्तर) भी आ जाता है? इसका स्पष्टीकरण अनेकान्त दृष्टि से इस द्वार में किया गया है कि पृथ्वीकायादि एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष सभी जीवों का निरन्तर भी उत्पाद एवं उद्वर्तने होता रहता है और सान्तर भी। यद्यपि षट्खण्डागम के अन्तरानुगम-प्रकरण में इसका विचार किया गया है, परन्तु वहाँ इस दृष्टि से 'अन्तर' का विचार किया गया है कि एक जीव उस-उस गित आदि में भ्रमण करके उसी गित में पुन: कब आता है? तथा अनेक जीवों की अपेक्षा से अन्तर है या नहीं? तथा नाना जीवों की अपेक्षा से नरक आदि में नारक जीव आदि कितने काल तक रह सकते हैं ? इस प्रकार का विचार किया गया है। ध
- □ चौथे द्वार में यह बताया गया है कि एक समय में उस-उस गित के जीवों के प्रभेदों में कितने जीवों का उपपात और उद्वर्तन होता है ? इस सम्बन्ध में वनस्पितकाय तथा पृथ्वीकायादि एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष समस्त जीवों में एक समय में जघन्य एक, दो या तीन तथा उत्कृष्ट संख्यात अथवा असंख्यात जीवों की उत्पित्त तथा उद्वर्तना का निरूपण है। वनस्पितकायिकों में स्वस्थान में निरन्तर अनन्त तथा परस्थान में निरन्तर असंख्यात का तथा पृथ्वीकायिकादि में निरन्तर असंख्यात का विधान है।
- □ पांचवें द्वार में जीवों की आगित का वर्णन है। चारों गितयों के जीवों के प्रभेदों से किन-किन जीवों में से मर कर आते हैं? अर्थात् किस जीव में मर कर कहाँ-कहाँ उत्पन्न होने की योग्यता है? इसका निर्णय प्रस्तुत द्वार में किया गया है।
- □ छठे द्वार में उद्वर्तना अर्थात्— जीवों के निकलने का वर्णन है। अर्थात् कौन-से जीव मर कर कहाँ -कहाँ (किस-किस गित एवं योनि में) जाते हैं ? मर कर कहां उत्पन्न होते हैं ? इसका निर्णय इस द्वार में प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि पाँचवें द्वार को उलटा करके पढ़ें तो छठे द्वार का विषय स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि पाँचवें में बताया गया है— जीव कहाँ से आते हैं ? उस पर से ही स्पष्ट हो जाता है कि जीव मर कर कहाँ जाते हैं ? तथापि स्पष्ट रूप से समझाने के लिए इस छठे द्वार का उपक्रम किया गया है।
- □ सप्तम द्वार में बताया गया है कि जीव पर-भव का अर्थात्— आगामी भव का आयुष्य कब बाँधता है ? अर्थात्— किस जीव की वर्तमान आयु का कितना भाग शेष रहने या कितना भाग बीतने पर वह आगामी भव का आयुष्य बाँधता है ? नारक और देव तथा असंख्यातवर्षायुष्क (मनुष्य-तिर्यञ्व) आगामी आयुष्यबन्ध ६ मास पूर्व ही कर लेते हैं, जबिक शेष समस्त जीव (मनुष्यों में चरमशरीरी एवं उत्तमपुरुष को छोड़कर) सोपक्रम एवं निरुपक्रम, दोनों ही प्रकार का आयुबन्ध करते हैं। निरुपक्रमी

१. षट्खण्डागम पुस्तक ७,पृ. १८७,४६२; पुस्तक ५, अन्तरानुगमप्रकरण पृ.१

२. षट्खण्डागम पु. ६ पृ. ४१८ से गति-आगति की चर्चा

जीव आयु का तृतीय भाग शेष रहते और सोपक्रमी वर्तमान आयु का त्रिभाग, अथवा त्रिभाग का त्रिभाग या त्रिभाग का त्रिभाग शेष रहते आगामी भव का आयुष्य बांधते हैं। इस प्रकार परभविक आयुष्यबन्ध की प्ररूपणा की गई है।

अष्टम द्वार में जातिनामनिधत्तायु गितनामनिधत्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु, अवगाहनानामनिधत्तायु, प्रदेशनामनिधत्तायु और अनुभावनामनिधत्तायु, यों आयुबन्ध के ६ प्रकार बताकर यह स्पष्ट किया गया है कि जातिनामादि विशिष्ट आयुबन्ध कौन जीव कितने−िकतने आकर्ष से करता है? जातिनामनिधत्तायु आदि से युक्त आयुबन्ध सामान्य जीव तथा नैरियकादि वैमानिकपर्यन्त जीव जघन्य एक, दो, तीन अथवा अत्कृष्ट आठ आकर्षों से करते हैं, यह प्ररूपणा की गई है। अन्त में, एक से आठ आकर्षों से आयुबन्ध करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म अवगाहनानामिधत्तायु, प्रविचानिधत्तायु, स्थावन्ध करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है। इत्राह्म की गई है। इत्राह्म कि गई है। इत्राह्म के कि गई है। इत्राह्म के कि गई है। इत्राह्म करने वालों के अल्पबहुत्व की चर्चा कि गई है। इत्राह्म करने वालों के कि गई है। इत्राह्म के कि गई है। इत्राह्म करने वालों के कि गई है। इत्राह्म के कि गई है। इत्रा

१. (क) पण्णवणासुतं भा. २, छठे पद की प्रस्तावना- पृ. ३७ से ७४ तक

⁽ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय.वृत्ति, पत्रांक २०५

⁽ग) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ.९२९ से ९३१ तक

छट्ठं वक्कंतिपयं

छठा व्युत्क्रान्तिपद

व्युत्क्रान्तिपद के आठ द्वार -

५५९. बारस १, चउवीसाइं २, सअंतरं ३, एगसमय ४, कत्तो य ५। उळ्यट्टण ६, परभवियाउयं ७, च अट्ठेव आगरिसा ८॥१८२॥

[५५९ गाथार्थ —] १.द्वाद्वश (बारह), २. चतुर्विशति (चौबीस),३.सान्तर (अन्तर-सिहत), ४. एक समय, ५. कहाँ से ? ६. उद्वर्त्तना, ७.परभव-सम्बन्धी आयुष्य और ८. आकर्ष, ये आठ द्वार (इस व्युत्क्रान्तिपद में) हैं।

विवेचन—व्युत्क्रान्तिपद के आठ द्वार— प्रस्तुत सूत्र में एक संग्रहणीगाथा के द्वारा व्युत्क्रान्ति पद के ८ द्वारों का उल्लेख किया गया है।

प्रथम द्वादशद्वारः नरकादि गतियों में उपपात और उद्वर्तना का विरहकाल-निरूपण ५६०. निरयगती णं भंते! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

[५६०. प्र.] भगवान् ! नरकगित कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६० उ.] गौतम! (वह) जघन्य (कम से कम) एक समय तक और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक)बारह मुहूर्त तक (उपपात से विरहित रहती है।)

५६१. तिरियगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

[५६१. प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६१ उ.] गौतम! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक (उपपात से विरहित रहती है।)

५६२. मणुयगती णं भंते! केवइयं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

[५६२ प्र.] भगवन्! मनुष्यगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है?

[५६२. उ.] गौतम! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक (उपपात से विरहित रहती है।)

१. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०५

५६३. देवगती णं भंते! केवतियं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

[५६३. प्र.] भगवन् ! देवगित कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६३. उ.] गौतम! (देवगित का उपपातिवरहकाल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक का है।

५६४. सिद्धगती णं भंते! केवतियं कालं विरहिता सिन्झणयाए पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा।

[५६४ प्र.] भगवन्! सिद्धगति कितने काल तक सिद्धि से रहित कही गई है ?

[५६४ उ.] गौतम! (सिद्धगति का सिद्धिविरहित काल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट छह महीनों तक का है।

५६५. निरयगती णं भंते! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणयाए पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

[५६५ प्र.] भगवन् ! नरकगित कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६५ उ.] गौतम! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक (उद्वर्तना से विरहित रहती है।)

५६६. तिरियगती णं भंते! केवतियं कालं विरिहता उव्वट्टणयाए पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

[५६६ प्र.] भगवन्! तिर्यञ्चगति कितने काल तक उद्वर्तना से विरहित कही गई है ?

[५६६ उ.] गौतम! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक (उद्वर्वतना से विरहित रहती है।)

५६७. मणुयगती णं भंते! केवतियं कालं विरिहया उव्वट्टणाए पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

[५६७ प्र.]भगवन्! मनुष्यगति कितने काल उद्वर्तना से विरहित कही गई है ?

[५६७ उ.] गौतम! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक (उद्वर्तना से विरहित कही गई है।)

५६८. देवगती णं भंते! केवतियं कालं विरिहता उव्वट्टणाए पण्णत्ता ? गोयम! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता। दारं १॥

[५६८ प्र.] भगवन् ! देवगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६८ उ.] गौतम! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहुर्त्त तक (उद्वर्तना से विरहित रहती है।) प्रथम द्वार ॥ १॥

विवेचन—प्रथम द्वादश (बारस = बारह) द्वार : चार गितयों के उपपात और उद्वर्त्तना का विरहकाल-निरूपण— प्रस्तुत नौ सूत्रों (सू. ५६० से ५६८ तक) में नरकादि चार गितयों और पांचवीं सिद्धगित के जघन्य-उत्कृष्ट उपपातिवरहकाल का उनके उद्वर्तनाविरहकाल का निरूपण किया गया है।

निरयगित आदि चारों गितयों के लिए एक वचन प्रयोग क्यों ? निरयगित अर्थात— नरकगित नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले जीव का औदियक भाव। इसी प्रकार तिर्यञ्चादि-गित के विषय में समझना चाहिए। वह औदियकभाव सामान्य की अपेक्षा से सभी गितयों में अपना-अपना एक है। नरकगित का औदियकभाव सातों पृथ्वियों में व्यापक है, इसिलए नरकगित आदि चारों गितयों में प्रत्येक में एकवचन का प्रयोग किया गया है।

उपपात और उसका विरहकाल— किसी अन्य गित से मरकर नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव या सिद्ध के रूप में उत्पन्न होना उपपात कहलाता है। नरकगित में उपपात के विरहकाल का अर्थ है— जितने समय तक किसी भी नये नारक का जन्म नहीं होता; दूसरे शब्दों में — नरकगित नये नारक के जन्म से रिहत जितने काल तक होती है, वह नरकगित में उपपातिवरहकाल है। इसी प्रकार अन्य गितयों में उपपात-विरहकाल का अर्थ समझ लेना चाहिए। नरकादि गितयाँ कम से कम एक समय और अधिक से अधिक १२ मुहूर्त तक उपपात से रिहत होती हैं। बारह मुहूर्त के बाद कोई न कोई जीव नरकादि गितयों में उत्पन्न होता ही है। सिद्धगित का उपपातिवरहकाल उत्कृष्टतः छह मास का बताया है, उसका कारण यह है कि एक जीव के सिद्ध होने के पश्चात् संभव है कोई जीव अधिक से अधिक छह मास तक सिद्ध न हो। छह मास के अनन्तर अवश्य ही कोई न कोई सिद्ध (मुक्त) होता है।

चौबीस मुहूर्त्त-प्रमाण उपपातिवरह क्यों नहीं ?— आगे कहा जाएगा कि उपपातिवरह-काल चौबीस मुहूर्त्त का है, किन्तु यहां जो बारह मुहुर्त्त का उपपातिवरहकाल बताया है, वह सामान्य रूप से नरकगित का उपपातिवरहकाल है, किन्तु जब रत्नप्रभा आदि एक-एक नरकपृथ्वी के उपपात-विरहकाल की विवक्षा की जाती है, तब वह चौबीस मुहूर्त्त का ही होता है। इसी प्रकार अन्य गितयों के विषय में समझ लेना चाहिए।

उद्वर्त्तना और उसका विरहकाल— नरकादि किसी गित से निकलना उद्वर्त्तना है, प्रश्न का आशय यह है कि ऐसा कितना समय है, जबिक कोई भी जीव नरकादि गित से न निकले ? यह उद्वर्त्तनाविरिहत काल कहलाता है। उद्वर्त्तना-विरहकाल चारों गितयों का उत्कृष्टतः १२ मुहूर्त्त का है। सिद्धगित में उद्वर्त्तना नहीं होती, क्योंकि सिद्धगित में गया हुआ जीव फिर कभी वहाँ से निकलता नहीं है। इसलिए सिद्धगित में उद्धर्त्तना नहीं होती । अतएव वहाँ उद्वर्त्तना का विरहकाल भी नहीं है। वहाँ तो सदैव उद्वर्त्तनाविरह

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०५

⁽ख) प्रज्ञापना. प्र.बो. टीका भा. २, पृ. ९३५ से ९३७

है, क्योंकि सिद्धपर्याय सादि होने पर भी अनन्त (अन्तरिहत) है, सिद्ध जीव सदाकाल सिद्ध ही रहते हैं। दितीय चतुर्विंशतिद्वार : नैरियकों से अनुत्तरौपपातिकों तक के उपपात और उद्वर्तना के विरहकाल की प्ररूपणा

५६९. रयणप्पभापुढिवनेरइया णं भंते ! केवितयं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

[५६९ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरियक कितने काल तक उपपात से विरिहत कहे गए हैं ? [५६९ उ.] गौतम! (उनका उपपातिवरहकाल) जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त तक का (कहा गया है।)

५७०. सक्करप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवितयं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं सत्त रातिंदियाणि।

[५७० प्र.] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ? [५७० उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्टत: सात रात्रि-दिन तक (उपपात से विरहित रहते हैं।)

५७१. वालुयप्पभापुढिवनेरइया णं भंते ! केवितयं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अद्धमासं।

[५७१ प्र.] भगवन् ! वालुकापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ? [५७१ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अर्द्धमास तक (उपपात से विरहित रहते हैं।)

५७२. पंकप्पभापुढिवनेरइया णं भंते! केवितयं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं मासं।

[५७२ प्र.] भगवन् ! पंकप्रभापृथ्वी के नैरियक कितने काल तक उपपात से विरिहत कहे गए हैं ? [५७२ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: एक समय तक और उत्कृष्टत: एक मास तक (उपपात-विरिहत रहते हैं।)

५७३. धूमप्पभापुढविनेरइया णं भंते! केवतियं कालं विरहिता उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं दो मासा।

[५७३ प्र.] भगवन! धूमप्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ? [५७३ उ.] गौतम! जघन्यत: एक समय तक और उत्कृष्टत: दो मास तक (उपपात से विरहित होते हैं।)

१. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक २०५ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका भा. २, पृ. ८३७

५७४. तमापुढिवनेरइया णं भंते! केवितयं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता ? गौयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चत्तारि मासा।

[५७४ प्र.] भगवन् ! तम: प्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७४ उ.] गौतम! (वे) जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः चार मास तक (उपपात-विरहित रहते हैं।)

५७५. अधेसत्तमापुढिवनेरइया णं भंते! केवितयं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा।

[५७५ प्र.] भगवन् ! सबसे नीची तमस्तमा नामक सप्तम पृथ्वी के नैरियक कितने काल तक उपपात से रहित कहे गए हैं?

[५७५ उ.] गौतम! वे एक समय तक और उत्कृष्ट छह मास तक (उपपात से विरहित रहते हैं।) ५७६. असुरकुमारा णं भंते! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

[५७६ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७६ उ.] गौतम! (वे)जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः चौबीस मुहूर्त तक (उपपातविरहित रहते हैं।)

५७७. णागकुमारा णं भंते! केवितयं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

[५७७ प्र.] भगवन् ! नागकुमार कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७७ उ.] गौतम! (उनका उपपातिवरहकाल) जघन्य एक समय का और उत्कुष्ट चौबीस मुहूर्त का है।

५७८. एवं सुवण्णकुमाराणं विञ्जुकुमाराणं अग्गिकुमाराणं दीवकुमाराणं उदहिकुमाराणं दिसाकुमाराणं वाउकुमाराणं थणियकुमाराण य पत्तेयं जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

[५७८] इसी प्रकार सुपर्ण(सुवर्ण) कुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदिधकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार और स्तनितकुमार देवों का प्रत्येक का उपपातिवरहकाल जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त का है।

५७९. पुढविकाइया णं भंते! केवतियं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता। गोयमा! अणुसमयमविरिहयं उववाएणं पण्णत्ता।

[५७९ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७९ उ.] गौतम! (वे) प्रतिसमय उपपात से अविरहित कहे गए हैं। अर्थात् उनका उपपात निरन्तर होता ही रहता है।

५८०. एवं आउकाइयाण वि तेउकाइयाण वि वाउकाइयाण वि वणप्फइकाइयाण वि अणुसमयं अविरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

[५८०प्र.] इसी प्रकार अप्कायिक भी तेजस्कायिक भी, वायुकायिक भी, एवं वनस्पतिकायिक जीव भी प्रतिसमय उपपात से अविरहित कहे गए हैं।

[५८१.] बेइंदिया णं भंते! केवतियं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुनं।

[५८१ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों का उपपातिवरह कितने काल तक कहा गया है ?

[५८१ उ.] गौतम! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक (उनका उपपात-विरहकाल रहता है।)

५८२. एवं तेइंदिय-चउरिदिया।

[५८२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय के उपपातिवरहकाल के विषय में समझ लेना चाहिए। ५८३. सम्मुच्छिमपंचेदियितरिक्खजोणिया णं भंते! केवितयं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहत्तं।

[५८३ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८३ उ.] गौतम! (उनका उपपातिवरह) जघन्य एक समय तक का और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक का है।

५८४. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते! केवतियं कालं विरहिता उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

[५८४ प्र.] भगवन्! गर्भजपंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गये हैं ?

[५८४ उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक (उपपात से विरहित रहते हैं।)

५८५. सम्मुच्छिममणुस्सा णं भंते! केवतियं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

[५८५ प्र.] भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८५ उ.] गौतम! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे हैं।)

५८६. गब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

[५८६ प्र.] भगवन्! गर्भज मनुष्य कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८६ उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक (उपपात से विरहित कहे हैं।)

५८७. वाणमंतराणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८७ प्र.] भगवन्! वाणव्यन्तर देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८७ उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौबीय मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे गए हैं।)

५८८. जोइसियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

[५८८ प्र.] भगवन्! ज्योतिष्क देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८८ उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त तक (उपपात विरहित कहे हैं।)

५८९. सोहम्मे कप्पे देवा णं भंते! केवतियं कालं विरिहया उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मृहत्ता।

[५८९ प्र.] भगवन्! सौधर्मकल्प में देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे हैं ?

[५८९ उ.] गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त तक (उपपात से विरहित कहे हैं।)

५९०. ईसाणे कप्पे देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

[५९० प्र.] गौतम! ईशानकल्प में देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५९० उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे गए हैं।)

५९१. सणंकुमारदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं नव रातिंदियाई वीसा य मुहुत्ता।

[५९१ प्र.] भगवन्! सनत्कुमार देवों का उपपातिवरहकाल कितना कहा गया हैं ?

[५९१ उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट नौ रात्रि दिन और बीस मुहूर्त्त तक (उपपातिवरहित कहे हैं।)

५९२. माहिंददेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस राइंदियाईं दस मुहुत्ता।

[५९२ प्र.] भगवन्! माहेन्द्र देवों का उपपातिवरहितकाल कितना कहा गया है ?

[५९२ उ.] गौतम! (उनका उपपातिवरहकाल) जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट बारह रात्रिदिन और दस मुहूर्त्त का है।

५९३. बंभलोए देवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अद्धतेवीसं रातिंदियाइं।

[५९३ प्र.] भगवन्! ब्रह्मलोक में देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५९३ उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट साढ़े बाईस रात्रिदिन तक (उपपातिवरहित रहते हैं।)

५९४. लंतगदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं पणतालीसं रातिंदियाइं।

[५९४ प्र.] भगवन्! लान्तक देवों का उपपातिवरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[५९४ उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट पैंतालीस रात्रिदिन तक (उपपात से रहित कहे हैं।)

५९५. महासुक्कदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असीतिं रातिंदियाइं।

[५९५ प्र.] भगवन्! महाशुक्र देवों का उपपातविरह कितने काल का कहा गया है ?

[५९५ उ.] गौतम! (उनका उपपातिवरहकाल) जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट अस्सी रात्रिदिन तक का है।

५९६. सहस्सारदेवाणं पुच्छा। जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं रातिंदियसतं।

[५९६ प्र.] गोयमा! सहस्रार देवों का (उपपातिवरहकाल कितना कहा गया है) ?

[५९६ उ.] गौतम! जघन्य एक समय तक का तथा उत्कृष्ट सौ रात्रिदिन का (उनका उपपातिवरह काल कहा गया है।)

५९७. आयणदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहेण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जा मासा।

[५९७ प्र.] भगवन्! आनतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५९७ उ.] गौतम! उनका उपपातिवरह काल जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट संख्यात मास तक का है।

५९८. पाणयदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जा मासा।

[५९८ प्र.] भगवन्! प्राणतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५९८ उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात मास तक उपपात से विरहित कहे हैं।

५९९. आरणदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जा वासा।

[५९९ प्र.] भगवन्! आरणदेवों का उपपातिवरह कितने काल का कहा गया है ?

[५९९ उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात वर्ष (उपपातविरहित रहते हैं।)

६००. अच्चुयदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जा वासा।

[६०० प्र.] भगवन्! अच्युतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[६०० उ.] गौतम! (उनका उपपातिवरह) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात वर्ष तक रहता है।

६०१. हेट्टिमगेवेज्जाणं पुच्छा।

गोयमा! जहणेणं एगं समयं, उक्कासेणं, संखेज्जाइं वाससताइं।

[६०१ प्र.] भगवन्! अधस्तन ग्रैवेयक देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[६०१ उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात सौ वर्ष तक (उपपात से विरहित कहे हैं।)

६०२. मञ्झिमगेवेज्जाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससहस्साइं।

[६०२ प्र.] भगवन्! मध्यम ग्रैवेयकदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[६०२ उ.] गौतम!(वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष तक (उपपातिवरहित कहे हैं)।

६०३. उवरिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससतसहस्साइं।

[६०३ प्र.] भगवन्! ऊपरी ग्रैवेयक देवों का उपपातिवरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[६०३ उ.] गौतम! (उनका उपपात-विरहकाल) जघन्यत: एक समय का तथा उत्कृष्ट संख्यातलाख वर्ष का है।

६०४. विजय-वेजयंत-जयंताऽपराजियदेवाणं पुच्छा। गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्ज कालं।

[६०४ प्र.] भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों का उपपातिवरह कितने काल तक का कहा है ?

[६०४ उ.] गौतम! (इनका उपपात-विरहकाल) जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट असंख्यातकाल का है।

६०५. सव्बद्घसिद्धगदेवा णं भंते! केवितयं कालं विरिहता उववाएणं पन्नत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं पिलओवमस्स संखेज्जइभागं।

[६०५ प्र.] भगवन्! सर्वार्थसिद्ध देवों का उपपातिवरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[६०५ उ.] गौतम! जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट पल्योपम का संख्यातवां भाग है।

६०६. सिद्धा णं भंते! केवतियं कालं विरिहया सिज्झणयाए पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा।

[६०६ प्र.] भगवन्! सिद्ध जीवों का उपपात-विरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[६०६ उ.] गौतम! उनका उपपात-विरहकाल जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट छह मास का है।

६०७. रयणप्पभापुढिविनेरइया णं भंते! केवितयं कालं विरिहया उव्वट्टणाए पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ?

[६०७ प्र.] भगवन्! रत्नप्रभा के नैरियक कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरिहत कहे गए हैं ?

[६०७ उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त तक उद्वर्त्तना से विरहित कहे हैं।

६०८. एवं सिद्धवज्ञा उव्बट्टणा वि भाणितव्वा जाव अणुत्तरोववाइय ति। नवरं जोइसियवेमाणिएसु चयणं ति अहिलावो कायव्वो। दारं २॥

[६०८] जिस प्रकार उपपात-विरह का कथन किया है, उसी प्रकार सिद्धों को छोड़कर अनुत्तरौपपातिक देवों तक (पूर्ववत्) उद्वर्त्तनाविरह भी कह लेना चाहिए। विशेषता यह है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के निरूपण में (उद्वर्त्तना के स्थान पर) 'च्यवन' शब्द का अभिलाप (प्रयोग) करना चाहिए।

विवेचन—द्वितीय चतुर्विंशतिद्वारः नैरियकों से लेकर अनुत्तरौपपातिक जीवों तक के उपपात और उद्वर्तना के विरहकाल की प्ररूपणा—प्रस्तुत ४० सूत्रों (सू. ५६९ से ६०८ तक) में विभिन्न विशेषण युक्त विशेष नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवों के उपपातरहितकाल एवं उद्वर्तनाविरहकाल की प्ररूपणा की गई है।

पृथ्वीकायिकादि प्रतिसमय उपपादिवरहरित — पृथ्वीकायिक आदि जीव प्रति समय उत्पन्न होते रहते हैं। कोई एक भी समय ऐसा नहीं, जब पृथ्वीकायिकों का उपपात न होता हो। इसलिए उन्हें उपपातिवरह से रहित कहा गया है।

ज्योतिष्क और वैमानिक देवों में उद्वर्तना नहीं — ज्योतिष्क और वैमानिक इन दोनों जातियों के देवों के लिए 'च्यवन' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। च्यवन का अर्थ है नीचे आना। ज्योतिष्क और वैमानिक इस पृथ्वी से ऊपर हैं, अतएव देव मर कर ऊपर से नीचे आते हैं, नीचे से ऊपर नहीं जाते। तीसरा सान्तरद्वारः नैरियकों से सिद्धों तक की उत्पत्ति और उद्वर्तना का सान्तर निरन्तर-निरूपण

६०९. नेरइया णं भंते! किं संतरं उव्वर्जाति ? निरंतरं उववर्जाति ? गोयमा! संतरं पि उववर्जाति, निरंतरं पि उववर्जाति।

[६०९ प्र.] भगवन्! नैरियक सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६०९ उ.] गौतम (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१०. तिरिक्खजोणिया णं भंते! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ? गोयमा! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

[६१० प्र.] भगवन् तिर्यञ्चयोनिक जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६१० उ.] गौतम! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६११. गणुस्सा णं भंते! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ? गोयमा! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

[६११ प्र.] भगवन्! मनुष्य सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६११ उ.] गौतम! (वे) सान्तर की उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१२. देवा णं भंते! किं संतरं उववर्जित ? निरंतरं उववर्जित ? गोयमा! संतरं पि उववर्जित, निरंतरं पि उववर्जित।

[६१२ प्र.] भगवन्! देव सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६१२ उ.] गौतम! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

१. (क) प्राज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २०७

⁽ख) देखिये, संग्रहणीगाथा, मलय. वृत्ति, पत्रांक २०७

⁽ग) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका., भा. 2, पृ ९५८

२. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २०७

⁽ख) प्रज्ञापना, प्रमेयबोधिनी टीका, भा. २, पृ. ९७०

६१३. रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ? गोयमा! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

[६१३ प्र.] भगवन्! क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नारक सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६१३ उ.] गौतम! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं। ६१४. एवं जाव अहेसत्तमाए संतरं पि उववर्जित, निरंतर पि उववर्जित।

[६१४] इसी प्रकार सातर्वी नरकपृथ्वी तक (के नैरियक) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१५. असुरकुमारा णं भंते! देवा किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

[६१५ प्र.] भगवन्! असुरकुमार देव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं? [६१५ उ.] गौतम! सान्तर भी होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१६. एवं जाव थणियकुमारा संतरं पि उववर्जित निरंतरं पि उववर्जित।

[६१६] इसी प्रकार स्तनितकुमार देवों तक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं?

६१७. पुढविकाइया णं भंते! किं संतरं उववञ्जंति ? निरंतरं उववञ्जंति ? गोयमा! नो संतरं उववञ्जंति. निरंतरं उववञ्जंति।

[६१७. प्र.] भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६१७ उ.] गौतम! (वे) सान्तर उत्पन्न नहीं होते, किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं।

६१८. एवं जाव वणस्सइकाइया नो संतरं उवव्जंति, निरंतर उववज्जंति।

[६१८] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवों तक सान्तर उत्पन्न नहीं होते, किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं (ऐसा कहना चाहिए)।

६१९. बेइंदिया णं भंते! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ? गोयमा! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

[६१९ प्र.] भगवन्! द्वीन्द्रिय जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६१९ उ.] गौतम! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६२०. एवं जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिया।

[६२०] इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों तक कहना चाहिए।

६२१. मणुस्सा णं भंते! किं संतरं उववज्जितं ? निरंतरं उववञ्जित ? गोयमा! संतरं पि उववञ्जित, निरंतरं पि उववञ्जित।

[६२१. प्र.] भगवन्! मनुष्य सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६२१ उ.] गौतम! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६२२. एवं वाणमंतरा जोइसिया सोहम्म-ईसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-महासुक्कसहस्सार-आणय-पाणय-आरण-ऽच्चुय-हेट्ठिमगेवेज्जग-मिज्झमगेवेज्जग-उविरमगेवेज्जग-विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजित-सव्वट्टसिद्धदेवा य संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

[६२२] इसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, अधस्तन ग्रैवेयक, मध्यम ग्रैवेयक, उपरितन ग्रैवयक, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६२३. सिद्धा णं भंते! किं संतरं सिज्झंति ? निरंतरं सिज्झंति ? गोयमा! संतरं पि सिज्झंति, निरंतरं पि सिज्झंति।

[६२३ प्र.] भगवन्! सिद्ध क्या सान्तर सिद्ध होते हैं अथवा निरन्तर सिद्ध होते हैं ?

[६२३ उ.] गौतम! (वे) सान्तर भी सिद्ध होते हैं, निरन्तर भी सिद्ध होते हैं।

६२४. नेरइया णं भंते! किं संतरं उळ्वट्टंति ? निरंतरं उळ्वट्टंति ?

गोयमा! संतरं पि उव्वट्टंति, निरंतरं पि उव्वट्टंति।

[६२४. प्र.] भगवन्! नैरयिक सान्तर उद्वर्त्तन करते हैं अथवा निरन्तर उद्वर्त्तन करते हैं ?

[६२४. उ.] गौतम! वे सान्तर भी उद्वर्तन करते हैं और निरन्तर भी उद्वर्तन करते हैं।

६२५. एवं जहा उववाओ भणितो तहा उव्वट्टणा वि सिद्धवज्जा भाणितव्वा जाव वेमाणिया। नवरं जोइसिय-वेमाणिएसु चवणं ति अभिलावो कातव्वो। दारं ३॥

[६२५] इस प्रकार जैसे उपपात (के विषय में) कहा गया है, वैसे ही सिद्धों को छोड़कर उद्वर्तना (के विषय में) भी यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि ज्योतिष्कों और वैमानिकों के लिए 'च्यवन' शब्द का प्रयोग (अभिलाप) करना चाहिए। तृतीय सान्तर द्वार ॥ ३॥

विवेचन—तीसरा सान्तरद्वार—नैरियकों से लेकर सिद्धों की उत्पत्ति और उद्वर्तना का सान्तर-निरन्तरनिरूपण—प्रस्तुत १७ सूत्रों (सू ६०९ से ६२४ तक) में नैरियक से लेकर वैमानिक देव पर्यन्त चौबीस दण्डकों और सिद्धों की सान्तर और निरन्तर उत्पत्ति एवं उद्वर्त्तना की प्ररूपणा की गई है।

निष्कर्ष— पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक पांच प्रकार के एकेन्द्रियों को छोड़ कर समस्त संसारी एवं सिद्ध जीवों की सान्तर और निरन्तर दोनों प्रकार से उत्पत्ति और उद्वर्त्तना होती है। किन्तु सिद्धों की उत्पत्ति भी सान्तर-निरन्तर होती है, किन्तु उद्वर्त्तना कभी नहीं होती। है

१. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भाग १, पृ. १६६ से १६८ तक

सान्तर और निरन्तर उत्पत्ति की व्याख्या— बीच-बीच में कुछ समय छोड़कर व्यवधान से उत्पन्न होना सान्तर उत्पन्न होना है और प्रतिसमय लगातार—विना व्यवधान के उत्पन्न होना, बीच में कोई भी समय खाली न जाना निरन्तर उत्पन्न होना है।

चतुर्थ एकसमयद्वार : चौबीसदण्डकवर्ती जीवों और सिद्धों की एक समय में उत्पत्ति और उद्वर्तना की संख्या की प्ररूपणा —

६२६. नेरइया णं भंते! एगसमएणं केवतिया उववञ्जंति ?

गोयमा! जहण्णेणं एगो वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेजा वा असंखेजा वा उववञ्जंति।

[६२६ प्र.] भगवन्! एक समय में कितने नैरियक उत्पन्न होते हैं ?

[६२६ उ.] गौतम! जघन्य (कम से कम) एक, दो या तीन उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) संख्यात अथवा असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

६२७. एवं जाव अहेसत्तमाए।

[६२७] इसी प्रकार सातवीं नरकपृथ्वी तक समझ लेना चाहिए।

६२८. असुरकुमारा णं भंते! एगसमएणं केवतिया उववज्जंति ?

गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेजा वा असंखेजा वा।

[६२८ प्र.] भगवन्! असुरकुमार एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

[६२८. उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात अथवा असंख्यात (उत्पन्न होते हैं।)

६२९. एवं णागकुमारा जाव थणियकुमारा वि भाणियव्वा।

[६२९] इसी प्रकार नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक कहना चाहिए।

६३०. पुढिविकाइया णं भंते! एगसमएणं केवितया उववज्जंति ?

गोयमा! अणुसमयं अविरहियं असंखेजा उववज्जंति।

[६३० प्र.] भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

[६३० उ.] गौतम! (वे) प्रतिसमय विना विरह (अन्तर) के असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

६३१. एवं जाव वाउकाइया।

[६३१] इसी प्रकार वायुकायिक जीवों तक कहना चाहिए।

६३२. वणप्फतिकाइया णं भंते! एगसमएणं केवतिया उववञ्जंति ?

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २०८

⁽न) प्रज्ञापना प्र. बो. टीका भा. २, पृ. ९७६-९७७

गोयमा! सट्ठाणुववायं पडुच्च अणुसमयं अविरिहया अणंत उववज्जंति ? परट्ठाणुववायं पडुच्च अणुसमयं अविरिहया असंखेजा उववज्जंति ।

[६३२ प्र.] भगवन्! वनस्पतिकायिक जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

[६३२ उ.] गौतम! स्वस्थान (वनस्पतिकाय) में उपपात (उत्पत्ति) की अपेक्षा से प्रतिसमय विना विरह के अनन्त (वनस्पतिजीव) उत्पन्न होते रहते हैं तथा परस्थान में उपपात की अपेक्षा से प्रतिसमय विना विरह के असंख्यात (वनस्पतिजीव) उत्पन्न होते हैं।

६३३. बेइंदिया णं भंते! केवतिया एगसमएणं उववज्जंति ?

'गोयमा! जहण्णेणं एगो वा दो वा तिणि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेजा वा।

[६३३ प्र.]भगवन्! द्वीन्द्रिय जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

[६३३ उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात (उत्पन्न होते हैं।)

६३४. एवं तेइंदिया चउरिंदिया सम्मुच्छिमपंचेंदियितिरिक्खजोणिया गब्भवक्कंतियपंचेदिय-तिरिक्खजोणिया सम्मुच्छिममणूसा वाणमंतर-जोइसिय-सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंगत-सुक्क-सहस्सारकप्पदेवा, एते जहा नेरइया।

[६३४] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक, गर्भज पंचेन्द्रिय, तिर्यग्योनिक, सम्मूर्च्छिम मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, शुक्र एवं सहस्रार कल्प के देव, इन सब की प्ररूणा नैरियकों के समान समझनी चाहिए।

६३५. गब्भवक्कंतियमणूस-आणय-पाणय-आरण-अच्चुय-गेवेज्जग-अणुत्तरोववाइया य एते जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेजा उववज्जंति।

[६३५.] गर्भज मनुष्य आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, (नौ) ग्रैवेयक, (पांच) अनुत्तरौपातिक देव; ये सब जघन्यत: एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्टत: संख्यात उत्पन्न होते हैं।

६३६. सिद्धा णं भंते! एगसमएणं केवतिया सिञ्झंति ?

गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं अट्टसतं।

[६३६ प्र.] भगवन्! सिद्ध भगवन् एक समय में कितने सिद्ध होते हैं ?

[६३६. उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: एक, दो, अथवा तीन और उत्कृष्टत: एक सौ आठ'सिद्ध होते हैं।

६३७. नेरइया णं भंते! एगसमएणं केवतिया उव्वट्टंति ?

गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उळ्वट्टंति।

[६३७ प्र.] भगवन्! नैरियक एक समय में कितने उद्वर्त्तित होते (मर कर निकलते) हैं ? [६३७ उ.] गौतम! (वे) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात अथवा असंख्यात उद्वर्त्तित होते (मरतें) हैं।

६३८. एवं जहा उववाओ भणितो तहा उव्वट्टणा वि सिद्धवज्जा भाणितव्वा जाव अणुत्तरोववाइया। णवरं जोइसिय-वेमाणियाणं चयणेणं अभिलावो कातव्वो॥ दारं ४॥

[६३८] इसी प्रकार जैसे उपपात के विषय में कहा, उसी प्रकार सिद्धों को छोड़ कर अनुत्तरौपपातिक देवों की उद्वर्तना के विषय में कहना चाहिए। विशेष यह है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए (उद्वर्त्तना के बदले) 'च्यवन' शब्द का प्रयोग (अभिलाप) करना चाहिए।

—चतुर्थ एकसमयद्वार ॥ ४॥

विवेचन—चतुर्थ एक समय-द्वार : चौबीस दण्डकवर्ती जीवों और सिद्धों की एक समय में उत्पत्ति तथा उद्वर्त्तना की संख्या की प्ररूपणा—प्रस्तुत तेरह सूत्रों (सू. ६२६ से ६३८ तक) में एक समय में समस्त संसारी जीवों की उत्पत्ति एवं उद्वर्त्तना तथा सिद्धों की सिद्धप्राप्ति की संख्या के सम्बन्ध में प्ररूपणा की गई है।

वनस्पतिकायिकों के स्वस्थान-उपपात एवं परस्थान-उपपात की व्याख्या—यहाँ स्वस्थान का अर्थ 'वनस्पतिभव' समझना चाहिए। जो वनस्पतिकायिक जीव मर कर पुन: वनस्पतिकाय में ही उत्पन्न होते हैं, उनका उत्पाद स्वस्थान में उत्पाद कहलाता है और जब पृथ्वीकाय आदि किसी अन्य काय का जीव वनस्पतिकाय में उत्पन्न होता है, तब उसका उत्पाद परस्थान-उत्पाद कहलाता है। स्वस्थान में उत्पत्ति की अपेक्षा प्रत्येक समय में निरन्तर अनन्त वनस्पतिकायिक जीव उत्पन्न होते रहते हैं; क्योंकि प्रत्येक निगोद में असंख्यातभाग का निरन्तर उत्पाद और उद्वर्त्तन होता रहता है, और वे वनस्पतिकायिक अनन्त होते हैं। परस्थान-उत्पाद की अपेक्षा से प्रतिसमय निरन्तर असंख्यात जीवों का उपपात होता रहता है, क्योंकि पृथ्वीकाय आदि के जीव असंख्यात हैं। तात्पर्य यह है कि एक समय में वनस्पतिकाय से मर कर वनस्पतिकाय में ही उत्पन्न होने वाले जीव अनन्त होते हैं एवं अन्य कार्यों से मर कर वनस्पतिकाय में उत्पन्न होने वाले असंख्यात हैं।

गर्भज मनुष्य तथा आनतादि का एक समय में संख्यात ही उत्पाद क्यों ? आनतादि देवलोकों में मनुष्य उत्पन्न होते हैं, जो कि संख्यात ही हैं। तिर्यंच उनमें नहीं उत्पन्न होते।

पंचम कुतोद्वार : चातुर्गतिक जीवों की पूर्वभवों से उत्पत्ति (आगित) की प्ररूपणा

६३९. [१] नेरइया णं भंते! कतोहिंतो उववर्जित ? किं नेरइएहिंतो उववर्जित ? तिरिक्खजोणिएहिंतो उववर्जित ? मणुस्सेहिंतो उववर्जित ?

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०८, २०९ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका भा. २, पृ. ९९२

गोयमा! नेरइया नो नेरइएहिंतो उववर्जात, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववर्जात, मणुस्सेहिंतो उववर्जात, नो देवेहिंतो उववर्जात ।

[६३९-१ प्र.] भगवन्! नैरियक कहाँ से उत्पन्न होते हैं? क्या (वे) नैरियकों में से उत्पन्न होते हैं ? तिर्यग्योनिकों में से उत्पन्न होते हैं ? मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं? (अथवा) देवों में से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१ उ.] गौतम! नैरियक, नैरियकों में से उत्पन्न नहीं होते, (वे) तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (तथा) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) देवों में से उत्पन्न नहीं होते।

[२] जिंद तिरिक्खजोणिएहिंतो उववर्जित किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववर्जित ? बेइंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववर्जित ? तेइंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववर्जित ? चउरिंदियति-रिक्खजोणिएहिंतो उववर्जित ? पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववर्जित ?

गोयमा! नो एगिंदिय० नो बेंदिय० नो तेइंदिय० नो चउरिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

[६३९-२ प्र.] भगवन्! यदि (नैरियक) तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) एकेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, च्रीन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२ उ.] गौतम! (वे) न तो एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से, न द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से, न ही त्रीन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से और न चतुरिन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं।

[३] जित पंचिंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति किं जलयरपंचिंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ? थलयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ? खहयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा!जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववञ्जंति, थलयरपंचेंदियतिरिक्ख-जोणिएहिंतो वि उववञ्जंति, खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववञ्जंति।

[६३९-३ प्र.] भगवन्! यदि (नैरियक) पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ? स्थलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ? स्थलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-३ उ.] गौतम! (वे नैरियक) जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं, स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं। [४] जड जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति किं सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियति-रिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति? गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, गब्भवक्कंतियजल-यरपंचेंदिएहिंतो वि उववज्जंति।

[६३९-४ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे नारक) जलचरपंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं? या गर्भज जलचरपंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-४ उ.] गौतम! (वे) सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

[५] जित सम्मुच्छिमजलयर पंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जित कि पजत्तयसम्मुच्छिम-जलयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जित ? अपजत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियितिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जित ?

गोयमा! पञ्जत्तयसम्मुच्छिमजलयर पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति, नो अपञ्जत्तय-सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति।

[६३९-५ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे नारक) सम्मूर्च्छिमजलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपंचिन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं अथवा अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचयरपंचेन्द्रितर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-५ उ.] गौतम! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपंचेन्द्रियतियञ्चदोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[६] जिति गब्भवक्कंतियजलयर पंचेंदियतिरिक्खजो णिएहिं तो उववर्जंति किं पज्जत्तगगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदिएहिंतो उववर्जंति ? अपर्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदिएहिंतो उववर्जंति ? अपर्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदिएहिंतो उववर्जंति ?

गोयमा! पञ्जत्तयगब्भवक्कं तियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति, नो अपञ्जत्तगगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति।

[६३९-६ प्र.] भगवन्! यदि गर्भज-जलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से (नारक) उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक-गर्भज-जलचर-पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं (अथवा) अपर्याप्तक-गर्भजजलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-६ उ.] गौतम! (वे) पर्याप्तक-गर्भज-जलचर-पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तकगर्भज-जलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[७] जइ थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति किं चउप्पयथलचरपंचेंदियति-रिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ? परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववञ्जंति, परिसप्पथलयर-पंचेंदियति-रिक्खजोणिएहिंतो वि उववञ्जंति।

[६३९-७ प्र.](भगवन्!) यदि (वे) स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?, (अथवा) परिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-७ उ.] गौतम! (वे) चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और परिसर्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

[८] जिंद चउप्पयथलयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिमेहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतिएहिंतो उववज्जित ?

गोयमा! सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, गब्भवक्कंतिय-चउप्पएहिंतो वि उववज्जंति।

[६३९-८ प्र.] भगवन्! यदि चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं। अथवा गर्भज-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं?

[६३९-८ उ.] गौतम! (वे) सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं, और गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

[९] जइ सम्मुच्छिमचउप्पएहिंतो उववञ्जंति किं पञ्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदिएहिंतो उववञ्जंति ? अपञ्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदिएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! पञ्जत्तएहिंतो उववञ्जंति, नो अपज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्ख जोणिएहिंतो उववञ्जंति।

[६३९-९ प्र.] (भगवन्!) यदि सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-९ उ.] गौतम! (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से नहीं उत्पन्न होते।

[१०] जित गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववर्जित किं संखेर्जवासाउगगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उव्वर्जित ? असंखेज-

वासाउयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

[६३९-१० प्र.](भगवन्!) यदि गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से (नारक) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१० उ.] गौतम! (वे) संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंञ्चयोनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[११] जित संखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! पञ्जत्तएहिंतो उववञ्जंति, नो अपञ्जत्तयसंखेञ्जवासाउएहिंतो उववञ्जंति।

[६३९-११ प्र.](भगवन्!) यदि (वे नारक) संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क गर्भज चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) अपर्याप्तक-संख्यात-वर्षायुष्क गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-११ उ.] गौतम! (वे) पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से नहीं उत्पन्न होते।

[१२] जित परिसप्पथलयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति किं उरपरिसप्पथलयर पंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ? भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-१२ प्र.] भगवन्! यदि (वे) परिसर्प-स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या उर: परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) भुजपरिसर्प-स्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१२ उ.] गौतम! वे दोनों ही— अर्थात्—उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों से भी उत्पन्न होते हैं।

छठा व्युत्क्रान्तिपद] [४८७

[१३] यदि उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिमउरपरि-सप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति? गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! सम्मुच्छिमेहिंतो वि उववज्जंति, गब्भवक्कंतिएहिंतो वि उववज्जंति।

[६३९-१३ प्र.] भगवन्! यदि उर: परिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं, अथवा गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१३ उ.] गौतम! (वे) सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं और गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

[१४] जित सम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति किं पञ्जत्तगेहिंतो उववञ्जंति ? अपञ्जत्तगेहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! पञ्जत्तगसम्मुच्छिमेहिंतो उववञ्जंति, नो अपञ्जत्तगसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति।

[६३९-१४ प्र.] भगवन्! यदि (वे) सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उतपन्न होते हैं ?

[६३९-१४ उ.] गौतम! (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम -उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[१५] जित गब्भवक्कंतियउरपिसप्पथलयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववर्जित किं पर्जित्तएहिंतो ? अपर्जित्तएहिंतो ?

गोयमा! पञ्जत्तगगब्भवक्कंतिएहिंतो उववञ्जंति, नो अपञ्जत्तगगब्भवक्कंतिउरपरिसप्पथलयर-पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति।

[६३९-१५ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) गर्भज उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) पर्याप्तक-गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, या अपर्याप्तक गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१५ उ.] गौतम! पर्याप्तक-गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[१६] जित भुयपिसप्पथलयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति कि सम्मुच्छिमभुय-परिसप्पथलयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ? गब्भवक्कंतियभुयपिसप्पथलय-रपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति।

[६३९-१६ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) भुजपिरसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) सम्मूर्च्छिम-भुजपिरसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं अथवा गर्भज-भुजपिरसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१६ उ.] गौतम! (वे) दोनों से (सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से भी, तथा गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से) भी उत्पन्न होते हैं।

[१७] जित सम्मुच्छिमभुयपिसप्पथलयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पञ्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपिसप्पथलयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति? अपञ्जत्तयसम्मुच्छिम-भुयपिसप्पथलयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! पञ्जत्तएहिंतो उववञ्जंति, नो अपञ्जत्तएहिंतो उववञ्जंति ।

[६३९-१७ प्र.](भगवन्!) यदि सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१७ उ.] गौतम!(वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[१८] जित गब्भवक्कंतियभुयपिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो ? अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! पञ्जत्तएहिंतो उववञ्जंति, नो अपञ्जत्तएहिंतो उववञ्जंति।

[६३९-१८ प्र.] (भगवन्!) यदि गर्भज-भुजपिरसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे नारक) पर्याप्तक-गर्भज-भुजपिरसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, या अपर्याप्तक-गर्भज-भुजपिरसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१८ उ.] गौतम! पर्याप्तक-गर्भज-भुजपिरसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-गर्भज-भुजपिरसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[१९] जित खहयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति कि सम्मुच्छिमखहयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ? गब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियितरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! दोहिंतो वि उववर्जित।

[६३९-१९ प्र.] (भगवन्!) यदि खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, या गर्भज खेचर- पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१९ उ.] गौतम! दोनों से (सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से तथा गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से) उत्पन्न होते हैं।

[२०] जित सम्मुच्छिमखहयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववर्जित कि पञ्जत्तएहिंतो उववर्जित ? अपञ्जत्तएहिंतो उववर्जित ?

गोयमा! पञ्जत्तएहिंतो उववञ्जंति ।

नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

[६३९-२० प्र.] (भगवन्!) यदि सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न. होते हैं, तो क्या (वे) पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२० उ.] गौतम! (वे) पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[२१] जित गब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववर्जित किं संखेर्जवासाउएहिंतो उववर्जित ? असंखेर्जवासाउएहिंतो उववर्जित ?

गोयमा! संखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

[६३९-२१ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा असंख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२१ उ.] गौतम! (वे) संख्यातवर्ष की आयु वाले गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) असंख्यातवर्षायुष्क गर्भज-खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[२२] जित संखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पञ्जत्तएहिंतो उववज्जंति ? अपञ्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

[६३९-२२ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२२ उ.] गौतम! (वे) पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं (किन्तु) अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[२३] जित मणुस्सेहितो उववर्जित किं सम्मुच्छिममणुस्सेहितो उववर्जित ? गब्भवक्कंतियमणुस्सेहितो उववर्जित ?

गोयमा! नो सम्मुच्छिममणुस्सेहितो उववञ्जंति, गब्भवक्कंतियमणुस्सेहितो उववञ्जंति।

[६३९-२३ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं , अथवा गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२३ उ.] गौतम! (वे) सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते, गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं।

[२४] जइ गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ? अकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ? अंतरदीवगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो अत्तम्मभूमगगब्भवक्कंतियम-णुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो अंतरदीवगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

[६३९-२४ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) गर्भज मनुयों से उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, या अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं अथवा अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२४ उ.] गौतम! (वे) कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) न तो अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं और न अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं।

[२५] जित कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ? असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! संखेञ्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववञ्जंति, नो असंखेञ्जवा-साउयकम्मभूमगगब्भवकंकतियमणुसेहिंतो उववञ्जंति।

[६३९-२५ प्र.] (भगवन्!) यदि कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, अथवा असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२५ उ.] गौतम! (वे) संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते।

[२६] जित संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति कि पज्जत्तगेहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तगेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! पञ्जत्तएहिंतो उववञ्जंति, नो अपञ्जत्तएहिंतो उववञ्जंति ।

[६३९-२६ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं।

[६३९-२६ उ.] गौतम! पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते।

६४०. एवं जहा ओहिया उववइया तहा रयणप्यभापुढविनेरइया वि उववाएयव्वा।

[६४०] इसी प्रकार जैसे औधिक (सामान्य) नारकों के उपपात (उत्पत्ति) के विषय में कहा गया है, वैसे ही रत्नप्रभापृथ्वी के नैरियकों के उपपात के विषय में कहना चाहिए।

६४१. सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं पुच्छा।

गोयमा! एते वि जहा ओहिया तहेवोववएयव्वा। नवरं सम्मुच्छिमेहिंतो पडिसेहो कातव्वो।

[६४१ प्र.] शर्करापृथ्वी के नैरियकों की उत्पत्ति के विषय में पृच्छा।

[६४१उ.] गौतम! शर्करापृथ्वी के नारकों का उपपात भी औघिक (सामान्य) नैरियकों के उपपात की तरह ही समझना चाहिए। विशेष यह है कि सम्मूर्च्छिमों से (इनकी उत्पत्ति) का निषेध करना चाहिए।

६४२. वालुयप्पभापुढविनेरइया णं भंते। कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! जहा सक्करप्पभापुढविनेरइया। नवरं भुयपरिसप्पेहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो।

[६४२ प्र.] भगवन्! वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरियक कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

[६४२उ.] गौतम! जैसे शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरियकों की उत्पत्ति के विषय में कहा, वैसे ही इनकी उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिए।! विशेष यह है कि भुजपिरसर्प (पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए।

६४३. पंकप्पभापुढिवनेरइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहा वालुयप्पभापुढविनेरइया। नवरं खहयरेहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो।

[६४३ प्र.] भगवन्! पंकप्रभापृथ्वी के नैरियक कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

[६४३ उ.] गौतम! जैसे वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरियकों की उत्पत्ति के विषय में कहा, वैसे ही इनकी उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिए। विशेष यह है कि खेचर (पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों) से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए।

६४४. धूमप्पभापुढविनेरइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहा पंकप्पभापुढिवनेरइया। नवरं चउप्पएहिंतो वि पिडिसेहों कातव्वो।

[६४४ प्र.] भगवन्! धूमप्रभापृथ्वी के नैरियक कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

[६४४ उ.] गौतम! जैसे पंकप्रभापृथ्वी के नैरियकों के उत्पाद के विषय में कहा, उसी प्रकार इनके उत्पाद के विषय में कहना चाहिए। विशेष यह है कि चतुष्पद (स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों) से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए।

६४५. [१] तमापुढिवनेरइया णं भंते! कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! जहा धूमप्पभापुढविनेरइया। नवरं थलयरेहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो।

[६४५-१ प्र.] भगवन्! तम:पृथ्वी के नैरियक कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-१ उ.] गौतम! जैसे धूमप्रभापृथ्वी के नैरियकों की उत्पत्ति के विषय में कहा, वैसे ही इस पृथ्वी के नैरियकों की उत्पत्ति के विषय में समझना चाहिए। विशेष यह है कि स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से इनकी उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए।

[२] इमेण अभिलावेणं—जित पंचिंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जीत कि जलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जीत? थलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जीत ? खहयरपंचिंदिएहिंतो उववज्जीत ?

गोयमा! जलयरपंचेंदिएहिंतो उववञ्जंति, नो थलयरेहिंतो नो खहयरेहिंतो उववञ्जंति।

[६४५-२ प्र.]इस (पूर्वोक्त) अभिलाप (कथन) के अनुसार —यदि वे (धूमप्रभापृथ्वी-नारक) पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या जलचर पंचेन्द्रिय से उत्पन्न होते हैं ? या स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं ? अथवा खेचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं ?

(६४५-२ उ.) गौतम! (वे) जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते है, किन्तु न तो स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं।

[३] जित मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं कम्मभूमएहिंतो अकम्मभूमएहिंतो अन्तरदीवएहिंतो ? गोयमा! कम्मभूएहिंतो उववज्जंति, नो अकम्मभूमएहिंतो उववज्जंति, नो अंतरदीवएहिंतो।

[६४५-३ प्र.] भगवन्! यदि (वे) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्मभूमिज मनुष्यों से या अकर्मभूमिज मनुष्यों से अथवा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-३ उ.] गौतम! (वे) कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु न तो अकर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं और न अन्तर्द्वीपज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं।

[४] जित कम्मभूमएहिंतो उववञ्जंति किं संखेज्जवासाउएहिंतो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

[६४५-४ प्र.] भगवन्! यदि कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते है तो क्या संख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं अथवा असंख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-४ उ.] गौतम! (वे) संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं (किन्तु) असंख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से नहीं उत्पन्न होते।

[५] जित संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पञ्जत्तएहिंतो उववञ्जंति नो अपञ्जत्तएहिंतो उववञ्जंति।

[६४५-५ प्र.] (भगवन्)! यदि (तम: प्रभापृथ्वी के नैरियक) संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तकों से उत्पन्न होते हैं अथवा अपर्याप्तकों से उत्पन्न होते है ?

[६४५-५ उ.] गौतम! पर्याप्तकों से उत्पन्न होते है, अपर्याप्तकों से उत्पन्न नहीं होते।

[६] जित पञ्जत्तयसंखेञ्जवासाउयकम्मभूमएहिंतो उववञ्जंति किं इत्थीहिंतो उववञ्जंति ? पुरिसेहिंतो उववञ्जंति ? नपुंसएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! इत्थीहिंतो वि उववज्जंति, पुरिसेहिंतो वि उववज्जंति, नपुंसएहिंतो वि उववज्जंति।

[६४५-६ प्र.] (भगवन्) यदि वे पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या स्त्रियों से उत्पन्न होते हैं ? या पुरुषों से उत्पन्न होते हैं ? अथवा नपुंसकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-६ उ.] गौतम (वे) स्त्रियों से उत्पन्न होते हैं,पुरुषों से भी उत्पन्न होते हैं और नपुंसकों से भी उत्पन्न होते हैं।

६४६. अधेसत्तमापुढिवनेरइया णंंभंते! कतोहिंतो उववज्जंति ? गोयमा! एवं चेव। नवरं इत्थीहिंतो [वि] पडिसेधो कातव्वो।

[६४६ प्र.] भगवन्! अधः सप्तमी (तमस्तमा) पृथ्वी के नैरियक कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

[६४६ उ.] गौतम इनकी उत्पत्ति-सम्बन्धी प्ररूपणा इसी प्रकार (छठी तम:पृथ्वी के नैरियकों की उत्पत्ति के समान) समझनी चाहिए। विशेष यह है कि स्त्रियों से इनके उत्पन्न होने का निषेध करना चाहिए।

६४७. अस्सण्णी खलु पढमं, दोच्चं च सिरीसिवा, तुइयं पक्खी।

सीहा जंति चडित्थं, उरगा पुण पंचमीपुढविं॥ १८३॥

छिंदुं च इत्थियाओ, मच्छा मणुया य सत्तिमं पुढविं। एसो परमुववाओ बोधव्वो नरयपुढवीणं ॥१८४॥

[६४७. संग्रहगाथार्थ—] असंज्ञी निश्चय ही पहली (नरकभूमि) में, सरीसृप (रेंगकर चलने वाले सर्प आदि) दूसरी (नरकपृथ्वी) तक, पक्षी तीसरी (नरकपृथ्वी) तक, सिंह चौथी (नरक-पृथ्वी) तक, उरग पांचवीं पृथ्वी तक, स्त्रियाँ छठी (नरकभूमि) तक और मत्स्य एवं मनुष्य (पुरुष) सातवीं (नरक)

पृथ्वी तक उत्पन्न होते हैं। नरकपृथ्वियों में (पूर्वोक्त जीवों का) यह परम (उत्कृष्ट उपपात समझना चाहिए॥ १८३-१८४॥

६४८. असुरकुमारा णं भंते! कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुएहिंतो उववज्जंति, नो देवेहिंतो उववज्जंति। एवं जेहिंतो नेरइयाणं उववाओ तेहिंतो असुरकुमाराण वि भाणितव्यो। नवरं असंखेज्जवासाउय-अकम्मभूमग-अन्तरदीवगमणुस्सितिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति। सेसं तं चेव।

[६४८ प्र.] भगवन्! असुरकुमार कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

[६४८ उ.] गौतम! (वे) नैरियकों से उत्पन्न नहीं होते, (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, परन्तु देवों से उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार जिन-जिन से नारकों का उपपात कहा गया है, उन-उन से असुरकुमारों का भी उपपात कहना चाहिए। विशेषता यह है कि (ये) असंख्यातवर्ष की आयु वाले अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज मनुष्यों और तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं। शेष सब बातें वही (पूर्ववत्) समझनी चाहिए।

६४९. एवं जाव थणियकुमारा।

[६४९] इसी प्रकार यावत् स्तिनतकुमारों तक के उपपात के विषय में कहना चाहिए।

६५०.[१] पुढिवकाइया णं भंते! कओिहतो उववज्जंति ? किं नेरइएिहतो जाव देवेहितो उववज्जंति ?

गोयमा! नो नेरइएहिंतो उववर्जित, तिरिक्खजोणिएहिंतो मणुयजोणिएहिंतो देवेहिंतो वि उववर्जित!

[६५०-१ प्र.] भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नारकों से, तिर्यंचों से मनुष्यों से अथवा देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१ उ.] गौतम! (वे) नारकों से उत्पन्न नहीं होते (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों से, मनुष्ययोनिकों से तथा देवों से भी उत्पन्न होते हैं।

[२] जित तिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ? जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववञ्नंति।

[६५०-२ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों से (आकर) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-२ उ.] गौतम ! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च-

योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

[३] जित एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जीति कि पुढिविकाइएहिंतो जाव वणप्फइ-काइएहिंतो उववज्जीत?

गौयमा! पुढविकाइएहिंतो वि जाव वणप्फइकाइएहिंतो वि उववज्जीत।

[६५०-३ उ.] (भगवन् !) यदि एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से (वे)उत्पन्न होते हैं तो क्या पृथ्वीकायिकों से यावत् वनस्पतिकायिकों से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-३] गौतम! पृथ्वीकायिकों से भी यावत् वनस्पतिकायिकों से भी (आकार) उत्पन्न होते हैं।

[४] जाति पुढिवकाइएहिंतो उववञ्जंति किं सुहुमपुढिविकाइएहिंतो उववञ्जंति ? बादर-पुढिविकाइएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-४ प्र.] (भगवन्!) यदि पृथ्वीकायिकों से (आकर) उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं या बादर पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-४ उ.] गौतम! (वे उपर्युक्त) दोनों से उत्पन्न होते हैं।

[५] जित सुहुमपुढिवकाइएहिंतो उववज्जंति किं पञ्जत्तसुहुमपुढिवकाइएहिंतो उववज्जंति? अपञ्जत्तसुहुमपुढिविकाइएहिंतो उववञ्जंति ।

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-५ प्र.] (भगवन् !) यदि सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से (आकर वे) उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं अथवा अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-५] गौतम ! (वे उपर्युक्त) दोनों से ही (आकर) उत्पन्न होते हैं ।

[६] जित बादरपुढिविकाइएहिंतो उववज्जंति किं पञ्जत्तएहिंतो-अपञ्जत्तएहिंतो उववञ्जंति ? गोयमा! दोहिंतो वि उववञ्जंति।

[६५०-६ प्र.] (भगवन्!) यदि बादर पृथ्वीकायिकों से (आकर) वे उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-६ उ.] गौतम! (पूर्वीक्त) दोनों से ही (वे) उत्पन्न होते हैं।

[७] एवं जाव वणप्फितिकाइया चउक्कएणं भेदेणं उववाएयव्वा।

[६५०-७] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिकों तक चार-चार भेद करके उनके उपपात के विषय में कहना चाहिए।

[८] जित बेइंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पञ्जत्तयबेइंदिएहिंतो उववज्जंति ? अपञ्जत्तयबेइंदिएहिंतो उववञ्जंति?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-८] (भगवन् !) यदि द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से (आकार) वे (एकेन्द्रिय जीव) उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्त द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं?

[६५०-८ उ.] गौतम ! (वे उपर्युक्त) दोनों से भी उत्पन्न होते हैं।

[९] एवं तेइंदिय-चउरिंदिएहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-९] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से भी (वे) उत्पन्न होते हैं।

[१०] जित पंचेंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं जलयरपंचेंदियेहिंतो उववज्जंति ?

एवं जेहिंतो नेरइयाणं उववाओ भणितो तेहिंतो एतेसिं पि भाणितव्यो। नवरं पञ्जत्तग-अपञ्जत्तगेहिंतो वि उववञ्जंति, सेसं तं चेव।

[६५०-१० प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं(या अन्य स्थलचर आदि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं?)

[६५०-१०उ.] (गौतम!) एवं जिन-जिन से नैरियकों के उपपात के विषय में कहा है, उन-उन से इनका (पृथ्वीकायिकों से लेकर वनस्पतिकायिकों तक का) भी उपपात कह देना चाहिए। विशेष यह है कि पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों से भी उत्पन्न होते हैं। शेष (सब निरूपण) पूर्ववत् समझना चाहिए।

[११] जित मणुस्सेहितो उववज्जंति किं सम्मुच्छिममणूसेहितो उववज्जंति ? गब्भवक्रं-तियमणुसेहितो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-११ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-११ उ.] गौतम ! पृथ्वीकायिक दोनों (सम्मूर्च्छिम और गर्भज)से उत्पन्न होते हैं।

[१२] जित गब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववर्जित कि कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववर्जित ? अकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववर्जित ?

सेसं जहा नेरइयाणं (सु. ६३९ [४-२६])। नवरं अपञ्जत्तएहिंतो वि उववञ्जंति।

[६५०-१२ प्र.] (भगवन्!) यदि गर्भज मनुष्यों से (आकर) उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं अथवा अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१२ उ.] (गौतम!) शेष जो (कथन) नैरियकों के (उपपात के) सम्बन्ध में (सू. ६३९-४ से २६ तक में) कहा है, वही (पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रियों के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए।) विशेष यह है कि (ये) अपर्याप्तक (कर्मभूमिज गर्भज) मनुष्यों से भी उत्पन्न होते हैं।

[१३] जित देवेहिंतो उववज्जंति किं भवणवासि-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएहिंतो ?

छठा व्युत्क्रान्तिपद] [४९७

गोयमा! भवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव वेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-१३ प्र.] (भगवन्!) यदि देवों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१३ उ.] गौतम! भवनवासी देवों से भी उत्पन्न होते हैं, यावत् वैमानिक देवों से भी उत्पन्न होते हैं।

[१४] जित भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति किं असुरकु मारदेवेहिंतो जाव थिणयकुमारदेवेहिंतो उववज्जंति।

गोयमा! असुरकुमारदेवेहिंतो वि जाव थणियकुमारदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-१४ प्र.] (भगवन्!) यदि (ये) भवनवासी देवों से उत्पन्न होते हैं तो असुरकुमार से लेकर स्तिनतकुमार तक (दस प्रकार के भवनवासी देवों में से) किनसे उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१४ उ.] गौतम! (ये) असुरकुमार देवों से यावत् स्तनितकुमार देवों तक से भी (दस ही प्रकार के भवनवासी देवों से) उत्पन्न होते हैं।

[१५] जित वाणमंतरेहिंतो उववज्जंति किं पिसाएहिंतो जाव गंधव्वेहिंतो उववज्जंति ? गोयमा! पिसाएहिंतो वि जाव गंधव्वेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-१५ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) वाणव्यन्तर देवों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पिशाचों से यावत् गन्धर्वों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१५ उ.] गौतम! (वे) पिशाचों से यावत् गन्धर्वों (तक के सभी प्रकार के वाणव्यन्तर देवों) से उत्पन्न होते हैं।

[१६] जइ जोइसियदेवेहिंतो उववञ्जंति किं चंदिवमाणेहिंतो जाव ताराविमाणेहिंतो उववञ्जंति ? गोयमा! चंदिवमाणजोइसियदेवेहिंतो वि जाव ताराविमाणजोइसियदेवेहिंतो वि उववञ्जंति।

[६५०-१६ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) ज्योतिष्क देवों से उत्पन्न होते हैं तो क्या चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवों से उत्पन्न होते हैं अथवा यावत् ताराविमान के ज्योतिष्क देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१६ उ.] गौतम! चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवों से भी उत्पन्न होते हैं तथा यावत् ताराविमान के ज्योतिष्कदेवों से भी उत्पन्न होते हैं।

[१७] जित वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति किं कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ? कप्पातीतगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति, नो कप्पातीयवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति।

[६५०-१७ प्र.] (भगवन्!) यदि वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं तो क्या कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं या कल्पातीत वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं ? [६५०-१७ उ.] गौतम! (वे) कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) कल्पातीत वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते।

[१८] जित कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववञ्जंति किं सोहम्मेहिंतो जाव अच्चुएहिंतो उववञ्जंति।

गोयमा! सोहम्मीसाणेहिंतो उववञ्जंति, नो सणंकुमार जाव अच्चुएहिंतो उववञ्जंति।

[६५०-१८ प्र.] (भगवन्!) यदि कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे (पृथ्वीकायिक) सौधर्म (कल्प के देवों) से यावत् अच्युत(कल्प तक के) देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१८ उ.] गौतम!(वे) सौधर्म और ईशान कल्प के देवों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु सनत्कुमार से लेकर अच्युत कल्प तक के देवों से उत्पन्न नहीं होते।

६५१. एवं आउक्काइया वि।

[६५१] इसी प्रकार अप्कायिकों की उत्पत्ति के विषय में भी कहना चाहिए।

६५२. एवं तेउ-वाऊ वि। नवरं देववज्जेहिंतो उववज्जंति।

[६५२] इसी प्रकार तेजस्कायिकों एवं वायुकायिकों की उत्पत्ति के विषय में समझना चाहिए। विशेष यह है कि (ये दोनों) देवों को छोड़कर (दूसरों-नारकों, तिर्यञ्चों तथा मनुष्यों-से) उत्पन्न होते हैं।

६५३. वणस्सइकाइया जहा पुढविकाइया।

[६५३] वनस्पतिकायिकों की उत्पत्ति के विषय में कथन, पृथ्वीकायिकों के उत्पत्ति-विषयक कथन की तरह समझना चाहिए।

६५४. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरेंदिया एते जहा तेउ-वाऊ देववज्जेहिंतो भाणितव्वा।

[६५४] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति तेजस्कायिकों और वायुकायिकों की उत्पत्ति के समान समझनी चाहिए। देवों को छोड़ कर (अन्य-नारकों, तिर्यञ्चों तथा मनुष्यों से) इनकी उत्पत्ति कहनी चाहिए।

६५५. [१] पंचेंदियितिरिक्खजोणिया णं भंते! कतोहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति ? जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! नेरइएहिंतो वि तिरिक्खजोणिएहिंतो वि मणूसेहिंतो वि देवेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५५-१ प्र.] भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते हैं? क्या वे नारकों से उत्पन्न होते हैं, यावत् देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५५-१ उ.] गौतम! (वे) नैरियकों से भी उत्पन्न होते हैं, तिर्यञ्चयोनिकों से भी, मनुष्यों से भी और देवों से भी उत्पन्न होते हैं। [२] जित नेरइएहिंतो उववज्जंति किं रयणप्यभापुढिविनेरइएहिंतो उववज्जंति ? जाव अहेसत्तमापुढिविनेरइएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो वि जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो वि उववज्जंति।

[६५५-२ प्र.] (भगवन्!) यदि नैरियकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नैरियकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा यावत् अधःसप्तमी (तमस्तमा) पृथ्वी (तक) के नैरियकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५५-२ उ.] गौतम! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से भी उत्पन्न होते हैं, यावत् अध:सप्तमी पृथ्वी के नैरयिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

[३] जित तिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति किं एगिंदिएहिंतो उववञ्जंति ? जाव पंचेंदिएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! एगिंदिएहिंतो जाव पंचेंदिएहिंतो वि उववज्जंति।

[६५५-३ प्र.] (भगवन्!) यदि तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं , (या) यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५५-३ उ.] गौतम! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चों से भी यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से भी उत्पन्न होते हैं।

[४] जित एगिंदिएहिंतो उववञ्जंति किं पुढिवकाइएहिंतो उववञ्जंति ?

एवं जहा पुढिवकाइयाणं उववाओ भिणतो तहेव एएसिं पि भाणितव्वो। नवरं देवेहिंतो जाव सहस्सारकप्योवगवेमाणियदेवेहिंतो वि उववञ्जंति, नो आणयकप्योवगवेमाणियदेवेहिंतो जाव अच्चुएहिंतो वि उववञ्जंति।

[६५५-४ प्र.] भगवन्! यदि (वे) एकेन्द्रियों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं या यावत् वनस्पतिकायिकों (तक) से उत्पन्न होते हैं ?

[६५५-४ उ.] गौतम! इसी प्रकार जैसे पृथ्वीकायिकों का उपपात कहा है, वैसे ही इनका (पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों का) भी उपपात कहना चाहिए। विशेष यह है कि देवों से-यावत् सहस्रारकल्पोपपन्न वैमानिक देवों तक से भी उत्पन्न होते हैं, किन्तु आनतकल्पोपपन्न वैमानिक देवों से लेकर अच्युतकल्पोपपन्न वैमानिक देवों तक से (वे) उत्पन्न नहीं होते।

६५६. [१] मणुस्सा णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जंति ? गोयमा! नेरइएहिंतो वि उववज्जंति जाव देवेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५६-१ प्र.] भगवन्! मनुष्य कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरियकों से उत्पन्न होते हैं, यावत् देवों से उत्पन्न होते हैं? [६५६-१ उ.] गौतम! (वे) नैरियकों से उत्पन्न होते हैं और यावत् देवों से भी उत्पन्न होते हैं। [२] जित नेरइएहिंतो उववज्जंति किं रयणप्यभापुढिवनेरइएहिंतो जाव अहेसत्तमापुढिवनेरएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! रतणप्यभापुढिविनेरइएहिंतो वि जाव तमापुढिविनेरइएहिंतो वि उववर्जिति, नो अहेसत्तमापुढिविनेरइएहिंतो उववर्जिति।

[६५६-२ प्र.] (भगवन्!) यदि नैरियकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नैरियकों से उत्पन्न होते हैं, यावत् अधःसप्तमी (तमस्तमा) पृथ्वी के नैरियकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५६-२ उ.] गौतम! (वे) रत्नप्रभापृथ्वी के नैरियकों से लेकर यावत् तम:प्रभापृथ्वी तक के नैरियकों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अध:सप्तमीपृथ्वी के नैरियकों से उत्पन्न नहीं होते।

[३] जित तिरिक्खजोणिएहिंतो उववर्जित किं एगिंदियितिरिक्खजोणिएहिंतो उववर्जित ? एवं जेहिंतो पंचेंदियितिरिक्खजोणियाणं उववाओ भिणतो तेहिंतो मणुस्साण वि णिरवसेसो भाणितव्वो। नवरं अधेसत्तमापुढविनेरइय-तेउ-वाउकाइएहिंतो ण उववर्जित। सव्वदेवेहिंतो वि उववर्जिवेख्या जाव कप्पातीतगवेमाणिय-सव्वद्वसिद्धदेवेहिंतो वि उववर्जीवेयव्वा।

[६५६-३ प्र.] (भगवन्!) यदि मनुष्य तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (या यावत् पंचेन्द्रिय तक के तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?)

[६५६-३ उ.] (गौतम!) जिन-जिनसे पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों का उपपात (उत्पत्ति) कहा गया है, उन-उनसे मनुष्यों का भी समग्र उपपात उसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह है कि (मनुष्य) अधः सप्तमीनरकपृथ्वी के नैरियकों, तेजस्कायिकों और वायुकायिकों से उत्पन्न नहीं होते। (दूसरी विशेषता यह है कि मनुष्य का) उपपात सर्व देवों से कहना चाहिए, यावत् कल्पातीत वैमानिक देवों-सर्वार्थसिद्धविमान तक के देवों से भी (मनुष्यों की) उत्पत्ति समझनी चाहिए।

६५७. वाणमंतरदेवा णं भंते! कओिहतो उववञ्जंति ? किं नेरइएिहतो जाव देवेहितो उववञ्जंति ? गोयमा! जेहितो असुरकुमारा ।

[६५७ प्र.] भगवन्! वाणव्यन्तर देव कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६५७ उ.] गौतम! जिन-जिनसे असुरकुमारों की उत्पत्ति कही है, उन-उनसे वाणव्यन्तर देवों की उत्पत्ति कहनी चाहिए।

६५८. जोइसियदेवा णं भंते! कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! एवं चेव। नवरं सम्मुच्छिम असंखेज्जवासाउयखहयर-अंतरदीवमणुस्सवज्जेहिंतो उववज्जावेयव्वा।

[६५८ प्र.] भगवन्! ज्योतिष्क देव किन (कहाँ) से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६५८ उ.] गौतम! इसी प्रकार (ज्योतिष्क देवों का उपपात भी पूर्ववत् असुरकुमारों के उपपात के समान ही) समझना चाहिए। विशेषता यह है कि ज्योतिष्कों की उत्पत्ति सम्मूर्च्छिम असंख्यातवर्षायुष्क- खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों को तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों को छोड़कर कहनी चाहिए। अर्थात् इनसे निकल कर कोई सीधा ज्योतिष्क देव नहीं होता।

६५९. वेमाणिया णं भंते! कतोहिंतो उववञ्जंति ? किं णेरइएहिंतो, तिरिक्खजोणिएहिंतो, मणुस्सेहिंतो, देवेहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! णो णोरइएहिंतो उववज्जंति, पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, णो देवेहिंतो उववज्जंति।

एवं चेव वेमाणिया वि सोहम्मीसाणगा भाणितव्वा।

[६५९ प्र.] भगवन्! वैमानिक देव किनसे उत्पन्न होते हैं? क्या (वे) नैरियकों से या तिर्यञ्चयोनिकों से अथवा मनुष्यों से या देवों से उत्पन्न होते हैं?

[६५९ उ.] गौतम! (वे) नारकों से उत्पन्न नहीं होते, (किन्तु) पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से तथा ं मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं। देवों से उत्पन्न नहीं होते।

इसी प्रकार सौधर्म और ईशान कल्प के वैमानिक देवों (की उत्पत्ति के विषय में) कहना चाहिए।

६६०. एवं सणंकुमारगा वि। णवरं असंखेज्जवासाउयअकम्मभूमगवज्जेहिंतो उववज्जंति।

[६६०] सनत्कुमार देवों के उपपात के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह है कि ये असंख्यातवर्षायुष्क अकर्मभूमिकों को छोड़कर (पूर्वोक्त सबसे) उत्पन्न होते हैं।

६६१. एवं जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेवा भाणितव्वा।

[६६१.] सहस्रारकल्प तक (अर्थात् माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र और सहस्रार कल्प) के देवों का उपपात भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

६६२. [१] आणयदेवा णं भंते! कतोहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! नो नेरइएहिंतो उववञ्जंति, नो तिरिक्खजोणिएहिंतो उववञ्जंति मणुस्सेहिंतो उववञ्जंति, नो देवेहिंतो।

[६६२-१ प्र.] भगवन्! आनत देव कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिकों से (अथवा) यावत् देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-१ उ.] गौतम! (वे) नैरियकों से उत्पन्न नहीं होते, तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न नहीं होते, (किन्तु) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं। देवों से (उत्पन्न) नहीं (होते)।

[२] जित मणुस्सेहितो उववज्जंति किं सम्मुच्छिममणुस्सेहितो गब्भवक्कंतियमणुस्सेहितो उववज्जंति ?

गोयमा! गब्भवक्कंतियमृणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो।

[६६२-२ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं।

[६६२-२ उ.] गौतम! (वे आणत देव) गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु संमूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते ।

[३] जित गब्भवक्कंतियमणुस्सेहितो उववर्जित किं कम्मभूमगेहितो उववर्जित ? अकम्मभूमगेहितो उववर्जित ? अंतरदीवगेहितो उववर्जित ?

गोयमा! कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति, नो अकम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति, नो अंतरदीवगेहिंतो।

[६६२-३ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा)अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा)अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-३ उ.] गौतम! (वे) कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु न तो अकर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं और न अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं।

[४] जई कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहितो उववज्जंति किं संखेज्जवासाउएहितो उववज्जंति ? असंखेज्जवासाउएहितो उववज्जंति ?

गोयमा! संखेज्जवासाउएहिंतो, नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

[६६२-४ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या संख्यातवर्ष की आयु वाले कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, या असंख्यातवर्ष की आयु वाले कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-४ उ.] गौतम! (वे) संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु असंख्यातवर्ष की आयु वाले कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते।

[५] जित संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो, अपञ्जत्तएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! पञ्जत्तगसंखेञ्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववञ्जंति णो अपञ्जत्तएहिंतो।

[६६२-५ प्र.] (भगवन्!) यदि संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से (वे आनत देव) उत्पन्न होते हैं तो क्या वे पर्याप्तकों से या अपर्याप्तकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-५ उ.] गौतम! (वे) पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते

हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते।

[६] जित पञ्जत्तगसंखेञ्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववञ्जंति किं सम्मिद्दिद्विपञ्जत्तगसंखेञ्जवासाउयकम्मभूमगेहिंतो उववञ्जंति ? मिच्छिद्दिद्विपञ्जत्तगसंखेञ्जवासाउए हिंतो उववञ्जंति ? सम्मामिच्छाद्दिद्विपञ्जत्तगसंखेञ्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! सम्मदिद्विपञ्जत्तगसंखेञ्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो वि उववञ्जंति, मिच्छदिद्विपञ्जत्तगेहिंतो वि उववञ्जंति, णो सम्मामिच्छदिद्विपञ्जत्तगेहिंतो उववञ्जंति।

[६६२-६ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ? (या) मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-६ उ.] गौतम! सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से भी (वे) उत्पन्न होते हैं, मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से भी उत्पन्न होते हैं; किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते।

[७] जित सम्मिद्दिष्टिपञ्जत्तगसंखेञ्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववञ्जंनि किंफसंजतसम्मिद्दिष्टीरिंतो? असंजतसम्मिद्दिष्टिपञ्जत्तएहिंतो? संजयासंजयसम्मिद्दिष्टिपञ्जत्तगसंखेञ्ज-वासाउएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! तीहिंतो वि उववज्जंति।

[६६२-७ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) संयत सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक- संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुश्यों से उत्पन्न होते हैं या असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं अथवा संयतासंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-७ उ.] गौतम! (वे आनत देव) (उपर्युक्त) तीनों से ही (संयतसम्यग्दृष्टियों से, असंयतसम्यग्दृष्टियों से तथा संयतासंयतसम्यग्दृष्टियों से) उत्पन्न होते हैं।

६६३. एवं जाव अच्चुओ कप्पो।

[६६३] अच्युतकल्प के देवों तक (के उपपात के विषय में) इसी प्रकार कहना चाहिए।

६६४. एवं गेवेञ्जगदेवा वि। णवरं असंजत-संजतासंजतेहिंतो एते पडिसेहेयव्वा।

[६६४] इसी प्रकार (नौ) ग्रैवेयकदेवों के उपपात के विषय में भी समझना चाहिए। विशेषता यह

है कि असंयतों और संयतासंयतों से इनकी (ग्रैवेयकों की) उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए।

६६५. [१] एवं जहेव गेवेज्जगदेवा तहेव अणुत्तरोववाइया वि। णवरं इमं णाणत्तं-संजया चेव।

[६६५-१] इसी प्रकार जैसी (वक्तव्यता) ग्रैवेयक देवों की उत्पत्ति के विषय में कही, वैसी ही उत्पत्ति (-वक्तव्यता) पांच अनुत्तर विमानों के देवों की समझनी चाहिए। विशेष यह है कि संयत ही अनुत्तरौपपातिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

[२] जित संजतसम्मिद्दिष्ठिपञ्जत्तसंखेञ्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववञ्जंति किं पमत्तसंजतसम्मिद्दिष्ठपञ्जत्तएहिंतो ? अपमत्तसंजतएहिंतो उववञ्जंति ?

गोयमा! अपमत्तसंजएहिंतो उववज्जंति, नो पमत्तसंजएहिंतो उववज्जंति।

[६६५-२] (भगवन्!) यदि (वे) संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे अप्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या अप्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६५-२ उ.] गौतम! (पूर्वोक्त तथारूप) अप्रमत्तसंयतों से (वे) उत्पन्न होते हैं, किन्तु (तथारूप) प्रमत्तसंयतों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

[३] जित अपमत्तसंजएहिंतो उववज्जंति किं इड्डिपत्तअपमत्तसंजएहिंतो उववज्जंति ? अणिड्डिपत्तअपमत्तसंजतेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति॥ दारं ५॥

[६६५-३ प्र.] (भगवन्!) यदि वे (अनुत्तरौपपातिक देव)(पूर्वोक्त विशेषणयुक्त) अप्रमत्तसंयतों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या ऋद्धिप्राप्त - अप्रमत्तसंयतों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) अनृद्धिप्राप्त अप्रमत्तसंयतों से (वे)उत्पन्न होते हैं।

[६६५-३] गौतम ! (वे) उपर्युक्त दोनों (ऋद्धिप्राप्त-अप्रमत्तसंयतों तथा अनृद्धिाप्राप्त अप्रमत्तसंयतों) से भी उत्पन्न होते हैं। दार ५।

विवेचन—पंचम कुतोद्वार: नारकादि चारों गितयों के जीवों की पूर्वभवों (आगित) से उत्पत्ति की प्ररूपणा—प्रस्तुत सत्ताईस सूत्रों में कुत: (कहाँ से या किन-किन भावों से) द्वार के माध्यम से जीवों की उत्पत्ति के विषय में विस्तृत प्ररूपणा की गई है।

किनकी उत्पत्ति, किन-किनसे ? का क्रम-इस द्वार का क्रम इस प्रकार है-१. सामान्य नारकों की उत्पत्ति किन-किनसे ?, २. रत्नप्रभादि पृथ्वियों के नारकों की उत्पत्ति, ३. असुरकुमारादि भवनवासी देवों की उत्पत्ति, ४. पृथ्वीकायिकादि पंचविध एकेन्द्रियों की उत्पत्ति, ५. त्रिविध विकलेन्द्रियों

की उत्पत्ति, ६. पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकों की उत्पत्ति, ७. मनुष्यों की उत्पत्ति, ८. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की उत्पत्ति।

निष्कर्ष-सामान्य नैरियकों और रत्नप्रभा के नैरियकों में देव, नारक, पृथ्वीकायिकादि पांच एकेन्द्रिय स्थावर, त्रिविध विकलेन्द्रिय तथा असंख्यातवर्षायुष्क चतुष्पद खेचरों तथा शेष पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में भी अपर्याप्तकों एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यों तथा गर्भजों में अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज मनुष्यों तथा कर्मभूमिजों में जो भी असंख्यातवर्षायुष्कों तथा संख्यातवर्षायुष्कों में भी अपर्याप्तक मनुष्यों से उत्पन्न होने का निषेध किया है, शेष से उत्पत्ति का विधान है। शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरियकों में सम्मूर्च्छिमों से, वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरियकों में भुजपिरसर्पों से, पंकप्रभा के नैरियकों में खेचरों से, धूमप्रभा-नैरियकों में चतुष्पदों से, तमःप्रभा-नैरियकों में उरःपरिसर्पों से तथा तमस्तमापृथ्वी के नैरियकों में स्त्रियों से (आकर) उत्पन्न होने का निषेध है। भवनवासियों में देव, नारक, पृथ्वीकायिकादि पांच, त्रिविध विकलेन्द्रिय, अपर्याप्त तिर्यक्पंचेन्द्रियों तथा सम्मूर्च्छिम एवं अपर्याप्तक गर्भज मनुष्यों से उत्पत्ति का निषेध है, शेष का विधान है। पृथ्वी-जल-वनस्पतिकायिकों में सर्वनैरयिक तथा सनत्कुमारादि देवों से एवं तेजो-वायु-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियों में सर्व नारकों, सभी देवों से उत्पत्ति का। तिर्यक् पंचेन्द्रियों में आनतादि देवों से उत्पत्ति का निषेध है। मनुष्यों में सप्तमनरकपृथ्वी के नारकों तथा तेजोवायुकायिकों से उत्पत्ति का निषेध है। व्यन्तरदेवों में देव, नारक, पृथ्वी आदि पंचक, विकलेन्द्रियत्रिक, अपर्याप्त तिर्यच पंचेन्द्रिय तथा सम्मूर्च्छिम एवं अपर्याप्त गर्भज मनुष्यों से उत्पत्ति का निषेध है। ज्योतिष्कदेवों में सम्मूर्च्छिम तिर्यक् पंचेन्द्रिय, असंख्यातवर्षायुष्क खेचर तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों से उत्पत्ति का निषेध है। सौधर्म और ईशानकल्प के देवों में तथा सनत्कुमार से सहास्रारकल्प तक के देवों में अकर्मभूमिक मनुष्यों से भी उत्पत्ति का, आनत आदि में तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों से, नौ ग्रैवेयकों में असंयतों तथा संयतासंयतों एवं विजयादि पंच अनुत्तरौपपातिकों में मिथ्यांदृष्टि मनुष्यों तथा प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों से उत्पत्ति का निषेध है। १

'कुतोद्वार' की प्ररूपणा का उद्देश्य-कौन-कौन जीव कहाँ से, अर्थात्-किन-किन भवों से उद्वर्तना (मृत्यु प्राप्त) करके नारकादि पर्यायों में (आकर) उत्पन्न होते हैं? यही प्रतिपादन करना कुतोद्वार का उद्देश्य और विशेष अर्थ है। र

छठा उद्वर्तनाद्वार : चातुर्गतिक जीवों के उद्वर्तनानन्तर गमन एवं उत्पाद की प्ररूपणा

६६६. [१] नेरइया णं भंते! अणंतरं उववट्टित्ता किंहं गच्छंति ? किंहं उववज्जंति ? किं नेरइएसु उववज्जंति ? तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति ? मणुस्सेसु उववज्जंति ? देवेसु उववज्जंति ?

गोयमा! णो नेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति, नो देवेसु उववज्जंति।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २१४

२. प्रज्ञापना, प्रमेयबोधिनीटीका भा. २, पृ. १००७

[६६६-१ प्र.] भगवन्! नैरियक जीव अनन्तर (साक्षात् या सीधा) उद्वर्तन करके (निकलकर) कहाँ जाते हैं ? कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरियकों में उत्पन्न होते हैं अथवा तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं ? मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं या देवों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६६-१ उ.] गौतम! (नैरियक जीव अनन्तर उद्वर्त्तन करके) नैरियकों में उत्पन्न नहीं होते (िकन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं या मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं; (िकन्तु) देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

[२] जित तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति किं एगिंदिय जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति ?

गोयमा! नो एगिंदिएसु जाव नो चउरिंदिएसु उववज्जंति, पंचिंदिएसु उववज्जंति।

[६६६-२ प्र.](भगवन्!) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होते हैं , (अथवा) यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६६-२ उ.] गौतम!(वे) न तो एकेन्द्रियों में और न ही द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं।

[३] एवं जेहिंतो उववाओ भणितो तेसु उव्वट्टणा वि भाणितव्वा। णवरं सम्मुच्छिमेसु णो उववर्जित।

[६६६-३] इस प्रकार जिन-जिनसे उपपात कहा गया है, उन-उनमें ही उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए। विशेष यह है कि वे सम्मूर्च्छिमों में उत्पन्न नहीं होते।

६६७. एवं सव्वपुढवीसु भाणितव्वं। नवरं अहेसत्तमाओ मणुस्सेसु णो उववज्जंति।

[६६७.] इसी प्रकार समस्त (नरक-) पृथ्वियों में उद्वर्त्तना का कथन करना चाहिए। विशेष बात यह है कि सातवीं नरकपृथ्वी से मनुष्यों में नहीं उत्पन्न होते।

६६८. [१] असुरकुमारा णं भंते! अणंतरं उव्वट्टिता किंह गच्छंति ? किंह उववज्जंति ? किं नेरइएसु उववज्जंति ? जाव देवेसु उववज्जंति ?

गोयमा! णो नेरइएसु उववञ्जंति, तिरिक्खजोणिएसु उववञ्जंति, मणुस्सेसु उववञ्जंति, नो देवेसु उववञ्जंति।

[६६८-१ प्र.] भगवन्! असुरकुमार साक्षात् (अनन्तर) उद्वर्त्तना करके कहाँ जाते हैं? कहाँ उत्पन्न होते हैं? क्या (वे) नैरियकों में उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) यावत् देवों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-१ उ.] गौतम! (वे) नैरियकों में उत्पन्न नहीं होते, (िकन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं किन्तु देवों में उत्पन्न नहीं होते।

[२] जइ तिरिक्खजोणिएसु उववर्जित किं एगिंदिएसु जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववर्जित ?

गोयमा! एगिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, नो बेइंदिएसु जाव नो चउरिंदिएसु उववज्जंति, पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति।

[६६८-२ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या वे एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, यावत् पंचेन्द्रियो तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-२ उ.] गौतम! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं, किन्तु द्वीन्द्रियों में त्रीन्द्रियों में और चतुरिन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते, (वे) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं।

[३] जित एगिंदिएसु उववज्जंति किं पुढिविकाइयएगिंदिएसु जाव वणस्सइकाइयएगिंदिएसु उववज्जंति ?

गोयमा! पुढिवकाइयएगिंदिएसु वि आउकाइयएगिंदिएसु वि उववज्जंति, नो तेउकाइएसु नो वाउकाइएसु उववज्जंति, वणस्सइकाइएसु उववज्जंति।

[६६८-३ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं तो क्या पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियों में यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-३ उ.] गौतम! (वे) पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं, अप्कायिक एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं, किन्तु न तो तेजस्कायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं और न वायुकायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं।

[४] जित पुढिवकाइएसु उववञ्जंति किं सुहुमपुढिवकाइएसु उववञ्जंति? बादरपुढिविकाइएसु उववञ्जंति ?

गोयमा! बादरपुढविकाइएसु उववज्जंति, नो सुहुमपुढविकाइएसु।

[६६८-४ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं, या बादरपृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-४ उ.] गौतम! (वे) बादरपृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

[५] जइ बादर पुढिवकाइएसु उववञ्जंति कि पञ्जत्तगबादरपुढिविकाइएसु उववञ्जंति? अपञ्जत्तगबादरपुढिविकाइएसु उववञ्जंति ?

गोयमा! पञ्जत्तएसु उववञ्जंति, नो अपञ्जत्तएसु ।

[६६८-५ प्र.] भगवन्! यदि बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-५ उ.] गौतम! (वे) पर्याप्तकों में उत्पन्न होते हैं, किन्तु अपर्याप्तकों में उत्पन्न नहीं होते।

१. ग्रन्थाग्रम ३५००

[६] एवं आउ-वणस्सतीसु वि भाणितव्वं।

[६६८-६] इसी प्रकार अप्कायिकों और वनस्पतिकायिकों में (उत्पत्ति के विषय में) भी कहना चाहिए।

[७] पंचेंदियतिरिक्खजोणिय-मणूसेसूय जहा नेरइयाणं उव्वट्टणा सम्मुच्छिमवज्जा तहा भाणितव्वा।

[६६८-७] पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों में (असुरकुमारों की उत्पत्ति के विषय में) उसी प्रकार कहना चाहिए, जिस प्रकार सम्मूर्च्छिम को छोड़कर नैरियकों की उद्वर्त्तना कही है।

[८] एवं जाव थणियकुमारा।

[६६८-८] इसी प्रकार (असुरकुमारों की तरह) स्तनितकुमारों तक की उद्वर्त्तना समझ लेनी चाहिए।

६६९. [१] पुढिविकाइया णं भंते! अणंतरं उव्विट्टित्ता किहं गच्छंति ? किहं उववज्जेंति ? किं नेरइएसु जाव देवेसु ?

गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिय-मणूसेसु उववज्जंति, नो देवेसु ।

[६६९-१ प्र.] भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव सीधे निकल कर (अनन्तर उद्वर्तन करके) कहाँ जाते हैं? कहाँ उत्पन्न होते हैं? क्या वे नारकों में यावत् देवों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६९-१ उ.] गौतम! (वे) नैरियकों में उत्पन्न नहीं होते, (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

[२] एवं जहा एतेसिं चेव उववाओ तहा उव्वट्टणा वि^१ भाणितव्वा ।

[६६९-२] इसी प्रकार जैसा इनका उपपात कहा है, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी (देवों को छोड़कर) कहनी चाहिए।

६७०. एवं आउ-वणस्सइ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरेंदिया वि ।

[६७०] इसी प्रकार अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियों (की भी उद्वर्तना कहनी चाहिए।)

६७१. एवं तेऊ वाऊ वि। णवरं मणुस्सवज्जेसु उववज्जंति ।

[६७१] इसी प्रकार तेजस्कायिक और वायुकायिक की भी, उद्वर्त्तना कहनी चाहिए। विशेष यह है कि (वे) मनुष्यों को छोड़कर उत्पन्न होते हैं।

६७२. [१] पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता किंहं गच्छंति किंहं उववज्जंति ? किं नेरइएसु जाव देवेसु ?

१. पाठान्तर 'देव-वज्जा' यह अधिक पाठ किसी-किसी प्रति में है।

गोयमा! नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति।

[६७२-१ प्र.] भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक अनन्तर उद्वर्त्तना करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं? क्या (वे) नैरियकों में उत्पन्न होते हैं, (अथबा) यावत् देवों में उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-१ उ.] गौतम! (वे) नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, यावत् देवों में भी उत्पन्न होते हैं।

[२] जिंद णेरइएसु उववञ्जंति किं रयणप्यभापुढिवनेरइएसु उववञ्जंति जाव अहेसत्तमापुढिवनेरइएसु उववञ्जंति ?

गोरामा! रयणप्पभापुढविनेरइएसु वि उववज्जंति जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएसु वि उववज्जंति।

[६७२-२ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं अथवा यावत् अध:सप्तमीपृथ्वी के नैरयिकों में (से किन्हीं में) उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-२ उ.] गौतम! (वे) रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में भी उत्पन्न होते हैं, यावत् अध:सप्तमीपृथ्वी के नैरयिकों में भी उत्पन्न होते हैं ।

[३] जइ तिरिक्खजोणिएसु उववञ्जंति किं एगिंदिएसु जाव पंचिंदिएसु ? गोयमा! एगिंदिएसु वि उववञ्जंति जाव पंचेंदिएसु वि उववञ्जंति।

[६७२-३ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रियों में यावत् पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-३ उ.] गौतमं! (वे) एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं, यावत् पंचेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं।

[४] एवं जहा एतेसिं चेव उववाओ उव्बट्टणा वि तहेव भाणितव्वा। नवरं असंखेज्जवासाउएसु वि एते उववज्जंति ।

[६७२-४] यों जैसा इनका उपपात कहा है, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि वे असंख्यातवर्षों की आयु वालों में भी उत्पन्न होते हैं।

[५] जित मणुस्सेसु उववञ्जंति किं सम्मुच्छिममणुस्सेसु उववञ्जंति गब्भवक्कंतियमणूसेसु उववञ्जंति ?

गोयमा! दोसु वि उववज्जंति ।

[६७२-५ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं अथवा गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-५ उ.] गौतम! (वे) दोनों में ही उत्पन्न होते हैं।

[६] एवं जहा उववाओ तहेव उव्वट्टणा वि भाणितव्वा। नवरं अकम्मभूमग-अंतरदीवग-असंखेज्जवासाउएस् वि एते उववज्जंति त्ति भाणितव्वं।

[६७२-६] इसी प्रकार जैसा इनका उपपात कहा, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए।

विशेषतया अकर्मभूमिज, अन्तर्द्वीपज और असंख्यात वर्षायुष्क मनुष्यों में भी ये उत्पन्न होते हैं, यह कहना चाहिए।

[७] जित देवेसु उववज्जंति किं भवणवतीसु उववज्जंति ? जाव किं वेमाणिएसु उववज्जंति ? गोयमा! सब्वेसु चेव उववज्जंति।

[६७२-७ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) द्रेवों में उत्पन्न होते हैं तो क्या भवनपति देवों में उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) यावत् वैमानिक में भी उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-७ उ.] गौतम! (वे) सभी (प्रकार के) देवों में उत्पन्न होते हैं।

[८] जित भवणवतीसु उववञ्जंति किं असुरकुमारेसु उववञ्जंति ? जाव थिणियकुमारेसु उववञ्जंति ?

गोयमा! सव्वेसु चेव उववज्जंति।

[६७२-८ प्र.] (भगवन्!) यदि (वे) भवनपित देवों में उत्पन्न होते हैं तो क्या असुरकुमारों में उत्पन्न होते हैं? (अथवा) यावत् स्तिनत्कुमारों में उत्पन्न होते हैं?

[६७२-८ उ.] गौतम! (वे) सभी (भवनपतियों) में उत्पन्न होते हैं।

[९] एवं वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु निरंतरं उववञ्जंति जाव सहस्सारो कप्पो त्ति।

[६७२-९] इसी प्रकार वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और सहस्नारकल्प तक के वैमानिक देवों में निरन्तर उत्पन्न होते हैं।

६७३. [१] मणुस्सा णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता किंहं गच्छंति ? किंहं उववज्जंति ? किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति ?

गोयमा! नेरइएसु वि उववज्जंति जाव देवेसु वि उववज्जंति ।

[६७३-१ प्र.] (भगवन्!) मनुष्य अनन्तर उद्वर्त्तन करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरियकों में उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) यावत् देवों में भी उत्पन्न होते हैं ?

[६७३-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरियकों में भी उत्पन्न होते हैं, यावत् देवों में भी उत्पन्न होते हैं।

[२] एवं निरंतरं सव्वेसु ठाणेसु पुच्छा।

गोयमा! सळेसु ठाणेसु उववज्जंति, णं किहंचि पिडसेहो कायळो जाव सळ्वट्टसिद्धदेवेसु वि उववज्जंति, अत्थेगतिया सिज्झंति बुझंति मुच्चंति पिरिणिव्वायंति सळ्वदुक्खाणं अंतं करेंति।

[६७३-२ प्र.] भगवन्! क्या (मनुष्य) नैरियक आदि सभी स्थानों में उत्पन्न होते हैं ?

[६७३-२ उ.] गौतम! वे (इन) सभी स्थानों में उत्पन्न होते हैं, कहीं भी इनके उत्पन्न होने का निषेध नहीं करना चाहिए; यावत् सर्वार्थसिद्ध देवों तक में भी (मनुष्य) उत्पन्न होते हैं और कई मनुष्य छठा व्यक्तान्तिपद]

सिद्ध होते हैं, बुद्ध (केवलबोधप्राप्त) होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त करते हैं और सर्वदु:खों का अन्त करते हैं।

६७४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया सोहम्मीसाणा य जहा असुरकुमारा। नवरं जोइसियाणं वेमाणियाण य चयंतीति अभिलावो कातव्वो।

[६७४] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म एवं ईशान देवलोक के वैमानिक देवों की उद्वर्त्तन-प्ररूपणा असुरकुमारों के समान, समझनी चाहिए। विशेष यह है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए (उद्वर्त्तना करते हैं) के बदले 'च्यवन करते हैं', यों कहना चाहिए।

६७५. सणंकुमारदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहा असुरकुमारा। नवरं एगिंदिएसु ण उववज्जंति। एवं जाव सहस्सारगदेवा।

[६७५ प्र.] भगवन्! सनत्कुमार देव अनन्तर च्यवन करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं?

[६७५ उ.] इनकी (च्यवनानन्तर उत्पत्तिसम्बन्धी) वक्तव्यता असुरकुमारों के (उपपातसम्बन्धी वक्तव्य के) समान समझनी चाहिए। विशेष यह है कि (ये) एकेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार की वक्तव्यता सहस्रार देवों तक की कहनी चाहिए।

६७६. आणय जाव अणुत्तरोववाइया देवा एवं चेव। णवरं णो तिरिक्खजोणिएसु उववर्जित, मणूसेसु पञ्जत्तगसंखेञ्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेसु उववर्जित। दारं ६॥

[६७६] आनत देवों से लेकर अनुत्तरौपपातिक देवों तक (च्यवनानन्तर उत्पत्ति-सम्बन्धी) वक्तव्यता इसी प्रकार समझनी चाहिए। विशेष यह है कि (ये देव) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न नहीं होते, मनुष्यों में भी पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

-छठा उद्वर्तनाद्वार ॥६॥

विवेचन—छठा उद्वर्त्तनाद्वार : चातुर्गतिक जीवों के उद्वर्त्तनानन्तर गमन एवं उत्पाद की प्ररूपणा—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों (सू. ६६६ से ६७६ तक) में नैरियकों से लेकर देवों तक के उद्वर्तनानन्तर गमन एवं उपपात के सम्बन्ध में सूक्ष्म ऊहापोहपूर्वक प्ररूपणा की गई है।

उद्वर्त्तना की परिभाषा—नारकादि जीवों का अपने भव से निकलकर (मरकर या च्यवकर) सीधे (बीच में कहीं अन्तर-व्यवधान न करके) किसी भी अन्य गति या योनि में जाना और उत्पन्न होना उद्वर्त्तना कहलाता है।

निष्कर्ष—अपने भव से (मृत या च्युत होकर) निकले हुए नैरियकों का सीधा (साक्षात्) उत्पाद गर्भज संख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों और मनुष्यों में होता है; सातवीं नरकपृथ्वी के नैरियकों का उत्पाद गर्भज संख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों में होता है, असुरकुमारादि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म तथा ईशान कल्प के वैमानिक देवों का उत्पाद बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक, अप्कायिक एवं वनस्पतिकायिकों में तथा गर्भज संख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों एवं मनुष्यों में होता है। पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक तथा द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीवों का उत्पाद तिर्यञ्चगित और मनुष्यगित में

तथा तेजस्कायिक-वायुकायिकों का केवल तिर्यञ्चगित में ही होता है। तिर्यंचचपंचेन्द्रियों का उत्पाद नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य एवं देवगित में, विशेषत: सहस्नारकल्पर्यन्त के वैमानिकों में होता है। मनुष्यों का उत्पाद चारों गितयों के सभी स्थानों में होता है तथा सनत्कुमार से लेकर सहस्नार देव पर्यन्त वैमानिक देवों का उत्पाद गर्भज संख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों एवं मनुष्यों में होता है, और आनत कल्प से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक के देवों का उत्पाद गर्भज संख्यातवर्षायुष्क मनुष्यों में ही होता है।

सप्तम पारभविकायुष्यद्वार : चातुर्गतिक जीवों की पारभविकायुष्यसम्बन्धी प्ररूपणा ६७७. नेरइया णं भंते! कितभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति ? गोयमा! णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति ।

[६७७ प्र.] भगवन्! आयुष्क का कितना भाग शेष रहने पर नैरियक परभव (आगामी जन्म) की आयु (का बन्ध) करते हैं ?

[६७७ उ.] गौतम! (वे) नियम से छह मास आयु शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं। ६७८. एवं असुरकुमारा वि जाव थिणयकुमारा।

[६७८] इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक (का पारभविक-आयुष्यबन्ध सम्बन्धी कथन करना चाहिए।)

६७९. पुढविकाइया णं भंते! कतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति ?

गोयमा! पुढिवकाइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सोवक्कमाउया य निरुवक्कमाउया य। तत्य णं जे ते निरुवक्कमाउया ते णियमा तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति। तत्थ णं जे ते सोवक्कमाउया ते सिय तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभागतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभागतिभागतिभागतिभागसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

[६७९ प्र.] भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्य बांधते हैं ?

[६७९ उ.] गौतम! पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए है, वे इस प्रकार है—(१) सोपक्रम आयु वाले और (२) निरुपक्रम आयु वाले। इनमें से जो निरुपक्रम (उपक्रमरहित) आयु वाले हैं, वे नियम से आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं तथा इनमें जो सोपक्रम (उपक्रमसहित) आयु वाले हैं, वे कदाचित् आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं और कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं। कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं।

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ११०९

⁽ख) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २१६

६८०. आउ-तेउ-वाउ-वणप्फइकाइयाणं बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाण वि एवं चेव।

[६८०] अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकों तथा द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियों (के पारभविक-आयुष्यबन्ध) का कथन भी इसी प्रकार (करना चाहिए)।

६८१. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते! कतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति ?

गोयमा! पंचेंदियितिरिक्खजोणिया दुविहा पन्नता। तं जहा—संखेज्जवासाउया य असंखेज्जवा-साउया य। तत्थ णं जे ते असंखेज्जवासाउया ते नियमा छम्मासावसेसाउया परभिवयाउयं पकरेंति। तत्थ णं जे ते संखेज्जवासाउया ते दुविहा पण्णत्ता। तं जहा-सोवक्कमाउया य निरुवक्कमाउया य। तत्थ णं जे ते निरुवक्कमाउया ते णियमा तिभागावसेसाउया परभिवयाउयं पकरेंति। तत्थ णं जे ते सोवक्कमाउया ते णं सिय तिभागे परभिवयाउयं पकरेंति, सिय तिभागितभागे य परभिवयाउयं पकरेंति, सिय तिभागितभागितभागावसेसाउया परभिवयाउयं पकरेंति।

[६८१ प्र.] भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक, आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं ?

[६८१ उ.] गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) संख्यातवर्षायुष्क और (२) असंख्यातवर्षायुष्क। उनमें से जो असंख्यात वर्ष की आयु वाले हैं, वे नियम से छह मास आयु शेष रहते परभव का आयुष्यबन्ध कर लेते हैं और जो इनमें संख्यातवर्ष की आयु वाले हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) सोपक्रम आयु वाले और (२) निरुपक्रम आयु वाले। इनमें जो निरुपक्रम आयु वाले हैं, वे नियमत: आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं। जो सोपक्रम आयुवाले हैं, वे कदाचित् आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहते पारभविक आयुष्यबन्ध करते हैं, कदाचित् आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहते परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं। और कदाचित् आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहते पारभविक आयुष्यबन्ध करते हैं।

६८२. एवं मणूसा वि।

[६८२] मनुष्यों का (पारभविक आयुष्यबन्ध सम्बन्धी कथन भी) इसी प्रकार (करना चाहिए।) ६८३. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया ॥ दारं ७॥

[६८३] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों (के परभव का आयुष्यबन्ध) नैरयिकों के (पारभविक आयुष्यबन्ध के) समान (छह मास शेष रहने पर) कहना चाहिए। – सप्तम पारभविकायुष्यद्वार ॥७॥

विवेचन—सप्तम पारभविकायुष्यद्वार: चातुर्गतिक जीवों की पारभविक आयुष्यबन्ध-सम्बन्धी प्ररूपणा-नरकादि चारों गतियों के जीवों की आयु का कितना भाग शेष रहते परभवसंबंधी आयुष्य बन्ध होता है? इस विषय में प्रस्तुत सात सूत्रों (सू. ६७७ से ६८३ तक) में प्ररूपणा की गई है।

पारभविकायुष्यद्वार का तात्पर्य-वर्तमान भव में नारकादिपर्याय वाले जीव अपने वर्तमान भव

सम्बन्धी आयु का कितनाभाग शेष रहते अथवा आयुष्य का कितना भाग बीत जाने पर अगले जन्म (आगामी-परभव) की आयु का बन्ध करते हैं ? यही बताना इस द्वार का आशय है।

सोपक्रम और निरुपक्रम की व्याख्या—जो आयु उपक्रमयुक्त हो, वह सोपक्रम कहलाती है और जो आयु उपक्रम से प्रभावित न हो सके वह निरुपक्रम कहलाती है। आयु का विघात करने वाले तीव्र विष, शस्त्र, अग्नि, जल आदि उपक्रम कहलाते हैं। इन उपक्रमों के योग से दीर्घकाल में धीरे-धीरे भोगी जाने वाली आयु बन्धकालीन स्थिति से पहले (शीघ्र) ही भोग ली जाती है। अर्थात् इन उपक्रमों के निमित्त से जो आयु बीच में ही टूट जाती है, जिस आयु का भोगकाल बन्धकालीन स्थितिमर्यादा से कम हो, उसे अकालमृत्यु, सोपक्रम आयु अथवा अपवर्तनीय आयु भी कहते हैं। जो आयु बन्धकालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले न भोगी जा सके, अर्थात्-जिसका भोगकाल बन्धकालीन स्थिति मर्यादा के समान हो, वह निरुपक्रम या अनपवर्तनीय आयु कहलाती है। औपपातिक (नारक और देव), चरमशरीरी, उत्तमपुरुष और असंख्यातवर्षजीवी (मनुष्य-तिर्यञ्च), ये अनपवर्तनीय-निरुपक्रम आयु वाले होते हैं।

निष्कर्ष—ितरुपक्रमी जीवों में औपपातिक और असंख्यातवर्षजीवी अनपवर्तनीय आयु वाले होते हैं। वे आयुष्य के ६ मास शेष रहते आगामी भव का आयुष्यबन्ध करते हैं, जैसे-नैरियक, सब प्रकार के देव और असंख्यातवर्षजीवी मनुष्य-तिर्यञ्व। पृथ्वीकायिकादि से लेकर मनुष्यों तक दोनों ही प्रकार की आयु वाले होते हैं। इनमें जो निरुपक्रम आयु वाले होते हैं, वे आयु (स्थिति) के दो भाग व्यतीत हो जाने पर और तीसरा भाग शेष रहने पर आगामी भव का आयुष्य बांधते हैं, किन्तु जो सोपक्रम आयु वाले हैं, वे कदाचित् वर्तमान आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं, किन्तुं यह नियम नहीं है कि वे तीसरा भाग शेष रहते परभव का आयुष्यबन्ध कर ही लें। अतएव जो जीव उस समय आयुक्ध नहीं करते, वे अवशिष्ट तीसरे भाग के तीन भागों में से दो भाग व्यतीत हो जाने पर और एक भाग शेष रह जाने पर आयु का बन्ध करते हैं। कदाचित् इस तीसरे भाग में भी पारभविक आयु का बन्ध न हुआ तो शेष आयु का तीसरा भाग शेष रहते आयु का बन्ध करते हैं। अर्थात् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग के तीसरे भाग में आयुष्यबन्ध करते हैं। कोई-कोई विद्वान् इसका अर्थ यो करते हैं कि कभी आयु का नौवां भाग शेष रहने पर अथवा कभी आयु का सत्ताईसवां भाग शेष रहने पर सोपक्रम आयु वाले जीव आगामी भव का आयुष्य बांधते हैं। है

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, प्. ११४२-११४३

⁽ख) तत्त्वार्थसूत्र (विवेचन, पं. सुखलाल जी, नवसंस्करण) 'औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषोऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्त्यायुषः।' २, २५

⁻तत्त्वार्थसूत्र अ. २, सू. ५२ पर विवेचन। पृ. ७९-८०

⁽ग) श्री पत्रवणासूत्र के थोकड़े, प्रथम भाग, पृ. १५०

⁽घ) 'कभी-कभी अपनी आयु के २७ वें भाग का तीसरा भाग यानी ८१ वां भाग शेष रहने पर, कभी ८१ वें भाग का तीसरा भाग यानी २४३ वां भाग और कभी २४३ वें भाग का तीसरा भाग यानी ७२९ वां भाग शेष रहने पर यावत् अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं।'—िकन्हीं आचार्यों का मत

⁻श्री पन्नवणासूत्र के थोकड़े, प्रथमभाग पृ. १५०, प्रज्ञापना प्र. बो. टीका भा. २, पृ. ११४४-४५

अष्टम आकर्षद्वार : सर्वजीवों के षड्विध आयुष्यबन्ध, उनके आकर्षों की संख्या और अल्पबहुत्व

६८४. कतिविधे णं भंते! आउयबंधे पण्णत्ते ?

गोयमा! छिव्विधे आउयबंधे पण्णत्ते। तं जहा—जातिणामिणहत्ताउए १ गइनामिनहत्ताउए २ ठितीनामिनहत्ताउए ३ ओगाहणाणामिणहत्ताउए ४ पदेसणामिणहत्ताउए ५ अणुभावणामिणहत्ताउए ६।

[६८४ प्र.] भगवन्! आयुष्य का बन्ध कितने प्रकार का कहा है ?

[६८४ उ.] गौतम! आयुष्यबन्ध छह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—(१) जातिनामनिधत्तायु, (२) गतिनामनिधत्तायु, (३) स्थितिनामनिधत्तायु, (४) अवगाहनानामनिधत्तायु, (५) प्रदेशनामनिधत्तायु और (६) अनुभावनामनिधत्तायु।

६८५. नेरइयाणं भंते! कतिविहे आउयबंधे पण्णात्ते ?

गोयमा! छिळ्वहे आउयबंधे पण्णत्ते। तं जहा-जातिनामनिहत्ताउए १ गतिणामनिहत्ताउए २ ठितीणामणिहत्ताउए ३ ओगाहणानामनिहत्ताउए ४ पदेसणामनिहत्ताउए ५ अणुभावनामनिहत्ताउए ६।

[६८५ प्र.] भगवन्! नैरयिकों का आयुष्यबन्ध कितने प्रकार का कहा है ?

[६८५ उ.] गौतम! (नैरयिकों का) आयुष्यबन्ध छह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—

- (१) जातिनामनिधत्तायु, (२) गतिनामनिधत्तायु, (३) स्थितिनामनिधत्तायु, (४) अवगाहनानामनिधत्तायु,
- (५) प्रदेशनामनिधत्तायु और (६) अनुभावनामनिधत्तायु।

६८६. एवं जाव वेमाणियाणं।

[६८६] इसी प्रकार (आगे असुरकुमारों से लेकर) यावत् वैमानिकों तक के आयुष्यबन्ध की प्ररूपणा समझनी चाहिए।

६८७. जीवा णं भंते! जातिणामणिहत्ताउयं कतिहिं आगरिसेहिं पकरेंति ?

गोयमा! जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेणं अट्टहिं।

[६८७ प्र.] भगवन्! जीव जातिनामनिधत्तायु को कितने आकर्षों से बांधते हैं ?

[६८७ उ.] गौतम! (जीव जातिनामनिधत्तायु को) जघन्य एक, दो या तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बांधते हैं।

६८८. नेरइया णं भंते! जाइनामनिहत्ताउयं कितिहें आगिरिसेहिं पकरेंति ? गोयमा! जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेणं अट्टहिं।

[६८८ प्र.] भगवन्! नारक जातिनामनिधत्तायु को कितने आकर्षों से बांधते हैं ?

[६८८ उ.] गौतम! (नारक जातिनामनिधत्तायु को) जघन्य एक, दो या तीन, अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बांधते हैं।

६८९. एवं जाव वेमाणिया।

[६८९] इसी प्रकार (आगे असुरकुमारों से लेकर) यावत् वैमानिक तक (के जातिनामनिधत्तायु की आकर्ष-संख्या का कथन करना चाहिए।)

६९०. एवं गतिणामणिहत्ताउए वि ठितीणामनिहत्ताउए वि ओगाहणाणामनिहत्ताउए वि पदेसणामनिहत्ताउए वि अणुभावणामनिहत्ताउए वि।

[६९०] इसी प्रकार (समस्त जीव) गतिनामनिधत्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु, अवगाहनानामनिधत्तायु, प्रदेशनामनिधत्तायु और अनुभावनामनिधत्तायु का (बन्ध) भी जघन्य एक, दो या तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से करते हैं।

६९१. एतेसि णं भंते! जीवाणं जातिनामनिहत्ताउयं जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा उक्कोसेणं अट्टिहें आगिरसेहिं पकरेमाणाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा जातिणामिणहत्ताउयं अट्टिहें आगिरसेहिं पकरेमाणा, सत्तिहं आगिरसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा, छिहं आगिरसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा, एवं पंचिहं संखेज्जगुणा, चडिहं संखेज्जगुणा, तिहिं संखेज्जगुणा, दोहिं संखेज्जगुणा, एगेणं आगिरसेणं पगरेमाणा संखेज्जगुणा।

[६९१ प्र.] भगवन्! इन जीवों में जघन्य एक, दो और तीन, अथवा उत्कृष्ट आठ आंकर्षों से बन्ध करने वालों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[६९१ उ.] गौतम! सबसे कम जीव जातिनामनिधत्तायु को आठ आकर्षों से बांधने वाले हैं, सात आकर्षों से बांधने वाले (इनसे) संख्यातगुणे हैं, छह आकर्षों से बांधने वाले (इनसे) संख्यातगुणे हैं, इसी प्रकार पांच (आकर्षों से बांधने वाले इनसे) संख्यातगुणे हैं, चार (आकर्षों से बांधने वाले इनसे) संख्यातगुणे हैं, तीन (आकर्षों से बांधने वाले इनसे) संख्यातगुणे हैं, तीन (आकर्षों से बांधने वाले इनसे) संख्यातगुणे हैं और एक आकर्ष से बांधने वाले, (इनसे भी) संख्यातगुणे हैं।

६९२. एवं एतेणं अभिलावेणं जाव अणुभाविनहत्ताउयं। एवं एते छ प्पि य अप्पाबहुदंडगा जीवादीया भाणियव्वा । दारं ८॥

॥ पण्णवणाए भगवईए छट्ठं वक्कंतिपयं समत्तं॥

[६९२] इसी प्रकार इस अभिलाप से (ऐसा ही अल्पबहुत्व का कथन) गतिनामनिधत्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु, अवगाहनानामनिधत्तायु, प्रदेशनामनिधत्तायु और यावत् अनुभावनामनिधत्तायु को बांधने वालों का (जान लेना चाहिए।) इस प्रकार ये छहों ही अल्पबहुत्वसम्बन्धी दण्डक जीव से आरम्भ करके कहने चाहिए।

आठवां आकर्षद्वार॥८॥

छठा व्युत्क्रान्तिपद] [५१७

विवेचन—आठवाँ आकर्षद्वार : सभी जीवों के छह प्रकार के आयुष्यबन्ध, उनके आकर्षों की संख्या और अल्पबहुत्व—प्रस्तुत अष्टमद्वार में नौ सूत्रों (सू. ६८४ से ६९२ तक) द्वारा तीन तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं—

- १. जीवसामान्य के तथा नारकों से वैमानिकों तक का छह प्रकार का आयुष्यबन्ध।
- २. जीव सामान्य तथा नारकादि वैमानिकपर्यन्त जीवों द्वारा जातिनामनिधत्तायु आदि छहों का जघन्य एक, दो या तीन तथा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बन्ध की प्ररूपणा।
- ३. जातिनामनिधत्तायु आदि प्रत्येक आयु को जघन्य-उत्कृष्ट आकर्षों से बांधने वाले जीवों का अल्पबहुत्व।

आयुष्यबन्ध के छह प्रकारों का स्वरूप-(१) जातिनामनिधत्तायु-जैनदृष्टि से एकेन्द्रियादि रूप पांच प्रकार की जातियां हैं। वे नामकर्म की उत्तरप्रकृतिविशेष रूप हैं, उस 'जातिनाम' के साथ निधत्त अर्थात्-निषिक्त जो आयु हो, वह 'जातिनामनिधत्ताय्' है। 'निषेक' कहते हैं-कर्मपुद्गलों के अनुभव करने के लिए रचनाविशेष को। वह रचना इस प्रकार की होती है-अपने अबाधाकाल को छोड़कर (क्योंकि अबाधाकाल में कर्पपुद्गलों का अनुभव नहीं होता, इसलिए उसमें कर्मदिलकों की रचना नहीं होती।) प्रथम-जघन्य अन्तर्मुहूर्त्तरूप स्थिति में बहुतर द्रव्य होता है। एक आकर्ष में ग्रहण किए हुए कर्मदिलकों में बहुत-से जघन्य स्थिति वाले ही होते हैं। शेष एक समय आदि से अधिक अन्तर्मुहूर्त्तादि स्थिति में विशेष हीन (कम) द्रव्य होता है, एवं यावत् उत्कृष्ट स्थिति में उत्कृष्टत: (विशेषहीन अर्थात्-सर्वहीन=सबसे कम) दलिक होते हैं। (२) गतिनामनिधत्ताय-गतियां चार है-नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति। गतिरूप नामकर्म 'गतिनाम' है। उसके साथ निधत्त (निषक्त) आयु 'गितनामनिधत्तायु' कहलाती है। (३) स्थितिनामनिधत्तायु—उस-उस भव में (आयुष्यबल से) स्थिति रहना स्थिति है। स्थितिप्रधान नाम (नामकर्म) स्थितिनाम है। उसके साथ निधत्त आय् **'स्थितिनामनिधत्ताय्'** है। जो जिस भव में उदय प्राप्त रहता है, वह स्थितिनाम है; जो कि गित, जाति तथा पांच शरीरों से भिन्न है। (४) अवगाहनानामनिधत्ताय्-जिसमें जीव अवगाहन करे उसे अवगाहना कहते हैं। औदारिकादि शरीर उनका निर्माण करने वाला औदारिकादि शरीरनामकर्म-अवगाहनानाम है। उसके साथ निधत्त आयु, 'अवगाहहनानामनिधत्तायु' कहलाती है। (५) प्रदेशनामनिधत्तायु-प्रदेश कहते हैं-कर्मपरमाणुओं को। वे प्रदेश संक्रम से भी भोगे जार्ने वाले ग्रहण किए जाते हैं। उन प्रदेशों की प्रधानता वाला नाम (नामकर्म) प्रदेशनाम कहलाता है, तात्पर्य यह है कि जो जिस भव में प्रदेश से विपाकोदय के बिना ही भोगा (अनुभव किया) जाता है वह प्रदेशनाम कहलाता है। उक्त प्रदेशनाम के साथ निधत्त आयु को 'प्रदेशनामनिधत्तायु' कहते हैं।(६) अनुभावनामनिधत्तायु-अनुभाव कहते हैं-विपाक को। यहाँ प्रकर्ष अवस्था को प्राप्त विपाक ही ग्रहण किया जाता है। उस अनुभव-विपाक की प्रधानता वाला नाम (नामकर्म) 'अनुभावनाम' कहलाता है। तात्पर्य यह है कि जिस भव में जो तीव्र विपाक वाला नामकर्म भोगा जाता है, वह अनुभावनाम कहलाता है। जैसे-नरकायु में अशुभ वर्ण, गन्ध,

रस, स्पर्श, उपघात, दु:स्वर, अनादेय, अयश:कीर्ति आदि नामकर्म हैं। अत: अनुभावनाम के साथ निधत्त आयु 'अनुभावनामनिधत्तायु' कहलाती है।

प्रस्तुत में आयुकर्म की प्रधानता प्रकट करने के लिए जाति, गति, स्थिति, अवगाहना नामकर्म आदि को आयु के विशेषण के रूप में कहा है। नारक आदि की आयु का उदय होने पर ही जाति आदि नामकर्मों का उदय होता है। अन्यथा नहीं, अतएव आयु की ही यहाँ प्रधानता है।

आकर्ष का स्वरूप—आकर्ष कहते हैं-विशेष प्रकार के प्रयत्न से जीव द्वारा होने वाले कर्मपुद्गलों के उपादान-ग्रहण को। प्रस्तुत सूत्रों (सू. ६८७ से ६९० तक) में इस विषय की चर्चा की गई है कि जीवसामान्य तथा नारक से लेकर वैमानिक तक कितने आकर्षों यानी प्रयत्नविशेषों से जातिनामनिधतायु आदि षड्विध आयुष्यकर्म-पुद्गलों का ग्रहण, बन्ध करने हेतु करते हैं ? उदाहरणार्थ-जैसे-कई गायें एक ही घूंट में पर्याप्त जल पी लेती हैं, कई भय के कारण रुक-रुक कर दो, तीन या चार अथवा सात—आठ घूंटों में जल पीती हैं। उसी प्रकार कई जीव उन-उन जातिनाम आदि से निधत्त आयुकर्म के (बन्धहेतु) पुद्गलों का तीव्र अध्यवसायवश एक ही मन्द आकर्ष में ग्रहण कर लेते हैं, दूसरे दो या तीन मन्दतर आकर्षों में या चार या पांच मन्दतम आकर्षों में या फिर छह, सात या आठ अत्यन्त मन्दतम आकर्षों में ग्रहण करते हैं। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि आयु के साथ बंधने वाले जाति आदि नामों (नामकर्मों) में ही आकर्ष का नियम है; शेष काल में नहीं। कई प्रकृतियाँ 'ध्रुवबन्धिनी' होती हैं और कई 'परावर्तमान' होती हैं। उनका बहुत काल तक बन्ध सम्भव होने से उनमें आकर्षों का नियम नहीं है।

आकर्ष करने वाले जीवों का तारतम्य — बन्ध के हेतु आयुष्यकर्मपुद्गलों का ग्रहण अधिक-से-अधिक आठ आकर्षों में करने वाले जीव सबसे कम हैं, उनसे क्रमश: कम आकर्ष करने वाले जीव उत्तरोत्तर संख्यातगुणे अधिक हैं, सबसे अधिक जीव एक आकर्ष करने वाले हैं।³

॥ प्रज्ञापनासूत्रः छठा व्युत्क्रान्तिपद समाप्त॥

१. प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्रांक २१७-२१८

२. प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्रांक २१८

३. पण्णवणासुत्तं भा. २, छठे पद की प्रस्तावना, पृ. ७४

सत्तमं उस्सासपयं

सप्तम उच्छ्वासपद

प्राथमिक

प्रज्ञापनासूत्र के सप्तम 'उच्छ्वासपद' में सिद्ध जीवों के सिवाय समस्त संसारी जीवों के श्वासोच्छ्वास के विरहकाल की चर्चा है।
जीवनधारण के लिए प्रत्येक प्राणी को श्वासोच्छ्वास की आवश्यकता है। चाहे वह मुनि हो, चक्रवर्ती हो, राजा हो अथवा किसी भी प्रकार का देव हो, नारक हो अथवा एकेन्द्रिय से लेकर तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय तक किसी भी जाति का प्राणी हो। इसलिए श्वासोच्छ्वासरूप प्राण का अत्यन्त महत्त्व है और यह 'जीवतत्त्व' से विशेषरूप से सम्बन्धित है। इस कारण शास्त्रकार ने इस पद की रचना करके प्रत्येक प्रकार के जीव के श्वासोच्छ्वास के विरहकाल की प्ररूपणा की है।
इस पद के प्रत्येक सूत्र के मूलपाठ में 'आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा' यों चार क्रियापद हैं। वृत्तिकार आचार्य मलयिगिर 'आणमंति' और 'ऊससंगि' को तथा 'पाणमंति' और 'नीससंति' को एकार्थक मानते हैं, परन्तु उन्होंने अन्य आचार्यों का मत भी दिया है। उनके अनुसार प्रथम के दो क्रियापदों को बाह्य श्वासोच्छ्वास क्रिया के अर्थ में माना गया है।
प्रस्तुत पद में सर्वप्रथम नैरियकों के उच्छ्वासिन: श्वास-विरहकाल की, तत्पश्चात् दस भवनपित देवों, पृथ्वीकायिकादि पांच एकेन्द्रियों, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियों तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों, मनुष्यों के श्वासोच्छ्वास-विरहकाल की चर्चा की है। अन्त में वाणव्यन्तरों ज्योतिष्कों, सौधर्मादि वैमानिकों एवं नौ ग्रैवेयकों तथा पांच अनुत्तर विमानवासी देवों के उच्छ्वास-नि:श्वास-विरहकाल की पृथक्-पृथक् प्ररूपणा की है।
समस्त संसारी जीवों के उच्छ्वास—नि:श्वासिवरहकाल की इस प्ररूपणा पर से एक बात स्पष्ट फिलत होती है, जिसकी ओर वृत्तिकार ने ध्यान खींचा है। वह यह कि जो जीव जितने अधिक दु:खी होते हें, उन जीवों की श्वासोच्छ्वासिक्रया उतनी ही अधिक और शीघ्र चलती है और अत्यन्त दु:खी जीवों के तो यह क्रिया सतत अविरत रूप से चला करती है। जो जीव जितने–जितने अधिक, अधिकतर या अधिकतम सुखी होते हैं, उनकी श्वासोच्छ्वास क्रिया उत्तरोत्तर देर से चलती है। अर्थात् उनका श्वासोच्छ्वास विरहकाल उतना ही अधिक, अधिकतर और अधिकतम है; क्योंकि श्वासोच्छवास क्रिया अपने आप में दु:खरूप है, यह बात स्वानुभव से भी सिद्ध है, शास्त्रसमर्थित भी है।

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२०-२२१ (ख)पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा.१, १८४ से १८७

२. (क) प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्रांक २२०

⁽ख) पण्णवणासुत्तं (परिशिष्ट प्रस्तावनात्मक) भा. २,पृ.७५

सत्तमं उस्सासपयं

सप्तम उच्छ्वासपद

६९३. नेरइया णं भंते! केवितकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ? गोयमा सततं संतयामेव आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ।

[६९३ प्र.] भगवन् ! नैरियक कितने काल से अन्तःस्फुरित उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं तथा बाह्यस्फुरित उच्छ्वास (ऊँचा श्वास) और निःश्वास (नीचा श्वास) लेते हैं? (अथवा उच्छ्वास अर्थात् श्वास लेते और निःश्वांस अर्थात् श्वास छोड़ते हैं।)

[६९३ उ.] गौतम ! वे सतत सदैव निरन्तर अन्त:स्फुरित उच्छ्वास-नि:श्वास एवं बाह्य स्फुरित उच्छ्वास -नि:श्वास लेते रहते हैं।

६९४. असुरकुमारा णं भंते! केवतिकालस्स आणमंति व पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं सातिरेगस्स पक्खस्स वा आणमंति वा जाव नीससंति वा।

[३९४ प्र.] भगवन्! असुरकुमार देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास और नि:श्वास लेते हैं तथा बाह्यस्फुरित उच्छ्वास-नि:श्वास क्रिया करते हैं।

[३९५उ.] गौतम! वे जघन्यत: सात स्तोक में और उत्कृष्ट सातिरेक एक पक्ष में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास और नि:श्वास लेते हैं तथा (बाह्य) उच्छ्वास एवं नि:श्वास लेते हैं।

६९५. णागकुमारा णं भंते! केवितकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ?

गोयमा ! जहणेणं सतण्हं थावाणं उक्कोसेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स।

[६९५ प्र.] भगवन् ! नागकुमार कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं तथा (बाह्य) उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं ?

[६९५ उ.] गौतम! वे जघन्य सात स्तोक में और उत्कृष्टत: मुहूर्त्तपृथक्त्व में (अन्त:स्फुरित) उच्छवास और नि:श्वास लेते हैं तथा (बाह्य) उच्छवास एवं नि:श्वास लेते हैं।

६९६. एवं जाव थणियकुमाराणं।

[६९६] इसी प्रकार यावत् स्तिनतकुमार तक के उच्छ्वास-निःश्वास के विषय में समझ लेना चाहिए। ६९७. पुढिवकाइया णं भंते! केवितकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा जाव नीससंति वा ? गोयमा! वेमायाए आणमंति वा जाव नीससंति वा।

[६९७ प्र.] भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव कितने काल से(अन्त:स्फुरित) श्वासोच्छ्वास लेते हैं एवं (बाह्य) उच्छ्वास तथा नि:श्वास लेते हैं ?

[६९७ उ.] गौतम! (पृथ्वीकायिक जीव) विमात्रा (अनियतकाल) से (अन्तःस्फुरित) श्वासोच्छ्वास लेते हैं एवं (बाह्य) उच्छ्वास तथा निःश्वास लेते हैं।

६९८. एवं जाव मणूसा।

[६९८] इसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) यावत् मनुष्यों तक् (के आन्तरिक एवं बाह्य श्वासोच्छवास के विषय में जानना चाहिए।)

६९९. वाणमंतरा जहा णागकुमारा।

[६९९] वाणव्यन्तर देवों के (आन्तरिक एवं बाह्य उच्छ्वास और नि:श्वास के विषय में) नागकुमारों के (उच्छ्वास-नि:श्वास) के समान (कहना चाहिए।)

७००. जोइसिया णं भंते! केवितकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा जाव नीससंति वा ? गोयमा! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं वि मुहुत्तपुहुत्तस्स जाव नीससंति वा।

[७०० प्र.] भगवन्! ज्योतिष्क (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास-निःश्वास एवं (बाह्य) श्वासोच्छ्वास कितने काल से लेते हैं ?

[७०० उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: मुहूर्त्तपृथक्त्व और उत्कृष्टत: भी मुहूर्त्तपृथक्त्व से (आन्तरिक और बाह्य) उच्छ्वास और नि:श्वास लेते हैं।

७०१. वेमाणिया णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ? गोयमा! जहण्णेणं मुहूत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०१ प्र.] भगवन्! वैमानिक देव कितने काल से (अन्तः स्फुरित) उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं तथा (बाह्य) उच्छ्वास एवं निःश्वास लेते हैं?

[७०१ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: मुहूर्त्तपृथक्त्व में और उत्कृष्टत: तेतीस पक्ष में (आन्तरिक एवं बाह्य) उच्छ्वास तथा नि:श्वास लेते हैं।

७०२. सोहम्मगदेवा णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ? गोयमा! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं दोण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०२ प्र.] भगवन्! सौधर्मकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं?

[७०२ उ.] गौतम! जघन्य मुहूर्त्तपृथक्त्व में, उत्कृष्ट दो पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं।

७०३. ईसाणगदेवा णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगस्स मुहूत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं सातिरेगाणं दोण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०३ प्र.] भगवन्! ईशानकल्प के देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७०३ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: सातिरेक (कुछ अधिक) मुहूर्तपृथक्त्व में और उत्कृष्टत: सातिरेक (कुछ अधिक) दो पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं।

७०४. सणंकुमारदेवा णं भंते! केवतिकालस्स आणमंति जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं दोण्हं पक्खाणं जाव णीससंति वा, उक्कोसेणं सत्तण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०४ प्र.] भगवन्! सनत्कुमार देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७०४ उ.] गौतम! वे जघन्यत: दो पक्ष में (अन्त: स्फुरित) उच्छृवास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं और उत्कृष्टत: सात पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं।

७०५. माहिंदगदेवा णं भंते! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगाणं दोण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं सातिरेगाणं सत्तण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०५ प्र.] भगवन्! माहेन्द्रकल्प के देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७०५ उ.] गौतम! (वे)जघन्यत: सातिरेक (कुछ अधिक) दो पक्षों में और उत्कृष्टत: सातिरेक (कुछ अधिक) सात पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं।

७०६. बंभलोगदेवा णं भंते! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०६ प्र.] भगवन्! ब्रह्मलोककल्प के देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७०६ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: सात पक्षों में और उत्कृष्टत: दस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं।

७०७. लंतगदेवा णं भंते! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं चोद्दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा। [७०७ प्र.] भगवन्! लान्तककल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७०७ उ.] गौतम!(वे) जघन्य दस पक्षों में और उत्कृष्ट चौदह पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं।

७०८. महासुक्कदेवा णं भंते! केवितकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं चोद्दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं सत्तरसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०८ प्र.] भगवन्! महाशुक्रकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७०८ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: चौदह पक्षों में और उत्कृष्टत: सत्रह पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित)नि:श्वास लेते हैं।

७०९. सहस्सारगदेवा णं भंते! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तरसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं अट्ठारसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०९ प्र.] भगवन्! सहस्रारकल्प के देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं ?

[७०९ उ.] गौतम! (वे) जघन्य सत्रह पक्षों में और उत्कृष्ट अठारह पक्षों में (अन्त:स्फुरित)उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७१०. आणयदेवा णं भंते! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठारसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं एक्कूणवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१० प्र.] भगवन्! आनतकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७१० उ.] गौतम! (वे) जघन्य अठारह पक्षों में और उत्कृष्ट उन्नीस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७११. पाणयदेवा णं भंते! केवितकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं एगूणवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं वीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७११. प्र.] भगवन्! प्राणतकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७११ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: उन्नीस पक्षों में और उत्कृष्टत: बीस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७१२. आरणदेवा णं भंते! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं वीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं एगवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१२ प्र.] भगवन्! आरणकल्प के देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं?

. [७१२ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: बीस पक्षों में और उत्कृष्टत: इक्कीस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७१३. अच्युयदेवा णं भंते! केवितकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं बावीसाए, पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१३ प्र.] भगवन्! अच्युतकल्प के देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं ?

[७१३ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: इक्कीस पक्षों में और उत्कृष्टत: बाईस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७१४. हेड्रिमहेड्रिमगेवेज्जगदेवा णं भंते! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहन्नेणं बावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं तेवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१४ प्र.] भगवन्! अधस्तन-अधस्तनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७१४ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: बाईस पक्षों में और उत्कृष्टत: तेईस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७१५. हेट्टिममन्झिमगेषेज्जगदेवा णं भंते! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं तेवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं चउवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१५ प्र.] भगवन्! अधस्तन-मध्यमग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७१५ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: तेईस पक्षों में और उत्कृष्टत: चौबीस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं। ७१६. हेट्टिमउवरिमगेवेज्जगा देवा णं भंते! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं चउवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा,उक्कोसेणं पणुवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१६ प्र.] भगवन्! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक के देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७१६ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: चौबीस पक्षों में और उत्कृष्टत: पच्चीस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७१७. मज्झिमहेट्टिमगेवेज्जगा देवा णं भंते! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं पणवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं छव्वीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१७ प्र.] भगवन्! मध्यम-अधस्तनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७१७ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: पच्चीस पक्षों में और उत्कृष्टत: छब्बीस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७१८. मिन्झममिन्झमगेवज्जगदेवा णं भंते! केवितकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं छव्वीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं सत्तावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१८ प्र.] भगवन्! मध्यम-मध्यमग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७१८ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: छव्वीस पक्षों में और उत्कृष्टत: सत्ताईस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७१९. मन्झिमउवरिमगेवेज्जगा णं भंते! देवा केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं अट्ठावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१९ प्र.] भगवन्! मध्यम उपरितनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७१९ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: सत्ताईस पक्षों में और उत्कृष्टत: अट्टाईस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७२०. उवरिमहेट्टिमगेवेज्जगा णं भंते! देवा केवितकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं एगूणतीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा।

[७२० प्र.] भगवन्! उपरितन-अधस्तनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७२० उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: अट्ठाईस पक्षों में और उत्कृष्टत: उनतीस पक्षों में (अन्त: स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं।

७२१. उवरिममञ्झिमगेवेञ्जगा णं भंते! देवा केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं एगूणतीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७२१ प्र.] भगवन्! उपरितन-मध्यमग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७२१ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: उनतीस पक्षों में और उत्कृष्टत: तीस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७२२. उवरिमउवरिमगेवेज्जगा णं भंते! देवा केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं एक्कतीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७२२ प्र.] भगवन्! उपरितन-उपरितनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७२२ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: तीस पक्षों में और उत्कृष्टत: इकतीस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७२३. विजय-वेजयंत-जयंताऽपराजितविमाणेसु णं भंते! देवा केवितकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कतीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७२३ प्र.] भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों के देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७२३ उ.] गौतम! (वे) जघन्यत: इकतीस पक्षों में और उत्कृष्टत: तेतीस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छवास यावत (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७२४. सव्बद्वसिद्धगदेवा णं भंते! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा। ॥ पण्णवणाए भगवईए सत्तमं उस्सासपयं समत्तं॥

[७२४ प्र.] भगवन्! सर्वार्थसिद्ध विमान के देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७२४ उ.] गौतम! (वे) अजघन्य-अनुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से रहित) तेतीस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

विवेचन—नैरियकों से लेकर वैमानिकों तक के श्वासोच्छ्वास की प्ररूपणा—प्रस्तुत पद के कुल बत्तीस सूत्रों (सू. ६९३ से ७२४ तक) में क्रमश: नैरियक से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस दण्डकवर्ती संसारी जीवों की अन्त:स्फुरित एवं बाह्यस्फुरित उच्छ्वास-नि:श्वास क्रिया जघन्य एवं उत्कृष्ट कितने काल के अन्तर से होती है? इसकी प्ररूपणा की गई है।

प्रश्न का तात्पर्य—जो प्राणी नारक आदि पर्यायों में उत्पन्न हुए हैं और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति से पर्याप्त हैं, वे कितने काल के बाद उच्छ्वास-नि:श्वास लेते हैं? अर्थात् एक श्वासोच्छ्वास लेने के पश्चात् दूसरा श्वासोच्छ्वास लेने तक में उनके उच्छ्वास-नि:श्वास का विरहकाल कितना होता है? यही इस पद के प्रत्येक प्रश्न का तात्पर्य है।

आणमंति, पाणमंति, ऊ ससंति, नीससंति पदों की व्याख्या—'अन् प्राणने' धातु से 'आङ्' उपसर्ग लगने पर 'आनित' और 'प्र' उपसर्ग लगने पर 'प्राणित' रूप बनता है तथा सामान्यतया 'आनित' और 'उच्छ्वसित' का तथा 'प्राणित' और 'नि:श्वसित' का एक ही अर्थ है, फिर समानार्थक दो-दो क्रियापदों का प्रयोग यहां क्यों किया गया? ऐसी शंका उपस्थित होती है। इसके दो समाधान यहाँ प्रस्तुत किये गए हैं—एक तो यह है कि भगवान् के पट्टधर शिष्य श्री गौतमस्वामी ने अपने प्रश्न को स्पष्टरूप से प्रस्तुत करने के लिए समानार्थक दो-दो शब्दों का प्रयोग किया है—जैसे कि 'नैरियक' कितने काल से श्वास लेते हैं अथवा यों कहें कि ऊँचा श्वास और नीचा श्वास लेते हैं?' भगवान् के ऐसे प्रश्न के उत्तर में अपने शिष्य के पुनरुक्त वचन के प्रति आदर प्रदर्शित करने हेतु उन्हीं समानार्थक दो-दो शब्दों का प्रयोग किया है, क्योंकि गुरुओं के द्वारा शिष्यों के वचन को आदर दिये जाने से शिष्यों को सन्तोष होता है, वे पुन:-पुन: अपने प्रश्नों का निर्णयात्मक उत्तर सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं तथा उन शिष्यों के वचन भी जगत् में आदरणीय समझे जाते हैं। दूसरा समाधान यह है कि 'आनित' और 'प्राणित' का अर्थ अन्तर में स्फुरित होने वाली उच्छ्वास-नि:श्वास क्रिया और 'उच्छ्वसित' एवं 'नि:श्वसित्त' का अर्थ बाहर में स्फुरित होने वाली उच्छ्वास-नि:श्वास क्रिया समझना चाहिए। अत: यहाँ पुनरुक्ति नहीं किन्तु अर्थभेद के कारण पृथक्-पृथक् क्रियापदों का प्रयोग किया गया है।

नारकों की सतत उच्छ्वास-निःश्वासिक्रया का रहस्य—भगवान् ने नैरियकों के उच्छ्वास सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में फरमाया कि नैरियक सदैव निरन्तर अविच्छित्र रूप से उच्छ्वास-निश्वास

लेते रहते हैं, इस कारण उनका श्वासोच्छ्वास लगातार चालू रहता है, एक बार श्वासोच्छ्वास लेने के बाद दूसरी बार के श्वासोच्छ्वास लेने के बीच में व्यवधान (विरह) नहीं रहता।

विमात्रा से उच्छ्वास-निःश्वास लेने का तात्पर्य—पृथ्वीकायिक आदि समस्त एकेन्द्रिय जीव तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, विर्यञ्चपंचेन्द्रिय एवं मनुष्य, ये विमात्रा से उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं, इसका अर्थ है—इनके उच्छ्वास के विरह का कोई काल नियत नहीं है, जो स्वस्थ और सुखी अथवा प्राणायाम करने वाले योगी होते हैं, वे दीर्घकाल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं, किन्तु अस्वस्थ और दुःखी या रोगी-जल्दी जल्दी श्वास लेते हैं।

देवों में उत्तरोत्तर दीर्घकाल के अनन्तर उच्छ्वास-निःश्वास लेने का रहस्य—देवों में जो देव जितनी अधिक आयु वाला होता है, वह उतना ही अधिक सुखी होता है और जो जितना अधिक सुखी होता है, उसके उच्छ्वास-निःश्वास का विरहकाल उतना ही अधिक लम्बा होता है, क्योंकि उच्छ्वास-निःश्वास क्रिया दुःखरूप है। इसलिए देवों में जैसे-जैसे आयु के सागरोपम में वृद्धि होती है, उतने-उतने श्वासोच्छ्वासविरह के पक्षों में वृद्धि होती जाती है।

॥ प्रज्ञापनासूत्र : सप्तम उच्छ्वासपद समाप्त॥

१. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २२०-२२१

अट्ठमं सण्णापयं

अष्टम संज्ञापद प्राथमिक

प्रज्ञापना सूत्र का यह आठवां पद है, इसका नाम है- 'संज्ञापद '।
'संज्ञा' शब्द पारिभाषिक शब्द है। संज्ञा की स्पष्ट शास्त्रीय परिभाषा है-वेदनीय तथा मोहनीय कर्म के
उदय से एवं ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से विचित्र आहारादिप्राप्ति की
अभिलाषारूप, रुचिरूप मनोवृत्ति। यों शब्दशास्त्र के अनुसार संज्ञा के दो अर्थ होते हैं-(१) संज्ञान
(अभिलाषा, रुचि, वृत्ति या प्रवृत्ति) अथवा आभोग (झुकाव या रुझान, ग्रहण करने की तमन्ना) और
(२) जिससे या जिसके द्वारा 'यह जीव है ऐसा सम्यक् रूप से जाना-पहिचाना जा सके।'
वर्तमान में मनोविज्ञानशास्त्र, शिक्षामनोविज्ञान, बालमनोविज्ञान, काममनोविज्ञान (सेक्स साइकोलॅजी)
आदि शास्त्रों में प्राणियों की मूल मनोवृत्तियों का विस्तृत वर्णन मिलता है; इन्हीं से मिलती-जुलती ये
संज्ञाएं हैं, जो प्राणी की आन्तरिक मनोवृत्ति और ब्राह्मप्रवृत्ति को सूचित करती हैं, जिससे प्राणी के
जीवन का भलीभांति अध्ययन हो सकता है। इन्हीं संज्ञाओं द्वारा मनुष्य या किसी भी प्राणी की वृत्ति-
प्रवृत्तियों का पता लगा कर उसके जीवन में सुधार या परिवर्तन लाया जा सकता है।
इस दृष्टि से संज्ञाओं का जीवन में बहुत बड़ा महत्व है, स्वयं की वृत्तियों को टटोलने और तदनुसार
उनमें संशोधन-परिवर्धन करके आत्मचिकित्सा करने में।
प्रस्तुत पद में सर्वप्रथम आहारादि दस संज्ञाओं का नामोल्लेख करके तत्पश्चात् सामान्यरूप से नारकों
से लेकर वैमानिकों तक सर्वसंसारी जीवों में इन दसों संज्ञाओं का न्यूनाधिक रूप में एक या दूसरी
तरह से सद्भाव बतलाया है। एकेन्द्रिय जीवों में ये संज्ञाएं अव्यक्तरूप से रहती हैं और उत्तरोत्तर
इन्द्रियों के विकास के साथ ये स्पष्टरूप से जीवों में पाई जाती हैं। तत्पश्चात् इन दस संज्ञाओं में से
आहारादि मुख्य चार संज्ञाओं का चार गित वाले जीवों की अपेक्षा से विचार किया गया है कि किस
गित के जीव में कौन-सी संज्ञा अधिकांश रूप में पाई जाती है? यहाँ यह स्पष्ट बताया गया है कि
नैरियकों में प्राय: भयसंज्ञा का, तिर्यंचों में आहारसंज्ञा का, मनुष्यों में मैथुनसंज्ञा का और देवों में पिरग्रह
संज्ञा का प्राबल्य है। यों सामान्य रूप से चारों गतियों के जीवों में ये चारों संज्ञाएँ न्यूनाधिक रूप में
पाई जाती हैं। तत्पश्चात् प्रत्येक गति के जीव में इन चारों संज्ञाओं के अल्पबहुत्व का विचार
किया गया है। वृत्तिकार ने प्रत्येक गति के जीव में बाहुल्य से पाई जाने वाली संज्ञा का तथा तथारूप
संज्ञासम्पन्न जीव की अल्पता या अधिकता का युक्तिपुर:सर कारण बतलाया है। ^१
कुल मिलाकर 13 सूत्रों (सू. ७२५ से ७३७ तक) में जीवतत्व से सम्बद्ध संज्ञाओं का प्रस्तुत पद में
सांगोपांग विश्लेषण किया है।

१. (क) पण्णवणासुत्तं (परिशिष्ट और प्रस्तावना) भा. २, पृ. ७३-७७ (ख) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. १८८-१८९

⁽ग) जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा पृ. २४२ (घ) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२२

अट्ठमं सण्णापयं

अष्टम संज्ञापद

संज्ञाओं के दस प्रकार

७२५. कति णं भंते! सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—आहारसण्णा १ भयसण्णा २ मेहुणसण्णा ३ परिग्गहसण्णा ४ कोहसण्णा ५ माणसण्णा ६ मायासण्णा ७ लोभसण्णा ८ लोगसण्णा ९ ओघसण्णा १०।

[७२५ प्र.] भगवन्! संज्ञाएँ कितनी कही गई हैं ?

[७२५ उ.] गौतम! संज्ञाएं दस कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) आहारसंज्ञा, (२) भयसंज्ञा,

- (३) मैथुनसंज्ञा, (४) परिग्रहसंज्ञा, (५) क्रोधसंज्ञा, (६) मानसंज्ञा, (७) मायासंज्ञा,(८) लोभसंज्ञा,
- (९) लोकसंज्ञा और (१०) ओघसंज्ञा।

विवेचन—संज्ञाओं के दस प्रकार—प्रस्तुत सूत्र (७२५) में आहारसंज्ञा आदि दस प्रकार की संज्ञाओं का निरूपण किया गया है।

संज्ञा के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ और शास्त्रीय परिभाषा—संज्ञा की व्युत्पत्ति के अनुसार उसके दो अर्थ फलित होते हैं—(१) संज्ञान अर्थात्—आभोग संज्ञा है। (२) जीव जिस-जिसके निमित्त से सम्यक् प्रकार से जाना—पहिचाना जाता है, उसे संज्ञा कहते हैं; िकन्तु संज्ञा की शास्त्रीय परिभाषा इस प्रकार है—वेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से तथा ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से विचित्र आहारादिप्राप्ति की (अभिलाषारूप, रुचिरूप या मनोवृत्तिरूप) क्रिया। यह संज्ञा उपाधिभेद से दस प्रकार की है।

संज्ञा के दस भेदों की शास्त्रीय परिभाषा—(१) आहारसंज्ञा—क्षुधावेदनीयकर्म के उदय से ग्रासादिरूप आहार के लिए तथाविध पुद्गलों की ग्रहणाभिलाषारूप क्रिया।(२) भयसंज्ञा—भयमोहनीकर्म के उदय से भयभीत प्राणी के नेत्र, मुख में विकारोत्पत्ति, शरीर में रोमाञ्च, कम्पन, घबराहट आदि मनोवृत्तिरूप क्रिया।(३) मैथुनसंज्ञा—पुरुषवेद (मोहनीयकर्म) के उदय से स्त्री-प्राप्ति की अभिलाषा रूप तथा स्त्रीवेद के उदय से पुरुष-प्राप्ति की अभिलाषारूप एवं नपुंसकवेद के उदय से दोनों की अभिलाषारूप क्रिया।(४) परिग्रहसंज्ञा—लोभमोहनीय के उदय से संसार के प्रधानकारणभूत सचित-अचित पदार्थों के प्रति आसिक्तपूर्वक उन्हें ग्रहण करने की अभिलाषारूप क्रिया।(५) क्रोधसंज्ञा—क्रोधमोहनीय के उदय से आहंकार, दर्प, गर्व आदि के रूप कोपवृत्ति के अनुरूप चेष्टा।(६) मानसंज्ञा—मानमोहनीय के उदय से अहंकार, दर्प, गर्व आदि के रूप

में जीव की परिणित (परिणामधारा)। (७) मायासंज्ञा—मायामोहनीय के उदय से अशुभ-अध्यवसायपूर्वक मिथ्याभाषण आदि रूप क्रिया करने की वृत्ति। (८) लोभसंज्ञा—लोभमोहनीय के उदय से सचित-अचित पदार्थों की लालसा। (१) लोकसंज्ञा—लोक में रूढ़ किन्तु अन्धविश्वास, हिंसा, असत्य आदि के कारण हेय होने पर भी लोकरूढ़ि का अनुसरण करने की प्रबल वृत्ति या अभिलाषा। अथवा मितज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से संसार के सुन्दर, रुचिकर पदार्थों को (या लोकप्रचित्त शब्दों के अनुरूप पदार्थों) को विशेषरूप से जानने की तीव्र अभिलाषा। (१०) ओघसंज्ञा—बिना उपयोग के (बिना सोचे-विचारे) धुन-ही-धुन में किसी कार्य को करने की वृत्ति या प्रवृत्ति अथवा सनक। जैसे-उपयोग या प्रयोजन के बिना ही यों ही किसी वृक्ष पर चढ़ जाना अथवा बैठे-बैठे पैर हिलाना, तिनके तोड़ना आदि। अथवा मितज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से संसार के सुन्दर रुचिकर पदार्थों या लोकप्रचित्त शब्दों के अनुरूप पदार्थों (अर्थों) को सामान्यरूप से जानने की अभिलाषा। इन दस ही प्रकार की चार संज्ञाओं में से जस प्राणों में जिस संज्ञा का बाहुल्य हो उस पर से उसे जान-पहिचान लिया जाता है। जैसे-नैरियकों की भयसंज्ञा की अधिकता के कारण जान लिया जाता है अथवा जिसमें जिस प्रकार की अभिलाषा, मनोवृत्ति या प्रवृत्ति हो, उसे वह संज्ञा समझ ली जाती है। प

नैरियकों से वैमानिकों तक में संजाओं की प्ररूपणा

७२६. नेरइयाणं भंते! कति सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा! दस सण्णाओ पण्णताओ। तं जहा-आहारसण्णा १ भयसण्णा २ मेहुणसण्णा ३ परिग्गहसण्णा ४ कोहसण्णा ५ माणसण्णा ६ मायासण्णा ७ लोभसण्णा ८ लोगसण्णा ९ ओघसण्णा १०।

[७२६ प्र.] भगवन्! नैरियकों में कितनी संज्ञाएँ कही गई हैं ?

[७२६ उ.] गौतम! उनमें दस संज्ञाएँ कही गई हैं। वे इस प्रकार है-(१) आहारसंज्ञा, (२) भयसंज्ञा, (३) मैथुनसंज्ञा, (४) परिग्रहसंज्ञा, (५) क्रोधसंज्ञा, (६) मानसंज्ञा, (७) मायासंज्ञा, (८) लोभसंज्ञा, (९) लोकसंज्ञा और (१०) ओधसंज्ञा।

७२७. असुरकुमाराणं भंते! कित सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा! दस सण्णओ पण्णत्ताओ। तं जहा-आहारसण्णा जाव ओघसण्णा।

[७२७ प्र.] भगवन्! असुरकुमार देवों में कितनी संज्ञाएँ कही हैं ?

[७२७ उ.] गौतम! असुरकुमारों में दसों संज्ञाएँ कही गई हैं। वे इस प्रकार-आहारसंज्ञा यावत् औघसंज्ञा।

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२२ (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनीटीका भा. ३, पृ. ४०-४१

७२८. एवं जाव थणियकुमाराणं।

[७२८] इसी प्रकार यावत् स्तिनतकुमार देवों तक (में पाई जाने वाली संज्ञाओं के विषय में) कहना चाहिए।

७२९. एवं पुढविकाइयाणं वेमाणियावसाणाणं णेयव्वं।

[७२९] इसी प्रकार पृथ्वीकायिकों से लेकर वैमानिक-पर्यन्त (में पाई जाने वाली संज्ञाओं के विषय में) समझ लेना चाहिए।

विवेचन—नैरियकों से वैमानिकों तक में संज्ञाओं की प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रों में नैरियकों से लेकर वैमानिक देवों तक में दसों संज्ञाओं में से पाई जाने वाली संज्ञाओं की प्ररूपणा की गई है। सामान्यरूप से चौबीस दण्डकवर्ती समस्त सांसारिक जीवों में प्रत्येक में दसों ही संज्ञाएँ पाई जाती हैं। एकेन्द्रिय जीवों में ये संज्ञाएँ अव्यक्तरूप से रहती हैं, जबिक पंचेन्द्रियों में ये स्पष्टत: जानी जाती हैं। यहाँ ये संज्ञाएँ प्राय: पंचेन्द्रियों को लेकर बताई गई हैं। १

नारकों में संज्ञाओं का विचार

७३०. नेरइया णं भंते! किं आहारसण्णेवउत्ता भयसण्णोवउत्ता मेहुणसण्णोवउत्ता परिग्गहसण्णोउवत्ता ?

गोयमा! ओसण्णं कारणं पडुच्च भयसण्णोवउत्ता, संतइभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि।

[७३० प्र.] भगवन्! नैरियक क्या आहारसंज्ञोपयुक्त (आहारसंज्ञा से युक्त सम्पन्न) हैं, भयसंज्ञा से उपयुक्त हैं, मैथुनसंज्ञोपयुक्त हैं अथवा पिरग्रहसंज्ञोपयुक्त हैं ?

[७३० उ.] गौतम! उत्सन्नकारण (बहुलता से बाह्य कारण की अपेक्षा से वे भयसंज्ञा से उपयुक्त हैं,) किन्तु संतितभाव (आन्तरिक सातत्य अनुभवरूप भाव) की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञोपयुक्त भी हैं यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी है।

७३१. एतेसि णं भंते! नेरइयाणं आहारसण्णोवउत्ताणं भयसण्णोवउत्ताणं मेहुणसण्णोवउत्ताणं परिग्गहसण्णोवउत्ताणं य कतरे कतरेहिंतो अप्या वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा नेरइया मेहुणसण्णोवउत्ता, आहारसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, परिग्गहसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, भयसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा।

[७३१ प्र.] भगवन्! इन आहारसंज्ञोपयुक्त, भयसंज्ञोपयुक्त, मैथुनसंज्ञोपयुक्त एवं परिग्रहसंज्ञोपयुक्त नारकों में से कौन-किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२३

[७३१ उ.] गौतम! सबसे थोड़े मैथुनसंज्ञोपयुक्त, नैरियक हैं, उनसे संख्यातगुणे आहारसंज्ञोपयुक्त हैं, उनसे पिरग्रहसंज्ञोपयुक्त नैरियक संख्यातगुणे हैं और उनसे भी संख्यातगुणे अधिक भयसंज्ञोपयुक्त नैरियक हैं।

विवेचन—नारकों में पाई जाने वाली संज्ञाओं के अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ७३०-७३१) में दो दृष्टियों से आहारादि चार संज्ञाओं में से नारकों में पाई जाने वाली संज्ञाओं तथा उनके अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

'ओसन्नकारणं' तथा 'संतइभावं' की व्याख्या-'ओसन्न'—(उत्सन्न) का अर्थ यहाँ 'बाहुल्य अर्थात् प्राय: अधिकांशरूप' से है। 'कारण' शब्द का अर्थ है—बाह्यकारण। इसी प्रकार संतइभाव (संतितभाव) का अर्थ है—सातत्य (प्रवाह) रूप से आन्तरिक अनुभवरूप भाव।

नैरियकों में भयसंज्ञा की बहुलता का कारण—नैरियकों में नरकपाल परमाधार्मिक असुरों द्वारा विक्रिया से कृत शूल, शक्ति, भाला आदि भयोत्पादक शस्त्रों का अत्यधिक भय बना रहता है। इसी कारण यहाँ बताया गया है कि बाह्य कारण की अपेक्षा से नैरियक बहुलता से (प्राय:) भययसंज्ञोपयुक्त होते हैं।

सतत आन्तरिक अनुभवरूप कारण की अपेक्षा से चारों संज्ञाएँ—आन्तरिक अनुभवरूप मनोभाव की अपेक्षा से नैरियकों में आहारादि चारों संज्ञाएँ पाई जाती हैं।

नैरियकों में चारों संज्ञाओं की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का विचार—सबसे थोड़े मैथुनसंज्ञोपयुक्त नारक हैं, क्योंकि नैरियकों के शरीर रातिदन निरन्तर दुःख की अग्नि से संतप्त रहते हैं, आँख की पलक झपकने जितने समय तक उन्हें सुख नहीं मिलता। अहिनश दुःख की आग में पचने वाले नारकों को मैथुनेच्छा नहीं होती। कदाचित् कि नहीं को मैथुनसंज्ञोपयुक्त होते हैं। मैथुनसंज्ञोपयुक्त नारकों की अपेक्षा आहारसंज्ञोपयुक्त नारक संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि उन दुःखी नारकों में प्रचुरकाल तक आहार की संज्ञा बनी रहती है। आहारसंज्ञोपयुक्त नारकों की अपेक्षा परिग्रहसंज्ञोपयुक्त नारक संख्यातगुणे अधिक इसिलए होते हैं कि नैरियकों को आहारसंज्ञा सिर्फ शरीरपोषण के लिए होती है, जबिक परिग्रहसंज्ञो शरीर के अतिरिक्त जीवनरक्षा के लिए शस्त्र आदि में होती है और वह चिरस्थायी होती है और परिग्रहसंज्ञोपयुक्त नारकों की अपेक्षा भयसंज्ञा वाले नारक संख्यातगुणे अधिक इसिलए बताए हैं कि नरक में नारकों को मृत्युपर्यन्त सतत भय की वृत्ति बनी रहती है। इस कारण भयसंज्ञा वाले नारक पूर्वोक्त तीनों संज्ञाओं वालों से अधिक हैं तथा पृच्छा समय में भी नारक अतिप्रभूततम भयसंज्ञोपयुक्त पाये जाते हैं।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२३

तिर्यञ्चों में संज्ञाओं का विचार

७३२. तिरिक्खजोणिया णं भंते! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ? गोयमा! ओसण्णं कारणं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता, संतइभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि।

[७३२ प्र.] भगवन्! तिर्यञ्चयोनिक जीव क्या आहारसंज्ञोपयुक्त होते हैं यावत् (अथवा) परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते हैं?

[७३२ उ.] गौतम! बहुलता से बाह्य कारण की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञोपयुक्त होते हैं, (किन्तु) आन्तरिक सातत्य अनुभवरूप भाव की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं, भयसंज्ञोपयुक्त भी यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं।

७३३. एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणियाणं आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणिया परिग्गहसण्णोवउत्ता, मेहुणसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, भयसण्णोउवत्ता संखेज्जगुणा, आहारसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा।

[७३३ प्र.] भगवन्! इन आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक जीवों में कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[७३३ उ.] गौतम! सबसे कम परिग्रहसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक होते हैं, (उनसे) मैथुनसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक संख्यातगुणे होते हैं और उनसे भी आहारसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक संख्यातगुणे होते हैं और उनसे भी आहारसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक संख्यातगुणे अधिक होते हैं।

विवेचन—तिर्यञ्चों में पाई जाने वाली संज्ञाएँ तथा उनके अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ७३२-७३३) में से प्रथम सूत्र में तिर्यञ्चों में बहुलता से तथा आन्तरिक अनुभवसातत्य से पाई जाने वाली संज्ञाओं का निरूपण है और द्वितीय सूत्र में उन-उन संज्ञाओं से उपयुक्त तिर्यञ्चों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

संज्ञाओं की दृष्टि से तिर्यञ्चों का अल्पबहुत्व—परिग्रहसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्च सबसे कम होते हैं, क्योंकि तिर्यञ्चों में एकेन्द्रियों की संज्ञा बहुत ही अव्यक्त होती है, शेष तिर्यञ्चों में भी परिग्रहसंज्ञा अल्पकालिक होती है, अतः पृच्छासमय में वे थोड़े ही पाए जाते हैं। परिग्रहसंज्ञा वालों की अपेक्षा मैथुनसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्च संख्यातगुणे अधिक इसिलए बताए हैं कि उनमें मैथुनसंज्ञा का उपयोग प्रचुरतर काल तक बना रहता है। उनकी अपेक्षा भयसंज्ञा में उपयुक्त तिर्यञ्च संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि उन्हें सजातियों (तिर्यञ्चों) और विजातियों (तिर्यञ्चेतर प्राणियों) से भय बना रहता है और भय का उपयोग प्रचुरतम काल तक रहता है। उनकी अपेक्षा भी आहारसंज्ञा में उपयुक्त तिर्यञ्च संख्यातगुणे अधिक होते हैं, क्योंकि सभी तिर्यञ्चों में प्रायः सतत (हर समय) आहारसंज्ञा का सद्भाव रहता है।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति पत्रांक २२३

मनुष्यों में संज्ञाओं का विचार

७३४. मणुस्साणं भंते! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

गोयमा! ओसण्णकारणं पडुच्च मेहुणसण्णोवउत्ता, संततिभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि ।

[७३४ प्र.] भगवन्! क्या मनुष्य आहारसंज्ञोपयुक्त होते हैं, अथवा यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते हैं ? [७३४ उ.] गौतम! बहुलता से (प्राय:) बाह्य कारण की अपेक्षा से (वे) मैथुनसंज्ञोपयुक्त होते हैं, (किन्तु) आन्तरिक सातत्यानुभवरूप भाव की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं, यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं।

७३५. एतेसि णं भंते! मणुस्साणं आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा मणूसा भयसण्णोवउत्ता, आहारसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, परिग्गहसण्णोउवत्ता संखेज्जगुणा, मेहुणसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा।

[७३५ प्र.] भगवन्! आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त मनुष्यों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक होते हैं ?

[७३५ उ.] गौतम! सबसे थोड़े मनुष्य भयसंज्ञोपयुक्त होते हैं, (उनसे) आहारसंज्ञोपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे होते हैं, (उनसे) परिग्रहसंज्ञोपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे अधिक होते हैं (और उनसे भी) संख्यातगुणे (अधिक मनुष्य) मैथुनसंज्ञोपयुक्त होते हैं।

विवेचन—मनुष्यों में पाई जाने वाली संज्ञाओं और उनके अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ७३४-७३५) में क्रमश: मनुष्य में बहुलता से तथा सातत्यानुभवभाव से पाई जाने वाली संज्ञाओं एवं उन संज्ञाओं वाले मनुष्यों का अल्पबहुत्व प्रस्तुत किया गया है।

चारों संज्ञाओं की अपेक्षा से मनुष्यों का अल्पबहुत्व—भयसंज्ञोपयुक्त मनुष्य सबसे कम इसलिए बताए हैं कि कुछ ही मनुष्यों में अल्प समय तक ही भयसंज्ञा रहती है। उनकी अपेक्षा आहारसंज्ञोपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे हैं, क्योंकि मनुष्यों में आहारसंज्ञा अधिक काल तक बनी रहती है। आहारसंज्ञा वाले मनुष्यों की अपेक्षा परिग्रह संज्ञोपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे अधिक होते हैं, क्योंकि आहार की अपेक्षा मनुष्यों को परिग्रह की चिन्ता एवं लालसा अधिक होती है। परिग्रहसंज्ञा वाले मनुष्यों की अपेक्षा भी मैथुनसंज्ञा में उपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे अधिक पाए जाते हैं, क्योंकि मनुष्यों को प्राय: मैथुनसंज्ञा अतिप्रभुत काल तक बनी रहती है। है

देवों में संज्ञाओं का विचार

७३६. देवा णं भंते! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२३

गोयमा! उस्सण्णं कारणं पडुच्च परिग्गहसण्णोवउत्ता, संतितभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि।

[७३६ प्र.] भगवन्! क्या देव आहारसंज्ञोपयुक्त होते हैं, (अथवा) यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते हैं ? [७३६ उ.] गौतम! बाहुल्य से (प्राय:) बाह्य कारण की अपेक्षा से (वे) परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते हैं, (किन्तु) आन्तरिक सातत्य अनुभवरूप भाव की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञापयुक्त भी होते हैं, यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं।

७३७. एतेसि णं भंते! देवाणं आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा देवा आहारसण्णोवउत्ता, भयसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, मेहुणसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, परिग्गहसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा।

॥ पण्णवणाएं भगवईए अट्टमं सण्णापयं समत्तं॥

[७३७ प्र.] भगवन्! इन आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त देवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते हैं ?

[७३७ उ.] गौतम! सबसे थोड़े आहारसंज्ञोपयुक्त देव हैं, (उनकी अपेक्षा) भयसंज्ञोपयुक्त देव संख्यातगुणे हैं, (उनकी अपेक्षा) मैथुनसंज्ञोपयुक्त देव संख्यातगुणे हैं और उनसे भी संख्यातगुणे परिग्रहसंज्ञोपयुक्त देव हैं।

विवेचन—देवों में पाई जाने वाली संज्ञाओं और उनके अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ७३६-७३७) में देवों में बाहुल्य से परिग्रहसंज्ञा का तथा आन्तरिक अनुभव की अपेक्षा से चारों ही संज्ञाओं के निरूपण पूर्वक चारों संज्ञाओं की अपेक्षा से उनके अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

देवों में बाहुल्य से परिग्रहसंज्ञा क्यों ? — देव अधिकांशत: परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते हैं। क्योंकि परिग्रहसंज्ञा के जनक कनक, मणि, रत्न आदि में उन्हें सदा आसिक्त बनी रहती है।

देवों का चारों संज्ञाओं की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे कम आहारसंज्ञोपयुक्त देव होते हैं, क्योंकि देवों की आहारेच्छा का विरहकाल बहुत लम्बा होता है तथा आहारसंज्ञा के उपयोग का काल बहुत थोड़ा होता है। अतएव पृच्छा के समय वे थोड़े ही पाए जाते है। आहारसंज्ञोपयुक्त देवों की अपेक्षा भयसंज्ञोपयुक्त देव संख्यातगुणे अधिक होते हैं, क्योंकि भयसंज्ञा बहुत-से देवों को चिरकाल तक रहती है। भयसंज्ञोपयुक्त देवों की अपेक्षा मैथुनसंज्ञा वाले देव संख्यातगुणे अधिक और उनसे भी परिग्रहसंज्ञोपयुक्त देव संख्यातगुणे कहे गए हैं, कारण पहले बताया जा चुका है। है

॥ प्रज्ञापना सूत्र : अष्टम संज्ञापद समाप्त ॥

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२४

णवमं जोणिपयं

नौवां योनिपद

प्राथमिक

प्रज्ञापना सूत्र का यह नौवां 'योनिपद' है।
एक भव का आयुष्य पूर्ण होने पर जीव अपने साथ तैजस और कार्मण शरीर को लेकर जाता है।
फिर जिस स्थान में जाकर वह नए जन्म के यौगिक औदारिक आदि शरीर के पुद्गलों को ग्रहण करता है या गर्भरूप में उत्पन्न होता है, अथवा जन्म लेता है, उस उत्पत्तिस्थान को 'योनि' कहते हैं।
योनि का प्रत्येक प्राणी के जीवन में बहुत बड़ा महत्त्व है, क्योंकि जिस योनि में प्राणी उत्पन्न होता है, वहाँ का वातावरण, प्रकृति, संस्कार, परम्परागत प्रवृत्ति आदि का प्रभाव उस प्राणी पर पड़े बिना नहीं रहता। इसलिए प्रस्तुत पद में श्री श्यामाचार्य ने योनि के विविध प्रकारों का उल्लेख करके उन-उन योनियों की अपेक्षा से जीवों का विचार प्रस्तुत किया है।
प्रस्तुत पद में योनि का अनेक दृष्टियों से निरूपण किया गया है। सर्वप्रथम शीत, उष्ण और शीतोष्ण, इस प्रकार योनि के तीन भेद करके नैरियकों से लेकर वैमानिकों तक में किस जीव की कौन-सी योनि है, इसकी प्ररूपणा की गई है, तदनन्तर इन तीनों योनियों वाले और अयोनिक जीवों में कौन किससे कितने अल्पाधिक हैं? इसका विश्लेषण है। तत्पश्चात् सचित्त, अचित्त और मिश्र, इस प्रकार त्रिविधयोनियों का उल्लेख करके इसी तरह की चर्चा-विचारणा की है। तत्पश्चात् संवृत, विवृत और संवृत-विवृत यों योनि के तीन भेद करके पुन: पहले की तरह विचार किया गया है और अन्त में मनुष्यों की कूर्मोन्नता आदि तीन विशिष्ट योनियों का उल्लेख करके उनकी अधिकारिणी स्त्रियों का तथा उनमें जन्म लेने वाले मनुष्यों का प्रतिपादन किया गया है। कुल मिलाकर समस्त जीवों की योनियों के विषय में इस पद में सुन्दर चिन्तन प्रस्तुत किया गया है।
जो चौरासी लक्ष जीवन योनियां हैं, उनका मुख्य उद्गम स्रोत ये ही ९ प्रकार की सर्व प्राणियों की योनियां हैं। इन्हीं की शाखा-प्रशाखा के रूप में ८४ लक्ष योनियां प्रस्फुटित हुई हैं।
समस्त मनुष्यों के उत्पत्तिस्थान का निर्देश करने वाली तीन विशिष्ट योनियां अन्त में बताई गई हैं— कूर्मोन्नता, शंखावर्ता और वंशीपत्रा। तीर्थकरादि उत्तमपुरुष कूर्मोन्नता योनि में जन्म धारण करते हैं, स्त्रीरत्न की शंखावर्ता योनि में अनेक जीव आते हैं, गर्भरूप में रहते हैं, उनके शरीर का चयोपचय

भी होता है, किन्तु प्रबल कामाग्नि के ताप से वे वहीं नष्ट हो जाते हैं, जन्म धारण नहीं करते, गर्भ से बाहर नहीं आते। इससे विदित होता है कि प्रबल कामभोग से गर्भस्थ जीव पनप नहीं सकता। तीसरी वंशीपत्रा योनि सर्वसाधारण मनुष्यों की होती है।

१. (क) पण्णवणासुत्तं मूलपाठ भा. १, पृ. १९० से १९२

⁽ख) पण्णवणासुत्तं (परिशिष्ट और प्रस्तावना) भा. २, पृ. ७७-७८

⁽ग) जैनागम साहित्य : मनन और मीमांसा, पृ. २४३

णवमं जोणिपयं

नौवाँ योनिपद

शीतादि विविध योनियों की नारकादि में प्ररूपणा

७३८. कतिविहा णं भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा! तिविहा जोणी पण्णत्ता। तं जहा—सीता जोणी १ उसिणा जोणी २ सीतोसिणा जोणी ३।

[७३८ प्र.] भगवन्! योनि कितने प्रकार की कही गई हैं ?

[७३८ उ.] गौतम! योनि तीन प्रकार की कही गई हैं। वह इस प्रकार—शीत योनि, उष्ण योनि और शीतोष्ण योनि।

७३९. नेरइयाणं भंते! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ? गोयमा! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, नो सीतोसिणा जोणी।

[७३९ प्र.] भगवन्! नैरियकों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७३९ उ.] गौतम! (नैरियकों की) शीत योनि भी होती है और उष्ण योनि भी होती है, (किन्तु) शीतोष्ण योनि नहीं होती।

७४०. असुरकुमाराणं भंते! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ? गोयमा! नो सीता, नो उसिणा, सीतोसिणा जोणी।

[७४० प्र.] भगवन्! असुरकुमार देवों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है?

[७४० उ.] गौतम! उनकी न तो शीत योनि होती है और न ही उष्ण योनि होती है, (किन्तु) शीतोष्ण योनि होती है।

७४१. एवं जाव थणियकुमाराणं।

[७४१] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक (की योनि के विषय में समझना चाहिए।)

७४२. पुढिवकाइयाणं भंते! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ? गोयमा! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी।

[७४२ प्र.] भगवन्! पृथ्वीकायिकों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४२ उ.] गौतम! उनकी शीत योनि भी होती है, उष्ण योनि भी होती है और शीतोष्ण योनि भी होती है।

७४३. एवं आउ-वाउ-वणस्सित-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिदियाण वि पत्तेयं भाणियव्वं।

[७४३] इसी तरह अप्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की प्रत्येक की योनि के विषय में कहना चाहिए।

७४४. तेउक्काइयाणं नो सीता, उसिणा, नो सीतोसिणा।

[७४४] तेजस्कायिक जीवों की शीत योनि नहीं होती, उष्ण योनि होती है, शीतोष्ण योनि नहीं होती।

७४५. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ? गोयमा! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी।

[७४५ प्र.] भगवन्! पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है, अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४५ उ.] गौतम! (उनकी) योनि शीत भी होती है, उष्ण भी होती है और शीतोष्ण भी होती है। ७४६. सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं एवं चेव।

[७४६] सम्मूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों (की योनि) के विषय में भी इसी तरह (कहना चाहिए।)

७४७. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा! नो सीता जोणी, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी।

[७४७ प्र.] भगवन्! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है या शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४७ उ.] गौतम! उनकी न तो शीत योनि होती है, न उष्ण योनि होती है, किन्तु शीतोष्ण योनि होती है।

७४८. मणुस्साणं भंते! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ? गोयमा! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी।

[७४८ प्र.] भगवन्! मनुष्यों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४८ उ.] गौतम! मनुष्यों की शीत योनि भी होती है, उष्ण योनि भी होती है और श्रीतोष्ण बोनि भी होती है। ७४९. सम्मुच्छिममणुस्साणं भंते! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ? गोतम ! तिविहा वि जोणी ।

[७४९ प्र.] भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है, अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४९ उ.] गौतम! उनकी तीनों प्रकार की योनि होती है।

७५०. गब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ? गोयमा! नो सीता जोणी, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी।

[७५० प्र.] भगवन्! गर्भज मनुष्यों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७५० उ.] गौतम! उनकी न तो शीत योनि होती है, न उष्ण योनि होती है, किन्तु शीतोष्ण योनि होती है ?

७५१. वाणमंतरदेवाणं भंते! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ? गोतम! नो सीता, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी।

[७५१ प्र.] भगवन्! वाणव्यन्तर देवों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है, अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७५१ उ.] गौतम! उनकी न तो शीत योनि होती है और न ही उष्ण योनि होती है, किन्तु शीतोष्ण योनि होती है।

७५२. जोइसिय-वेमाणियाण वि एवं चेव।

[७५२] इसी प्रकार ज्योतिष्कों और वैमानिक देवां की (योनि के विषय में समझना चाहिए)

७५३. एतेसि णं भंते! जीवाणं सीतजोणियाणं उसिणजोणियाणं सीतोसिणजोणियाणं अजोणियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोतमा! सव्वत्थोवा जीवा सीतोसिणजोणिया, उसिणजोणिया असंखेज्जगुणा, अजोणिया अणंतगुणा, सीतजोणिया अणंतगुणा॥१॥

[७५३ प्र.] भगवन्! इन शीतयोनिकों जीवों उष्णयोनिक जीवों, शीतोष्णयोनिक जीवों तथा अयोनिक जीवों में से कौन किनसे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं अथवा विशेषाधिक हैं ?

[७५३ उ.] गौतम! सबसे थोड़े जीव शीतोष्णयोनिक हैं, उष्णयोनिक जीव उनसे असंख्यातगुणे अधिक हैं, उनसे अयोनिक जीव अनन्तगुणे अधिक हैं ओर उनसे भी शीतयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं॥१॥

विवेचन—नैरियकादि जीवों का शीतादि त्रिविध योनियों की दृष्टि से विचार—प्रस्तुत सोलह सूत्रों (सू. ७३८ से ७५३ तक) में नैरियकों से लेकर वैमानिकों तक चौबीस दण्डकवर्ती जीवों का शीत, उष्ण एवं शीतोष्ण, इन त्रिविध योनियों की दृष्टि से विचार किया गया है। योनि और उसके प्रकारों की व्याख्या-'योनि' शब्द 'यू मिश्रणे' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका व्युत्पत्यर्थ होता है — जिसमें मिश्रण होता है, वह योनि है। इसकी शास्त्रीय परिभाषा है — तैजस और कार्मण शरीर वाले प्राणी, जिसमें औदारिक आदि शरीरों के योग्य पुद्गलस्कन्धों के समुदाय के साथ मिश्रित होते हैं, वह योनि है। योनि से यहाँ तात्पर्य है — जीवों का उत्पत्तिस्थान। शीत योनि का अर्थ है — जो योनि शीतस्पर्श-परिणाम वाली हो। उष्ण योनि का अर्थ है — जो योनि उष्णस्पर्श परिणाम वाली हो। शीतोष्ण योनि का अर्थ है के परिणाम वाली हो।

सप्त नरकपृथ्वियों की योनि का विचार —यों तो सामान्यतया नैरियकों की दो ही योनियां बताई हैं --शीत योनि और उष्ण योनि, तीसरी शीतोष्ण योनि उनके नहीं होती। किस नरकपृथ्वी में कौन-सी योनि है? यह वृत्तिकार बताते हैं —रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और बालुकाप्रभा में नारकों के जो उपपात (उत्पत्ति) क्षेत्र हैं, वे सब शीतस्पर्श परिणाम से परिणत हैं। इन उपपातक्षेत्रों के सिवाय इन तीनों पृथ्वियों में शेष स्थान उष्णस्पर्श परिणामपरिणत हैं। इस कारण यहाँ के शीत योनि वाले नैरियक उष्णवेदना का वेदन करते हैं। पंकप्रभाप्रथ्वी में अधिकांश उपपातक्षेत्र शीतस्पर्श-परिणाम से परिणत हैं, थोडे-से ऐसे क्षेत्र हैं जो उष्णस्पर्श-परिणाम से परिणत हैं। जिन प्रस्तटों (पाथडों) और नारकावासों में शीतस्पर्शपरिणाम वाले उपपातक्षेत्र हैं उनमें उन क्षेत्रों के अतिरिक्त शेष समस्त स्थान उष्णस्पर्शपरिणाम वाले होते हैं तथा जिन प्रस्तटों और नारकावासों में उष्णस्पर्शपरिणाम वाले उपपातक्षेत्र हैं उनमें उनके अतिरिक्त अन्य सब स्थान शीतस्पर्शपरिणाम वाले होते हैं। इस कारण वहाँ के बहुत से शीतयोनिक नैरियक उष्णवेदना का वेदन करते हैं, जबिक थोड़े से उष्णयोनिक नैरियक शीतवेदना का वेदन करते हैं। धूमप्रभापृथ्वी में बहुत से उपपातक्षेत्र उष्णस्पर्श परिणाम से परिणत हैं, थोडे से क्षेत्र शीतस्पर्शपरिणाम से परिणत होते हैं। जिन प्रस्तटों और जिन नारकावासों में उष्ण स्पर्शपरिणाम-परिणत उपपातक्षेत्र हैं, उनमें उनके अतिरिक्त अन्य सब स्थान शीतपरिणाम वाले होते हैं। जिन प्रस्तटों या नारकावासों में शीतस्पर्शपरिणाम-परिणत उपपातक्षेत्र हैं, उनमें उनसे अतिरिक्त अन्य सब स्थान उष्णस्पर्शपरिणाम वाले हैं। इस कारण वहाँ के बहुत से उष्णयोनिक नैरियक शीत वेदना का वेदन करते हैं, थोड़े-से जो शीतयोनिक हैं, वे उष्णवेदना का वेदन करते हैं। तम:प्रभा और तमस्तम:प्रभा पृथ्वी में सभी उपपातक्षेत्र उष्णस्पर्शपरिणाम-परिणम हैं। उनसे अतिरिक्त अन्य सब स्थान वहाँ शीतस्पर्शपरिणाम वाले हैं। इस कारण वहाँ के उष्णयोनिक नारक शीतवेदना का वेदन करते हैं।

भवनवासी देव आदि की योनियां शीतोष्ण क्यों ? — सर्वप्रकार के भवनवासी देव, गर्भज, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, गर्भज मनुष्य तथा व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के उपपातक्षेत्र शीत और उष्ण, दोनों स्पर्शों से परिणत हैं, इस कारण उनकी योनियां शीत और उष्ण दोनों स्वभाव वाली(शीतोष्ण) हैं।

तेजस्कायिकों के सिवाय पृथ्वीकायिकों आदि की तीनों प्रकार की योनि — तेजस्कायिक उष्णयोनिक ही होते हैं, यह बात प्रत्यक्षसिद्ध है। उनके सिवाय अन्य समस्त एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के उत्पत्तिस्थान शीतस्पर्श वाले, उष्णस्पर्श वाले और शीतोष्णस्पर्श वाले होते हैं, इस कारण उनकी योनि तीनों प्रकार की बताई गई है।

त्रिविध योनि वालों और अयोनिकों का अल्पबहुत्व — सबसे थोड़े जीव शीतोष्ण योनि वाले होते हैं, क्योंकि शीतोष्ण योनि वाले सिर्फ भवनपित देव, गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, गर्भज मनुष्य व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव ही हैं। उनसे असंख्यातगुणे उष्णयोनिक जीव हैं, क्योंकि सभी सूक्ष्म-बादरभेदयुक्त तेजस्कायिक, अधिकांश नैरियक, कितपय पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिक उष्णयोनिक होते हैं। उनकी अपेक्षा अयोनिक (योनिरिहत — सिद्ध) जीव अनन्तगुणे होते हैं, क्योंकि सिद्ध जीव अनन्त हैं। इनकी अपेक्षा शीतयोनिक अनन्तगुणे होते हैं, क्योंकि सभी अनन्तकायिक जीव शीत योनि वाले होते हैं और वे सिद्धों से भी अनन्तगुणे हैं। है

नैरियकादि में सिचत्तादि त्रिविध योनिकों की प्ररूपणा

७५४. कतिविहा णं भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा! तिविहा जोणी पण्णत्ता। तं जहा —सचित्ता १ अचित्ता २ मीसिया ३।

[७५४ प्र.] भगवन्! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[७५४ उ.] गौतम! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार —(१) सचित्त योनि, (२) अचित्त योनि (३) मिश्र योनि।

७५५. नेरइयाणं भंते! किं सचित्ता जोणी अचित्ता जोणी मीसिया जोणी ? गोयमा! नो सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, णो मीसिया जोणी।

[७५५ प्र.] भगवन्! नैरियकों की क्या सिचत्त योनि है, अचित्त योनि है अथवा मिश्र योनि होती है ?

[७५५ उ.] गौतम! नारकों की योनि सचित्त नहीं होती है, अचित्त योनि होती है, (किन्तु) मिश्र योनि नहीं होती।

७५६. असुरकुमाराणं भंते! किं सचित्ता जोणी अचित्ता जोणी मीसिया जोणी ? गोयमा! नो सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, नो मीसिया जोणी।

[७५६ प्र.] भगवन्! असुरकुमारों की योनि क्या सिचत्त होती है, अचित्त होती है अथवा मिश्र योनि होती है ?

[৬५६ उ.] गौतम! उनके सचित्त योनि नहीं होती, अचित्त योनि होती है, (किन्तु) मिश्र योनि नहीं होती।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२५-२२६

७५७. एवं जाव थणियकुमाराणं।

[७५७] इसी प्रकार यावत् स्तिनतकुमारों तक की योनि के विषय में समझना चाहिए। ७५८. पुढिवकाइयाणं भंते! किं सिचत्ता जोणी अचित्ता जोणी मीसिया जोणी ? गोयमा! सिचत्ता वि जोणी, अचित्ता वि जोणी, मीसिया वि जोणी।

[७५८ प्र.] भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों की क्या सिचत्त योनि है, अचित्त होती है अथवा मिश्र योनि होती है?

[७५८ उ.] गौतम! उनकी योनि सचित्त भी होती है, अचित्त भी होती है और मिश्र योनि भी होती है। ७५९. एवं जाव चउरिंदियाणं।

[७५९] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवों तक (की योनि के विषय में समझना चाहिए।) ७६०. सम्मुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं सम्मुच्छिममणुस्साण य एवं चेव ।

[७६०] सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकों एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की योनि के विषय में इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

७६१. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं गब्भवक्कंतियमणुस्साण य नो सचित्ता, नो अचित्ता, मीसिया जोणी।

[७६१] गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों तथा गर्भज मनुष्यों की योनि न तो सचित्त होती है और न ही अचित्त, किन्तु मिश्र योनि होती है।

७६२. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं।

[७६२] वाणव्यन्तर देवों, ज्योतिष्क देवों एवं वैमानिक देवों (की योनि की विषय में) असुरकुमारों के (योनिविषयक वर्णन के) समान ही (समझना चाहिए।)

७६३. एतेसि णं भंते! जीवाणं सचित्तजोणीणं अचित्तजोणीणं मीसजोणीणं अजोणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मीसजोणिया, अचित्तजोणिया असंखेज्जगुणा, अजोणिया अणंतगुणा सचित्तजोणिया अणंतगुणा॥२॥

[७६३ प्र.] भगवन्! इन सचित्तयोनिक जीवों, अचित्तयोनिक जीवों, मिश्रयोनिक जीवों तथा अयोनिक में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते हैं ?

[७६३ उ.] गौतम! मिश्रयोनिक जीव सबसे थोड़े होते हैं, (उनसे) अचित्तयोनिक जीव असंख्यातगुणे अधिक हैं, (उनसे) अयोनिक जीव अनन्तगुणे होते हैं [और उनसे भी] सचित्तयोनिक जीव अनन्तगुणे होते हैं ॥ २॥

विवेचन—प्रकारान्तर से सचित्तादि त्रिविध योनियों की अपेक्षा से सर्व जीवों का विचार— प्रस्तुत दस सूत्रों (सू. ७५४ से ७६३ तक) में योनि के प्रकारान्तर से सचित्तादि तीन भेद बताकर, चौबीस दण्डकवर्ती जीवों के क्रम से किस जीव के कौन-कौन-सी योनियाँ होती हैं ? तथा कौन-सी योनि वाले जीव अल्प, बहुत या विशेषाधिक होते हैं ? इसकी चर्च की गई है।

सचित्तादि योनियों के अर्थ—सचित्त योनि—जो योनि जीव (आत्म) प्रदेशों से सम्बद्ध हो। अचित्त योनि—जो योनि जीव रहित हो। मिश्र योनि—जो योनि जीव से मुक्त और अमुक्त उभयस्वरूप वाली हो, यानी जो सचित्त और अचित्त दोनों प्रकार की हो।

किन जीवों की योनि कैसी और क्यों ?—नारकों के जो उपपात क्षेत्र है, वे किसी जीव के द्वारा पिरगृहीत न होने से सचित्त (सजीव) नहीं होते, इस कारण उनकी योनि अचित्त ही होती है। यद्यपि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव समस्त लोक (लोकाकाश) में व्याप्त होते हैं, तथापि उन जीवों के प्रदेशों से उन उपपातक्षेत्रों के पुद्गल परस्परानुगमरूप से सम्बद्ध नहीं होते, अर्थात्—वे उपपातक्षेत्र उन सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों के शरीररूप नहीं होते, इस कारण नैरियकों की योनि अचित्त ही कही गई है। इसी प्रकार असुरकुमारादि दशिवध भवनपित देवों, व्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिक देवों की योनियां भी अचित्त ही समझनी चाहिए। पृथ्वीकायिकों से लेकर सम्मूर्च्छिम मनुष्य पर्यन्त सबके उपपातक्षेत्र जीवों से पिरगृहीत भी होते हैं, अपिरगृहीत भी और उभयरूप भी होते हैं, इसिलए इनकी योनि तीनों प्रकार की होती है। गर्भज तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों और गर्भज मनुष्यों की जहाँ उत्पत्ति होती है, वहाँ अचित्त शुक्र-शोणित आदि पुद्गल भी होते हैं, अतएव वे मिश्र योनि वाले हैं।

सचित्तादि योनियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े जीव मिश्रयोनिक इसलिए बताए गए हैं कि मिश्रयोनिकों में केवल गर्भज तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य ही हैं। उनसे अचित्तयोनिक जीव असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि समस्त देव, नारक तथा कतिपय पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, प्रत्येकवनस्पतिकायिक, द्वि-न्नि-चतुरिन्द्रियजीव, सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्य अचित्त योनि वाले होते हैं। अचित्तयोनिकों की अपेक्षा अयोनिक (सिद्ध) जीव अनन्त हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त हैं और अयोनिकों की अपेक्षा भी सचित्तयोनिक जीव अनन्तगुणे अधिक हैं, क्योंकि निगोद के जीव सचित्तयोनिक होते हैं और वे सिद्धों से भी अनन्तगुणे अधिक होते हैं। है

सर्वजीवों में संवृतादि त्रिविध योनियों की प्ररूपणा

७६४. कतिविहा णं भंते! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा! तिविहा जोणी पण्णत्ता। तं जहा—संवुडा जोणी १ वियडा जोणी २ संवुडवियडा जोणी ३।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२६-२२७

[७६४ प्र.] भगवन्! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[७६४ उ.] गौतम! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) संवृत योनि, (२) विवृत योनि और (३) संवृत-विवृत योनि।

७६५. नेरइयाणं भंते! किं संवुडा जोणी वियडा जोणी संवुडवियडा जोणी ? गोयमा! संवुडा जोणी, नो वियडा जोणी, नो संवुडवियडा जोणी।

[७६५ प्र.] भगवन्! नैरियकों की क्या संवृत योनि होती है, विवृत्त योनि होती है, अथवा संवृत-विवृत योनि होती है ?

[७६५ उ.] गौतम! नैरयिकों की योनि संवृत होती है, परन्तु विवृत नहीं होती और न ही संवृत-विवृत होती है।

७६६. एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

[७६६] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक (की योनि के विषय में कहना चाहिए।) ७६७. बेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! नो संवुडा जोणी, वियडा जोणी, णो संवुडवियडा जोणी।

[७६७ प्र.] भगवन्! द्वीन्द्रिय जीवों की योनि संवृत होती है, विवृत होती या संवृत-विवृत होती है ? [७६७ उ.] गौतम! उनकी योनि संवृत नहीं होती (किन्तु) विवृत होती है, (पर) संवृत-विवृत योनि नहीं होती।

७६८. एवं जाव चउरिंदियाणं ।

[७६८] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवों तक (की योनि के विषय में समझ लेना चाहिए।) ७६९. सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं सम्मुच्छिममणुस्साण य एवं चेव।

[७६९] सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की (योनि के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए।)

७७०. गब्भवक्कंतियपंचेंदियितिरिक्खजोणियाणं गब्भवक्कंतियमणुस्साण य नो संवुडा जोणी, नो वियडा जोणी, संवुडवियडा जोणी।

[७७०] गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों और गर्भज मनुष्यों की योनि संवृत नहीं होती और न विवृत योनि होती है, किन्तु संवृत-विवृत होती है।

७७१. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा नेरइयाणं।

[७७१] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की (योनि के सम्बन्ध में) नैरियकों की (योनि की) तरह समझना चाहिए।

७७२. एतेसि णं भंते! जीवाणं संवुडजोणियाणं वियडजोणियाणं संवुडवियडजोणियाणं अजोणियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा संवुडवियडजोणिया, वियडजोणिया असंखेज्जगुणा, अजोणिया अणंतगुणा, संवुडजोणिया अणंतगुण॥ ३॥

[७७२ प्र.] भगवन्! इन संवृतयोनिक जीवों, विवृतयोनिक जीवों, संवृत-विवृतयोनिक जीवों तथा अयोनिक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते हैं ?

[७७२ उ.] गौतम! सबसे कम संवृत-विवृतयोनिक जीव होते हैं (उनसे) विवृतयोनिक जीव असंख्यातगुणे (अधिक) हैं, (उनसे) अयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं (और उनसे भी) संवृतयोनिक जीव अनन्तगुणे (अधिक) हैं॥ ३॥

विवेचन—तीसरे प्रकार से संवृतादि त्रिविध योनियों की अपेक्षा से जीवों का विचार—प्रस्तुत नौ सूत्रों (सू. ७६४ से ७७२ तक) में शास्त्रकार ने तृतीय प्रकार से योनियों के संवृतादि तीन भेद बता कर किस जीव के कौन-कौन-सी योनि होती है ? तथा कौन-सी योनि वाले जीव अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? इसका विचार प्रस्तुत किया है।

संवृतादि योनियों का अर्थ—संवृतयोनि—जो योनि आच्छादित(ढंकी हुई) हो। विवृतयोनि—जो योनि खुली हुई हो, अथवा बाहर से स्पष्ट प्रतीत होती हो। संवृत-विवृत योनि—जो संवृत और विवृत दोनों प्रकार की हो।

किन जीवों की योनि कौन और क्यों ?—नारकों की योनि संवृत इसिलए बताई है कि नारकों के उत्पत्तिस्थान नरकिनष्कुट होते हैं और वे आच्छादित (संवृत) गवाक्ष (झरोखे) के समान होते हैं। उन स्थानों में उत्पन्न हुए नारक शरीर से वृद्धि को प्राप्त होकर शीत से उष्ण और उष्ण से शीत स्थानों में गिरते हैं। इसी प्रकार भवनपित, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की योनि संवृत होती है, क्योंकि उनकी उत्पत्ति (उपपात) देवशैया में देवदूष्य से आच्छादित स्थान में होती है। एकेन्द्रिय जीव भी संवृत योनि वाले होते हैं, क्योंकि उनकी उत्पत्तिस्थली (योनि) स्पष्ट उपलक्षित नहीं होती। द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीवों तथा सम्मूच्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों एवं सम्मूच्छिम मनुष्यों की योनि विवृत हैं, क्योंकि इनके जलाशय आदि उत्पत्तिस्थान स्पष्ट प्रतीत होते हैं। गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों और गर्भज मनुष्यों की योनि संवृत-विवृत होती है, क्योंकि इनका गर्भ संवृत और विवृत उभयरूप होता है। अन्दर (उदर में) रहा हुआ गर्भ स्वरूप से प्रतीत नहीं होता, किन्तु उदर के बढ़ने आदि से बाहर से उपलक्षित होता है।

संवृतादि योनियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े संवृत-विवृत योनि वाले जीव होते हैं,क्योंकि गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य ही संवृत-विवृत योनि वाले हैं। उनकी अपेक्षा विवृतयोनिक जीव असंख्यातगुणे हैं, कयोंकि द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीव तथा

सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्य विवृत योनि वाले हैं। उनसे अयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त होते हैं और उनसे भी अनन्तगुणे संवृतयोनिक जीव होते हैं, क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव संवृतयोनिक होते हैं और वे सिद्धों से भी अनन्तगुणे होते हैं।^१

मनुष्यों की त्रिविध विशिष्ट योनियां

७७३. [१] कतिविहा णं भंते! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा! तिविहा जोणी पण्णत्ता। तं जहा—कुम्मुण्णया १ संखावत्ता २ वंसीपत्ता ३।

[७७३-१ प्र.] भगवन्! योनि कितने प्रकार की कही गई हैं ?

[७७३-१ उ.] गौतम! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) कुर्मोत्रता, (२) शंखावर्ता और(३) वंशीपत्रा।

[२] कुम्मुण्णया णं जोणी उत्तमपुरिसमाऊणं। कुम्मुण्णयाए णं जोणीए उत्तमपुरिसा गब्भे वक्कमंति। तं जहा —अरहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा।

[७७३-२] कूर्मीन्नता योनि उत्तमपुरुषों की माताओं की होती है। कूर्मीन्नता योनि में (ये) उत्तमपुरुष गर्भ में उत्पन्न होते हैं। जैसे —अर्हन्त (तीर्थकर), चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव।

[३] संखावत्ता णं जोणी इत्थिरयणस्स। संखावत्ताए णं जोणीए बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति, नो चेव णं निष्फर्जित।

[७७३-३] शंखावर्त्ता योनि स्त्रीरत्न की होती है। शंखावर्त्ता योनि में बहुत-से जीव और पुद्गल आते हैं गर्भरूप में उत्पन्न होते हैं, सामान्य और विशेषरूप में उनकी वृद्धि (चय-उपचय) होती है, किन्तु उनकी निष्पत्ति नहीं होती।

[४] वंसीपत्ता णं जोणी पिहुजणस्स। वंसीपत्ताएं णं जोणीए पिहुजणे गब्भे वक्क मंति। ॥ पण्णवणाए भगवईए णवमं जोणीपयं समत्तं ॥

[७७३-४] वंशीपत्रा योनि पृथक् (सामान्य) जनों की (माताओं की) होती है। वंशीपत्रा योनि में पृथक् (साधारण) जीव गर्भ में आते हैं।

विवेचन—मनुष्यों की त्रिविध योनिविशेषों की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (७७३/१,२,३,४) में मनुष्यों की कूर्मोन्नता आदि तीन विशिष्ट योनियों, योनि वाली स्त्रियों एवं उनमें जन्म लेने वाले मनुष्यों का निरूपण किया गया है।

कूर्मोन्नता आदि योनियों का अर्थ—कूर्मोन्नता योनि—जो योनि क्छुए की पीठ की तरह उन्नत— ऊँची उठी हुई या उभरी हुई हो। शंखावर्त्ता योनि—जिसके आवर्त्त शंख के उतार-चढ़ाव के समान हों, ऐसी योनि। वंशीपत्रा योनि—जो योनि दो संयुक्त (जुड़े हुए) वंशीपत्रों के समान आकार वाली हो।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २२७

शंखवर्ता योनि का स्वरूप—शंखावर्ता स्त्रीरत्न की अर्थात्—चक्रवर्ती की पटरानी की होती है। इस योनि में बहुत-से जीव अवक्रमण करते (आते) हैं,, व्युत्क्रमण करते (गर्भ-रूप में उत्पन्न) होते हैं, चित होते (सामान्यरूप से बढ़ते) हैं और उपचित होते (विशेषरूप से बढ़ते) हैं। परन्तु वे निष्पन्न नहीं होते, गर्भ में ही नष्ट हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में वृद्ध आचार्यों का मत है कि शंखावर्ता योनि में आए हुए जीव अतिप्रबल कामाग्नि के परिताप से वहीं विध्वस्त हो जाते हैं।

॥ प्रज्ञापनासूत्र : नौवाँ योनिपद समाप्त॥

^{🕴. (}क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२८(ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका, भा.३, पृ. ८३-८४

परिशिष्ट

प्रज्ञापनासूत्र : स्थान १-९

गाथानुक्रमसूची

गाथा	गाथांक	सूत्रांक	पृष्ठांक	गाथा	गाथांक	सूत्रांक	पृष्ठांक
अच्छि पव्वं बलिमोडओ	९३	५४	६७	एगा य होइ रयणी	१६५	२११	२०३
अण्जो रुहवोडाणे	39	४९	५९	एते चेव उ भावे	१२२	११०	९९
अञ्झयणमिणं चित्तं	ş	१	१०	एरंडे कुरुविंदे	३६	४७	46
अडहुत्तरं च तीसं	१३४	१७४	१५३	ओगाहणसंठाणे	Ę	२	१४
अणभिग्गहियकुदिट्ठी	१२१	११०	१००	ओगाहणाए सिद्धा	१६६	२११	२०३
अणवन्निय पणवन्निय	१५१	१९४	१८१	कण्हे कंदे वज्जे	५३	48	६२
अत्थिय तिंदु कविद्ठे	१६	४१	५४	कहिं पडिहता सिद्धा	१५९	ं २११	२०३
अद्धतिवण्णसहस्सा	१३५	१७४	१५२	कंगूया कद्दुइया	२९	४५	५७
अफ्फोया अइमुत्तय	३०	४५	५७	कंदा कंदमूला य	१०७	५५	७०
अयसी कुसुंभकोद्दव	४३	40	६०	कंबू य कण्हकडबू	४९	५४	६०
अलोए पडिहता सिद्धा	१६०	२११	२०३	काला असुरकुमारा	१४५	१८७	१७१
अवए पणए सेवाले	8/9	५४	६१	काले य महाकाले	१४९	१९२	१७९
असरीरा जीवघणा	१६९	२११	२०४	किण्णरं किंपुरिसे खलु	१५०	१९२	१७९
असुरा नाग सुवण्णा	१३७	१७७	१५७	किमिरासि भद्दमुत्था	५२	५४	६२
असुरेसु होंति रत्ता	१४७	१८७	१७१	कत्थुंभरि पिप्पलिया	२०	४२	५५
अस्सण्णी खलु पढमं	१८३	६४७	४६९	केवलणाणुवउत्ता	१७०	२११	२०४
अंघिय णेत्तिय मच्छिय	११०	40	છછ	गूढिछरागं पत्तं	८५	५४	६६
अंबट्ठा य कलिंदा	११८	१०३	९७	गोमेजाए य रुयए	१०	२४	४३
आणय पाणयकप्पे	१५५	२०६	१९७	चउरासीइ असीई	१५६	२०३	१९७
आसीतं बत्तीसं	१३३	१७४	१५२	चउसट्ठी सट्ठी खलु	१४२	१८७	१७१
आहारे उवओगे	૭	२	१५	चक्कागं भज्जमाणस्स	८४	५४	६६
इक्खू य इक्खुवाडी	३३	४६	40	चत्तारि य रयणीओ	१६४	२११	२०३
इय संव्यकालतित्ता	१७७	२११	२०४	चमरे धरणे तह वेणुदेव	१४३	१८७	१७१
इय सिद्धाणं सोक्खं	१७५	२११	२०४	चंदण गेरुय हंसे	११	२४	४३
उत्तत्तकणगवन्ना	१४६	१८७	१७१	चंपगजीती णवणीइया	२६	४३	५६
एएहिं सरीरेहिं (प्रक्षिप्त ग	ाथा) १	५४	६७	चोत्तीसा चोयाला	१४०	१८७	१७०
एक्कस्स उ जं गहणं	१००	५५	६८	चोवट्ठिं असुराणं	१३८	१८७	१७०
एक्कारसुत्तरं हेट्टिमेसु	१५७			छट्ठिं च इत्थियाओ	१८४	६४७	४६९
एगपएऽणेगाइं	१२५	११०	१००	जत्थ य एगो सिद्धो	१६७	२११	२०३
एगस्स दोण्ह तिण्ह व	१०३	५४	६९				

गाथा	गाथांक	सूत्रांक	पृष्ठांक	गाथा	गाथांक	सूत्रांक	पृष्ठांक
जस्स कंदस्स कट्ठाओ छल्ली				जह सगलसरिसवाणं	४५	५३	६१
तणुयतरी	८१	५४	६६	जह सव्वकामगुणितं	१७६	२११	२०४
जस्स कंदस्स कट्ठाओ छल्ल	ी			जं संठाणं तु इहं	१६२	२११	२०३
बहलतरी	<i>७७</i>	48	६५	जाई मोग्गर तह जूहिया	२५	४३	५६
जस्स कंदस्स भग्गस्स समो	५७	48	६३	जाउलग मालपरिली	२३	४२	५५
जस्स कंदस्स भग्गस्स हीरो	६७	५४	६४	जीसे तयाए भग्गाए समो	49	48	६३
जस्स खंधस्स कट्ठाओ छल्ह	i			जीसे तयाए भग्गाए हीरो	६९	48	६४
तणुयतरी	८२	५४	६१	जीसे सालाए कट्ठाओ छल	ली		
जस्स खंधस्स कट्ठाओछल्ली				तणुयतरी	ረ३	48	६६
बहलतरी	১৩	५४	६५	जीसे सालाए कट्ठाओ छल	ली		
जस्स खंधस्स भग्गस्स समो	५८	५४	६३	बहलतरी	७९	48	६५
जस्स खंधस्स भग्गस्स हीरो	६८	५४	६४	जे केइ नालियाबद्धा	८७	48	६७
जस्स पत्तस्स भगगस्स समो	६२	48	६३	जो अत्थिकायधम्मं	१३०	११०	१००
जस्स पवालस्स भगगस्स समे	ो ६१	५४	६३	जो जिणदिट्ठे भावे	१२१	११०	९९
जस्स पत्तस्स भग्गस्स हीरो	७९	५४	६४	जोणिब्भूए बीए	९७	48	६८
जस्स पवालस्स भग्गस्स हीरं	०७	५४	६४	जो सुत्तमहिज्जंतो	१२४	११०	१००
जस्स पुप्फस्स भग्गस्स समो	६३	५४	६३	जो हेउमयाणंतो	१२३	११०	९९
जस्स पुप्फस्स भग्गस्स हीरो	६७	५४	६४	णग्गोह णंदिरुक्खे	१७	४१	५४
जस्स फलस्स भग्गस्स समो	६४	५४	६४	णाणाविहसंठाणा	४४	५३	६१
जस्स फलस्स भगगस्स हीरो	७४	५४	६४	णित्थित्रसव्वदुक्खा	१७९	२११	२०४
जस्स बीयस्स भग्गस्स समो	૭૫	५४	६४	णिंबंब जंबु कोसंब	१३	४०	५३
जस्स बीयस्स भगगस्स हीरो	७६	५४	६६	णीलाणुरागवसणा	१४८	१८७	१७१
जस्स मूलस्स कट्ठाओ छल्ली	Ì	,		तणमूल कंदमूले	५४	48	६२
तणुयतरी	८०	५४	६८	तत्थ वि य ते अवेदा	१५८	२११	२०३
जस्स मूलस्स कट्ठाओ छर्ल	Ì			तयछल्लिपवालेसु य	१०९	५५	७०
बहलतरी	७६	५४	६५	ताल तमाले तक्कलि	३७	४८	46
जस्स मूलस्स भग्गस्स समो	५६	५४	६३	तिण्णि सया तेत्तीसा	१६३	२११	१९०
जस्स मूलस्स भग्गस्स हीरो	६६	५४	६४	तिलए लउए छत्तोह	१८	४१	५४
जस्स सालस्स भगगस्स समो	६०	५४	६३	तीसा चत्तालीसा	१४१	१८७	१७०
जस्स सालस्स भग्गस्स हीरो	७०	५४	६४	तीसा य पण्णवीसा	१३७	१७४	१५२
जह अयगोलो धंतो	१०२	५४	६९	तुलसी कण्ह उराले	४१	४९	५९
जह णाम कोइ मेच्छो	१७४	२११	२०४	दगपिप्पली य दव्वी	४०	४९	५९
जह वा तिलपप्पडिया	४६	५३	६१	दव्वाण सव्वभावा	१२७	११०	१००

दंसण-णाय-चिरते १२८ ११० १०० मुद्दिय अप्पा भल्ली ३१ ४५ दिसिगित इंदियकाए १८० २१२ २१५ रायिग्ह मगह चंपा ११२ १०२ दीव-दिसा-उदहीणं १३९ १८७ १७० रुक्खा गुच्छा गुम्मा १२ ३८ दिहं वा हस्सं वा १६१ २११ २०३ रुरु कंडुरिया जारू ४८ ५४ न वि अत्थि माणुसाणं १७१ २११ २०४ लोगागासपएसे णिओयजीवं १०४ ५४ निस्सग्गुवएसरुई ११९ ११० ९९ लोगागासपएसे परित्तजीवं १०५ ५४ निस्संिकय निक्कंखिय १३२ ११० १०० वइराड वच्छ वरणा ११५ १०२ पउमुप्पल निल्णाणं ९० ५४ ६७ वंसे वेलु कणए ३४ ४६ पउमुप्पल संघाडे १०८ ५५ ७० वाइंगण सल्लइ बोंडइ १९ ४२ पउमुप्पलिणीकंदे ८८ ५४ ६७ विंटं गिरं कडाहं ९५ ५४	पृष्ठांक
दिसिगित इंदियकाए १८० २१२ २१५ रायिगह मगह चंपा ११२ १०२ दीव-दिसा-उदहीणं १३९ १८७ १७० रुक्खा गुच्छा गुम्मा १२ ३८ दीहं वा हस्सं वा १६१ २११ २०३ रुरु कंडुरिया जारू ४८ ५४ न वि अत्थि माणुसाणं १७१ २११ २०४ लोगागासपएसे णिओयजीवं १०४ ५४ निस्सग्गुवएसरुई ११९ ११० ९९ लोगागासपएसे परित्तजीवं १०५ ५४ निस्संकिय निक्कंखिय १३२ ११० १०० वइराड वच्छ वरणा ११५ १०२ पउमुल्यता नागलता २७ ४४ ५६ ववगयजर-मरणभए १ १ पउमुप्पल निल्णाणं ९० ५४ ६७ वंसे वेलु कणए ३४ ४६ पउमुप्पल संघाडे १०८ ५५ ७० वाइंगण सल्लइ बोंडइ	५७
दीव-दिसा-उदहीणं १३९ १८७ १७० रुक्खा गुच्छा गुम्मा १२ ३८ दीहं वा हस्सं वा १६१ २११ २०३ रुरु कंडुरिया जारू ४८ ५४ न वि अत्थि माणुसाणं १७१ २११ २०४ लोगागासपएसे णिओयजीवं १०४ ५४ निस्सग्वएसरुई ११९ ११० ९९ लोगागासपएसे परित्तजीवं १०५ ५४ निस्संकिय निक्कंखिय १३२ ११० १०० वइराड वच्छ वरणा ११५ १०२ पउमलता नागलता २७ ४४ ५६ ववगयजर-मरणभए १ १ पउमुप्पल निलणाणं ९० ५४ ६७ वंसे वेलु कणए ३४ ४६ पउमुप्पल संघाडे १०८ ५५ ७० वाइंगण सल्लइ बोंडइ १९ ४२	९५
न वि अत्थि माणुसाणं १७१ २११ २०४ लोगागासपएसे णिओयजीवं १०४ ५४ निस्सग्गुवएसरुई ११९ ११० ९९ लोगागासपएसे परित्तजीवं १०५ ५४ निस्संकिय निक्कंखिय १३२ ११० १०० वइराड वच्छ वरणा ११५ १०२ पउमलता नागलता २७ ४४ ५६ ववगयजर-मरणभए १ १ पउमुप्पल निलणाणं ९० ५४ ६७ वंसे वेलु कणए ३४ ४६ पउमुप्पल संघाडे १०८ ५५ ७० वाइंगण सल्लइ बोंडइ १९ ४२	५२
निस्सग्गुवएसरुई ११९ ११० ९९ लोगागासपएसे परित्तजीवं १०५ ५४ निस्संकिय निक्कंखिय १३२ ११० १०० वइराड वच्छ वरणा ११५ १०२ पउमलता नागलता २७ ४४ ५६ ववगयजर-मरणभए १ १ पउमुप्पल निलणाणं ९० ५४ ६७ वंसे वेलु कणए ३४ ४६ पउमुप्पल संघाडे १०८ ५५ ७० वाइंगण सल्लइ बोंडइ १९ ४२	६२
निस्संकिय निक्कंखिय १३२ ११० १०० वइराड वच्छ वरणा ११५ १०२ पउमलता नागलता २७ ४४ ५६ ववगयजर-मरणभए १ १ पउमुप्पल निलणाणं ९० ५४ ६७ वंसे वेलु कणए ३४ ४६ पउमुप्पल संघाडे १०८ ५५ ७० वाइंगण सल्लइ बोंडइ १९ ४२	६९
पउमलता नागलता २७ ४४ ५६ ववगयजर-मरणभए १ १ पउमुप्पल निलणाणं ९० ५४ ६७ वंसे वेलु कणए ३४ ४६ पउमुप्पल संघाडे १०८ ५५ ७० वाइंगण सल्लइ बोंडइ १९ ४२	६९
पउमुप्पल निलणाणं ९० ५४ ६७ वंसे वेलु कणए ३४ ४६ पउमुप्पल संघाडे १०८ ५५ ७० वाइंगण सल्लइ बोंडइ १९ ४२	९६
पउमुप्पल संघाडे १०८ ५५ ७० वाइंगण सल्लइ बोंडइ १९ ४२	१०
पउमुप्पल संघाडे १०८ ५५ ७० वाइंगण सल्लइ बोंडइ १९ ४२	40
पउमुप्पलिणीकंदे ८८ ५४ ६७ विंटं गिरं कडाहं ९५ ५४	५५
	६७
पण्णवणा ठाणाइं ४ २ १४ वेणु णल इक्खुवाडिय ९२ ५४	६७
पत्तउर सीयउरए २१ ४२ ५५ वेंटें बाहिरपत्ता ९१ ५४	६७
पत्तेया पज्जत्ता १०६ ५४ ६९ सण वाण कास मद्दग २२ ४२	५५
परमत्थसंथवो वा १३१ ११० १०० सिण्णिहिया सामाणा १५२ १९४	१८१
पलंडू-ल्हसणकंदे य ८९ ५४ ६७ सत्तर्ठ जातिकुलकोडिलक्ख १११ ९१	ሪ३
पाढा मियवालुंकी ५० ५४ ६२ सप्फाए सज्जाए ९६ ५४	६७
पुढवी य सक्करा वालुया ८ २४ ४३ समयं वक्कंताणं ९९ ५४	६८
पुत्तं जीवयऽरिट्ठे १४ ४० ५३ सव्यो वि किसलओ खलु ९८ ५४	६८
पुप्फा जलया थलया ८६ ५४ ६७ ससिबंदु गोत्तफुसिया ३२ ४५	40
पुस्सफलं कालिंगं ९४ ५४ ५७ साएय कोसला गयपुरं ११३ १०२	९५
पूई करंज सेण्हा (सण्हा) १५ ४० ५३ साली वीही गोधूम ४२ ५०	६०
पूसफली कालिंगी २८ ४५ ५६ साहारणमाहारो १०१ ५४	६८
फुसइ अणंते सिद्धे १६८ २११ २०३ सिद्ध ति य बुद्ध ति य १७८ २११	२०४
बत्तीस अट्ठवीसा १५४ २०६ १९७ सिद्धस्स सुहो रासी १७३ २११	२०४
बलि भूयाणंदे वेणुदालि १४४ १८७ १७१ सिंघाडगस्स गुच्छो ५५ ५४	६२
बारवती य सुरट्ठा ११४ १०२ ९६ सुयरयणनिहाणं जिनवरेण २ १	१०
बारस चउवीसाइं १८२ ५५९ ४६७ सुरगणसुहं समत्तं १७२ २११	२०४
भासग परित्त पञ्जत १८१ २१२ २१५ सेडिय भत्तिय होत्तिय ३५ ४७	५७
भासा सरीर परिणाम ५ २ १४ सेयवियावियणयरी ११७ १०२	९६
भुयरुक्ख हिंगुरुक्खे ३८ ४८ ५९ सेरियए णोमालिय २४ ४३	५६
भूअत्थेणाधिग्या १२० ११० ९९ सो होई अहिगमरुई १२६ ११०	१०७
महुरा य सूरसेणा ११६ १०२ ९६ हरियाले हिंगुलए ९ २४	४३
मासपण्णी मुग्गपण्णी ५१ ५४ ६२ हासे हासरई वि य १५३ १९४	१८१

अनध्यायकाल

[स्व. आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म. द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरिवद्या संयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमों में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अंतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा — उक्कावाते, दिसिदाघे, गाज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, तं जहा — अट्ठी, मंसं, सोणिते, असुचिसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

— स्थानाङ्गसूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं किरत्तए, तं जहा — आसाढपाडिवए, इंदमहपाडिवए कित्तअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउिहं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा — पिढमाते, पिच्छमाते, मज्झण्हे अङ्करत्ते। कप्पई निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा — पुळ्कण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

— स्थानाङ्गसूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं, जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे —

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

- **१. उल्कापात-तारापतन** यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।
- २. दिग्दाह जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।
 - **३. गर्जित** बादलों के गर्जन पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।
 - **४. विद्युत** बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत का अस्वाध्याय चातुर्मास में नहीं मानना चाहिए। क्योंकि वह गर्जन और विद्युत प्राय: ऋतु स्वभाव से ही होता है। अत: आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

- **५. निर्घात** बिना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर, या बादलों सिहत आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।
- **६. यूपक** शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया की सन्ध्या, चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता हैं। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।
 - ७. यक्षादीम कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा, थोड़े-थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीस

कहलाता है। अत: आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

- ८. धूमिका-कृष्ण कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।
- **९. मिहिकाश्चेत** शीतकाल में श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।
- **१०. रज-उद्घात** वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. हड्डी, मांस और रुधिर — पंचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, मांस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से वह वस्तुएँ उठाई न जाएँ, तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एवं बालिका का अस्वाध्याय क्रमश: सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

- १४. अशुचि मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।
- १५. श्मशान श्मशानभूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।
- **१६. चन्द्रग्रहण** चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।
 - १७. सूर्यग्रहण सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश: आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।
- १८. पतन किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसकां दाहसंस्कार न हो तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनै: शनै: स्वाध्याय करना चाहिए।
- **१९. राजव्युद्ग्रह** समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नहीं करें।
- २०. औदारिक शरीर उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

- २१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा आषाढपूर्णिमा, अश्विनपूर्णिमा, कार्तिकपूर्णिमा और चैत्रपूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।
- २९-३२. प्रातः सायं मध्याह्न और अर्धरात्रि प्रातः सूर्य उगने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घड़ी आगे और एक घड़ी पीछे एवं अर्धरात्रि में भी एक घड़ी आगे तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

श्री आगमप्रकाशन-समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

- १. श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
- २. श्री गुलाबचन्दजी मांगीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
- ३. श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
- ४. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बैंगलोर
- ५. श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
- ६. श्री एस. किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
- ७. श्री कंवरलालजी बैताला, गोहाटी
- ८. श्री सेठ खींवराजजी चोरड़िया मद्रास
- ९. श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
- १०. श्री एस. बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
- ११. श्री जे. दुलीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
- १२. श्री एस. रतन्चन्दजी चोरङ्या, मद्रास
- १३. श्री जे. अन्नराजजी चोरड़िया, मद्रास
- १४. श्री एस. सायरचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
- १५. श्री आर. शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
- १६. श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
- १७. श्री जे. हुक्मीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

- १. श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
- २. श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
- ३. श्री तिलोकचंदजी सागरमलजी संचेती, मद्रास
- ४. श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, कटंगी
- ५. श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरङ्गि, मद्रास
- ६. श्री दीपचन्दजी चोरिंड्या, मद्रास
- ७. श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटंगी
- ८. श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
- ९. श्री मांगीलालजी मिश्रीलालजी संचेती, दुर्ग

संरक्षक

- १. श्री बिरदीचंदजी प्रकाशचंदजी तलेसरा, पाली
- २. श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
- ३. श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेड़ता सिटी
- ४. श्री श. जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
- ५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, ब्यावर
- ६. श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चांगाटोला
- ७. श्री दीपचंदजी चन्दनमलजी चोरड़िया, मद्रास
- ८. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चांगाटोला
- श्रीमती सिरेकुँवर बाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुगनचन्दजी झामड़, मदुरान्तकम्
- १०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (KGF) जाडन
- ११. श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
- १२. श्री भैरूदानजी लाभचन्दजी सुराणा, नागौर
- १३. श्री खुबचन्दजी गादिया, ब्यावर
- १४. श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
- १५. श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनांदगांव
- १६. श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
- १७. श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी कांकरिया, टंगला
- १८. श्री सुगनचन्दजी बोकड़िया, इन्दौर
- १९. श्री हरकचन्दजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
- २०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढ़ा, चांगाटोला
- २१. श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला

- २२. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
- २३. श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
- २४. श्री केशरीमलजी जंवरीलालजी तलेसरा, पाली
- २५. श्री रतनचन्द्रजी उत्तमचन्द्रजी मोदी, ब्यावर
- २६. श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूंठा
- २७. श्री छोगामलजी हेमराजजी लोढ़ा डोंडीलोहारा
- २८. श्री गुणचंदजी दलीचंदजी कटारिया, बेल्लारी
- २९. श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी संचेती, जोधपुर
- ३०. श्री सी. अमरचन्दजी बोथरा, मद्रास
- ३१. श्री भंवरलालजी मूलचन्दजी सुराणा, मद्रास
- ३२. श्री बादलचंदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
- ३३. श्री लालचंदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
- ३४. श्री हीरालालजी पत्रालालजी चौपड़ा, अजमेर
- ३५. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
- ३६. श्री भंवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
- ३७. श्री भंवरलालजी गोठी, मद्रास
- ३८. श्री जालमचंदजी रिखबचंदजी बाफना, आगरा
- ३९. श्री घेवरचंदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
- ४०. श्री जबरचन्दजी गेलड़ा, मद्रास
- ४१. श्री जडा़वमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
- ४२. श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
- ४३. श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
- ४४. श्री लुणकरणजी रिखबचंदजी लोढा, मद्रास
- ४५. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

- १. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेड़तासिटी
- २. श्रीमती छगनीबाई विनायिकया, ब्यावर
- ३. श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
- ४. श्री भंवरलालजी विजयराजजी कांकरिया, चिल्लीपुरम्
- ५. श्री भंवरलालजी चौपड़ा, ब्यावर
- ६. श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर

- ७. श्री बी. गजराजजी बोकडिया, सेलम
- ८. श्री फुलचन्दजी गौतमचन्दजी कांठेड, पाली
- ९. श्री के. पुखराजजी बाफणा, मद्रास
- १०. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
- ११. श्री मोहनलालजी मंगलचंदजी पगारिया, रायपुर
- श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
- १३. श्री भंवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
- १४. श्री उत्तमचंदजी मांगीलालजी, जोधपुर
- १५. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
- १६. श्री सुमेरमलजी मेड्तिया, जोधपुर
- १७. श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टांटिया, जोधपुर
- १८. श्री उदयराजजी पुखराजजी संचेती, जोधपुर
- १९. श्री बादरमलजी पुखराजजी बंट, कानपुर
- २०. श्रीमती सुन्दरबाई गोठी धर्मपत्नीश्री ताराचंदजी गोठी, जोधपुर
- २१. श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
- २२. श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
- २३. श्री भंवरलालजी माणकचंदजी सुराणा, मद्रास
- २४. श्री जंबरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
- २५. श्री माणकचंदजी किशनलालजी, मेड़तासिटी
- २६. श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
- २७. श्री जसराजजी जंवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
- २८. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
- २९. श्री नेमीचंदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
- ३०. श्री ताराचंदजी केवलचंदजी कर्णावट, जोधपुर
- ३१. श्री आसूमल एण्ड कं. , जोधपुर
- ३२. श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
- ३३. श्रीमती सुगनीबाई धर्मपत्नी श्री मिश्रीलालजी सांड, जोधपुर

- ३४. श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
- ३५. श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
- ३६. श्री देवराजजी लाभचंदजी मेड़तिया, जोधपुर
- ३७. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
- ३८. श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टांटिया, जोधपुर
- ३९. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, कुचेरा
- ४०. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
- ४१. श्री ओकचंदजी हेमराजजी सोनी, दुर्ग
- ४२. श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
- ४३. श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग
- ४४. श्री पुखराजजी बोहरा,(जैन ट्रान्सपोर्ट कं.)-जोधपुर
- ४५. श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
- ४६. श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बैंगलोर
- ४७. श्री भंवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
- ४८. श्री लालचंदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर
- ४९. श्री भंवरलालजी नवरतमलजी सांखला, मेट्ट्रपलियम
- ५०. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
- ५१. श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग
- ५२. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
- ५३. श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
- ५४. श्री घेवरचंदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
- ५५ श्री मांगीलालजी रेखचंदजी पारख, जोधपुर
- ५६. श्री मुन्नीलालजी मूलचंदजी गुलेच्छा, जोधपुर
- ५७. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
- ५८. श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता-सिटी
- ५९. श्री भंवरलालजी रिखबचंदजी नाहटा, नागौर
- ६०. श्री मांगीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
- ६१. श्री पुंखराजजी बोहरा, पीपलिया कलां
- ६२. श्री हरकचंदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर

- ६३. श्री चन्दनमलजी प्रेमचंदजी मोदी, भिलाई
- ६४. श्री भींवराजजी बाघमार, कुचेरा
- ६५. श्री तिलोकचंदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
- ६६. श्री विजयलालजी प्रेमचंदजी गुलेच्छा राजनांदगाँव
- ६७. श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई
- ६८. श्री भंवरलालजी डूंगरमलजी कांकरिया, भिलाई
- ६९. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
- ६०. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसंघ, दल्ली-राजहरा
- ७१. श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
- ७२. श्री गंगारामजी इन्द्रचंदजी बोहरा, कुचेरा
- ७३. श्री फतेहराजजी नेमीचंदजी कर्णावट, कलकत्ता
- ७४. श्री बालचंदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
- ७५. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
- ७६. श्री जवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बोलारम
- ७७. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
- ७५. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
- ७९. श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, टंगला
- ८०. श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
- ८१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
- ८२. श्री पारसमलजी महावीरचंदजी बाफना, गोठन
- ८३. श्री फकीरचंदजी कमलचंदजी श्रीश्रीमाल, कचेरा
- ८४. श्री माँगीलालजी मदनलालजी चोरड़िया, भैरूंदा
- ८५. श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
- ८६. श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जंवरीलालजी कोठारी, गोठन
- ८७. श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
- ८८. श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर

- ८९. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
- ९०. श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
- ९१. श्री भंवरलालजी बाफणा, इन्दौर
- ९२. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
- ९३. श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
- ९४. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भंडारी, बैंगलोर
- श्रीमती कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी स्व.
 श्री पारसमलजी ललवाणी, गोठन
- ९६. श्री अखेचन्दजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
- ९७. श्री सुगनचन्दजी संचेती, राजनांदगाँव
- ९८. श्री प्रकाशचंदजी जैन, नागौर
- ९९. श्री कुशालचंदजी रिखबचन्दजी सुराणा, बोलारम
- १००. श्री लक्ष्मीचंदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
- १०१. श्री गूदड्मलजी चम्पालालजी, गोठन
- १०२. श्री तेजराजजी कोठारी, मांगलियावास
- १०३. श्री सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
- १०४. श्री अमरचंदजी छाजेड, पाद बडी
- १०५. श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
- १०६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
- १०७. श्रीमती कंचनदेवी व निर्मला देवी, मद्रास
- १०८. श्री दुलेराजजी भंवरलालजी कोठारी, कुशाल-पुरा
- १०९. श्री भंवरलालजी मांगीलालजी बेताला, डेह
- ११०. श्री जीवराजजी भंवरलालजी चोरड़िया, भैरूंदा
- १११. श्री मॉॅंगीलालजी शांतिलालजी रूणवाल, हरसोलाव

- ११२. श्री चांदमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
- ११३. श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
- ११४. श्री भूरमलजी दुलीचंदजी बोकड़िया, मेड़ता-सिटी
- ११५. श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
- ११६. श्रीमती रामकुंवरबाई धर्मपत्नी श्री चांदमलजी लोढा, बम्बई
- ११७. श्री माँगीलालजी उत्तमचंदजी बाफणा, बैंगलोर
- ११८. श्री सांचालालजी बाफणा, औरंगाबाद
- ११९. श्री भीखमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर)मद्रास
- १२०. श्रीमती अनोपकुंवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी संघवी, कुचेरा
- १२१. श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
- १२२. श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकर्ता
- १२३. श्री भीखमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धुलिया
- १२४. श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड़, सिकन्दराबाद
- १२५. श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया, सिकन्दराबाद
- १२६. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, बगड़ीनगर
- १२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाड़ा
- १२८. श्री टी. पारसमलजी चोरड़िया, मद्रास
- १२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड कं., बैंगलोर
- १३०. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाङ्

युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी म.सा. 'मधुकर' मुनि का

जीवन परिचय



जन्म तिथि -

माता -पिता -

दीक्षा तिथि -

दीक्षा-स्थान दीक्षागुरु शिक्षागुरु (गुरुभ्राता)

आचार्य परम्परा आचार्य पद

श्रमण संघ की एकता हेतु आचार्य पद का त्याग

उपाध्याय पद युवाचार्य पद की घोषणा

युवाचार्य पद-चादर महोत्सव

स्वर्गवास

वि.सं. १९७० मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशी तिंवरी नगर, जिला-जोधपुर (राज.)

श्रीमती तुलसीबाई श्री जमनालालजी धाडीवाल

वैशाख शुक्ला १० वि.सं. १९८०

भिणाय ग्राम, जिला-अजमेर

श्री जोरावरमलजी म.सा.

श्री हजारीमलजी म.सा. पुज्य आचार्य श्री जयमल्लजी म.सा.

पूज्य आचाय श्रा जयमल्लजा म.सा.

जय गच्छ-वि.सं. २००४

वि.सं. २००९

वि.सं. २०३३ नागौर (वर्षावास)

श्रावण शुक्ला १ वि.स. २०३६

दिनांक २५ जुलाई १९७९ (हैदराबाद)

वि.सं. २०३७ चैत्र शुक्ला १०

दिनांक २३-३-८०, जोधपुर वि.सं. २०४० मिगसर वद ७

दिनांक २६-११-१९८३, नासिक (महाराष्ट्र)

आपका व्यक्तित्व एवं ज्ञान :

१. गौरवपूर्ण भव्य तेजस्वी ललाट, चमकदार बड़ी आँखें, मुख पर स्मित की खिलती आभा और स्नेह तथा सौजन्य वर्षाति कोमल वाणी, आध्यात्मिक तेज का निखार, गुरुजनों के प्रति अगाध श्रद्धा, विद्या के साथ विनय, अधिकार के साथ विवेक और अनुशासित श्रमण थे।

२. प्राकृत, संस्कृत, व्याकरण, प्राकृत व्याकरण, जैन आगम, न्याय दर्शन आदि का प्रौढ़ ज्ञान मुनिश्री को प्राप्त था। आप उच्चकोटि के प्रवचनकार, उपन्यासकार, कथाकार एवं व्याख्याकार थे।

आपके प्रकाशित साहित्य की नामावली

प्रवचन संग्रह: १. अन्तर की ओर, भाग १ व २, २. साधना के सूत्र, ३. पर्युषण पर्व प्रवचन, ४. अनेकान्त दर्शन, ५. जैन-कर्मसिद्धान्त, ६. जैनतत्त्व-दर्शन, ७. जैन संस्कृत-एक विश्लेषण, ८. गृहस्थधर्म, ९. अपरिग्रह दर्शन, १०. अहिंसा दर्शन, ११. तप एक विश्लेषण, १२. आध्यात्म-विकास की भूमिका।

कथा साहित्य: जैन कथा माला, भाग १ से ५१ तक

उपन्यास: १. पिंजरे का पंछी, २. अहिंसा की विजय, ३. तलाश, ४. छाया, ५. आन पर बलिदान।

अन्य पुस्तकें : १. आगम परिचय, २. जैनधर्म की हजार शिक्षाएँ, ३. जियो तो ऐसे जियो।

विशेष: आगम बत्तीसी के संयोजक व प्रधान सम्पादक।

शिष्य: आपके एक शिष्य हैं- १. मुनि श्री विनयकुमारजी 'भीम'